

GOVERNMENT OF INDIA  
ARCHÆOLOGICAL SURVEY OF INDIA  
CENTRAL  
ARCHÆOLOGICAL  
LIBRARY

ACCESSION NO. 10486

CALL No. 392.3086/1/1a3





# हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास





हिन्दी समिति ग्रन्थमाला-संख्या १६६

## हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास

[वैदिक युग से वर्तमान युग तक की हिन्दू विवाह विषयक प्रमुख  
संस्थाओं का ऐतिहासिक तथा समाजशास्त्रीय अध्ययन]

५०/६१

लेखक :

प्रो. हरिदत्त वेदातंकार एम. ए.

भू. पू. अध्यापक इतिहास विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार;  
निदेशक, प्रकाशन विभाग, डा. प्र. कृषि-विश्वविद्यालय, पल्लनगर, नैनीताल ।

392.50954

Har

हिन्दी समिति

सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश

लखनऊ

प्रथम संस्करण

१९७०

मूल्य : १६ रु०  
(सोलह रुपये)

LIBRARY, NEW DELHI  
No ..... 404 .....  
.....  
No. 392.50954  
How

## प्रकाशकोय

मानवनिर्मित संस्थाओं में उदात्तित सबसे व्यापक और विश्वजनीन संस्था परिवार या कुटुम्ब है औ आरम्भ में नर-नारी के युग्म से और तदुपरान्त उनकी संतानों से निर्मित होता है। अतः यदि यह कहा जाय कि वैवाहिक सम्बन्ध हमारे समष्टिगत जीवन की मूलभूत और आरम्भिक इकाई रहे है तो अत्युक्ति न होगी। यद्यपि समाज-शास्त्रियों ने ऐसी समावनाओं का विवरण अपने अध्ययन के आधार पर प्रस्तुत किया है जो इस संस्था को अति आरम्भिक अवस्था की ओर संकेत करता है और आश्चर्य नहीं कि स्वाभाविक विकास की अपनी प्रक्रिया में मानव ने अलग-अलग जनता में समान रूप से इस विद्या में प्रगति भी की है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मूलभूत एकता के रहते हुए भी मानव-सम्भता के अन्य अवस्था की भाँति विवाह-संस्था के स्वरूप में समानता नहीं रह पायी। अत्येक सम्भता के साथ उसकी विवाह-संस्था भी अपनी विशेषता प्राप्त करती गयी, जिसका प्रतिफल हम अलग-अलग जातियों में देखते है।

आधुनिक युग जगत् के मकोच का युग है। भौगोलिक व्यवधान समाप्तप्राय हो चले हैं। फलतः विभिन्न देशों और जातियों के वैशिष्ट्य से निर्मित संस्थाएँ एक दूसरे को प्रभावित कर रही है औ इस प्रकार एक नयी विषय-समाज-व्यवस्था का सूत्रपात हो चुका है। परन्तु किसी भी वर्तमान का निर्माण अभी सम्भव है जब उसकी नींव सुदृढ़ अतीत पर रखी गयी हो। इस दृष्टि से वैचारिक एकता के इस युग में इस बात की भी आवश्यकता है कि विभिन्न जातीय और देशीय विशेषताओं को उद्घासित किया जाय ताकि भावी स्वरूप का निर्धारण करने के लिए समाज के सामने एक सुपरीक्षित आधारभूत सामग्री उपलब्ध रहे। इस दृष्टि से हिन्दू विवाह विषयक प्रस्तुत ग्रन्थ का अचना विशेष महत्त्व है। इस भू-भाग में जो सामाजिक पद्धति विकसित हुई उसने मानव-सम्भता को हर क्षेत्र में पर्येष्ट विचार-सामग्री प्रदान की है। ऐसी स्थिति में इस सम्पादना से इन्कार नहीं किया जा सकता कि पश्चिम की भौतिकवादजन्य विषयताओं से प्रताड़ित मानव आध्यात्मिक क्षेत्र की भाँति वैवाहिक क्षेत्र में भी भारत की उपलब्धियों की ओर आकृष्ट हो।

विद्वान् लेखक ने अपने विषय का प्रतिपादन साधिकार किया है और मत्त-तत्त ऐसे तथ्यों की ओर भी संकेत किया है जो विचारोत्तेजक हैं और जिनसे महमन अथवा असहमत होने के लिए पाठकों को सम्यक्त मानस-संघर्ष करना पड़ेगा। आशा है, समाज-शास्त्र के अध्ययार्थी के साथ-साथ अन्य पाठक भी इस कृति की उपयोगी पायेंगे।

लीलाधर शर्मा 'पञ्चतोष'

सचिव, हिन्दी समिति

## प्रस्तावना

विवाह हमारे समाज की एक बड़ी महत्वपूर्ण संस्था है। समाज की सत्ता, संरक्षण, सातत्य और वृद्धि इसी पर अवलम्बित है। हम हमारी सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन कहा जाय तो कोई अन्युक्ति न होगी। इस पुस्तक में हिन्दू समाज की इस महत्वपूर्ण संस्था को वैदिक युग से वर्तमान काल तक की ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय मीमांसा का एक विनम्र प्रयत्न किया गया है। इसमें हिन्दू विवाह के अर्थों का प्रतिपादन, वर्तमान का विन्यस्त तथा भविष्य में प्रयत्न होते वाली प्रवृत्तियों का विवेचन और विवेचन है।

पहले अध्याय में हिन्दू विवाह के उद्गम और उद्देश्यों पर प्रकाश डाला गया है। दूसरे में पाँचवें अध्याय तक हिन्दू विवाह के उन प्रतिपत्तियों और समुदायों का ऐतिहासिक विवेचन किया गया है जिनका पालन करना प्रत्येक हिन्दू विवाह में आवश्यक समझा जाता है। मौल, प्रवर, मणिष्यता तथा अन्तर्विवाह के प्रतिबन्ध इनमें प्रमुख स्थान रखते हैं। पाँचवें अध्याय में वर-वधू की अन्य योग्यताओं तथा चुनाव सम्बन्धी विभिन्न नियमों का वर्णन है। छठे अध्याय में विवाह के प्राचीन ऋतु रूपों के साथ आधुनिक काल में प्रचलित सम्बन्धम, कराव, वादरअन्दाजी आदि का वर्णन है। सातवें अध्याय में विवाह संस्कार की विधियों का तथा इनके महत्व का विवेचन है। आठवें अध्याय में दाम्पत्य अधिकारों पर तथा नवें अध्याय में तलाक के प्रश्न पर प्रकाश डाला गया है। दसवें अध्याय से बीसवें अध्याय तक हिन्दू विवाह से संबद्ध विभिन्न समस्याओं की समीक्षा है और क्रमशः बाल विवाह, विधवा विवाह, सतीप्रथा, निधोग, बहुभार्यता (Polygamy) और बहुभर्तृता (Polyandry) का विवेचन है। अन्तर्द्वे अध्याय में नवीन परिस्थितियों के कारण हिन्दू विवाह पर पड़ने वाले प्रभावों का तथा भविष्य में प्रयत्न होने वाली नवीन प्रवृत्तियों का विवेचन किया गया है।

हिन्दू विवाह के प्राचीन काल और मध्ययुग की ऐतिहासिक मीमांसा का प्रधान आधार वैदिक संहिताएँ, ब्राह्मण ग्रन्थ, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, स्मृतिपत्र, इनकी टीकाएँ, विद्वत् ग्रन्थ, संस्कृत-प्राकृत के नाटक, काव्य, पालि सिंघटक, आतक साहित्य तथा प्राचीन अभिलेख हैं। अनेक धर्मसूत्रों, स्मृतिपत्रों तथा विद्वत् ग्रन्थों का रचनाकाल विज्ञातस्थित है। इस पुस्तक में प्रधान रूप से श्री पाण्डुरंग दामन काणे के "हिस्टरी आफ् धर्मशास्त्र" के प्रथम खण्ड में प्रतिपादित कालक्रम को स्वीकार किया गया है। हिन्दू विवाह के आधुनिक काल के विवेचन का मुख्य आधार पिछी कौंसिल, सुप्रीम कोर्ट तथा विभिन्न

हाईकोर्टों के फैसलों की रिपोर्टें, भारत सरकार की ओर से बैठायी गयी अनेक समितियों के विवरण, विवाह विधायक नवीन कानून तथा हिन्दू कानून पर लिखे गये प्रामाणिक ग्रन्थ तथा जनमणना की रिपोर्टें हैं। इनके अतिरिक्त हिन्दू विवाह और परिवार पर अंग्रेजान समय के स्वदेशी एवं विदेशी विद्वानों द्वारा लिखे गये समाजशास्त्रीय अनुसंधान और गवेषणाएँ भी इसमें सहायक हैं। इन सब का उल्लेख साहायक ग्रन्थसूची में किया गया है।

हिन्दू विवाह से सम्बन्ध प्राप्त सभी प्रश्नों का विवेचन निम्नलिखित वैज्ञानिक दृष्टि से किया गया है। प्रत्येक वैज्ञानिक प्रश्न के सम्बन्ध में पहले उसके वैदिक काल से लेकर अब तक कबले आने वाले स्वरूप की स्पष्ट किता पता है, इसके साथ ही यह भी बताया गया है कि उस प्रश्न में कब, कैसे और क्यों परिवर्तन होता रहा। अक्षपिण्डता, असमांशता, अन्तर्विवाह के नियम, दान विवाह, तलाक प्रथा, विधवा विवाह, नियाम आदि की प्रथाएँ किन समय, किन कारणों से आरम्भ हुई, इनका क्रमिक विकास किस प्रकार हुआ, इसका विवेचन कालक्रम से ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से विवाह सम्बन्धी विभिन्न प्रश्नों की सीमांता करने हुए तुलनात्मक पद्धति का भरपूर उपयोग किया गया है और हिन्दू समाज की प्रथाओं एवं संस्थाओं की तुलना अन्य समाजों की इस प्रकार की पद्धतियों से की गयी है। प्रसिद्ध साम्राज्यवादी ब्रिटिश लेखक और कवि किपलिंग यहाँ कहता था कि वे इंग्लैण्ड के बारे में क्या जानते हैं जो केवल इंग्लैण्ड को जानते हैं। उसकी इस उक्ति का यह आशय था कि दूसरे देशों को जानने पर तथा उनके साथ इंग्लैण्ड की तुलना करते पर ही इस देश का यथार्थ ज्ञान संभव है। यही बात हिन्दू विवाह के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। जो केवल हिन्दू विवाह को जानते हैं, वे इसका पूरा ज्ञान नहीं रखते हैं। यह ठीकी संभव है अब हम हिन्दू विवाह सम्बन्धी विभिन्न व्यवस्थाओं की तुलना यूनान, रोम, फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैण्ड, अमरीका आदि दूसरे देशों की तथा अन्य जातियों की लतवृत्त व्यवस्थाओं और प्रथाओं से करें। अतः इस पुस्तक में प्रायः सर्वत्र पाश्चिप्यणियों में दूसरे देशों तथा जातियों के विवाह की हिन्दू विवाह के साथ सादृश्य रखने वाली प्रथाओं तथा रीति-रिवाजों का रोचक एवं ज्ञानवर्धक प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन में लेखक को बैस्टरमार्क, फ्रेजर, हाबहाउस, लीकी, काली, स्पेन्सर आदि के ग्रन्थों से बड़ी सहायता मिली है। सहायक ग्रन्थ सूची में ऐसी पुस्तकों का उल्लेख पृथक् रूप से किया गया है।

इस पुस्तक में अनेक नये पारिभाषिक शब्द गढ़े गये हैं। नये शब्द बनाने से पहले यह यत्न किया गया है कि प्राचीन साहित्य में उन शब्दों की खोज जाय। यदि पुराने संस्कृत ग्रन्थों में ऐसे शब्द मिले हैं, तो उनकी जगह अवश्य में नये शब्द नहीं बनाये गये। उदाहरणार्थ, अंग्रेजी के Promiscuity, Polygamy तथा Polyandry के लिए महाभारत में कमला, कामचार, बहुभायता और बहुभर्तृता के शब्दों का प्रयोग है, अतः इस

पुस्तक में इन्हीं शब्दों का व्यवहार किया गया है।

अर्थात् जाने बिना है कि विवाह के विषय में जितनी उल्टपटोल बातें लिखी गयी हैं, उतनी शाब्द किन्हीं और विषय पर नहीं लिखी गयीं। यथा गहरी लेखक का यह प्रयास बिना थोड़ी में जाता है।

विवाह का विषय इतना गंभीर, जटिल और विमिश्र है कि सैको के कथनानुसार हम इस अवसर पर न्यूटन की अन्तिम उत्पत्ति को धीरे-धीरे हुए सही कह सकते हैं कि इस विषय में हम अभी तक विशाल सागर के किनारे कुछ कंकड़ ही मटोर पाये हैं। हिन्दू विवाह का इतिहास अभी तक अन्धकार के आवरण में गड़ा हुआ है, उसके स्वरूप की स्पष्ट करने का यह एक अत्यन्त विघ्न प्रयास है। कात्तिदास ने भले ही गम्भीरता यह कहा था—“वैव सुर्वप्रथमो वंशः, क्व चाल्पविषया मतिः”। किन्तु लेखक इस विषय में बहुत; अपनी अल्पविषया मति का अनुभव करता है, फिर भी उसने यह प्रयत्न इसलिए किया है कि अधिनारी विद्वानों का ध्यान इस महत्वपूर्ण किन्तु उपेक्षित विषय की ओर आकृष्ट हो सके।

लेखक को इस विषय का खेद है कि हिन्दी समिति द्वारा निर्धारित पृष्ठ-संख्या के कारण उसे अनेक विषयों को छोड़ना पड़ा है, संस्कृत शब्दों के मूल अवतरणों को देने से पुस्तक का कोनेतर बढ़ जाया, अतः इनके प्रतीकों का उल्लेखमात्र किया गया है।

हिन्दू विवाह के सर्वांगीण वैज्ञानिक विवेचन का हिन्दी में यह प्रथम प्रयास है। अंग्रेजी, जर्मन आदि यूरोपियन भाषाओं में हिन्दू विवाह की विविध समस्याओं के अनेक प्रामाणिक अध्ययन हुए हैं, किन्तु लेखक की जानकारी में इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दू विवाह के सब पहलुओं का विवेचन करनेवाला कोई ग्रन्थ नहीं है। इस विषय की गुरुता, गंभीरता और जटिलता के साथ लेखक अपने अल्प अध्ययन और सीमित सामर्थ्य से भी अपरिचित नहीं है, फिर भी उसने यह प्रयास इसलिए किया है कि ऐसे महत्वपूर्ण विषय पर हिन्दो में अभी तक कोई अध्ययन प्रकाशित नहीं हुआ है। लेखक को उस समय तक संतोष नहीं होगा जब तक उसका यह वित्त प्रयास विद्वानों द्वारा कसौटी पर कसा जाने पर धरा न उतरे। कात्तिदास के शब्दों में लेखक की भी यह धारणा है—

आ परितोषाद्भिदुषां न साधु शन्ये प्रयोगविज्ञानम् ॥

इससे पहले हिन्दू परिवार पर लेखक की एक कृति ‘हिन्दू परिवार भौमशास्त्र’ के दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और वह पुस्तक बंगाल हिन्दी मन्त्रालय, कलकत्ता तथा हिन्दुस्तानी ऐग्रेजमी, इलाहाबाद द्वारा उच्चतम पुरस्कारों से सम्मानित हो चुकी है। आशा है, इस पुस्तक का भी हिन्दी वर्ग द्वारा स्वागत किया जायगा।

लेखक इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए हिन्दी समिति का तथा इसके सचिव श्री



‘पर्वतीय’ जी का अत्यन्त आभारी है। हिन्दी समिति के सहयोग के बिना ऐसे सम्भीर विषय के ग्रन्थ का प्रकाशन होना बहुत कठिन था। इसके प्रकाशन एवं संस्करण में गरुडुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के मुक्तकाल्य के अधिकारियों—बन्धुवन् रामचन्द्रामल जी, श्री बामीन्दर जी विद्यालंकार और श्री प. धर्मदेव जी वेदवाचस्पति ने बहुमूल्य सहायता मिली है। प्रेष के लिए इसकी पाण्डुलिपि तैयार करने तथा दायर करने में श्री रामचन्द्र जी, श्री प्रतापसिंह जी, श्री राजेन्द्रकुमार जी आदि ने बहुमूल्य सहायता दिया है। लेखक इन सब का आभारी है।

इस पुस्तक में प्राचीन ग्रन्थों के सैकड़ों प्रतीक हैं। उन्हें पश्चात्त यन्त्रागत शब्द रखने का प्रयास किया गया है। तथापि कुछ अशुद्धियाँ का रह जाता सम्भव है। उन्हें तथा अन्य भूलों को प्रदर्शित करनेवाले तथा इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में उपयोगी सुझाव देने वाले महा-मुभावों का लेखक बहुत कृतज्ञ होगा।

हरिवर

## विषय-सूची

### प्रस्तावना

#### संक्षिप्त संकेत सूची

- (क) सम्पूर्ण और गालि ग्रन्थ पृ० ५, (ख) आधुनिक ग्रन्थ पृ० ८,  
(ग) कानूनी संकेत, पृ० ८।

#### प्रथम अध्याय-हिन्दू विवाह का स्वरूप, प्रयोजन और उद्गम

विवाह का अर्थ और लक्षण पृ० १, विवाह के विभिन्न पक्ष पृ० ३ विवाह  
विषयक नियम पृ० ६, (१) वर-वधू के चुनाव के नियम पृ० ६,  
(२) पत्नी प्राप्ति के नियम पृ० ७, (३) विवाह के  
विभिन्न रूप पृ० ७, विवाह के प्रयोजन पृ० ८, (१) धर्म का पालन ;  
(क) पत्नी का सहयोग पृ० ८, (ख) गृहस्थाश्रम का पालन पृ० ११,  
(ग) पितृ-भ्रूण का विचार पृ० १८, (२) सन्तान प्राप्ति पृ० १५,  
(३) रति पृ० १६, विवाह की अनिवार्यता : (क) प्राचीन उदाहरण  
पृ० १७, (ख) आधुनिक उदाहरण पृ० १८, हिन्दू विवाह का आदिम  
रूप पृ० २२।

#### द्वितीय अध्याय-बहिर्विवाह : गोत्र और प्रवर

दो प्रकार के वैवाहिक नियम पृ० २८, गोत्र का सामान्य स्वरूप  
पृ० २८, गोत्र विषयक ग्रन्थ पृ० ३२, गोत्र शब्द के विभिन्न अर्थ पृ० ३४,  
मेधातिथि द्वारा गोत्र शब्द की व्याख्या पृ० ३६, गोत्र-प्रवर के ऐति-  
हासिक विकास की अवमूर्ध्ति पृ० ३७, वैदिक युग में गोत्र पृ० ३७, मौर्य-  
मूलर की गोत्रविषयक कल्पना पृ० ३८, वैदिक युग में गोत्र-  
पद्धति के संकेत पृ० ३८, प्रवर पृ० ४०, प्रवर पद्धति के  
वैदिक निर्देश पृ० ४३, प्रवर बनने की स्वतन्त्रता पृ० ४५, प्रवर में  
क्षत्रियों की संख्या पृ० ४८, द्विगोत्र कुल पृ० ४८, क्षत्रियों के गोत्र पृ०  
५१, वैश्यों के गोत्र और प्रवर पृ० ५२, धर्ममूल और सगोत्र विवाह  
पृ० ५२, गोत्र प्रथा की उद्गम सम्बन्धी भारतीय कल्पना पृ० ५४,  
भारतीय कल्पना की दो बड़ी असंगतियाँ पृ० ५५, गोत्र के अक्षरपरम्परा  
सूचक न होने के अन्य प्रमाण पृ० ५६, असगोत्र विवाह के नियम के प्रादु-

पृष्ठ

७-१०

१६-२२

१-२७

२८-७६

भाँव पर पञ्चमरी विद्वानों की कल्पनाएँ : (क) मेकलीनात की कल्पना पृ० ५८, (ख) स्पेन्सर की कल्पना पृ० ५९, (ग) एक्बरी की कल्पना पृ० ५९, हिन्दू समाज में सगौल विवाह-निषेध के उत्पादक हेतु पृ० ६०, ब्राह्मणों में स्थानीय बहिर्विवाह का अभाव पृ० ६०, स्मृतियाँ और असंगतिता का नियम पृ० ६३, वाशकल्प, गान्ध तथा अन्य स्मृति-कार पृ० ६४, टीकाकार और गोल-संघातिषि पृ० ६५, मातृगोल का परिहार पृ० ६५, अपगक पृ० ६६, विज्ञानेश्वर पृ० ६६, वैष्णव भट्ट पृ० ६७, कमलाकर पृ० ६७, मिश्र मिश्र पृ० ६८, आधुनिक युग पृ० ६९, वर्तमान गोलों के विभिन्न रूप पृ० ७०, गोलों का वर्गीकरण पृ० ७२, (१) लौह-ताम्रक गोल पृ० ७२, (२) मूल-युग वाणी गोल पृ० ७३, (३) प्रादेशिक गोल पृ० ७३, (४) उपाधि वाचक गोल पृ० ७४, (५) स्थानीय जातिवाँ मा पान्तिवाँ गोल पृ० ७४, वर्तमान काल की गोलपद्धति की प्रधान विशेषताएँ पृ० ७५, गोल के नियम की अतावश्यकता पृ० ७६, वर्तमान समाजस्य और सगौल विवाह पृ० ७८ ।

#### तीसरा अध्याय—बहिर्विवाह-सपिण्डता

८०-१०७

सपिण्डता का सामान्य अर्थ पृ० ८०, वैदिक युग में सपिण्डता का विचार पृ० ८०, वैदिक साहित्य में आतुष्य विवाह का संकेत पृ० ८१, महा-भारत में वर्णित आतुष्य विवाह पृ० ८२, धर्म-सूत्रों में सपिण्डता का नियम पृ० ८४, स्मृतिकार और सपिण्डता पृ० ८६, टीकाकार और सपिण्डता का नियम पृ० ८८, विज्ञानेश्वर द्वारा सपिण्डता की व्याख्या पृ० ८९, मातुल कन्या परिणय पृ० ९२, वैष्णव भट्ट द्वारा समर्थन पृ० ९३, मिश्रमिश्र द्वारा विरोध पृ० ९४, मध्ययुग में सपिण्डता के विविध प्रकार पृ० ९५, वर्तमान काल के आतुष्य विवाह पृ० ९८, बहिर्विवाह तथा उत्तर भारत की परिवार पद्धति के भेद पृ० १०३, आतुष्य विवाहों के प्रेरक कारण पृ० १०४, नया कानून और सपिण्डता पृ० १०६, निर्गन्ध लोडिंग पृ० १०७ ।

#### चौथा अध्याय—अन्तर्विवाह

१०८-१४३

अन्तर्विवाह का महत्व पृ० १०८, अन्तर्विवाह के विकास की अवस्थाएँ पृ० १०९, वैदिक युग में अन्तर्जातीय विवाह पृ० १०९, अनुलोम विवाहों के प्राचीन उदाहरण पृ० ११२, प्रतिलोम विवाहों के उदाहरण पृ० ११४, शूद्रा स्त्रियों के ज्ञात विवाह का निषेध पृ० ११५, सवर्ण विवाह की प्रशंसा पृ० ११६, सवर्ण विवाहों का भूल कारण पृ० १२०, स्मृतियों द्वारा अनुलोम विवाह बन्द करने के दो ढंग पृ० १२४, अतथर्णा स्त्रियों

के मुझों के साथ दाय में अग्याम पृ० १२५, असवर्ण विवाहों के ऐतिहासिक उदाहरण पृ० १२७, असवर्ण विवाह के अप्रचलित होने का कारण पृ० १२८, वर्णों के अन्तर्गत भेदों का विकास पृ० १३०, वर्णमान जातिवाद के भेद पृ० १३२, उग्रविवाह पृ० १३५, सजातीय विवाहों के दुर्यागताम पृ० १३६, अन्तर्जातीय विवाह और व्यापारमय पृ० १३७, हिन्दू विवाह रीति का कानून (१९४६) पृ० १४०, अन्तर्जातीय विवाह के प्रति नवीन दृष्टिकोण पृ० १४१ ।

#### पौखर्वा अग्याम-बर-बधू का चुनाव तथा योग्यताएँ

१४४-१६३

अग्य रीतिगत प्रतिक्रिया पृ० १४४, बर की योग्यताएँ (१) ब्रह्मचर्य पृ० १४६, (२) कुल पृ० १४५, (३) बुद्धि और गुण पृ० १४६, अग्य योग्यताएँ पृ० १४७, बर की अयोग्यताएँ पृ० १४८, परिवेदन पृ० १४९, परिवेदन का कारण पृ० १५१, बधू का चुनाव पृ० १५१, बधू के गुणों का सामान्य पृ० १५२, मुलाकातों द्वारा परीक्षा पृ० १५३, कन्या की गुण परीक्षा का सूक्ष्म उपाय पृ० १५४, बहिनों के लिए परिवेदन का नियम पृ० १५५, भेवाणक या भेवन पृ० १५७, वैवाहिक प्रतिबन्धों के दुर्यागताम पृ० १५६, बर-बधू के चुनाव की आधुनिक प्रवृत्तियाँ पृ० १५६, बर-बधू के अभीष्ट गुण पृ० १६२ ।

#### छठा अध्याय-विवाह के प्राचीन तथा सर्वोन रूप

१६४-२३४

हिन्दू विवाह के रूपों की विविधता पृ० १६४, विवाह के आठ भेद पृ० १६५, विवाहों की स्पष्टता का साहित्य पृ० १६६, विवाहों का नामकरण पृ० १६७, आठ प्रकार के विवाहों का क्रमिक विकास पृ० १६८, विवाहों का सर्वोत्कर्ष पृ० १६८, राक्षस व वैशाख विवाह पृ० १६९, राक्षस विवाह के प्राचीन उदाहरण पृ० १७२, राक्षस विवाह की कानूनी विशेषता पृ० १७५, अन्य जातियों में राक्षस विवाह के उदाहरण पृ० १७५, राक्षस विवाह के प्रचलन के कारण पृ० १७६, स्वयंवर विवाह पृ० १८०, स्वयंवर के तीन भेद पृ० १८१, आसुर विवाह का स्वरूप पृ० १८७, वैदिक युग में आसुर विवाह पृ० १८८, महाभारत में आसुर विवाहों के उदाहरण पृ० १८९, कन्या मुक्त तथा आसुर विवाह की तिन्दा पृ० १९३, आसुर विवाहों की तिन्दा का कारण पृ० १९६, गान्धर्व विवाह पृ० १९८, वैदिक युग में गान्धर्व विवाह पृ० १९८, महाभारत का गान्धर्व विवाह (दुष्यन्त-अमुन्तला) पृ० २००, गीढ साहित्य में गान्धर्व विवाह पृ० २०३, वात्स्यायन तथा गान्धर्व विवाह पृ० २०४, संस्कृत काव्यों में गान्धर्व विवाह पृ० २०७, गान्धर्व विवाहों

में संस्कार की आवश्यकता पृ० २०६, धर्मशास्त्र व गान्धर्व विवाह पृ० २१०, गान्धर्व विवाह के दो भेद पृ० २११, वर्तमान काल में गान्धर्व विवाह पृ० २१२, ब्राह्म, वैश्व, आर्य और प्राजापत्य विवाह पृ० २१३, दहेज प्रथा पृ० २१५, महाभारत व दहेज पृ० २१६, बौद्ध ग्रन्थ व दहेज पृ० २१६, दहेज प्रचलित होने के कारण पृ० २१७, दहेज तथा प्राग्वीत पृ० २१८, वर्तमान युग में दहेज प्रथा के बढ़ने का कारण : अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव पृ० २१९, दहेज प्रथा के दुष्परिणाम पृ० २२०, दहेज को कुप्रथा बन्द करने के उपाय पृ० २२३, वैश्व विवाह पृ० २२४, प्राजापत्य विवाह पृ० २२५, हिन्दू विवाहों के आधुनिक रूप पृ० २२६, दक्षिण भारत के विवाह पृ० २२७, ताम्रिकेट्ट तथा सम्बन्धम् पृ० २२७, सम्बन्धम् की प्रथा के प्रचलित होने के मूल कारण पृ० २२८, मन्वाद्य विवाह कानून पृ० २३०, सम्बुद्धरी विवाह पृ० २३१, करार पृ० २३१, खण्डा विवाह पृ० २३२, भान्ति गृहीत पृ० २३२, आनन्द विवाह पृ० २३२, कपटी-बदल विवाह पृ० २३३, कलियाणम् विवाह पृ० २३३, मातृका विवाह पृ० २३३, नादर अदाजी विवाह पृ० २३३, सर्वस्वधनम् विवाह पृ० २३४, मत परिवर्तन पृ० २३४ ।

#### सातवीं अध्याय-विवाह-संस्कार

२३५-२७२

संस्कार का उद्देश्य पृ० २३५, वैदिक युग की विधियाँ पृ० २३६, गृह्य सूत्रों की विधियाँ पृ० २३६, मधुपर्क पृ० २३७, वस्त्रदान पृ० २३८, कन्यादान पृ० २३८, परस्पर समीक्षण पृ० २४०, अग्नि स्थापन और होम पृ० २४०, पाणिग्रहण पृ० २४१, अग्निपरिणयन पृ० २४२ अश्मा-रोहण पृ० २४२, लाजाहोम तथा केसमोचन पृ० २४२, सप्तपत्नी पृ० २४४, मूर्धाभिषेक पृ० २४४, सूर्यदर्शन व हृदय स्पर्श पृ० २४५, भुव दर्शन पृ० २४५, धूव की विदाई और रथारोहण पृ० २४६, वधू का वनपुरालय प्रवेश पृ० २४६, सिराज व्रत या विवाहोत्तर संयम पृ० २४७, अन्य विधियाँ : बरप्रोषण पृ० २४८, वाग्दान या आशनिक्चय पृ० २४८, विवाह का महूर्त पृ० २४८, अन्य विधियाँ पृ० २४९, रामायण व महाभारत की वैवाहिक विधियाँ पृ० २४९, वैवाहिक आशीर्वाद, उपदेश पृ० २४९, कालिदास द्वारा वर्णित विवाह विधि पृ० २५२, मध्यकालिक विधियाँ पृ० २५३, आश्वत्थारोपण पृ० २५४, ऐरवी दान पृ० २५४, मंगल मूल वचन पृ० २५४, प्रारम्भिक पूजाएँ पृ० २५५, कुम्भ विवाह पृ०

२५५, अश्वत्थ व प्रतिमा विवाह पृ० २५५, अर्क विवाह पृ० २५६, वाग्दान का विचार पृ० २५८, वाग्दान का लौकिक रूप पृ० २५६, विवाह की आवश्यक विधियाँ पृ० २६०, असवर्ण कन्याओं से विवाह की विधि पृ० २६१, विवाह संस्कार में स्त्रियों के संघर्ष की अविवेक्यता पृ० २६२, अविवेक्य हिन्दू विवाहों की अविवेक्य ईसाई विवाहों से भ्रामक तुलना पृ० २६२, धर्म परिवर्तन और विवाह की अविवेक्यता पृ० २६४, प्राचीन भारत में सामयिक या सार्वत्रिक विवाह पृ० २६७, दीवानी विवाह पृ० २६६, दीवानी विवाह के कानून का इतिहास पृ० २७०, दीवानी विवाह का स्वरूप पृ० २७१, नये कानूनों का निर्माण पृ० २७२।

#### आठवाँ अध्याय—दाम्पत्य कर्तव्य व अधिकार

२७३-२८५

वैदिक युग में दाम्पत्य अधिकार पृ० २७४, बौद्ध साहित्य में स्वशुर-बहु संघर्ष पृ० २७५, महाभारत में दाम्पत्य कर्तव्य पृ० २७७, पति का मुख्य कर्तव्य—पत्नी का पालन पृ० २७८, स्त्री की पराधीनता पृ० २७८, मनु का आदर्श पृ० २७६, स्त्री के अन्य कर्तव्य पृ० २७६, पतिव्रत का आदर्श तथा मोहात्म्य पृ० २८०, पतिव्रता के कर्तव्य पृ० २८०, स्त्री के लिए निषिद्ध कार्य, पृ० २८१, पतिव्रता बनाम पतिव्रत पृ० २८१, बन्ध का अधिकार पृ० २८२, दाम्पत्य अधिकारों की पुनः प्राप्ति पृ० २८२।

#### नवाँ अध्याय—विवाह-विच्छेद या तलाक

२८६-३०५

वैदिक काल में स्त्री का पुनर्विवाह पृ० २८६, धर्मसूत्र और पुनर्विवाह पृ० २८७, महाभारत व बौद्ध साहित्य में तलाक पृ० २८८, कौटिल्य तथा पुनर्विवाह पृ० २८६, कौटिल्य तथा मनु की तुलना पृ० २८९, मुण्ड युग में स्त्रियों का पुनर्विवाह : पुनर्भू का स्वरूप पृ० २९३, वर्तमान समाज में तलाक पृ० २९७, पाट विवाह के कारण पृ० २९८, विवाह विच्छेद की नागूनी व्यवस्था की मीग पृ० २९८, हिन्दू विवाह कानून की तलाक सम्बन्धी व्यवस्था पृ० २९६, विवाह विच्छेद के कारण (१) व्यभिचार पृ० ३००, (२) धर्म परिवर्तन पृ० ३००, (३) पागलपन पृ० ३०१ (४) कोढ़ की बीमारी पृ० ३०१, (५) संक्रामक यौन रोग पृ० ३०१, (६) सन्ध्यासी होना पृ० ३०१, (७) लापता होना पृ० ३०२, (८) पृथक् होने के बाद सहवास न करना पृ० ३०२, (९) दाम्पत्य अधिकारों की पुनः प्राप्ति की आज्ञा का पालन न करना, पृ० ३०२, पत्नी द्वारा तलाक प्राप्त करने के दो अन्य कारण पृ० ३०३, तलाक का

सावेदन-यज्ञ देने की अपेक्षा पृ० ३०६, पुनर्विवाह करने की प्रक्रिया पृ० ३०४ ।

### बसवाई अध्याय—बाल-विवाह

३०६-३३४

वैदिक युग में बालविवाह की प्रवृत्ति का अभाव पृ० ३०६, धर्मसूत्र में बालविवाह पृ० ३११, बालविवाह का मुख्य कारण—स्त्री शिक्षा का अग्रगण्य पृ० ३१३, बालविवाह के अन्य कारणों की आलोचना पृ० ३१६, संस्कीृत की शालिता पृ० ३१६, बालविवाह तथा रामायण पृ० ३१८, बालविवाह तथा महाभारत पृ० ३१९, बालविवाह तथा बौद्ध नास्तिक्य पृ० ३२०, मौर्ययुग में बालविवाह पृ० ३२१, गुप्तियों द्वारा बालविवाह का प्रोत्साहन पृ० ३२२, बालविवाह का प्रोत्साहन देने वाले कुछ नाग्यः (१) बौद्ध धर्म का भय पृ० ३२३, (२) वैवाहिक नियमों की कठोरता पृ० ३२४, (३) स्त्री प्रथा पृ० ३२६, पूर्व-मध्ययुग के तरुण विवाह पृ० ३२४, धामनीन तथा बालविवाह पृ० ३२६, मध्ययुग में अन्ध देशों में बालविवाह पृ० ३२६, मध्य युग में बालविवाह प्रचलित होने के कारण पृ० ३२७, आधुनिक युग में बालविवाह की हानियाँ पृ० ३२८, बालविवाह की प्रथा दूर करने के कानूनी प्रयत्न पृ० ३३०, भारत का कानून पृ० ३३०, वर्तमान समय में बालविवाह कम होने के कारण पृ० ३३२, कानून द्वारा स्त्रियों के विवाह की आयु बढ़ाने का प्रस्ताव पृ० ३३४ ।

### ग्यारहवाँ अध्याय—विधवा विवाह

३३६-३४२

विधवा विवाह के निषेध की क्रमिक अवस्थाएँ पृ० ३३६, वैदिक युग में विधवा विवाह पृ० ३३६, धर्मसूत्रों में विधवा विवाह पृ० ३३६, रामायण तथा महाभारत में विधवा विवाह पृ० ३३६, विधवा विवाह के निषेध का आरम्भ ३४०, विधवा विवाह के निषेध के कारणः (१) संस्कारों की पवित्रता का विचार पृ० ३४१, (२) अश्वत्थोनि कन्या की आकांक्षा पृ० ३४२, (३) सम्पत्ति की रक्षा पृ० ३४३, (४) सजातीय विवाह के नियमों की कठोरता पृ० ३४४, (५) शास्त्रीय बाधाएँ पृ० ३४४, अश्वत्थोनि विधवाओं के विवाह का निषेध पृ० ३४४, मध्यकाल में विधवा विवाह प्रचलित करने के प्रयत्न पृ० ३४५, रघुनन्दन तथा राजवल्लभ के प्रयास पृ० ३४५, अप्सिह व परशुराम भाऊ के प्रयत्न पृ० ३४६, विधवा के कर्तव्य पृ० ३४७, आधुनिक युग में विधवा विवाह पृ० ३४८, विधवाओं की संख्या पृ० ३४८, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयत्न पृ० ३४९, विधवा पुनर्विवाह

कानून पृ० ३५०, कानून का स्वरूप पृ० ३५०, कानून की कमियाँ पृ० ३५१, बंगाल में विधवा विवाह आन्दोलन पृ० ३५१ ।

### बारहवाँ अध्याय—सती प्रथा तथा निर्यात

३४३-३७५

ऐतिहासिक विवास की तीन अवस्थाएँ पृ० ३४३, वैदिक युग में सती प्रथा का अभाव पृ० ३४४, सती प्रथा की पहली घटना पृ० ३४५, सती प्रथा का विरोध पृ० ३४८, कस्मौर में सती प्रथा के उदाहरण पृ० ३५०, जिलानियों की सती पृ० ३५०, मुस्लिम शासकों द्वारा विरोध पृ० ३५१, महमरन की विधि पृ० ३५२, विदेशी सतियों के विवरण पृ० ३५३, सती प्रथा में बल प्रयोग पृ० ३५४, स्वेच्छापूर्वक सती होने के उदाहरण पृ० ३५५, सती प्रथा के विवर्धित होने के कारण पृ० ३५६, सती प्रथा का निषेध पृ० ३५८, निर्यात का स्वरूप पृ० ३५८, निर्यात के उदाहरण पृ० ३५९, निर्यात के निषेध पृ० ३६०, जेलज पुत्र की कष्टता पृ० ३७१, निर्यात की प्रथा के प्रचलित होने के कारण पृ० ३७२, निर्यात का विरोध तथा इस प्रथा का धुत्त होना पृ० ३७३ ।

### तेरहवाँ अध्याय—बहुभार्यता

३७६-४०२

वैदिक युग में एक-विवाह की प्रथा पृ० ३७६, बहुविवाह के संकेत पृ० ३७७, शास्त्रण ग्रन्थों में बहुभार्यता पृ० ३७७, बहुभार्यता तथा धर्मसूत्र पृ० ३८०, बहुभार्यता तथा ऋटिज्य पृ० ३८१, बहुभार्यता तथा स्मृतिज्ञा पृ० ३८२, बहुभार्यता तथा सामाज्य पृ० ३८५, पुत्र और धन के उदाहरण पृ० ३८५, बहुभार्यता तथा महाभारत पृ० ३८६, शास्त्रों की स्थितियों का दात पृ० ३८८, संस्कृत काव्यों में बहुभार्यता पृ० ३८९, मौर्ययुग में बहुभार्यता पृ० ३९५, मध्ययुग में बहुभार्यता पृ० ३९५, बंगाल के कुलीन विवाह पृ० ३९७, कुलीन विवाह की हानियाँ पृ० ४०० ।

### बीसवाँ अध्याय—बहुभर्तृता

४०३-४१०

वैदिक युग में बहुभर्तृता पृ० ४०३, महाभारत में द्रौपदी का उदाहरण पृ० ४०४, द्रौपदी की बहुभर्तृता के कारण पृ० ४०६, बौद्ध साहित्य में बहुभर्तृता पृ० ४०८, धर्मशास्त्र पृ० ४०८, कुमारिल और नीलकण्ठ की व्याख्याएँ पृ० ४०८, नायकों की बहुभर्तृता पृ० ४१०, वर्तमान भारत में बहुभर्तृता पृ० ४११, दक्षिण में बहुभर्तृता पृ० ४१२, उत्तर भारत में बहुभर्तृता पृ० ४१३, बहुभर्तृता की प्रथा के प्रचलित होने के कारण पृ० ४१४ ।

### पन्द्रहवाँ अध्याय—हिन्दू विवाह विषयक नवीन प्रवृत्तियाँ

४२१-४४४

(१) विवाह का स्वरूप—इसके वैयक्तिक पक्ष की प्रधानता पृ० ४२२,



(क) धार्मिक पक्ष पृ० ४२२, (ख) सामाजिक पक्ष पृ० ४२२, (ग) वैयक्तिक पक्ष पृ० ४२२, (घ) वैयक्तिक पक्ष पृ० ४२३, (२) विवाह का अनिवार्य समझा जाना पृ० ४२४, (क) स्वतन्त्रता पर आघात पृ० ४२४, (ख) ब्रह्मचर्य का महत्त्व पृ० ४२५, (ग) आर्थिक स्वावलम्बन पृ० ४२५, (घ) जनसंख्या की वृद्धि की रोकना पृ० ४२५, (३) वर्ण स्वातन्त्र्य पृ० ४२७, विवाह में वर्ण स्वातन्त्र्य की माता पृ० ४२८, (४) विवाह की वय का ऊँचा उठना पृ० ४३१, (५) प्रणय विवाह और रोमांचक प्रेम पृ० ४३२, (६) अन्तर्जातीय विवाह पृ० ४३४, (७) विवाह सम्भार में परिवर्तन पृ० ४३६, (क) विवाह संस्कार के समय में कमी पृ० ४३७, (ख) गार्हपत्य सम्मिलन केन्द्र के रूप में विवाहों का महत्त्व कम होता पृ० ४३७, (ग) विवाहों के व्यय में कमी पृ० ४३७, (८) विवाह विच्छेद की प्रवृत्ति पृ० ४३८, (९) पत्नी के आदर्श और रिवाज में परिवर्तन—अनुचरी से सहचरी बनना पृ० ४४०, (१०) दाम्पत्य अधिकारों में विषमता की समाप्ति पृ० ४४२, उपसंहार—हिन्दु विवाह का भविष्य पृ० ४४३ ।

प्रथम परिशिष्ट—धर्मशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थों तथा लेखकों का कासक्रम बताने वाली तालिका

४४५-४४७

सहायक ग्रन्थ सूची

४४८-४६१

१. आकर ग्रन्थ पृ० ६, २. मूल ग्रन्थ : (क) वैदिक वाङ्मय पृ० ६, (ख) गृह्य तथा धर्मगुरु पृ० १०, (ग) बौद्ध वाङ्मय पृ० ११, (घ) रामायण महाभारत पृ० ११, (ङ) स्मृतिषाँ पृ० १२, (च) स्मृतिषाँ की टीकाएँ तथा निबन्ध ग्रन्थ पृ० १२, (छ) संस्कृत के अन्य ग्रन्थ और काव्य पृ० १३, ३. विवाह विषयक ग्रन्थ : (क) हिन्दु विवाह विषयक ग्रन्थ—(अ) सामान्य एवं कानूनी ग्रन्थ पृ० १५, (आ) हिन्दु विवाह की आधुनिक प्रवृत्तियों का विवेचन करने वाले ग्रन्थ पृ० १७, (इ) विवाह विषयक सामान्य ग्रन्थ पृ० १८, विवाह सम्बन्धी हिन्दी पुस्तकें पृ० २०, प्रान्तीय भाषाओं के ग्रन्थ (क) गुजराती पृ० २०, (ख) मराठी पृ० २१ ।

४६३

अनुक्रमणिका

४६१

## संक्षिप्त संकेत-सूची

(क) संस्कृत और पालि ग्रंथ

- अ० वि०—अंगुस्तर निकाम  
 अ० क०—अट्ठकथा  
 अथर्व०—अथर्ववेद  
 अप०—अपराक की टीका कृत याज्ञवल्क्य स्मृति  
 अ० पु०—अग्निपुराण  
 अर्थ०—कौटिलीय अर्थशास्त्र  
 आप० घ० सू०—आपस्तम्ब धर्मसूत्र  
 आप० गृ० सू०—आपस्तम्ब गृह्यसूत्र  
 आश्व० गृ० सू०—आश्वलायन गृह्यसूत्र  
 उ०—उपनिषद्  
 अ०—अमृवेद संहिता  
 ऐ० आ०—ऐतरेय आरण्यक  
 ऐ० ब्रा०—ऐतरेय ब्राह्मण  
 नास्मा०—कात्यायन श्रौतसूत्र  
 का० सं०—काठक संहिता  
 का० सू०—कामसूत्र वात्स्यायनकृत  
 की०—कौटिलीय अर्थशास्त्र  
 गृ० सू०—गृह्यसूत्र  
 गो० गृ०—गोभिल गृह्यसूत्र  
 गो० ब्रा०—गोपथ ब्राह्मण  
 गो० घ० सू०—गौतम धर्मसूत्र  
 चतु०—चतुर्वर्गचिन्तामणि, हेमाद्रि कृत  
 छा० उ०—छान्दोग्य उपनिषद्  
 जा०—जातक  
 जीमूत०—जीमूतबाहन  
 जै० उ०—ब्रा० जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण  
 जै० ब्रा०—जैमिनीय ब्राह्मण

- जै० सू०—जैमिनीय सूत्र  
 ता० ब्रा०—ताण्ड्य ब्राह्मण  
 तै० आ०—तैत्तिरीय आरण्यक  
 तै० ब्रा०—तैत्तिरीय ब्राह्मण  
 तै० सं०—तैत्तिरीय संहिता  
 द० च०, दच०—दत्तक-चंद्रिका  
 द० नी०, दमी०—दत्तक-मीमांसा  
 दा०—दासभाष्य, श्रीमत्तथाह्नवकृत  
 दा० सं०—दास० दायगण्य, रघुनन्दनकृत  
 दी० क०—दीपकालिका  
 दी० नि०—दीनमनिकाय  
 ध० प०—धम्मपद  
 नार० सं०—नारदीय संहिता  
 नारद. नार० स्मृ०—नारद-स्मृति  
 नि०—निरुक्त यास्ककृत  
 नि० ति०—निर्णयसिन्धु  
 प० पु०—पद्म पुराण  
 परा०—पराशर-स्मृति  
 परा० मा०—पराशरस्मृति की माधवाचार्यकृत टीका  
 पार० सू० सू०—पारस्कर गृह्यसूत्र  
 पार० सू०—पाणिनिसूत्र  
 पु०—पुराण  
 बाल०—बालम्भट्टी  
 बृह०—बृहस्पति  
 बौ० ध० सू०—बौधायन धर्मसूत्र  
 बा०—ब्राह्मण  
 भाग० पु०—भागवत पुराण  
 भ० पु०—भक्ति पुराण  
 महाभा०—महाभारत  
 म० नि०—मज्झिम निकाय  
 म०, मनु०—मनुस्मृति  
 मा० सू० सू०—मानव गृह्यसूत्र  
 मार्क० पु०—मार्कण्डेय पुराण

- मा०, सा०—सावनी साधव  
 मि०—मिताक्षरा  
 मे०—मेघानिधि  
 मै० ग०—मैत्रावली मञ्जिता  
 मा०, या०—याज्ञवल्क्य स्मृति  
 र० व०—रघुवंश  
 ली० ग० मू०—लीलादि धृष्टमूल  
 बा० ध० मू०—बाण्ड धर्ममूल  
 बा० ग०—बाणपुराण  
 बा० ग०—बाल्मीकि-रामायण  
 वि० वि०—विवाद-चिन्तामणि  
 पि० पि०—पितृपिटक  
 पि० पु०—विष्णु पुराण  
 वि०—विष्णु  
 वि०—विष्णु स्मृति  
 बी० मि०—बीजमितादय  
 वि०—विज्ञानेश्वर  
 अ०—अथर्वहरप्रकाश  
 अ०—अथर्वशास्त्रमूल  
 म० आ०—मालाव आश्रय  
 मा० आ०—माध्यायन आरम्भक  
 मा० आ०—माध्यायन आश्रय  
 मा० भा०—माध्यायन भाष्य  
 मू०—मृग्यनीतिसार  
 म्क० पु०—मकन्द पुराण  
 म० कौ०—संस्कार कौस्तुभ  
 स० नि०—संस्तनिकाय  
 स० र० मा०—संस्कार रत्नमाना  
 स० वि०—सरस्वती विलोम  
 स्म०—स्मृति  
 स्म०—स्मृति चन्द्रिका  
 ह० व०—हर्ष चरित  
 हि० के० मू०—हिरण्यकेशीय गृह्यसूत्र

## (ख) आधुनिक ग्रन्थ

- आर्क० म० ई०—आविआमोजिबन सर्वे आफ इडिया को रिपोर्ट  
 इ० ए०—इंडियन गेटिबेरी  
 इमा० हि०—टमाइल्लोडिया शिडानिका  
 इमा० सी० ला०—टमाइल्लोडिया आफ गोल्ल गारंग  
 एपि० ड०—एपिग्राफिका इडिया  
 ओ० डे० ला०—ऑरिजनल गण्ड डेक्लरेशन्स आफ गारंग आफ गारंग, रिपोर्टमार्क कल  
 वा० हि० ध०—हिस्टरी आफ धर्मशास्त्र  
 गौ० हि० को०—गौड, इतिहास हिन्दू ला एण्ड गण्ड  
 गा० हि० ला० क०—गाली हिन्दू ला एण्ड कण्ड  
 टा० ए०—टानु एण्ड गण्ड गटिबरीटि आफ गारंग  
 ध० को०—धर्मकोश  
 डे० हि० ला० म०—डैनरी हिन्दू ला आफ मैगिज एण्ड ग्लोबल  
 डे० ट०—डैडिक इडियन  
 डे० ला० हि० म० ट०—डैडिकमार्क की गार्ड हिस्टरी आफ मैगिज  
 डे० रि०—डेन्मन रिपोर्ट  
 हि० म० म०—हिस्टरी आफ डेक्लरेशन्स मैगिज, रिपोर्टमार्क कल

## (ग) कानूनी सकेत

- अमा०—अलाहाबाद को इडियन ला रिपोर्ट्स  
 अमा० ला० ज०—अलाहाबाद ला जर्नल  
 आ० इ० रि०—आल इडिया रिपोर्ट्स  
 इ० ला० रि०—इंडियन ला रिपोर्ट्स  
 क०, कल०—कलकत्ता इडियन ला रिपोर्ट्स  
 क० ला० ज०—कलकत्ता ला जर्नल  
 क० सी० म०—कलकत्ता बीकली नॉट्स ला रिपोर्ट्स  
 मा० ला० रि०—मामुर ला रिपोर्ट्स  
 ए०—एटना को इडियन ला रिपोर्ट्स  
 ड०—डम्बई ला रिपोर्ट्स  
 ड० ला० रि०—डम्बई हाईकोर्ट रिपोर्ट्स  
 म०—मद्रास को इडियन ला रिपोर्ट्स  
 म० ट० ए०—मद्रास इडियन गणित

## हिन्दू विवाह का स्वरूप, प्रयोजन और उद्गम

विवाह और परिवार मानव जाति में आत्मसंरक्षण, वंशवृद्धि और जातीय जीवन के वास्तव्य की बनाये रखने के प्रधान साधन हैं। मरणधर्मी मनुष्य ने इसी अमरता प्राप्त की है। मनुष्य सदैव जीवित रहने की आकांक्षा रखता है, उसने मृत्यु पर विजय पाने के लिए अतीत काल में अनेक रसायन बनाये, अमृत की खोज की, वैज्ञानिक आज भी ऐसे प्रयत्नों में संलग्न हैं, किन्तु अब तक इसका विवाह और परिवार से अधिक सरल, सुन्दर और उत्तम उपाय नहीं खोजा जा सका। ब्रह्मपुराण में यह ठीक ही कहा गया है—  
देवता अमृत द्वारा अमर हुए और शाहनाम में मनुष्य पुत्र द्वारा।<sup>१</sup>

विवाह द्वारा मनुष्य सन्तान के माध्यम से अपने को फैलाता और अमर बनाता है। इसलिए संस्कृत में बच्चों के लिए संतति, सन्तान, तनय आदि शब्दों का प्रयोग होता है। ये सब शब्द विस्तारवाची तन् धातु से बने हैं। पुत्र के रूप में पिता का ही पुनर्जन्म होता है क्योंकि पिता के अंग-अंग और हृदय से प्राप्त अंगों से पुत्र का उत्पत्ति होती है।<sup>२</sup> मनुष्य को यदि अनिवार्य मृत्यु का दुःख है तो इस बात का अवश्य सन्तोष है कि विवाह और परिवार द्वारा उसने एक ऐसा हल ढूँढ़ लिया है, जिससे वह अपने बच्चों के रूप में अनन्त काल तक जीवित रहेगा। मानव समाज की सत्ता और संरक्षण विवाह और परिवार पर अवलम्बित है; अतः विवाह को हमारे समाज की केन्द्रीय संस्था माना जाता है।<sup>३</sup>

### विवाह का अर्थ और लक्षण

विवाह शब्द का तात्पर्य है—विशिष्ट स्त्री से बहन<sup>४</sup> अर्थात् वधू को विशेषता के साथ (पितृगृह से पतिगृह) ले जाना। मिलमिश्र के मतानुसार यह विशिष्टता को

१ ब्रह्मपुराण १०४।६ अमृतेनममरा देवाः पुत्रेण शाहनामवः। अमृतं मे (१।४।१०) पुत्रों द्वारा अमृतत्व प्राप्ति का उल्लेख है—प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमस्याम्। मि० ते० सं० १।४।४६।१

२ निरुक्त ३।४

३ एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड ईथिक्स ४।४९३।

४ शब्दकल्पद्रुम, चतुर्थ काण्ड, पृ० ४२७—'विवाहः विशिष्टं बहनम्।' मि० संस्कार-

प्रकार से होती है : (क) संस्कार से, (ख) स्वत्वोत्पादन द्वारा।<sup>४</sup> अतः विवाह शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है—(१) विवाह संस्कार, (२) इस संस्कार से उत्पन्न होने वाला दाम्पत्य सम्बन्ध। मेधातिथि तथा रघुनन्दन ने विवाह शब्द का अर्थ संस्कार-परका किया है, पहले के मत में विवाह कन्या को पत्नी बनाने के लिए एक निश्चित क्रम से की जाने वाली अनेक विधियों से सम्पन्न होने वाला पाणिग्रहण संस्कार है, जिसकी अन्तिम विधि सप्तपि-दर्शन है।<sup>५</sup> रघुनन्दन का लक्षण बड़ा सरल तथा वर्तमान समाजशास्त्रियों द्वारा किये गये लक्षण से बहुत कुछ भिन्नता है। इसके अनुसार जिस (विधि) में नारी पत्नी बनती है, वह विवाह है।<sup>६</sup> मानव समाज में विवाह संस्कार की द्वारों विधियाँ प्रचलित हैं। हिन्दू समाज में वैदिक युग से चली आने वाली जटिल संस्कार पद्धति में लेकर मलाबार के सम्बन्धमूलक सैकड़ों विधियों का प्रचलन है (देखिये सागरी अध्याय)। इनमें से समाज द्वारा मानी गयी कितनी भी विधि या पद्धति द्वारा पश्चिम की स्थापना का विवाह कहा जाता है। अतः जिलिन के मतानुसार विवाह सन्तान पैदा करने वाले परिवार को स्थापित करने की समाज द्वारा स्वीकृत पद्धति है।<sup>७</sup>

विवाह का दूसरा अर्थ समाज द्वारा स्वीकृत पद्धति द्वारा स्थापित दाम्पत्य सम्बन्ध भी है। इससे पति-पत्नी के कुछ अधिकार और कर्तव्य उत्पन्न हो जाते हैं, अतः मित्रमिश्र (संस्कारप्रकाश पृ० ५८३) ने विवाह के इस रूप को स्वत्वोत्पादन कहा है। वेस्टरमार्क ने विवाह के इस अर्थ को ध्यान में रखते हुए, इसका यह लक्षण किया है—“यह एक या अधिक पुरुषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ ऐसा सम्बन्ध है, जो रिवाज या कानून द्वारा मान्य होता है और जो इस सम्बन्ध का करने वाले दोनों पक्षों

प्रकाश पृ० ५८३—“तत्र विवाहशब्दो बहु प्राणने इत्यस्माद्वाततोभावे धञि कृते बहून् बाहुः, विशिष्टौ बाहुौ विवाह इति व्युत्पत्त्या निष्पद्यते।

४ सं. प्र. वहीं-वैशिष्ट्यं च प्रतिग्रहाष्टविधोपायान्वतमोपायेन स्वीकृतायां होमादि-सप्तपवनयनान्तकर्मभिः संस्कृतत्वम्। तथा च विवाहपदार्थो द्विवक्तः सिध्यति स्वत्वोत्पादनं संस्काराधानं चेति।

५ मनु ३।२० पर मेधा०—कः पुनरप्यं विवाहो नाम? जपयतः प्राप्तव्याः कन्याया वारकरणार्थः संस्कारः सेतिकर्तव्यांगः सप्तपिदर्शनपर्यन्तः पाणिग्रहणलक्षणः। यह स्मरण रखना चाहिये कि मेधा० ने विवाह संस्कार की समाप्ति सप्तपिदर्शन पर बतायी है, किन्तु मनु (८।२२०), मन (सं. प्र. पृ० ५८३ तथा ५८५) सप्तपदी पूरी होने पर ही विवाह की आवश्यक विधि का अन्त मानते हैं।

६ उदाहृतत्व-तेन भार्यात्वसम्पादकं पूर्णं विवाहः।

७ जिलिन—कल्बरत सोशयोलोगी (न्यूयार्क १९४८), पृ० ३३४

को तथा उनकी सन्तान को कुछ अधिकार और कर्त्तव्य प्रदान करता है।<sup>१०</sup> ये अधिकार मुख्यतः यौन और आर्थिक होते हैं तथा सन्तान से सम्बन्ध रखते हैं। समाज विवाह द्वारा पति-पत्नी को न केवल रति का अधिकार देता है, किन्तु उसके साथ ही पति की पत्नी तथा सन्तान के भरण पोषण के लिए बाध्य करता है।<sup>११</sup> पति के पत्नी तथा सन्तान पर कुछ अधिकार माने जाते हैं।<sup>१२</sup> प्रायः विवाह समाज में नवजात प्राणियों के स्थान का निर्धारण करता है। पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकार अधिकांश समाजों में वैध विवाहों में उत्पन्न सन्तान को ही दिया जाता है। विवाह द्वारा रति का अधिकार प्रायः दम्पती तक सीमित कर दिये जाते हैं इससे समाज में यौन सम्बन्धों का बहुत कुछ नियन्त्रण हो जाता है। इस प्रकार विवाह परिवार की स्थापना के लिए स्त्री-पुरुष का भौतिक, कानूनी और नैतिक सम्बन्ध है। यह संस्था मानव समाज में प्रधान रूप से दो प्रयोजन पूर्ण करती है—पर-वारी सम्बन्ध का नियमन और समाज में सन्तान की स्थिति का निर्धारण।

### विवाह के विभिन्न पक्ष

विवाह का जीवशास्त्रीय (Biological) प्रयोजन वंश-विस्तार और जाति-संरक्षण है और उसका उद्भव उच्च प्राणियों में सन्तान के दीर्घ काल तक माता-पिता द्वारा संरक्षण की आवश्यकता से हुआ है।<sup>१३</sup> किन्तु इसके साथ ही विवाह में अनेक सर्वों और विविध पक्षों का सम्मिश्रण हुआ है, इनसे वह एक सुन्दर बहुरंगी इन्द्र-धनुष बन गया है। विवाह के इन विविध पक्षों में वैयक्तिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, कानूनी और सांस्कृतिक पहलू उन्नेखनीय एवं महत्त्वपूर्ण हैं और विवाह का स्वरूप समझने के लिए आवश्यक है।

वैयक्तिक (Individual) दृष्टि से विवाह पति-पत्नी की पूर्णता, विकास और सुख के लिए महत्त्वपूर्ण माना जाता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, एकाकी जीवन उसकी प्रकृति के प्रतिकूल है, उसे जीवन यात्रा चलाने के लिए एक साथी की आवश्यकता अनुभव होती है, इसके बिना वह अपना जीवन नीरस समझता है। बृहदारण्यक उपनिषद् (१।४।१-३) में कहा गया है कि आरम्भ में केवल पुरुषाकार अतमा

<sup>१०</sup> वेस्टरमार्क—ए साईट हिस्टरी आफ मैरिज (संस्करण १९२९), पृ० १

<sup>११</sup> हरिवल—हिन्दू परिवार मोर्मांसा, पृ० १२१-२

<sup>१२</sup> हिन्दू समाज में पति के पत्नी और सन्तान पर अधिकारों के लिए दे० हिन्दू परिवार मोर्मांसा, पृ० १००-१३०, पृ० १८३ अनु०

<sup>१३</sup> वेस्टरमार्क—ए साईट हिस्टरी आफ मैरिज पृ० २-७, हरिवल—हिन्दू परिवार मोर्मांसा, पृ० १०-१२



था, उसने भली-भाँति अवलोकन कर आत्मा से विश्व दूसरे पदार्थ नहीं देखे। उसने रमण नहीं किया, अतः कोई व्यक्ति एकाकी रमण नहीं करता। उमने दूसरे (साथी) की बाहू की, उसने उसी आत्मा को दो भागों में विभक्त किया, वे पति-पत्नी बने<sup>१३</sup>। वस्तुतः स्त्री-पुरुष पृथक् रूप से संसार का ओधी-पानी झेलने में अपने को अग-हाय पाते हैं, किन्तु मिलकर सांसारिक कष्टों को अधिका प्रसन्नता के साथ सह सकते हैं और जीवनयात्रा सुखपूर्वक पूरी कर सकते हैं। रामायण में पति-पत्नी को एक ही रथ के दो पहिये कहा गया है, जिस प्रकार बिना तार के बीणा नहीं होती, वरु में रहित रथ नहीं होता, उसी प्रकार पतिहीन स्त्री का जीवन सुखमय नहीं हो सकता।<sup>१४</sup> तन्मारी की अनेक आकांक्षाएँ और अभिलाषाएँ विवाह द्वारा सन्तान में पूरी होती हैं। उन्हें यह सन्तोष होता है कि उनके न रहने पर भी सन्तान उनके साम और कुल की परम्परा को अक्षुण्ण रखेगी, वे जिन कामों को नहीं कर सके, उन्हें सम्पन्न करेंगी, उनकी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी बनेगी, बुढ़ावस्था में अकम्ब देगी। हिन्दू समाज में वैदिक युग में यह विश्वास प्रचलित है कि पत्नी मनुष्य का आधा अंश है, मनुष्य जब तक अधूरा रहता है जब तक वह पत्नी प्राप्त करके सन्तान नहीं उत्पन्न कर लेता है।<sup>१५</sup> पुरुष प्रकृति के बिना और शिव शक्ति के बिना अपूर्ण है।

विवाह एक धार्मिक सम्बन्ध भी है। हिन्दू समाज में वैदिक युग में ऐसा समझा जाता है। आठ प्रकार के ब्राह्मण हिन्दू विवाहों में से पहले चार प्रकार के धर्म्य विवाहों को ही धर्मानुसृत होने से उत्तम माना गया है। आगे यह बताया जाएगा कि हिन्दू समाज में किन कारणों से विवाह एक धार्मिक सम्बन्ध है। विवाह का धार्मिक रूप हिन्दू समाज में ही नहीं किन्तु अन्य अनेक समाजों और धर्मों में पाया जाता है। उदाहरणार्थ, प्राचीन मूलान और रोम में यही स्थिति थी। स्पूरटैड के शब्दों में हिन्दुओं और भूमानीयों के समान आरम्भिक रोमन लोगों में विवाह एक धार्मिक कर्त्तव्य था, अपने पूर्वजों के तथा अपन प्रति यह एक आण था। इनका यह विश्वास था कि परलोक में मृतपूर्वजों का सुखी रहना इस बात पर अवलम्बित है कि उनका मृतक-संस्कार यथाविधि हो तथा उनकी आत्मा की शान्ति के लिए उन्हें अपने वंशजों की प्रार्थनाएँ, भोज तथा भेंटें बार-बार यथासमय

१३ बाइबल में (जिनीस २।१५, २०, २२-३) में यह वर्णन है कि भगवान् ने कहा कि यह अच्छा नहीं है कि मनुष्य अकेला रहे, मैं उसके लिए एक साथी बनाऊँगा। उसने आदम को गहरी नींद में सुलाकर उसकी पसली की हड्डी से हड्डी को बनाया।

१४ वा. रा. २।३६।२६

सातन्त्री बाइबल बाँया नाचको बिछते रथः ।

नापतिः मुखमेधेत या स्वावपि शतात्मजा ॥

१५ शतपथ ब्राह्मण ५।२।१।१०

मिलती रहें। अतः उनका सर्वोपरि कर्तव्य यह था कि वे अपनी पारिवारिक पूजा के साक्षर्य को बनाये रखें।<sup>११</sup>

संघर्षों की एक धर्मसंहिता मूलह जान आरम्भ के अनुसार विवाह से बचने वाला हृत्पारे जैसा अपराधी समझा जाता था, क्योंकि वह "बड़ो और फली-फूलो" के ईश्वरीय आदेश का भंग करता था। २० वर्ष से अधिक आयु के अविवाहित व्यक्ति को शादी के लिए बाध्य किया जा सकता था।<sup>१२</sup> इस्लाम में विवाह एक दीवानी संविद् (Civil contracts) होते हुए भी अनिवार्य धार्मिक कर्तव्य है। एक हवीस के अनुसार व्यक्ति शादी कर लेने पर अपना आधा धर्म पूरा कर लेता है। हजरत मुहम्मद ने एक बार एक पुरुष से उसकी शादी के बारे में पूछा। मकारात्मक उत्तर मिलने पर उन्होंने दूसरा प्रश्न यह किया कि क्या तुम स्वस्थ हो। उसका स्वीकारात्मक उत्तर मिलने पर पैगम्बर ने कहा कि तब तुम अवश्यमेव गैतान के भाई हो, क्योंकि तुम में जो अविवाहित हैं वे सबसे अधिक दुष्ट हैं। सैतान के पास सच्चेरिज स्त्री-पुरुषों को दूषित करने के लिए अविवाहित रहने से अधिक प्रभावशाली कोई दूसरा अस्त्र नहीं।<sup>१३</sup> विवाह का धार्मिक रूप इसके कानूनी रूप से अधिक अच्छा और उदात्त समझा जाता है, क्योंकि मिछले प्रकार में विवाह लौकिक सम्बन्ध होता है, किन्तु पहले प्रकार का सम्बन्ध देवताओं की माधी में अधिक गम्भीर और पवित्र विधि से होने वाला स्थायी आध्यात्मिक सम्बन्ध होता है। हिन्दू समाज में विवाह प्रधान रूप से इसी प्रकार का एक धार्मिक सम्बन्ध माना जाता है।

विवाह का एक सामाजिक पक्ष भी है। किसी भी समाज में विवाह में अपना साथी वरण करने की क्षुभी छूट नहीं होती। वंशपरम्परा से सम्बद्ध तथा विशिष्ट श्रेणियों के व्यक्तियों को परस्पर विवाह नहीं करने दिया जाता। अगम्य-गमन (Incest), बहिर्विवाह (Exogamy), अन्तर्विवाह (Endogamy) के नियमों का पालन लगभग प्रत्येक समाज में आवश्यक है। इन अगम्यों के अतिरिक्त प्रत्येक समाज विवाह द्वारा समुध्य की उद्गम यौन भावना पर भी अंकुश लगाता है। विवाह एक आर्थिक अग्रज भी है। प्रसूति में तथा उसके कुछ समय बाद तक अत्यन्त निर्बल तथा कार्य करने में असमर्थ होने के कारण पत्नी को पति के अवनम्ब की आवश्यकता होती है, इस कारण दोनों में श्रम-विभाग होता है। पति को पत्नी के तथा समतान के भरण-पोषण का दायित्व लेना पड़ता है। महाभारत के शब्दों में पत्नी का पालन करने के कारण वह

<sup>११</sup> म्यूरहेड—हिस्टारिकल इंट्रोडक्शन टू डी प्राइवेट लॉ आफ रोम, पृ० २३-४

<sup>१२</sup> वंस्टरमार्क-शा० हि० मै०, पृ० ४०

<sup>१३</sup> लेन-अरेबियन सोसायटी इन दौ मिडल एजेस (संजन १८८३), पृ० २२१

पति और धरण करने के कारण भर्ता कहलाता है।<sup>१९</sup> पति द्वारा उपाजित धन पर उसके सौध पुत्रों का ही अधिकार माना जाता है।

विवाह का एक कानूनी पक्ष भी है। परिणय सहवाम मान नहीं है। किसी भी समाज में किसी मर-नारी को उस समय तक संयुक्त रूप में रहने तथा सन्तान उत्पन्न करने का अधिकार नहीं दिया जाता, जब तक कि इसके लिए समाज की स्वीकृति न हो और यह स्वीकृति कानूनी तथा कर्मकाण्डात्मक विधियों के द्वारा करने से तथा विवाह से उत्पन्न सन्तान तथा इसके वासित्वों को स्वीकार करने से प्राप्त होती है।<sup>२०</sup> कानून का अभिप्राय यहाँ व्यवस्थापिका परिषद् द्वारा पास किये कानून नहीं, किन्तु कानून जैसी बाध्यता रखने वाली सामाजिक कड़ियाँ और परम्पराएँ हैं, जिनके अनुसार पति-नारी के दाम्पत्य, साक्षिक, यौन तथा अन्य सभी प्रकार के सम्बन्धों का नियन्त्रण होता है। अनेक आधुनिक समाजों में विवाह बर-बधू की सहमति से होने वाला विशुद्ध कानूनी समझौता (Legal contract) माना जाता है। किन्तु यह इस दृष्टि से अन्य सब प्रकार के समझौतों या संधियों (Contracts) से भिन्न है कि अन्य संधियों की शर्तें उसे करने वाले अपनी इच्छा से तय करते हैं, किन्तु विवाह के कर्मण्य और दामित्व बर-बधू की इच्छा पर अवलम्बित नहीं होते, वे सामाजिक परम्परा अथवा कानून द्वारा निर्धारित होते हैं।

सांस्कृतिक दृष्टि से विवाह किसी समाज की परम्पराओं के संरक्षण और व्यक्तित्व के निर्माण का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। विवाह द्वारा बनने वाले परिवार में बच्चा अपने समाज के आचार-व्यवहार, नीति-नीति, धार्मिक एवं नैतिक विश्वासों और आदर्शों से परिचित होता है, उन्हें सीखता है और अपने को उन आदर्शों के अनुरूप सोचने में डालता है। इस प्रकार नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से अपने सांस्कृतिक ढाँचे को ग्रहण करती है और उसके सात्व्य को बनाये रखती है।

उपर्युक्त प्रधान पक्षों के अतिरिक्त विवाह के नैतिक, मनोवैज्ञानिक, भौतिक, यौन आदि अनेक पहलू हैं। इस पुस्तक में विवाह के सामाजिक पक्ष का ही संक्षिप्त निरूपण किया जायगा। अन्य समाजों की भाँति, हिन्दू समाज ने विवाह के सम्बन्ध में अनेक नियम बनाये हैं। यहाँ मुख्य रूप से इन्हीं का अर्थन किया जायगा।

**विवाह विषयक नियम**—हिन्दू समाज में प्रचलित विवाह सम्बन्धी नियमों की संख्या बहुत अधिक है। समाजशास्त्र की वर्तमान पद्धति के अनुसार इन्हें निम्नलिखित मुख्य वर्गों में बाँटा जा सकता है—

(१) बर-बधू के चुनाव के नियम—विवाह करने से पहले बर के लिए

<sup>१९</sup> महाभारत १।१०४।३१ मार्पाया सरणाद् भर्ता पालनाञ्च पतिः स्मृतः।

<sup>२०</sup> इति। मित्रा, खं. १४, पृ. ३६०

वधू के निर्वाचित में बहिर्विवाह (Exogamy) और अन्तर्विवाह (Endogamy) के नियमों का ध्यान रखता पड़ता है। हिन्दू विवाह में सांस्तीय व्यवस्था के अनुसार वधू का गोत्र वर के गोत्र से भिन्न होता चाहिए और वर-वधू बजित पीढ़ियों के भीतर नहीं होने चाहिए। वर के गोत्र से बाहर तथा बजित पीढ़ियों से बाहर विवाह करने के ये नियम बहिर्विवाह अथवा बहिर्विवाही नियम (Exogamous rules) कहलाते हैं। इसी प्रकार वर-वधू के जुनाग में इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि वह वर के वर्ण या जाति की ही होनी चाहिए, विवाह अपने वर्ण या जाति के विशिष्ट सामाजिक वर्ग के भीतर ही होना चाहिए, यह अन्तर्विवाह अथवा अन्तर्विवाही नियम (Endogamous rules) कहलाते हैं। ऊपर से देखने में इन दोनों नियमों में विरोधाभास प्रतीत होता है, किन्तु अपने अध्ययन में यह बताया जायगा कि ऐसा नहीं है। एक बड़ा विशिष्ट सामाजिक वर्ग अनेक छोटे बहिर्विवाही वर्गों में बँटा होता है, इन वर्गों का प्रत्येक व्यक्ति अपने वर्ग से बाहर विवाह करता हुआ भी अपने सामाजिक वर्ग के भीतर ही विवाह करता है। उदाहरणार्थ, ब्राह्मण वर्ण के व्यक्ति बसिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य, भरद्वाज आदि अनेक गोत्रों में विभक्त हैं (दे० दूसरा अध्याय)। बसिष्ठ गोत्र वालों का विवाह यद्यपि इस गोत्र से बाहर के व्यक्तियों के साथ होता, किन्तु वे व्यक्ति ब्राह्मण वर्ण के ही होंगे।

(२) पत्नी प्राप्ति के नियम—दूसरे प्रकार के वैवाहिक नियम विवाह सम्पन्न करने अथवा दूसरे शब्दों में वधू प्राप्त करने (वार-परिग्रह) की पद्धतियों से सम्बन्ध रखते हैं। वर्तमान समाजशास्त्री इनके तीन भेद मानते हैं—(१) बलपूर्वक हरण (Capture), जब वधू को जबरदस्ती हर कर लाया जाय। (२) क्रय (Purchase), कन्या के पिता को मूल्य देकर वधू को खरीदा जाय। यह खरीदना मूल्य देकर भी हो सकता है और वर वधू के घर पर सेवा करके भी वधू को उपार्जित कर सकता है। (३) तीसरा प्रकार वधू की सहमति (Consent) से विवाह का सम्पन्न होना है। प्राचीन हिन्दू धर्मशास्त्रों में उपर्युक्त तीनों भेदों को क्रमशः राजस, आसुर और गान्धर्व के नाम से उल्लेख किया गया है। इनके अतिरिक्त पत्नी प्राप्त करने की पाँच अन्य विधियाँ ब्राह्म, वैज, क्षत्र, राजापरय, तथा वैशाच इस प्रकार कुल आठ विधियाँ बतायी गयी हैं।

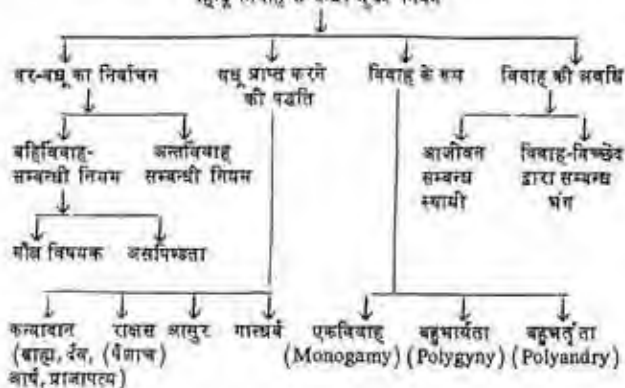
(३) विवाह के विभिन्न रूप—तीसरे प्रकार के नियम विवाह के विभिन्न रूपों से सम्बन्ध रखते हैं। ये रूप मुख्यतः तीन प्रकार के हैं—(क) एक-विवाह (Monogamy)—इसमें एक पुरुष का सम्बन्ध एक स्त्री के साथ होता है। (ख) बहु-भार्यता (Polygamy)—यह एक पुरुष के साथ अनेक स्त्रियों का सम्बन्ध या विवाह होता है। (ग) बहुपतिता—इसमें एक ही स्त्री के अनेक पति होते हैं। ये सब रूप पति या पत्नी की संख्या पर आधारित हैं। एक-विवाह (Monogamy) के अतिरिक्त जोष दोनों रूपों में पत्नी या पति संख्या में अनेक होते हैं, इनका सामान्य नाम बहु-विवाह

(Polygamy) है। हिन्दू समाज में प्राचीन और अर्वाचीन काल में बहुभर्तृता की प्रथा के बहु कम उदाहरण मिलते हैं, अतः हिन्दी में बहुविवाह (Polygamy) शब्द का प्रयोग प्रायः बहुभार्यता (Polygamy) के लिये होता है, पर वैज्ञानिक दृष्टि से बहुभर्तृता या बहुभार्यता का ही प्रयोग वांछनीय है।

(४) चौथे प्रकार के नियम वैवाहिक सम्बन्ध की अवधि से सम्बन्ध रखते हैं। यह अवधि कुछ समाजों में दोनों पक्षों के लिये मृत्युपर्यन्त बनी रहती है, अतः विवाह सम्बन्ध अविच्छेद्य समझा जाता है। मई १९५५ तक शास्त्रीय हिन्दू विवाह इसी प्रकार का था। सम्भ्रता की निम्नतम अवस्था में रहने वाली अनेक जातियों में यह सार्वभौम प्रथा है, रोमन कैथोलिक वर्ष विवाह को अविच्छेद्य मानता है। इसके विपरीत कुछ समाजों में विवाह अल्पकालिक सम्बन्ध होता है, उनमें प्रायः तलाक द्वारा पति-पत्नी का सम्बन्ध कुछ दशा में टूट जाता है, जैसे उसरी अमरीका के रेड इंडियनों में। जिन समाजों में विवाह-विच्छेद की व्यवस्था है, वहाँ इसे पर्याप्त करने के लिए अनेक नियम बनाये जाते हैं। कुछ विशेष कारण उपस्थित होने पर पति पत्नी को, पत्नी पति को तलाक दे सकती है, दोनों की पारस्परिक सहमति से भी विवाह-विच्छेद हो सकता है, यूरोप के अनेक देशों में तथा भारत के १९५५ के विशेष विवाह कानून में ऐसी व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त समाज पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्धों तथा माता-पिता और सन्तान के सम्बन्धों के विषय में भी अनेक नियम निर्धारित करता है।

उपर्युक्त चार प्रकार के वैवाहिक नियम निम्न तालिका में प्रदर्शित किये गये हैं, इसमें विवाह सम्पादन की विधि में स्पष्टता की दृष्टि से केवल चार भेदों का ही उल्लेख

### हिन्दू विवाह सम्बन्धी मुख्य नियम



किया गया है, क्योंकि ब्राह्म, वैश्य, क्षत्रिय और राजासूत के प्रकारों का प्रधान तत्त्व कन्यादान है, पैसाच और रासस का ही विनिष्ट रूप है। इन सब की जाये विवेचना की जायगी। अतः यद्यपि पश्चिम के समाज-शास्त्रियों ने विवाह सम्पादन अथवा वधू प्राप्ति की तीन मुख्य विधियाँ ही बतायी हैं, किन्तु हिन्दू समाज की दृष्टि से उसकी चार विधियाँ मानी जानी चाहिए।

दूसरे अध्याय से इनका यथाक्रम वर्णन किया जायगा, यहाँ पहले हिन्दू विवाह का यथार्थ रूप समझने के लिए उसके उद्देश और उद्गम पर विचार किया जायगा।

## विवाह के प्रयोजन

हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार विवाह के तीन मुख्य प्रयोजन—धर्म का पालन, सन्तान की प्राप्ति और रति हैं। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (२।१।१।२) ने केवल पहले दो प्रयोजनों का उल्लेख किया है और कहा है कि इनके पूरे हो जाने पर दूसरा विवाह नहीं करना चाहिए। केवल कामसूत्र की प्राप्ति के लिए विवाह अथवा समझा जाता था। आपस्तम्ब (१।०।१।०।२।०।१।६) उपर्युक्त दो प्रयोजनों की पूर्ति हो जाने के बाद विवाह करने वाले व्यक्ति के लिए छह मास तक गधे की छात ओढ़ कर भिक्षा माँगने के कठोर दण्ड की व्यवस्था करता है। मनु (६।२८) के कथनानुसार ये सब बातें पत्नी पर निर्भर होती हैं—पुत्र की प्राप्ति, धर्मकार्य, सेवा, पशुप्रा, उत्तम रति तथा पुत्रों द्वारा अपनी तथा पितरों की स्वर्ग प्राप्ति है। मातृवल्क्य (१।७८) के मतानुसार विवाह के निम्न-लिखित प्रयोजन हैं : (१) पुत्रपौत्रादि द्वारा वंश का विस्तार, (२) अग्निहोत्रादि यज्ञों द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति। विज्ञानेश्वर ने धर्म की तथा पुत्रों की प्राप्ति के दो प्रयोजनों पर बल देते हुए रतिकल का लौकिक लाभ के रूप में वर्णन किया है।

## (१) धर्म का पालन

(क) पत्नी का सहयोग—हिन्दू विवाह का पहला उद्देश आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार धर्म का पालन है। यह तीन प्रकार से होता है, सब धर्म कामों में पत्नी के सहयोग द्वारा, गृहस्थ धर्म के पालन से तथा पितृ-श्रद्धा को उतारने से। भारतीय विचारधारा के अनुसार वैदिक युग में धर्म कार्य के लिए पत्नी को हिन्दू समाज में आवश्यक समझा जाता था, उस समय यज्ञ करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य था और ये यज्ञ पत्नी के बिना नहीं हो सकते थे। तैत्तिरीय ब्राह्मण (२।२।२।६, ३।३।३।१) के मत में अपत्नीक व्यक्ति को यज्ञ करने का अधिकार नहीं है। जैमिनि ने मीमांसादर्शन में यह मत स्थापित किया है कि सब यज्ञकार्य पति-पत्नी को संयुक्त रूप से करने चाहिए (६।१।१७)। पाणिनि के (४।१।१३) अनुसार पत्नी का धर्म ही यज्ञ काम में सहयोग देने वाली स्त्री है। (पत्युर्न-यज्ञसंयोगे)। श्रीराम का अवनमेष यज्ञ सीता के अभाव में सम्पन्न नहीं हो सकता था,

अतः उन्हें सीता की सुनहली प्रतिमा बनाकर इसे पूरा करना पड़ा (वाल्मीकि ७।६१।२५) अनेक शास्त्रकार यज्ञकार्य अक्षुण्ण रखने की दृष्टि से ही पहली पत्नी की मृत्यु होने पर पुरातन दूसरी स्त्री को ग्रहण करने का आदेश देते हैं । २१

संस्कृत काव्यों में पत्नी के साथ धर्मचरित्र के कार्य करने पर बहुत बल दिया गया है । वाल्मीकि रामायण (२।७३।२६) में जनक ने सीता को राम की "सहधर्मिणी" बन-साया है । कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में शार्ङ्गरेव द्वारा शकुन्तला के लिए राजा को कहलाया है कि आप इसे सहधर्मचरण के लिए स्वीकार कीजिये । अगस्त शकुन्तला को धर्मपत्नी (अभि० शा० ६।२४) और पार्वती को सहधर्मचारिणी (कुमार संभव ८।२६ नि० ८।५१) कहा गया है । भिष के विवाह का प्रयोजन पत्नी के साथ धर्म का पालन बताया गया है (कु० सं० ६।१५६) । पार्वती को पति के साथ धर्मवर्षा करने का आदेश दिया गया है (७।८३) । मध्यकाश में यथापि श्रौतयज्ञों की परिपाटी खूब ही गयी थी, किन्तु फिर भी पत्नी धर्म कार्य के लिए आवश्यक मानी जाती रही ।

वर्तमान काल में हिन्दू समाज के दैनिक जीवन पर संभवतः सबसे अधिक प्रभाव डालने वाले पुराणों में वारम्बार इस बात का उल्लेख है कि पत्नी के बिना धर्म कार्य नहीं किये जा सकते, उसके अभाव में सब प्रकार के धर्म कार्य और तीर्थयात्राएँ निरर्थक होती हैं । पद्मपुराण ने मुक्ता के जपावसान द्वारा इस तथ्य का बड़े मनोरंजक ढंग से निरूपण किया है । कुकल बड़ा धर्मात्मा था, पुण्यापार्जन के लिए वह अपनी पत्नी मुक्ता को घर छोड़कर तीर्थयात्रा पर चला गया । तीन वर्ष तक विविध तीर्थों का दर्शन करके घर लौटते हुए सोचते जग कि मेरा संसार में जन्म लेना सफल हो गया, मेरे सब पितर स्वर्ग में चले गये होंगे । किन्तु इसी समय उसके पितरों की पाश में बंधे हुए धर्मराज उसके सामने प्रकट हुए और उन्होंने कहा—

“वो धार्मिक आचार और उत्तम व्रत का पालन करते वाली, श्रेष्ठ गुणों से विभूषित, पुण्य में अनुराग रखने वाली, पतिव्रता पत्नी को अकेली छोड़कर धर्म करने के लिए बाहर जाता है, उसका किया हुआ सारा धर्म व्यर्थ हो जाता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । गुणवती, पुण्यवती और महासती नारी जिसकी पत्नी हो, उसके घर में देवता निवास करते हैं । गंगा आदि पवित्र नदियाँ, सागर, यज्ञ, गौ, ऋषि तथा सम्पूर्ण तीर्थ उस घर में विद्यमान रहते हैं । पुण्यमयी पत्नी के सहयोग से गृहस्थ धर्म का पालन अच्छे ढंग से होता है । इस भूमण्डल में गृहस्थ धर्म से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है । जिसके घर में साध्वी स्त्री होती है उसके घर में मन्त्र, अग्निहोत्र, सम्पूर्ण देवता, सनातन धर्म, दान एवं सब आचार विद्यमान रहते हैं । साध्वी पत्नी के समान कोई तीर्थ नहीं, पत्नी के समान

कोई सुख नहीं है तथा संसार सागर पार करने के लिए और कल्याण साधन के लिए पत्नी के समान कोई पुण्य नहीं है। "..... अपनी पत्नी को साथ लिये बिना तुमने तीर्थों में जो आहुति और दान किया है उसी दोष से तुम्हारे पूर्वज बाँधे गये हैं। पत्नी ही गार्हस्थ्य धर्म की स्वामिनी है, उसने बिना तुमने शुभ कर्मों का अनुष्ठान किया, यह स्पष्ट ही तुम्हारी चोरी है। जब पत्नी अपने हाथ से अन्न तैयार करके देती है, तो वह अमृत के समान मधुर होता है, उनी अन्न को पितर प्रसन्न होकर भाग करते हैं तथा उन्हीं से उन्हीं विशेष सन्तोष और सुखिता होती है। अतः पत्नी के बिना किया गया धर्म निष्फल होता है।<sup>२२</sup> इसके बाद धर्मराज शूलज को अपने भर खौटकर मुकला के साथ धर्म-कर्म करने का उपदेश देते हैं और वैसा करने पर उसकी दीर्घायुता सफल होती है।

मार्कण्डेय पुराण (२१।६८-७३) में विधवाँ (धर्म, अर्थ, कान) की प्राप्ति के लिए पत्नी पति की सहायक बताया गयी है—“भार्या में विधवाँ प्रतिष्ठित है, उसके बिना पुत्र्यों द्वारा देवताओं, पितरों तथा अतिथियों की पूजा नहीं की जा सकती। स्त्री भी पति के बिना धर्म, काम, अर्थ और सन्तान नहीं प्राप्त कर सकती। अतः विधवाँ की प्राप्ति पति-पत्नी दोनों पर अवलम्बित है।” उत्तम मन्वन्तर की कथा (७०.६६) में भी इसी बात पर बल दिया गया है। इसमें एक ब्राह्मण ने राजा से अपनी अपहृत पत्नी का बन्धो पता लगाने की प्रार्थना करते हुए कहा है कि उसके न होने से निरक्षरकों के न होने के कारण धर्म की हालि हो रही है और इससे मेरा पतन हो रहा है। श्रापि ने अपनी पत्नी का ह्याग करने वाले राजा उत्तम की भर्त्सना करते हुए कहा है—मनुष्य १५ दिन तक धर्म कर्म न करने से अक्षुण्ण हो जाता है, फिर आपने उसे एक वर्ष से छाँह रखा है, आपकी विधवाँ में क्या कहा जाय ? ब्रह्मपुराण (अध्याय १६१) में कहा गया है कि ब्रह्मा ने अपने शरीर की पक्ष की सिद्धि के लिए दो भागों में बाँटा, पुर्वाङ्ग को पत्नी बनाया, क्योंकि श्रुति के बचन के अनुसार यक्ष पत्नी के बिना नहीं हो सकता।

(ख) गृहस्थाश्रम का पालन—हिन्दू समाज में धार्मिक दृष्टि से गृहस्थ धर्म के पालन के लिए विवाह आवश्यक माना जाता है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में गृहस्थाश्रम का विधान है। मनु (३-२) और याज्ञवल्क्य (१।५२) स्पष्ट रूप से इसका विधान करते हैं। अथर्व आश्रमों की संख्या के सम्बन्ध में धर्मशास्त्रों में पर्याप्त मतभेद है।<sup>२३</sup> किन्तु

२२ पद्मपुराण २ भूमिखण्ड, अध्याय ५६, श्लोक ८-३३

२३ इस सम्बन्ध में समुच्चय, विकल्प और बाध नामक तीन पक्ष हैं। समुच्चयवादी पक्ष के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को यथाशक्त ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास के चारों आश्रमों का पालन करना चाहिए। मनु इस मत का प्रबल पोषक है (५-१, ६-१, १३-३७, ८०-८८ मि० जाबालोपनिषद्—“ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेत् गृही भूत्वा वनी भवेत्, वनी भूत्वा प्रव्रजेत्”)। दूसरा पक्ष



गृहस्थाश्रम की प्रशंसा में सब एकमत है। गौतम ने इस आश्रम को अन्य सब आश्रमों का मूल या आधार कहा है। बसिष्ठ (८।१६) के मत में गृहस्थाश्रम माना के समान है। मनु (३।७७-८०) ने इसकी महत्ता की विस्तार से स्पष्ट कर्ण दूए वामु से इसकी उगमा दी है, जिस प्रकार वायु के सहारे सब प्राणी जीते हैं, वैसे ही सब आश्रम गृहस्थाश्रम से जीवन धारण करते हैं। जैसे सब नदी-नद्य समुद्र में जाकर स्थित होते हैं, वैसे ही तीनों आश्रमों वाले गृहस्थ की सहायता से गति प्राप्त करते हैं (बसिष्ठ ८।१३, महाभा० १२।२६६। २६)। तीनों आश्रमों का भरण करने के कारण गृहस्थ ही श्रेष्ठ आश्रम है (मनु ६।८८)। अतएव मनु ने अश्वम स्वर्ग और सुख की इच्छा रखने वाले के लिए इसका पालन आवश्यक बताया है।

महाभारत में गृहस्थाश्रम की महिमा का बहुत वर्णन किया गया है। मनु ने मुनिपंडित से कहा है कि यदि गृहस्थाश्रम का एक पलड़े में तथा अन्य तीन आश्रमों का दूसरे पलड़े में रखकर तोला जाय तो यह उन तीनों के बराबर होता है (१२।१२।१२) गृहस्थाश्रम अन्य आश्रमों के लिए माता के तुल्य है (१२।२६६।६), अन्य सब आश्रम उसमें अवस्थित हैं (१२।२६६।६६)। गृहस्थ धर्म का पालन करने वाला व्यक्ति ब्रह्मलोक से कभी अभ्युत नहीं होता (उद्योग पर्व ४०।२४, मि० बसिष्ठ ७।१३, १०।३१, बौधायन धर्मसूत्र २।२।१)।

महाभारत में केवल गृहस्थाश्रम की ही प्रशंसा नहीं है, किन्तु उसकी उपेक्षा कर

विकल्प का है। इसके अनुसार सब आश्रमों का पालन आवश्यक नहीं है। यह ऐच्छिक है; ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तीनों से संन्यास लिया जा सकता है। वैराग्य होने पर प्रव्रज्या लेनी चाहिए। (जाबालोपनिषद् ४—“यदहरेव विरजैतदहरेव प्रव्रजेत्”)। यह मत बसिष्ठ (७-३), सप्तविष्णु (३।१), याज्ञ० (३।४६), आप. छ. सू. (२।६।२।१७-८, २।६।२।१७-८) को भी मान्य है। तीसरा पक्ष बाध को है, इसमें केवल गृहस्थ आश्रम ही स्वीकार किया जाता है, वानप्रस्थ और संन्यास को नहीं माना जाता। बौधायन ने (२।६।२।४।२-४३) लिखा है कि कुछ आचार्य केवल एक ही (गृहस्थ) आश्रम मानते हैं क्योंकि अन्य आश्रमों में सन्तानोत्पादन का कार्य नहीं हो सकता। श्रुति ने प्रजा द्वारा अमृतत्व प्राप्त करने का (ऋ० ५।४।१०, तै० सं० १।४।४६।१) तथा तीन ऋणों (तै. सं. ६।३।१०।४) का वर्णन किया है (एकाश्रम्यं त्वाचार्योऽप्रजन्तवावितरेवाम्। प्रजाभिरपने अमृतत्वमश्नाम, जायमानो ये ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणैर्वा जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य इति)। गौतम ने भी (३।१।३४) इसी प्रकार का विचार रखा है—(एकाश्रम्यं त्वाचार्योऽप्रत्यक्षविधानाद् गार्हस्थ्यस्य)। यहाँ प्रत्यक्ष विधान का तात्पर्य श्रुति के ऐसे वचनों से है जिनमें आमरण यत्न



शायः यह समझा जाता है कि गृहस्थाश्रम भोगप्रधान होने से भुक्ति में बाधक है, किन्तु ब्रह्मपुराण (८८।१२-१५) में इस प्रश्न पर विस्तृत विचार करते हुए ब्रह्म ने मातृवत्त्व की यह बताया था कि भुक्ति कर्म द्वारा ही हो सकती है, चार आश्रम कर्मों के द्वारा है, इनमें गृहस्थाश्रम बहुत गुण्य देने वाला है, उससे भुक्ति और मुक्ति दोनों होंगी है।

पौराणिक विचारधारा के अनुसार विवाह स्वर्ग और अपवर्ग का कारण है, अमिहोत्सादि में तथा विविध यज्ञ मायादि में सपत्नीक गृहस्थ का ही अधिकार है। ये कर्म निष्काम भाव से हों तो मोक्ष (अपवर्ग) देने वाले होते हैं और मकाम भाव से किसे जर्म तो स्वर्गादि फलों के साधक होते हैं।

(ग) पितृ-ऋण का विचार—धार्मिक दृष्टि में विवाह का तीसरा कारण पितृ-ऋण से मुक्ति है। सर्वप्रथम यजुर्वेद (१२।११) में इसका संकेत है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इसका विस्तार से प्रतिपादन है। जलपथ ब्राह्मण (१।७।२।१०) का मत है कि मनुष्य पर चार प्रकार का ऋण होता है। उत्पन्न होने वाला देवताओं, ऋषियों, गिरों और मनुष्यों का ऋणी होता है। तैत्तिरीय संहिता (६।३।१०।१५) में ब्राह्मण के लिए केवल तीन ही ऋणों का उल्लेख है, यथा—ब्रह्मर्षय, मम और प्रजा शरा गुण्य क्रमशः ऋषि, देव और पितृ ऋणों से मुक्त होता है, जो पुत्रवान् तथा यज्ञ करने वाला और ब्रह्मचर्य का पातक है, वह ऋणनिर्मुक्त होता है। ऐतरेय ब्रा० (३३।१) यह बताता है कि पुत्र द्वारा व्यापक अपने ऋण को उतारता है। श्रव (१६१) में पुत्र द्वारा ऋण मुक्ति का निर्देश किया है। महाभारत (१।१२०।१५ अनु०) में जलपथ ब्रा० की भाँति चार ऋणों का वर्णन करते हुए इन ऋणों से मुक्त होने का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। मनु (२।१०६) के मत में ज्येष्ठ पुत्र के पैदा होने से ही पिता अनुषी हो जाता है।

जैमिनि ने इन ऋणों पर विचार करते हुए यह व्यवस्था की है कि इनका उतारना ऐच्छिक नहीं, अपितु अनिवार्य कर्तव्य है (६।२।३१)। मनु के मतानुसार तीन ऋणों को उतार कर ही मनुष्य अपना मन मोक्ष (संन्यास आश्रम) में लगावे, यदि वह ऋणों को उतारे बिना मोक्ष की आराधना करता है तो गरक गामी होता है (६।३५)। इसकी व्याख्या करते हुए वह अपने बलोक में कहता है कि विधिपूर्वक वेद का अध्ययन कर, धर्मपूर्वक पुत्रों को उत्पन्न कर और यथा सामर्थ्य (ज्योतिष्ठाभादि) यज्ञ करके वह संन्यास आश्रम में अपना मन लगाने (६।३६)। पितृ-ऋण तथा अन्य ऋणों को इतना अधिक महत्त्व देने के मूल में संभवतः यह भावना थी कि अपने माता-पिता, गुरु तथा समाज से लाभ उठाने वाले व्यक्ति का सामाजिक हित की दृष्टि से यह कर्तव्य है कि वह

से गृहस्थ धर्म के पालन की प्रशंसा की है, पुराने मोक्षिस्त्वों को पत्नी और बच्चों वाला बताया है और गृहस्थ जीवन में दोष होते हुए भी लोकशिक्षण के लिए अपना विवाह करना उत्तम समझा है।

उसका प्रतिफल समाज की अवयव है। ऐसा न करने वाला समाज को हानि पहुँचाने वाला था, अतः उसे मास्त्री ने नरक में जाने वाला कहा है।

## (२) संतान प्राप्ति

विवाह का दूसरा प्रयोजन पुत्र प्राप्ति करना है। विवाह संस्कार के मंत्रों में बर-बधू में कहा जाता है कि मैं उत्तम सन्तान के लिए तेरा पालन-पोषण करना हूँ (ऋ० १०।८५।३६)। पुराहित इस मन्त्र पर-बधू की आशीर्वाद देते हुए बहुत पुत्र पैदा करने का आदेश देता है (ऋ० १०।८५।४५)। हिन्दू समाज में वैदिक युग में पुत्र प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा रही है। ऋग्वेद में अग्नि से प्रार्थना की गयी है कि तू हम पुत्रों द्वारा अमरता प्राप्त करें (ऋ० १।१।१०, तै. सं. १।४।४६।१)। वैदिक साहित्य में वीर पुत्र पाने की आकांक्षा का बहुत उल्लेख है।<sup>२४</sup> ऐतरेय ब्राह्मण (३।३।१) में पुत्र की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि पिता पुत्र से ऋण मुक्त होता है, अमर बनता है, आद्यकार दूर करता है, पुत्र पिता की संसार सागर से पार कराने की नौका (अतिवारिणी) तथा परम जोति है, अपुत्र व्यक्ति के लिए दूसरा उत्तम लोक नहीं है। तैत्ति० ब्रा० (३।७।३।१०) पुत्र की दूसरा लोक बनाने वाला कहता है। मीमंसा ब्रा० (१।१।२) के अनुसार पुत्र का पुत्रत्व इसी बात में है कि वह पिता की गुरु नामका नरक में रक्षा करता है। बसिष्ठ धर्मसूत्र (१।७।१) ऐत० ब्रा० (३।३।१ अनु०) के कथन की पुनरावृत्ति के अतिरिक्त यह कहता है कि ऐसा मुना गया है कि पुत्र बाल्य की अनन्त (उत्तम) लोक प्राप्त होते हैं और पुत्रहीन का कोई लोक नहीं होता। वेद में एक अभिशाप है कि हमारे शत्रु पुत्रहीन हों (मि० ऋ० १।२।१५)। पिता पुत्र द्वारा (उत्तम) लोकों को जीतता है, पौत्र द्वारा अमरता प्राप्त करता है, अपने पुत्र के पौत्र से वह सूर्यलोक प्राप्त करता है (मि० अनु० ६।१।३७, विष्णु १।५।४६)। विष्णुस्मृति में (१।५।४३-४५) बसिष्ठ की व्यवस्था दोहरायी गयी है। शंख (वेद, ४८५) ने यहाँ तक कहा है कि अभिहोत, तीनों वेद, सैकड़ों दक्षिणाओं वाले मश बड़े लड़के द्वारा पैदा किये जाने वाले पुत्र का १६वाँ अंश भी नहीं है, जिसके पुत्र, पौत्र सुप्रतिष्ठित हैं, अनेक पुत्र हैं, जिसका वेद और दश अक्षुण्ण हैं, स्वर्ग उसकी हथेली पर है।

महाभारत में पुत्र की महिमा का प्रचुर वर्णन है। पाण्डु ने आदिपर्व में कहा है— निःसन्तान पुरुष के लिए स्वर्ग का द्वार बन्द है (१।१२०।१६), तीनों लोकों में धर्ममुक्त प्रतिष्ठा का कारण सन्तान ही है (१।१२०।२६), यज्ञ-दान, तपस्या, बली प्रकार किये गये अनुष्ठान—ये सब उनको पवित्र नहीं करते जिनकी सन्तान नहीं है (१।१२०।३०)।

<sup>२४</sup> श्रु ब्रह्म० ४।२३, तै. सं. १।२।५।२, का. सं. २।५, श. बा. ३।३।१।१।१२ तै. जा. ४।७।६। अन्य प्रमाणों के लिए देखिए हर्त्विस्, हिन्दू परिवार मीमांसा, पृ० २०६ अनु० १।

अनपत्य व्यक्ति पुत्र लोक नहीं प्राप्त करते। मानव ने नि.सन्तान राजा उभीवर से कहा है—पुत्र कपी लोका से तुम अपना तथा पित्रो का उद्धार करो (५।११८।७)। २।७२।५ में इस लोक की तीन ज्योतियों में एक ज्योति पुत्र को कहा गया है। अन्यत्र अपुत्र व्यक्ति का जन्म बुरा कहा गया है (३।२००।४) और पुत्रलाभ की समाद में सबसे बड़ा लाभ माना गया है।

बृहस्पति के कथनानुसार पिण्डदान, गर्भ्य तथा नाम बनाने के लिए नि.सन्तान पुरुष को जिस किसी तरह प्रयत्न करके पुत्र प्राप्त करना चाहिए। मरकटामो होने वाला के कर से पितर पुत्रों की आवासीय रखते हैं, इनमें से कोई पिण्डदान के लिए गया भीरु जाने वाला होगा, वह हमारा उद्धार करेगा, वह वर्षाणमो (साँघ छुड़ाना) तथा यज्ञ और तालाब बावड़ी बनवाने का पुण्य कार्य करेगा, बुढ़ापे में पालन करेगा तथा प्रति दिन आश्वाधन देगा।

पौराणिक साहित्य से हम विषय में एक ही उदाहरण देना पर्याप्त होगा। ब्रह्म-पुराण (१०।४।७-१४) में पुत्र का महत्त्व बताने हुए कहा है, "पुत्रहीन के लिए स्वर्ग नहीं है, पुत्रोत्पत्ति से पिता को दस अश्वमेधों के स्नान का फल मिलता है, पुत्र से अपनी प्रतिष्ठा होती है, अमृत से देवता और पुत्र से ब्राह्मणादि जातियाँ अमर होती हैं। यह पिता तथा दादा को तीनों आणों से मुक्त करता है। स्वर्ग और मुक्ति पुत्र से मिलती है। पुत्र ही परम-लोक, धर्म, काम, अर्थ, मुक्ति, परम ज्योति और सब प्राणियों को तारने वाला है, इसमें बिना स्वर्ग और मोक्ष दुर्लभ है, इसके बिना दान, यज्ञ और जन्म निर्वर्धक है, उपार्जन कारणों से पुत्र प्राप्ति आवश्यक है। अतः इस प्रयोजन की पुष्टि के लिए विवाह आवश्यक है।

### (३) रति

प्राचीन आर्यों ने रतिसुख को ब्रह्म साक्षात्कार के समान माना था (बृ० उ० ४।३।२१) और प्रत्येक व्यक्ति द्वारा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामक अवश्य प्राप्त करने योग्य चार पुरुषार्थों में इसकी गणना की थी। वात्स्यायन ने कामसूत्र (१।२।१४) में ब्रह्मचर्य में शिक्षाप्रणय, जीवन में काम सेवन तथा बुढ़ापे में धर्म और मोक्ष की प्राप्ति पर बल दिया है। मनु ने इसे विवाह का एक प्रयोजन बताया है।<sup>२६</sup> प्राचीन आर्य न तो विमुख

२६ मनु २।२८। इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि हिन्दू समाज में कामसुख को ईसाइयत की भाँति न तो सर्वथा गर्हणीय माना गया और न उसके लिए खुली छूट दी गयी। पहली अवस्था में समाज में जो प्रचलन अनाचार बहुत, उसका एक सुन्दर उदाहरण मध्यकालीन यूरोप का लवें या (वे. हरिदत्त—हिन्दू परिवार नीमासा, पृ० १६-२०), दूसरी दशा में मनुष्य और पशु में विशेष अन्तर नहीं रहता। अतः धर्मशास्त्रों में धर्मानुकूल कामसुख के सेवन की व्यवस्था की गयी है। गोता में श्रीकृष्ण ने अपने को धर्माविरुद्ध काम कहा है (७।११)। कौटिल्य के मत में

भोगवादी ने और न कोई आदर्शवादी। 'मुन्दरी को दरी का' एकान्ती आदर्श उन्हें मान्य नहीं था। भारतीय आदर्शों का प्रतिपादन करने वाले कालिदास ने रघुवंशी राजाओं को जीवन में विषयों का सेवन करने वाला बताया है।

## विवाह की अनिवार्यता

(क) प्राचीन उदाहरण—अमरपालन, पुत्रप्राप्ति, परलोक में सम्पत्ति, पिण्ड-दान तथा पितृ-श्राद्ध के विचार तथा ऊपर बताये अन्य कारणों से हिन्दू समाज में विवाह अनिवार्य धार्मिक कर्तव्य बन गया है। महाभारत और पुराणों के अनेक उपनिषद्वाक्यों में इस तथ्य की भर्ती-भर्ति बताया गया है। जराकाश (महाभा० १।१६ तथा १।४५) उस तपस्वी ब्रह्मचारी था। किन्तु अब उसने अपने पितरों की घोर पुरावस्था में देखा तो उसे अपना आजीवन ब्रह्मचारी रहने का विचार छोड़ना पड़ा (१।४६।६७)। उसने पितरों के उद्धार के लिए नामराज वासुकि की बहिन से विवाह कर लिया।

पौराणिक साहित्य में विवाह की अनिवार्यता रुचि के उदाहरण से प्रदर्शित की गयी है (मार्क० पु० अ० ६५)। सीतराम रुचि ने न तो अग्नि की स्थापना की और न अपने लिए घर बनाया। पितरों ने उसकी यह मुनिवृत्ति देखकर विवाह करने की प्रेरणा की, क्योंकि यह स्वर्ग और अपवर्ग का हेतु होने के कारण एक पुण्यमय कार्य है। किन्तु रुचि परिवार को दुःख तथा पाप का कारण समझता था, गृहस्थाश्रम की अवस्था कृपे कर्ममार्ग तथा मोक्ष में बाधक समझता था। इस पर उसे पितरों ने समझाया कि विहित कर्म (श्रुति द्वारा निर्दिष्ट यज्ञादि) का पालन न करके जो अश्रम मनुष्य संन्यस कर ले, वह संन्यस अन्त मोक्ष की प्राप्ति नहीं करता, अपितु अधोगति में ले जाने वाला होता है। "वरस, तूम तो समझते हो कि मैं (संन्यस द्वारा) आत्मा का प्रक्षालन करता हूँ, किन्तु वास्तव में तूम यास्त्र-विहित कर्मों के न करने के कारण पापों से दूषित हो रहे हो।" अन्त में रुचि ने बूढ़े होने पर भी पितरों के उद्धार के लिए भाविनी के साथ विवाह किया (मार्क० पु० अ० ६८, मि० सहस्र पुराण ८८-६०९)। ब्रह्मपुराण के अनुसार कबीरान के पुत्र मयूखवा वैराग्यशील स्वभाव के कारण परिणय नहीं करना चाहते थे, पर पितरों ने तीन ऋण उतारने के लिए उन्हें विवाह करना आवश्यक बताया (६६।१-५)।

विवाह पुरुषों के लिए अनिवार्य हो, सो बात नहीं, स्त्रियों का भी विवाह के बिना

धर्म और अर्थ से विरोध न रखने वाले काम का सेवन करना चाहिए (अर्थशास्त्र १।७—धर्माचार्यविरोधेन कामं सेवेत। न निःशुल्कः स्यात्। मि० मनु २।२२४—परित्यजेत्तर्पकामो यो स्यात्तर्पणं वर्जितम्। विष्णु ध० सू० ७१।८४, महाभा० १३। १११।१८—६, विष्णुपुराण ३।२।७)।

उद्धार नहीं है।<sup>२०</sup> मनु के मतानुसार स्त्रियों का प्रधान प्रयोजन मत्तानोत्पादन है (१।५२)। प्राचीन काल में कुलियों ने ऋषि ने पोर तपस्या कर एक मानमी कन्या को उत्पन्न किया। पिता के दिवंगत होने पर कन्या ने आश्रम में रहकर उपवास रग और उग्र तप करके गिरगी की पूजा की, पर अपने जैसा योग्य पति न मिलने में विवाह नहीं किया, बल्कि बरने करने लगे वह बूढ़ी हो गयी। अन्तिम समय में उसने परलोक जाने की इच्छा प्रकट की। इसी समय नारद ने उसे बताया बिना स्याही (असंस्मृता) कन्याओं को रगने नहीं मिलना, पर्याप्त तुमने तपस्या बहुत की है, पर स्वयं लोक को नहीं प्राप्त किया है। इस पर कन्या ने अपना आधा तप मालव के पुत्र भृगवान् को देकर उग्रों विवाह किया और स्वयं गामी हुई (महाभा० १।५२)। हिन्दू समाज में मध्यकाल में रजोदर्शन में पुनः कन्या के विवाह का नियम प्रचलित हो जाने से कन्याओं के लिए विवाह अनिवार्य हो गया।<sup>२१</sup>

२२ इस प्रसंग में यह स्मरण रखना चाहिए कि स्त्रियों के अविवाहित रहने के अनेक संकेत प्राचीन साहित्य में मिलते हैं। श्रुतवेद २।१७।७ में पिता के घर में बूढ़ी हो जाने वाली (अमात्रः) कन्या का निर्देश है। महाभारत पंचवि स्त्रियों का विवाह आवश्यक मानता है, किन्तु उसमें कुछ आजीवन ब्रह्मचारिणी रहने वाली स्त्रियों का उल्लेख मिलता है। शतपथ (५।५।६) में सिद्ध नाम की बाल-ब्रह्मचारिणी के तथा शाण्डिल्य मुनि की ब्रह्मचारिणी पुत्री के मोक्ष पद पाने का वर्णन है (शतपथ १४।८)। शान्तिपर्व (३२।०।८२) में सुलभा नामक ब्रह्मचारिणी संन्यासिनी ने जनक से कहा कि अपने योग्य पति न मिलने से मैंने मोक्षार्थ की शिक्षा ली और मुनिव्रत का पालन कर रही हूँ (साहं तस्मिन्कुले जाता ससंन्यासिनि ब्रह्मिणे। विनीता मोक्षधर्मसु चराम्येका मुनिव्रतम् ॥)। वैश्व भागवत (पंचम स्कन्ध, अध्याय १७) में वर्णन है कि मन्दोदरी का विवाह उसके पिता ने कम्बुप्रीव के साथ करना चाहा तो उसने माता से आजीवन कुमारी रहने का संकल्प प्रकट किया और उसका विवाह नहीं हुआ। भागवतपुराण (चतुर्थ स्कन्ध १।६५) में स्वधा की श्मशाना और पारिणी नामक दो ब्रह्मचारिणी (धेव का उपदेश करने वाली) पुत्रियों का वर्णन है। इस पुराण के टीकाकार बोरराघव ने इन्हें सनकादि की तरह ऊर्ध्वरेता लिखा है। नैष्ठिक ब्रह्मचारिणियों के ये उदाहरण हिन्दू समाज में अपवाद रूप में ही समझे चाहिए।

२३ स्त्रियों के लिए विवाह इसलिए भी आवश्यक है कि यह उनके लिए उपनयन संस्कार के तुल्य है, जिसके न होने पर द्विज शूद्र हो जाता है। विवाह स्त्रियों का वेदमन्त्रों से होने वाला एकमात्र संस्कार है (मनु २।६७, विष्णु स्मृति २२।३२, २७।१५, याज्ञ० १।१३ अम सं. प्र. ५० ४०२ पर उद्धृत, वा. रा. ५।१६।१०)। महाभारत की दृष्टि में स्त्रों के जीवन का सक्रिय और फल दति और पुत्र है (२।२।१२, ५।३६।

प्राचीन काल में अविवाहित पुरुष को विश्वास योग्य और सम्मानित नहीं समझा जाता था। महाभारत में कहा गया है कि विवाहित व्यक्ति पर ही विश्वास रखा चाहिए (यः सदारः स विश्वात्म्यः)। धर्म ने बाप पर जब सम्पत्ति का आरोप किया तो बाप ने अपनी सफाई पेश करने हुए कहा था कि मैं विवाह करके गृहस्थ हुआ हूँ, मुझमें क्या सम्पत्ति है।<sup>२४</sup>

(ख) आधुनिक उदाहरण—वर्तमान समय में हिन्दू समाज में विवाह इतना आवश्यक माना जाता है कि नवरे पुरुष का समाज में प्रतिष्ठित नहीं समझा जाता।<sup>२५</sup> अणुय मन्द का देशज्ञ रूप 'ऊन' अपमन्द के रूप में व्यवहृत होता है। दक्षिण भारत की कुछ जातियों में विवाह इतना अनिवार्य है कि यदि पारिवीक होने से पूर्व ही किसी पुरुष या स्त्री की मृत्यु हो जाय तो उसका मरणोत्तर (Posthumous) विवाह अवश्य किया जाता है। दक्षिण की अनेक अजात जातियों में यह विश्वास प्रचलित है कि नवरे पुरुष मर कर अम्लानुष्ट प्रेन (Ghosts) बनते हैं, मन्द (नवरे पुरुष) की आत्मा पौधों में बीमार हो उलझ कर सकती है। अतः अविवाहित पुरुष के प्रेन की किसी अन्य में शादी की जाती है और घर के किसी पारिवीक विवाह के माध्दम नवरे शादी का समारोह किया जाता है। उसमें पहले ही अविवाहित दम्पति में मूल बालक या कन्या का प्रतिनिधित्व करने वाले एक विशेष बेल या गो की निर्गमन किया जाता है, जिस कुल में बर के जीवन होने पर, उसके लिए बंध लायी जाती उस कुल की ही इस कार्य के लिए बुनी जाती है। बेल और गो दोनों का खूब मजाकर पाव की सीमा पर इंगल्लू या बीरगल्लू (पुष्ट में बीरगमि पाने जाने की स्मृति में स्थापित किम वस्त्र या स्मारक) में ले जाया जाता है और वही इस

६७)। ये उसके विवाह से हो भूरे हो सकते हैं। इसी दृष्टि से बन्ध्या भार्य निरर्थक बतायी गयी (१२।७८-१४१)। बन्ध्या स्त्री की दृष्टि जिस पदार्थ पर पड़ती है, उसे देवता स्वीकार नहीं करते (१३।१२७।१३-१४), ऐसी स्त्री के घर भोजन करने से आयु क्षीण होती है (१३।३६।३७)। महाभारत में कहा गया है कि जो पुरुष रूपवती, बड़ी आयु की कन्या को सदाश गुणों वाले घर को नहीं देता वह बह्मपाती होता है (१३।२४।६)। द्रायः सभी स्मृतियों में कन्या के विवाह पर बल देते हुए कहा गया है कि पिता के घर में अविवाहित कन्या का जब जब ऋतु आर्य जाता है, तब तब उसके पिता को धूम्रहत्या का पाप लगता है (वसिष्ठ १७।७१, बौध्द ४।१।१२ अनु, मारव १२।२४-२७, याज्ञ. १।६४, पराशर स्मृति ७।१-७, विष्णु स्मृति २४।४१ मि. मनु ६।६३)। पिता के लिए कन्यादान इतना आवश्यक कर दिये जाने पर स्त्रियों के लिए विवाह का अनिवार्य होना सर्वथा स्वाभाविक था।

२४ हर्षचरित (नि. सा.) पृ० ७६ 'हारपरिग्रहावन्मगारिकोऽस्मि'।

२५ ब्रह्मोद्भव—हिन्दू मैगर्स एण्ड कस्टम्स, पृ० २०५।



दोनों की बाड़ी के बाद मिठाई बाँटी जाती है; ताम्बूल, चार अंगे आठ गार्द की दक्षिणा तथा घर के चार पर बाँधा जाने वाला पट्ट नामक मुनहरा सेंहरा शष्प के परिवार को भेंट किये जाते हैं। ऐसी शादी में भाग लेने वाले वीर और पौ को लोग अपने धाम बहुत मरहान कर रखते हैं और उसे अपनी इच्छा से किसी को नहीं देते।<sup>३१</sup> मैसूर की कुछ जातियों में अविवाहित स्त्री की मृत्यु हो जाने पर उसे वहीं पर नहीं ले जाते, किन्तु छोटे शिशुओं की भाँति निम्नाभिमुख करके उसे भूमि में गाड़ देने हैं, उसको कोई अध्वेदैयिक क्रिया नहीं करते। इस प्रकार के व्यवहार में वर्चन के लिए दोनोया आदि कुछ जातियों में ऐसी अविवाहित कन्या की बाड़ी कुछ विशेष पेशों—करंज (Pongamia Gildera), आक, श्रीम या अन्य जड़ पदार्थों—सुनवार आदि से करने की परिपाटी है।<sup>३२</sup> कुछ जातियों में कन्याओं का विवाह न होना इतना बुरा समझा जाता है कि अविवाहित कन्याओं को वैवाहिक विधियों में सम्मिलित नहीं किया जाता। अविवाहित गोल्पा (भतारान्द्र तथा तेलगू भाषा) धुवती, चर या शष्प का साथ नहीं कर सकती, विवाह के जुनूज में भागनिक कलश नहीं उठा सकती। मेदार (टोकरी बनाने वाली कन्नड़) जाति की कन्याएँ वैवाहिक विधियों में कोई भाग नहीं ले सकती, वही अवस्था अतप्पाही परिवार (Parivar) नामक जाति की स्त्रियों की है।<sup>३३</sup> अविवाहिता के इस अन्याय का कारण विवाह का गौरव बढ़ाना है और यह संभवतः इसलिए किया गया है कि अविवाहित व्यक्ति समाज की नैतिकता को संकट में डाल सकते हैं।

हिन्दू समाज में न केवल उच्च वर्ग में विवाह अनिवार्य है, अपितु इनकी निम्नली सीमा पर रहने वाली अनेक जातियाँ भी विवाह को ऐसा समझती हैं। मार्चन के कन्नडा-मुसार टोडा जाति में कोई अविवाहित नहीं रहता। प्रत्येक घर-दारी, प्रत्येक मड़का-मड़की किसी का पति या पत्नी है। एक खंनड़ी मड़की तथा मूडो विधवा के अपवाद के अतिरिक्त उसे टोडा जाति में किसी प्रौढ़ स्त्री का एक भी उदाहरण नहीं मिला।<sup>३४</sup> मंगालों में स्त्री-पुरुष अविवाहित व्यक्ति से घृणा करते हैं, उसे चोर और जादूगरनी (Witch) से गया बीता समझते हैं।<sup>३५</sup>

३१ एम्. एन. ओ. निवासन—मैरिज एण्ड फेमिली इन माइसोर, पृ. १६३-४

३२ वही, पृ. १२५

३३ "

३४ मार्शल-ए फ्रेंको लोजिस्ट एमंग दी टोडाज, पृ. २२०, २२२

३५ सैन—सान्वालिपा एण्ड सान्वाल्स, पृ. १०१

अधिकतर आरम्भिक और सभ्य समाजों में विवाह अनिवार्य समझा जाता है। उत्तरी अमरीका के इंडियनों में अविवाहित व्यक्ति अत्यन्त कुल्लुभ होते हैं। प्रेतकाट में डेकोटा जाति के सम्बन्ध में लिखा है कि उसे उनमें एक की बगैरे पुरुष का ज्ञान नहीं है।

हिन्दू समाज में विवाह की अनिवार्यता के विश्वास के बलमूल होने का यह परिणाम हुआ है कि विवाह हिन्दू समाज में सार्वभौम और व्यापक कर्तव्य बन गया है। भारत में अविवाहितों की संख्या बहुत कम है। यद्यपि आजकल बहुरी के मिश्रित समाज में नवारे चलने की प्रवृत्ति बढ़ रही है, किन्तु पिछले ४० वर्षों में समूचे भारत की जनगणना में इस दृष्टि से कोई विशेष अन्तर नहीं आया। १९११ की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार प्रति बीबींग अविवाहित पुरुषों में केवल एक की आयु २० वर्ष से अधिक थी और प्रति

एंडेवर ने यह सूचित किया है कि रैंड इंडियन स्त्रियों की आयु और वैधव्य की मृत्युसुख सम्बन्धी हैं। पोमराय को दक्षिण अफ्रीका की जातियों में २० वर्ष से अधिक आयु की कोई लड़की बचारी नहीं मिली। बोर्मेन (Borman) का यह कहना है कि गौल्डकोस्ट के हजिरियों में बहुत ही कम पुरुष अविवाहित वंश में मरते हैं और ऐसे व्यक्तियों की आयु बहुत कम होती है। बर्मियों में तथा बोनियों के पहाड़ी इयाक लोगों में बचरियन के वृष्टान्त कुतर्क हैं। गुमात्रा वासियों के सम्बन्ध में मासंडे ने लिखा है कि भेदे अधीन जिले में आठ हजार व्यक्ति रहते थे, इनमें ३० वर्ष से अधिक आयु वाले उस से अधिक बचरि पुरुषों के उदाहरण भी मिलना संभव न था। जावा में फ्राफोर्ड ने २० वर्ष की अवस्था की कोई लड़की बचारी नहीं देखी। कई ने आस्ट्रेलिया के आदिवासियों में १६ वर्ष की अवस्था वाली कोई ऐसी कन्या नहीं सुनी, जिसका विवाह न हुआ हो। बास्तुओं में बचारी पुरुष अपनी पंचायत के मामलों में कोई भाग नहीं ले सकता, बाजौल की दूरी जाति में ऐसा व्यक्ति पालगोथियों में सम्मिलित नहीं हो सकता। किजीवासियों के विवासा-नुसार अपलौक व्यक्ति मरने पर स्वर्ग के मार्ग पर वैधता द्वारा रोक दिया जाता है और अणुसः चकनाचूर कर दिया जाता है। चीन में अविवाहित कप्याएँ मृतकों के साथ शादी कर लेती हैं अथवा आत्महत्या कर लेती हैं। रास ने लिखा है कि कोरिया में बचरि आदमों की आयु भले ही कितनी हो जाय, उसे पुरुष नहीं कहा जाता, उसे यालो (Yalow) के नाम से पुकारा जाता है, तेरह या १४ वर्ष का (विवाहित) पुरुष ३० वर्ष के "यालो" की पीढ़ी, गाली तथा अज्ञा देने का पूरा अधिकार रखता है, "यालो" इस सम्बन्ध में शिकायत के लिए अपना मुंह नहीं खोल सकता। ग्रहदियों में यह कहावत है कि जिसकी पत्नी नहीं है, वह पुरुष नहीं है (पोमराय-मेरिज, पास्ट प्रेजेन्ट एण्ड फ्यूचर, पृ० ११६-२१)। अन्य उदाहरणों के लिए देखिए—बैस्टर मार्क—हि० ह्यूमन मेरिज, पृ० १६६, अनु०, प्लास बार्देन्स, खं. २ पृ० २०५ अनु०। उद्युक्त उदाहरणों से बैस्टरमार्क ने यह परिणाम निकाला है कि असम्ब्य जातियों में विवाह इतना अनिवार्य है कि शादी न करने वाला अस्वा-भाविक प्राणी समझा जाता है और उससे घृणा की जाती है (बै. हि. ह्यू. मे. पृ०

चौपह बर्षारी कन्याओं में से केवल एक ही १५ वर्ष से ज्यादा उम्र की थी।<sup>३६</sup> १९५१ में १५ वर्ष से अधिक आयु की प्रति सौ स्त्रियों में से एक अविवाहित थी। सामान्यतः<sup>३७</sup> बड़ी आयु के व्यक्तियों में से कोई क्वारा नहीं रहता, केवल वे ही व्यक्ति अविवाहित रहते हैं, जो किसी बीमारी या अंगहीनता से पीड़ित हों, संन्यासी, भिक्षु, वैश्य या रत्नल हों, या जिनके लिए जातीय बन्धनों के कारण उपयुक्त घर या वधू न मिल सकी हो।<sup>३८</sup> आजकल इस स्थिति में बिल कारणों से अन्तर आ रहा है, अन्तिम अध्याय में उनका विस्तृत उल्लेख होगा। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि अब तक हिन्दू समाज में विवाहित जीवन एक सार्वभौम, अनिवार्य और आवश्यक संस्था रही है।

### हिन्दू विवाह का आदिम स्वरूप

चीन, मिस्र और यूनान की भांति भारत के प्राचीन साहित्य में यह वर्णन मिलता है कि पुराने जमाने में विवाह की प्रथा नहीं थी, स्वी-पुरुषों का यौन सम्बन्ध करने की पूरी स्वतन्त्रता या कामचार की बरत थी। पूर्व काल में स्त्रियाँ (अनायुताः) अपनी इच्छानुसार कहाँ चाहें वहाँ जाने वाली और स्वतन्त्र (किसी बन्धन या पति से न जोड़ी हुई) थीं। वे कुमारी दत्ता से अनेक पुरुषों के पास जाया करती थीं। ऐसा करना अधर्म नहीं था क्योंकि वही उस समय की परिणती थी (महा भा० १।१२।३-२१)। कहा जाता है कि ब्रह्मकेतु ने सर्वप्रथम विवाह की मर्यादा स्थापित की, अग्नय यह श्रेय दीर्घतया को दिया गया है।

पिछली ज्ञानन्दी के अन्त में कामचार का सिद्धान्त अधिकांश समाजशास्त्रियों

१३६)। इसका कारण यह है कि इन जातियों में परती और बच्चे पुरुष के लिए बोझ नहीं, किन्तु उसकी आर्थिक समृद्धि में सहायक होते हैं। इन समाजों में विवाह के अतिरिक्त यौनवासना की पूर्ति के अवसर और साधन कम होते हैं तथा संघर्षप्रधान आरम्भक समाज में व्यक्ति की सुरक्षा परिवार के सदस्यों की संख्या पर तथा सम्बद्ध परिवारों की शान्ति पर अवलम्बित होती है (वैशाहि मै. पू० ३२-३३)

३६ १९११ की जनगणना रिपोर्ट, ख. १, भाग १, पृ० २६३

३७ १९५१ की जनगणना रिपोर्ट ख. १, भाग १, पृ० ७३

३८ १९११ की भारत की जनगणना रिपोर्ट ख. १, भाग १, पृ० २६२

३९ चीनी इतिहास में यह उल्लेख है कि "प्रारम्भ में पशुओं और मनुष्यों के जीवन में बहुत कम भेद था, मनुष्य बनों में घूमते थे, स्त्रियाँ सबके लिए सामान्य उपयोग की वस्तु समझी जाती थी, बच्चे पिताओं की कभी नहीं जानते थे, वे केवल अपनी माताओं को पहचानते थे (गोपेट—वो ओरिजिन आफ़ लाइ, आर्ट्स एण्ड साइन्सिज, खण्ड ३, पृ० ३११ अनु.)। कहा जाता है कि सम्राट फी-हो ने इस बरा

द्वारा माना जाता था,<sup>४०</sup> अतः हिन्दू विवाह का आदिम रूप भी पहले यही स्वीकार किया जाता था। मगध के सर्वप्रथम राजा जोशी ने १८६६ में हिन्दू कानून धर अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'हिन्दू लॉ एण्ड कस्टम' में इस कल्पना को मानते हुए इसे निम्न प्रमाणों द्वारा पुष्ट किया। (१) महाभारत के कुछ प्रमाण, (२) अजयस्तम्भ का एक चित्र, (३) द्रौपदी का विवाह, (४) प्राचीन काल में निश्चित वैवाहिक आचार के कुछ प्रमाण।<sup>४१</sup>

इनमें से अधिक महत्व महाभारत के प्रमाणों को दिया जाता है, इनकी विस्तृत विवेचना लेखक द्वारा अन्यत्र विस्तारपूर्वक हो चुकी है और यह सिद्ध किया जा चुका है कि इनके आधार पर हिन्दू विवाह का उद्गम फामचार से नहीं माना जा सकता।<sup>४२</sup> आपस्तम्ब के एक चित्र में यह कहा गया है कि बच्चा कुल के लिए बी जाती है।<sup>४३</sup> इसका यह अर्थ लगाया गया है कि बच्चा का विवाह किसी व्यक्ति विशेष के साथ न होकर समूचे कुल के साथ होता है, जैसे द्रौपदी का विवाह अर्जुन के साथ नहीं, किन्तु पाँच पाण्डवों के साथ हुआ। किन्तु यह अर्थ ठीक नहीं प्रतीत होता है। आप० धनु के टीकाकार हरदत्त की व्याख्या से स्पष्ट है कि यह चित्र नियोग के सम्बन्ध में कहा गया है,<sup>४४</sup> नियोग की दृष्टि

का अन्त कर विवाह को प्रथा प्रारम्भ की। मिस्र में इसका श्रेष्ठ मनेस को और यूनान में फोस को दिया जाता है (गोमेट—वही, खण्ड १, पृ० २२ तथा ख० १, पृ० १६)। इस प्रकार की कथाओं को आधुनिक वैज्ञानिक ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य नहीं समझते। यह अनसाधारण की उस मनोवृत्ति का परिणाम है, जो विश्व के सूक्ष्म नियमों में विश्वास न करती हुई प्रत्येक घटना के सरल और स्पष्ट कारण मानना चाहती है और इनका श्रेष्ठ किसी देवता या राजा या भगवान् को बना चाहती है। (वैस्टरमार्क—वी हिस्टरी आफ ह्यूमन मैरिज, पृ० ६)। इसका एक सुन्दर उदाहरण ब्राइडल के पहले दूसरे अध्याय में भगवान् द्वारा सृष्ट्युत्पत्ति का वर्णन है, जो वर्तमान वैज्ञानिक गवेषणा के सर्वथा प्रतिकूल है।

४० वैस्टरमार्क—वी हिस्टरी आफ ह्यूमन मैरिज, खण्ड १, अध्याय ३-६ में इस विषय का विस्तृत वर्णन है, इसके संक्षिप्त विवेचन के लिए वे० जे. शा. हि. से. पृ० ७-१७, ब्रेन्डर—मैरिज एण्ड फैमिली, पृ० ५२, ५५, हरिदत्त—हिन्दू परिवार मोर्मांसा, पृ० १०-११।

४१ जोशी—हिन्दू लॉ एण्ड कस्टम, पृ० १०२-७

४२ हरिदत्त—हिन्दू परिवार मोर्मांसा, पृ० ३-६

४३ आपधनु, २।१०।२७।३ कुलाय हि स्त्री प्रदीपत ह्युपविशन्ति।

४४ वही, २।१०।२७।४ को टीका—तमिसं नियोगं कुर्याति। आपस्तम्ब की उपर्युक्त उक्ति से साक्ष्य रखने वाला एक श्लोक स्मृतिचन्द्रिका (मै. सं.) ख० १ पृ० २६ में मिलता है—'अभतु कक्षातुभार्याग्रहणं जातिवृत्तितम्। कुले कन्याप्रदानं च

से शय्या कुल में दी जाती है। इसके अतिरिक्त प्राचीनकाल में विवाह में कुल का विशेष रूप से विचार किया जाता था (दे० पाँचवाँ अध्याय)। सम्बन्ध प्रधान रूप से व्यक्तियों के मध्य से किन्तु कुलों के बीच में हुआ करते थे, अतः कन्या दुमरे कुल के लिए अर्थात् उस कुल के योग्य व्यक्ति के लिए दी जाती थी, न कि उस कुल के सभी व्यक्तियों के लिए। द्रौपदी का पाँच पाण्डवों के साथ विवाह इस बात का प्रमाण बनाया जाता है कि प्राचीन काल में ऐसे विवाहों की परिपाटी भी और यह परिपाटी गल शताब्दी में कुछ समाज-शास्त्रियों द्वारा विवाह के आरम्भिक विकास की एक अवस्था मानी जाती थी। १५ वें अध्याय में इस विवाह के विवेचन में यह स्पष्ट होया कि ऐसे विवाह अपवाद रूप में और बहुत कम होते थे, प्राचीन काल में इनका व्यापक रूप में प्रचलन नहीं था।

प्राचीन भारत में विधिल आचार के कुछ प्रमाणी के आधार पर उस समय कामचार की सत्ता सिद्ध की जाती है। यह कहा जाता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में पत्नी के व्यवहार सम्बन्धी अनेक संकेत हैं।<sup>४४</sup> वैदिक साहित्य में वेद्यों तथा मंत्रिकाओं का उल्लेख है,<sup>४५</sup> आपस्तम्ब और (२।१२।७) बौधायन (२।३।३८) की एक भाषा में ऐसे धृग का अस्पष्ट निर्देश है, जबकि स्त्रियों के सर्वात्म्य पर बहुत कम बल दिया जाता था। धर्मशास्त्रों में गृह्य<sup>४६</sup> पुत्र का उल्लेख उम समय की अनैतिकता मुचित करने है। बृहस्पति ने पूर्वी भारत की स्त्रियों के सम्बन्ध में लिखा है कि वे व्यवहार में लची रहती हैं।<sup>४७</sup> महाभारत में इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं।<sup>४८</sup> अतः प्राचीन काल में कामचार अन्वय रहा होगा।

वेतोष्वन्येषु वृषते ॥' यहाँ यह वक्षिण के भेद विरुद्ध आचारों में गिनाया गया है। इससे यह प्रतीत होता है कि संभवतः कुल में बने का अर्थ अपने ही कुल के चचेरे भूमेरे, फुफेरे भाई-बहनों के विवाह से है, इत्यादि (कर्व किर्त्तिषिप आर्गेनाइलेशन इन इण्डिया, पृ० ५१)।

४४ वैदिक इंडेक्स १।३६६, ६७, ४८०

४५ ऋ १।१६७।४ में मनुष्यों के वरणा (साधारणी) के साथ मिलने का तथा ऋ० १।६६।४, १।१७।१८, १।१३।१३ में जार या गुप्त प्रेमी का वर्णन है। महाभारत में वेद्यों के लिए वे. मेयर-सेक्सुअल लाइफ इन एंक्लोपे इंडिया पृ० २६४।२७४

४६ बर्षिष्ठ १।७।२४, मनु ८।१७०, पात्र० २।१२६

४७ बृहस्पति स्मृति, (यदोषा सं०) पृ० २८६ 'मत्स्याचारच नराः पूर्वं व्यवहाररताः स्त्रियः ।'

४८ विश्वामित्र के शिष्य गालव ने ययाति की कन्या माधवी को कुछ समय के लिए हर्यश्व, विद्योवास और उशीनर को देकर इनमें से प्रत्येक से २०० घोड़े लिये थे

किन्तु यह कल्पना प्रामाणिक नहीं प्रतीत होती, क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थों के दो-चार संकेतों के होते हुए भी वैदिक काल से भारत में नाट्यों की गीत नैतिकता का मानदण्ड तथा आदर्श बहुत ऊँचा रहा है \*०। वेदवाजों की सत्ता प्रायः सभी समाजों में होती है, गणिकाएँ विभिन्न कलाओं को जानने वाली स्त्रियाँ होती थीं, जो न केवल भारत में किन्तु प्राचीन यूनान में भी विश्वमान थी और सुकरात जैसे दार्शनिक इनके पास ज्ञाना कर ले थे। \*१ अगस्तस यह सिद्ध किया जा चुका है कि गूढ़ज पुत्र न तो अवैध थे और न ही प्राचीन काल की आचार्यहीनता को धुँसित करते हैं। \*२ बृहस्पति की उत्ति का आधार संभवतः तिब्बत और पूर्वी भारत में रहनेवाली जातियों के मिथिल आचार से सम्बद्ध है। \*३ वर्तमान समय में भी भारत में अनेक जातियों के सम्बन्ध में इस प्रकार की अनुसूतियाँ और निय-

(महाभा० ५।११५-२०)। परास्तर ने मत्स्यगन्ध से सम्बन्ध किया (१।६३)। विश्वामित्र और मेनका से राकृन्तला उत्पन्न हुई (१।७२), मौतम ने जानपदों से कृप और कृपी को पाया (१।१३०)। व्यास और घृताची अम्बरा से शुक्रवेध उत्पन्न हुए (१।२।३२४)। हिडिम्बा का भीम के साथ (१।१५५ अ.), अर्जुन का डलूपी (१।२१५ अ.) तथा चित्रांगदा (१।२१५) के साथ अस्थायी विवाह हुआ। किन्तु इसके साथ ही महामारत के उन स्थलों को भी ध्यान में रखना चाहिए, जिनमें वैवाहिक आदर्शों को अत्यन्त उत्कृष्ट रूप में दिखाना गया है। ऐसा एक स्वतन्त्र अष्टावक्र की कथा (१३।१६ अनु) है। ये तब अवाध्याय ऋषि की कन्या सुषुमा के पाणिग्रहण के लिए उत्सुक हुए तो इन्हें परीक्षा के लिए उत्तर विद्या में भेजा गया, वे वहाँ अनेक मुन्वरियों के प्रमत्त प्रलोभनों में नहीं फँसे।

\*० वेदिक इंडेक्स १।४७६, क्रॉम्वेल हिस्टरी आफ इंडिया, ५।१५६-६०, विष्णु २५-१७ यात० १।७५, व्यभिचार के कठोर दण्डों के लिए देखिए हरिवत्स-हिन्दू परिवार मीमांसा, पृ० ४६८।

\*१ भरतनाट्यशास्त्र (अध्याय २४) में गणिका को अनेक विषयों का सम्मोद जान रखने वाली बताया है, कामसूत्र उसे ६४ कलाओं में प्रवीण बताता है। कलितकितर (१२।१३६) में कहा गया है कि शुद्धोदन अपनी पुत्रवधू को गणिका जैसा बनाता चाहता था। प्राचीन यूनान में एस्पेसिया आदि इसी प्रकार की गणिकाएँ थीं। सुकरात एस्पेसिया के पास जाया करता था और उसने डिमी डीमा नामक गणिका से प्राप्त शिक्षाओं के प्रति आचार प्रकट किया है (लेको-हिस्टरी आफ प्योरोपियन मारल्स, खं. २, पृ० २६३)।

\*२ हरिवत्स-हिन्दू परिवार मीमांसा, पृ० ४६६-७०

\*३ जालो-हिन्दू लै एण्ड कस्टम, पृ० १०७

इतिहास सुनने को मिलती है,<sup>४४</sup> पर उनके सम्बन्ध में यह कभी नहीं कहा जाता कि उनमें कामचार है, फिर प्राचीन काल के सम्बन्ध में ऐसी कल्पना क्यों की जाए ? इन इमेगिने प्रमाणों के आधार पर कामचार की सत्ता सिद्ध करना वैयक्तिक ही है, जैसे वर्तमान हिन्दू समाज में से अनाचार के कुछ उदाहरण संगृहीत कर उनके आधार पर यह मन स्थापित करना कि आजकल हमारे समाज में विवाह का कोई बन्धन नहीं है। अतः उपर्युक्त प्रमाणों द्वारा हिन्दू समाज में आदिम कामचार की सत्ता सिद्ध करना वर्कमेगन नहीं प्रतीत होता।

इसके विपरीत वैदिकयुग में विवाह को एक स्वायत्त सम्बन्ध माने जाने के अनेक प्रमाण हैं। ऋग्वेद और अथर्ववेद के विवाह विषयक मन्त्रों में दृढ़ सम्बन्ध का आजीवन बनाये रखने का बार-बार उल्लेख है। एक मन्त्र में यह वधू में प्रस्ताव है कि मैं गृहस्थ के लिए तेरा पाणिग्रहण करता हूँ, जिससे तू मुझे पति के साथ बुढ़ापेका प्राप्त करने वाली हो।<sup>४५</sup> दूसरे मन्त्र में वधू ने कहा गया है कि बुढ़ापे तक इस पति के साथ रह।<sup>४६</sup> ऋ० १०।८१।६२ में वर-वधू दोनों को यह आशीर्वाद दिया गया है कि वे गृहस्थाश्रम में रहते हुए कभी अलग न हों, पूरी आयु का भोग करें।<sup>४७</sup> अथर्व० १४।१।१२ में पति पत्नी से कहता है कि मुझे पति के साथ तू सौ वर्ष तक जीने वाली हो।<sup>४८</sup> पत्नी भी पति के सौ वर्ष तक जीने की कामना करती है।<sup>४९</sup> विवाह के समय पुरोहित वधू को पितृगृह से मुक्त कर पतिगृह के साथ अच्छी तरह संयुक्त करता था ताकि वह पुत्रवती और सौभाग्यवती हो।<sup>५०</sup> अग्नि से यह प्रार्थना की गयी है कि वह पत्नी को पति के लिए बुढ़ापे तक पहुँचाने वाला हो।<sup>५१</sup> बुढ़ापे तथा सौ वर्ष तक पति-पत्नी के साथ रहने की आर्थनाएँ वैवाहिक सम्बन्ध के आजीवन बने रहने का प्रबल प्रमाण और कामचार का प्रत्याशय हैं। ब्राह्मणों, सूत्र-ग्रन्थों तथा स्मृतिओं

<sup>४४</sup> गेट ने १९११ की भारत जनगणना रिपोर्ट (खं. १ भाग १ पृ० २४३-४४) में वर्तमान भारत की अनेक जातियों के ऐसे उदाहरण दिये हैं, जिनमें स्त्रियों के लिये न तो विवाह से पहले और न ही विवाह के बाद सतीत्य के नियम का पालन आवश्यक समझा जाता है।

<sup>४५</sup> ऋ० १०।८१।३६ गुण्यामिते सौभाग्यवाम हस्तं मया पत्याजरदष्टिर्व्यमातः, मि० अथर्व० १४।१।१०

<sup>४६</sup> ऋ० १०।८१।२७ एता पत्या तन्वं संसृजस्वाध्या जिवीविषयमा वदायः।

<sup>४७</sup> ऋ० १०।८१।४२ इहैव स्तं मा विधीष्यं विरवमापुर्व्यस्नुतम्।

<sup>४८</sup> अथर्व० १४।१।१२ मया पत्या प्रजावति सं जीव शरवः शतम्।

<sup>४९</sup> वही १४।२।६२ दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवतु शरवः शतम्।

<sup>५०</sup> वही १४।१।१८ प्रेतो मुंचामि नामृतः सुबद्धामृतस्करम्। पथेयमिन्द्र मोदयः सुपुत्रा सुभगासति।

<sup>५१</sup> वही १४।१।४६ अग्निः सुभगां जातयेवाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु।

में कामचार का वर्णन कहीं नहीं मिलता। इस अवस्था में जर्मन विद्वान् मेयर का यह वायन सर्वथा सत्य प्रतीत होता है कि हम अतीत के घूसरतम उपकाल में इतनी लम्बी छलांग मारने के लिए ऐसे किस्सों पर कभी विश्वास नहीं कर सकते।<sup>१२</sup>

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि हिन्दू विवाह वैदिक युग में पति-पत्नी का यात्राजीवन सम्बन्ध माना जाता है। इससे प्रधान प्रयोजन धर्म का पालन, संज्ञान की प्राप्ति तथा उचित माता में काममुख का सेवन है। प्रायः विवाह प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक धार्मिक सम्बन्ध और अनिवार्य कर्तव्य समझा जाता है। यह पति-पत्नी में अश्वेद स्थापित करने वाला है। मनु के प्रसिद्ध शब्दों में जो पति है, वह पत्नी है, पत्नी पति से किसी प्रकार पृथक् नहीं हो सकती। (६।४५-४६)। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो हिन्दू विवाह अविच्छेद्य है। मई १९५५ के हिन्दू कानून ने तथा वर्तमान परिस्थितियों में इसमें जो महत्वपूर्ण परिवर्तन किये हैं, उनका अन्तिम अध्याय में उल्लेख होगा।

हिन्दू विवाह में अनेक प्रकार के नियमों तथा विधि-निषेधों का पालन किया जाता है। सर्व प्रथम वर-वधू के जुनाह में गोत्र, पिण्ड और जाति का विचार किया जाता है। सातातप के शब्दों में इसमें पहले गोत्र पर ध्यान देना चाहिए, इसके बाद पिता की सातवीं और माता की पाँचवीं पीढ़ी के भीतर बने वाले सम्बन्धियों का तथा राशिकूट का विचार करना चाहिए।<sup>१३</sup>। यहाँ अगले अध्यायों में इन विषयों का प्रतिपादन इसी क्रम से किया जायगा।

<sup>१२</sup> मेयर—मेक्समुअल लाइफ डी एंक्लाष्ट इंडिया, पृ० ११५ तथा पृ० १२५ की पाह टिप्पणी।

<sup>१३</sup> सं० प्र०, पृ० ५६० पर उद्धृत सातातप का वचन—आदौ गोत्रविशुद्धिः स्वातन्त्र्यस्तन्मयपञ्चमम् । राशिकूटं तत्तदर्थं त्रेधा सम्बन्धलक्षणम् ॥



## दूसरा अध्याय

### बहिर्विवाह—गोत्र और प्रवर

#### दो प्रकार के वैवाहिक नियम

हिन्दू समाज में विवाह के समय वधू चुनने के लिए वर-वधू भग में दो प्रकार के नियमों का पालन किया जाता है। वर-वधू एक विशिष्ट सामाजिक वर्ग के अथवा निश्चय की हुई पीढ़ियों के भीतर आने वाले व्यक्ति बन होने चाहिए। प्रत्येक विवाह उन विशिष्ट सामाजिक वर्ग से और इन पीढ़ियों में बाहर ही होता है। इसे बहिर्विवाह (Exogamy) का नियम कहते हैं। गोत्र और प्रवर हिन्दू समाज में इस प्रकार के बहिर्विवाही वर्ग (Exogamous groups) हैं, क्योंकि एक गोत्र वालों में परस्पर विवाह धर्मशास्त्रों द्वारा वर्जित ठहराया गया है। अतस्तम्भ (२११।१५), विष्णु (२।१६-१०), मनु (३।५), शास्त्रकव्य ने समान गोत्र और समान प्रवर रखने वाली कन्या में विवाह का निर्बंध किया है। गोत्र तथा प्रवर के अतिरिक्त बहिर्विवाह के दूसरे नियमानुसार पिता की सात तथा माता की पाँच पीढ़ियों से बाहर विवाह करना आवश्यक है। इन पीढ़ियों के भीतर आने वाले सब व्यक्ति सगण्य कहाते हैं। वर-वधू भी अगण्य होना चाहिए। इन प्रकार हिन्दू समाज में अपगण्यता और असगण्यता नामक दो बहिर्विवाही नियम (Exogamous rules) प्रचलित हैं।

दूसरे प्रकार का वैवाहिक नियम अन्तर्विवाह (Endogamy) में सम्बन्ध रखता है। इसके अनुसार वर-वधू के लिए एक विशिष्ट सामाजिक वर्ग के भीतर विवाह करना आवश्यक है। हिन्दू समाज में १६४६ ई० तक कानूनी तौर से वर-वधू के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि वर्गों की समानता आवश्यक थी।<sup>१</sup> बहिर्विवाह और अन्तर्विवाह के दोनों नियम ऊपर से देखने में परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं, वस्तुतः ऐसी बात नहीं

<sup>१</sup> १६४६ के हिन्दू विवाह असंगतता निवारक कानून, १६४६ ई० के हिन्दू विवाह वैधता कानून तथा १६५५ के हिन्दू विवाह कानून द्वारा अब हिन्दू विवाह की वैधता के लिए गोत्र या प्रवर की भिन्नता तथा वर्गों की समानता आवश्यक नहीं रही। किन्तु इन नियमों का ऐतिहासिक महत्त्व है और विवाहत्मक रूप में अब भी इनका पालन हिन्दू समाज में किया जाता है।

है। इनके पारस्परिक सम्बन्ध को वृत्तों के उदाहरण से समझा जा सकता है। ब्राह्मण वर्ण एक बड़ा वृत्त है, इसके भीतर विश्वामित्र वसिष्ठ आदि अनेक बहिर्विवाही सामाजिक वर्गों या गोत्रों के समुच्चय हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपने गोत्र के छोटे वृत्त से बाहर किसी दूसरे गोत्र के समुच्चय में विवाह करना पड़ता है। किन्तु ऐसा करते हुए वह ब्राह्मण वर्ण के विनाश वृत्त की परिधि से बाहर नहीं जा सकता।

यहाँ पहले बहिर्विवाह सम्बन्धी नियमों, गोत्र, प्रवर और सपिण्डता के नियम का तथा बाद में अन्तर्विवाह के नियम का वर्णन किया जायगा।

### गोत्र का सामान्य स्वरूप

हिन्दू समाज में गोत्र और प्रवर विशिष्ट बहिर्विवाही वर्ण हैं। धर्मशास्त्र समान गोत्र और प्रवर रखने वालों में परस्पर विवाह का निषेध करते हैं। अगस्त्य (२।११।१५) के मत में अपने जैसा गोत्र रखने वाले को कन्या नहीं देनी चाहिये। गौतम भी प्रवर वालों में विवाह का विधान करता है। बिरू (२४।६-१०), मनु (३।५) और मातङ्गल्य (१।५३) ने इसका अनुमोदन किया है। किन्तु ये गोत्र और प्रवर क्या हैं?

गोत्र का स्वरूप अंगका काव्यों में बहुत ही जटिल है। गोत्र के गोरखधन्धे को समझना मुश्किल नहीं है। म त्रांगोत्र का अर्थ<sup>३</sup> निश्चित है और म गोत्रों की संख्या नियत है। महाभारत बार ही मूल गोत्र मानता है (१२।२६७।१७-१८)। आगे बताया जायगा कि श्रीधायन ने आठ गोत्र माने हैं, किन्तु इसके साम ही वह यह भी कहता है कि गोत्र हजारों, लाखों (प्रपुत्र) और करोड़ों (अर्बुद) हैं, किन्तु इनके प्रवर उनका ही हैं। पुरुषोत्तम पंडित ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि गोत्र तीन करोड़ हैं, धूल के कणों तथा आकाश के तारों की तरह अनन्त हैं, जब वह इस विषय को अरपल

<sup>३</sup> अमरकोश में गोत्र के तीन अर्थ दिये गये हैं—पर्वत, वंश और नाम। प्राक्पत्य कोश में इसके चार अर्थ बताये गये हैं—पर्वत, नाम, जंगल, खेत, छत्र, संध, धन, मार्ग, वृद्धि, मुनियों के वंश। प्राचीन संस्कृत साहित्य में गोत्र शब्द का प्रयोग प्रायः वंश या पिता के नाम के लिए हुआ है। छान्दोग्य उपनिषद् में जब गुरु ने सत्यकाम से उसका गोत्र पूछा तो उसका अभिप्राय उसके कुल या पिता के नाम से था (छान्दोग्य उप० ४।४)। महाभारत (२।७१।१५) में यथाति जब दो कन्याओं से उनका गोत्र पूछता है तो वे अपने पिता का नाम बताती हैं। पालि साहित्य में गोत्र का प्रयोग कुल के लिए हुआ है, गोत्ररक्षिता का व्यवहार ऐसी लड़कियों के लिए किया गया है, जो सम्बन्धियों के कुलों द्वारा पानी ब्राती थीं (कर्वे-कलशिंद आर्य-निर्देशन इन इण्डिया, पृ० ५८)।

कठिन बताता है। वहाँ पहले नक्षत्रों में गोत्र के सामान्य स्वरूप का वर्णन होगा।

बोधायन के मत में विश्वामित्र, जमदग्नि, भारद्वाज, गोतम, अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप तथा अश्वत्थ मुनि की जो संतान हैं, वे गोत्र हैं। इन प्रकार कुल आठ गोत्र हैं। समान गोत्र वालों में परस्पर विवाह नहीं हो सकता।<sup>३</sup>

किन्तु आधुनिकों के विवाह में केवल गोत्र की ही नहीं, प्रवर की भिन्नता भी जाननी चाहिए। प्रवर का विवाद रूप आते स्पष्ट किया जायगा, यहाँ इनका कहना उचित है कि प्रवर में एक, दो, तीन या पाँच प्राचीन ऋषियों के नाम होते हैं, वे प्रायः मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। गोत्र और प्रवर के ऋषियों में यह अन्तर है कि प्रवर में अत्यन्त प्राचीन काल के पण्डित तथा विश्वामित्रादि आठ गोत्रकार ऋषियों के पूर्वजों का उल्लेख होता है, गोत्रकार ऋषि प्रवरों में वर्तमान ऋषियों के वंशज हैं। उदाहरणार्थ, जमदग्नि गोत्र के प्रवर भागवत, अश्वत्थ और आप्तवान् जमदग्नि के पूर्वज हैं। अतः स्पष्ट है कि प्रवर प्राचीन ऋषि हैं और गोत्र उनके वंशज मन्त्रों जानने वाले अर्वाचीन ऋषि हैं।<sup>४</sup>

<sup>३</sup> प्रवरमंजरी, पृ० ६

<sup>४</sup> गोत्रप्रवर निबन्धकवम्ब पृ० ११ तथा ६७ 'विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽयं गोतमः। अत्रिर्वसिष्ठः कश्यप इत्येते सप्त ऋषयः। सप्तानामृषीनामस्तथाष्टमातां पश्यत्यर्थं तद् गोत्रमित्युच्यते।' इस लक्षण के अनुसार गोत्र सम्बन्ध का प्रयोग उपर्युक्त आठ ऋषियों की संतान के लिए होना चाहिए। किन्तु पहले यह बताया जा चुका है कि बोधायन हकारों, लाजों और एक करोड़ गोत्र मानता है। आठ गोत्रों तथा एक करोड़ गोत्रों में स्पष्ट विरोध है। पुरुषोत्तम ने इसके समाधान का एक विफल प्रयत्न किया है (गोत्र-प्रवरनिबन्ध कवम्ब पृ० १००।१०१) जो एक के सम्बन्ध में गड़बड़झाता मात्र है (पृ० पु० पृ० २०६)। यदि वह विश्वामित्र आदि ऋषियों के लिए गोत्रकार सम्बन्ध का प्रयोग करता तो यह अस्पष्टता दूर हो सकती थी। पुरुषोत्तम ने एक स्थान पर यह भी लिखा है कि गोत्र कितने करोड़ हैं यह हम नहीं जानते (कियतः कोटिसंख्या गोत्रानामिति न विद्यः—प्रवरमंजरी (वे प्रे) पृ० ६६)। स्मृत्यनुसार (पृ० १५) ने इनकी संख्या अनन्त कही है।

<sup>५</sup> गोत्रों के होते हुए प्रवरों की व्यवस्था इसलिये की गयी है कि गोत्र सम्बन्ध का प्रयोग बहुविवाहो वर्ग (Exogamous group) तक सीमित न रह कर इनके असाधारण उपभोगों तथा पृथक् परिवारों के लिए भी होता था। ब्राह्मण अपने को कश्यप गोत्र का ही नहीं, किन्तु इसके एक अंग भामुरि गोत्र का भी कहने लगे थे, वस्तुतः भामुरि कश्यप गोत्र के एक गण का उपविभाग है। गोत्र का प्रयोग वंश के अर्थ में भी होता था, अतः गोत्र का सुनिश्चित अर्थ न रहने से उसके साथ प्रवरों की भी व्यवस्था की गयी (चफ-पु० पु०, पृ० ४-५)।

इन ऋषियों के आधार पर प्रवरों का वर्गीकरण किया गया है—भृगु, अंगिरा, अत्रि, विश्वामित्र, कश्यप, वसिष्ठ और जमदग्नि। ये ऋषि उपर्युक्त आठ गोत्रकार ऋषियों से कुछ भिन्न हैं क्योंकि प्रवरों के ऋषियों में भृगु और अंगिरा से नाम हैं और गोत्रकारों में से जमदग्नि, गौतम और भारद्वाज का उल्लेख नहीं है। किन्तु यह भेद इस प्रकार दूर किया जाता है कि भृगु में जमदग्नि की तथा अंगिरा में गौतम और भारद्वाज को सम्मिलित किया जाता है। विभिन्न ग्रन्थों में दी गयी गोत्रों की शालिका से उन्हें यह स्पष्ट होता है। कि जमदग्नि वर्ग के विभिन्न उपभेदों (गणों) के प्रवरों के ५ नामों में तीन अर्थात् भार्गव, कश्यप और अश्वत्थामन् सब में समात हैं। गौतमगोत्र के विभिन्न गणों के प्रवरों में अगिरस और गौतम के नामों की तथा भारद्वाजगोत्र के विभिन्न गणों के प्रवरों में अगिरस, बार्हस्पत्य और भारद्वाज के नामों की समानता है। प्रवर के सम्बन्ध में बौधायन का यह प्रतिज्ञा नियम है कि प्रवरों में यदि एक ऋषि का भी नाम पुत्राश्रय आये तो भृगु तथा अंगिरा गणों के अतिरिक्त सर्वत्र समान-गोत्रता समझनी चाहिए।<sup>६</sup> इस नियम के अनुसार जमदग्नि, गौतम, भारद्वाज आदि प्रवरों की गणना भृगु तथा अंगिरा गणों में की गयी है। ये स्वतन्त्र वहिविवाही वर्ग गिने जाते हैं। इनके सिवाय भृगु तथा अंगिरा वर्गों में कुछ अतिरिक्त गण भी गिने जाते हैं। इन्हें सम्प्रदानगौत्र ग्रन्थों में केवल भृगु तथा केवलअंगिरस कहा गया है। इनके प्रवरों के ऋषिनामों में जमदग्नि गण की भाँति तीन नामों की समापता नहीं है, किन्तु केवल एक नाम भार्गव या अगिरस की ही समानता है, अतः इनमें से प्रत्येक स्वतन्त्र वहिविवाही वर्ग है। केवल भृगुओं में इस प्रकार के चार वर्ग—यस्क, शुनक, मितयु और वैन्म हैं और सेव्यलागिरसों में संकुति, हरित, कण्व, रथीतर, मुद्गल और विष्णुवृद्ध नामक छः वर्ग। इन दस वर्गों में यदि पहले आठ अर्थात्, भृगु (जमदग्नि), गौतम, भारद्वाज, अत्रि, विश्वामित्र, कश्यप, वसिष्ठ और जमदग्नि के वर्ग जोड़ दें तो वहिविवाही इकाइयों की कुल संख्या १८ होगी।<sup>७</sup>

गोत्र, गण और प्रवर का सम्बन्ध निम्न उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा। बौधायन के अनुसार पहले बड़े गोत्र भृगु अथवा जमदग्नि गोत्र में वत्स, विश्व, आण्डिषेन और वास्क नामक चार गण हैं। इन गणों में से प्रत्येक के अनेक वर्ग, पक्ष या वंश हैं, उदाहरणार्थ, वत्स

<sup>६</sup> प्रवरमंजरी, पृ० ११—एक एव ऋषिर्वावत्प्रवरैर्जन्यवर्तते । तावत्समान-गोत्रत्व-सम्यक् भृष्यंगिरसो गणात् ॥ भृगु तथा अंगिरा गणों में उस असंगोत्रता के नियम का पालन न करने का क्या कारण था; पुरुषोत्तम ने इसकी बड़ी मनोहरंजक व्याख्या की है, उसके मतानुसार बौधायन ने चूंकि गोत्र शब्द का प्रयोग पहले निर्दिष्ट आठ ऋषियों के लिये किया है और उनमें भृगु-अंगिरा का नाम नहीं है, अतः उन पर संगोत्रता के निषेध का नियम नहीं लागू होता (प्रवरमंजरी, पृ० १२) ।

<sup>७</sup> इनके स्वर्ण तथा खिलत वर्णन के लिए देखिए अफ, पृ० ३१-३७ ।

गण में वात्स्य, मार्कण्डेय, माण्डूकेय, माण्डूक्य, कांस्य, आलेख्य, दार्भायण, शार्कराक्ष आदि ७३ वर्ग हैं (ब्रह्म पु० ७९-८१)। इन सब वर्गों का प्रवर पाँच ऋषियों वाला—भार्गव, व्यास, आप्तवान, और्व और आमयग्न्य होता है।

दूसरा गण विद है—इसमें विदशील, अवरशील, प्राचीन यौग्य, अमयजान आदि १३ उपवर्ग हैं, इस गण का प्रवर भी पाँच ऋषियों के नाम वाला है। इनमें पहले चार नाम वत्सगण जैसे हैं, पाँचवाँ नाम आमयग्न्य के स्थान में वैद है। तीसरे गण में आग्निषेण, नैक्यय, साम्यायन आदि १० वर्ग हैं। इनका पंचायेंय प्रवर इस प्रकार है—भार्गव, व्यास, आप्तवान, आग्निषेण, कामूय। इन तीनों गणों में आपरा में विवाह नहीं होता। चौथे गण में भस्व, मौन, भूक, ताम्रलादि २२ वर्ग हैं। इनका प्रवर उपायेंय अर्थात् भार्गव, वैतहव्य, मावेत्तस है (ब्रह्म पु० ८२)। मिश्र गण में रीष्टघायन, सातिगिद्धन आदि १२ वर्ग हैं और इनका उपायेंय प्रवर इस प्रकार है—भार्गव, बाधयग्न्य और देवोदास। वैन्वगण में वैन्व, वापकल और पावे तामक वर्ग हैं और उनका उपायेंय प्रवर है भार्गव, वैन्व, पाव्य। शूनक गण में स्यारह वर्ग हैं। इनका एकायेंय प्रवर शौनक या सार्लोमद है। इन स्यारह वर्गों में से अन्तिम चार केवल भृगु के गण हैं, अतः उनमें परस्पर विवाह हो सकता है। गौड गण और प्रवर का पारस्परिक सम्बन्ध अध्यायन के आधार पर बताया गया अगस्त्य गौड की निम्न तालिका से स्पष्ट होगा।

#### अगस्त्य गौड

संख्या	गण	प्रवर
१	इधमवाह	आगस्त्य, दाक्ष्यन्धुत, ऐधमवाह
२	साम्मवाह	आगस्त्य, दाक्ष्यन्धुत साम्मवाह
३	सोमवाह	आगस्त्य, दाक्ष्यन्धुत, सोमवाह
४	पन्नवाह	आगस्त्य, दाक्ष्यन्धुत, पन्नवाह
५	अगस्ति	आगस्त्य, महेन्द्र, मायीभुन

इस सूची से यह स्पष्ट है कि सब वर्गों के प्रवरों में अगस्त्य नाम आता है, अतः इस सब में परस्पर विवाह नहीं हो सकता। आठ प्रधान गोत्रों के अनेक गण हैं, प्रत्येक गण में अनेक वर्गों या वंशों के नाम पाये गये हैं। गौड सम्बन्धी विभिन्न सूचियों में दिये गये इन नामों की संख्या पाँच हजार के लगभग है।

#### गौड विषयक ग्रन्थ

गौडों की गणना सर्व प्रथम सूत्र साहित्य में की गयी है और इन्हें प्रथराध्याय, प्रवरकाण्ड या प्रवर प्रश्न का नाम दिया गया है। होता तथा अश्वर्षु के पंच प्रश्नों के लिए

संभवता इसका प्रणयन हुआ, ताकि वे वांछित कर्मकाण्ड में यजमान के परिवार का प्रवर सूत्र रीति से पढ़ सकें (दे० नी० पृ० ४२)। इसीलिए इन प्रवरों के प्रथम उल्लेख श्रौतसूत्रों में है। ऋग्वेद के आश्वलायन श्रौतसूत्र के प्रवरकाण्ड में इस वृद्धि की संक्षिप्त कथरेखा मात्र है, इसमें गोत्र के उपभेदों (गणों) का ही केवल उल्लेख है, किन्तु इन गणों के विभिन्न उपगणों का वर्णन नहीं है। उदाहरणार्थ, गुरु गोत्र के गण आष्टिपेणों तथा विदों के उपभेदों का बोधायन की भांति निर्देश नहीं है, केवल उनके प्रवरों का वर्णन है और प्रवरों में भी होता के ही प्रचार दिये गये हैं, अथर्व के प्रवरों का निर्देश नहीं है। यजुर्वेद के श्रौतसूत्रों—आपस्तम्ब और हिरण्यकेशी (सत्यापाद) श्रौतसूत्रों में प्रवराध्याय है, आपस्तम्ब की सूची आपवलायन की सूची के साथ मिलती है।

बोधायन ने सर्वप्रथम प्रत्येक गोत्र में समान प्रवर रखने वाले गणों के परिवारों की विस्तृत सूची दी। इससे सादृश्य रखने वाली सूचियाँ काट्यायन और लौगाक्षि की हैं, ये पुरुषोत्तम की प्रवरसंज्ञरी में पायी जाती हैं। एक ऐसी अन्य सूची वैखानस धर्मसूत्र में भी है, जो बोधायन से प्रतिलिपि की गयी प्रतीत होती है। बोधायन की सूची में तथा आश्वलायन आदि शेष ग्रन्थों की सूचियों में मुख्य गोत्रों के गणों में वर्णित नामों में बड़ा अन्तर है। ऐसा प्रतीत होता है कि आश्वलायन की सूची सबसे पहले तैयार की गयी। इसमें मुख्य गोत्रों, गणों तथा इनके प्रवरों की सूची मात्र है। काल और स्थान भेद से इन परिवारों में अन्तर आता गया। बोधायन संभवतः आश्वलायन से स्थान और काल की पर्याप्त भिन्नता रखता है। इसके अतिरिक्त, वह इसका विस्तृत प्रतिपादन करने वाला पहला व्यक्ति था, अतः उसकी सूची आश्वलायन की सूची से निम्न और विशद है।

उपर्युक्त सूत्रग्रन्थों के अतिरिक्त गोत्रों का वर्णन प्रधान रूप से निम्न ग्रन्थों में है—महाभारत (१३:४:४६-४६, १२:२६६:१७-१८), मत्स्यपुराण (अध्याय १६५-२०२), वासुपुराण (अध्याय ८८-९), स्कन्दपुराण (धर्मार्णव काण्ड ३:२), स्मृत्यर्थसार (पृ० १४-१७), संस्कारप्रकाश (पृ० ५६१-६८०), निर्णयसिन्धु, संस्कार-रत्नमाशा (४०३-४४३)। मध्यकाल में गोत्रों पर स्वतन्त्र रूप से अनेक ग्रन्थ लिखे गये, इनमें पुरुषोत्तम वर्णित की गोत्रप्रवरसंज्ञरी सर्वश्रेष्ठ है, इसमें बोधायन,

“ इसका नाम ‘गोत्र-प्रवरनिबन्धकदम्बम्’ है, इसी का एक मुद्रण १६०७ में बेंकट-क्वरे प्रेंस बम्बई से हुआ है, आगे प्रायः सब उद्धरण इसी संस्करण के आधार पर दिये गये हैं। इसमें निम्न ग्रन्थ हैं—पुरुषोत्तम वर्णित की प्रवरसंज्ञरी, कमलाकर भट्ट का प्रवरवर्णन, पट्टाभिराम शास्त्री का गण-वरदाजकुल-विवाहविचार, आश्वलायन और आपस्तम्ब के प्रवरकाण्ड (ये यथाक्रम नारायणीय वृत्ति तथा कर्पाटस्वामी के भाष्य सहित हैं) तथा गोत्रप्रवरनिर्णय। इस ग्रन्थ का निर्देश आगे मोनि (वे. प्रे.) से किया जायगा।

आपस्तम्ब, कात्यायन, शौनाधि, जायवलायन और मत्स्यपुराण के विवरण अविकल रूप में दिये गये हैं। प्रका के मत में यह संभवतः १२वीं शती से पहले लिखी गयी थी। यह १६०० में मैसूर गवर्नमेण्ट ओरिएण्टल लाइब्रेरी सीरीज में चेल्लसन्नराव द्वारा सम्पादित होकर गोत्र-प्रवर सम्बन्धी अन्य मध्यकालीन ग्रन्थों के साथ प्रकाशित हुई है। इस विषय का दूसरा ग्रन्थ कमलाकर भट्ट का प्रवरदर्पण है, यह प्रवरमंजरी की अपेक्षा अधिक संक्षिप्त, संयुक्त और व्यवस्थित है। यहाँ इन सबके आधार पर इसका संक्षिप्त वर्णन किया जायगा,<sup>६</sup> किन्तु इससे पहले गोत्र का अर्थ जान लेना आवश्यक है।

### गोत्र शब्द के विभिन्न अर्थ

संस्कृत के आधुनिक कौशों में गोत्र उसे कहा गया है, जो पूर्व पुरुषों को घोषित करता है।<sup>१०</sup> किन्तु इस शब्द को यह व्युत्पत्ति संभवतः इसके प्रयोग की देखकर, उसके आधार पर कल्पित भी गई है। वैदिक साहित्य में इसका यह प्रधान अर्थ नहीं था। ऋग्वेद के अनेक स्थलों में इस शब्द का अर्थ गौत्रों का बाह्य या समूह है।<sup>११</sup> इसके अतिरिक्त इस शब्द का निम्न अर्थों में भी प्रयोग है—बायल, बादल में रहने वाला दैत्य, बादलों को छिपाने वाली पर्वतमाला या पर्वतशिखर।<sup>१२</sup> जैसे वीए बाहे में बन्द होती है, जैने जल मेघ

<sup>६</sup> वर्तमान समय में प्राचीन गोत्र पद्धति का सर्वोत्तम वर्णन जॉन ब्रक के 'बी अर्थो ब्राह्मणनिकल सिस्टम आफ गोत्र एण्ड प्रवर' (संजन १९५३) में मिलेगा। इस विषय में अन्य ग्रन्थों और लेखों में निम्न उल्लेखनीय हैं—

करन्वीकर—हिन्दू एकसौगोत्री, वैदिक साहित्य में गोत्र प्रवर के लिए देखिए पांडुरंग वामन काणे का लेख—बाम्बे बाँच ऑफ रामल एशियाटिक सोसायटी, न्यू सीरीज १६३५ का दूसरा खण्ड तथा हि० ध० खं. २, भाग १, पृ० ४७६-४००; वामोवर धर्मानन्द कोसम्बी—आन बी ओरिजिन ऑफ ब्राह्मण गोत्राण, जर्नेल आफ बी बाम्बे बाँच आफ रामल एशियाटिक सोसायटी १९५०, पृ० २१-८०। चिन्तामणि विनायक बेंठ ने हिस्टरी आफ मिडीकल इण्डिया के खण्ड २ के एक परिशिष्ट में गोत्रों और प्रवरों की विवेचना की है। ईसा. रिस्ते. ई. के खण्ड ६, पृ० ३५३-५८ में फिक ने इस विषय का संक्षिप्त विवेचन किया है। जॉन ब्रक ने 'वैदिक साहित्य में गोत्रों का विवेचन' जर्नेल आफ रामल एशियाटिक सोसायटी के १९४६-४७ के अंकों में किया है।

<sup>१०</sup> शब्दकल्पद्रुम, द्वितीय काण्ड, पृ० ३५५ 'गवते शब्दावते, पूर्वपुरुषान् यस्तु गोत्रम्'।

<sup>११</sup> ऋ० १।२।१।३, २।१।७।१, ३।३।१४, ३।४।३।७, ६।८।६।२३, १०।४।८।२, १०।१२।०।८।

<sup>१२</sup> ऋ० २।२।३।३, १०।१०।३।७, अथर्व० ५।२।८, यजु० १।७।३।६, ऋ० ६।१।७।२, १०।१०।३।६।

में अवरुद्ध रहता है, संभवतः इस सादृश्य के आधार पर गोत्र का अर्थ मेघ हुआ। कुछ स्थलों में गोत्र का प्रयोग समूह के अर्थ में भी हुआ है (ऋ० २।२३।१८, ६।६५।३)। इससे इस शब्द का प्रयोग व्यक्तियों के समूह में भी होने लगा और धीरे-धीरे गोत्र की वर्तमान अर्थ प्राप्त हुआ। यद्यपि ऋग्वेद में एक सामान्य पूर्वज के वंश के लिए गोत्र शब्द के प्रयोग का पुष्ट प्रमाण नहीं है, किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि वैदिक युग में यह विचार प्रारम्भ हो गया था, अथर्ववेद में "विश्वगोत्र्यः" (सब परिवार वाले) शब्द में गोत्र का व्यवहार रक्त सम्बन्ध से संबद्ध व्यक्तियों के समूह के लिए हुआ है।<sup>१३</sup> कौशिक सूत्र (४।२) में गोत्र का इसी अर्थ में प्रयोग है।

पाणिनि ने गोत्रों के सम्बन्ध में बहुत विस्तार से विचार किया है। अष्टाध्यायी के सप्तमे वित्तुत प्रकरण 'तादित' का एक बड़ा भाग—अपत्याधिकार इसी विषय पर है। इससे यह स्पष्ट है कि उस समय गोत्रवाची नामों का बहुत प्रचलन था। पाणिनि के मत में गोत्र से आये की सन्तान गोत्र कहलाती है (५।१।६३)। अपरव्याची शब्दों के तीन बड़े भेद हैं—अनन्तरापत्य, गोत्रापत्य और युवापत्य। पहले भेद का अर्थार्थ है, जिसके बीच में किसी दूसरे लड़के का अन्तर या व्यवधान न हो, जैसे गर्भ का लड़का गर्भि कहु-लायेगा। इस गर्भि का लड़का या गर्भ का पीत उसके अनुसार गार्भ्य कहा जायगा। पीत के बाद की सन्तति गोत्रापत्य कहलाती है। गोत्रापत्यों का एक भेद युवापत्य है। युवापत्य गार्भ्य नहीं किन्तु गार्भ्यामण कहा जायगा। पाणिनि ने विशेष प्रत्ययों द्वारा ऐसे अनेक कुलों के गोत्र-वाचक नामों की सिद्धि की है और गणपाठों में इस प्रकार के अनेक शब्द पढ़े गये हैं। यहाँ पाणिनि का गोत्र पारिभाषिक शब्द है और उसने स्वयं अपत्याधिकार प्रकरण से अन्यत्र गोत्र शब्द का प्रयोग एक सामान्य पूर्वज के वंशजों के लिए किया है।<sup>१४</sup>

पाणिनि के कुछ सूत्रों से यह स्पष्ट है कि उसे प्रवरसूचियों वाले गोत्रों का अवश्य ज्ञान था, क्योंकि एक सूत्र (५।१।१२०) द्वारा उसने धनु और वत्स गोत्रों के अर्थ में भारद्वाज्य और शौनकाग्र्य शब्द बताये हैं तथा अन्य अर्थों में भारद्वाज और शौनक। एक दूसरे सूत्र (५।१।१०८) में उसने आगिरस गोत्र के लिए वातगव्य शब्द का निर्देश किया है। कुछ गणपाठों का प्रवर-सूचियों के साथ पर्याप्त सादृश्य है। अश्वविग्न में भारद्वाज्य आश्व गोत्र के तथा शालेयग्र्य भारद्वाज गोत्र के अर्थ में पढ़ा गया है। गणपाठ प्रवर-सूचियों की अपेक्षा अधिक शुद्ध रूप में सुरक्षित रहे हैं, अतः गोत्रों के इतिहास के ज्ञान में अधिक सहायक सिद्धि हाँ सफल है।<sup>१५</sup>

१३ अथर्व. ५।२।१।३ 'वानस्पत्यः संभूत उत्तिव्याभिर्विश्वगोत्र्यः ।'

१४ २।४।६३ यस्कादिभ्यो गोत्रे, ४।३।८० गोत्रादनुवृत्त सूत्रों की कारिकावृत्ति देखिए।

१५ इस विषय का विस्तृत विवेचन जॉन बफ के १९४६ के जर्नेल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी के एक खंड (पृ० ४१ अनु०) में है।



## मेधातिथि द्वारा गोत्र शब्द की व्याख्या

गोत्र के सामान्य प्रचलित अर्थ की सुन्दरतम व्याख्या मेधातिथि में की है। वह मनु ३।५ तथा १६५ की टीका में असगोत्र की व्याख्या करना हुआ लिखता है—“सर्व पुरुषों के मुख्य रूप से तुल्य होने पर जैसे उनमें ब्राह्मणों का भेद है, उसी तरह ब्राह्मणों के रूप से उनके तुल्य होने पर भी उनमें वसिष्ठादि गोत्र का भेद है और व्रज गोत्र में प्रवर का भेद है। तुल्यकार गोत्रभेद गण्डमन्थ से प्रवर को इस प्रकार गाद रखने है कि जिसका यह गोत्र है उसके से प्रवर है। गोत्र भेद उस गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति द्वारा प्रकार गाद रखने है—हम पराक्षर गोत्र के हैं, हम उपमन्यु गोत्र के हैं। यह गोत्र क्या है? गोत्र उम आदिपुरुष का नाम है, जिनने कुल को यह संज्ञा (नाम) दी है; जो विद्या, धन, धर्म, औदार्य आदि गुणों से बहुत अधिक प्रसिद्ध होता है और जिसने नाम पर कुल का नाम रखा जाना है। गर्ग, गालव आदि ऐसे पुरुषों के नाम पर ब्राह्मणों के गोत्र हैं। गोत्र की इनमें व्याख्या करने के बाद, मेधातिथि आगे जो लिखता है उसमें स्पष्ट है कि उसे इन गोत्रों के रक्त सम्बन्ध सूचक होने में कुछ संदेह है। वह कहता है—गोत्र शब्द वसिष्ठ आदि मुख्य गोत्रों के साथ रुद्धि के कारण लगाया जाता है। यह नहीं माना जा सकता कि एक समय में पराक्षर नाम का व्यक्ति पैदा हुआ और उसके बाद उसके वंशज पराक्षर पहचानने लगे। यदि यह मान लिया जाय तो वेद अनादि नहीं रहेगा, क्योंकि उसमें पराक्षरों और वसिष्ठों का वर्णन है। इसलिए गोत्र, ब्राह्मण जाति और वेद की तरह अनादि हैं। शक्य ब्राह्मणों की तरह गोत्र की निरूप्य स्मरण नहीं करते। अतः उनका गोत्र लौकिक ही है अर्थात् प्रसिद्धतम आदिपुरुष की ही गोत्र समझना चाहिए।”<sup>११</sup>

इस व्याख्या से स्पष्ट है कि गोत्र दो प्रकार का है—शास्त्रीय और लौकिक। शास्त्रीय गोत्र वह है जो स्मरण-परम्परा से अनादि वंश से चला आता है और लौकिक वह है जो पाणिनि के मतानुसार वंश को सूचित करता है। शक्तियों में यह गोत्र ऐसे व्यक्तियों के नाम से भी चलता था जो नये राजवंशों की स्थापना करते थे। ये राजा वंशकृत कहलाते थे। गोत्र के शास्त्रीय एवं लौकिक अर्थों के भेद की अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। मित्राक्षराकार विज्ञानेश्वर (१।५.३) भी गोत्र को वंशमूलक मानते हुए लिखता है कि गोत्र वंशपरम्परा से प्रसिद्ध होता है। मध्यकाल के निबन्धकारों ने भी गोत्र को वंशमूलक माना है (सं० प्र०, पृ० १६३)। गोत्र के अर्थ की निरुत्तर वंशमूलक व्याख्या होने से यह धारणा प्रचलित होना स्वाभाविक था कि गोत्र वंश-सम्बन्ध का ज्ञापक है। किन्तु गोत्र विषयका यह धारणा सर्वत्र में सत्य नहीं। पाणिनि की परिभाषा का गोत्र स्पष्ट रूप से वास्तविक वंश-सम्बन्ध को बताता है, किन्तु शास्त्रीय एवं प्रचलित गोत्र कृत्रिम तथा

कल्पित यज्ञ-सम्बन्ध को ही सूचित करता है। यह वास्तविक रक्त-सम्बन्ध का द्योतक नहीं है।

### गोत्र-प्रवर के ऐतिहासिक विकास की अवस्थाएँ

हिन्दू समाज में प्रचलित गोत्र और प्रवर का विचार कई अवस्थाओं में से होकर गुजरता है : (१) वैदिक युग में गोत्र का विचार बीज रूप में था। (२) ब्राह्मण ग्रन्थों के निर्माण तथा कर्मकाण्ड की बुद्धि के समय याज्ञिक प्रक्रियाओं में गोत्र और प्रवर की आवश्यकता अनुभूत हुई और इनकी यह पद्धति प्रचलित हुई। उस समय असगोत्र एवं असमान प्रवर में विवाह करने का विचार प्रचलित हुआ। (३) गोत्र के विकास की तीसरी अवस्था सूतग्रन्थों के निर्माण के समय में थी। इन ग्रन्थों ने सर्वप्रथम खुलमखुला सगोत्र विवाह की निन्दा की और उसमें कुछ हल्के प्रायश्चित्त बताये। (४) २०० ई० के पश्चात् गोत्र का अन्धम बधुत कठोर किया जाने लगा। सगोत्र विवाह को लम्बारेहण के समान पाप समझा गया। १२०० ई० तक यही दशा रही। (५) १२०० ई० के पश्चात् संभवतः सगोत्र विवाह खत्म हो गये। निबन्धकारों ने इसके प्रायश्चित्तों में कुछ शिथिलता की और विधान पारिव्रात आदि ने तो सगोत्र घर से क्याही कन्या के पुनर्विवाह की व्यवस्था की। (६) २०वीं सताब्दी से आधुनिक युग शुरू होता है। इस समय गोत्रों के कृत्रिम, अस्वाभाविक एवं परेजान कर देने वाले प्रतिबन्ध को हिन्दू समाज से हटाने का आन्दोलन शुरू हुआ। परिणामस्वरूप १९४६ ई० के ३७वें कानून के अनुसार समान गोत्र-प्रवर में विवाह को वैध माना गया और हिन्दू समाज से सगोत्रता के कानूनी प्रतिबन्ध का अन्त हो गया।

### वैदिक युग में गोत्र

इस समय गोत्र की जर्चा बहुत कम मिलती है। ऋग्वेद में गोत्र शब्द बहुत थोड़े स्थानों पर आया है।<sup>१०</sup> इसमें से चार स्थानों में तो वह पर्वत बंश का वाचक है। यहाँ गोत्र शब्द प्रायः इन्द्र की स्तुतियों में आया है और उसे पहाड़ों व बावलों का फाड़ने वाला कहा गया है। शेष स्थानों में इसका क्या अर्थ है, इस विषय में टीकाकारों में पर्याप्त मतभेद है।<sup>११</sup> आधुनिक टीकाकारों में राघ ने सेन्टीपीटस वर्ग कोश में इसका अर्थ गौओं का बाड़ा (गोष्ठ) या गोसाला किया है और मैल्डनर इस अर्थ से असहमत प्रकट करता हुआ इसका अर्थ समूह करता है। समूह वाचक गोत्र शब्द का भाव में व्यक्तियों के समूह का

<sup>१०</sup> ऋ० ६।१७।२, ६।८६।२३, १०।४८।२, १०।१२०।८, ६।१७।२ यो गोत्रमिव वक्षम्व् यो हरिष्ठाः। स इन्द्र तिस्रा अभितुषिवाजान्।

<sup>११</sup> ऋ० ६।६५।४, १०।१०३।७, २।२३।१८

<sup>१२</sup> वैदिक इंडेक्स, ख० १, पृ० २३४ पर उद्धृत

अर्थ देना सर्वथा स्वाभाविक था। किन्तु एक पूर्वज द्वारा प्रयोजित वंश परम्परा के अर्थ में गोल शब्द का आवेद में प्रयोग नहीं है। अथर्ववेद के एक मन्त्र (१।२१।३) में यह अर्थ अवश्य उपलब्ध होता है।

### मैक्समूलर की गोल विषयक कल्पना

गोष्ठवाची गोल शब्द के आधार पर मैक्समूलर द्वारा कल्पनाओं के बड़े भूतल खड़े किये गये हैं। कहा जाता है कि प्राचीन काल में बड़ी-बड़ी बस्मियाँ या मगर कम थे, जंगल बहुत थे। लोग पशु अधिक पालते थे। पितृ स्थान पर पानी और घास की सुविधा अधिक देखकर वे वहीं बस जाते थे। वही अपने पशुओं के बाड़े बना देते थे। इन पशुओं के बाड़ों को गोल कहा जाता था। बाड़े का गोल कहने का कारण यह है कि बाड़े में गौओं की रक्षा की जाती थी (गामः ग्रामन्त्रे यत्न), उनके चारों ओर दीवार आदि की बाधा खड़ी करके उन्हें हिंस्र पशुओं के आक्रमण से सर्वथा सुरक्षित कर दिया जाता था। गौओं की रक्षा न केवल हिंस्र पशुओं से करनी होती थी, किन्तु गौओं को चुराने वाले चोरों और आक्रमणों से भी इनकी रक्षा आवश्यक थी। अतः इनके चारों ओर किलेबन्दी की जाती थी। श्री मैक्समूलर ने इस मत का प्रतिपादन इस प्रकार किया है—“प्राचीन काल में बहुत सी लड़ाइयाँ इसलिए नहीं लड़ी जाती थीं कि एशिया और यूरोप के विराधी राजाओं में शक्ति का संतुलन रखा जाय। किन्तु वे लड़ाइयाँ अन्ते चरायाजों को पाने के लिए और पशुओं के बड़े-बड़े समूहों को हथियाने के लिए लड़ी जाती थीं। स्वभावतः चारों ओर किले की दीवारों से मजबूत किये गये पशुओं के इन बाड़ों ने दुर्गों का रूप धारण किया। एंग्लोसैक्सन भाषा में बाड़े के लिए (Tun) जर्मन में (Zaun) जाता था, यह शब्द बाद में (Town) बन गया। जो लोग एक बाड़े की दीवारों के अन्दर रहते थे वे एक गोल, परिवार, कबीले या जाति वाले कहलाते थे।<sup>२०</sup> जिसके गाम अधिक संख्या में पशु होते थे वह स्थान उसी के नाम से प्रसिद्ध हो जाता था। कहा जाता है कि बसिण्ड विषयमिन्न आदि गोल प्रवर्तक ऐसे ही व्यक्ति थे। बाद में किसी स्थान में अधिक सुविधा देखकर अन्य लोग भी वहीं बस जाते थे, किन्तु अब परिवार छूटा जाता था तो वे कहते थे कि हम बसिण्ड गोल अर्थात् बसिण्ड की गोशाला के हैं, या भारद्वाज गोल या भरद्वाज के गौओं के बाड़े से सम्बन्ध रखते हैं। इसका अर्थ इतना ही था कि मैं तथा उन बसिण्डादि ऋषियों के गोशालों में रहते थे। इसका यह अर्थ नहीं था कि वे उनके वंशज थे, किन्तु पास-पास रहने से इनमें पारिवारिक स्नेह का भाव उत्पन्न हो गया था। वे लोग एक-दूसरे को आप्तु के अनुसार भाई-बहिन, चाचा-भतीजा, पिता-पुत्र समझने लगे। जब एक की भाई कह दिया तो उसकी बहिन से विवाह करने का मतसब अपनी बहिन से मावी करना

था। यह अधर्म माना जाता था अतः एक गोत्र वालों में शादी न करने की प्रथा चल पड़ी।<sup>११</sup>

निःसन्देह यह कल्पना बहुत मनोरंजक है। 'गालिल विल बहलाने की क्वाल अच्छा है। किन्तु यह केवल हवाई किला है, सारी कल्पना का आधार गोत्र का अर्थ बाढ़ा मानना है। किसी प्राचीन कोष या टीकाकार ने गोत्र का यह अर्थ नहीं किया, आधुनिक टीकाकारों में भी इसके अर्थ के सम्बन्ध में मतभेद है। यह विवादग्रस्त अर्थ गोत्र के उद्गम पर प्रामाणिक प्रकाश नहीं डाल सकता।

## वैदिक युग में गोत्र पद्धति के संकेत

वैदिक साहित्य में गोत्र पद्धति का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, किन्तु इसके दो मुख्य तत्त्व महान् ऋषियों के वंशजों का अपने पूर्वजों के नाम से प्रसिद्ध होना तथा प्रवर (आर्येय) बीज रूप में धार्य जाते हैं। यही इनका कर्मः वर्णन किया जायगा।

पशुपती पूर्वजों के नाम पर वंशजों के नामकरण की पद्धति के अनेक संकेत वैदिक साहित्य में हैं। तै. सं. (१।८।१८।१) में होता को भार्येव अर्थात् भृगु की सन्तान कहा गया है। अथर्व तै. सं. (८।१।६।१) में जामदग्न्य अर्थात् जमदग्नि की सन्तान का स्पष्ट रूप से उल्लेख है। ब्राह्मण ग्रन्थों में यह बात होता है कि उस समय विभिन्न परिवारों में धार्मिक अनुष्ठान की विधियाँ एक जैसी नहीं थी। तै. शा. (१।१।४) के अनुसार भृगुओं या अंगिरसों के लिए अथर्व अग्नि का आधान 'भृगूणां (अंगिरसां) इवा देवानां इतमते इतेन दधामि' के मन्त्र से होता था और अन्य ब्राह्मणों के लिए यह कार्य 'आदित्यानां एवा देवानाम्' के मन्त्र से। तै. ब्रा. (२।२।३) में अंगिरसी प्रजा (अंगिरा की सन्तान) का उल्लेख है। ताण्ड्य ब्राह्मण में समस्त ब्राह्मण को उदुम्बर का बना हुवा प्यासा दक्षिणा में देने का विधान है।<sup>१२</sup> कौषीतकि ब्राह्मण में यह कहा गया है कि विश्ववित् यज्ञ करने वाला अपने समस्त ब्राह्मण के साथ एक वर्ष एक तक रहे।<sup>१३</sup> ऐतरेय ब्राह्मण में भी यही कथा (३।३।६) के अनुसार शुनःशेष अंगिरस (अंगिरा के वंशज)<sup>१४</sup> को जाद में विश्वामित्र ने देवराट नाम से अपना लहका बनाया। उपनिषदों में गुरु शिष्यों को प्रायः उनके गोत्रनामों से ही संबोधित करते हैं, व्यक्तियों के साथ गोत्रवाची नामों का प्रयोग होता है, जैसे भारद्वाज, गार्ग्य, आप्वलापन, भार्गव और कात्यायन (प्रश्नोपनिषद् १।१), वैशाखापाद और गोतम (छान्दोग्य ५।१४।१, ५।१६।१), विश्वामित्र, जमदग्नि, असिष्ठ, कश्यप (बृह० उप ३।२।४)।

इन सब उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि उपनिषदों के समय तक गोत्रों की पद्धति

११ ता. ब्रा. १।२।१२

१२ को. ब्रा. २।५।१५

१३ ऐ. ब्रा. ३।३।६

सुप्रतिष्ठित हो चुकी थी। वर उपर्युक्त उदाहरणों में गोवों का प्रयोग यागिक कर्मकाण्ड और शिक्षा के सम्बन्ध में हुआ है, विवाह में इसका कोई सम्बन्ध नहीं बताया गया। इस विषय में संभवतः सबसे पहले निर्देष्टा लाट्यायन श्रौतसूत्र में भिन्नता है।<sup>३४</sup> प्रायः सभी गृह्य और धर्मसूत्र संगोष्ठ विवाह का निर्देश करने हैं, इसमें यह जान होता है कि यह विचार इन सूत्रों से काफी पहले जन्म ले चुका था। प्रवर और आर्य के वैदिक निर्देशों ने इसकी पुष्टि होती है।

### प्रवर

इसका प्रथम उल्लेख वैदिक युग में दर्ज और गोर्धमाग सामक टिटियों में मिलता है। ये दृष्टियाँ अन्य सभी यज्ञों का आधार हैं, अतः इन सब में प्रवर का पाठ होता है। यह पाठ उस समय होता है, जब यज्ञ की अग्नि उदीप्त करने वाली (सामिपेनी) ऋषियों के एकदम बाव अध्वर्यु उस अग्नि पर भी डालता है। इस समय होता प्रवर का पाठ करने हुए कहता है—हे अग्नि, धू पहानू है, मुझमें ब्रह्मपति है, धू धारण, धू, ध्यावन, अप्सवान्, ऊर्व और जमदग्नि से सम्बद्ध है।<sup>३५</sup> इसके बाद निविद् सामक मन्त्र पढ़े जाते हैं, इनमें यह कहा जाता है कि अग्नि देवताओं और मनुष्यों द्वारा जलाई गयी है, वह ऋषियों द्वारा प्रसंगित तथा विप्रों द्वारा प्रसन्न की गयी है। (देवेदो मन्विदः ऋषिभ्यो विप्रानुमदिनः)। यह यज्ञों में इसी कर्मकाण्ड का अनुसरण किया जाता है और ब्राह्मण ग्रन्थों में यह जान होता है कि यहाँ होता का कार्य करने के लिए अग्नि का आह्वान किया जाता है। वह के मतानुसार संभवतः इसी कारण प्रवर ण्वर का प्रयोग किया गया,<sup>३६</sup> किन्तु बाद में इसका व्यवहार ऋषिनामों की उस सूची के लिए भी होने लगा, जो यज्ञों में पढ़ी जाती थी।

तत्तपस ब्राह्मण (१।१।१।१३) ने इस विषय को स्पष्ट करने हुए कहा दूसरे प्रकार का प्रवर बताते हुए कहा है—'होता का काम करने वाला पूर्ण अभी तक होता नहीं है, अध्वर्यु उसे होता का काम करने के लिए निमन्त्रित करता है। धी की दूसरी आहुति डालने के बाव होता कहता है—हीति, यज्ञ और ब्रह्मपति के तेज के लिए इस यज्ञ की पोषणा देवताओं में तथा मेरी पोषणा मनुष्यों में करो। इसके बाद अध्वर्यु कहता है—अग्नि देव ही दिव्य होता है, विद्वान् और जानने वाला वह देवताओं के प्रति जैसे ही गल करे जैसे मनु ने, जमदग्नि ने, ऊर्व ने, अप्सवान् ने, ध्यावन ने तथा ब्रह्मा ने किया था, वह न देवताओं को यहाँ लाये—अमुक पुरुष मानवीय होता है। यह स्पष्ट है कि यहाँ प्रवर

<sup>३४</sup> लाट्या. श्रौ. सू. ५।२।१।१

<sup>३५</sup> तै. सं. २।५।६

<sup>३६</sup> अथ— प्र० पु०, पु० ६

का सम्बन्ध अग्नि में है ३७ किन्तु इसमें मन्वेद नहीं कि यह मानवीय होना का वर्णन है, क्योंकि उने मनु की भाँति यज्ञ करने को कहा गया है ।

इसमें यह प्रकट होता है कि प्रवर यज्ञ में अग्नि को दमन के लिए की गयी प्रार्थना है ३८ और यह दो प्रकार की होती है : (१) होता द्वारा की जाने वाली, (२) अध्वर्यु द्वारा की जाने वाली । पहली प्रार्थना में वसव ऋण जाने आध्वनीय अग्नि को भारीव, रघानव, आणवानु, और्य तथा जामदग्न्य नामक पाँच मन्त्रद्वारा ऋषियों के नाम जाने प्रवर से संबोधित करने हैं । इस प्रकार संबोधित अग्नि उनके हृष्य को देवताओं तक पहुँचाना है, अन्तर्गत नहीं, ऐसा मानकर होता अग्नि से प्रार्थना करता है । दूसरी प्रार्थना में अध्वर्यु द्वारा मन्त्रद्वारा ऋषियों का नाम उनसे क्रम से लेकर प्रार्थना करता है जैसे जमदग्निवत्, ऊर्ध्ववत्, आणवानवत्, ज्योतनवत्, भृगुवत्, । अध्वर्यु द्वारा पड़े गये प्रवर में ऋषियों के नाम यज्ञस्थान में ऊपर की ओर अर्वाचीन तथा ऋषियों में प्राचीन वंशजों की ओर खरने है और होता मूलभूत प्राचीन ऋषि से प्रारम्भ कर क्रम से उनके बाद के अर्वाचीन ऋषियों के नामों का पाठ करता है । ३९ इस प्रकार सर्वत्र दो प्रकार के प्रवरों का पाठ होता है, पहले में ऋषि नामों का क्रम प्राचीन से अर्वाचीन की ओर होता है तथा भार्यव सखि सुखों का प्रपात होता है, दूसरे में ऋषिनाम अर्वाचीन से प्राचीन की ओर पड़े जाते जाते हैं और इन नामों के साथ वत् का प्रयोग होता है ।

प्रवर को बाद में आप्य भी कहा जाता था । श्रुवेद में केवल एक बार आप्य स्रज का प्रयोग है और वहाँ इसका अर्थ है ऋषि से सम्बन्ध रखने वाला । ऋ० १।६।७।११ में यह प्रार्थना की गयी है आप पवित्र करने वाले हैं, आप हमें धुलोक और भूलोक को उत्तम वस्तुएँ भेजिए, विशेष रूप से ऐसी वस्तु जिसे हम अमरिणी की भाँति ऋषि सम्बन्धी सम्पत्ति प्राप्त कर सकें । वैदिक युग में गोल और प्रवर की पद्धति अधिक विकसित नहीं हुई थी, प्रवरों का विशेष सम्बन्ध वाजिक कर्मकाण्ड से था । गोल और प्रवर प्रधान रूप से ब्राह्मणों में अधिक प्रचलित थे क्योंकि ये वाजिक कर्मकाण्ड किया करते थे ।

२७ संस्काररत्नमाला (पृ० ४१६) में प्रवर को अग्नि का विशेषण मानते हुए प्रवर को यह व्युत्पत्ति की है—“प्रविश्यते अग्नेर्विशेषणत्वेनोत्कीर्त्यते इति प्रवरः”, ऋषियों के नाम अग्नि का विशेषण होने से प्रवर कहलाते हैं ।

२८ प्रवरमंजरी (गोवि० पृ० ६) आहवनीयस्या ऐहं व्यवहृत्य ताम्नः... प्रकथेण वर-जानि प्रार्थनानि प्रवराः ॥

२९ औघायन-प्रवराध्याय—अथात ऊर्ध्वानध्वर्युर्वशीतेऽमृतोऽर्वाचो होतेष एवोभयोः सर्वोद्देशः । इस पर प्रवरमंजरी की टीका (पृ० १०) अतो यजमानादूर्ध्वान् मन्त्रवृत्तिभरम्यवहितान्—आहवनीये प्रार्थयते । अमृतो मूलभूतादूर्ध्वोराभ्यावग्मि-तामन्त्रवृत्ताः अध्वर्युः प्रवरकमविपर्ययक्रमेण तदपरासंबन्धेन प्रार्थयते तमेवाग्निम् ।

यह कल्पना होता और अध्वर्यु के ऊपर बताये गये प्रवरों के दोनों प्रकारों में भी पुष्ट होती है। होता के प्रवरों में अध्वियों के नाम व्याकरण की वृद्धि के साथ मार्गव आदि के रूपों में पाये जाते थे और अध्वर्यु के प्रवरों में वत् शब्द के साथ। पहले में होता को अपना कार्य करने के लिए निमन्त्रित किया जा रहा है, अग्नि प्राचीन काल से देवताओं का होता रहा है, मनुष्य को होता बनाने से अफ के शयनानुसार अग्नि को ईर्ष्या और नाराजगी होता स्वाभाविक है। अतः शतपथ ब्राह्मण कहता है।<sup>30</sup> कि पहले अग्नि का नाम लेकर उसे प्रसन्न किया जाता है। अध्वर्यु के द्वितीय प्रकार के प्रवर में वत् शब्द का प्रयोग यह सूचित करता है कि यह याज्ञिक कर्म ठीक वैसे ही किया गया है जैसे भृगु ने किया था, अतः यह भृगु के यज्ञ के सदृश ही प्रभावशाली और सफल होगा।<sup>31</sup>

प्रवर के प्रयोजन की यह व्याख्या मैक्समूलर और चित्तसलराव द्वारा की गयी इसके प्रयोजन की व्याख्या से सर्वथा भिन्न है। पहले विद्वान् के शब्दों में "जब ब्राह्मण अग्न्याधान करता है तो वह यह घोषणा करना चाहता है कि वह यज्ञ कर्म के लिए अपने पूर्वजों के वंशवा योग्यता रखता है।"<sup>32</sup> चित्तसलराव का कथन है कि प्रत्येक ब्राह्मण जब कोई धार्मिक कार्य, अपनी सन्ध्योपासना या देवताओं का आह्वान करना है तो उसे अपने परिवार के संस्थापक महत्त्वपूर्ण पूर्वजों के नामों का उच्चारण करना पड़ता है ताकि वह यह प्रदर्शित कर सके कि योग्य पूर्वजों का उत्तराधिकारी होने के नाते वह उस कार्य को करने का उपयुक्त और अधिकारी व्यक्ति है।<sup>33</sup> अतः हम मत के अनुसार धार्मिक कार्य के लिए अपनी योग्यता सिद्ध करना ही गोंडांधारण का प्रधान प्रयोजन है। किन्तु यह अफ द्वारा बताये पहले उद्देश्य की तुलना में परमार्थ नहीं प्रतीत होता। अफ ने अपने उपर्युक्त प्रयोजन के समर्थन में निम्न प्रमाण दिये हैं।<sup>34</sup>

वैदिक साहित्य में बहुधा विभिन्न नामों के साथ वत् शब्द के प्रयोग द्वारा अपने कार्य को प्राचीन यज्ञस्थी स्थितियों के कार्यों के समान प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण बनाने का वर्णन है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि मैं अग्नि, कण्व और जमदग्नि की भाँति कुमियों को मारता हूँ, अगस्त्य की बहुशक्ति से क्रीड़ों को खूँ करता

30 शतपथ ब्राह्मण १।४।२।३ यहाँ वास्तव में तिहुते शब्द का प्रयोग है, इसके अर्थ के लिए दे० अफ—पृ० १०, पृ० १७।

31 अफ, वही, पृ० १८ अनु०

32 मैक्समूलर—हिस्टरी आफ़ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३८६

33 चित्तसलराव—गीत एण्ड प्रवर पृ०, मि० मोनिवर बिलियम्स ब्राह्मणिक एण्ड हिन्दूइज्म (१८८७), पृ० ४०६०

34 अफ—पृ० १०, पृ० १८ अनु०

हैं।<sup>३४</sup> अन्यत्र अग्नि से अथवा की भाँति मनुष्य को मारने के लिए कहा गया है (ऋ० १७।८७।२, अथर्व. २।३।२१)। अथर्व. १।१४।४, २।३३।७, ४।३०।१, ६।४०।१, ६।४२।१ में इस प्रकार के उदाहरण हैं। इन सबमें पुराने प्रतिष्ठित नामों का प्रयोग इसलिए है कि इनके नाम के प्रभाव से अभीष्ट परिणाम उत्पन्न हों।

गम्वेदी के निर्माण (अग्निचयन) में इस बात का बारम्बार वर्णन है कि यह कार्य अंगिरा की भाँति (अगिरस्वत्) किया आ रहा है (तै. सं. ४, मं. सं. ३, यजुर्वेद अध्याय ११)। ऋग्वेद में इसका बहुशः उल्लेख है (१।६२।१, १।७८।३, २।१७।१, ६।४६।११)। इसी प्रकार मनुस्वत् का उल्लेख ऋग्वेद में निम्न स्थलों में है—१।४४।११, ४।३०।३, ४।४१।१, ७।२।३, ८।४३।२७, १०।७०।८। अतिवत् के उदाहरण ४।४।६, ४।७।८, ४।२२।२१, ४।४१।८-१० में पाये जाते हैं और जमदग्निवत् के ६।६७।४१ में। अनेक स्थलों में कई नामों का इकट्ठा प्रयोग है, जैसे ऋ० १।३१।१७ में मनुस्वत्, अगिरस्वत्, और यदातिवत्, ऋ० १।४४।३ में प्रियमेधवत्, अतिवत्, विरुधवत् और अगिरस्वत्, ऋ० ७।६६।३ में जमदग्निवत्, ८।४०।१२ में मान्धातुवत्, अगिरस्वत्, पितृवत्, ८।४३।१३ में भृगुवत्, मनुस्वत्, अगिरस्वत्। इन सबमें अपने वर्तमान कार्य की प्राचीन अस्तिमों के तत्सदृश कार्यों से तुलना करते हुए उसे प्रभावशाली और गौरवपूर्ण बनाने का प्रयत्न है।

उपर्युक्त उदाहरणों से दो बातें स्पष्ट होती हैं, पहली तो यह कि यथाति, प्रियमेध, यम और अथवा (अथर्व. १।१४।४) के अपवादों को छोड़ कर सर्वत्र प्रायः ऊन्हीं ऋषियों का नामोल्लेख है, जो प्रवरों में पाये जाते हैं। दूसरी यह कि इन उदाहरणों में ऐसे ऋषियों की भी एक साथ गिना दिया गया है, जो प्रवरों में पुषर्क रूप से पठित है। केवल ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल में अतिवत् के उदाहरण परवर्ती प्रवरपद्धति से थोड़ा सादृश्य रखते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि उस समय प्रवरपद्धति बीच रूप में विद्यमान थी।

### प्रवर पद्धति के वैदिक निर्देश

ऋग्वेद के दो स्वतन्त्र वैदिक युग में प्रवर पद्धति के स्पष्ट प्रमाण हैं। आठवें मण्डल के एक मन्त्र (१०।२।४) में और्वे, भृगु और आप्तवान् की भाँति अग्नि के आह्वान का पहले वर्णन हुआ चुका है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इसी सूक्त में प्रवर विधि में सादृश्य रखने वाले अनेक अंश हैं यद्यपि ये ऋग्वेद के अग्नि-विषयक अन्य सूक्तों में भी पाये जाते हैं, किन्तु इनका यहाँ पाया जाना केवल आकस्मिक नहीं है। इस सूक्त (८।१०।२) का दूसरा मन्त्रैति० सहित्वा के देवान्यशत् (तै० सं० २।४।११) से मिलता है। १७ वे, १८ वे मन्त्र में हव्यवाह अग्नि का वर्णन परवर्ती आहवनीय अग्नि (तै० सं० २।४।८।६-७)

३४ अथर्व २।३२।३, ४।२३।१० अतिवत् कः कुषीणा हन्ति कण्वचजमदग्निवत् ।  
अगस्त्यस्य बहृणा तपिपत्न्यहं कुषीन् ॥



से सादृश्य रखता है। इस सूक्त के विनियोग का अवसर अग्नि को यज्ञाने में है (मंत्र २२)। पहले यह बताया जा चुका है कि प्रवर का सम्बन्ध सामिधेनी ऋचाओं में है। यह सूक्त परध्वी प्रवरविधि का मूल या बीज प्रतीत होता है। ऐसे ही सूक्तों से बाद में सामिधेनी ऋचाएँ निकाली गयीं। ऋक के शब्दों में संभवतः प्रवर का प्राचीन रूप सामिधेनी सूक्त में ही था।

ऋग्वेद में प्रवर का दूसरा उदाहरण खिल सूक्तों में मुमेषवसूक्त (ऋ० १०।१५१ के बाद) है। इसके दूसरे मन्त्र में कहा गया है—“अग्निं निश्चितं रूपं मे हमारो दूतं है, हव्यं मे जाने वाला है, वह देवताओं को इस यज्ञ में यहाँ लाये, वह विघ्न, अशुभ, गन्ध, पूजनीय और कवि है, वह अजवान्, शीर्ष, भुगु और असदग्नि की जाति कार्य करे।”<sup>१४</sup> इस मन्त्र में परध्वी प्रवर विधि से सादृश्य रखने वाले वाक्यांक “अग्निर्नो दूतां, हव्यवाह, देवान् आवक्षद्” हैं। इस सूक्त में पड़े गये नाम बाद के प्रवरों में वही समानता रखते हैं, इसमें केवल च्यवन का नाम नहीं है। यह सूक्त हमें अपूर्ण रूप में मिलता है, संभवतः इसके प्राचीन पूर्ण रूप में ऐसा पाठ रहा हो।<sup>१५</sup> इससे यह स्पष्ट है कि उस समय प्रवर पद्धति निर्माणावस्था में थी।

उपर्युक्त दोनों उदाहरण जामदग्न्य भुगु गोत्र से सम्बन्ध रखते हैं। गूढ साहित्य में सर्व प्रथम इसी गोत्र का वर्णन आता है। इन दोनों वातों से यह परिणाम निकाला जा सकता है कि सामिधेनी ऋचाओं में प्रवर के प्रयोग की विकसित करने वाले पहले व्यक्ति भुगु गोत्र के थे। यह तथ्य इस बात से भी पुष्ट होता है कि वैदिक साहित्य में अग्नि सम्बन्धी कर्मकाण्ड से भुगुओं का विशेष सम्बन्ध बताया गया है।

उपर्युक्त तथ्यों की दृष्टि में रखते हुए ऋक ने यह परिणाम निकाला है कि प्रवर पद्धति आरम्भिक ब्राह्मण काल से पहले विकसित हुई। इसका विकास ऋग्वेद के पिछले सूक्तों के समय हुआ।<sup>१६</sup>

अथर्ववेद के दो स्थलों से यह प्रतीत होता है कि उस समय इस पद्धति का काफी विकास हो चुका था। अथर्व १०।३।१४-१५ में पितृमेघ सूक्त के माध्य में काश्व, कर्श्वान्त, अत्रि गोत्र के आश्रय, आर्चनान्त, प्रयागारय; अगस्त्य गोत्र के आगस्त्य, माहेन्द्र, वायो-भुव; कश्यप के काश्यप, मायत्सार, आसित; वसिष्ठगोत्र के कुण्डिली के वसिष्ठ,

<sup>१४</sup> श्रुवं अग्निर्वो दूतां रोदसी हव्यवाह देवान् आवक्षदधरे विप्रो दूतः परिष्कृतो यक्षो यजनीयः कविः अज्वानवद् शीर्षवद् भुगुवज्जमवगिवत्

<sup>१५</sup> ऋक—पृ० पु०, पु० २२-२३ ऋक के कयतानुसार यह खिलसूक्त उस समय का है जब ऋग्वेद का निर्माण लगभग पूरा हो चुका था, पर यजुर्वेद की निश्चित रूप तर्ही मिलता था।

<sup>१६</sup> ऋक—पृ० पु०, पु० २४

पुरुषोद्भ, अमरत्व, स्वावाप्त्य, मोक्षरि, अर्चना, विष्णुमित्र, जपदग्नि, अग्नि, कश्यप, वामदेव, वसिष्ठ, भारद्वाज और गौतम का उल्लेख है। ये सब पूर्वजों के रूप में स्मरण किये गये हैं। इनमें सोभरी तथा पुरुषोद्भ के अतिरिक्त सभी मुख्य गोत्रों या उनके गोत्रों में उल्लिखित हैं। इसमें बड़ी सूची अथर्व. ४।२६।३-६ में पायी जाती है। यह उस प्रकार है—अंगिरा, भारिष्ठ, अमरदग्नि, अग्नि, कश्यप, वसिष्ठ, स्वावश्व, अर्च्युश्च (पुरुषोद्भ), अग्नि (विमर, सप्तर्षिश्च), भारद्वाज, गोविष्टर, विष्णुमित्र, कुत्स, कशीयन्त, कण्व, (मैघातिथि, अशोक), उषावा (काण्व), गौतम, मुद्गल। इनमें कोष्ठों में दिये नामों के अतिरिक्त शेष सभी पर्यायी प्रवराध्यात्यों में पाये जाते हैं। यह तन्म उस समय प्रवर पद्धति के विकास को सूचित करता है।

### प्रवर चुनने की स्वतन्त्रता

करन्दीकर ने यह गिद्ध करने का यत्न किया है कि वैदिकयुग में व्यक्ति को अपना प्रवर या अध्वि चुनने की पूरी स्वतन्त्रता थी, क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थों में सर्वत्र "आपोम प्रवृणीते" (आपोम को चुनता है), का वाक्य मिलता है। प्रवर शब्द का मूल वरत्तार्यक वृ धातु है। प्राचीन प्रवर वर्ण-परम्परा सम्बन्ध का चोटक नहीं, किन्तु कर्मकाण्ड के विशिष्ट सम्प्रदायों का बोधक था।<sup>४३</sup> करन्दीकर की यह कल्पना निम्न कारणों से ठीक नहीं प्रतीत होती।

प्रवर का मूल अर्थ विशेष प्रार्थना है, प्राचीन यज्ञों में इस शब्द का प्रयोग प्रवर के अध्वियों के लिए नहीं, किन्तु अग्नि के लिए हुआ है। प्रवरमंजरी में इस पर विवाद विचार करते हुए कहा गया है कि 'वृणीते' का कर्म अग्नि है, न कि अध्वियों के नाम।<sup>४४</sup> तै. सं. के एक प्रतिष्ठ संदर्भ से इसी प्रकार का प्रयोग है। इसमें कहा गया है कि क्षीत अग्निर्वा है—देवीं तद हवि जे आने वाली, पितरों को उनका भाग पहुँचाने वाली तथा असुरों के साथ रहने वाली। वे दोनों यह कहती हैं कि वह मुझे चुनेगा। वह कहता है—हव्य का बहुत करने वाली अग्नि को चुनो, यह देवी की अग्नि को चुनता है, वह अध्वियों के साथ सम्बन्ध को नहीं छोड़ता और यह उसके वैराग्य या स्थिरता को बढ़ाती है।<sup>४५</sup> यह प्रवर पद्धति का एक प्रधान मंत्र है, इससे यह स्पष्ट है कि चुनाने अग्नि का है, अध्वि के नामों का नहीं है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि धरण शब्द चुनने का वर्ष देने वाली वृ धातु से बना है। किन्तु इसके प्रयोग के सम्बन्ध में हमें वैदिक भाषा की प्रवृत्ति का भी ध्यान रखना

<sup>४३</sup> हिन्दू एक्सोगेनी, पृ० ५६-५६

<sup>४४</sup> प्रवरमंजरी, पृ० ६-८

<sup>४५</sup> तै. सं. २।१।८

चाहिए। वेदों में भक्त अनेक बार यह कहता है—हे अग्नि, हम तेरा वरण करते हैं। यहाँ वरण का यह अर्थ नहीं है कि हम अनेक देवताओं में से अग्नि को चुनते हैं, इसका तात्पर्य केवल इतना ही है कि हम अग्नि की शरण में जाते हैं या उसकी उपासना करते हैं। अग्नि के वरण का यह तात्पर्य नहीं है कि भक्त किसी अन्य देवता को भी चुन सकता था। 'भूषीते' का प्रयोग उपासना के अर्थ में होना चाहिए, चुनाव के अर्थ में नहीं।<sup>४२</sup>

शतपथ ब्राह्मण (१।४।२।३) में वृणीते के स्थान पर प्रवृणीते का प्रयोग<sup>४३</sup> उपर्युक्त धारणा को पुष्ट करता है। प्रवृणीते शब्द का चुनने के अर्थ में कोई सम्बन्ध नहीं है। ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रायः यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि वे संज्ञाओं को क्रियाओं (धातुओं) के रूप में प्रयुक्त करते हैं।<sup>४४</sup> प्रवृणीते इसका सुन्दर उदाहरण है। यह प्रवर शब्द से बनायी गयी धातु (क्रिया) है और इसका अर्थ है कि वह प्रवर का पाठ करता है। इस अर्थ की पुष्टि उपर्युक्त संदर्भ में अर्वाक् शब्द से भी होती है, क्योंकि इस अर्थ में यह क्रिया अकर्मक होगी। इसीलिए तै. सं. (२।४।५) के कर्मवाची 'अर्वाक्' के स्थान पर शतपथ ब्राह्मण में इस संदर्भ में 'अर्वाक्' अव्यय का प्रयोग हुआ है।

शतपथ ब्राह्मण का यह स्थल प्रवर के वंशमूलक होने का भी निर्देश करता है। इससे उत्तरार्ध का अनुवाद इस प्रकार है—"वह प्रवर को मरने छोर से इस ओर तक पढ़ता है, क्योंकि वंश का विस्तार दूर के सिरे से इस ओर तक होता है, इस प्रकार वह अपने को बड़े लोगों के स्वामी के (कोप से) छुपाता है। यहाँ पिता सबसे पहले, पुत्र उसके बाद और पीछे उसके बायें भाता है, अतः वह प्रवर का पाठ पहले छोर से इस ओर तक करता है।" इसमें पिता-पुत्र की उपमा से यह स्पष्ट है कि प्रवर याज्ञिक कर्मकाण्ड के सम्प्रदाय मान नहीं के किन्तु कुछ लोगों में वंशसूचक भी अवगम थे।

उपर्युक्त तथ्यों की दृष्टि में रखते हुए करनेवादी की यह कल्पना मुक्तिपुक्त नहीं प्रतीत होती है कि प्रवर शब्द का अर्थ यह सूचित करता है कि यजमान को अपना प्रवर चुनने में पूरी स्वच्छन्दता थी और प्रवर याज्ञिक सम्प्रदाय मान है, वंश परम्परा में इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।<sup>४५</sup>

वैदिक युग के आरम्भ में बीज रूप में तामी जाने वाली पद्धति इस युग के अन्त तक काफी विकसित हो गयी थी। ऊपर बताये गये आश्वलायन, आपस्तम्ब और मौध-

४२ अफ—पृ० पु० पृ० १४

४३ शतपथ ब्राह्मण १।४।२।३

४४ उदाहरणार्थ किसी वस्तु को धों के साथ मिलाकर तैयार की गयी हवि को सान्नाय्य कहते हैं, इस प्रकार की हवि देने के लिए सन्नयति का प्रयोग होता है, अग्न्याधान के लिए आदध्याति किया रूप का प्रयोग होता है—अफ—पृ० पु०, पृ० १४

४५ इस विषय में विस्तृत विवेचन के लिए दे० अफ—पृ० पु०, पृ० १०-१६

सन के प्रवराध्याय और गोत्रों की सूचियाँ इस तथ्य की भली भाँति पुष्ट करती हैं। पहले आठ बड़े गोत्रों का उल्लेख किया जा चुका है। यही इन सूचियों की कुछ विशेष बातों का उल्लेख किया जायगा।

आठ गोत्रों में से विस्तार की दृष्टि से भूमि तथा अगिरामण उल्लेखनीय हैं। भूमि दो प्रकार के हैं—जामदग्न्य और अजामदग्न्य। जामदग्न्य भूमिओं के पुनः दो प्रकार हैं:— (क) यम तथा विद जामदग्न्य कहलाते हैं, (ख) आश्विपेण, यरुक्, मिश्रयु वैश्य और धनुक् केवलभूमि कहलाते हैं। बौधायन के अनुसार यम, विद और आश्विपेणों के प्रवर में पाँच ऋषियों का नाम होता है, ये परस्पर विवाह नहीं कर सकते। अगिरामण के तीन विभाग हैं—गौतम, भरद्वाज और केवलागिरस। गौतम के सम्बन्ध में बौधायन और वैश्वानस की तथा आपस्तम्ब, कात्यायन आदि की सूची में बहुत अन्तर है। पहली सूची के अनुसार गौतम गोत्र के सात विभाग या गण हैं और दूसरी सूची के अनुसार इस १४ बौधायन के मत में भारद्वाजों के चार ही भेद हैं—भरद्वाज, रोषामण, गर्ग और कपि। आपस्तम्ब, आपस्तम्ब और कात्यायन इनमें शुभ, शैशिर का भी उल्लेख करते हैं। १० केवलागिरस के उपविभाग हारीत, कण्व, रवीवर, विष्णु वृद्ध, मुद्गल और संस्कृति हैं। अत्रि बहुत छोटा गोत्र है, उसके उपविभाग केवल चार (अत्रि, वाचभूतक, गविष्ठिर, तथा मुद्गल हैं। त्रिवामित्र गोत्र विविध सूत्रकारों के अनुसार उन्नीस उपविभागों में बँटा हुआ है। कश्यप गोत्र के पाँच उपविभाग विष्णु कश्यप, रेव, सण्डिल, लौमाशि और शांशमित हैं। वसिष्ठ गोत्र निम्न सात उपभेदों में बँटा हुआ है—वसिष्ठ, कुशिन, उपमन्यु, पराशर, जातुकर्ण, संकृति पूतिमास, लोहिण्य। अमत्य गोत्र के सात उपभेद में हैं—इध्मवाह, सोमवाह, सोषवाह, यज्ञवाह, अगस्ति, गौर्गमास और हिमोदध। १५ आठ गोत्रों के इन सब उपविभागों या गणों में प्रायः प्रत्येक में अनेक गोत्र हैं और इनके नामों और संख्या के सम्बन्ध में विभिन्न प्रवरासूचियों में बड़ा मतभेद है। १६

सगोत्रता और समानप्रवरता दोनों पृथक् और स्वतन्त्र रूप से विवाह में बाधक होती हैं। यद्वा के लिए असगोत्रा होने के साथ-साथ असमानप्रवर होना भी आवश्यक है। गोत्र की समानता न होने पर भी यदि वर-वधू का प्रवर एक है तो विवाह नहीं हो सकता। इसी प्रकार प्रवर की समानता न होने पर भी यदि दोनों का गोत्र एक है तो परिणय संभव नहीं है। उदाहरणार्थ, यरुक्, वाधूल, मीन और मौक गोत्रों के नामों में भिन्नता होते हुए भी विवाह नहीं हो सकता, क्योंकि इन सबका प्रवर एक ही अर्थात्

१४ ब्रह्म—पृ० ३०, पृ० ३२-३३

१५ वही, पृ० ३१

१६ वही, पृ० ३७

१७ इसका विस्तृत विवेचन ब्रह्म की उपर्युक्त पुस्तक में पृ० ७६-१६४ पर है।

भार्गव वैतह्य्य सावैतस है।<sup>४०</sup> प्रवर में एक, दो, तीन या पाँच ऋषियों के नाम होते हैं। अब यह कहा जाता है कि प्रवर की समानता नहीं होनी चाहिए, तो उसका यह अर्थ होता है कि दो प्रवरों में एक ही ऋषि की समानता पर्याप्त होती है, इसमें केवल भृगु, अंगिरास ही अपवाद हैं। बौधायन के शब्दों में तीन ऋषियों के नाम वाले प्रवरों में दो ऋषियों के नामों का सादृश्य होने से, पाँच ऋषियों के नाम वाले प्रवरों में दो ऋषि-नामों की समानता होने से विवाह नहीं हो सकता।

एक ऋषिनाम की समानता से भी संश्लेष्य होती है। किन्तु भृगु और अंगिरास शर्तों में यह नियम नहीं लागू होता। इन दोनों शर्तों में पाँच ऋषियों के नाम वाले प्रवर में तीन ऋषियों की तथा तीन ऋषियों वाले प्रवर में दो ऋषियों की समानता से विवाह नहीं हो सकता। पहले बताये गये वरुण, विद और आश्विपुत्र शर्तों के पाँच ऋषियों के प्रवर में तीन ऋषि नाम—भार्गव, व्यावन, आप्तवान एक श्रेष्ठ है, अतः इनमें विवाह नहीं हो सकता।

### प्रवर में ऋषियों की संख्या

अधिकांश शर्तों के प्रवर, व्याख्येय अर्थात् तीन ऋषियों के नाम वाले हैं। कुछ शर्तें एकार्षेय, द्वार्षेय और पंचार्षेय भी हैं। एक ऋषि वाले मुख्य प्रवर निम्न हैं— आपस्तम्ब, आश्वलायन और वैश्वामित्र के अनुसार मित्रयु शर्त का प्रवर बाध्यशब्द है।<sup>४१</sup> बसिष्ठ शर्त के अन्तर्गत उसके एक उपभेद बसिष्ठ का प्रवर भी एकार्षेय बसिष्ठ है। बौधायन तथा वैश्वामित्र जुगक का शौनक तथा आपस्तम्ब और कात्यायन गृह्यसूत्र का गृह्यसूत्र प्रवर कहते हैं। इसकाही का प्रवर आपस्तम्ब के अनुसार आगस्त्य है।<sup>४२</sup> विश्वामित्र शर्त के अनेक शर्तों के प्रवर द्वार्षेय या दो ऋषियों के नाम वाले हैं, जहाँ—गुरग शारिष्ठापयन्त (वैश्वामित्र और पीरणा, बौधायन के अनुसार) शिरण्यरेतस् (वैश्वामित्र, हरण्यरेतस्), मागवधर्मसूत्र के अनुसार, सुबर्मरेतस्, कपोतदेव, मृतकौशिक के वैश्वामित्र के अतिरिक्त हरण्यरेतस्, सौवर्मरेतस्, कपोतदेव शारिकौशिक प्रवर, अष्टकलौहित के वैश्वामित्र और अष्टकलौहित्य (आश्वलायन के अनुसार)। तीन ऋषियों वाले प्रवरों की संख्या बहुत अधिक है। अत्रि, अगस्त्य, कश्यप, बसिष्ठ, विश्वामित्र, केवलांगिरस, भरद्वाज और गौतमकेवल शर्तों के अधिकांश शर्तों के प्रवर व्याख्येय हैं, उदा०

४० आश्वलायन, प्रवरमंजरी (वे. प्रे. पृ० २८)

४१ ब्रह्म—पृ० पु० पृ० २५ आश्वलायन के अनुसार इसके तीन ऋषि (वैश्वामित्र, मातृच्छन्दस, आप्तक) हैं।

४२ आश्वलायन और कात्यायन के अनुसार अजामदग्न्य शर्तों का प्रवर द्वार्षेय (भार्गव, अत्रि, जामदग्न्य) है (ब्रह्म—पृ० पु० पृ० ३१)

मैत्रावरुण और कौण्डिन्य; विश्वामित्र गोत्र के वैश्वामित्र, दीवस्त, औरत, केवला-  
निरस के हारीत गोत्र के आगिरस, आम्बरीश, दीवनाश्व; भरद्वाज के आगिरस,  
बाहुस्पत्य, भारद्वाज; गौतम गोत्री आपस्तम्ब के आगिरस, आपस्त्य, गौतम; केवल  
भृगु गोत्री यस्को के भार्गव, वैतहृष्य, साकेतस ।

चार ऋषि नामों वाले प्रवर नहीं होते । पाँच ऋषि नामों वाले पंचार्षेय प्रवरों  
के प्रसिद्ध उदाहरण भृगु (जमदग्नि) गोत्र के निम्न गण हैं—वास (बौधायन के अनु-  
सार), भार्गव, व्यावन, आप्तवान्, और्य, जामदग्न्य; वेद (भार्गव, व्यावन, आप्तवान्,  
और्य, वैद); आर्षिप्रेष (भार्गव, व्यावन, आप्तवान्, आर्षिप्रेष, आनूय); वैश-  
निमार्यत वस्त-गुराधस्त और वेद । विष्वज्योति के भार्गव, व्यावन, आप्तवान् के अति-  
रिक्त क्रमशः वेद और वैमघित, वस्त और पौरोद्यत तथा वेद और विश्वज्योतिष प्रवर  
हैं ।<sup>४३</sup> बौधायन और वैश्वानस धर्मसूत्र के अनुसार गौतम गोत्र के कौमण्ड और दीर्घत  
मा गणों के प्रवर आगिरस, औचक्ष्य, काशीवत और गौतम नामक चार सामान्य ऋषियों  
के साथ-साथ कौमण्ड और दीर्घतमस नामक पाँचवें ऋषि नाम वाले भी हैं । भरद्वाज गोत्र  
के वैश्वामित्र और यश गोत्र के प्रवर भी पंचार्षेय हैं, इनसे दोनों के तीन ऋषि आगिरस,  
बाहुस्पत्य और भारद्वाज तो एक जैसे हैं, दोष दोनों क्रमशः बान्दन और मातवचस तथा  
शैव्य और गार्ग्य हैं । आपस्तम्ब सूत्र के अनुसार एक प्रवर में तीन से अधिक सप्तर्षि  
ऋषि नहीं होते चाहिए,<sup>४४</sup> अतः प्रवर में ऋषियों की संख्या समाहित है । किन्तु गोत्रों  
में ऐसी कोई पाबन्दी न होने से इनकी संख्या निरन्तर बढ़ती चली  
गयी ।

प्राचीन सूत्रकार उपर्युक्त गोत्रों के प्रवरों के ऋषियों की संख्या तथा नामों  
में बहुत मतभेद रखते थे । सबसे अधिक मतभेद सम्भवतः करण गोत्र के शाण्डिल्य  
गण के सम्बन्ध में है, बौधायन और वैश्वानस धर्मसूत्र के अनुसार इसके प्रवर में काश्यप,  
आवस्तार और शाण्डिल्य ऋषि हैं; आपस्तम्ब के अनुसार शाण्डिल्य आसित और  
दैवत; मानव, कात्यायन और लौगाक्षि के अनुसार काश्यप, आसित और दैवत ।  
किन्तु आपस्तम्ब और सूत्र इसके प्रवर में दो ऋषि नाम ही मानता है—दैवत और  
आसित ।<sup>४५</sup>

द्विगोत्र कुल—कुछ परिवार द्विगोत्र अर्थात् दो गोत्रों से सम्बन्ध रखने वाले  
माने गये हैं । आपस्तम्ब और सूत्र ने इन्हें द्विगोत्रवाचन कहा है ।<sup>४६</sup> कात्यायन और

४३ ये सब उदाहरण त्रय की पूर्वोक्त पुस्तक पृ० ३१-३७ से लिये गये हैं ।

४४ आप. श्रौ. सू. २४।५-६

४५ अफ—पृ० ५०, पृ० ३६

४६ प्रवरमंजरी (ब. प्रे.) पृ० ४५

लौगाशि इन्हें द्रवामुष्मामय कुल कहते हैं।<sup>५०</sup> ऐसे कुली में तीन उत्पत्तीय हैं—  
 शौग शौगिरि, लौगाशि और सकृत्। भरद्वाज गोत्र का एक उपविभाग शुग है, इस  
 गोत्र के एक पुत्र ने विमोह द्वारा विष्णुमित्र गोत्र के एक उपविभाग शौगिरि गोत्र  
 की स्त्री से एक पुत्र उत्पन्न किया, दो गोत्रों से सम्बन्ध रखने के कारण यह पुत्र शौग  
 शौगिरि कहलाया। भरद्वाज और विष्णुमित्र गोत्रों के साथ सम्बन्ध होने के कारण  
 इस कुल के व्यक्ति इन दोनों गोत्रों में विवाह नहीं कर सकते। आप० और जाश्व० के  
 अनुसार इसका प्रवर आगिरस—बाहंस्वरय भारद्वाज, कात्य-आत्कील है। कात्यायन  
 और लौगाशि तथा मानव सूत्र के अनुसार यह आगिरस—बाहंस्वरय भरद्वाज-  
 शौग शौगिरि है। इन प्रवरों में पहले तीन तो भरद्वाज गोत्र के ऋषि हैं और कात्य या  
 आत्कील विष्णुमित्र गोत्र से मिले गये हैं। लौगाशि बड़ा मनोरंजक द्विगोल है, यह  
 वसिष्ठ और कश्यप गोत्रों में सम्बन्ध है। बौधायन, कात्ययन, वैश्वानस और मानव  
 तथा मत्स्यपुराण के अनुसार इनके प्रवर में तीन ऋषि हैं, इनमें से दो कात्ययन और  
 आत्सार कश्यप गोत्र के हैं और तीसरा ऋषि वसिष्ठ गाल कर है। (ब्रह्म-पू०  
 पु०, पृ० ३६)। बौधायन के कथनानुसार में दिन में वसिष्ठ और रात में कात्ययन गोत्र  
 के होते हैं।<sup>५१</sup> इस विविध व्यवस्था की दो व्याख्यायें की गयी हैं, अभिनवभाष्यवाचार्थ ने  
 'गोत्र प्रवर निर्णय' में लिखा है कि लौगाशि जन्मा कश्यप की संतान है, किन्तु उनका  
 उपनयन वसिष्ठ में किया है। इनका जन्म रात्रि में हुआ, अतः रात को उनका गोत्र कश्यप  
 होता है। उपनयन दिन में हुआ, अतः दिन में उनका गोत्र वसिष्ठ होता है।<sup>५२</sup> दूसरी  
 व्याख्या स्मृत्यर्थसार की है, इसके अनुसार इनका कारण यह है कि दिन में वे वसिष्ठ  
 सम्प्रदाय की पद्धति का अनुसरण करते हुए प्रयागों की विधि करते हैं और रात को  
 कश्यपों की पद्धति के अनुसार।<sup>५३</sup> लौगाशियों का दोनों गोत्रों में विवाह वाज्य है।<sup>५४</sup>  
 सकृत् और रीत मातृ नामक दो गोत्र अगिरा गल और कश्यप गोत्रों के उपभेदों में  
 पड़े गये हैं। आपस्तम्ब सूत्र में इन्हें वसिष्ठगण में पड़ा है अन सकृत् अगिरा, कश्यप  
 और वसिष्ठ गोत्रों में विवाह नहीं कर सकते।<sup>५५</sup>

अभी तक ब्राह्मणों के गोत्रों का ही वर्णन किया गया है, अब अन्य वर्गों के गोत्रों  
 का उल्लेख होगा।

५० प्रवरभंजरी—यही

५१ प्रवरभंजरी, पृ०

५२ गोत्रप्रवरनिबन्धकदम्ब (वे. प्रे.) पृ० २६६

५३ स्मृत्यर्थसार, पृ० १५

५४ यही पृ० ५

५५ गोत्रप्रवरनिबन्धकदम्ब, पृ० २६६

## अत्रियों के गोत्र

संभवतः इनके गोत्र और प्रवर का सर्वप्रथम उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण (३.४।७) में आया है, वहाँ यह प्रश्न किया गया है कि यज्ञ में धीक्षित होते हुए अत्रिय का प्रवर क्या कहा जाय। इसका उत्तर यह दिया गया है कि अत्रिय का प्रवर उसके ब्राह्मण पुरोहित का ही प्रवर होता है। आश्वलायन और कात्यायन श्रौतसूत्रों में इस विषय में दो व्यवस्थाएँ की गयी हैं—(१) वे अपने पुरोहितों के प्रवर ले सकते हैं, (२) सब अत्रियों का प्रवर मागव ऐश पौकृक्ष होता है।<sup>१०</sup> मेघतिथि ने आश्व० और गू० (१।३) के आधार पर गोत्र और प्रवर का भेद केवल ब्राह्मणों में ही माना है। मिताक्षरा में कहा गया है कि अत्रियों, वैश्यों के अपने विशेष गोत्र नहीं होते, अतः इनके विवाहों में इनके पुरोहितों के गोत्रों को ही इनका गोत्र समझना चाहिए।<sup>११</sup> अन्य निबन्धकारों ने इसका समर्थन किया है। किन्तु प्राचीन साहित्य और अभिलेखों में अत्रियों के विशिष्ट गोत्रों का बहुत वर्णन मिलता है।

महाभारत में विराट् के दरबार में छन्दमेधी मूढिष्ठिर ने अपना गोत्र वैया-अपाद बताया है (विराट् पर्व ७।८।१२)। पाण्डवों के इस गोत्र की पुष्टि माग मास की सुधी अष्टमी कां किये जाने वाले भीष्म के तर्पण-सम्बन्धी मन्त्र से होती है, क्योंकि उसमें उतकर गोत्र वैयाअपाद और प्रवर संकृति दिया गया है।<sup>१२</sup> अभिलेखों में कांची के पल्लवों का गोत्र प्रायः भारद्वाज और बालुव्यों का मानव्य बताया गया है।<sup>१३</sup> ११७६ ई० के अमचन्द्रदेव के एक ताक्षपत्र में एक अत्रिय को वरत गोत्र का तथा भार्गव व्यवनाणवान् श्रीर्ध्व ग्रामदग्ग्य प्रवर का कहा गया है।<sup>१४</sup> जम्बूल राजा श्रीवर्धन वर्ग के एक दानपत्र में रौत सामन्त नाचका अत्रिय के भारद्वाज गोत्र के होने का वर्णन है।

<sup>१०</sup> प्रवरमंजरी, पृ० ६०

<sup>११</sup> मात० १।५२, उद्गाहत्त्व (पृ० १११) ने यही मत स्वीकार किया है। संस्कार कौस्तुभ ने इस व्यवस्था के अनेक कारण दिये हैं (पृ० ६८६-६८०)।

<sup>१२</sup> स्मृतिचन्द्रिका, खण्ड १, पृ० १६८

<sup>१३</sup> एपि. इ. खं १ पृ० ५, वही खं. ६, पृ० ३३७

<sup>१४</sup> इ. ए. खं १८, पृ० १३६-३८। कारणों से हि. प्र. खं० २, भाग १, पृ० ४६४ पर इस प्रकार के अनेक अभिलेखों का निर्देश किया है।



## वैश्यों के गोत्र और प्रवर

इस विषय में वैश्यों की स्थिति शक्तियों से मिलती है। प्राचीन सूत्रकारों ने उनके गोत्र और प्रवर या तो उनके पुरोहितों के गोत्रों और प्रवरों के अनुसार माने हैं या समूचे वैश्य वर्ण के लिए एक ही प्रकार के गोत्र-प्रवरों का उल्लेख किया है। आपन्गन्व के अनुसार वैश्य एकार्थक है, उनका प्रवर आत्माही है। बौधायन उनका प्रवर व्यापार्य मानता है, इसके तीन ऋषि भानन्दन, आत्माही और मांकीन हैं।<sup>१०५</sup>

किसी व्यक्ति को अपना गोत्र याद गहने की वस्तु में आपन्गन्व ने गड़ बाधना की है कि वह अपने आचार्य (यह का अध्ययन करने वाले मुख) का गोत्र धारण करे।<sup>१०६</sup> गुरु का गोत्र ग्रहण करने पर वह उस गोत्र वाली मूलवर्णा में ही विवाह नहीं कर सकता, पर उस गोत्र की अन्य कन्याओं से विवाह करने का निषेध नहीं है।<sup>१०७</sup> मंत्रदान-प्रकाश में यह भी कहा गया है कि यदि अपने गोत्र का ज्ञान न हो तो अपने गोत्र परगना गोत्र का कहना चाहिए।<sup>१०८</sup>

## धर्मसूत्र और समोत्र विवाह

सूत्रग्रन्थों में सर्वप्रथम बौधायन ने सप्रवर तथा समोत्र कन्या के साथ विवाह का निषेध किया है। वह निषेध से सन्तुष्ट नहीं है, अर्थात् समोत्र के साथ शारीर करने को पाप समझता है, इसके लिए प्रवराध्याय में बान्द्रायण श्रत की व्यवस्था करता है। उसके मत में श्रत समाप्ता होने पर वह उस समोत्र स्त्री का जैसे ही त्याग न करे, जैसे माता या बहिन को नहीं छोड़ा जाता है। यदि उससे कोई पुत्र उत्पन्न होता है तो उसे कोई पाप नहीं लगता। उस पुत्र का गोत्र काय्यप होता है।<sup>१०९</sup> किन्तु बौधायन धर्मसूत्र (२।१।३८) पत्नी को केवल छोड़ने का तथा माता की तरह पालने का विधान करता है और बान्द्रायण श्रत का विधान नहीं करता। यदि पुत्र हो जाय तो कुछ उपवास की व्यवस्था करता है। बौधायन धर्मसूत्र का विधान प्रवराध्याय की अपेक्षा नरम है, क्योंकि बान्द्रायण श्रत

<sup>१०५</sup> प्रवरमंजरी पृ० २०, सं. प्र. (पृ० ६५६) के अनुसार वैश्यों का आत्मन्वन गोत्र होता है—वैश्या आत्मन्वनादयस्तेषां आत्मन्वनी गोत्रम्।

<sup>१०६</sup> प्रवरमंजरी, पृ० २१

<sup>१०७</sup> सं. प्र. पृ० ५६०—तेषां त्वाचार्यकन्यामात्रं निषिद्धं न सर्वास्तद्गोत्राः।

<sup>१०८</sup> वही—गोत्रस्य त्वपरिज्ञाने काय्यप गोत्रमिष्यते। इस गोत्र का प्रयोग विवाह से अतिरिक्त आहुति विषयों में ही समझना चाहिए। मि. स्मृत्य. आह. खं. पृ० ४८१, प्रवर का ज्ञान न होने पर जगदग्नि के प्रवर से काम चलाया जा सकता है।

<sup>१०९</sup> प्रवरमंजरी, पृ० २७

४० दिन चलता है और कुछ केवल १२ दिन) किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि बौधायन ने पुराने मूलग्रन्थ इस विषय में मौन है। आश्वलायन श्रौतसूत्र के अन्तिम अध्यायों में प्रवरों का वर्णन है, पर वह सत्तों या १२ दिन से अधिक चलने वाले यज्ञों के सम्बन्ध में है, विवाह के विषय में नहीं। इसके परिशिष्ट भाग में अथर्व्य इसका वर्णन है, किन्तु यह परिशिष्ट बाद का लिखा हुआ है। आश्वलायन गृह्य सूत्र १।४।५ में वधू के चुनाव के बहूत में नियम दिये हुए हैं किन्तु इनमें असंगोत्रता के नियम का उल्लेख नहीं है। एक ऐसे नियम का, जिसका भंग किये जाने पर बाद में कुछ और चात्राचार जैसे कठोर प्रायश्चित्तों की आवश्यकता पड़ी, आश्वलायन में सर्वथा न पाया जाता बड़े आश्चर्य का विषय है। काठक गृह्यसूत्र (१।४।३।४) और पारस्कर गृह्यसूत्र संगोत्रता के विषय में मौन है।<sup>५०</sup> वधू के चुनाव में इस नियम की अवज्ञा न करना, तथा यह बात सूचित नहीं करना कि उस समय तक आयों में इस प्रथा का पूरी तरह प्रचलन नहीं हुआ था।

धर्मसूत्रकारों में बसिष्ठ, आपस्तम्ब, बौधायन और गौतम ने इस विषय में विभिन्न विधान किये हैं। बसिष्ठ केवल यही कहता है कन्या का भिन्न गोत्र (८।१) हो।<sup>५१</sup> प्रायश्चित्तों का वर्णन करते हुए उसने अगम्या सिद्धियों की जो सूची दी है (२०।१०) उसमें संगोत्रता का उल्लेख नहीं है। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में, वधू के चुनाव के प्रकरण में गोत्र की कोई बात नहीं दी गयी। किन्तु धर्मसूत्र में केवल इतना ही कहा है कि समोत्र को अपनी लड़की न दे (२।५।१।१५)। इस नियम का भंग करते पर कोई दण्ड नहीं बताया गया है। बौधायन के विधान का उल्लेख ऊपर हो चुका है। किन्तु गौतम ने धर्मसूत्रों में गोत्र के नियम को सबसे अधिक उन्नता से प्रतिपादित किया है। समान प्रवर में और एक गोत्र में विवाह को वह सुकृत्वत्वारोहण के समान पाप समझता है (गौ. धर्म सूत्र ४।२, २३।१२)। सुकृत्वत्वारोहण महापातकों में से है। बौधायन ने संगोत्र विवाह को पातक या महापातक नहीं समझा था किन्तु इस पाप के लिए कुछ प्रायश्चित्त की व्यवस्था की। किन्तु गौतम इससे तत्पुष्ट नहीं है, वह इसे महापातक से कम मानने को तैयार नहीं है।

गृह्यसूत्रों और धर्मसूत्रों के गोत्र विषयक विचारों की तुलना करने से स्पष्ट है कि गृह्यसूत्रों के समय गोत्र के नियम को महत्ता नहीं मिली थी, धर्मसूत्रों के समय उसे महत्वपूर्ण समझा जाने लगा और उसके भंग के लिए क्रमशः कठोर विधान बनने लगे। बसिष्ठ उसे प्रायश्चित्त योग्य अपराध नहीं समझता, बौधायन कुछ प्रायश्चित्त से इस

<sup>५०</sup> हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र (१।१।६।२), मानव, गृह्यसूत्र (१।७।१८) और योजित गृह्य सूत्र (३।४।४) में संगोत्रता के नियम का उल्लेख है।

<sup>५१</sup> बसिष्ठ ध.सू. ८।१, आप. ध.सू. २।५।१।१५, गौ. ध.सू. ४।२, मि० धात० स्मृति ३।२३।१, नारद स्मृति १।५।७४ तथा बृहत्सम (गौ. ध.सू. २३।१२ की टीका में हरवत्त द्वारा उद्धृत)।

पाप की क्षुद्धि मानता है, और गौतम इसे महापाप मानता है। जिस बान को गृह्यसूत्रों के समय मामूली समझा जाता था, वह गौतम के समय महापाप क्यों बन गयी? इसी प्रश्न के उत्तर में गोत्र के उद्गम का इतिहास दिया गया है। गृह्यसूत्रों एवं धर्मसूत्रों के समय के बीच में ८ बी शती ई० पू० में इस प्रथा का आरम्भ होना प्रतीत होता है। अब यही गोत्र की उत्पत्ति के विषय में कुछ प्रसिद्ध भारतीय मतों एवं योरोपियन विद्वानों की कल्पनाओं की समीक्षा की जायगी।

### गोत्रप्रथा की उद्गम सम्बन्धी भारतीय कल्पना

मत्स्य पुराण में कहा गया है कि एक बार ब्रह्मा यज्ञ कर रहे थे, इन यज्ञ से भृगु, अंगिरा, भरिषि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, कतु और वसिष्ठ उत्पन्न हुए (१६५।८)। किन्तु आजकल बोलों की जो सूचियाँ पायी जाती हैं उनमें कतु, पुलह और पुलस्त्य अगम्य गोत्र के उपभेद या गण में उपलब्ध होते हैं, स्वतन्त्र गोत्र के रूप में नहीं। फिर गुप्त राजाओं के और पुलस्त्य पिशाचों के मूल पुत्र है। शतपथ ब्राह्मण में (१६।१।२।६) गोत्रग, भारद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ, काश्यप और अत्रि नामक सात ऋषि गिनाये गये हैं।<sup>८२</sup> मत्स्यपुराण की तथा शतपथ ब्राह्मण की सात नामों की सूची में वसिष्ठ और अत्रि ही उपनिषद् नाम हैं, शेष पाँच नाम दोनों सूचियों में भिन्न हैं। आश्वलायन-परिशिष्ट में इन ऋषियों के साथ अश्वत्थ का नाम जोड़ कर, इन आठ ऋषियों को गोत्रकार कहा गया है। बौधायन ने भी इन्हीं आठ ऋषियों के गोत्र माने हैं। किन्तु महाभारत का मत है कि अंगिरा, काश्यप, वसिष्ठ और भृगु × चार ही मूल गोत्र हैं।<sup>८३</sup> इन प्रकार ऋषियों की संख्या और ऋषियों के नामों में कोई एक सर्वसम्मत सिद्धान्त नहीं पाया जाता है। यह प्रश्न किया जा सकता है कि प्राचीन काल में सैकड़ों ऋषियों में आठ ही हम-वार्थ के निग्न क्यों चुने गये। इसका सामान्य उत्तर तो यह होगा कि ये अन्य ऋषियों की अपेक्षा अधिक महान्, वक्तावी एवं पूजनीय होंगे। किन्तु पतंजलि कहते हैं कि (आरम्भ में) ८० हजार

<sup>८२</sup> श्री काणे ने निम्नकार (१२।३८) द्वारा "अर्वाग्विलरुचमस" के मंत्र की व्याख्या में सात ऋषियों की सूची की सात किरणों से की गयी तुलना की इस संख्या का मूल बताया है। बृहदारण्यक उपनिषद् (२।२।३-४) में सात इन्द्रियों या धातुओं (दो कान, दो आँखें, दो नासिका रन्ध्र और जिह्वा) के साथ विश्वामित्र आदि सात ऋषियों की तुलना की गई है।

<sup>८३</sup> शान्तिपर्व २६७।१७-१८

धारण करने वाले ऊर्ध्वरेता ऋषि हुए। यह माना जाता है कि इनमें से आठ ऋषियों ने सन्तान उत्पन्न की, उनके जो पुत्र हैं वही गोत्र हैं।<sup>१५</sup>

**भारतीय कल्पना की दो बड़ी असंगतियाँ**

श्री वैद्य ने गोत्रों के इस गौरवधर्म को कुछ सुलझाना चाहा है।<sup>१६</sup> किन्तु इसके सुलझाने में वे स्वयं बहुत-सी उलझनों में फँस गये हैं। गोत्र-सम्बन्धी असंगतियों में दो मुख्य—महाभारत तथा अन्य ग्रन्थों की बीचकार ऋषियों की संख्या में अन्तर तथा उनके नामों में अन्तर—है। श्री वैद्य को कल्पता है कि जब आर्य भारत में आये तो महाभारत के अनुसार उनके चार ही मूल गोत्र थे—भृगु, अंगिरा, कश्यप और वसिष्ठ। वे प्रजापति के मानस पुत्र होने से आर्यों की विभिन्न जातियों के मूलपुरुष कहलाये। किन्तु सप्तर्षियों में भृगु के स्थान पर उनके पुत्र जमदग्नि का नाम आता है और अंगिरा का स्थान भी उसके दो गोत्रों भारद्वाज और गौतम ने ले लिया है। बाद में इसमें अत्रि, विश्वामित्र और अगस्त्य की वृद्धि होकर आठ गोत्र प्रवर्तक ऋषि हो गये। इन तीनों में अत्रि आर्य आक्रमकों के उस दूसरे समुदाय को सूचित करता है जो अपने को चन्द्रवंशी मानता था। चन्द्र अत्रि का पुत्र माना जाता है (स्क० पु० ४।१।१४), अतः चन्द्रवंशी राजाओं का गोत्र अत्रि है। अगस्त्य ने वैदिक ऋषि होने के कारण प्रसिद्धा पायी। विश्वामित्र अत्रिभ्य से, ये अपनी समस्या के बल से ब्राह्मण हुए और उन्होंने गोत्र प्रवर्तक होने का सम्मान पाया। इस प्रकार श्री वैद्य के मत में आठ गोत्रजन्तु ऋषियों के नामों में कोई असंगति नहीं है।

किन्तु इस युक्ति परम्परा में अनेक दोष हैं, इसमें प्रसिद्ध की आर्य जाति का मूल पुरुष एवं अगस्त्य की बाद का ऋषि माना गया है। किन्तु पौराणिक परम्परा दोनों को मित्राश्रय के दीर्घ से, एक ही समय में उत्पन्न मानती है (बृहदे० ४।१।३४)। अत्रि को श्री वैद्य ने अर्वाचीन ऋषि माना है किन्तु मनु (१।३४) उसे ब्रह्मा की मानस सन्तान और वसिष्ठ का समकालीन मानता है। यदि अत्रि गोत्र वाले चन्द्रवंशियों ने सूर्यवंशियों पर आक्रमण किया और उन्हें जीता तो अत्रि गोत्र वालों की संख्या पर्याप्त होगी चाहिये, किन्तु सूत्रकारों ने गोत्रों की जो सूचियाँ दी हैं उनमें अत्रि का गोत्र और नाम बिलकुल नगण्य है। फिर यदि भृगु और अंगिरा आर्य जाति के मूल पुरुष थे तो उनके नाम हटाकर उनके स्थान पर उनके पुत्र जमदग्नि और पौलस्त्य—भारद्वाज और गौतम के नाम क्यों रखे गये? यदि ब्राह्मण जाति में उनका विशेष महत्त्व था तो परशुराम का क्या कम महत्त्व था? उसने २५ बार क्षत्रियों का संहार कर पृथ्वी को क्षत्रिमहीन बनाया था। इतना अधिक गौरवपूर्ण कार्य करने वाले के नाम से गोत्र क्यों नहीं बना? भृगु का स्थान यदि जमदग्नि ने

<sup>१५</sup> पाणिनि ४।१।७८ पर महाभाष्य

<sup>१६</sup> हिन्दवी आर्य मित्रोबल इंडिया, खं. २, पृ० ४६ अनु०

बहुपत्न्य विवाह तो जयदत्त का स्थान लेने का परशुराम को पूरा अधिकार था। इन सब प्रश्नों का कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया जा सका है। जब तक इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलता, तब तक श्री वैद्य की यह कल्पना नहीं मानी जा सकती कि पहले बसिष्ठ, भृगु, कश्यप, अगिरा के चार गोत्र थे, बाद में ये आठ हुए और ये पाँच वंशपरम्परा एवं रक्तसम्बन्ध को सूचित करते हैं।

गोत्रों से उत्पन्न कुलों की संख्या के विषय में भी मतभेद है। आश्वलायन श्रौतसूत्र (१२।१०।६) इनकी संख्या ४६ मानता है। शब्दबालपट्टम में शुनवीणिका के अन्वयण के अनुसार ३२ गोत्रधारों के नाम दिये गये हैं और कहा गया है कि इनकी पुरी संख्या ४० है। इसी ग्रन्थ के एक दूसरे अवतरण में १४ गोत्रधारों की संख्या बतायी गयी है। मिताक्षरा की बालभट्टी टीका (भाज० १।५३) में यह संख्या १८ है। बौधायन ने ५०० तथा प्रवरमंजरी ने ५००० गोत्रों का उल्लेख किया है। संश्रामेद के शाश्वतता प्रश्न में मतभेद भी बहुत अधिक है। प्रवरमंजरी के कर्त्ता ने बड़े दुःख एवं विपत्ति के साथ इस बात को स्वीकार किया है कि सूत्रधारों के पाठ में बहुत अधिक अन्तर है। दश दशा में गोत्रों का प्रचार्य निर्णय करना बहुत कठिन है।

यह कहा जाता है कि गोत्रों के नाम एवं संख्या में जाड़े बिलनी अचंचलियाँ और विरोध हों, किन्तु उन सबमें इस बात में अवश्य समानता है कि किसी गोत्र को एक व्यक्ति द्वारा चलाया हुआ माना जाता है और एक गोत्र वालों में रक्तसम्बन्ध स्वीकार किया जाता है। किन्तु जब किसी को अपने पूर्वज व्यक्ति का नाम भी विनिश्चित रूप से ज्ञान नहीं तो रक्तसम्बन्ध को किस प्रकार निश्चित माना जा सकता है। यह नो वैसी ही बात हुई कि शायद तुम्हारे और मेरे दादा का नाम बसिष्ठ था, इसलिए हम दोनों सम्बन्धी हुए। गोत्रों की ऐसी अनिश्चित दशा में, जहाँ बादशासन (नालपनिक) के अतिशक्ति कोई अन्य सम्बन्ध नहीं माना जा सकता।

### गोत्रों के वंशपरम्परासूचक न होने के अन्य प्रमाण

गोत्र रक्तसम्बन्ध अथवा वंशपरम्परा के सूचक नहीं हैं, इसके अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं। सम्पत्ति में सगे सम्बन्धियों का पहले अधिकार होता है। मनु कहता है कि सम्पत्ति पहले सपिण्ड अर्थात् तीसरी पीढ़ी तक के दादायों को, बाद में सपुत्र्य अर्थात् सातवीं पीढ़ी तक के दादायों को, इसके बाद गृह को और शिष्य को मिले (मनु. १।१०६-१०७)। बौधायन ने भी इसी प्रकार की व्यवस्था की है। बसिष्ठ तो सपिण्डों के बाद गृह की सम्पत्ति देने का पक्षपाती है (१।७।८२)। आपस्तम्ब सात पीढ़ी तक के दादायों के बाद गृह की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी समझता है। यदि गोत्र या प्रवर रक्तसम्बन्ध को सूचित करते हों गृह से पहले सगे लोगों की सम्पत्ति का अधिकार मिलना चाहिए था। सम्पूर्ण धर्मसूत्रों और स्मृतियों में केवल गौतम ने ही ऐसी व्यवस्था की है (गौ० धर्म-

सूक्त २५(२१)। यह कहता है कि सपिण्डों के बाद सगोत्रों व समान-प्रवरों की सम्पत्ति लेने का अधिकार है। पहले हम देख चुके हैं कि गौतम ने सगोत्र विवाह को गहापातक ठहराया और गोत्र सम्बन्धी नियमों को दृढ़ करना चाहा। उस प्राधिकार का यह नियम भी इसी प्रवृत्ति को सूचित करता है। किन्तु गोत्र में कोई रक्तसम्बन्ध न होने के कारण यह कहना कठिन था कि कौन सगोत्र सम्पत्ति के पहले हकादार हो और कौन बाद में। इन क्रियात्मक कठिनाइयों का अनुभव करते हुए तथा गोत्र के सम्बन्ध को बनाते हुए संभवतः स्मृतिकारों ने गौतम का अनुसरण किया।

यही बात मरणोत्तर अर्णाक्ष के सम्बन्ध में कही जा सकती है। जिन जनों (वंशीजों) में रक्तसम्बन्ध होता है, वही किसी व्यक्ति की मृत्यु पर लाया जन (tribe) अशौच मानता है। नीलगिरि के टीकों में यह प्रथा प्रचलित है कि जब एक जम में कोई मृत्यु होती है तो उस जन का प्रत्येक टोडा निश्चित अवधि तक अपने सिर के आगे के बालों में एक गांठ बांधे रखता है।<sup>१६</sup> यह व्यवस्था सर्वथा स्वाभाविक है कि उसके सम्बन्धी अशौच या पातक को मनार्थें। धर्मशास्त्रों में सपिण्डों (सात पीढ़ी तक के सम्बन्धियों) द्वारा यह घृतक मगाने का विधान है (मनु० ५।५६, गौतम १४।१)। आपस्तम्ब कहता है कि जहाँ तक सम्बन्ध ज्ञात हो, वहाँ तक वे सब सम्बन्धी अशौच मनार्थें। आपस्तम्ब जब इस विषय में इतनी दूर तक गया है कि जिनसे रिश्ता जुड़ा जा सके वे सब सूतक मनार्थें, यदि वह वान्तक में गोत्र को ऐसा रक्तसम्बन्ध सशक्तता जो उसका अवयव उल्लेख करता। आजकल की प्रचलित धारणा के अनुसार गोत्र रक्तसम्बन्ध को सूचित करता है, फिर ऐसे सम्बन्ध वाले को सम्पत्ति एवं श्रेष्ठविधि जैसे आत्मीय स्वजनों द्वारा किये जाने वाले कार्यों से दूर क्यों रखा गया है? इससे यह स्पष्ट है कि स्मृतिकार गोत्र को रक्तसम्बन्ध नहीं मानते थे। क्षत्रियों और वैश्यों में सगोत्र का रक्तसम्बन्ध सूचक न होना तो इसी बात से पुष्ट होता है कि उनको अपने बाह्य पुरोहितों का प्रवर लेने के लिए कहा गया है। यदि किसी पुरोहित का वास्तव में भरद्वाज ऋषि से सम्बन्ध था और वही उसकी वंशपरम्परा में हुआ, तो क्षत्रिय क्या उस पुरोहित द्वारा कोई यज्ञ करने से ही भरद्वाज गोत्र वाला हो गया? रक्तसम्बन्ध भी क्या मिजली के प्रवाह की तरह से है, जो सुवाहक पदार्थ के सम्पर्क से, पुरोहित से यज्ञमान में संक्रान्त हो जाता है? क्या वह रक्त जो पुरोहित की धमतिथों में बह रहा है, जल के अनुष्ठान मात्र से यज्ञमान क्षत्रिय के शरीर में प्रवाहित होने लगता है? फिर एक पुरोहित प्रायः कई गांवों के वैवाहिक तथा अन्य धार्मिक अनुष्ठान कराता है। एक पुरोहित से धार्मिक अनुष्ठान कराने के कारण कई गांव एक गोत्र के हो गये और उनसे परस्पर शादी-व्याह नहीं हो सकता। वैश्यों या तो आपस्तम्ब ने एक ही गोत्र माना है। इसका अर्थ यह हुआ कि उनमें विवाह ही ही

नहीं सकता। इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि गौतम वास्तविक रक्तसम्बन्ध को नहीं बताता। स्मृतिकारों को ये व्यवस्थाएँ प्रारम्भ में केवल धर्मीय कार्यों तक ही सीमित थीं, बाद में इन प्रतिबन्धों का विवाह में भी उपयोग किया जाने लगा। उन्होंने विवाह में असंगोत्रता का नियम क्यों रखा? इस प्रश्न पर धर्मशास्त्रों से कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

असंगोत्र विवाह के नियम के प्रादुर्भाव पर पश्चिमी विद्वानों की कल्पनाएँ

(क) भैकलीनान की कल्पना—पश्चिमी विद्वानों ने भी इस विषय में पर्याप्त ऊहापोह किया है और अहिर्विवाह सम्बन्धी मंत्र आदि की गार्बन्धियों के मूल कारण झुंझने का मत किया है।<sup>८०</sup> श्री भैकलीनान को यह श्रेय प्राप्त है, उन्होंने अंग्रेजी भाषा में अहिर्विवाह (Exogamy) शब्द का सर्वप्रथम गुड़ा और प्रचलित किया। उन्होंने

<sup>८०</sup> अहिर्विवाह का नियम भारत से बाहर अनेक समाजों और जातियों में पाया जाता है। आस्ट्रेलिया के आदिवासियों में इसका खूब प्रचार है, वहाँ अधिकांश कबीले बी, चार, आठ अहिर्विवाही उपजातों में बँटे होते हैं। इनमें प्रत्येक उपजाति वाले स्त्री-पुरुष का विवाह अपने उपजाति से बाहर ही होता है, अपने उपजाति के भीतर शादी करने वाले को प्राणदण्ड दिया जाता है (बै. शा. हि. सं. पु. ७१-७२)। चीन में पहले एक जैसा पारिवारिक उपजाति रखने वालों में परस्पर विवाह नहीं हो सकता था। पुराने चीनी ब्रह्मविधान के अनुसार ऐसी शादी करने वाले को ६० प्रहारों का दण्ड दिया जाता था और यह विवाह रद्द माना जाता था (बै.—वही पु. ७२)। वैस्टरमार्क के मतानुसार अपने गौत्र या वर्ग से बाहर विवाह का नियम प्रचलित होने का एक बड़ा कारण नामों की समानता था। वंश-परम्परा नामों के माध्यम से स्पष्ट की जाती थी, अतः नाम को प्रायः रक्त सम्बन्ध का सूचक समझ लिया जाता था। माता-पिता दोनों पक्षों की ओर से वंशपरम्परा का पूरा विवरण रखता कठिन होता है। अतः यह नाम का सम्बन्ध प्रायः एक ओर से रखा जाता है। आदिम विचारों और विश्वासों के अनुसार एक सामान्य नाम, उसे धारण करने वाले सभी व्यक्तियों को परस्पर जोड़ने वाली रक्तसम्बन्ध की समझा जाता था। डा० नाममेन ने लिखा है कि चीनलैण्ड में यह माना जाता है कि एक ही नाम वाले दो व्यक्तियों में आध्यात्मिक सम्बन्ध होता है। वैस्टरमार्क ने इसका एक यह भी कारण दिया है कि निकट सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों में यौन सम्बन्ध के प्रति एक स्वाभाविक घृणा होती है, इससे निकट सम्बन्धियों में विवाह वर्जित होता है। इसी निषेध को बाद में विस्तृत करके अपनी जाति में विवाह का वर्जन किया जाने लगा और अहिर्विवाह के नियम का प्रचलन हो गया। (बै. शा. हि. सं., पु. ६६-७)

बहिर्विवाह का कारण यह बताया कि जंगली हासल में प्रारम्भ में समुष्प शिकार से ही अपना मजारा करता था। उस समय जो कम्पार्ण शिकार में सहायता नहीं दे सकती थीं पिता उनकी उपेक्षा करना था या उन्हें मार देता था। समाज में इस तरह स्त्रियाँ बहुत कम मिलती थीं, अतः उन्हें दूसरे कबीलों से स्त्रियाँ जबरदस्ती अपहरण करके लानी पड़ती थीं। इस तरह अपनी जाति के बाहर से स्त्रियों को लाने का दिवाज पड़ा और बहिर्विवाह की प्रथा प्रचलित हो गयी।<sup>८८</sup>

वैस्टरमार्क ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ हिस्टरी आफ़ ह्यूमन मैरिज (ख. २, पृ० १६४) में अनेक प्रबल प्रमाणों से सिद्ध किया है कि उपर्युक्त सिद्धान्त में कन्यावध और अपहरण द्वारा विवाह के सम्बन्ध में बहुत जतिशयोक्ति से काम लिया गया है। भारत में गोत्रों के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त लागू नहीं किया जा सकता। यह ठीक है कि विवाह के आठ भेदों में एक राक्षस विवाह भी है, किन्तु भारत में उसके उदाहरण बहुत कम मिलते हैं। वैदिक काल में कन्यावध की प्रथा भी प्रचलित नहीं थी।

(ख) स्पेन्सर की कल्पना—दूसरी कल्पना मुप्रसिद्ध समाजशास्त्री हर्बर्ट स्पेन्सर की है। वे कहते हैं कि कबीलों में परस्पर संघर्ष होता था। उन संघर्षों में शत्रु की सम्पत्ति को शूरा लूटा जाता था। इन लूट में स्त्रियाँ भी लायी जाती थीं और यह कार्य बड़ा अच्छा समझा जाता था। अनातोयत्वा यही प्रवृत्ति बहिर्विवाह की रूप में समाज में बल पड़ी<sup>८९</sup> किन्तु असमोच विवाह के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। यद्यपि यहाँ रामायण और महाभारत के युद्ध हुए और पुराणों में कई स्थानों पर शत्रु की स्त्रियाँ को लाने का वर्णन है, किन्तु इन युद्धों में ब्राह्मणों ने कभी भाग नहीं लिया। गोत्र और प्रवर के बन्धन मन्त्रों अधिक ब्राह्मणों में प्रचलित है। अतः स्पेन्सर का सिद्धान्त भी भारतीय असमोचता के उद्गम पर सही-सही प्रकाश नहीं डाल सकता।

(ग) एबबरी की कल्पना—बहिर्विवाह विषयक तीसरी कल्पना लार्ड एबबरी की है। उनका मतलब है कि समाज में पहले विवाह का कोई बन्धन न था।<sup>९०</sup> प्रत्येक कबीले में स्त्रियाँ उस कबीले की सामूहिक सम्पत्ति समझी जाती थी। व्यक्तियों का किन्हीं स्त्रियों पर विशेष एवं पूर्ण अधिकार नहीं होता था। यदि कोई व्यक्ति दूसरे कबीले की किसी स्त्री का पकड़ना चाहता था तो वह उसकी वैयक्तिक सम्पत्ति समझी जाती थी और उस पर उसका पूर्ण अधिकार होता था। स्त्रियों पर वैयक्तिक एवं पूर्ण आधिपत्य रखने

<sup>८८</sup> मैकलोनान—स्टडीज इन एंथ्रोपॉलॉजी, पृ० ७०, ७५

<sup>८९</sup> स्पेन्सर—प्रिन्सिपल आफ़ सोसियोलॉजी खंड १, पृ० ६१६ अनु०

<sup>९०</sup> एबबरी—ओरिजिन आफ़ सिविलाइजेशन एण्ड डी प्रिमिटिव कण्डीशन आफ़ मैन, पृ० ६४।



के लिए यह आवश्यक था कि कबीले से बाहर की स्त्री लायी जाय। इसलिये समाज में बहिर्विवाह की प्रथा प्रचलित हो गयी।

इस सिद्धान्त में यह मान लिया गया है कि समाज में पहले कामचार (Promiscuity) प्रचलित था। अन्य देशों के किसी समाज में भन्ने ही यह प्रथा प्रचलित नहीं हो किन्तु भारत में यह प्रथा बिलकुल नहीं थी, यह बात पहले अध्याय में बताया जा चुकी है। इस प्रकार भारत के लिए इस कल्पना का कोई आधार नहीं है। असली विवाह भी व्याख्या इस कल्पना से भी नहीं हो सकती। इस व्यवस्था को हिन्दू समाज में संभवतः निम्नलिखित परिस्थितियों और कारणों ने उत्पन्न किया।

### हिन्दू समाज में सगोत्रविवाह निषेध के उत्पादक हेतु

असली विवाह का नियम प्रचलित होने का वस्तुतः कोई एक कारण नहीं था। यह संभवतः अनेक परिस्थितियों का परिणाम था। इन्हे पूरी तरह जानने के हमारे पास बहुत कम साधन हैं, फिर भी मोटे तौर से यह कहा जा सकता है कि भारत में हमारे कुछ सामान्य और कुछ विशेष उत्पादक हेतु थे। सामान्य हेतुओं का आशय उन कारणों से है जो अन्य समाजों में भी बहिर्विवाह की प्रवृत्ति को जन्म देते हैं। पहले बताया जा चुका है कि वैस्टरमार्क के मतानुसार बहिर्विवाह, निकट सम्बन्धियों में विवाह निषिद्ध होने के नियम का विस्तृत रूप है, इस नियम को गोत्रों के सामनावृष्य से पुष्टि और इस सिद्धता है। वंशपरम्परा का मुख्य आधार नाम है, नामों की समानता होने पर वस्तुतः रक्तसम्बन्ध न होने पर भी उसकी कल्पना कर ली जाती है और सद्वृत्त नाम वालों में विवाह वर्जित समझा जाता है। गोत्र और प्रवर भन्ने ही वास्तविक रक्तसम्बन्ध को न सूचित करें, पर उनका ऐसा समझ जाना सर्वथा स्वाभाविक था। ऐसा समझ जाने पर इनमें परस्पर विवाह के निषेध का नियम बना।

गोत्र-प्रवर-पद्धति प्रचलित होने के विशेष कारणों का विचार करते हुए हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि इसका अधिक प्रचलन ब्राह्मण वर्ग में ही था, क्षत्रियों और वैश्यों के गोत्र-प्रवर या तो उनके पुरोहितों के आधार पर थे या केवल गिने-चुने गोत्र थे। इस तथ्य की दृष्टि में खते हुए श्रीमती इरावती कर्वे के मतानुसार ब्राह्मणों में इस पद्धति के प्रचलन के निम्न कारण प्रतीत होते हैं।<sup>६१</sup>

(१) ब्राह्मणों में स्वामीय बहिर्विवाह का अभाव—स्वामीय बहिर्विवाह का अर्थ यह है कि एक गांव या वस्ती में बसे हुए व्यक्तियों में विवाह का न होना। एक साथ एकट्ठे रहने वाले व्यक्तियों में प्रायः परिवार की भाँति अनिष्ट सम्बन्ध समझा जाता है, उस गांव के समान आपू वाले स्त्री पुरुष भाई-बहिन, बड़ी आपू के व्यक्ति उनके माता-

पिता तथा माता, छोटी आयु के बच्चे लड़के-लड़कियाँ सम्झी जाती हैं। गजर्वाकी रिश्ते-दारी की भाँति एक गांव वालों में विवाह अजित होता है, अपने गांव से बाहर आदी करने के इस नियम को स्थानीय बहिर्विवाह (Local exogamy) कहते हैं। यद्यपि प्राचीन साहित्य में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है किन्तु अनेक संशोधों से इसकी सत्ता सुचित होने में शक नहीं रहती है। विवाह और वधू शब्द ने जाने का अर्थ देने वाली वधू (प्रापणे) धातु से बने है। विवाह का अर्थार्थ है विभिन्न प्रकार से पाणिग्रहण संस्कार पूर्वक वधू को गुरुगृह से स्वगुरुगृह ले जाना। वधू (वधु) की वधू नाम देने का यह कारण है कि वह दम प्रकाशपीडित में समुद्राव लायी जाती है।<sup>१३</sup> वैदिकयुग से वधू को विवाह के बाद अपने स्वगुरुगृह तक निश्चित पहुँचाने, मार्ग में कोई कष्ट ग होने की अनेक प्रार्थनाएँ हैं।<sup>१४</sup> अतः यह स्पष्ट है कि उस समय में कन्या का अपने गांव या स्थान से बाहर विवाह होता था। यास्क ने कन्यावाची दुहिता शब्द की एक व्युत्पत्ति यह की है कि वह दूरवर्ती (दुल में) दी जाती है।

प्राचीन काल में स्थानीय बहिर्विवाह की प्रथा का प्रचलन क्षत्रियों में अधिक था, ये प्रायः राजाओं और राजकुलों के संबंध होने के कारण नियत स्थानों में बसे हुए थे। किन्तु ब्राह्मणों के कोई निश्चित निवास स्थान नहीं थे, ब्राह्मण पुरोहित और मन्त्रवेत्ता थे, वे अपने आश्रयदाताओं की खोज में एक दरबार से दूसरे दरबार में जाया करते थे। जिन स्थानों पर महायज्ञों में प्रचुर दक्षिणा की संभावना थी, वहाँ उनका आना स्वाभाविक था। अतः उनका निवास स्थान निश्चित न होने से उनमें क्षत्रियों की भाँति स्थानीय बहिर्विवाह का विकास नहीं हो सका था, इसलिए उन्होंने वैवाहिक सम्बन्ध सुव्यवस्थित करने के लिए गोत्र और प्रवर की पद्धति ग्रहण की।

१३ सं. प्र., पृ० ५८३

१४ आश्वेद १०।८।१२३ में कहा गया है कि स्वगुरु (बरेय) के पास घर द्वारा भेजे गये क्षत्रियों का मार्ग निष्कण्ठ और सरल हो (अनुश्रव आश्वेदः सन्तु पन्था येभिः सखायो धन्ति गो बरेयम्) मि. अश्व०, १४।१।३४, आप. गृह्यसूत्र २।४।२, शांखा. गृ० १।६।१, कौ. सू० ७।५।१२। आ० १० (८।५।२६ तथा अश्व० १४।१।२० में घर के घर में जाने के लिए वधू को पुषा द्वारा रथ में बठाने तथा अश्विनियों द्वारा इसे वहाँ तक पहुँचाने का वर्णन है (आश्व. गृ. सू. १।८।१ आप. गृ. सू. २।४।६)। आ० १०।८।१३२, अश्व० १२।१।३२, १४।१।११ साम. ब्रा० १।८।६ में यह प्रार्थना है कि पति पत्नी को रास्ते में बटमार न पड़े (मा विवन्परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती, मि. आश्व. गृ. सू. १।८।६, शा. गृ. सू. १।१५।१४ गो. गृ. २।४।२, आप. गृ. २।५।२४, कौ. सू. ७।५।३)।

दूसरा कारण यह प्रतीत होता है कि ब्राह्मण ग्राम: याज्ञिक विधियों का अनुष्ठान करने वाले और मन्त्र-सम्प्रदाय के। इस गृह्य-ज्ञान पर विभिन्न परिवारों का एकाग्रितपण था, उसे सुरक्षित रखने के लिए यह आवश्यक था कि पारिवारिक सम्बन्ध विभिन्न वर्गों तक सीमित रखे जाय, ये वर्ग गोत्र और प्रवर के रूप में विकसित हुए।

तीसरा कारण अनार्य प्रधान प्रतीत होता है। महाभारत में हमें अनेक कन्याओं के साथ ब्राह्मणों के विवाह के अनेक उदाहरण मिलते हैं। ब्राह्मण जल्पकाय ने नागराज वासुकि की अग्नि से सारी की थी (महाभा० भाष्य० १।४१, ४४ अ०)। अगस्त्य एक ब्राह्मण के निषादी भार्या के साथ रहने का वर्णन है (महाभा० भाष्य० १।२५।३-५)। आदि तर्प में अरण्यवासी सन्ध्यात के संभवतः यही के रीटम या जाति-साधन वाली एक अनार्य स्त्री अरिषा के साथ विवाह का वर्णन है (महाभा० १।२३१)। बर्हिष्ठ-धर्मसूत्र में ब्रह्मण्यो विधियों के साथ विवाह का संकेत है (१।८।१८)। ब्राह्मणों का अनार्यों के साथ संबंध होने पर संभवतः उनकी इस पद्धति का गोत्रों और प्रवरों पर कुछ प्रभाव पड़ा हो।<sup>१५</sup>

१५ दामोदर धर्मनाथ कोसाम्बी का यह मत है कि गोत्रों में अनेक नाम प्राणि वाचक हैं, अतः वे वर्तमान दक्षिण भारत की अनेक अनार्य जातियों के भारतीय बिल्ड़ों (Totems) के समान हैं, गोत्र-प्रवरपद्धति का उद्गम ये अनार्यजातीय चिह्न हैं (जन्म आफ़ वी बाम्बे आंच आफ़ रायल एशियाटिक सोसायटी १९५० पृ० २८)। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्राचीन गोत्रों की सूची में अनेक नाम पशुपक्षीवाचक हैं। उदाहरणार्थ कपि (अफ. पु. १२४) केवलागिरस गोत्र का एक गण है, तीतरन्नाथी तिशिरि का उल्लेख भरद्वाजगोत्र में है (अफ.—पु. पु. पु. १२-१२८) और कपिजल का वसिष्ठ गोत्र में (अफ. पु. १७०, १८३)। इसी प्रकार अन्य प्राणियों से सम्बन्ध रखने वाले अनेक नाम पाये जाते हैं, जैसे हस्ती, गर्वभि, गर्वभिः, भरस्य, महाकपि, भार्कटि, मरुट, आश्व, मयूर, छग, मेघ, जलूक। गोत्रों में प्राणियों के अतिरिक्त कुछ विचित्र नामों के थे उदाहरण हैं—स्तनकर्ण, कपिमूत्र, औसूत्र, मेधुनमति, कासकृत अजगन्ध, मत्स्यगन्ध। ये सब उदाहरण प्रवरसंज्ञी (वै. प्रे.) के जल में गोत्र और ऋषियों की सूची में दिए हुए हैं। ओल्डनबर्ग ने प्राचीन भारत के ऐसे प्राणिवाची नामों के निम्न उदाहरण 'रिलीजन ईस वेब' (पृ. ८३३) में दिये हैं—वास (बछड़ा), कुलक (कुत्ता) शीशिक (जल्), माकूकोय। जे. ए. वान वेल्डे ने इनका वर्णन किया है (नेम्न आफ़ पर्संस इन अर्ली संस्कृत लिटरेचर यूईकट १९३८ पृ. ६५ अनु.)। आजकल भी भारत में ऐसे पारिवारिक नामों की कमी नहीं है, जैसे गुजरात में मच्छर, माकड़ (बग्गर), भाकड़ (छटमल) और पंजाब में कुकड़।

## स्मृतियाँ और असंगोत्रता का नियम

धर्मशास्त्रों के बाद स्मृतिकारों ने असंगोत्र विवाह के नियम पर अधिक बल दिया। जो स्मृति जितनी अर्थापेक्षित है, इस नियम के सम्बन्ध में उल्लेख उतनी ही अधिक कटोरता दिखाती है। सबसे पहले स्मृतिकार मनु ने असंगोत्र विवाह का निषेध करते हुए कहा कि द्वितीय के विवाह कर्म से वह कन्या प्रसूत होती है जो माता की मण्डि या पिता के गोत्र वाली न हो। यह ध्यान देने योग्य बात है कि मनु ने प्रवर का उल्लेख नहीं किया। गोत्र (४१२), वशिष्ठ (८१९) तथा आपस्तम्ब (२।१।१५) ने कन्या का अन्याय प्रवर होना आवश्यक समझा था। किन्तु मनु गोत्र के प्रतिबन्ध को ही पर्याप्त समझता है। अध्यात्म में गोत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है कि गोत्र प्रवरों की

किन्तु प्राचीन गोत्रों में जो पशुवाची नाम आते हैं, वे आठ बड़े गोत्रों के अन्तर्गत छोटे-छोटे परिवारों के नाम हैं और यह असंभव प्रतीत होता है कि ये नाम ऐसे छोटे वर्गों के जातीय खण्डन रहे होंगे। बफ़ ने ठीक ही लिखा है कि इन नामों से प्राचीन भारत में जाति-चिह्नवाद (Totemism) की सच्चा सिद्ध करना ठीक वैसा ही है जैसे फाल्स (Fox), हेरन (Heron) आदि जो चार नामों ने इंग्लैण्ड में इस प्रथा को कल्पना करना (बफ़—पू. पृ. )। कोसाम्बी ने गोत्र के बड़े वर्गों के जो प्राणिवाची नाम दिये हैं, वे विश्वस्तनीय और निर्विवाद नहीं हैं। उदाहरणार्थ, गौतम उत्तम गौओं या उत्तम पशुओं वाला हो सकता है, किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि यह बंस के टोटम को सूचित करता है। भरद्वाज का मृगयार्थ बाल (सम्पत्ति) को लाने वाला है, अपने घोंसले में अन्न लाने वाले पक्षी के लिए इसका प्रयोग गौण कथ से होता है, इस गौण अर्थ के आधार पर इसे टोटम मानना उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। कौशिक का अर्थ उल्लू अवश्य है, किन्तु कुशिक का यह अर्थ नहीं है, अतः यह कल्पना की जा सकती है कि पक्षी का नाम जाति के नाम के आधार पर रखा गया, न कि जाति का नाम पक्षी के आधार पर। कश्यप गोत्र को कच्छप (कछुआ) से निकालना गिरी खींचतान है। कोसाम्बी द्वारा प्रस्तुत कच्छप के आकार जैसी पशुवेदी बनाने के शतपथब्राह्मण के प्रमाण (७।४।९) द्वारा प्राचीन वैदिक जायों में टोटमवाद की सिद्ध करने का प्रयास बफ़ के शब्दों में वैसा ही है जैसा मध्यकालीन जावूरनियों के मुन्बों में प्रयुक्त मंडकों से उस समय में इसकी सत्ता सिद्ध करना। वैदिक जायों में इस प्रथा के कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलते (बफ़—पू. पृ. भूमिका पृ. XVI)। अतः गोत्र पद्धति को अनार्यमूलक मानना उचित नहीं प्रतीत होता। किन्तु यह संभव है कि अनार्यों की बहिर्विवाही जातियों (Exogamous classes) की पद्धति ने जायों की गोत्र-प्रवरपद्धति को सुदृढ़ एवं कठोर बनाने में सहायता दी हो।

समानता के आधार पर है। किन्तु मनु से एक हजार वर्ष बाद टोका मिश्रने बर्मे संघा-  
तिथि को इस विषय में मनु की मूल भावना को ठीक समझने के सम्बन्ध में प्रामाणिक  
नहीं माना जा सकता। इतना ही नहीं कि मनु ने प्रवर के प्रतिबन्ध का उल्लेख न किया  
हो, किन्तु वह सगोत्र विवाह को कोई भयंकर अपराध नहीं समझता। बाद की स्मृतियों  
ने सर्वांग विवाह से उत्पन्न सन्तान को चांडाल कहा है, किन्तु मनु ने सर्वसंकर के भिन्न  
भेदों की चर्चा करते हुए इस प्रकार की सन्तान का कहीं उल्लेख नहीं किया है। प्राचीन-  
काल के प्रकरण में अश्वत्था स्त्रियों की गणना (३।१७०) में सर्वांग का उल्लेख नहीं है। दण्ड  
वह मिश्र और पुत्र की पत्नी तथा सहोदरा भगिनी के अभिगमन को गुरुभ्रातृहत्या जैसा  
महानाश समझता है। गौतम ने (२३।१२) सर्वांग के पास जाना दण्ड प्रकरण को महापाप  
समझा था, किन्तु मनु इस प्रसंग में सर्वांग का उल्लेख नहीं करता। मनु के उपपत्तिका  
(१।१।६०-६७) में श्री सगोत्र विवाह को गिनती नहीं है। ऐसा जान पड़ता है  
कि मनु के समय तक, समान श्रेणी में विवाह न करने की प्रवृत्ति चल पड़ी थी, किन्तु  
बहुधा इसका उल्लंघन भी होता था और इस उल्लंघन को पाप नहीं समझा  
जाता था।<sup>६४</sup>

### याज्ञवल्क्य, नारद तथा अन्य स्मृतिकार

याज्ञवल्क्य पहला स्मृतिकार है जिसने समान प्रवर में विवाह का निषेध किया।  
वह असमान प्रवर और श्रेणी में विवाह को न केवल आक्षेपक समझता है, अपितु इस  
विषय का उल्लंघन होने पर वह उसे गुरुभ्रातृहत्या के पास अभिगमन तुल्य महापाप समझता  
है।<sup>६५</sup> यह स्पष्ट है कि मनु के ४००, ५०० वर्ष बाद समाज के विचारों में इतना अन्तर  
आ चुका था कि मनु जिस व्यवस्था के उल्लंघन को दण्डनीय नहीं समझता था, याज्ञवल्क्य  
से उसको पाप समझा। वास्तव में मनु के समय यह व्यवस्था हिन्दू समाज में धीरे-धीरे  
प्रचलित हो रही थी, पर उस समय यज्ञ के नियम के प्रति इतनी अधिक आस्था एवं  
दृढ़ता उत्पन्न नहीं हुई थी, अगली सहस्राब्दी में यह व्यवस्था हिन्दू समाज में दृढ़मूल हो  
गयी। याज्ञवल्क्य के बाद आने वाले नारद ने तो इसके लिए कठोरतम व्यवस्था कर  
वाली। वह कहता है कि कन्या असमान प्रवर और श्रेणी की होनी चाहिए।<sup>६६</sup> यदि कोई

<sup>६४</sup> मनु ३।४, असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां  
दारकर्मणि मंधुने ॥ कुल्लूक ने इस श्लोक में एक “अ” शब्द से माता के अतिरिक्त  
पिता की सपिण्डता और दूसरे “अ” शब्द से कन्या के लिये पिता के अतिरिक्त  
माता की गोत्र का न होना भी आवश्यक बताया है।

<sup>६५</sup> याज्ञवल्क्य १।४३

<sup>६६</sup> नारद स्मृति १२।७

पुनः इस नियम का उल्लंघन करे तो उसको लिए शिस्त-उत्कर्षण के अनिवार्य और कोई दण्ड नहीं है।<sup>६८</sup> विष्णु (२५।६) और पराशर (१०।१३-१४) ने इस नियम के उल्लंघन के लिए बाह्यगोत्रों को दो गोत्र देने तथा तीन ब्राह्मण्य-प्रमाणितों से इस पाप की मुक्ति मानी है। इस दण्ड दण्ड का कारण यह नहीं है कि पराशर इसे कम अपराध समझता है। समोत्रा के पाप जाने का अपराध तो गुणानुसंगिक अपराध के तुल्य है, किन्तु वृष्णी में पराशर ने सामान्य रूप से अन्य स्मृतिजनों की अपेक्षा नहीं दिखायी है। इस कारण उनके दण्ड में तारतम्य जैसी उद्यता नहीं है।

### टीकाकार और गोत्र

**मेधातिथि**—गयी श्रुति से टीकाकारों का यह शुरु होता है। विश्वम्भ की याज्ञ० स्मृति पर विष्णु ययी ब्राह्मणीका नामक पहली टीका से इस विषय पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। मनु के प्रसिद्ध टीकाकार मेधातिथि ने समोत्र शब्द से मप्रवर का विशेष विधाता है, उपावा पहले उल्लेख ही चुका है। किन्तु ऐसा करने हुए मेधातिथि के सामने यह समस्या उपस्थित हुई कि मनु द्विजातिमात्र अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए असंगतता आवश्यक समझता है, यदि असंगतता आवश्यक है तो प्रवर भी असंगत होने चाहिए। किन्तु प्रवर तो क्षत्रिय—वैश्य के होने भी नहीं और गोत्र प्रवर पर आधित है, अतः क्षत्रियों और वैश्यों पर मनु की पाबन्दी बिना तरह पानु होगी। इसलिए वह कुछ लोपी द्वारा माना जाने वाला यह पक्ष रखता है कि अन्य व्यक्ति वंश की गोत्र चाहते हैं, इसमें अवधि की कोई आवश्यकता नहीं है। अतः तक इस वंश-सम्बन्ध का ज्ञान होता है वही तक एक वंश का होने से विवाह नहीं होता।<sup>६९</sup> प्रायश्चित्त प्रकरण में मेधातिथि को इस बात पर आश्चर्य है कि मनु ने समोत्रा के अभिषेक के लिए प्रायश्चित्त क्यों नहीं बताया। यह कहता है कि अन्य धर्मशास्त्रकारों ने इस पाप के लिए प्रायश्चित्त बताया है अतः ऐसी अवस्था में अवश्य प्रायश्चित्त करना चाहिए।

**मातृ गोत्र का परिहार**—मेधातिथि ने गोत्र के सम्बन्ध में एक गयी पाबन्दी का उल्लेख किया है। अब तक विवाह में यही देखा जाता था कि कन्या का गोत्र घर के पिता के गोत्र से भिन्न होना चाहिए। मेधातिथि ने वसिष्ठ का एक मत उद्धृत किया है कि कन्या घर की मत्ता के गोत्र की भी रही होगी चाहिए। वसिष्ठ धर्मसूत्र में माता के गोत्र वाली कन्या का भी प्रतिबंध है, समोत्रा, समानप्रवरा से शादी करने, छिन्न उस कन्या की छोड़ दे और बान्ध्यायन व्रत करे। माता के गोत्र वाली कन्या के साथ भी विवाह करने

६८ नारद स्मृति १५।७३-७५

६९ मेधातिथि मनु ३।५ पर

पर ऐसा ही करे।<sup>१००</sup> वर्तमान वसिष्ठ धर्मसूत्र में मेधातिथि द्वारा उद्घृत्यये पंक्तिर्वा नही पायी जाती। मेधातिथि मनु की व्यवस्था को मानते हुए इस मत में असहमति रखना है, पर इससे इतना स्पष्ट है कि नवी शती तक माता के मोल का परिहार करने वाला एक सम्प्रदाय पैदा हो चुका था।

**अपराध—**१२ वीं शती में अपराध ने याज्ञवल्क्य स्मृति की व्याख्या करते हुए असंगत विवाह के अपराध के लिए अधिक भयंकर दण्ड की व्यवस्था की। बिना दूरादे के ऐसा विवाह हो जाने पर वह बौधायन के अनुसार ऐसे घृष्ट्य के लिए दण्ड प्राप्ति-विधित पर्याप्त समझता है, किन्तु आगबूझकर विवाह करने पर उसके मन में पति की पण्डित सम्माना चाहिए और पण्डित पति की गन्तार भी पतिव्रता होनी है।<sup>१०१</sup> अब तक अपराध से पूर्ववर्ती किसी धर्मशास्त्रकार ने ऐसे विवाह दास पति की गति और गन्तार को बाधना नहीं कहा था। अपराध के समय तक सगोत्र विवाह के विरुद्ध इतना प्रबल वातावरण बन चुका था कि उसने सगोत्र विवाह करने वालों के लिए इतनी कठोर व्यवस्था की। उसने माता के बोल को भी छोड़ने वालों का मत दिया है किन्तु उनमें सह-मति नहीं प्रकट की। अपराध (पृ० १५, ६३) ने ब्रह्मपुराण के एक वचन की उद्धृत किया है, जिसमें कहा गया है कि सगोत्रों और सपिण्णों से विवाह, मौ का वध, गुल्फमेघ, अरुधमेघ, कलिपाल मे द्विजातियों को नहीं करने चाहिए। पुराने युगों में जो व्यवस्थाएँ प्रचलित थी और मध्यकाल के टीकाकार एवं निबन्धकार जिन व्यवस्थाओं को अपने समय के लिए अनुपयुक्त समझते थे, उन व्यवस्थाओं से छुट्टी पाने के लिए उन्होंने यह आसान हल बूझ निकाला था कि उसकी कलियुग्य बना दिया जाय। ब्रह्मपुराण का यह श्लोक स्मृतिचन्द्रिका (भाग १ पृष्ठ १२) में तथा माधव की पराशरस्मृति की टीका (भाग १ पृ० १३३) में उद्धृत किया गया है। इस श्लोक से स्पष्ट है कि पहले किसी समय सगोत्र विवाह प्रचलित था।

**विज्ञानेश्वर—**विज्ञानेश्वर का मत भी अपराध में मिलता-जुलता है। वह सगोत्र विवाह को उसी दशा से तत्परा रोहण के तुल्य रूप समझता है, जब समागम हो चुका हो। यदि व्यक्ति सगोत्र विवाह से उक्त दशा के पूर्व ही निवृत्त हो जाय तो उसका अपराध तत्परा-रोहण से कम होता है।<sup>१०२</sup> मिताक्षराकार ने किसी अज्ञात स्मृति का एक वचन उद्धृत किया है कि सगोत्रा चाहाधी या वृषत्ती होती है। उसके साथ एक बार के सम्पर्क से पण्डित होने वाला तीन वर्ष के प्रायश्चित्त से मुक्त हो जाता है।<sup>१०३</sup> बृहद्भयम तथा अगिरा

<sup>१००</sup> मेधातिथि मनु ३।५

<sup>१०१</sup> अपराध, पृ. ८०

<sup>१०२</sup> याज्ञ० ३।२३१ पर

<sup>१०३</sup> याज्ञ० ३।२६० पर

को उत्तिथों को भी मिताक्षरा ने उद्धृत किया है। इन उत्तिथों का यह आशय है कि इस पाप को चान्द्रायण प्रायश्चित्त में निवृत्ति हो जाती है, किन्तु मिताक्षराकार इनसे असहमत होता हुआ कहता है कि यह व्यवस्था समागम से पहले ही इस पाप में निवृत्त हो जाने वाले के लिए है।<sup>१०५</sup> बौधायन ने ऐसी पत्नी पर कोई दोष नहीं डाला था, केवल उसके स्वाम देने तथा चान्द्रायण व्रत करने का आदेश दिया था, पर डेढ़ हजार वर्ष बाद गोत्र का नियम इतना दृढ़ हो गया कि समाजा को चाँडाली समझा जाने लगा उसके पुत्र की सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में मिताक्षरा तथा अन्य टीकाकारों ने कोई स्पष्ट व्यवस्था नहीं की।

**देवष्ण भट्ट**—निबन्धकारों ने उत्त कमी को पूरा किया। देवष्णभट्ट ने कहा कि चान्द्रायण व्रत तो मन्त्री से विवाह कर लेने का प्रायश्चित्त है, किन्तु यदि विवाह के बाद सन्तान उत्पन्न होती है तो इस विषय में आपस्तम्ब की यह व्यवस्था माननी चाहिए कि वह सन्तान चान्द्रायण होती है।<sup>१०६</sup> वर्तमान समय में उपलब्ध आपस्तम्ब गृह्य तथा धर्मसूत्र में देवष्ण भट्ट द्वारा उद्धृत यह व्यवस्था नहीं मिलती। प्रवरमंजरी के कर्त्ता पुरुषोत्तम ने इस वचन को स्वयं के नाम से उद्धृत किया है, बाद के सभी स्मृतिकारोंने इसे या इससे मिलते जुलते वचनों को बौधायन या यम के नाम से कहा है। यह किस स्मृति का वचन है, यह चाहे निश्चित न हो, किन्तु यह निश्चित है कि यह निबन्धकारों ने सर्वसम्मति से इस वचन के आधार पर समाज में उत्पन्न सन्तान को चाँडाल कहा है। देवष्ण भट्ट सादा का गौत्र छोड़ने के विषय में भी अपनी असहमति ही दर्शाता है। हमारा समस्त विवाह को निश्चित ठहराना हुआ ऐसा करने वालों को कठोर दण्ड नहीं देता। इस विवाह में उत्पन्न सन्तान चाँडाल तो है किन्तु गोत्र में जल्दा कर उसकी शुद्धि की जा सकती है। यहाँ अपने को जानने का अभिप्राय आगे में उसके पुत्रों को जलाने से है। विज्ञानेश्वर की तरह वह पुरुष को १२ वर्ष का कठोर प्रायश्चित्त नहीं बताता, किन्तु कुछ अन्य प्रायश्चित्तों से उसकी शुद्धि को पयोग्य समझता है (वनुर्वर्ग चिन्तामणि ३।३६५—६६)। माधव ने पराक्षर स्मृति (१०।५—६) की टीका में दक्ष का यह वाक्य उद्धृत किया है कि तीन प्रकार के चाँडालों में एक समाज विवाह से उत्पन्न सन्तान भी है, किन्तु माधव की यह अपनी सम्मति नहीं है क्योंकि १०।१४ पर समाज विवाह के सम्बन्ध में विचार करते हुए उसने बौधायन आदि पुराने आख्यकारों के इस प्रकार के वचन उद्धृत किये हैं कि चान्द्रायण और कृच्छ्र प्रायश्चित्तों से इस पाप का परिमार्जन हो जाता है।

**कामलाकर**—कामलाकर भट्ट ने निर्णयसिन्धु में माधव का ही अनुसरण किया है। स्मृत्यसंसार की सम्मति को उद्धृत करते हुए उसने कहा कि समाज विवाह मुख्य-गमन के समान अपराध है। इस विवाह द्वारा उत्पन्न सन्तान चाँडाल होती है, किन्तु यदि

<sup>१०५</sup> वहीं

<sup>१०६</sup> स्मृ. च. भाग १, पृ. १८४।



विवाह अज्ञात से हुआ हो तो चाग्नायन व्रत से श्रुद्धि हो जाती है। निर्णयसिन्धु ने माता के गोत्र के परिहार पर बल दिया है।<sup>१००</sup> वह पहले सत्यापाद की इस उक्ति का पूर्वपक्ष के रूप में रखता है कि मातृगोत्र माध्यम्यिन शाखा वालों में छोड़ा जाता है। उसका पक्ष में प्रबल-संजरीकार के मत को उद्धृत करता हुआ लिखता है कि माता के गोत्र का परिहार न करने में बहुत दोष उत्पन्न होते हैं, इसलिए माता के गोत्र को छोड़ना चाहिए। अपना गोत्र ज्ञात न होने पर पुरोहित, आचार्य या जमदग्नि का गोत्र ग्रहण करना चाहिए।<sup>१०१</sup>

**मित्रमित्र**—वीरमित्रोदय की इस बात का श्रेय प्राप्त है कि उग्रेण गर्भात् विवाह द्वारा दूषित कन्या के पुनर्विवाह पर विचार किया है। मित्रमित्र में पाठने इस प्रश्न का किसी मध्यकालीन निबन्धकार ने नहीं उठाया था कि जिस कन्या का गर्भाव वर के साथ विवाह हो चुका है उसका दूसरा विवाह हो सकता है या नहीं। मित्रमित्र ने एक ऐसे युग में, जब स्त्रियों का पुनर्विवाह विलक्षण बन्द हो चुका था, दूषित कन्या के पुनर्विवाह का प्रश्न उठाया। किन्तु उसने इस विषय में शून्य विवाह की अधिक महत्त्व दिया है और कन्या को पुनर्विवाह की आज्ञा नहीं दी है। इस सम्बन्ध में पुर्वोक्ता में उग्रेण कात्यायन का दखन रखा है कि इस प्रकार ब्याही हुई स्त्री को उत्तम वर्णों और आभूषणों से अलंकृत करके दूसरे को दे देना चाहिए और बाद में इससे अग्रहमति प्रकट की है।<sup>१०२</sup> माता के गोत्र के परिहार को वह साध्यंदिन ब्राह्मण तक ही परिमित समझता है।<sup>१०३</sup>

अनन्तदेव ने संस्कार कोस्तुभ (पृ० ६६२-६३) में, अनन्तभट्ट ने विधान-पारिजात (पृ० ७०७-७०६) में तथा काशीनाथ ने समंसिन्धु (पृ० १६३-६६) में उपर्युक्त सिद्धान्तों की पुष्टि की है। विधानपारिजात की यह विशेषता है कि यह गर्भाव विवाह से दूषित कन्या के पुनर्विवाह का विधान करता है। माता के गोत्र के सम्बन्ध में

<sup>१००</sup> निर्णयसिन्धु पृ० २२७। अनेक निबन्धग्रन्थों में शातातप के नाम से दिये गये निम्न वचन में माता के गोत्रवाली कन्या से शादी करने पर चाग्नायन व्रत का विधान है—मातुलस्य सुतामूढ्या मातृगोत्रं तथैव च। समानप्रवरां चैव त्यक्त्वा चाग्नायनमाचरेत्। (प्रबल संजरी पृ० ६४, सं. प्र. पृ० ६८३)। सं. प्र. ने काण्व गृह्य के नाम से भी इस विषय में एक वचन दिया है। कुछ लोग यह मानते थे कि गोत्र का अर्थ यहाँ नाम है, मातृगोत्र का अर्थ माता के नाम वाली कन्या से विवाह नहीं करना चाहिए (सं. प्र. पृ० ६८४)। मित्रमित्र का मत है कि यह व्यवस्था नामा के गोत्र में अबवा मामा की लड़की से विवाह के निषेध के लिए है (वही पृ० ६८४)।

<sup>१०१</sup> वही

<sup>१०२</sup> संस्कारप्रकाश, पृ० ६८१

<sup>१०३</sup> वही, पृ० ६८४

अधिक श्रुतान्त इसी ओर है कि माध्यंदिन शाखा के ब्राह्मण ही माता के गोत्र का परिहार करें, दुसरों के लिए यह निषेध नहीं है।

इस प्रकार हमने यह देखा कि वैदिक युग में गोत्र-प्रवर की पद्धति बीज रूप में थी, ब्राह्मण वर्णों के अन्तिम समय आठवीं शती ई० पू० में समोत्र विवाह का यह प्रतिबन्ध जन्म हुआ। धर्मगुरुओं ने गर्भप्रथम इस प्रतिबन्ध को स्मरण एवं दृढ़ बनाना चाहा, उनके समय में संभवतः यह व्यवस्था सर्वमान्य नहीं हुई, उन्होंने इसके प्रायश्चित और दण्ड इत्यादि भी रचे। दूसरी शती ई० के बाद तक गोत्र का निराम समाज में अच्छी तरह प्रतीक ही माना था, पर कभी-कभी इसका भंग हो जाता था। इन उत्सर्धनों को रोकने के लिए स्मृतिवर्तों ने दण्डों की व्यवस्था की, तारद ने कहा कि इस बात के लिए निम्नोत्कर्ष के अतिरिक्त कोई दण्ड नहीं हो सकता। किन्तु इन स्मृतिवर्तों ने समोत्र विवाह में उत्पन्न गन्तान की निन्दा नहीं की। मध्यकाल के टीकाकारों ने समोत्र विवाह में उत्पन्न गन्तान की बर्तान कहा और प्रायश्चित्तों की कठोरता बचापुर्न रखी। मेधा-विशि ही एक ऐसा टीकाकार थे जिसने ऐसी गन्तान का बर्तान नहीं कहा। १२ वीं शती के बाद के विद्वानों ने उपर्युक्त व्यवस्थाएँ बचापुर्न रखी, माध्यंदिन शाखा वाले ब्राह्मणों में माता के गोत्र के परिहार पर बल दिया गया और विद्वानाभिजात ने समोत्र विवाह में पूर्णतः कन्या के पुत्रविवाह की व्यवस्था की। अब वर्तमान काल में हिन्दू समाज में प्रचलित गोत्र सम्बन्धी नियमों का प्रतिपादन होगा।

## आधुनिक युग

वर्तमान समय में हिन्दू समाज में गोत्र के प्रतिबन्ध का पूरा पालन होता है। विवाह के समय गोत्र (गोन, भूत या इन्ति) की भिन्नता का अवश्य विचार किया जाता है। कड़े स्थातों पर तो गोत्रविषयक नीतिगत प्रतिबन्ध शास्त्रीय मर्यादाओं की अपेक्षा बहुत कड़े हैं। धर्मशास्त्रों ने सामान्यतः पिता का गोत्र छोड़ने की व्यवस्था की है तथा कुछ निबन्धकार माध्यंदिनीय ब्राह्मणों के लिए माता के गोत्र को भी छोड़ने के लिए कहते हैं। विद्वानु विहार में तार, सात और नौ अन्य गोत्र भी छोड़े जाते हैं। उदाहरणार्थ स्थातों में ये भी गोत्र छोड़े जाते हैं—१. अपना गोत्र, २. माता का गोत्र, ३. नानों का गोत्र, ४. परमादी का गोत्र, ५. दादी का गोत्र, ६. परदादी का गोत्र, ७. पर परदादी का गोत्र, ८. दादी की माता का गोत्र, ९. परदादी की माता का गोत्र।<sup>११</sup> यह स्मरण रखना चाहिए कि क्षत्रिय, वैश्य तथा अन्य जातियों में गोत्र विषयक प्रतिबन्ध कई बार ब्राह्मणों की अपेक्षा अधिक कड़े होते हैं। बिहार के स्थातों का उपर्युक्त उदाहरण इसी बात की पुष्टि करता है। अनेक जातियों ब्राह्मणों की व्यवस्था को उनसे भी अधिक

उपला से लागू करके, अपनी सामाजिक स्थिति को ऊँचा करने का बल कर रही है। एक संश्लेष नस्ल वाली सुरजवंशी जाति ने १८७१ में ब्राह्मण गोत्रों को ग्रहण किया है।<sup>१११</sup> राजपूतों और जाटों के सम्बन्ध में प्रायः यह अन्वेष्ट प्रकट किया जाता है कि वे भाजन में बाहर से आयी हुई जातियाँ हैं, किन्तु इस समय प्रायः सभी राजपूत सूर्य और अश्ववंशी तथा ब्राह्मण गोत्रों वाले हैं। जाटों ने अभी तक शूरपौं के गोत्रों को ग्रहण नहीं किया, किन्तु उनमें गौत्र विषयक नियमों का पालन बड़ी करारी में होता है।<sup>११२</sup>

### वर्तमान गोत्रों के विभिन्न रूप

इस समय भारत की विविध जातियों में कई प्रकार के गोत्रों का प्रचलन है। ब्राह्मणों तथा हिन्दुओं की अन्य उष्क जातियों में तो प्राचीन शूरपौं के नाम वाले वसिष्ठ, विश्वामित्र, भरद्वाज, कश्यप आदि गोत्रों का प्रचलन है, किन्तु कुछ जातियों में गोल पशुओं और पेड़ों के पवित्र संकेतों (Totem) के नाम पर हैं। दक्षिण की द्रविड़ जातियों में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। उनके गौत्र विषयक प्रसिद्ध तो धर्मशास्त्रीय व्यवस्थाओं के अनुसार हैं, किन्तु गोत्रों के नाम पशु, पक्षी, पेड़ आदि पर हैं। इन्हें वे इतना पवित्र समझते हैं कि उसे मारने, छाने वा किसी प्रकार के उपयोग करने से बचन परहेज करते हैं और एक गोत्र या संकेत वालों में शादी नहीं होती। उदाहरणार्थ, भीमों में एक आवा जाति है; <sup>११३</sup> आवा का अर्थ है तितली। इस जाति वाले

<sup>१११</sup> वही—खण्ड २, पृ० २८४

<sup>११२</sup> सेजर—टोटेमिज्म एण्ड एथनोपैमी, पृ० २८३। वर्तमान समय में भारत की विविध जातियों में प्रचलित गौत्र सम्बन्धी नियमों को जानने के लिए विभिन्न प्रदेशों की जातियों के सम्बन्ध में प्रकाशित ये सरकारी प्रकाशन विशेष रूप से उपयोगी हैं : राज—गुस्तासरी आफ द पंजाब एण्ड नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्स आफ् इण्डिया ३ खण्ड; कुक—बी ट्राइब्स एण्ड कास्टस् आफ् नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेज ४ खण्ड १८९६; रिजली—ट्राइब्स एण्ड कास्टस् आफ् बंगाल ४ खण्ड १८९१; वर्यटन—कास्टस् एण्ड ट्राइब्स आफ् सदर्न इण्डिया ६ खण्ड १९११; एन्डोबम—ट्राइब्स एण्ड कास्टस् आफ् बाम्बे ३ खण्ड; रसेल—ट्राइब्स एण्ड कास्टस् आफ् सेण्ट्रल प्रोविन्सेज आफ् इंडिया ४ खण्ड १९१६।

<sup>११३</sup> मध्य प्रदेश की १९०१ की जनगणना रिपोर्ट पृ. १९८, इनके अन्य टोटेम साँप, बाघ, बाँस, पीपल आदि पेड़, माछोला नामक एक विशेष लता है, जिस पर पर पड़ जाने पर वे उसे प्रणाम करके उससे क्षमा मांगते। भारतवर्ष की विभिन्न जातियों

तिलनी की नहीं मारेंगे, उसे पूज्य समझेंगे और जाकर जाति वालों में परस्पर शादी नहीं होती। तिलनी इस जाति का लक्षण (Totem) कहलाता है। तेलगू लोगों में मोरला नाम की एक बड़ी गड़रिया जाति है।<sup>११४</sup> इनमें राधिनदला नाम के गोत्र वाली एक उप-जाति है। यह पीपल (Ficus Religosa) का नाम है। इस उपजाति के लोग खान के लिए या किसी अन्य कार्य के लिए इस पेड़ के पत्तों का उपयोग बिलकुल नहीं करते। इसी प्रदेश में किजानों, जुलाहों और गड़रियों की एक बड़ी जाति कुखा है। इस जाति के बहुत से लोगों का गोत्र अग्निमान अर्थात् केसर था। उक्त इस जाति के लोग केसर का उपयोग न कर सकते थे। उन्हें जब इसमें असुविधा हुई तो उन्होंने अपना नाम वहीं रखते हुए अग्निमान का अर्थ केसर के बदले करार नामक एक अनाज का दाना किया, ताकि वे केसर का उपयोग कर सकें।<sup>११५</sup> चौड़ जातियों में गोत्र का नियम इस मान पर अनभिज्ञ है कि कौन किसने देवी-देवता पूजता है। यदि दो व्यक्ति चार या पाँच-गोत्र देवनाओं की पूजा करते हैं तो उनमें सम्बन्ध नहीं हो सकता। इस प्रकार वर्तमान समय में भारत में हजारों गोत्र प्रचलित हैं।

के टोटोमों का सुन्दर परिचय रिजली की पोपल आफ इंडिया (पृ० ६३-१०२) में है।

११४ इनके कुछ अन्य गोत्र ये हैं—अबूल (बैल), चिन्पल (हमलो), गुरंम (घोड़ा), गोरंला (मेड़), गोरेंदला (मँहवी), कटारी (छुरी), नक्कल (स्वार), उल्लिपोयन (ध्वज), बकपल (बैंगन), वे० अनन्त कृष्ण अय्यर—माईसोर ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स, खं. १, पृ० २४२-२६३। यहाँ कौनसी वंशों में निम्न टोटोमया गोत्र हैं: आबला, नीबू, कद्दू, चना, साल, गोल और श्वेत कमल, करेला, उड़द, केला, पीपल, मेव, आम, अनार, गेहूँ, अंगूर, खजूर, ईख, भूली, जायफल, सरसों, चन्वन, इमली, सिंदूर, कपूर, (वही पृ० २५१)। सिंदूर के ताँतियों के ६६ गोत्रों में से कुछ ये हैं—मैसा, बैल, घोड़ा, नाग, गोरैया, गाँव, चोल, औरा, केवड़ा, दूध, पीपल, केसर, हल्दी, (वही पृ० २५३)। वक्षिण के ऐसे गोत्रों के कुछ मुख्य नामों के लिए वे० कितिमोहनसेन—भारतवर्ष में जातिभेद, पृ० ११२-११५। उत्तर भारत में ऐसी प्रथा कम है, अण्वालों में बंसल, बंसल ऐसे गोत्र बताये जाते हैं (१६०१ की पंजाब की जनगणना रिपोर्ट, खं. १)। निर्जपुर की आगरिया जाति के गिड़, कछुआ, पलाश गोत्रों का आगे उल्लेख होगा।

११५ ओजर—पू. पु० पृ० २०. संभवतः श्रीरामचन्द्र की सेना के बादर श्वस अपनी जाति का लक्षण अन्ध और रोछ मानने वाली जातियाँ थीं। प्राचीन और अर्वाचीन भारत की ऐसी जातियों के संक्षिप्त परिचय के लिए देखिये—कितिमोहन सेन-भारत में जाति भेद, पृ० १०५-११५।

## गोत्रों का वर्गीकरण

श्री रिजली ने इन गोत्रों को पांच वर्गों में विभक्त किया है।<sup>११७</sup> १. सांछनात्मक (Totemistic) गोत्र—ये पशुओं, फूल-पत्तियों और वनस्पतियों के नाम पर हैं। २. मूल-पुरुष वाचक (Eponymous) गोत्र—ये ऐसे व्यक्तियों व राजाओं के नाम हैं जो विभिन्न जातियों के मूल पुरुष माने जाते हैं। ३. प्रादेशिक (Territorial) गोत्र—ये जानियों के मूल निवास स्थान या जाति के मूल पुरुष के स्थान को सूचित करते हैं। ४. उपाधिवाची अथवा उपनामवाची (Titular) गोत्र—इनमें गोत्र प्रवर्तक की वैयक्तिक विशेषता या महान् कार्य की सूचना मिलती है। ५. स्थानीय या पारिवारिक (Local or Family) गोत्र। इन पाँचों वर्गों के नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं, ताकि वर्तमान काल के गोत्रों के स्वरूप का अच्छी तरह पता लग सके।

१. सांछनात्मक (Totemistic) गोत्र—दक्षिण में इस प्रकार के गोत्रों का अधिक प्रचलन है। तेल्लोर जिले की आरम्भिक चंचु जाति में गरम (घोंडा), अग्नि (केले का वृक्ष), मेकल (बकरी) के गोत्र पाये जाते हैं।<sup>११७</sup> आन्ध्र देश की प्रमुख व्यापारिक जाति अलिया में पुली (बाघ), बल्ली (छिपकली) तेलिनी, (मोर) मारिक्लस (मारियल) के गोत्र हैं।<sup>११८</sup> तेलुगु गोत्रालों के कुछ गोत्रों की उमर (पृ० ७१) चर्चा हो चुकी है। तेलुगु भाषाभाषी गोत्रालों में बाग, इमली, कान, पत्थर, घोंडा, गीदड़ के गोत्र हैं।<sup>११९</sup> बस्तर के मुरिया गोत्रों में आम (भरकान), लागीन (देकान), कुत्ते (नेताम) के गोत्र हैं।<sup>१२०</sup> आन्ध्र के कुपकों में रेड्डी या कापू नामक एक बहुत बड़ी जाति है। इनमें गौ, गायी, भैंस, भेड़, मूँसा, हाथी के नाम पर गोत्र हैं।<sup>१२१</sup> इसी प्रदेश के चमारों की मथिया जाति में चाँदी, मेंडक, गधा, टिहरी, गौ, बिच्छू, चमेली के गोत्र पाये जाते हैं।<sup>१२२</sup> बेनारी, कान्हा, भदुरा जिलों में बसने वाली कुरमा जाति के कुछ गोत्रों के नाम ये हैं— अग्नि (आग), आने (हाथी), अरिला चन्द्र, बाल (बूढ़ी) बन्धी (छकड़ा), मल्ली (चमेली), बरवा (बी)<sup>१२३</sup>। मूँसा जाति के गोत्रवाचक कुछ सांछन

<sup>११७</sup> रिजली—वी पीपल आफ इंडिया (सं० ५६१५), पृ० १६१

<sup>११८</sup> बर्स्टन—कास्टस् एण्ड ट्राइब्स आफ सदर्न इंडिया, भाग २ पृ० ३६

<sup>११९</sup> वही—भाग १ पृ० १४१

<sup>११९</sup> वही—भाग २ पृ० २६१

<sup>१२०</sup> रसेल—टाइब्स एण्ड कास्टस् आफ सेन्ट्रल प्रायमिंसिड आफ इंडिया, भाग ३, पृ० ६४-७२

<sup>१२१</sup> बर्स्टन वही, पृ० २३१

<sup>१२२</sup> वही भाग ४, पृ० ३१६

<sup>१२३</sup> " " पृ० १४२

इस प्रकार है—अम्बा (आम), चौरिया (चूहा), बुध (बुधवार), छाता, बगदर (बाघ), गिद्ध, कान, ककान (कौवा) और नमक<sup>१२४</sup>। मिर्जापुर (पृ० १००) में अगरिया नाम की एक ब्रम्बिड़ जाति बसती है। इसमें गिद्ध, कछुआ और पलाश के गोत्र पाये जाते हैं।<sup>१२५</sup> इसी प्रकार के गोत्रों के उदाहरण अन्य बीसियों जातियों में पाये जाते हैं, किन्तु लांछन की प्रवृत्ति को सूचित करने वाले इतने गोत्रों का नाम पर्याप्त है।

२. मूलपुरुष वाणी (Eponymous) गोत्र—वाङ्मयों की तथा कर्त्तव्यों की अधिकांश जातियाँ धर्मशास्त्रों में वर्णित ऋषियों को अपना मूलपुरुष तथा गोत्र मानती हैं। प्राचीन राजाओं को अपना मूल पुरुष मानने वालों में अग्रवाल एक प्रमुख जाति है। इनके मूलपुरुष राजा अग्रसेन थे। इनकी १२ रानियाँ थीं। उन्होंने प्रत्येक रानी के साथ एक-एक बच्चा किया। इन बच्चों के १२ पुरोहितों से अग्रवालों के गोत्र चले। १२ वाँ बच्चा पूरा नहीं हो सका था, अतः अग्रवालों में १३ गोत्र हैं।<sup>१२६</sup> भाटिया सिन्ध और गुजरात की प्रसिद्ध व्यापारिक जाति है। इनमें ऋषियों के नाम वाले गोत्र हैं, किन्तु वे मुख्य में विभक्त हैं। वे मुख्यें विभिन्न व्यक्तियों व स्थानों के नाम से प्रसिद्ध हैं, जैसे राय हरिया अर्थात् राजा हरिसिंह की मुख्य, राय गढरिया अर्थात् गजरिया गांव वाले राजा की मुख्य। एक व्यक्ति अपने गोत्र में छादी कर सकता है किन्तु अपने मुख्य में नहीं।<sup>१२७</sup> कमलानाथसिंह कारीगरों की जाति है। यह पेशे के लिहाज से सुतार, ठठेरा, बढई, राज और लुहार नामक पाँच हिस्सों में बंटी है। इन पाँच हिस्सों को पाँचास भी कहते हैं। इनके गोत्र विष्णु, जगध, अहिम, जनार्दन, ज्येष्ठ आदि ऋषि हैं।<sup>१२८</sup> लिगा-वशिष्ठ महाराष्ट्र, हैदराबाद, मैसूर तथा मद्रास के उत्तर पश्चिमी भागों में फैले हुए हैं। इन्होंने वाङ्मयों की भाँति अपने उपास्यदेव से सम्बद्ध विभिन्न वस्तुओं के नाम पर अपने पाँच गोत्र नियत किये हैं। इन गोत्रों के नाम ये हैं—नन्दी, भूमी, कीर, वृष, स्कन्द।<sup>१२९</sup> बंगाल के भातो यथर्वि बूढ़ समझे जाते हैं किन्तु इनमें कश्यप, मुद्गल और शाश्वत्य आदि गोत्र प्रचलित हैं।

३. प्रादेशिक (Territorial) गोत्र—उद्युक्त प्रान्त के वनियों में अग्रहारी एक उपजाति है। इनमें गोत्र स्थानों के नाम पर हैं। जैसे अयोध्यावासी (अयोध्यावासी), पुरबिया (पूरब के निवासी), पच्छिवाहा, (पश्चिम के निवासी), माहुली (माहुल परगना

<sup>१२४</sup> रिचली—पृ. पु. पु. १०२

<sup>१२५</sup> कृक—पृ. पु., खं. १ पु., २-३

<sup>१२६</sup> बहो, खण्ड १, पृ० १५-१६

<sup>१२७</sup> बहो, खं. २, पृ० ४०-४१

<sup>१२८</sup> बर्सेल—पृ. पु., खं. ३, पृ० १०८

<sup>१२९</sup> एन्डोबन—पृ० पु०, खं० २, पृ० ३५६

जिला आज़मगढ़ के निवासी)।<sup>१३०</sup> संयुक्त प्रान्त के धरमू नौकरों की एक जाति बारी है। इसमें ५०३ गोत्र हैं और ये गोत्र अधिकतर स्थानों के नाम से हैं, जैसे फनोजिया, मधुरिया, विलखारिया, इनमें आपस में बिल्कुल विवाह नहीं हो सकता। गुजर पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश की महत्वपूर्ण कृषक जाति है। जनगणना की सूची<sup>१३१</sup> में उनके ११७० गोत्रनामों के बरत हैं। इनमें से अधिकांश गोत्र स्थानों के नाम पर हैं।<sup>१३२</sup> बिहार में गोत्र को मत कहते हैं। जहीरों और प्वालों के मूल स्थानवाचक हैं। संयुक्त प्रान्त के कायस्थ १२ प्रदेशों में विभक्त हैं और इनमें भायुर (मयुरा के निवासी) आदि अनेक भेद स्थान बानी हैं।<sup>१३३</sup> खत्री पंजाब की प्रसिद्ध जाति है। इनके बारी, बुगही और सरनी तीन मुख्य भेद हैं।<sup>१३४</sup> पहले में १२ तथा दूसरे में ५२ गोत्र हैं। इनमें से अधिकांश प्रादेशिक हैं। इनमें सोन भाग कपूर, खन्ना और मेहरा बौजान गोत्र के होते हुए भी परस्पर घादी बरतते हैं। मगियां उत्तर एवं मध्यप्रदेश की एक जाति है, मिर्जापुर में यह जाति दीहों में बटी है। दीहों के नाम गांव के नाम से हैं। रत्नगिरि की गुप्ता (बर्दा) जाति के विभिन्न वर्ग गांवों के नाम पर हैं। एक गांव के मुखार परस्पर विवाह नहीं करते।<sup>१३५</sup>

४. उपाधिवाची (Titles or Nicknames) गोत्र—मध्यप्रान्त की भुयार नामक कृषक जाति १०० से ऊपर कुलों में बंटी हुई है। इनमें परस्पर विवाह नहीं होता। ये कुल उपाधिवाचक हैं, जैसे हजारी (१ हजार सिपाहियों के नेता), देशमुख (बौधिया या मुखिया) पिजारी (रई धुनने वाला)<sup>१३६</sup> छोटानागपुर की मुझा जाति में ठाकुर, प्रधान, छतरिया, (राजा का छल उठाने वाला), अमात (अमात्य) गोत्र हैं।<sup>१३७</sup> कंजड़ भारत की फिरन्दर जातियों में से है। इनके गोत्र पेशों के आधार पर हैं, जैसे महलबान, कुसबन्ध (कुशा वास इकट्ठा करने वाला), कासवार (गला घोटने वाला), सपेरा (साँप पालने वाला) और अस्वाद। इनमें आपस में विवाह नहीं होता।<sup>१३८</sup>

५. स्थानीय जातियां या पारिवारिक गोत्र—ये गोत्र उपर्युक्त श्रेणियों में विभक्त एवं कुछ छोटे से स्थानों तक सीमित हैं। चाँदा के गोत्रों में उपास्य देवताओं की

<sup>१३०</sup> कृक—पृ० पु० खं० १, पृ० ३४

<sup>१३१</sup> कृक—पृ० पु०, पृ० २०२

<sup>१३२</sup> कृक—वही, खं० २, पृ० ४४३-४

<sup>१३३</sup> कृक—वही, खं० ३, पृ० १२४

<sup>१३४</sup> रोज—पृ० पु०, खं० २, पृ० ५१२

<sup>१३५</sup> रतेज—पृ० पु०, खं० ४, पृ० २६

<sup>१३६</sup> एन्थोबन पृ० पु० खं० ३, पृ० ३५७

<sup>१३७</sup> रसेल—वही, खं० २, पृ० ३०१-२

<sup>१३८</sup> वही, खं० २, पृ० ३१६

संख्या से गोत्र विभाग होता है। उन गोत्रों में ४, ५, ६ और ७ देवताओं की पूजा करते वाले ४ मुखी वर्ग हैं। इनमें से प्रत्येक वर्ग में १० से १५ तक गोत्र हैं। विवाहों में भिन्न-गोत्रता तो अवश्य है, किन्तु साथ ही उपास्य देवताओं की संख्या की दृष्टि से भिन्न वर्गों का भी ध्यान रखना आवश्यक होता है। छिन्दवाड़ा में ६ और ७ देवताओं की पूजा करने वाले दो वर्ग हैं। इन वर्गों में से प्रत्येक वर्ग के लोग परस्पर भाई-बन्ध समझे जाते हैं और उनमें परस्पर विवाह नहीं हो सकता।<sup>१३३</sup> उड़ीसा की एक जाति कुमुनो है। इस जाति में यह प्रथा है कि जिनका मूल देवता एक है वे एक ही जाति या गोत्र के समझे जाते हैं। उनमें परस्पर विवाह नहीं होता है।<sup>१३४</sup> मरुवा की मटकोट्टे चेट्टी नामक जाति व्यसार्ग नाम करती है, यह २ गोत्रों या वर्गों में विभक्त है। इन गोत्रों का नाम उन कर्मियों (मन्दिरों) के आधार पर है जहाँ से पूजा करते हैं।<sup>१३५</sup>

वर्तमान समय में एक ओर जहाँ विहार के सुन्दर सात और म्वाले विवाह में गौ गोत्रों का परिहार आवश्यक समझते हैं, वहाँ दूसरी ओर कुछ ऐसी भी जातियाँ हैं जिनमें गोत्र का नियम बिल्कुल नहीं पाया जाता। ये जातियाँ विवाह को सविष्टता या माया-गिता की पीढ़ियों में भर्सादित करती हैं। संयुक्त प्रान्त के बहेलियों,<sup>१३६</sup> अहिरियों<sup>१३७</sup> में गोत्र का कोई नियम नहीं है। पश्चिमी बंगाल की पालकी उठाने वाली बोरी जाति ने यथांग ब्राह्मण गोत्रों की स्वीकार किया है किन्तु उनके विवाह में समोन्नता बाधक नहीं है।<sup>१३८</sup> चमारों, देहों, घाँवियों, डोमों में गोत्र की पाबन्दी नहीं है।<sup>१३९</sup> श्री करवीकर ने ऐसी ५१ जातियों की एक सूची दी है जिनमें विवाह में समोन्नता बाधक नहीं है।<sup>१४०</sup>

वर्तमान काल की गौत्र पद्धति की प्रधान विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(१) शास्त्र में वर्णित तथा प्रतिपादित गोत्रपद्धति हिन्दू समाज के उच्च वर्ग, विशेषतः ब्राह्मण जाति तक ही सीमित है।

(२) उच्चवर्ग के अतिरिक्त शेष हिन्दू समाज में गौत्र सम्बन्धी व्यवस्था का आधार और स्वरूप एक जैसा नहीं है। इन जातियों के गोत्र वनस्पतियों, पशुओं, महा-पुरुषों, प्रदेमों, उपाधियों, देवताओं आदि विविध आधारों पर कल्पित किये गये हैं।

१३३ कुरु—पृ० पु०, खं० ३, पृ० १३७-६

१३४ रतेल—वही, खं० ३, पृ० ६६

१३५ भर्सेटन—वही खं० ४, पृ० १०८

१३६ भर्सेटन—वही, खं० ४, पृ० २६१

१३७ कुरु—पृ० पु०, खं० १, पृ० १०६

१३८ वही-वही पृ० ४१

१३९ रिजली—खं० १ पृ० ७६

१४० करवीकर—हिन्दू एसोसोमो, पृ० २४७-२४८



(३) हिन्दू समाज में हीन समष्टी जाति वाली जातियाँ अपनी सामाजिक स्थिति उन्नत करने के लिए ब्राह्मणों के गोत्रों को ग्रहण कर रही हैं, इनमें से कई जातियों ने अपने जाँघनों को साखीय गोत्रों का रूप दे दिया है, कुछ ने मतंगाल गोत्रों को कल्पना कर उन्हें ग्रहण कर लिया है। इसका प्रधान प्रेरक हेतु उच्चवर्ण की गरमगीत का अनुसरण अपने धर्म को ऊँचा उठाना है। अनेक लेखकों ने इसे निम्न जातियों में ब्राह्मणीकरण की प्रवृत्ति कहा है। इन जातियों द्वारा ब्राह्मण गोत्रों के ग्रहण पर जैन पर भी विवाह में इनका उपयोग कम होता है। बंगाल में बेंकधा, भुईयानो, राजबगो, दाओभाई, धीवर, गनरर और बेंली जातियों में केवल एक गोत्र होता है, इसका विवाह पर कोई प्रभाव नहीं है। सूरत में कुम्हारों तथा कुछ अन्य बनिया जातियों में ऐसी स्थिति है। मद्रास में कर्मसाले गहुरासाल और तांतियों में एक ही गोत्र होता है, किन्तु इसके साथ अनेक बहिर्विवाही वर्ग होते हैं। बेंस्ता जाति काश्यप और कोन्डिल्य नामक दो वर्गों में बंटी है किन्तु विवाह में इनका कोई महत्व नहीं है। मीथी जातियों में काश्यप और मार्कोण्डेय गोत्र बहुत लोकप्रिय हैं।<sup>१४७</sup>

(४) दक्षिण भारत की गोत्रपद्धति उत्तर भारत की पद्धति से अनेक अंशों में मौलिक भेद रखती है। इसमें गोत्र श्रुतिवाची नहीं, किन्तु सांख्यिक (Totemistic) है। बहिर्विवाही वर्गों में विवाह करने के कुछ ऐसे नियम हैं, जिनसे नजदीकी रिश्तेदारों में अधिक विवाह होते हैं। उत्तर भारत का चार गोत्रों के परिवार का नियम दक्षिण भारत में नहीं पाया जाता। स्थानीय बहिर्विवाह (Local exogamy) का उत्तर भारत में अधिक प्रचलन है।

(५) गोत्र का नियम हिन्दू समाज में सार्वभौम नहीं है। अनेक जातियों में एक गोत्र जातों में परस्पर विवाह हो सकता है, इनमें से सपिण्डता का ही नियम प्रचलित है और इसके आधार पर निकट सम्बन्धियों में विवाह का वर्जन किया जाता है।

### गोत्र के नियम की अनावश्यकता

वर्तमान काल में इस नियम का विवाह में विशेष उपयोग नहीं है। गोत्र को बनाये रखने के पक्ष में दो प्रधान युक्तियाँ दी जा सकती हैं—(१) गोत्र रक्त सम्बन्ध की सूचित

<sup>१४७</sup> १९११ की भारत की जनगणना की रिपोर्ट सं० १, भाग १, पृ० २५०

पेट ने भारत की १९११ की जनगणना रिपोर्ट में ऐसी अनेक जातियों के उदाहरण दिये हैं। उड़ीसा में एक गोत्र वालों में परस्पर विवाह केवल ब्राह्मण जातियों में ही वर्जित है। बम्बई में अनावत ब्राह्मण एक गोत्र में विवाह कर सकते हैं बशर्ते कि वर-वधू सात पीढ़ियों से बाहर के हों, औद्योग्य ब्राह्मणों में उपपद या अटक (surnames) की विभिन्नता होने पर सगोत्र

करता है और सुप्रजनन शास्त्र की दृष्टि से यह आवश्यक है कि नजदीकी रिश्तेदारों में शादी न हो। (२) धर्मशास्त्रों में संगोत्र विवाहों का निषेध है। यदि लोक प्रचलित धारणा के अनुसार यह मान लिया जाय कि गोत्र उत्सम्बन्ध को द्योतित करते हैं, जन्म-दग्नि, बसिष्ठ, भरद्वाज, मौनमादि ऋषियों की वंशपरम्परा अनर्वाच्छिन्न रूप से चली आ रही है, तो हमें यह भी मानना चाहिए कि भारतीय परम्परा के अनुसार, सृष्टि प्रारम्भ हुए १ अरब ६७ करोड़ वर्ष हो चुके हैं। इन दो अरब वर्षों में ऋषियों के बाप लाखों पीढ़ियाँ गुजर चुकी हैं। निवृत्त सन्तानधर्मों के विवाहों में द्वानि सम्भव है। इनमें शादी रोकने के लिए हिन्दू समाज में माता-पिता की पाँच और सात पीढ़ी छोड़ने का विधान है। इस नियम के रहते हुए सुप्रजननशास्त्र की दृष्टि से गोत्र का प्रतिबन्ध अन्वयासिद्ध और निरर्थक है। गाल्टन के नियम के अनुसार, पितृ-परम्परा से प्राप्त गुणों की विलोपताएँ प्रत्येक पीढ़ी में आधी रह जाती हैं। पर गोत्र के नियम में हम लाखों पीढ़ियों के अन्तर को भी पर्याप्त नहीं समझते। प्राचीन काल में मिश्रामिश्र के गोत्र वालों के लिए निवृत्त सम्बन्धी होने के कारण प्रतिबन्ध लगाना भले ही आवश्यक समझा गया हो, किन्तु आज उसे उत्तरी दुइता के साम जैसी रूप में स्वीकार करना बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं कहा जा सकता। यदि गोत्र की यही पाबन्दी माननी है तो यह क्यों नहीं माना जाता कि ब्रह्मा के मानसपुत्र भरद्वाज बसिष्ठ आदि परस्पर भाई थे। उनको सम्मान भी नजदीकी रिश्तेदार हैं। उनमें परस्पर विवाह क्यों किया जाता है। गोत्र की व्यवस्था का यदि उपर्युक्त क्रम से तर्कपूर्ण सोचना शुरू करें तो हिन्दू जाति में विवाह ही नहीं होना चाहिए।

गोत्र की पाबन्दी शास्त्रीय है, जड़ वह मान्य है; यह कोई प्रबल मुक्ति नहीं है। इस मुक्ति का बल अभी माना जा सकता था जब हम अन्य बातों में भी धर्मग्रन्थों का पूरा पूरा अनुसरण कर रहे हों। ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रत्येक गृहस्थ के लिए अम्बाधान एक पवित्र एवं अनिवार्य कर्त्तव्य है, किन्तु आज हजारों या लाखों हिन्दुओं में से कोई एक अग्निहोत्री मिलेगा। वैदिक युग के आर्यधर्म तथा आज के हिन्दू सनातन धर्म में अकाश पाताल का अन्तर है। हमने वरुण विवाह तथा विधवा विवाह के वैदिक आदेशों के सर्वथा विपरीत छोटी बालिकाओं के विवाह को तथा बाल विधवाओं को माजन्जीवन विधवा बनाये रखना धर्म समझा। इस विधम में सनातन नियमों का ध्यान नहीं रखा, तो संगोत्रता के विषय में हो हयारा इतना आग्रह क्यों है ?

एक गोत्र वालों की संख्या विशाल होने पर गोत्र का नियम शिथिल करना

विवाह संभव है। भोज ब्राह्मणों में प्रवरभेद होने पर एक गोत्र वाले शादी कर सकते हैं। बिहार के शाकद्वीपी ब्राह्मण संगोत्रता को विवाह में बाधक नहीं मानते। आसाम, गड़वाल और मारवाड़ के ब्राह्मण गोत्र के नियम का पूरी तरह पालन नहीं करते हैं।

ही पड़ता है। प्राचीन काल में भृगु और अमिरा मण के मोक्षों के लिए यह नियम रीखा किया गया था। अमेन, मित्रयु और जुनक भृगु गोत्र के होते हुए भी परस्पर शादी कर सकते थे। इसी तरह पृथ्वरक्ष, मुद्गल, विष्णुबुद्ध, कण्व, अमन्त्यहारी, कपि, यश और संकृति गोत्र वालों में परस्पर विवाह की अनुमति थी। आजकल भी हिन्दुओं में अनेक जातियों में एक गोत्र में विवाह हो सकता है। बिहार के छपरा जिले में सनातन ब्राह्मणों के घर बहुत कम हैं, वे अपनी जाति से बाहर शादी नहीं कर सकते और अपनी जाति वालों से शादी करने में गोत्र का नियम बाधक है। जाति का नियम तोड़ना कठिन है, अतः उन्होंने गोत्र का नियम तोड़ लिया है।<sup>१४८</sup> दक्षिणी बिहार के सकन गाकड़ीपी ब्राह्मण अपने गोत्र में शादी करते हैं। पंजाब के सारस्वतों में अपने गोत्र में विवाह ही सज्जा है।<sup>१४९</sup> अग्रवालों में गर्ग गोत्र बहुत अधिक पाया जाता है। इसकी व्यापकता से विवाहों में बहुत कष्ट अनुभव होता था, अतः अग्रवालों ने यह नियम बना लिया है कि गर्ग गोत्र वालों में आपस में विवाह हो सकता है।

१८४६ ई० तक सगोत्र विवाहों का कानूनी दृष्टि से वैध नहीं माना जाता था। १८७२ के विशेष विवाह कानून तथा १८९३ के संशोधित विवाह कानून के अनुसार गोत्र की भिन्नता विवाह के लिए आवश्यक नहीं थी, किन्तु इन कानूनों के अनुसार दीवानी (Civil) विवाह ही हो सकते थे। धार्मिक विधि से किये गये विवाह में अंतर्गोत्रता के विषय के सम्बन्ध में विभिन्न उच्च न्यायालयों के निर्णय एक जैसे नहीं थे।

### वर्तमान न्यायालय और सगोत्र विवाह

१८४६ ई० से पहले तक अदालतें यह मानती थीं कि सामान्य रूप से ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य जातियों में गोत्र का नियम एक सम्मानित प्रथा है।<sup>१५०</sup> किन्तु १८३३ में लाहौर हाईकोर्ट ने अग्रवाल वैश्यों में सगोत्र विवाह की प्रथा की वैधता इस आधार पर स्वीकार की कि क्षत्रियों और वैश्यों के गोत्र-प्रवर उनके पुरोहितों के आधार पर होने के कारण रक्त सम्बन्ध के सूचक नहीं है।<sup>१५१</sup> १८४६ में जम्हई हाईकोर्ट ने भी सगोत्र विवाह की अनुमति देने वाले एक रिवाज की स्वीकार किया।<sup>१५२</sup> इसाहाबाद हाईकोर्ट ने यह निर्णय दिया कि एक हिन्दू विधवा अपने पिता का गोत्र रखने वाले पुत्र

<sup>१४८</sup> भगवानदास—पुरुषार्थ

<sup>१४९</sup> जोगेंद्रनाथ भट्टाचार्य—हिन्दू कास्ट्स एण्ड सेक्ट्स, पृ० ४८-५६

<sup>१५०</sup> रामचन्द्र बनाम गोपाल (१८०८) ३२, बं. ६१६, ६२७ मोनाथी व. रामनाथ (१८८८) ११ म० ४६, ५१ फूलबैच

<sup>१५१</sup> श्रीकृष्ण बनाम श्यामसुन्दर जा० इ० रि० १८३३ ला० ५८५

<sup>१५२</sup> माधवराम बनाम राघवेन्द्रराव इ० ला० रि० (१८४६) जम्हई ३७५

से वैध विवाह कर सकती है, क्योंकि पहले विवाह के बाद पतिकुल में जाने पर वह पिता का गोत्र छोड़ कर पति का गोत्र ग्रहण कर लेती है, यह गोत्र पिता के गोत्र से भिन्न होता है, अतः पिता के गोत्र में उसका विवाह विधिसम्मत है।<sup>१४३</sup> यह तर्क इसलिए नहीं ठीक प्रतीत होता कि याज्ञ० स्मृति में यह कहा गया है कि कन्या असमान गोत्र और प्रवर में उत्पन्न होनी चाहिए (असमानार्यगोत्रव्याम् १।५३)। पति का गोत्र वह उसी समय तक रखती है, जब तक वह पत्नी की स्थिति में रहती है, विधवा होने पर पुनर्विवाह के लिए वह पति का गोत्र नहीं रख सकती क्योंकि उस समय तो वह गोत्र देखा जायगा, जिसमें वह उत्पन्न हुई है और वह गोत्र उसके पिता का ही है, अतः इसमें उसका विवाह वैध नहीं होना चाहिए।<sup>१४४</sup> नये कानून ने इन सब विवादों का अन्त कर दिया है।

**हिन्दू विवाह अयोग्यता निवारक कानून—**(१९५६ का अठारहवाँ कानून) ने अगोत्र विवाहों को वैध बनाते हुए इस विषय में एक कांठिकारी परिवर्तन किया है। इस कानून की दूसरी धारा के अनुसार जो विवाह अन्य दृष्टियों से वैध है, वह केवल इस तथ्य के कारण अवैध नहीं होगा कि वर-अधू समान गोत्र या समान प्रवर के हैं। १९५५ के हिन्दू विवाह कानून की धारा २९ में यह व्यवस्था दोहरायी गयी है और इस प्रकार वर्तमान काल में हिन्दू विवाह में अगोत्रता के नियम का कानूनी तौर से अन्त हो गया है। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं प्राचीन काल से चली आने वाली इस व्यवस्था का हिन्दू समाज से बहुतों में जोना संभव नहीं है। परम्परावादी हिन्दू इस प्राचीन रुढ़ि का पालन करते रहेंगे। नये कानून ने केवल इतना कार्य किया है कि भविष्य में अगोत्र विवाह अवैध नहीं माना जा सकेगा।

गोत्र प्रायः पितृवंशमूलक होता है, अतः गोत्र के प्रतिबन्ध के कारण पितृवंश के सम्बन्धियों के साथ विवाह बन्धित होता है। किन्तु केवल गोत्र का नियम होने पर मातृवंश के सम्बन्धियों, मामा की लड़की आदि अनेक निकट सम्बन्धियों के साथ विवाह संभव था। ऐसे विवाहों को रोकने के लिए असहिष्णुता का नियम बनाया गया था। अगले अध्याय में इसका प्रतिपादन किया जायगा।

<sup>१४३</sup> राधानाथ मुकुजी बनाम सक्तिप्रब मुकुजी (१९३६) २८ इला० १०५३

<sup>१४४</sup> मेन—हिन्दू ला (मद्रास १९५३), पृ० १६०

## बहिर्विवाह-सपिण्डता

### सपिण्डता का सामान्य अर्थ

हिन्दू समाज में बहिर्विवाह का प्रतिबन्ध दो प्रकार का है, एक तो यह कि विवाह अपने गोत्र और प्रवर से बाहर होना चाहिए, दूसरा यह कि सपिण्डों में विवाह नहीं होना चाहिए। सपिण्ड का अर्थ है—एक पिण्ड वाला। पिण्ड शब्द की विलुप्त व्याख्या आम दबास्थान की जायेगी, किन्तु यहाँ इस विषय में इतना ज्ञान लेना पर्याप्त है कि पिण्ड शरीर या देह को कहते हैं। अतः सपिण्ड का अर्थ है एक ही पिण्ड या देह वाला। पुत्र और पौत्र में पिता के शरीर के अंग आते हैं, इसलिए वे पिता के साथ सपिण्ड कहाते हैं। हमारे शब्दों में, रक्तसम्बन्ध से सम्बद्ध सम्बन्धियों के लिए सपिण्ड शब्द का व्यवहार होता है। पिता से ऊपर के सात तथा माता से ऊपर के पाँच पूर्वज सपिण्ड कहाते हैं। बर और बहु इन सात और पाँच पीढ़ियों के अन्दर नहीं होने चाहिए। ये पीढ़ियाँ निषिद्ध पीढ़ियाँ (Prohibited degrees) कहाती हैं और प्रत्येक विवाह इन पीढ़ियों से बाहर असपिण्ड सम्बन्धियों में ही होना चाहिए। इस नियम का प्रधान उद्देश्य रक्तसम्बन्ध से सम्बद्ध निकट सम्बन्धियों—पिता-पुत्री में, माता-पुत्र में, सगे भाई-बहनों में तथा चचेरे, भगेरे, फुफेरे भाई-बहनों में विवाह सम्बन्धों को रोकना है।

### वैदिक युग में सपिण्डता का विचार

वैदिक साहित्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि उस समय असपिण्डता के वर्तमान नियम का पूरी तरह विकास नहीं हुआ था। वेदों में पिण्ड शब्द का प्रयोग शरीर के अर्थ में न होकर प्रायः अग्नि में डाली जाने वाली हवि के रूप में हुआ है (ऋ० १।१६२।१६, तै० सं० ४।६।६।३)। धर्मसूत्रों के समय से सपिण्ड शब्द का वर्तमान उपर्युक्त अर्थ में प्रयोग होने लगा तथा स्पष्ट शब्दों में सपिण्ड विवाहों की निन्दा की जाने लगी।

वैदिक साहित्य में सपिण्ड शब्द का प्रयोग न मिलने पर भी कुछ ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि उस समय विवाह निकटवर्ती सपिण्ड सम्बन्धियों में नहीं, अर्थात् दूरवर्ती स्थावों में असपिण्ड सम्बन्धियों में हुआ करते थे।

ऋग्वेद के विवाह विषयक सूक्तों में सूक्त के मन्त्रों से यह प्रतीत होता है कि कन्या

का विवाह दूरवर्ती स्वाम में होता था, पडि-पत्नी के घरों में पयोंत अन्तर होता था। विवाह संस्कार की समाप्ति के साथ बधू रथ पर चढ़ कर अपने पति के घर जाती थी। एक मन्त्र में कहा गया है—पूषा सुम्हारा हाथ पकड़ कर तुम्हें यहाँ से ले जाय, अश्विनी देवता तुम्हें रथ में ले जायें (ऋ० १०।८५।२५)। इस मन्त्र से ज्ञात होता है कि बधू के घर से घर का घर दूतना दूर है कि मार्ग में चोर-डाकुओं का भी भय है, जो इस प्रकार बधू के साथ अरन्ध्र को घागस लौटने वाली ऐसी वस्तुओं को लूटा करे। संभवतः इसी-लिए घर-बधू को एक आशीर्वादपरक मन्त्र में कहा गया है—जो बटभार पति-पत्नी पर हमला करते हैं, वे तुम्हें न प्राप्त हों। तुम कठिनता से लड़के जा सकने योग्य स्वाम पर सुगम मार्गों से पहुँचो, सुम्हारे शत्रु-भाग जायें (ऋ० १०।८५।३२)। निकट संबंधियों के विवाह में इस प्रकार के आशीर्वादों की आवश्यकता ही नहीं है।

कन्याओं का विवाह सामान्यतः दूरवर्ती कुल में होने का एक अन्य प्रमाण कन्या के लिए 'दुहिता' शब्द का प्रयोग है। दुहिता का अर्थ दूर रखी हुई कन्या है (दुहिता दूरे हिता भवति—गिरिक)। दुहिता यह है जिसकी शादी दूरवर्ती कुल में हो।

यह दूरी कितनी होनी चाहिए, इस विषय में कोई स्पष्ट संकेत वैदिक साहित्य में नहीं है। बाद में धर्मशूत्रों तथा स्मृतियों में इस दूरी की स्पष्ट व्याख्या कर दी गयी है। दुहिता पिता की सात तथा माता की पाँच पीढ़ी से अधिक दूर होनी चाहिए, किन्तु वैदिक साहित्य में शतपथ ब्राह्मण (१।८।३।६) ने ही इस विषय पर कुछ प्रकाश डाला है। उसके एक मन्त्र में कहा गया है भोक्ता और भोग्य में इस प्रकार एक कर्म से पुनर्जन्त हो जाती है। अतः एक ही पुण्य से भोक्ता (पति) और भोग्य (पत्नी) पैदा होते हैं। अब सम्बन्धों खेलते और प्रसन्न होते हुए कहते हैं कि चौथी या तीसरी पीढ़ी में हम दोनों मिलेंगे,<sup>१</sup> शतपथब्राह्मण इस संदर्भ की व्याख्या करते हुए यह कहता है कि काण्व तीसरी पीढ़ी (Dagaro) में और गौराष्ट्र चौथी पीढ़ी में विवाह करते हैं। शतपथ ब्राह्मण के इस वचन से श्री मैकडालन और भीष ने यह परिणाम निकाला है कि वैदिक युग में विवाह के लिए पिता और माता की तीन या चार पीढ़ियाँ उस समय छाँड़ी जाती थीं।<sup>२</sup>

वैदिक साहित्य में भातृव्य-विवाह का संकेत

चचेरे, गोसेरे, ममेरे, फुफेरे भाई-बहिनों (Cousins) में वैदिक युग में विवाह होता था या नहीं, इस विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। हम

<sup>१</sup> श० अ० १।८।३।६—समान एव कर्मन् व्याक्रियते तस्मात्समानादेव पुनर्जायता आद्यश्च जायते इमे हि चतुर्थे पुरुषे तृतीये संगच्छामहे इति वि देवे वीत्यमाना जात्या आसते।

<sup>२</sup> वैदिक इण्डेक्स, खण्ड १, पृ० २३६

देख चुके हैं कि शादी सामान्यतः दूर के कुल में होती थी। दुहिते का अर्थ ही यह था कि कन्या दूर कुल में व्याही जाय। मुर्या सूक्त के मन्त्रों से भी स्पष्ट है कि वर और वधू दूर-दूरी स्थानों के होते थे। बचेरे भाई-बहनों की शादी (Parallel cousin marriage) का वैदिक साहित्य में कोई संकेत नहीं मिलता। पितृकुल से सम्बन्ध स्त्री-पुरुषों में विवाह नहीं होता था। किन्तु दक्षिण में मामा की कन्या के साथ शादी का रिवाज प्रचलित है। कहा जाता है कि एक वेद मन्त्र ऐसे विवाहों की पुष्टि करता है।<sup>३</sup> पराशर और अपराक ने इस मन्त्र को उद्धृत किया है। वह ऋग्वेद के छिन्न मुक्तों में पाया जाना है। इस मन्त्र का अर्थ पराशर के मतानुसार इस प्रकार है—“हे इन्द्र, हमारे इस मन्त्र में प्रशंसित भाषों से आओ, आपने हिम्से को ग्रहण करो। इन (पुंगवियों) ने तुम्हारे मित्र भी के साथ मिली हुई चर्मी (बघा) के भाग को उसी प्रकार खाया है जैसे विवाह में किसी पुंगव का भाग बुआ या मामा की लड़की होती है।” मध्यकाल में, टीकाकारों और निबन्धकारों ने इस मन्त्र को पामा, बुआ की सन्तानों के विवाह के पक्ष एवं विपक्ष दोनों में प्रयोग किया है। इन विवाहों का समर्थन करते वाले एक का अर्थ तो ऊपर दिया गया है, किन्तु अपराक (पृ० ८३) आदि टीकाकारों ने ऐसे विवाहों के विपक्ष में ये, वे ‘जहुः’ शब्द पत्र बन् देते हैं और यह कहते हैं कि “हे इन्द्र, उन्होंने तुम्हारे भाग को उसी तरह अग्नि में छोड़ा है जैसे बुआ की लड़की और मामा की लड़की का विवाह में छोड़ा जाता है।” यह मन्त्र छिन्न मुक्तों में पड़ा गया है। छिन्न दूसरी शाखा के वे मन्त्र हैं जो अपनी शाखा में किसी आक्षेपकला के कारण पड़े जाते हैं।<sup>४</sup> कार्यायन ने अपनी सर्वानुक्रमणी में उन्हें स्थात नहीं दिया। शौनक ने इसकी गणना मात्र की है। सायण ने इन पर टीका भी नहीं की। इनसे वैदिक काल के बहुत बय की घटनाओं, गोपी, कृष्ण और कानिबधमन का वर्णन है। अतः छिन्न मन्त्र वैदिक काल के विषय में प्रामाणिक नहीं माने जा सकते और इनके आधार पर वैदिक काल के सम्बन्ध में कोई परिणाम नहीं निकालना चाहिए।

### महाभारत में वर्णित भातृव्यविवाह

महाभारत में मामा तथा भूखी की सन्तानों में विवाह के कुछ उदाहरण मिलते हैं। पहला उदाहरण अर्जुन और सुभद्रा के विवाह का है। वसुदेव और कुन्ती भाई-बहन थे, दोनों गुर नामक राजा की सन्तान थे (आदि पर्व ११।१।१-३)। वसुदेव की लड़की सुभद्रा थी। इस तरह कुन्ती सुभद्रा की बुआ हुईं। कुन्ती के पुत्र अर्जुन और सुभद्रा की शादी

<sup>३</sup> ऋग्वेद ७।५५ के परिशिष्ट का ११ वाँ मन्त्र—आधाहोन्द्र पथिभिरोदितेभिर्यज्ञमिमं नो भागधेयं गुणस्य। तृप्ता अहुर्मातुलस्येव योषा सागस्ते पंतुवन्तेयो वपामिव। यत्क के निरुक्त परिशिष्ट (१४।३१) में भी यह मंत्र दिया गया है।

<sup>४</sup> महाभारत शान्तिपर्व ३२३।१० पर नीलकण्ठी टीका

का यह अर्थ हुआ कि सुभद्रा ने अपनी ब्रूज के लड़के से विवाह किया। अर्जुन ने अपने मामा वसुदेव की लड़की से शादी की। मध्यकाल के टीकाकारों के लिए कृष्ण के साथ सम्बन्ध होते में यह विवाह अत्यधिक आपत्तिजनक था। कुमारिण भट्ट ने अपने व्याख्या कोमल एवं पार्श्विक में यह सिद्ध करता चाहा कि अर्जुन ने अपने मामा की लड़की के साथ शादी नहीं की। उनका कहना है कि सुभद्रा महाभारत में कृष्ण को बहिन नहीं मानी है किन्तु वह उसकी आगत्यधिक बहिन नहीं थी। वह वसुदेव की माता की बहिन की लड़की थी। मामी की लड़की को लड़की कहा जा सकता है और कहते हैं।<sup>५</sup> जिस कृष्ण ने सीता का उष्ण उपदेश दिया, वे ऐसी भागवती प्रथा को कैसे प्रोत्साहित कर सकते हैं ?

हरिवंश पुराण में मामा की लड़की के साथ विवाह के दो अन्य उदाहरण दिये गये हैं। कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का ठकरी की कन्या के साथ विवाह हुआ था। भवभी कृष्ण की पत्नी रुक्मिणी का भाई था और इसलिए वह कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का मामा बना। दूसरा उदाहरण प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध का था। अनिरुद्ध ने रुक्मी की पोती रोजना से शादी की। इन उदाहरणों के सम्बन्ध में यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि ये सब यदुवंश के हैं। अन्य वंशों में इस प्रकार के विवाहों की ज्यों विलुप्त नहीं मिलती। इसलिए यदि इस प्रकार के विवाह उस समय प्रचलित थे तो विशेष जातियों या वंशों में प्रचलित थे, सामान्य तौर पर उनका प्रचलन विलुप्त नहीं था।

बौद्ध साहित्य में भी इस प्रकार के विवाहों का उल्लेख है। अजातशत्रु राज-कुमारी वजिरा की ब्रूज का लड़का था। वजिरा और अजातशत्रु की शादी हुई। प्रथा नामक एक गृहस्थ ने अपने मामा की लड़की सुजाता से शादी की (धम्मपद की टीका पृ० २६५) ज्ञानन्द अपनी ब्रूज की लड़की उष्पलवध्या के रूप से मुग्ध होकर उसे व्याहृत चाहता था। महावंज (अ० ६) में लंका के राजा पाण्डु वासुदेव की कन्या चित्रा की कन्या है। चित्रा इतनी सयवती थी कि उसे देखकर प्रत्येक व्यक्ति पागल हो जाता था। अतः उसे उन्मादचित्रा कहते थे। चित्रा के बारे में यह भविष्यवाणी की गयी थी कि उसका पुत्र चित्रा के भाइयों की गद्दी पाने के लिए उन्हें मार डालेगा। इसलिए उन्होंने चित्रा पर कषत्रदस्त पहना बिठा दिया। एक दिन उसने अपने मामा के लड़के दीर्घवामनी (दीर्घ घामनी) को देखा, वह उस पर मुग्ध हो गयी, काड़े पहरें और प्रतिबन्धों के बावजूद वह चित्रा के पाम प्रति रात्रि आने लगा। चित्रा सयवती हुई। रात्रि तक वह समाचार पहुँचा और अन्त में चित्रा की दीर्घवामनी के साथ शादी कर दी गयी। सुवप्रभाती के साथ उसके ब्रूज के लड़के बुधकामय ने विवाह किया तथा उसे अपनी रानी बनाया। एक आश्वक (सं० २६२) में इसी तरह के प्रणयविवाह की मन्तव्यक कथा है।

जैन साहित्य में ऐसे विवाहों का वर्णन है। जैन रामायण (पर्व ७ सं० २) में कहा



गया है कि अयोधन राजा की बहिन सरयवाद्या तृणबिन्दु के साथ व्याहो गयी तथा तृण-बिन्दु की बहिन विरि का अयोधन के साथ परिणय हुआ। अयोधन की सुलता नाम की पुत्री हुई और तृणबिन्दु का मधुपिग नाम का चहका। सुलता के विवाह के लिए न्ययवर रचा गया। विरि बाहरी की सुलता का विवाह मधुपिग से हो, उसने सुनवा को सम-झाया और उसने बचन भी ले लिया कि यह मधुपिग से जायी करेगी। किन्तु सुनवा का विवाह अन्त में सगर के साथ हो गया।

भारतवर्ष में धर्मसूत्रों के समय से पहले विवाह साधारणतया दूर के कुलों में होता था, किन्तु सात और पाँच पीढ़ी के निषेध का नियम प्रचलित नहीं हुआ था। यामा-बुद्धा की सन्तानों में कभी कभी सम्बन्ध हो जाते थे। दाक्षिणात्यों ने तो मामा की कन्या को विवाह योग्य समझा। अतः सपिण्डता का नियम उस समय वर्तमान रूप में प्रचलित नहीं था। अपराज आदि शीकाकारों द्वारा ब्रह्मपुराण का एक बचन उद्धृत किया गया है। इस बचन में कहा गया है कि सगोत्र एवं सपिण्ड विवाह कलिवर्ग में वर्जित है। वे पुरानी बातें धर्मशास्त्रकारों को अपने समय के अनुकूल नहीं प्रतीत होती थीं, उनके बचन के लिए उन्होंने कलिवर्ग का युग उत्पन्न हुई दिखावा था। वैदिक युग में निषेध प्रच-लित था। बाद में समाज में उसे बुरा समझा जाने लगा। शास्त्रकारों ने कहा निषेध कलि-वर्ग है। यही हाल अश्वमेध और गोमेध नामक यज्ञों का था। बौद्ध धर्म ने इनसे संन्यासी बना डाले कि संन्यास समाज के लिए अभिशाप बन गया। अतः संन्यास को कलिवर्ग्यों में गिना गया। सपिण्ड एवं सगोत्र विवाहों को कलिवर्ग्यों में गिनने से यह सन्देह होता है कि किसी समय में ५ और ७ पीढ़ी के निषेध का इतनी कठोरता से पालन नहीं होता होगा।

### धर्मसूत्रों में सपिण्डता का नियम

धर्मसूत्रों के समय में माता और पिता की कुछ पीढ़ियों का छोड़ने का स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है। गौतम (१।४।३) माता की पाँच पीढ़ी और पिता की मातृ पीढ़ी के बाद ही वर-वधू को विवाह की अनुमति देता है। इसका अर्थ यह हुआ कि काम में कम पिता की ८ वीं और माता की ६ ठी पीढ़ी में वर और वधू के होने पर उनकी जादी होनी चाहिए। गौतम का नियम इस विषय में अन्य सब सूत्रकारों की अपेक्षा अधिक कठोर है। अन्य धर्मसूत्र और स्मृतियाँ ७ वीं और ५ वीं पीढ़ी में विवाह की अनुमति देती हैं। गौतम के नियमों को अन्य धर्मसूत्रों के साथ अनुकूल सिद्ध करने के लिए ही संभवतः बृह-सूत्र ने इस सूत्र का अर्थ यह किया है कि उन पुरुषों में विवाह हो सकता है जो पिता की ओर से छः पीढ़ी तथा माता की ओर से चार पीढ़ी के अन्दर सम्बन्ध न हों। किन्तु गौतम के सूत्र के मन्व इतने स्पष्ट है कि उनसे उपर्युक्त अर्थ कदापि नहीं लिया जा सकता।

वीरभाजन ने गोशविषयक नियमों का प्रथमाध्याय में विस्तार से प्रतिपादित किया

है, किन्तु समिप्यता के नियमों के विषय में वह सील है। वह आश्चर्य की बात है कि वह अपने गृह एवं धर्मग्रन्थ में भी इसकी कोई व्याख्या नहीं करता। अपने धर्मग्रन्थ के प्रारम्भ में उन्होंने जर्मदा नदी के दक्षिण में अपने वाले दाक्षिणात्यों के मेरे पाँच आचारों का वर्णन दिया है,<sup>१</sup> जिनमें वह प्रसङ्गगत है। ये पाँच निषिद्ध आचार हैं—यज्ञोपवीत संस्कार से नून्य व्यक्ति और स्त्री के साथ भोजन करना, बागी भोजन खाना, माता और बुढ़ा की सड़की में पानी करना। बौधायन पहले पूर्ण पक्ष रखता है कि दक्षिण से इन बातों के प्रतिनिधि स्तन के कारण उनके कर्तव्य में कोई दोष नहीं, किन्तु यदि कोई उत्तरापथ (उत्तरी भारत) वाला दाक्षिणात्य के निवासियों के इन आचारों को करता है तो वह अवश्य दोषी है, क्योंकि उनमें वैश्व का आचार ही प्रमाण है। गौतम इससे सहमत नहीं हैं। बौधायन अपना यह मत देता है कि ऐसी व्यवस्थाओं की उपेक्षा एवं अन्याय करना तार्किक क्योंकि वे जहाँ सिद्धों के आचार तथा स्मृति के विरुद्ध हैं (बौधायन, प्र. सू. १।१।२१-२२)। बौधायन रीति में १वीं शताब्दी पूर्व का लेखक है, इससे स्पष्ट है कि उस समय उत्तर भारत में तीसरी पीढ़ी के विवाह बिल्कुल बन्द हो चुके थे। किन्तु दक्षिण में माता और बुढ़ा की सड़की के विवाह करने का रिवाज प्रचलित था।

आपन्नम्ब धर्मग्रन्थ ने समिप्य सम्बन्धों का उल्लेख बहुत अनिश्चित और स्पष्ट रूप में किया है। वह (२।२।११।१५) कहता है कि अपनी सड़की की माता और पिता के गोमिनाम्बन्ध से सम्बद्ध अतिथियों को न दे। किन्तु वह यह नहीं बताता है कि माता की कितनी पीढ़ी छोड़नी चाहिए। हरदत्त ने आप० धर्मग्रन्थ की उद्धृता टीका में दूसरी स्मृतियों के आधार पर गोमिनाम्बन्ध वाले व्यक्तियों को माता और पिता की पाँच और सात पीढ़ी से बाहर बनाया है। किन्तु हरदत्त १२ वीं शताब्दी का होने में इतना अर्वाचीन लेखक है कि उस आशय के बारे में प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। हरदत्त के समय में समिप्यता का प्रतिबन्ध हिन्दू समाज में बलपूर्वक हो चुका था। उसने अपने समय में प्रचलित प्रतिबन्ध के अनुसार ही उक्त सूत्र की व्याख्या की है। संभवतः आपन्नम्ब के समय में इस विषय का कोई एक नियम भारी भारत में प्रचलित नहीं था। बौधायन ने स्पष्ट रूप में उत्तर और दक्षिण के भिन्न प्रकार के नियमों का संकेत किया है। नियमों की विविधता को देखते हुए आपन्नम्ब ने इस विषय में कोई स्पष्ट एवं निश्चित नियम बताया उचित नहीं समझा।

बभ्रवत् ने इस विषय में आपन्नम्ब और बौधायन की तरह अस्पष्टता से काम नहीं लिया। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा है (८।१) कि गृहस्थ माता के घर से सम्बद्ध (मातृबन्धु) व्यक्तियों में से पाँचवीं तथा पितृबन्धु (पिता द्वारा सम्बद्ध) व्यक्तियों

<sup>१</sup> बौधायन धर्मग्रन्थ १।१।१६—वर्षतदनुपेतं सह भोजनं स्त्रिया सहभोजनं धर्म्य-  
वितभोजनं, मातुसवितुष्वसुहितुगमनमिति ॥

में से सातवीं पीढ़ी की स्त्री को प्राप्त करे। इस प्रकार उसने गौतम की ८ और ६ पीढ़ी के नियम को एक पीढ़ी कम कर दिया है। यह बात भी उल्लेखनीय है कि गौतम के अनिर्दिष्ट किसी धर्मसूत्रकार ने सपिण्ड विवाह को पाप नहीं ठहराया। गौतम (३।२।१) बतलाते हैं कि सपिण्डता के नियमों का उल्लंघन करने वाला अप्रति जाति-भ्रष्ट तथा पवित्र हो जाता है। गौतम की यह उन्नता हम संगोल विवाहों के सम्बन्ध को भी देख चुके हैं। यह स्पष्ट है कि गौतम इस विषय में अपने आदर्शों का प्रतिपादन कर रहा है। वस्तुस्थिति यह जान पड़ती है कि गोल के समाप्त हो निषिद्ध पीढ़ियों का नियम इस समय धीरे-धीरे प्रचलित होने लगा था। उत्तरी भारत में यह काफी कम चुका था। किन्तु दक्षिण में उन्मत्त प्रचलन बहुत कम था। गौतम जैसे कुछ सुधारक इस नियम को दृढ़ बनाने का तथा इसके उल्लंघन को दण्डनीय बनाने का प्रयत्न कर रहे थे। किन्तु अभी तक इस नियम में काफी लचकीरापन था।

### स्मृतिकार और सपिण्डता

स्मृतिकारों में मनु ने इस नियम की विधिवलता को बचाये रखा। मनु (३।५) कहता है कि असपिण्ड एवं असंगोल कन्या से विवाह होगा चाहिए। मनु ने विवाह के प्रकरण में असपिण्ड शब्द का पहली बार प्रयोग किया है। मनु के पूर्ववर्ती धर्मसूत्रकारों ने या तो पीढ़ियों गिताधी या योनि सम्बन्ध पर बल दिया, किन्तु पिण्ड शब्द का प्रयोग नहीं किया। मनु ने पिण्ड शब्द की कोई व्याख्या नहीं की, उसने विवाह के प्रकरण में भी यह नहीं बताया है कि सपिण्डता कितनी पीढ़ियों तक होती है, किन्तु अन्य दो प्रकरणों में उसने सपिण्डता की व्याख्या की है। वेतधिधि (५।६०) में वह कहता है—सपिण्डता सातवें पुरुष पर समाप्त हो जाती है और समानोदक भाव उस समय समाप्त हो जाता है जब जन्म और नाम नहीं पाए रहते। क्षेत्रज पुरुषों के धनाधिकार प्रकरण में वह कहता है कि तीन पूर्वजों को जन्म और पिण्ड देना चाहिए, चौथा पुत्र्य इनका देने वाला होता है, पाँचवें का इतने कोई सम्बन्ध नहीं होता (६।१०६)। पहली व्याख्या के अनुसार सपिण्डता सात पीढ़ी तक है और दूसरी के अनुसार चार पीढ़ी तक। विवाह के समय मौन से सपिण्डता अभीष्ट है, अथवा इन दोनों से भिन्न कोई सपिण्डता वांछनीय है, मनु इस पर कोई प्रकाश नहीं डालता। टीकाकारों ने पिता और माता की सात और पाँच पीढ़ी छोड़ने का जो विधान किया है, उसे अन्य धर्मशास्त्रों के बचनों से पुष्ट किया है। यह अन्य धर्मशास्त्रों का मत भले ही हो, किन्तु मनु का मत नहीं कहा जा सकता।

मनु ने जगन्मा स्त्रियों के प्रायश्चित्तों का नवें अध्याय (६।१७५-७९) में उल्लेख किया है। इनमें वह बुधा, मौसी और मामा की कन्या के गमन के लिए बान्ध्यायन व्रत का प्रायश्चित्त बताता है। बुद्धिमान् पुरुष को यह हिदायत की गयी है कि वह इन तीन को स्त्री न समझे, वे रिश्तेदार होने के कारण विवाह करने योग्य नहीं हैं, इन्हें

ग्रहण करने वाला जाति से अशुचि-युक्त होता है। ये कन्याएँ तीसरी पीढ़ी में आती हैं। क्या मनु इस पीढ़ी के बाद के विवाह का बंध समझता था? हम देख चुके हैं कि गौतम ने सात और पाँच पीढ़ी के अन्दर विवाह करने वाले को पतित बताया है और इस विवाह की गणना ब्रह्महत्या आदि भयंकर अपराधों में की है। मनु ने यह मर्यादा तीसरी पीढ़ी तक ही रखी है। यदि मनु सात और पाँच पीढ़ी की सपिण्डता के नियम को वाप समझता तो वह सपिण्ड सम्बन्धियों में विवाह के प्रायश्चित्तों में इसका अवश्य वर्णन करता। मेधातिथि को प्रायश्चित्तों के प्रकरण में मनु द्वारा सपिण्ड विवाह का उल्लेख न करना बहुत ग़टका। अतः मेधातिथि यह कहता है कि मनुचौथी पीढ़ी में विवाह आयत्त समझता है, ऐसा परिणाम नहीं निकालना चाहिए। किन्तु मनुस्मृति के १००० वर्ष बाद लिखी गयी मेधातिथि की टीका को मनु के बारे में अन्तिम प्रमाण नहीं माना जा सकता। मनु द्वारा सपिण्ड शब्द की निश्चित व्याख्या न करने से और सपिण्ड विवाहों को प्रायश्चित्त-सीय अपराध न बनाने से यही परिणाम निकाला जा सकता है कि मनु के समय में (दूसरी शती ई० पू०) विवाह में असपिण्डता को आवश्यक समझा जाने लगा था, तीसरी पीढ़ी तक विवाह किसी भी दशा में नहीं हो सकता था। इसके बाद सातवीं और पाँचवीं पीढ़ी तक के विवाह से यदि बचा जाय तो अच्छा था, किन्तु यदि ऐसा विवाह हो जाय तो उसे केवल बुरा ही समझा जाता था, उसके कारण जातिभ्रंश आदि भयंकर इष्ट या चान्द्रायण व्रत आदि कठोर प्रायश्चित्त करने की आवश्यकता नहीं थी।

याज्ञवल्क्य ने विवाह में छोड़ी जाने वाली पीढ़ियों का स्पष्ट प्रतिपादन किया है (१।५३)। वह मनु की तरह, इस विषय में मौन नहीं रहा। उसके मतानुसार माता की पाँचवीं पीढ़ी और पिता की सातवीं पीढ़ी के बाद की सन्तानों में ही विवाह होना चाहिए।<sup>१</sup> यह स्मरण रखना चाहिए कि यहाँ याज्ञवल्क्य ने सपिण्ड शब्द का प्रयोग नहीं किया, केवल पीढ़ियाँ ही गिनायीं और ये पीढ़ियाँ असिष्ट धर्मसूत्र के अनुकूल हैं। प्रायश्चित्त-अध्याय (३।२३१-२३) में याज्ञवल्क्य ने अगम्या स्त्रियों का परिचयन किया है। मनु की भाँति वह सपिण्डा स्त्री के पास जाने के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं बताता। इसमें सगोत्र विवाह को तो मूलतत्त्व-गमन जैसा अपराध माना गया है, किन्तु सपिण्ड विवाह की चर्चा ही नहीं की गयी। विश्वरूप ने इन श्लोकों के 'स्वयंनि' शब्द से यहाँ सपिण्ड का ग्रहण करना चाहा है, किन्तु याज्ञवल्क्य स्मृति के एक अन्य टीकाकार अपराधों में इस शब्द का अर्थ भगिनी या सगी बहिन किया (अपराध, पृ० १०४२) है। मनु (६।५८, १६६) में तथा गौतम (१३।१२) में यही शब्द सहोदर भगिनी के लिए आया है। अतः याज्ञवल्क्य स्मृति में स्वयंनि शब्द से सगी बहिन का ही अर्थ लेना चाहिए। इस प्रकार याज्ञ-

<sup>१</sup> याज्ञवल्क्यस्मृति १।५३

पंचमात्सप्तमात्रुर्ध्वं मातुः पितृस्तथा ॥

वल्ग्व भी मनु की तरह सपिण्ड विवाह को अच्छा न समझता हुआ भी उसके उल्लंघन को दण्डनीय अपराध नहीं मानता था।

नारद (१२।७३-७५) का भी इस विषय में यही मत है। उसने उन्नीस प्रकार की स्त्रियों के सम्बन्ध को इतना धर्मकर अपराध माना है कि उनका दण्ड शिरोऽर्पण के अतिरिक्त कुछ नहीं है, इसमें सर्वोच्च स्त्री का उल्लेख है किन्तु सपिण्ड का नाम नहीं है। इनमें मातृकुल की केवल पहली, दूसरी पीढ़ियों की स्त्रियों का निर्देश है। किण्वम्भूति (३६।४-७) में सपिण्ड स्त्री को अवस्था नहीं बताया गया। पराशर भी दण्ड विग्न किसी प्रायश्चित्त का निर्देश नहीं करता।

इस प्रकार गौतम के अतिरिक्त आठवीं शती तक के किसी धर्मशास्त्रकार ने सपिण्ड विवाह को प्रायश्चित्त योग्य अपराध नहीं बताया। वे स्मृतिकार गणेश विवाह को तो गुह्यतममम के तुल्य अपराध मानते हैं, किन्तु सपिण्ड विवाह का दण्डनीय अपराधों में उल्लेख नहीं करते। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विवाह के समय असपिण्डा कन्या हो झूठी जाती है। किन्तु सपिण्डा से विवाह हो जाने पर उसे अपराध नहीं समझा जाता था। इससे यही परिणाम निकाला जा सकता है कि आठवीं शती तक सपिण्ड विवाह के नियम में पर्याप्त सिधिलता थी।

### टीकाकार और सपिण्डता का नियम

आठवीं शती के बाद, टीकाकारों एवं निबन्धकारों ने इन नियम को कठोर बनाते का प्रयत्न किया। उत्तर भारत के टीकाकार तथा निबन्धकार पिता और माता की सात और पाँच पीढ़ियाँ छाड़ने के प्रवृत्ति समर्थक थे। उन्होंने सपिण्ड विवाहों को दण्डनीय अपराध सिद्ध करने की पूरी कोशिश की, किन्तु दक्षिण में मातृकुलन्या के विवाह भी परिपाटी प्रचलित थी। अतः देशज्य भट्ट, पराशर-माधव आदि दक्षिणात्य टीकाकारों ने इस विवाह को शास्त्र-सम्मत सिद्ध किया। जब तक हमने यह देखा है कि मनु के सिवाय अन्य सभी स्मृतिकारों ने प्रायः पीढ़ियों का उल्लेख किया है। मनु ही पिण्ड शब्द का प्रयोग करता है, किन्तु विवाह के प्रकरण में उसका अर्थ स्पष्ट नहीं करता। मध्य युग में पिण्ड शब्द की व्याख्या पर तीक्ष्ण मतभेद था। विज्ञानेश्वर आदि विद्वानों ने पिण्ड का अर्थ 'देह' किया तथा सपिण्ड उन सम्बन्धियों को समझा जो शरीर द्वारा अर्थात् बन्ध-परम्परा में पिण्ड या शारीरिक अंश द्वारा सम्बन्ध होते हैं। रघुनन्दन आदि ने पिण्ड का अर्थ मूलक को दिया जाने वाला 'पिण्ड' समझा और जो सम्बन्धी उस पिण्ड को देने योग्य थे, उन्हें सपिण्ड माना। अब यहाँ कालक्रम से इन टीकाकारों का मत बताया जायगा।

मधी शती में विष्णुकुप ने याज्ञवल्क्य स्मृति के १।५३ की व्याख्या करते हुए पीढ़ियों की गिनती के विषय में चार पक्ष दिये। पहला पक्ष गौतम का है, जो पिता और माता की आठवीं और छठी पीढ़ी में शारी उचित समझता है। दूसरा पक्ष शंख का है, जो दोनों

के लिए चार पीढ़ी का बन्धन पर्याप्त समझता है। तीसरा पक्ष साक्ष्यात्म्य का है जो पिता और माता की सातवीं और चौथी पीढ़ी के बन्धन को पर्याप्त मानता है। चौथा पक्ष शास्त्रपथ बाह्यपथ का है, जिसके अनुसार चौथी पीढ़ी में भी विवाह हो सकता है। विषयवस्तु की भूमि में पहला पक्ष सबसे अच्छा है, दूसरा उससे कम, तीसरा उससे निकृष्ट और चौथा सबसे अधम।<sup>८</sup> अतः यह स्पष्ट है कि उस समय तक चौथी पीढ़ी तक के विवाह हो सकते थे, यद्यपि उन्हें अच्छा नहीं समझा जाता था।

मेधातिथि के मत का यहूने उल्लेख किया जा चुका है। मनु ने पिण्ड शब्द की व्याख्या नहीं की, मेधातिथि उसे माता और पिता की सातवीं और चौथी पीढ़ी तक सीमित कर देता है। मनु तीसरी पीढ़ी तक के मातृकुल के सम्बन्धियों से विवाह की पाप समझता है। मातृकुल की चौथी पीढ़ी में विवाह को वह प्रायश्चित्तों अपराध नहीं समझता, किन्तु मेधातिथि के समय तक ऐसे विवाहों को पाप समझा जाने लगा था। अतः मेधातिथि ऐसे विवाहों को प्रायश्चित्त योग्य अपराध समझता है।

विज्ञानेश्वर द्वारा सपिण्डता की व्याख्या

मिताक्षरा के टीकाकार विज्ञानेश्वर ने पिण्ड शब्द की विस्तृत व्याख्या की है। भारत के बहुत सारे भाग में आजकल मिताक्षरा वाली पिण्ड शब्द की व्याख्या के आधार पर दास्य भाग का नियम प्रचलित है। विज्ञानेश्वर याज्ञ० स्मृति के १।५३ की व्याख्या में कहता है कि “असपिण्डा का आशय उग स्त्री से है जो सपिण्ड नहीं है। सपिण्ड का अर्थ है एक शरीर के अवयवों अथवा अंगों को रखने वाला। दो व्यक्तियों में सपिण्डता सम्बन्ध उस समय होता है जबकि उनमें एक ही शरीर के अंग पाये जायें। इस प्रकार पुत्र पिता का सपिण्ड है, क्योंकि पिता के शरीर के अवयव पुत्र के शरीर में पाये जाते हैं। इसी तरह दादा और पौत्र में सपिण्डता है, क्योंकि पौत्र के शरीर में दादा के शरीर के अवयव पाये जाते हैं। इसी प्रकार पुत्र की माता के साथ भी सपिण्डता है, क्योंकि पुत्र में माता के शरीर के अंग पाये जाते हैं। इसी तरह माता के माध्यम से नाना के साथ भी सपिण्डता होती है। एक ही शरीर के अवयवों वाला होने के कारण एक ही व्यक्ति मौसा और मामा के साथ भी सपिण्ड सम्बन्ध रखता है। चाचा और बुआ (पितृपत्नता) से भी उसका यही सम्बन्ध होता है। पत्नी पति के साथ सपिण्ड होती है क्योंकि वह (पति के साथ) मिलकर एक नया शरीर उत्पन्न करती है। भाइयों की पत्नियों में भी सपिण्डता होती है, क्योंकि वे अपने पतियों के साथ संतान उत्पन्न करती हैं। इस तरह वहाँ कहीं सपिण्ड शब्द है वहाँ साक्षात् (पिता से पुत्र में) अथवा परम्परा से (दादा से पौत्र में) किसी एक शरीर के अवयवों का विद्यमान रहना पामा जाता है।”

शाश्वतत्व स्मृति की मिताक्षरा टीका (१।५३) में विज्ञानेश्वर कहता है कि असपिण्ड शब्द की व्याख्या में यह कहा गया है कि सपिण्डता का अर्थ साक्षान् अपवा परम्परा सम्बन्ध से एक शरीर के अंग का पाया जाना है। यह सम्बन्ध तो सर्वत्र और सब व्यक्तियों का किसी न किसी प्रकार इस अनादि जगत् में लिज हो सकता है, क्योंकि सारी सृष्टि की उत्पत्ति प्रजापति से हुई है। उपनिषद् बताती है कि प्रजापति ने कामना की कि वह बहुत (रूपों में) हो, उसी ने यह सब सृष्टि उत्पन्न की (छान्दोग्य उप० ६।२।३, तैत्ति० उप० २।६)। अतः सब व्यक्तियों में प्रजापति के शरीर का अंग होने में वे आपस में सपिण्ड या एक शरीर के अंगों वाले हुए। सपिण्डता के इस व्यापक अर्थ को सीमित करने के लिए शाश्वतत्व ने "पंचमात्मस्तमादूर्ध्वं मानुनः गिनतमन्वा" का मन्त्र कहा है। इसका यह आशय है कि माता की सन्तान से पाँचवीं तथा पिता की सन्तान से सातवीं पीढ़ी के बाद सपिण्डता समाप्त हो जाती है, इसलिए सपिण्ड शब्द अवयवशक्ति से सर्वत्र व्यापक होने पर भी निर्मन्त्र और पंकज शब्दों की तरह निश्चित अर्थ में रुक कर दिया गया है। पंकज का अर्थ कीचड़ से पैदा होने वाला है, कीचड़ में बीसियों पदार्थ पैदा होते हैं, पंकज उन सबके लिए प्रयुक्त हो सकता है। किन्तु पंकज के लिए कामल का अर्थ निश्चित कर दिया गया है और वह उसी में रुक हो गया है। मधी जाने वाली कस्तुरी निर्मन्त्र कहते हैं। किन्तु वह मन्त्र से उत्पन्न अग्नि के अर्थ में रुक हो गया है। इसी तरह सपिण्ड शब्द बहुत व्यापक होता हुआ भी सातवीं और पाँचवीं पीढ़ी तक ही सीमित कर दिया गया है। अतः पिता आदि छः सपिण्ड पुत्रादि छः वंशज तथा अपने आप को मिलाकर ये सात सपिण्ड होते हैं। जहाँ कहीं यही सन्तान-परम्परा शुरू हो वहाँ उस (पुरुष) से सातवें पुरुष तक गिनती करनी चाहिए। इसी तरह माता की ओर से पाँचवीं पीढ़ी उसे कहते हैं जो माता से उसके पिता-दादा आदि की गिनती करते हुए वंश-परम्परा में पाँचवीं हो और पिता की ओर से सातवीं उसे कहते हैं जो पिता से दादा-परदादा आदि की गिनती करते हुए वंश-परम्परा में सातवीं संख्या पर हो।<sup>१</sup>

मिताक्षरा की उपर्युक्त विवेचना से हम निम्न परिणामों पर पहुँचते हैं—

(१) विवाह में माता की पाँच तथा पिता की सात पीढ़ियाँ छोड़नी चाहिए।

(२) सन्तान परम्परा या पीढ़ियों की गिनती में मूल पुरुष को सम्मिलित करना चाहिए।

(३) वर-बधू दोनों की सपिण्डता का विचार करना चाहिए।

पहली बात के सम्बन्ध में यह ख्याल रखना चाहिए कि मूल पुरुष से पीढ़ियाँ गार तरह से गिनी जा सकती हैं—

१—वर और बधू दोनों के पिताओं की पीढ़ियाँ गिनी जायें।

२—दीनों की माताओं को पीढ़ियों गिनी जायें ।

३—वर की माता एवं नधू की माता की पीढ़ियाँ गिनी जायें ।

४—वर के पिता और नधू की माता की पीढ़ियाँ गिनी जायें ।

ये पीढ़ियाँ गिनना बड़ा पेचीदा काम है । पाँच और सात पीढ़ी की मर्यादा केवल सनातनीय विवाहों में है । तिब्बतीय विवाह में तीसरी पीढ़ियाँ छोड़ना ही पर्याप्त समझा जाता है ।<sup>१०</sup>

मिताक्षरा द्वारा प्रतिपादित सन्तान-गणना में तथा अंग्रेजी बंधु द्वारा पीढ़ियों गिनने में बड़ा अन्तर है । मिताक्षरा आदि या कूटस्थ व्यक्त को भी गणना में सम्मिलित करती है किन्तु अंग्रेजी गणना में इस मूल पुरुष (Propositus) को नहीं गिना जाता । अतः जब मिताक्षरा पाँच और सात पीढ़ी की मर्यादा बँधती है तो उसका अर्थ है मूल पुरुष सहित पाँचवीं या सातवीं पीढ़ी । अंग्रेजी गणना के अनुसार मूल पुरुष को छोड़ने हुए, वह मर्यादा चौथी और छठी तक मानी जायगी ।

विज्ञानेश्वर ने पाँच और सात पीढ़ियों की मर्यादा निश्चित की है । किन्तु पुराने स्मृतिकारों में कुछ लोग सपिण्डता के नियम को इतना व्यापक बनाने को तैयार नहीं थे । वे इन पीढ़ियों को बहुत अधिक समझते थे । मिताक्षरा ने बसिष्ठ-धर्मसूत्र और पैटीनसि के वाक्यन उद्धृत किए हैं । बसिष्ठ के मतानुसार मातृकुल से पाँचवीं तथा पितृकुल से सातवीं पीढ़ी जाने का विवाह हो सकता है । मिताक्षराकार इन पीढ़ियों के बाध छोटी और आठवीं पीढ़ी में विवाह को वैध मानता है । पैटीनसि कथा को मातृकुल से चौथी तथा पितृकुल से छठी पीढ़ी में विवाह की आज्ञा देता है । इस तरह उसने मिताक्षरा से वां पीढ़ी कम में भी विवाह को वैध बताया है । विज्ञानेश्वर ने इन विरोधी वाक्यों से अपनी व्यवस्था की यह संगति बिठायी है कि बसिष्ठ और पैटीनसि का यह आशय है कि इन निकट पीढ़ियों के अन्दर विवाह नहीं होगा चाहिए । उनका यह आशय कदापि नहीं है कि याज्ञवल्क्य द्वारा प्रतिपादित सात और पाँच पीढ़ियों के अन्दर शादी हो सकती है और इस तरह सब स्मृतियों में परस्पर कोई विरोध नहीं है ।

किन्तु यह व्याख्या नितान्त असन्तोषजनक है । मिताक्षरा की बालम्भट्टी टीका में विज्ञानेश्वर की यह मूल गरीब बय से स्वीकार की गयी है । वास्तव में विज्ञानेश्वर को यह भूल नहीं थी । पुराने समय में सपिण्डता के नियम इतने दूरगामी नहीं थे । मिताक्षरा के समय तक वे नियम दूरगामी हो चुके थे । अतः विज्ञानेश्वर ने याज्ञवल्क्य का अर्थ अपने समय की प्रचलित धारणाओं के अनुसार किया और पुराने वाक्यों की संगति बँटाने का प्रयत्न किया, किन्तु इसमें वह सफल नहीं हुआ । विज्ञानेश्वर के समय सपिण्डता



के नियम की विधिलता इस बात से भी जनकरी है कि उन्ने सगोत्र विवाह की प्रति-  
सिद्धि विवाह की दम्बनीय अपराध नहीं बताया ।

अपराधों ने भी विधानेश्वर की पीड़ियों का समर्पण किया है । पैटीनिम का उद्गमन  
वचन स्पष्टतः अपराधों के मृत के प्रतिष्ठास जाता था, अतः उन्ने उम वचन का कृष्ण  
परिवर्तन के साथ उद्भूत करते हुए कहा कि पैटीनिम में तीन पीढ़ी के परिष्कार की आ-  
बात करी है, वह अन्तर्जातीय विवाहों के लिए है (पृ० ६२) । आनार्क श्रुतेद और श-गण  
के, मामा और बुआ की लड़की के साथ और ३ री, ४ की पीढ़ी में विवाह की अनुमति  
देने वाले वचनों की व्याख्या इस ढंग से करता है कि उन्ने ऐसे विवाहों की प्रति-  
सिद्धि करे । श्रुतेद (७।५० के परिशिष्ट का व्याख्या मंत्र) माने मन्त्र का अर्थ और  
अपराधसम्मत मन्त्र की व्याख्या पहले की जा चुकी है । शगण्य द्राघण के वचन के सम्बन्ध  
में उसकी सम्मति है कि वह यज्ञोप कर्मकाण्ड में सम्बन्ध रखता है (पृ० ६३), विवाह के  
विषय में इस वचन का कोई उपयोग नहीं है । अपराधों ने अन्त में तीसरी पीढ़ी के मामा  
की लड़की के विवाह को शास्त्रविच्छेद उद्धारने के लिए साक्षात्प के एक वचन का प्रमाण  
दिया है कि ऐसा करने वाले को चान्द्रायण दत्त करता चाहिए (अपराध, पृ० ६४) ।

### मातुलकन्यापरिणय

दक्षिण के धर्मशास्त्रियों तथा टीकाकारों ने मातुलकन्या (मामा की लड़की)  
के विवाह को कभी शान्त विच्छेद नहीं समझा । मध्य काल में उत्तरी तथा दक्षिणी  
पण्डितों में इस प्रश्न पर तीव्र मतभेद था । दैवण्य भट्ट ने स्मृतिचन्द्रिका में मातुलकन्या  
के विवाह के समर्पण में एक पूरा अध्याय लिखा है । उत्तर भाग्योक्त शास्त्रकारों ने  
मातुलकन्या के विवाह का विरोध करते हुए दक्षिण वालों का बड़ा मन्त्रांक उड़ाया है ।  
कुमारिल भट्ट ने संक्षेपादिक में कहा है कि दूसरे लोग यह काम (मामा की लड़की के  
साथ विवाह) नहीं करते हैं, किन्तु दक्षिणालय मामा की लड़की को वाकर प्रसन्न होने  
हैं । विश्वरूप ने संवत् का यह मत उद्घुत किया है कि मामा की लड़की से विवाह  
करने वाला पराक प्राग्विच्छेद से मुक्त होता है<sup>११</sup> । मेघातिथि ने (मनु २।१६) मातुल-  
कन्या के विवाह के प्रचलन के कई हेतु दिये हैं—(१) मामा की सुन्दर कन्या की  
कामना करते हुए, लोगों ने उससे इसलिए विवाह कर लिया कि उन्हें राजा नहीं कन्या-  
गमन के अपराध का डण्ड न दे । (२) कुछ मूर्ख लोगों ने "येतास्य पितरो याताः" (मत्स्य  
पुराण ४।१७८) के वचन का अनुसरण करते हुए प्राचीन काल की सुनी हुई बातों को

<sup>११</sup> विश्वरूप याज्ञ. २।२४४ पर, संवत्—

मातुलानी तनारवधू सुता च मातुलस्य च ।

एता गत्या स्त्रियो मोहात्पराकेण च शुध्यति ॥

धर्म समझ कर पालन करते हुए इस प्रथा को अपना लिया (मनु २।१८)। मातुल कन्या के विवाह की प्रथा का कारण चाहे जो कुछ हो, यह दक्षिण भारत में प्रचलित था और देवण्य भट्ट तथा बराहम (११२, पृ० ६३३-६८, स्मृतिचन्द्रिका खं० ६, पृ० ७०-७४) ने मनु, शातात्म्य, शुभानु आदि के विरोध करने हुए इसका प्रचलन समर्थन किया।

**देवण्य भट्ट द्वारा मातुल कन्यापरिणय का समर्थन**—देवण्य भट्ट ने मातुल कन्या के विवाह का समर्थन बड़े विस्तार से किया है (स्मृतिचन्द्रिका खं० १, पृ० ७०-७४)। उसका मत है कि ब्राह्म विवाह होने पर स्त्री पिता का गौत्र छोड़ देती है और पति के गौत्र की हो जाती है। इसी तरह स्त्री पिता के पिण्ड की तरह रहकर पति के पिण्ड की हो जाती है। मार्कण्डेय पुराण के मत से ब्राह्मविधि से परिणीत कन्या को पति के गौत्र में पिण्ड एवं जन्म दिया जाता है। जाम्बुव आदि विवाहों में यह कार्य पितृगौत्र से ही होता है। ब्राह्मणों में ब्राह्म विवाह प्रचलित है। यदि इनमें गौत्र का परिवर्तन माना जाय तो पिण्ड का परिवर्तन क्यों न माना जाय ? अब मामा की लड़की वस्त्रपिण्ड है तो उससे विवाह करने में कोई दोष नहीं है। कोई यह कह सकता है कि माता की बहिन भी तो असंपिण्ड हुई, अतः सौरी ने विवाह करने में भी कोई दोष नहीं हुआ। देवण्य भट्ट इसमें भी कोई दोष नहीं समझता। यदि ऐसी बात है तो मनु, (३।१०२-७३), मीतम (२।११), शाश्वत्त्व्य (३।२११-२३), नारद (१२।७३-७४), विष्णु (३।६।४-७), शातात्म्य, संबल और शुभानु के मातुल कन्या-गमन के निषेधपरक वचनों का क्या अर्थ होगा ? देवण्य भट्ट कहता है कि ये सब वचन आसुर तथा बान्धव विवाहों के सम्बन्ध में कहे गये हैं। फिर उनमें अनुविरासित का यह वचन उद्धृत किया है कि तौलरी-औषी पीड़ी में सादी होनी चाहिए। शतपथ ब्राह्मण (१।८।१६) और श्वेद के चित सूक्तों वाला मूल तो देवण्य भट्ट के वैदिक प्रमाणों का मुख्य आधार है। वेद के अतिरिक्त उसने बृहस्पति स्मृति का भी यह वचन उद्धृत किया है कि पहले से पहले आने वाले देव, जाति और कुल के धर्मों का पालन उसी प्रकार करना चाहिए नहीं तो प्रजा में जोष उत्पन्न होता है।<sup>१२</sup> दाक्षिणात्य ब्राह्मण मातुल कन्या के साथ विवाह करते हैं अतः उनमें यह विवाह वैध माना जाना चाहिए। स्मृतिमूलकाल भी इसकी पुष्टि करता हुआ कहता है—दाक्षिणात्य लोगों में तीनों वेदों के ज्ञान से होते, वेदार्थ का अनुष्ठान करने वाले ब्राह्मण भी मातुल कन्या के साथ विवाह करते हैं।<sup>१३</sup>

<sup>१२</sup> स्मृतिचन्द्रिका खण्ड १, पृ० १०

वैशाखातिशुक्तानां च ये धर्माः प्राक् प्रवर्तिताः ।

तर्भव ते पालनीयाः प्रजा प्रभुस्मतेऽन्यथा ॥

<sup>१३</sup> स्मृतिमूलकाल—

दाक्षिणात्यानां मध्ये आग्नेयुर्विधवृद्धा वेदाचारानुष्ठातारः शिष्टा अपि मातुलसहि-

गिष्ठ पुरुषों के आचार की दृष्टि से देवण मट्ट का मतस्व बिल्कुल ठीक है। किन्तु उसने मनु आदि के मातुल कन्या निषेधपरक वचनों का जो विनिर्यास आमुत्र तथा गान्धर्व विवाहों में किया है, वह बिल्कुल गलत है। मनु आदि सभी मानवकारों में आमुत्र विवाहों की सिन्धा थी है। इन गिष्ठ विवाहों के लिए उपर्युक्त निषेधमचन खड़े गये हों, यह बात तर्कसंगत नहीं जान पड़ती। अतः देवण मट्ट ने अर्मापण्डना के बन्धन में शर्दी पाने के लिए एक नया ही उपाय बूँडा। वह कहता है कि मनु अर्मापण्डा कन्या के विवाह को उत्तम (प्रशस्त) समझता है। इसका अर्थ केवल उतना ही है कि अर्मापण्ड विवाह अच्छा है, किन्तु इससे यह परिणाम नहीं निकालना चाहिए कि गिष्ठ विवाह निषिद्ध है। वह केवल प्रशस्त या अच्छा नहीं, किन्तु यदि ऐसा हो जाय तो उसमें कोई दोष नहीं है। देवण मट्ट को इस मत का ह्येमात्र और बाधक ने तथा संस्कार कौस्तुभ तथा धर्मसिन्धु के कर्त्ताओं ने अनुमोदन किया है। मन्त्रास प्रान्त की तरफ यह प्रथा अब तक प्रचलित है। कई स्थानों पर केवल इसका रिवाज ही नहीं है। प्रयुक्त ऐसे विवाह को अच्छा समझा जाता है। आगे बताया जायगा कि कर्नाटक के देशस्थ ब्राह्मणों तथा कन्नड़ ब्राह्मणों में आजकल भी माया की लड़की के साथ जादी होती है।

मध्ययुग में उत्तरभारत में माया की लड़की के साथ विवाह की प्रथा प्रचलित न होने के कारण इस प्रदेश के शास्त्रकारों ने मातुल कन्या के साथ विवाह का विरोध किया। इस विषय में यहाँ मिश्रमिश्र के मत का ही उल्लेख किया जायगा।

**मिश्रमिश्र द्वारा मातुलकन्यापरिणय का विरोध**—मिश्रमिश्र ने मातुलपण्य परिणय के पक्ष में दिये गये धृति-वचनों तथा अन्य हेतुओं का बड़े विस्तार में खण्डन किया है। (सं० प्र०, पृ० ७१८-७२४)। "आमाहीन्द्र" वाली वैदिक धृति के सम्बन्ध में वह अपराधी द्वारा स्वीकृत पाठभेद ठीक सामता है।<sup>१४</sup> इनके अनुसार यह मन्त्र ऐसे विवाह का समर्थन नहीं, किन्तु विरोध करता है और इसका अर्थ इस प्रकार है—हे इन्द्र, अन्य प्रशंसित (ईजित) सोमपतियों के साथ इस वज्र में आइए, सोमरूप अन्न का सेवन कीजिए। (आपके साथ जाने वाले सोम ग्रहण करने वाले देवता सोमपान में) लुप्त होकर सोम का जैसे ही त्याग करते हैं जैसे माया के लड़के बुझा की लड़की को (पत्नी रूप से अल्पतः अवांछनीय होने के कारण) छोड़ देते हैं।<sup>१५</sup> इस सम्बन्ध में "तृतीय संवत्सामहे" वाली तत्पक्ष की धृति में उत्तम पुरुष का प्रयोग होने से इसे विधि नहीं

बुद्धितु परिणयतमाचरन्ति। इविदेष्टु तथाविधाः सिध्दाश्चतुर्ध्यादिविवाहमाचरन्ति ॥

<sup>१४</sup> सं. प्र., पृ० ७१८—आयाहीन्द्र पथिभिरोद्धितेभिर्गजमिमं तो वाजसतो जूयस्व।  
तृप्ता जहुमतिुलस्येव योधा भागः पेतृव्यसेयो मयाभिबोधः ॥

<sup>१५</sup> सं. प्र., पृ० ७१६—मातुलस्य सुताः पेतृव्यसेयोमिव भार्यात्वेनात्यस्तानभिलषणीया  
त्यजन्ति स्वकीयमातुलस्य संवग्धायोपेत्यात् ॥

माता गया (पृ० ७२०) । उनके अतिरिक्त मित्रमित्र ने यह भी कहा है कि निवृत्त की पद्धति का आश्रय लेते हुए यहाँ मातुल का अर्थ माता के साथ सादृश्य रखने वाला तथा वैतृष्यमेयी का अर्थ पिता से समानता रखने वाली कन्या है । उस वैदिक मन्त्र का यह तात्पर्य है कि हे इन्द्र, हम स्निग्ध पदार्थ (धन) का तुम वैसे ही सेवन करो, जैसे मातुल अर्थात् अपनी माता के सदृश आकृति रखने वाले पुरुष द्वारा पिता की शक्ति में मेल खाने वाली कन्या से उत्पन्न की गयी कन्या जिन प्रकार सेवनीय होती है वैसे ही हम यज्ञ में यह धन सेवनीय है । क्योंकि सामूहिकतार कामक ग्रन्थ में कहा गया है कि पिता में सादृश्य रखने वाली कन्या और माता से समानता रखने वाला पुत्र भाग्यशाली होता है ।<sup>१६</sup> और इससे उत्पन्न होने वाली कन्या बड़े भाग्य में मिलती है । इस अर्थ को मित्रमित्र ने मत्स्यादि पुराणों में आगे हुए पुलोमा और शची के उदाहरणों से पुष्ट किया है (पृ० ७२३-२४) । अन्त में उगने प्रद्युम्न, अर्जुन, अविच्छा आदि द्वारा माता की लक्ष्मी के साथ भावी के विषय में धर्मशास्त्रों की इस व्यवस्था का उल्लेख किया है कि प्राचीन महापुरुषों ने धर्म का उन्वयन देखा जाता है, किन्तु उन्होंने ऐसा काम किया, इसके आधार पर हमें वैसे काम नहीं करना चाहिए, क्योंकि हम लोग दुर्बल हैं । निर्णय लेने होने से उन (महा-पुरुषों द्वारा) ऐसे कार्य करने में शोष नहीं है, किन्तु उन्हें देखकर वर्तमान अवस्था व्यक्ति यदि हम काम का करने तो कुछ पाता है । देवताओं और महापुरुषों ने जो कार्य किया हैं, मनुष्यों द्वारा वह कार्य नहीं किया जाना चाहिए, उनके द्वारा कहे कर्म पर आचरण करना चाहिए ।<sup>१७</sup> अन्त में बृहस्पति, शृणुपुत्राण और व्यास के कुछ वचनों के आधार पर मित्रमित्र ने मामा की लक्ष्मी से विवाह का निषेध किया है ।<sup>१८</sup>

### मध्ययुग में सपिण्डता के विविध प्रकार

मध्यकालीन ग्रन्थों में यह स्पष्ट है कि सपिण्डता का विचार चार प्रकार से

<sup>१६</sup> वही, पृ० ७२२-३

तथा मातुस्तुल्यं लक्षणं पर्येति निरुक्त्या मातुलशब्देन मातृमुखी गृह्यते । पितृष्वसा-  
शब्देन चरुवसा सु असा स्वेमु सीदतीति चेति च निरुक्त्या पितुः स्वे कये सीदतीति  
पितृष्वेति पितृसदृशमूर्च्छित्यर्थो निर्णयः । तथा च मातृमुखेन पुरुषेण पितृमुख्या  
कन्यायामुत्पादिता कन्या यथा भजनीया भवति तथेयं यथा तत्र भजनीयेत्यर्थः ।  
उक्तं अस्माद्विक्रान्तार—धन्या पितृमुखी कन्या धन्यो मातृमुखः सुतः । तयोर्धन्यतरो-  
त्यत्रा कन्या भार्येण लभ्यते ॥

<sup>१७</sup> सं. प्र., पृ० ७२४

<sup>१८</sup> सं. प्र., पृ० ७२५

हो सकता है—<sup>१६</sup> (१) पिता द्वारा, (२) माता द्वारा, (३) मंडकप्लुति, (४) एकलौ निवृत्तान्धर्वा निवृत्त। पहले अर्थात् पिता द्वारा सापिण्ड्य का स्वरूप निम्न चित्र में स्पष्ट होगा—

### मूल पुरुष (कूटस्थ)

#### १. विष्णु

२. भान्ति ०		२. गौरी (क.) ०	
३. सुधी $\Delta$		३. हर $\Delta$	
४. ब्रह्म $\Delta$		४. भैरव $\Delta$	
५. चेल $\Delta$		५. शिव $\Delta$	
६. गण $\Delta$		६. भूप $\Delta$	
७. मूढ $\Delta$		७. अच्युत $\Delta$	
८. रति $\Delta$		८. काम $\Delta$	

इसमें रति और काम का विवाह सम्बन्ध हो सकता है, क्योंकि उनके पिता मूढ और अच्युत अपने मूल पुरुष विष्णु से सातवीं पीढ़ी पर हैं। पितृमूलक खण्डिता सात पीढ़ी तक होता है, अतः उनकी सन्तति रति और काम तक इस सापिण्ड्यसम्बन्ध की निवृत्ति हो जाती है, असपिण्ड होने से रति और काम का विवाह संभव है।

मातृमूलक सापिण्ड्य निम्न चित्र में प्रदर्शित किया गया है।

#### १. विष्णु

२. दत्त $\Delta$		२. भैरव $\Delta$	
३. सोम $\Delta$		३. भैरव $\Delta$	
४. सुधी $\Delta$		४. ब्रह्म $\Delta$	
५. इयाना $\Delta$		५. रति $\Delta$	
६. शिव $\Delta$		६. गौरी $\Delta$	

इसमें शिव और गौरी यद्यपि मूल पुरुष विष्णु से छठी पीढ़ी में है किन्तु उस से उनका सम्बन्ध अपनी माताओं—श्यामा और रति द्वारा है, माता द्वारा होने वाली सपिण्डता भी मर्यादा पाँच पीढ़ी तक होती है, शिव और गौरी छठी पीढ़ी में है, अतः उनका विवाह हो सकता है।

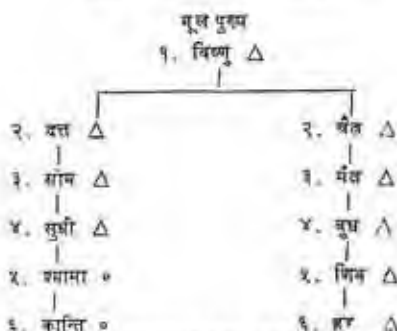
संयुक्तपुत्रि सपिण्ड्य निम्न उदाहरण में प्रदर्शित है—



इस उदाहरण में श्यामा और नर्मदा मूल पुरुष से पाँचवीं पीढ़ी में है, छठी पीढ़ी में इनके पुत्र शिव-काम असपिण्ड हैं, क्योंकि मातृमूलक सपिण्डता पाँचवीं पीढ़ी में समाप्त हो जाती है। किन्तु इनकी सन्तान रमा और कवि सपिण्ड है क्योंकि इनका सम्बन्ध पितृमूलक है और इसमें सपिण्डता सातवीं पीढ़ी तक रहती है, रमा और कवि विष्णु से सातवीं पीढ़ी में है अतः इनका विवाह नहीं हो सकता। इस उदाहरण में छठी पीढ़ी में सपिण्डता हट गयी थी किन्तु सातवीं पीढ़ी में फिर आ गयी है। यह मेढक की छलांग की भाँति पाँचवीं पीढ़ी से छूट कर सातवीं पीढ़ी में आयी है, अतः इसे संयुक्तपुत्रि कहते हैं।<sup>२०</sup>

चौथा प्रकार एक ओर से सपिण्डता की निवृत्ति होने और दूसरी ओर से निवृत्ति न होने का है। यह निम्न उदाहरण में प्रदर्शित है—

<sup>२०</sup> धर्मसिन्धु ३ प्रश्नार्द्ध, पृ० २२७। वर्तमान समय में संयुक्त पुत्रि द्वारा सपिण्डता का सिद्धान्त (प्रि. हि. ला. इन हैरिटीज-द्वितीय संस्करण, पृ० ५६२, ५६८-६००) तथा मेन (११ वाँ संस्करण पृ० १५४-५) ने स्वीकार नहीं किया।



इस उदाहरण में शमामा मूल पुरुष से पाँचवीं पीढ़ी में है, अतः उसकी कन्या कान्ति की सपिण्डता निवृत्त हो जाती है, किन्तु शिव तथा उसकी सन्तान हर का सापिण्ड्य सम्बन्ध पितृमूलक होने से छठी पीढ़ी में निवृत्त नहीं होता, अतः हर और कान्ति का विवाह नहीं हो सकता। इसमें एक ओर तो सपिण्डता की समाप्ति तथा दूसरी ओर असमाप्ति है। अतः यह निवृत्तान्यतोनिवृत्त है। वर्तमान युग में सपिण्डता के विषय में हिन्दू समाज में ब्रिटिश-इंटर द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था का अनुसरण किया जाता है, किन्तु इसके साथ ही भ्रातृव्य-विवाहों की अथॉलू गामों की तथा धूआ की लड़कों के साथ विवाह की प्रथा प्रचलित है। यहाँ पहली भ्रातृव्य विवाहों की धारा बहती जा रही है।

### वर्तमान काल के भ्रातृव्य विवाह

प्राचीन युग के भ्रातृव्य विवाहों का पहला (पृ० ८१) वर्णन ही चुका है। यहाँ आधुनिक युग के ऐसे विवाहों का उल्लेख होगा। उत्तर भारत में गिरुबन्ध-परम्परा में सात और मातृबन्ध में पाँच पीढ़ियों के भीतर आने वाले सपिण्ड सम्बन्धियों के साथ विवाह के वर्जन का नियम प्रायः प्रचलित है, अतः भ्रातृव्यों<sup>२१</sup> के विवाह (cousin marriage) का बहुत कम प्रिवाज है।

ज्यों-ज्यों हम दक्षिण भारत की ओर बढ़ते हैं इस प्रथा का प्रचलन बढ़ता जाता

<sup>२१</sup> यहाँ भ्रातृव्य शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के Cousin के पर्याय रूप में किया गया है। अंग्रेजी में इस शब्द से निम्न सम्बन्धी सूचित होते हैं—(१) चचेरा भाई (पितृव्य पुत्र), (२) चचेरी बहिन, (३) मौसेरी भाई (मातृव्यसेय), (४) मौसेरी बहिन, (५) फुफेंरे भाई (पितृव्यसेय), (६) फुफेंरी बहिन, (७) ममेरा भाई (मातृव्य पुत्र), (८) ममेरी बहिन। हिन्दी में इन सब के लिए कोई एक शब्द

है। उत्तर भारत में इनी-मिनी जातियों में ही ऐसे विवाहों की प्रथा है। अर्जुन और सुमित्रा के विवाह का अनुसरण छोटा नागपुर और धंगान की कुछ जातियाँ करती हैं, ये दक्षिण

नहीं हैं, अतः यहाँ ऐसे सभी भाई-बहनों के लिए भ्रातृव्य शब्द का व्यवहार किया गया है। पाणिनि के सूत्र 'भ्रातृपुत्रौ स्वसुबुद्धितुभ्याम्' (१।२।५७) के अनुसार भ्राता शब्द में भाई-बहिन दोनों सम्मिलित हैं अतः भ्रातृव्य में भाई-बहिन दोनों की सन्तान सम्झी जायगी। ऊपर बताये भ्रातृव्यों में से १-२ पिता के भाई-भाचा की और ३-४ माता की बहिन (सौसी) की सन्तान हैं, बंशपरम्परा में पिता और भाचा, माता और सौसी का स्थान समानान्तर होने से ये समानान्तर या अनुभ्रातृव्य (Parallel cousins) कहलाते हैं। बचेरी या सौसेरी बहिन के साथ विवाह अनुभ्रातृव्य विवाह (Parallel cousin marriage or orthomarrriage) कहलाता है। भाई-बहिन की सन्तान बंशपरम्परा में बिभित होने से प्रतिभ्रातृव्य (Cross cousin) कहलाती है और इनका पारस्परिक विवाह प्रतिभ्रातृव्य-विवाह (Cross cousin marriage) होता है। जैसे माता के भाई (मामा) की लड़की के साथ, पिता की बहिन (कूकी) की लड़की के साथ या बड़ी बहिन की लड़की के साथ। इनमें पहले प्रकार के विवाह का रिवाज बहुत कम है। बचेरे भाई-बहिन में विवाह के निषेध का मूल कारण यह प्रतीत होता है कि प्राचीन काल के संयुक्त परिवार में सब भाइयों के झगड़ते रहने के कारण बचेरे भाई-बहिनों को सगे भाई-बहिनों जैसा समझा गया और सभी बहिनों की तरह बचेरी बहिनों को अगम्य माना गया। सौसी की लड़की के साथ विवाह के निषेध का कारण समझना आसान नहीं है, क्योंकि इसके तथा उसकी लड़की के मित्र परिवार में रहने के कारण इसके साथ विवाह के निषेध का उपयुक्त कारण नहीं हो सकता। इस विषय में तीन अन्य कारणों की कल्पना की गयी है—(१) भाचा (पिता के भाई) की लड़की के साथ विवाह के प्रतिबन्ध के नियम को सौसी (माता की बहिन) की लड़की के लिए भी सादृश्य के आधार पर लागू किया गया। (२) संभवतः यह अत्यन्त प्राचीन काल के सातुबंसी समाज का अवशेष है, ऐसे समाज में माता अपनी बहिनों के साथ परिवार में एक साथ रहती थी, उसमें माता और उसकी बहिनों की सन्तानों को सगा समझ कर उनमें विवाह का निषेध करना स्वाभाविक था। (३) रिजसे इसे द्वैध सामाजिक संघटन (Dual organization) का परिणाम मानता है। इस कारण की आगे व्याख्या की जायगी (श्रीनिवास—मैरिज एण्ड फैमिली इन माइसूर, पृ० ३८-३९)। भारत में अनुभ्रातृव्य विवाह अर्थात् बचेरी बहिन आदि से शादी मुस्लिम धर्म में ही पायी जाती है।



और राजपूत होने का दावा करती है।<sup>२२</sup> उत्तरी कच्चार के कच्ची आसाम के गारो लोगों की भाँति बहिन की लड़की (भाँजी) के साथ विवाह करते हैं। स्वावलपाड़ा जिले की रामा जाति में बुआ और मामा की कन्या से भाई का रिवाज है। कुल्लू तथा बड़ौदा की कोतवालिया जाति में ऐसे विवाह प्रचलित हैं। उत्तर प्रदेश की अगरिया, घासिया और कंजर जातियों में भाइयों की सन्तानों की छोट कर बीच सब प्रकार के भ्रातृव्यविवाहों की अनुमति है। किन्तु उत्तर प्रदेश की बहेलिया, बाँगर नाई, धरक, डोमास और डाम जातियों में केवल मौसी की लड़की के साथ ही विवाह संभव है, सिधिया मामा की लड़की के साथ भाई करते हैं। उड़ीसा के करणों में यही पद्धति है। बम्बई में दक्षिण सत्तराण्ट की इक्तीस जातियों में मामा तथा बुआ की लड़की के साथ विवाह की अनुमति है, तीन जातियों में मौसी की लड़की के साथ विवाह होता है, पन्द्रह जातियाँ केवल मामा की कन्या के साथ विवाह की अनुमति देती हैं।<sup>२३</sup> मध्यप्रदेश की अनेक जातियों में इनका रिवाज प्रचलित है। बहरिया राजपूत वंश के समझे जाते हैं, उनमें गिरियों की कमी के कारण भ्रातृव्य विवाह अनुमत्त है। छत्तीसगढ़ के मैदान में तथा मराठों, कुनबियों, महारों में बहिन के साथ भाई की लड़की का विवाह बहुत लोकप्रिय है। इसके दूसरे रूप अर्थात् भाई के लड़के और बहिन की लड़की का विवाह बैलूल, मंडला, चांदा, बन्दर के गोंडों में प्रचलित है। बैरा तथा अगरिया गोंडों में इसे दूध लौटना कहते हैं। इसका यह आशय है कि किसी परिवार से एक स्त्री के बाहर जाने से जो क्षति होती है, उसकी पूर्ति उस स्त्री की कन्या के पुत्र उस परिवार में लौटने से पूरी हो जाती है। माहिसा गोंडों में बुआ की लड़की पर ऐसा अधिकार माना जाता है और यदि कोई उसे नहीं देना चाहता तो पंचायत द्वारा उसे प्राप्त किया जा सकता है। यदि किसी कारण से लड़की नहीं दी जाती तो उसका हुजुर्ना दिया जाता है। एक पुराने गोंड महाकाव्य लिखी में सात बहिनें लिखी से कहती हैं—“तुम हमारे एक भाई के पुत्र हो, हम एक बहिन की पुत्रियाँ हैं, हम में उत्तम सम्बन्ध है, तुम हमें कैसे छोड़ सकते हो, हम तुम्हारे साथ जायेंगी।” गुजरात में कठी, अहीर, गडब, चारण और मरासिया जैसी कुछ जातियों में भ्रातृव्यविवाह प्रचलित है, इनमें पत्नी और पति के पिता तथा माता के लिए क्रमशः मामा जी, मामी जी शब्दों का प्रयोग होता है, माता की लड़की के साथ भाई का रिवाज है और यह कहावत प्रचलित है कि “काई पाछड़ भतीजी जावे” अर्थात् बुआ के पीछे भतीजी (एक ही घर में) बधू के रूप में जाती हैं। गुजरात की कोसी, छेड़ और भील जातियों में से कुछ में बुआ की तथा

२२ गोलाम चन्द्र सरकार—हिन्दू ला, अष्टमसंस्करण, पृ० ७६-११०

२३ १९११ की भारत की जनगणना रिपोर्टें, खं० १, भाग १ पृ० २४६, बम्बई की १९११ की रिपोर्टें के सातवें अध्याय के परिशिष्ट में इस प्रान्त में भ्रातृव्य विवाह करने वाली जातियों का विस्तृत वर्णन है।

मामा की लड़की से तथा कुछ में केवल सभेरी बहिन से विवाह की परिपाटी है।<sup>१४</sup> उड़ीसा में ऊँचे स्थानों में रहने वाली बिन्दल, कोल्स आदि जातियों में तथा पाण्ड्या डोमों में प्रतिभ्रातृव्य विवाह प्रचलित है, किन्तु बिल्का शीन के उत्तर में समुद्र तट पर बसी हुई जातियों में इनका रिवाज नहीं है।<sup>१५</sup>

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि उत्तर भारत में उच्च समझी जाने वाली जातियों में भ्रातृव्य विवाहों का प्रचलन बहुत कम है। यह प्रथा प्रायः हिन्दू समाज में निम्न समझी जाने वाली जातियों में अथवा आरम्भक जातियों में है। किन्तु हम जैसे-जैसे दक्षिण की ओर बढ़ते हैं, इस प्रथा का प्रचलन बढ़ने लगता है। महाराष्ट्र उत्तर और दक्षिण के मध्य में पड़ता है। इसके उत्तरी भाग में बहुत कम जातियों में प्रतिभ्रातृव्य विवाह होते हैं, केंद्रीय महाराष्ट्र में अधिकांश जातियों में मामा की लड़की से विवाह की रिपाटी है और दक्षिणी महाराष्ट्र में मामा की लड़की के अतिरिक्त बुआ की लड़की से विवाह का रिवाज ऊँची जातियों में भी है। निम्न उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

आगे यह बताया जायगा कि महाराष्ट्र में 'पदर जा मये'<sup>१६</sup> के नियम के अनुसार विवाह प्रायः उसी कुल में किया जाता है, जिसमें पहले भी वैवाहिक सम्बन्ध हुआ हो। दूसरा नियम उपरिविवाह का है, इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपनी कन्या को ऊँचे कुल में स्थापना चाहता है, वह यद्यपि हीन सामाजिक स्थिति वाले कुल से कन्या ग्रहण करता है, किन्तु उसमें अपनी कन्या कभी नहीं देता। इन दोनों नियमों के प्रभाव से महाराष्ट्र में मामा की लड़की के साथ विवाह करना सर्वथा स्वाभाविक है। सर्वे द्वारा दिये गये निम्न चित्र से यह बात स्पष्ट हो जायगी।<sup>१७</sup> इसमें भोंखले और बोरपड़े दो परिवार हैं, दूसरे परिवार के गोपाल ने पहले परिवार की सीता नामक कन्या से

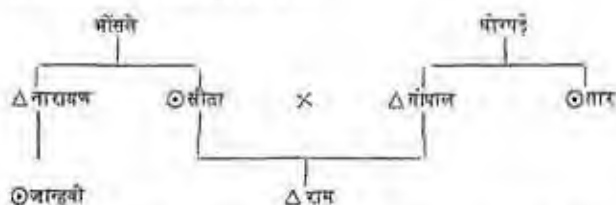
१४ कर्वे—पृ. पु., पृ० १४४-४

१५ कर्वे— " " १७२

१६ पदर जा मये—बहल का सिरा। इसका यह आशय है कि स्त्री को साड़ी का छोर जहाँ तक जाता हो, वहाँ तक सम्बन्ध करना उचित है। कल्पना कीजिये कि क कुल वाले अपनी कन्या व कुल के लड़के को देना चाहते हैं, अब व कुल वाले यह देखेंगे कि इससे पहले क्या क कुल के साथ उनका कोई वैवाहिक सम्बन्ध हुआ है। ऐसा सम्बन्ध न मिलने पर वे यह पता चलायेंगे कि व, छ, ज नामक जिन कुलों से उनके वैवाहिक सम्बन्ध हैं, क्या उनमें से किसी कुल का "क" कुल के साथ सम्बन्ध हुआ है। यदि ऐसा कोई सम्बन्ध मिलेगा, तभी क कुल की वधु स्वीकार की जायगी (कर्वे—पृ० १४६)।

१७ कर्वे—पृ. पु., पृ० १४६

विवाह किया, अब दोनों परिवार इस वैवाहिक सम्बन्ध को स्थायी बनाने की साधना अनुभव करते हैं और सीता का परिवार अगली पीढ़ी में पोरपड़े परिवार को एक कन्या भव्य बनाना चाहता है, यह प्रत्यक्ष सीता के भाई की लड़की होगी। इन बिन्दु में यह दिखाया गया है कि सीता और गोपाल के पुत्र राम का विवाह अपने मामा के भाई (मामा) तारामण की लड़की जान्हवी से होता है—



यह स्पष्ट है कि इसमें सीता और जान्हवी भोसले से पोरपड़े कुल में गयी है। जब कुछ कुलों को जैसा समझा जाता है तो उनमें कन्याएँ देने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इसका दूसरा कारण यह है कि स्त्री प्रत्यक्ष अपनी भतीजी (भाई की लड़की) को अपनी पुत्रवधू बनाना चाहती है।<sup>२०</sup> उक्त उदाहरण में सीता जान्हवी के लिए पिता (नारामण) की बहिन या बुआ तथा सास (पति की माता) दोनों हैं। यही कारण है कि आस्था और भावना शब्दों का प्रयोग इन दोनों सम्बन्धियों के लिए होता है।<sup>२१</sup> इस प्रकार पुरुष द्वारा अपने मामा की लड़की से लम्बा (स्त्री द्वारा अपनी बुआ के लड़के से) विवाह की परिपाटी सारस्वत, करहाड़ और देशना ब्राह्मणों में प्रचलित है।<sup>२२</sup>

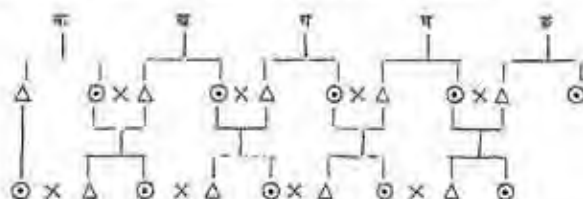
भातुल कन्या परिणय की प्रथा होते हुए भी केन्द्रीय महाराष्ट्र में और मराठी भाषाभाषी जनता में सामान्य रूप से यह धारणा है कि बुआ की लड़की के साथ विवाह दुर्भाग्य को लाने वाला होता है। इसका कारण एक मराठी कहावत में यह बताया गया है कि सत्ता खोद कर नहीं जाती (परत बेत मेला नाये)। लघू के रूप में किसी परिवार में दी

<sup>२०</sup> इसका एक अन्य कारण यह भी है कि इसमें विवाह का व्यय कम होता है। महाराष्ट्र के कुर्णावियों में पिता अपनी कन्या देने का शुल्क लेता है, किन्तु जब कोई पुरुष मामा की लड़की से शादी करता है तो कन्या के पिता की से जाने वाली राशि उस राशि से कम होती है जो उसे किसी बाहर वाले कन्या के पिता को देनी पड़ती है (कर्वे पू. पु., पृ. १६०)।

<sup>२१</sup> कर्वे—पू. पु., पृ. १६०

<sup>२२</sup> कर्वे—पू. पु., पृ. १६१

जाने वाली कन्या लता या बेल की भाँति है, यदि उसकी लड़करी लौटकर पुनः उसके पिता के परिवार में बच्चे के रूप में जाती है तो यह बेल का वापिस लौटना होगा, यह प्रकृति-विरोध है। बेल सदैव अपनी सब शाखाओं के साथ एक विशेष दिशा में जाने बढ़ती जाती है, पीछे नहीं लौटती। यह बात निम्न दृष्टान्त से स्पष्ट हो जायगी।



इसमें 'क' 'ख' 'ग' 'घ' 'ङ' पाँच कुल हैं, इन पाँचों कुलों की समान स्थिति होने पर कन्याओं की गति प से क की ओर ही होगी। इसका यह परिणाम होता है कि उन्च कुलों की कन्याओं की समान स्थिति का बर न मिलने की दशा में अविवाहित रहना पड़ता है अथवा अपने से निम्न कुल में विवाह करके हीन सामाजिक वर्ग का उदय बनना पड़ता है। इसमें प्रायः कन्या का पितृकुल से सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है।<sup>३१</sup>

### दक्षिण तथा उत्तर भारत की परिवार पद्धति के भेद

भ्रातृव्य विवाहों के दक्षिण भारत में प्रचलन के कारण दक्षिण भारत की परिवार-पद्धति उत्तर भारत की कुटुम्बपद्धति से कुछ मौलिक भेद रखती है। दक्षिण में पति-पत्नी उत्तर भारत के दम्पती की भाँति एक दूसरे के लिए सर्वथा अपरिचित और नवीन नहीं होते, बल्कि पूर्व परिचित सम्बन्धी होते हैं। उत्तर में विवाह द्वारा दूर के व्यक्ति बन्धु बनते हैं, किन्तु दक्षिण में पहले सम्बन्धी अधिक घनिष्ठ बनते हैं। इस महत्वपूर्ण अन्तर के कारण उत्तर और दक्षिण में पति-पत्नी के व्यक्तित्व का विकास विभिन्न प्रकार से होता है। उत्तर में पत्नी पितृकुल से विच्छिन्न होकर जब अपने स्वशुरालय में जाती है तो उससे विशेष व्यवहार की आशा रखी जाती है। वह ससुरालय के सामने कम आती है, उसका अधिक समय घर के अन्दर बीतता है, उसे सर्वथा नवीन वातावरण और परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढालना तथा उनको प्रति अनुकूल बनाना पड़ता है। दक्षिण में यह समस्या कभी उत्पन्न नहीं होती, माता, माँजी अथवा बका की लड़की

३१ कर्वे—पृ. ३७, १० १६०

३२ कर्वे—किनशिप आर्गनिसेशन, पृ० १३४, २१६ अनु.

के साथ साधी होने पर पत्नी किसी नये स्वामी के पास नये घर में नहीं जाती, बरपत से उसके साथ खेलने वाला मामा उसका पति होता है। वह न तो उसने और न उसके घर से अपरिचित होती है, उसे अपने को पति के अनुकूल बनाने का विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। वह उत्तर भारत की स्त्री की अपेक्षा अधिक उन्मुक्त वानावरण का अनुभव करती है।

किन्तु दक्षिण के इन विवाहों में जहाँ पत्नी को अपनी उत्तर-भारतीय मन्त्री की अपेक्षा कुछ लाभ है, वहाँ कुछ फाटा भी है। वहाँ प्रायः बचपन की मैत्री विवाह में परिणत होती है, अतः प्रणय में सभी रोमांचकता नहीं आती, वहाँ सभी प्रथम दृष्टि में प्रेम नहीं होता। विवाह में अपना जीवनसंगी चुनने की वहाँ स्वयन्वृत्ता नहीं है। ऐंग उदाहरणों की कमी नहीं है जहाँ अविच्छादपूर्वक रुढ़ि से बाध्य होकर विवाह करना पड़ता है। कबें तो एक ऐसे व्यक्ति का उदाहरण दिया है, जिसे अपनी दो बड़ी बहिनों की लड़कियों से शादी करनी पड़ी, क्योंकि वह दोनों बहिनों को गाराब नहीं करना चाहता था। अनेक बार एक सुन्दर युवक का विवाह एक कुत्ता युवती से केवल इसलिए होता है कि वह उसकी भाँजी है।<sup>३३</sup>

उत्तर भारत में पितृकुल और शशुरकुल में स्पष्ट अन्तर होता है, दोनों सर्वथा भिन्न होते हैं। पितृकुल का कोई व्यक्ति (माता, पिता, भाई, बहिन) शशुर कुल का व्यक्ति (सास, ससुर, साजा, सासू, शमाद) नहीं बन सकता। किन्तु दक्षिण में ऐसा नहीं है। बड़ी बहिन यद्यपि पितृकुल से सम्बन्ध रखती है, किन्तु उसकी कन्या से विवाह होने पर वह सास भी बन जाती है। दक्षिण भारत के सम्बन्धवाचक नामों पर इसका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। उदाहरणार्थ, वहाँ माता और बड़ी बहिन दोनों के लिए भाई शब्द का प्रयोग होता है, क्योंकि बड़ी बहिन की लड़की से शादी होने के बाद वह माता के समकक्ष होती है।<sup>३४</sup> बूआ तथा मामा की लड़की के साथ शादी होने के कारण फूफा, मामा तथा शशुर (पत्नी का पिता, पति का पिता) के लिए तमिस, तेलुगु, कन्नड़ में प्रायः एक ही शब्द, मामा, मामानार, और्ट्ट स्पष्ट का प्रयोग होता है।<sup>३५</sup>

उत्तर भारत का विवाह नवामस्तुकों को पत्नी रूप में अपने परिवारों में मिलना है और उसका विस्तार करता है। इसका परिणाम यह होता है कि स्त्रियों को नवीन परिवार के लिए अपने को अनुकूल बनाने में काफी कष्ट उठाना पड़ता है, उनका कार्य-क्षेत्र सीमित होता है, पर सम्बन्धियों का वर्ग विस्तीर्ण हो जाता है। दक्षिण भारत के आधुनिक विवाह एक संकुचित वर्ग में ही सम्बन्धियों को संयुक्त करता है, इनमें रक्त

<sup>३३</sup> वही, पृ० २२०, दक्षिण में इस प्रथा के कारण शाबा पोती विवाह भी संभव है।

<sup>३४</sup> कबें—मू. पु. पृ० २२३

<sup>३५</sup> वही—पृ० २१४

द्वारा और विवाह द्वारा बने सम्बन्धियों में बहुत अधिक अन्तर नहीं होता है, स्त्रियों को दैनिक जीवन में अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त होगी है।<sup>१६</sup>

### भ्रातृव्यविवाहों के प्रेरक कारण

उत्तर और दक्षिण में इस प्रथा के अन्तर का मूल कारण अलग-अलग कठिन है। दक्षिण में प्रचलित बहिर्विवाह के विशिष्ट नियम तथा अनेक हेतुओं से निकट सम्बन्धियों के विवाह का अधिकांश राष्ट्रीय समझना इसके प्रमुख कारण है। इनमें पहले कारण को पिछले अध्याय (पृ० ७६) में स्पष्ट किया जा चुका है। दूसरा कारण यह है कि अनेक हेतुओं से मजदूरी की रिपोर्टों में विवाह करना राष्ट्रीय समझा जाता है।<sup>१७</sup> गेट के मतानुसार पहला हेतु मरणा का है, आदिम समानों में जो तब विवाह द्वारा सम्बन्ध नहीं होते थे, वे प्रायः शत्रु माने जाते थे और उनके साथ वैवाहिक सम्बन्ध बनाना बहुत कठिन होता था। इसके साथ ही, इस दिशा में प्रत्येक छोटा वर्ग अपनी संख्या बढ़ाने को यत्न करता था, ताकि उसकी रक्षा भर्ती-भारिता हो सके। अपनी स्त्री का विवाह किसी दूसरे वर्ग में करने का अर्थ उस वर्ग की संख्या बढ़ाना तथा अपने वर्ग की संख्या कम करना था। विलोचिस्तान के कबीलों में आज तक शायद राजत पीढ़ियों से बाहर प्रचारमय निकटतम सम्बन्धियों में होती है (१९०१ की विलोचिस्तान की रिपोर्ट, पृ० १२६)। एक अन्य प्रेरक हेतु यह भी होता है कि मजदूरी की रिपोर्ट अपने वर्गों का एक दूसरे से विवाह करके अपने सम्बन्ध को अधिक शक्तिशाली बनाते हैं। यह भी सोचा जाता है कि सम्बन्ध परिवार में विवाह करने से कन्या के साथ उत्तम वर्तित होता है।<sup>१८</sup> सर्वथा अपरिचित कुल में विवाह करने से उन कुल वाले वधू के साथ ऐसा मधुर व्यव-

<sup>१६</sup> वही—पृ० २२६

<sup>१७</sup> भारत की १९११ की जनगणना रिपोर्ट खण्ड १, भाग १, पृ० २४६-७

<sup>१८</sup> अरबों में तथा मुस्लिम जगत् में चाचा की लड़की के साथ अनुभ्रातृव्यविवाह (Orthocousin marriage) जिन कारणों से श्रेष्ठ माना जाता है, उनमें एक दाम्पत्य जीवन का सुखमय होना है। क्योंकि इसमें पत्नी का स्वभाव पहले से ज्ञात होता है। कन्या यदि यति के घर में न रहे तो उसे अपने पिता तथा उसके भाइयों की सहायता से काम में रखा जा सकता है। इससे बंधन रुख कम रहता है, सम्पत्ति परिवार से बाहर नहीं जाती और विवाह में कम खर्च होता है। (इंसा, बिटा. खं० ६, पृ० ६१३) भ्रातृव्य विवाह आस्ट्रेलिया, प्रशांत महासागर, अफ्रीका तथा एशिया के विभिन्न भागों में प्रचलित है। इसके विस्तृत वर्णन के लिए डे. हेंस्टर मार्क—'वि हिस्टरी आफ ह्यूमन मैरिज' खं० २, पृ० ६८-६९, फ्रेजर—क्रॉकलॉर इन दी ओल्ड टेस्टामेंट, खण्ड २, पृ० ६८ अनु०।

हार करने को बाध्य नहीं होते जैसा वर्तमान निकट सम्बन्धी प्रायः बधू के साथ करते हैं। कई बार यह विचार भी होता है कि जिस व्यक्ति ने एक कुल से कन्या ली है, उसे उस कुल में अपनी एक कन्या अवश्य देनी चाहिए। इस दशा में यह कन्या प्रायः मामा के लड़के को दी जायगी। जहाँ मातृवंशी परिवार पद्धति का प्रचलन होता है, वहाँ मामा का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण होता है।<sup>३३</sup> ऐसे परिवारों में सम्पत्ति का उत्तराधिकारी लड़का न भ्रातर भाँजा होता है, इसके साथ अपनी कन्या की शादी करने में यह लाभ है कि भाँजा 'इसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनेगा, मामा को यह लगता होगा कि सम्पत्ति अपने पुत्र सुख समझे जाने वाले जमाई को ही मिलेगी। यदि लड़कियों की संख्या कम होती भी उसे अपने लड़के के लिए अपनी बहिन की लड़की प्राप्त करना बहुत मुरम होता। दक्षिण में मातृवंशी परिवार प्रणाली प्रचलित होने के कारण संभवतः उपर्युक्त हेतुओं से भ्रातृव्यविवाह की प्रथा का उद्भव हुआ।

वर्तमान समय में विहित तत्वयुक्तों में भ्रातृव्यविवाह कम हो रहे हैं, निम्न सम्बन्धियों में विवाह के उपर्युक्त नियम को तोड़ कर तत्वयुक्त वैयक्तिक लाभ के लिए सम्बन्धी-बन्ध से बाहर भी शादियाँ करते लगे हैं। कई बार ऐसे विवाहों से परिवारों में बड़ी दुःख और गिरावा भी उत्पन्न होती है। उत्तर भारत के तथा अंग्रेजी शिक्षा के संसर्ग में आने वाले दक्षिण भारतीय जब भ्रातृव्यविवाहों, विशेषतः मामा-भाँजी के सम्बन्ध को बुरा समझने लगे हैं।<sup>३४</sup> प्रस्तावित हिन्दू कोड में सारे भारत के लिए एक छत्र व्यवस्था करते हुए ऐसे सम्बन्धों को समाप्त करने का सुझाव था, किन्तु दक्षिण भारत के तीव्र विरोध के कारण यह स्वीकार नहीं हो सका।

१८ मई १९५५ से लागू हुए हिन्दू विवाह कानून की २६ वीं धारा में रिवाज के रूप में प्रचलित सभी विवाहों को वैध स्वीकार कर लिया गया है। दक्षिण भारत में निकट सम्बन्धियों में विवाह करने की परिभाषा इतनी अस्पष्ट है कि इसका निकट भविष्य में अन्त होना असंभव प्रतीत होता है। इस विषय में संभवतः दक्षिण भारत उत्तर भारत के नियम स्वीकार नहीं करेगा और अपना विरालापन बनाये रखेगा।

### नया कानून और सपिण्डता

१९५५ के हिन्दू विवाह कानून की तीसरी धारा में सपिण्डता की बड़ी गुप्तान्विता की गयी है, जो प्राचीन धर्मशास्त्रों की व्यवस्था की अपेक्षा अधिक संकुचित है। इस (धारा ३) के अनुसार सपिण्ड संबंध मातृपक्ष में माता से ऊपर की ओर तीन पीढ़ी

३३ मैसूर में मामा के महत्व के लिए देखिये—श्रीनिवास—'मैसूर एण्ड कैमिरो इन माइसोर' पृ० ५०-५६

३४ काँ—पू. पु. पृ० १६२

तक होना है और सपिण्डता में पिता में ऊपर की पांच पीढ़ी तक। इसमें पीढ़ियों की गणना सम्बन्ध व्यक्ति में ऊपर की ओर की जायगी और उसे पहली पीढ़ी माना जायगा। तीसरी पीढ़ी और पांच पीढ़ी तक का आशय यह है कि इन पीढ़ियों को सम्मिलित करते हुए इस सम्बन्ध की गणना की जायगी।

इस कानून के लागू होने में पहले तक मिनाक्षरा की व्यवस्था के अनुसार किसी व्यक्ति के सपिण्ड सम्बन्धी निम्न होते थे—

- (क) पूर्वजों में उस व्यक्ति के पिता, दादा, परदादा आदि ऊपर की ओर छः पीढ़ी तक के व्यक्ति।
- (ख) उस व्यक्ति के पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि छः पीढ़ी तक के सम्बन्धी।
- (ग) माता, उसके पिता, दादा आदि पांच पीढ़ी तक के सम्बन्धी।

श्री हरिमिह गौड़ ने विख्यात है कि हिन्दू शास्त्रों के अनुसार यदि सपिण्ड व्यक्तियों की गणना की जाय तो यह २००० के लगभग होगी, इन सब में परस्पर विवाह नहीं हो सकता। यूरोप में ऐसे निषिद्ध पीढ़ी वाले सम्बन्धियों की संख्या ३० के लगभग है। प्राचीन काल में वैदिक आदि कुछ शास्त्रकार, विवाह में सपिण्डों की संख्या घटा कर उसे पांचवी और तीसरी पीढ़ी तक सीमित करने के पक्षपाती थे। नये हिन्दू कानून में संभवतः इसी का अनुसरण किया गया है।

### निषिद्ध पीढ़ियाँ

नये कानून में सपिण्ड विवाह के निषेध के अतिरिक्त निम्न प्रकार के सम्बन्धी अश्रित पीढ़ी के बताये गये हैं और इनमें विवाह निषिद्ध है—

१. जबकि दो में से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का बंधपरम्परा की दृष्टि से पूर्वज हो।
२. जब उनमें से एक व्यक्ति दूसरे का ऊपर की या नीचे की पीढ़ी में पति या पत्नी हो।
३. एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के भाई की स्त्री हो या बान्धा-ताऊ या मामा की स्त्री हो।
४. जब दो व्यक्ति आपस में भाई, बहिन, चाचा, भतीजी, चाची या भतीजा हो, या भाई-बहिन की अथवा दो भाइयों या दो बहनों की संतान हों। (धारा ३)

यह स्मरण रखना चाहिए कि इस कानून का दक्षिण भारत के रिवाज के आधार पर होने वाले आनुवंशिक विवाहों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, क्योंकि पाँचवी धारा में हिन्दू विवाहों की पाँचवी शर्त में जहाँ यह कहा गया है कि वर-वधू सपिण्ड नहीं होने चाहिए, वहाँ उसके साथ यह भी विधान किया गया है कि दोनों पक्षों के रीति-रिवाज के अनुसार यदि सपिण्ड सम्बन्धियों के बीच विवाह होना संभव हो तो ऐसा विवाह अवैध नहीं होगा।



और प्रतिभोग विवाह होते थे। वायुपुराण (८।३३, ४६ तथा ५७ अध्याय) में तो यहाँ तक कहा गया है कि कृतयुग में वर्णाश्रम की व्यवस्था ही नहीं थी। जब वर्ण व्यवस्था ही नहीं थी तो अपने ही वर्ण में विवाह का नियम उस समय कैसे प्रचलित हो सकता था? वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में अन्तर्गण विवाहों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। शतपथ ब्रा० (४।१।५) में बताया गया है कि भृगुवंशी ब्राह्मण कथन में गन्धर्वों के बचन

किया है—(१) अन्य जातियों के समान आर्य भी अपनी लड़कियाँ दूसरी जातियों में देना अच्छा नहीं समझते थे। (२) विजेता और गौर वर्ण आर्यों में यह भावना स्वाभाविक थी कि वे विजित तथा काली जातियों को हीन समझते हुए उनसे वैवाहिक और खानपान के सम्बन्ध न रखें। जाति के लिए संस्कृत में पुराणा शब्द वर्ण है, जो रंग का भी वाचक है। आजकल की स्वैतांग जातियों में इस प्रकार की व्यवस्था पायी जाती है। अफ्रीका के बोअर वहाँ के मूलवासी कृष्ण वर्ण के अफ्रीकी लोगों से घृणा करते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका के २२ राज्यों में नीग्रो लोगों के साथ, चार राज्यों में रेड इंडियन जाति के साथ तथा चार राज्यों में मंगोलियनों के साथ स्वैतांग जातियों के विवाह वर्जित हैं (हाबहाउस—मार्लस इन इवोल्यूशन, पृ० १४२)। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत में गौरवर्ण आर्यों के कृष्णवर्ण स्त्रियों के साथ विवाह होते थे (वसिष्ठधर्म सूत्र १।२५), किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि इन स्त्रियों को तथा इनसे उत्पन्न पुत्रों को हीन वर्ग दिया जाता था। (३) गेट के कथनानुसार हीन वर्ण और हीन स्थिति की स्त्रियों से उत्पन्न सन्तानों ने जब समान वर्ण की स्त्रियों की सन्तानों के साथ समानाधिकार के लिए होड़ की तो जातिभेद की प्रथा को बड़ा प्रोत्साहन मिला। (४) धार्मिक पवित्रता और खानपान में छुआछूत के विचार से जातिभेद की मुट्टि मिली। भारत को अनेक आदिवासी जातियों में ऐसे विचार पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ, बंगाल की खोरिया नामक पहाड़ी जाति के लोग अपने परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त किसी व्यक्ति के साथ भोज नहीं करते। मुण्डा लोगों में यह प्रथा है कि कोई मुण्डारी बोधकाल के पश्चात् विदेश से लौटने पर उस समय तक अपने घर में प्रविष्ट नहीं हो सकता जब तक कि उसकी पत्नी बाहर आकर उसके घरण न धो ले, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि विदेश में किसी ऐसे सम्पर्क से उसका दूषित होना सम्भव है, जो उसे मुण्डा समाज की सभ्यता के लिए अयोग्य बना दे (गेट—इंसा. रिली० ई०, ख० ३, पृ० २३५)। अनाथ जातियों में प्रचलित ऐसी प्रथाओं के आधार पर कुछ विद्वानों ने यह कल्पना की है कि हिन्दू समाज ने जातिभेद के प्रधान तत्त्वों—छुआछूत और ऊँच-नीच के विचार की अनाथों से ग्रहण किया (भारत की जनगणना की उपयुक्त रिपोर्ट, पृ० ४३७)। इन विचारों के प्रसार

अविविध शर्मात की लड़की लुकम्बा से शादी की। बृहद्देवता (५।५०) ने अ० ५।६१।१७-१८ की यह व्याख्या की है कि इसके अनुसार रामा रघुवीर के दाम्पत्य ने अपनी कन्या अर्चनानस आश्वेय के पुत्र प्रभाशख को प्रदान की। ऐतरेय ब्राह्मण का लेखक महिषास इतरा या गूढा का पुत्र था।<sup>३</sup> इतरा का पुत्र होने से वह ऐतरेय कहलाया और उसके इसी नाम से उनका बनाया ग्रन्थ ऐतरेय ब्राह्मण प्रसिद्ध हुआ। पंचविश ब्राह्मण (१४।६।६) में एक ऋष्यवंशीय को भी दाम्पत्य कहा गया है। इसी ब्राह्मण में दीर्घतमा की पत्नी का नाम उशज आया है। (१४।१।१७)। बृहद्देवता के अनुसार (४।२४।२५) उशज गूढा थी, इसके के गर्भ से कधीवान् आदि अदि उत्पन्न हुए।

वैदिक युग में विभिन्न वर्गों में उत्पन्न सन्तानों को बुरा समझा जाता हो, सो भाग नहीं। यह ठीक है कि ऐ० श्र० (२।८) में काश्यप ऐलूष के दासी (गूढा) पुत्र होने

से प्रत्येक वर्ग के लोगों में अपने को दूसरे वर्ग के व्यक्तियों से भृषक् रखने, अपना उद्गम एक मूल पुरुष से मानने की भावना उत्पन्न हुई, अपने सामाजिक संबंधों और विवाह को अपने वर्ग तक सीमित रखकर उन्होंने उसे एक विशिष्ट जाति बना दिया है। (५) जाति भेद की उपर्युक्त प्रवृत्ति ने शर्त-शर्तः विभिन्न व्यवसाय तथा कार्य करने वाले बड़ई, जुआहा, चमार आदि के वर्गों को विशिष्ट जाति का रूप प्रदान किया। जातिभेद के उद्भव और विकास पर बहुत अधिक साहित्य प्रकाशित हुआ है। इसका सुन्दर तथा संक्षिप्त विवेचन निम्न ग्रन्थों में है—इंसा. किदा. ४।६७६-६८६, इंसा. रिली० ई० ३३। २३०-३६, इम्पेरियल गजेटियर आफ इंडिया, ख० १, पृ० २८३; पा० श्र० काणे—हिस्टरी आफ धर्मशास्त्र, ख० २, भाग १, पृ० १६-१०४, धर्म्ये—कास्ट एण्ड रैस इन इंडिया (१९३२); एन० के० बल—ओरिजिन एण्ड प्रोप आफ कास्ट सिस्टम इन इंडिया (१९३१); फिल—सोशल आर्गैनिजेशन इन नार्थ ईस्ट इंडिया इन यूद्धास राइम (१९२०); जॉन्ट—कास्ट सिस्टम आफ नाथन इंडिया (१९३१); एस० बी० केतकर—हिस्टरी आफ कास्ट इन इंडिया, २ खण्ड (१९०६-१०); एमाइल सेनार्त की फ्रेंच पुस्तक का रासकृत अंग्रेजी अनुवाद (१९३६); हट्टन—कास्ट इन इंडिया। जातिभेद सम्बन्धी महत्वपूर्ण ग्रन्थों की विस्तृत सूची सर एथेलस्टेन बेनेस की एथनोलाजी (१९१२) में पृ० १७३-२११ में मिलेगी। हिंदो में इसका विवेचन क्षितिमोहन सेन कृत 'भारत में जातिभेद' में है। हिन्दू समाज के आधुनिक जातिभेद का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थों का निर्देश आगे किया जायगा।

३ सत्यव्रत सभाश्वमी—ऐतरेयालोचनम्, पृ० ११।

से उसे यज्ञ से बाहर खदेड़े जाने का वर्णन है।<sup>४</sup> किन्तु यह बात उसके लिए श्र० १०।३०-४ का श्रुति होने में बाधक नहीं हुई। लाट्पायन तथा ब्राह्मयण श्रौतसूत्रों से यह ज्ञान होता है कि अग्राहणों की सन्तति ब्राह्मण होती थी। कवच की तरह उन्हें यज्ञों से खदेड़ा नहीं जाता था, अपितु उन्हें यज्ञ कराने का पुरा अधिकार था।

लाट्पायन श्रौत सूत्र (६।२।५-७) में सोमपान से पूर्व दस पुरोहिताँ द्वारा अपनी पितृपरम्परा की दस और मातृपरम्परा की दस पीढ़ियों के नाम लेने का वर्णन है। यदि मातृपरम्परा में किसी अग्राहणों का नाम आ जाय तो उसे छोड़कर ब्राह्मण-कन्याओं के नाम से दस की संख्या पूरी करनी चाहिए और यदि नाम याद न हो तो जहाँ से याद हों जहाँ का पाठ करें। आपस्तम्ब श्रौत सूत्र (१।६।६), आपस्तम्ब मन्त्रपाठ (२।१।६।१), हिरण्य केतुगृह्यसूत्र (२।१०।७), शांखायन गृह्यसूत्र (३।१३) तथा मनु (६।२०) में यज्ञ के समय माता से अपतिव्रता का दोष होने पर उसे दूर करने के लिए मन्त्रपाठ का विधान है। इससे यह स्पष्ट है कि माता का दोष ब्राह्मण के लिए बुरा नहीं समझा जाता था। काठक संहिता तो यहाँ तक कहती है कि ब्राह्मण के माता-पिता की बात भूलना ठीक नहीं है। महाभारत (१३।२२।५) ने इसका अनुमोदन करते हुए वैवर्क में ब्राह्मण की परीक्षा निषिद्ध उद्घरायी है।

अनुलोम विवाहों के प्राचीन उदाहरण

ब्राह्मण-परीक्षा के निषेध से हमें स्वभावतः पुराणों में विहित उन प्रसिद्ध श्रुतियों

- <sup>५</sup> ऐ० ब्रा० २।८, इत्युष नामक सूत्रा वासी का पुत्र कवच ऐत्युष सरस्वती के तीर पर सोमयाग में द्रोक्षित हुआ। अन्य श्रुतियों ने उसे देखकर कहा कि यह अग्राहण वासीपुत्र हमारे बीच सोमयाग में कैसे द्रोक्षित हुआ? यह कहकर उन्होंने ऐत्युष की सरस्वती से दूर जलहीन प्रवेश में खड़े विद्या। ऐत्युष ने वहाँ 'प्रवेशत्रा ब्राह्मणे' (श्र० १०।३०) के सूक्त का साक्षात्कार किया और सरस्वती उसके पास आयी, तब श्रुतियों ने उसे ब्राह्मण माना। शांखायन ब्राह्मण १२।३ में भी ऐसी कथा है। यहाँ वास्तवः पुत्र' गाली भी हो सकती है या यह सूचित करती है कि ब्राह्मण का लड़का होने पर भी उसकी माता अनार्य थी। उच्च वर्ग वाले आर्यों तथा गृहों के यौन सम्बन्ध की सत्ता वाजसनेय संहिता २३।३० तथा मै० सं० ७।४।१।६।३ से भी सूचित होती है। इसमें कहा गया है कि जब सूत्रा स्त्री का प्रेमी आर्य होता है तो वह अपने संबन्धियों की समृद्धि के लिए धन नहीं चाहती। शत० ब्रा० (१३।२।६।८) ने इस तबन्ध को उद्धृत करते हुए कहा कि इसलिए वह वैश्य स्त्री के पुत्र का राजा की तरह अभिषेक नहीं करता। इससे यह सूचित होता है कि राजा वैश्य की कन्या से विवाह कर सकता था, किन्तु उसका पुत्र राजपट्टों का अधिकारी नहीं होता था।

की कसौटी स्मरण हो आती हैं जिन्होंने निम्न वर्णों की स्त्रियों के साथ विवाह किये थे। मनु ने वसिष्ठ के साथ अश्वमेधोनिजा अश्वमाता का और मन्दपाल के साथ शारङ्गो के विवाह का उल्लेख किया है<sup>४</sup> (६।२३)। अश्वमेध पत्नी की बात जाने दीजिए, अश्वमेधी उनकी आदर्श पत्नी थी; किन्तु वह मनुष्यही क्षत्रिय राजा कर्दम की कन्या थी (भाग० पु० ३।२४, मत्स्य पु० २०।१।३०)। अगस्त्य ऋग्वेद के अनेक सूक्तों (१।१६५, १३।१५, १।११६-६६ आदि) के ऋषि हैं; उनकी पत्नी गोपामुखा क्षत्रिय थी (महाभा० ३।६४-६७)। वसिष्ठ के पुत्र ऋषि का एक वैष्णवकन्या अश्वमेधी से विवाह हुआ (महाभा० कु० १३।५३।१७)। महर्षि पराशर ने यमुना के किनारे दाशराज धीवर की कन्या से कृष्णद्वैपायन का आश्रय किया (महाभा० १।६३, १०५ अ०, भाग० पु० १।३)। कृष्णद्वैपायन ने विचित्रवीर्य की क्षत्रिय स्त्रियों से निशान कर धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर को जन्म दिया था (महाभा० आदिपर्व अ० १०६, ब्रह्म पुराण अ० १५४, भाग० पु० ६।२२)। महाभारत में स्पष्ट कहा गया है कि ब्रह्मर्षि वैश्य और

- ४ मनु ६।२३ अश्वमाता वसिष्ठेन संपुत्ताश्वमेधोनिजा। शारङ्गो मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम्। अश्वमाता का उल्लेख महाभा० उद्योग पर्व ११७।११ तथा मन्दपाल की कथा महाभारत आदि पर्व अ० २३१ में है। मनुस्मृति के टीकाकारों में गोविन्दराज और राघवानन्द ने अश्वमाता को अश्वमेधी का ही दूसरा नाम माना है; राघ० के कथनानुसार वह ऋषियों की अनुमति से वसिष्ठ की पत्नी बनी। परवर्ती ग्रन्थों में अनेक प्राचीन ऋषियों की उत्पत्ति निम्न वर्णों की स्त्रियों से बतायी गयी है। भविष्य पुराण (४२।२२-२४) के अनुसार व्यास का जन्म कौत्सी के गर्भ से, पराशर का वण्डाल कन्या से, शुकदेव का शूद्रों से, कणाद का उलूकी के गर्भ से, ऋष्यशृंग का मुगों के गर्भ से, वसिष्ठ का गणिका से, मन्दपाल का लविका से तथा सुमिराज माण्डव्य का मण्डूकी के गर्भ से हुआ। यही बात ब्रह्मसूत्रिकोपनिषद् में पायी जाती है। महाभारत के कुम्भमधीनम् संस्करण के अनुशासनपर्व के ५६ वें अध्याय में ऐसे ऋषियों की बड़ी लम्बी सूची देने के बाद कहा गया है—ऋषीणां व नदीनां च साधूनां च महात्मनाम्। प्रभवो नाधिपन्तव्यः स्त्रीणां दुश्चरितस्य च॥ (मि० गच्छ पुराण पूर्व खण्ड १।५।५७)। इन उदाहरणों की व्याख्या के लिए दे० इन्दिरारमण—मानवार्थभाष्य पृ० १२६-१३६। प्राचीन काल में ऐसे विवाहों का प्रधान कारण जाति-व्यवस्था का अधोलान था (अतिमोहन सेन—भारतवर्ष में जातिभेद, पृ० २४-४३)। उस समय बाह्यणत्व की कसौटी अल्प नहीं, किन्तु वैवाहिक ज्ञान (श्रुत), उत्तम चरित्र, समता, सत्यता, शील आदि गुण थे (सेन—पृ० पु०, पृ० ४१-४२)।

शूद्र मीनि में उत्पन्न हुए हैं। कपिञ्जन बाण्डायनी से उत्पन्न हुए और अदृश्यन्ती का पिता वैश्य चितरथ था। यह सप्तिष्ठ के पुत्र शक्ति में व्याही गयी (म० भा० कु० १३।५३।१७)। दीर्घतमा ऋषि ने सुदेष्णा नामक दासी के गर्भ में कशीवान आदि ग्यारह पुत्र उत्पन्न किये (महाभा० १।१०४, भरथ पु० ४८)। ऋषीक ऋषि ने काण्डकुब्ज के राजा की कन्या प्राप्त की थी। (म० भा० ३।११४)। जमदग्नि ऋषि की स्त्री रेणुका दशबाहुबंधीय राजा रेणु की कन्या थी (भाग० २।१४।१२, हरि० पु० १।२७)। ऋष्यश्रृंग ऋषि ने दशरथ की कन्या शान्ता के साथ पाणिग्रहण किया था (भाग० २।२३।७-१०)।

### प्रतिलोम विवाहों के उदाहरण

प्रतिलोम विवाहों में क्षत्रिय ब्राह्मण वर्ण की कन्याएँ निम्ने थे। राजा प्रियव्रत ने ब्राह्मण कर्दम की पुत्री काम्या (पा० पु० २८ अ०) को व्याहा। राजा नील ने ब्राह्मण ईषामन के पुत्र शुभा की कन्या सुखी का पाणिग्रहण किया (भाग० २।२१।२६)। ययाति ने शुक्राचार्य की ब्राह्मण कन्या देवयानी को ग्रहण किया था। देवयानी अपनी दासियों और शर्मिष्ठा के साथ वन में बिहार कर रही थी। ययाति उनी वन में भ्रमण करते हुए जलपानार्थी होकर उधर जा निकला। देवयानी ने उसका परिचय भाकर दासियों और शर्मिष्ठा सहित अपने को ययाति राजा को सौंप दिया। राजा उसे स्वीकार करने में कुछ क्लेशकते हुए कहता है—“हे शुक्लन्दिनी, तुम्हारा मंगल हो, मैं तुम्हारे योग्य पात्र नहीं हूँ। हे चंचलानि! तेरे पिता के लिए राजा लोग विवाह योग्य नहीं हैं” (१।८१ १८)। देवयानी कहती है “ब्राह्मण के साथ क्षत्रिय और क्षत्रिय के साथ ब्राह्मण मिले हुए हैं। हे राजपुत्र! आज भी उमरों अनुसार ऋषि और ऋषिपुत्र हुए, अतः मेरे साथ विवाह करो।” ययाति उसकी मुक्ति से सन्तुष्ट नहीं है, क्योंकि चारों वर्ण एक देहोद्भव होने पर भी पृथक् धर्मों वाले हैं, किन्तु अन्त में शुक्राचार्य के दाम बरने पर उन्हें देवयानी स्वीकार करनी पड़ी। फिर भी ययाति को वर्णसंकरता के पाप का भय है। इस पर शुक्राचार्य कहते हैं—“मैं तुम्हें अधर्म से बचाता हूँ, तुम मनमाना करोगी। इस विवाह से दुःखी मत हो, मैं तुम्हारा सम्पूर्ण पाप दूर कर देता हूँ (१।८१।३४)।” ययाति को इस विषय में कोई कितना संकोच हो, किन्तु यह प्रतिलोम विवाह अवश्य हुआ। इस विवाह के तथ्य को किसी प्रकार अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

क्षत्रिय से ब्राह्मण स्त्री में जो पुत्र होता था, उसे सूत कहते थे। राजा लोग सूतों से सम्बन्ध रखते थे। जिनकादि ऋषियों की पुराणों की कथा सुनाने वाला राम-हर्षक सूत था (भाग० पु० १०।७०।२२-२३)। महाभारत (१३।२७।२६) में एक नाई द्वारा मत्त नामक ब्राह्मणों के गर्भ से उत्पन्न भर्तृग मुनि की कथा दी गयी है।

उस समय सर्वत्र विवाह के नियम का भंग अधिक होता था और पातन कम।

जनपदों में भीमसेन को पकड़ने वाले सर्प से संलाप करते हुए, मुष्णिष्ठिर गुणकर्मनुसारी वर्णव्यवस्था के समर्थन में युक्ति देते हुए कहते हैं—हे महात्मा! मनुष्यों में जाति की परीक्षा होना महा कठिन है, क्योंकि उनमें वर्णों संकर हैं। सब (वर्णों के) ध्यस्तिक सब (वर्णों की) स्त्रियों से पुत्र उत्पन्न करते हैं (३।१८४।३१, ३२)। मुष्णिष्ठिर की इस स्पष्ट उक्ति की पुष्टि अनुशासन पर्व के ४८ वें अध्याय में गिनारों की स्त्रियों वर्णसंकरों से होती है \*।

शूद्रा स्त्रियों के साथ विवाह का निषेध

प्राचीन हिन्दू समाज में सबसे पहले शूद्रा के साथ विवाह का निषेध किया गया। उस समय राम आर्मेटर जातिवादी शूद्र कहलाती थी। इनके साथ आर्यों के सम्बन्ध होते थे। कहा जाता है कि शुरू में आर्य अपने साथ स्त्रियाँ कम लाये थे, वे शूद्रा स्त्रियों को ग्रहण कर लेते थे किन्तु, बाद में जब वे यहाँ बस गये तो उनमें वर्ण (रंग) भेद प्रचलित हुआ, और वे विद्वानों की कृप्यवर्णा स्त्रियों सेना नापसंद करने लगे। वसिष्ठादि ऋषियों ने शूद्राओं के साथविवाह किये, और शूद्राओं ने महापि त्याग जैसे क्षत्रिपुत्रों की जन्म दिया। ऐसा जान पड़ता है कि आर्यों के लिए कृष्णवर्णा शूद्रा स्त्रियों का आकर्षण बहुत प्रबल था। बाद में जातीय शूद्रता के विचार से धर्मशास्त्रकारों को ये विवाह संभवतः बहुत बुरे प्रतीत हुए हाँ, अतः उन्होंने इनका विरोध किया। विरोध की दो अवस्थाएँ थीं। पहली तो यह कि शूद्रा स्त्री की धार्मिक अधिकारों से वञ्चित कर दिया जाय और दूसरी यह कि शूद्रा के अभिगमन को भयंकर दण्डनीय अपराध बना दिया जाय।

वसिष्ठ धर्मसूत्र कहता है कि अग्निर्संस्कारपूर्वक कृष्णवर्णा स्त्री को न ग्रहण करे, क्योंकि वह दमन के लिए ही होती है, धर्म के लिए नहीं।<sup>१०</sup> वसिष्ठ की यह बात

\* वर्णसंस्करता के प्राचीन और अर्वाचीन उदाहरणों के लिए देखिए अति मोहन सेन—भारतवर्ष में जातिभेद, पृ० १७०—१७३। नैषधीय चरित (१७।४०) में कहा गया है “अनन्त दोषों के कारण कोई जाति निर्दोष नहीं है”, इस पर नैषध के टीकाकार ने कुछ मनोरंजक प्राचीन वचन उद्धृत किये हैं; अपने दूरदोस्तों के साथ भी एक पक्ष में भोजन नहीं करना चाहिए, क्योंकि कौन जानता है कि किसने कौन सा पाप किया है (अप्येकपक्षेत्तथा नास्तीयात् संसर्गः स्वजनैरपि। को हि जानाति कि प्रच्छन्नं पातकं भवेत्)। एक दूसरे वचन के अनुसार कामतुल्या पुर्वार होने के कारण तपा कुल स्त्री के आधीन होने से जातिभेद सर्वथा निरर्थक है (अन्तर्विवाह संसारे पुर्वारि मकरध्वजे। कुले च कामिनीमूले का जातिपरि-कल्पना)।

<sup>१०</sup> वसिष्ठ ध० सू० १८।१७-१८, ‘नानि किंवा रामामुपेयात्। कृष्णवर्णा या रामा रमणार्थं न धर्मायति’। निरुक्त १२।२।१३ से इस विषय पर बहुत मनोरंजक

इसलिए कहने की जरूरत पड़ी कि पुराने समय में असवर्णा स्त्रियाँ पनि के कार्य को कर सकती थीं। सामान्यतः यज्ञ में अग्निगन्धर्व का कार्य सवर्णा स्त्री द्वारा होता था। किन्तु उसके अभाव में कात्यायन स्मृति (८।६) असवर्णा पत्नी को भी यह कार्य करने का अधिकार देती है। यद्यपि कात्यायन ने इस कार्य का शूद्रा पत्नी द्वारा करने का निषेध किया है, किन्तु अतिष्ठ के कहने के अंग और न 'धर्मवि' शब्द की पुनरावृत्ति में अश्वय मन्देह होता है कि कभी शूद्रा स्त्री को धर्मपत्नी का यह अवश्य प्राण था। गार्ग्य सू० (१।४), वीष्णु सू० (१।८।२), विष्णु धर्मसूत्र (२।१।४), बर्गसूत्र सू० (१।२५) से ज्ञात होता है कि कुछ लोगों की सम्मति में शूद्रा स्त्री का यज्ञ करना भी सकता था, किन्तु उनके लिए धार्मिक सम्मान की कोई आवश्यकता नहीं थी। धर्मशास्त्रों के ये सचत इस बात की अच्छी तरह स्पष्ट कर देते हैं कि उन समाज कथवर्णा शूद्राओं के साथ विवाह का रिवाज था, किन्तु वे धर्मपत्नी के रूप में नहीं, बल्कि शर्म के रूप में सामी जाती थी।

धर्मसूत्रों की विवश होकर इस प्रथा का उल्लेख करना पड़ा था। वास्तव में उनकी सम्मति इसके विरुद्ध थी। अतिष्ठ धर्मसूत्र (१।२५) स्पष्ट शब्दों में कहता है कि ऐसा विवाह निश्चित रूप से कुल को अयोग्यता की ओर ले जाने वाला है और मर्त्य पर ऐसे विवाह से नरक मिलेगा। मनु ने शूद्रा के साथ विवाह की ओर निन्दा की है।<sup>१८</sup>

प्रकाश पड़ता है। संस्कृत में राम काले को कहते हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि इस शब्द का असली अर्थ रमण करना था। आर्य शूद्रा स्त्रियों के साथ रमण ही करते थे, धर्मकार्य नहीं, अतः उन स्त्रियों को रामा कहा जाता था। ये शूद्रा स्त्रियाँ काली होती थीं, अतः रामा का अर्थ कृष्णवर्णा स्त्री हुआ और बाद में राम काले को कहने लगे।

- <sup>१८</sup> मनु ३।१४-१६। पराशर स्मृति (१२।३३) के अनुसार घर में शूद्रा स्त्री रखने वाला रौरव नरकवासी होता है। शंखस्मृति (४।६, १३) आपत्काल में भी शूद्रा स्त्री के साथ विवाह का निषेध करती है, क्योंकि उससे उत्पन्न पुत्र पिण्डदान नहीं कर सकता। महाभा० १३।४।७।८-१० में मनु (३।१७) की शक्ति शूद्रा से विवाह की ओर निन्दा की गयी है। विष्णु (अ० २६) ने शूद्रा के साथ विवाह की निन्दा करते हुए मनु के ३।१५ तथा ३।१८ की दोहराया है, उससे धर्मकार्य का निषेध करते हुए उसे कामान्ध के सुख का ही हेतु बताया है। बृहस्पति इसे प्रतिदिन ब्रह्महत्या के तुल्य पाप समझता है, वह इस जन्म में इस कारण शूद्रत्व को तथा अगले जन्म में कुले की धीनि की प्राप्ति करना बताता है (३।१४)। यम के मतानुसार शूद्रासमन से ब्राह्मण तीन दिन के लिए अपवित्र होता है, किन्तु इससे सन्तान उत्पन्न करने पर उसका ब्राह्मणत्व नष्ट हो जाता है। ब्रह्मघातक ब्रह्मघातक नहीं है, किन्तु शूद्रा का पति ब्रह्मघातक है (न ब्रह्महा ब्रह्महा ब्रह्महा नु वृषसी

वह पुराने इतिहास की दृष्टि से अंग्रेज करता हुआ कहता है कि किसी प्राचीन उदाहरण (मृत्तान्त) में ऐसा नहीं देखा जाता कि आपत्तिकाल में भी ब्राह्मण भवया क्षत्रिय ने शूद्रा में विवाह किया हो। जो द्विज मोहवश शूद्रा स्त्री से विवाह करते हैं, वे सन्तान सहित अपने कुलों को शूद्र बना डालते हैं। अग्नि और गौतम के मतानुसार शूद्रा से केवल विवाह करने में, गौतम के मत में शूद्रा में सन्तान उत्पन्न करने से और भृशु के मत में शूद्रा से उत्पन्न सन्तान की सन्तान होने पर द्विज पवित्र होते हैं। शूद्रा स्त्री से सम्भन करने वाला

पति, सं० प्र०, पृ० ७१०)। हारोत इस विवाह को अधोगति पाने का साधन मानता है (सं० प्र० पृ० ७१०)। उसला के मत में मद्यपान और ब्रह्महत्या करने वाले के लिए प्रायश्चित्त है, किन्तु शूद्रा से सन्तान उत्पन्न करने वाले के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है (सं० प्र०, पृ० ७११)। उशना ने कुछ ऐसे जात्राघों का मत भी उद्धृत किया है, जो ऐसे विवाह से व्यक्ति का अधःपतन नहीं मानते, किन्तु वसिष्ठ का यह मत है कि विवाहमात्र से उसका अवश्य पतन होता है। सौनक के मतानुसार पुत्र पैदा करने से तथा गौतम के अनुसार पुत्रों के पुत्र पैदा करने से (वही, पृ० ७११) पतन होता है। मध्विष्णुपुराण के मत में अत्रि शूद्रा के साथ विवाह करने से पतित हुआ, जतम्य पुत्र पैदा करने से और सौनक पुत्र का पुत्र पैदा करने से (सं० प्र०, पृ० ७११)। बह्मपुराण के अनुसार अत्रि, वैश्य और शूद्रा कन्याओं से कभी विवाह नहीं करना चाहिए। (सं० प्र०, पृ० ७१२)। मित्र-मिथ के मत में शूद्रा के विवाह का निषेध सभी लागू होता है, जब अन्य वर्गों की पत्नियाँ उपलब्ध हों। इन विवाहों को निन्दा करने का तात्पर्य इनके दोष बिधाना है (सं० प्र०, पृ० ७१२)। पराशरमाध्वीय ने महाभारत के आश्वमेधिका पर्व से शूद्रा के विवाह को निन्दा के दो वचन उद्धृत किये हैं। इनके अनुसार कानमुख के लिए भी शूद्रा से विवाह नहीं करना चाहिए। बौधायन (२।१।११) शूद्रा के साथ विवाह का परिणाम पतित होना मानता है।

मनु द्वारा शूद्रा के साथ विवाह की घोर निन्दा होती हुए भी यह मनोरंजक तथ्य उल्लेखनीय है कि वह यह मानता है कि शूद्रा भाषों में ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न कन्या से यदि कोई ब्राह्मण विवाह करे तो सात पीढ़ी के बाद वह सन्तान पुरी ब्राह्मण हो जायगी (१।०।६४ मि० गौतम ४।२२-२४ आप० २।१।०-११ पात्र १।२६)। मनु के टीकाकारों में उपर्युक्त श्लोक के अर्थ के सम्बन्ध में दो पक्ष हैं। पहला पक्ष मेधातिथि, गोविन्दराज, कुल्लूक और राघवाचन्द्र का है, जो उपर्युक्त अर्थ के साथ मेल खाता है। इनके अनुसार यदि ब्राह्मण पुत्र्य और शूद्रा स्त्री की सन्तान तथा उसके पंशज ब्राह्मणों के साथ विवाह करते हैं तो छठी पीढ़ी के स्वर्णवंशज ब्राह्मण हो जायेंगे। हरबल ने गौतम ४।२२ की इसी प्रकार की



ब्राह्मण मरक में जाता है और उसमें पुत्र उत्पन्न करने वाले का ब्राह्मणत्व नष्ट हो जाता है। द्विज के देवकार्य, पितृकार्य और अग्निभि कार्य में जो गूढ़ा गृहिणी गैरग्न रहती है, उसका हव्य, कल्प देवता और पितर ग्रहण नहीं करने और वह स्वयं नहीं प्राण करता। गूढ़ा स्त्री का पुनर्वन करने जाने, उसका श्वाभ्य ग्रहण करने जाने और उसमें पुत्र उत्पन्न करने वाले द्विज के प्रामाणिकता का विधान नहीं है। मनु की यह धारा भिन्ना केवल गूढ़ा से विवाह न करने के सम्बन्ध में उसकी वैयक्तिक आदर्श की ही मूर्तिवर्तमान है। यन्व-स्मिति तो यह थी कि गूढ़ाओं के साथ विवाह होने में और मनु शीघ्र प्रसंग करने २।१३ में ब्राह्मण की चार, क्षत्रिय की तीन, वैश्य की दो और शूद्र की एक स्त्री स्वीकार करना है। ३।४४ में वह गूढ़ा के साथ विवाह की विधि का वर्णन करता है।<sup>१</sup> अत्यन्त दुष्कृत से भी स्त्रीरत्न लेने की अनुमति प्रदान करता है (२।२३८), १।१२२-२३ में वह ब्राह्मण के साथ गूढ़ा आदि असंख्य स्त्रियों में उत्पन्न पुत्रों के दायभाग के अंश निर्दिष्ट करता है। मासकल्य भी गूढ़ा स्त्रियों के साथ विवाह के विषय में अपनी अमहर्नि प्रकट करता है (१।१५६)। किन्तु इसके बाद मनु की तरह वस्तुस्थिति के अनुरोध में वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की चार, तीन, दो और एक पत्नियों का उल्लेख करता है (१।१५७)<sup>१\*</sup>,

व्याख्या की है। दूसरा पक्ष सर्वज्ञनारायण और नन्दन का है, उनके मत में यदि ब्राह्मण और गूढ़ा की सन्तान (पारसक) एक उत्तम गुण वाली पारसवी से विवाह करती है और उसकी सन्तानें भी ऐसा करती हैं तो छठी पीढ़ी की सन्तति ब्राह्मण होगी। नन्दन ने इस अर्थ की पुष्टि बौधायन (१।८।१३) के एक वचन से करते हुए कहा है कि निषाद अर्थात् वैश्य से गूढ़ा स्त्री में उत्पन्न पुत्र की शूद्रता पाँचवीं पीढ़ी में समाप्त हो जाती है। बौधायन के इस वचन के अनुसार गूढ़ा स्त्रियों की सन्तान आर्य बन सकती थी। बृहस्पति के मतानुसार यह संभव है कि मनु का अभिप्राय उपर्युक्त श्लोक में ऐसा रहा हो (साज आफ मनु—सिम्बेड बुक्स आफ दी ईस्ट एशिया, पृ० ४१६-७)।

२ मनु ३।४४ 'ततः क्षत्रियया ब्राह्मः प्रतीतो वैश्यकल्पया। यस्मिन्स्य यथा ब्राह्म शूद्रयोः कृष्टवेदने ॥' मि० विष्णु २।४।६-८, याज्ञ० १।६२, शंख और पौनर्निति पराशरमाधवीय पृ० ४१६ पर।

१\* याज्ञ० १।१५६-७ 'यदुच्यते द्विजातीनां गूढ़ाहारोपसंग्रहः। नैतन्मम मतं यस्मात्सत्तार्यं जायते स्वयम् ॥ तिलो वर्मानुपूर्व्येण तथैका यथाक्रमम्। ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्या स्वा शूद्रजननः ॥ शंखस्मृति ४।६८, बौध० १।८।२-४, वसिष्ठ १।२४-२५, पारसकर गृ० सू० (१।४।८-११), यम तथा नारद संस्कार प्रकाश पृ० ७४८ पर उद्धृत ॥

शाहण के शूद्रा से उत्पन्न पुत्र की वह पारश्व कहता है (१।६१-६२) और दाम धाम में दम्पति भी हिंसा रक्षता है। (२।१२।११)।

धर्मसूत्रों और स्मृतिर्यों में शूद्रों द्वारा अनुत्तम तथा अन्य वर्णों की स्त्रियों के साथ अभिसमन के विषय बताया गया है। कठोर दण्ड सह मूर्खित करने हैं कि वास्तविकता की में सम्बन्ध नितात अवाञ्छनीय थे। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (२।२।१-६) शूद्रा का अभिसमन करने वाले आर्षे को राष्ट्र से निर्वासित करने योग्य समझता है और यदि शूद्र आर्षा का अभिसमन करेगा उसे धर्महीन बताया गया है। बसिष्ठ ध० सू० (२।१।१) शूद्र के श्राद्धाधी की प्रायः संसर्ग होने पर शूद्र को जलाने का आदेश देता है और श्राद्धाधी की उसका सिर मुड़ाकर उस पर भी मल कर उसे राखे पर सवार कराते हुए राजमार्ग में घुमाने का।<sup>११</sup> गौतम धर्मसूत्र (१।२।२) शूद्र द्वारा श्राद्धाधी का अभिसमन करने पर शूद्र को निर्गोद्वार का तथा समाप्ति होने का दण्ड वतनाता है, मनु शूद्र द्वारा रक्षा से रहित श्राद्धाधी के समन में निर्गोद्वार की तथा रक्षापुत्र होने पर उसके प्राण तथा संबंध लेने के दण्ड की व्यवस्था करना है (५।३।३४)। वाजपेय्य (२।२।६४) किसी द्विज के वाग्दानी के पास जाने पर उस पर भग्न का दाम करवा कर उसे राज्य से निकलवाने का और यदि शूद्र आर्यागामी हो तो उसके अध का विधान करता है।

### सवर्ण विवाह की प्रशंसा

इन कठोर दण्डों का उद्देश्य श्राद्धाधी अन्यार्थों के साथ शूद्रों के विवाहों की प्रवृत्ति को रोकना प्रतीत होता है। भारत में जातिभेद का विचार बहने के साथ-साथ अपने वर्ण या जाति में विवाह की अष्टा समझा जाने लगा और अपनी जाति या वर्ण में विवाह करने पर दण्ड दिया जाने लगा। यद्यपि आश्वलायन और आपस्तम्ब गृह्यसूत्रों में इस नियम का उल्लेख नहीं है, किन्तु मानव गृह्यसूत्र (१।७५) तथा गौतम (४।१) इस विषय का वर्णन करते हैं।<sup>१२</sup> गौतम सवर्ण विवाह का वर्णन करता हुआ असवर्ण विवाह को हीन नहीं बताता, किन्तु आपस्तम्ब (२।१।३।१-३) वर्णान्तर विवाह में दोष समझता है। मनु (२।१२) और नारद (सूत्रपुत्र ४) अपने वर्ण की स्त्री के साथ विवाह

<sup>११</sup> बसिष्ठ ध० सू० २।१।१। आपस्तम्ब (२।२।७।१०) का दण्ड विधान कुछ कोमल है, वह ऐसी स्त्री को दत्त उपचासादि करने का विधान करता है (दारं चास्य कर्शयेत्)।

<sup>१२</sup> गौतम ४।१, 'गृहस्थः सवर्णी भार्यां विन्देत्तान्तरपूर्वां पथीयसीम्। हर्षतः—कात्या कुलेन च सवर्णीम्। किन्तु गौतम के ४।१४-१७ में अनुत्तम प्रतिभो विवाहों से उत्पन्न अशुद्ध निपादादि अनेक जातियों का वर्णन है, इससे स्पष्ट है कि उस समय सवर्ण विवाह के नियम का पालन पूरी तरह नहीं होता था।

को धेष्ट समझते हैं। इसे विवाह का पूर्वकल्प कहा जाता है, इसके साथ ही एक भूगरा हीन कोटि का विकल्प (अनुकल्प) यह है कि ब्राह्मण अविद्य, वैश्य तथा शूद्र वर्णों की, क्षत्रिय क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्णों की, वैश्य वैश्य और शूद्र वर्णों की और शूद्र वर्ण की स्त्री से विवाह कर सकता है (पार० पू० मू० १।४, बोधो० १।२।२, अमि० १।२५-२६ मनु ३।१३, विष्णु २४।१-४ साज० १।२६)। भूगरा विकल्प जात्यकारण को अभीष्ट नहीं था, इसमें शूद्रा के साथ विवाह की उन्होंने धार निन्दा की है। किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि नहीं इसकी सलाहों तक से विवाह हमारे गमान में प्रतीत रहे। अभिलेखों से तथा प्राचीन साहित्य में इनके अनेक उदाहरण मिलते हैं। इनके देखने से पूर्व यहाँ सवर्ण विवाह के उत्पादक कारणों पर विचार किया जायगा।

### सवर्ण विवाहों का मूल कारण

सवर्ण विवाह के नियम का मूल कारण जातिशुद्धि की चिन्ता थी।<sup>१३</sup> जब कोई जाति अपने को विशिष्ट समझती है, उस समय वह दूसरी जातियों में अपने वैवाहिक

- <sup>१३</sup> कैलिफोर्निया के रेड इंडियनों में यह नियम था कि यदि उस जाति की कोई स्त्री किसी श्वेतांग पुरुष से विवाह या व्यभिचार करती थी तो वह मार दी जाती थी। मध्य अमेरिका के स्पेनवासियों को, प्रोमलैण्ड के डेन लोगों को, मारीशस में और एण्टिल्स (Antilles) नामक द्वीप में फ्रेंचों को वहाँ के मूल निवासियों से वैवाहिक सम्बन्ध करने के लिए कानून द्वारा रोका गया, ताकि जातीय शुद्धता बनी रहे। रोमन बर्बर लोगों से शादी नहीं कर सकते थे (वे० शा० हि० मै० पू० ५३-५४)। जर्मनी में हिटलर ने जर्मन जातियों के रक्त की पवित्रता बनाये रखने के लिए हो मूहियों से जायों के विवाह-सम्बन्ध राजाशा द्वारा बन्द करा दिये थे। जर्मनी में इस विषय का कानून प्राचीन काल से ही बहुत कठोर रहा है। बर्गण्डो के नियम के अनुसार कोई स्वतन्त्र कन्या किसी नीच या दास श्रेणी के व्यक्ति के साथ शादी नहीं कर सकती थी, ऐसा विवाह होने पर दोनों को कत्ल कर दिया जाता था। गाय लोगों में स्वतन्त्र कन्या के गुलाम नीकर से शादी करने पर दोनों को सार्वजनिकरूप से कोड़े मार भरकर आग में जिया जला दिया जाता था (मूलकोडहरकृत सीगल प्रोटेक्शन आफ बुर्मन अमांग दी एन्गो-न्ट जर्मंस, पू० ५५-५६)। ताहिटी में यदि उच्च कुल की स्त्री किसी हीन स्थिति के व्यक्ति को अपना पति वरण करती थी तो उस व्यक्ति से उत्पन्न बच्चे मार दिये जाते थे।

सर हेनरी मेन ने लिखा है कि फ्रांस में पहले कुलीन (Noblesse) वर्ग के तथा नगरवासी व्यापारी बूर्जुआ वर्ग के व्यक्तियों के बीच में विवाह होता

सम्बन्ध तोड़ खेती है, क्योंकि उनके साथ सम्बन्ध रखने से उसे अपनी वंशशुद्धि सफ़्ट होने का भय होगा है। भारत में वह भावना किम जाति में पहले पैदा हुई, ब्राह्मणों में या क्षत्रियों में, यह बड़े विवाद का विषय है। संभवतः क्षत्रियों में इस मामले में पहलू थी। उनके पास राजनीतिक शक्ति, प्रभुता और सामंतीक मनोवृत्ति थी, उन्हें उन शक्ति का अभिमान था। ब्राह्मणों को उन्मुक्तता ब्राह्मविद्या में थी, उन्हें उस शक्ति का अभिमान था। तिल्लु जनक आदि क्षत्रिय ब्राह्मविद्या जानने वाले भी थे। बौद्ध साहित्य एवं महा-साग्न ने ज्ञान ज्ञाना है कि अपनी जाति को उच्च समझने का भाव पहले क्षत्रियों में आया था और ब्राह्मणों ने उनसे यह भाव ग्रहण किया।

अम्बष्ठ मुन (दीर्घविषय १।१) में बुद्ध ने पहले गौ शाक्यों की श्रेष्ठता बताने हुए यह कहा है कि जाति विगड़ने के डर में उन्होंने अपनी बहिनों के साथ संवास किया और बाद में अम्बष्ठ द्वारा क्षत्रियों की उच्चता निम्न रंग से स्वीकार करायी—  
“अम्बष्ठ, यदि एक क्षत्रिय कुमार ब्राह्मण कन्या के साथ संवास करे, उनके संवास से पुत्र उत्पन्न होंगे। क्या वह पुत्र ब्राह्मणों में आगम और पानी पायेगा।” “वापेगा हे गौतम।”  
“क्या ब्राह्मण बहुनाई में उसे खिलायेगा ?” “खिलायेगा हे गौतम।” “इनकी स्त्री पाने में स्कावट होगी।” “स्कावट नहीं होगी हे गौतम।” “क्या क्षत्रिय इनका अभिषेक करेंगे ?” “नहीं हे गौतम, क्योंकि यह पाला की ओर अयुक्त है।”

“तो अम्बष्ठ ! यदि ब्राह्मण कुमार क्षत्रिय कन्या के साथ संवास करे, उनके संवास से पुत्र उत्पन्न हो। क्या वह ब्राह्मणों में आगम पानी पायेगा ?” “पायेगा हे गौतम !”  
“क्या ब्राह्मण श्राद्ध . . . में उसे खिलायेगा।” “खिलायेगा हे गौतम”, “क्या उसे ब्राह्मण स्त्री पाने में स्कावट होगी।” “स्कावट नहीं होगी हे गौतम।” “क्या क्षत्रिय

विलक्षण रूप से असाधारण घटना थी (वे० सा० हि० मै०, पृ० ६१-६२)। उपर्युक्त उदाहरणों में अपनी जाति में या वर्ग में विवाह करने के निम्न कारण प्रतीत होते हैं—(१) वंश शुद्धि की चिन्ता, (२) जातीय अभिमान, (३) पार्ष्वय तथा उच्चता की भावना, (४) प्रायः जातियों अपने तत्सम दूसरों की देकर अपनी जाति को संख्या या संपत्ति में कमी नहीं करना चाहती। सूत्र ने जेतोफि-हेड की कन्याओं को अपने पिता की जाति में इसतिष्ठ विवाह करने को आता था कि उत्तराधिकार में प्राप्त होने वाली संपत्ति उसके पिता के ही परिवार में रहे। मोरक्को में रोफ के बवंरों में अपने गांव के समुदाय से बाहर शादी करने वाली स्त्रियों को दाय में अधिकार नहीं दिया जाता, दूसरी जातियों से अलग रहने, उनसे घृणा करने, उनके रीति-रिवाजों तथा भाषा के भेद से प्रायः अन्त-जातीय विवाहों को नापसन्द किया जाता है और उनका निषेध किया जाता है (वे० सा० हि० मै०, पृ० ६०)।

उसका अभियेक करेंगे।" "महो है गौतम।" "तो किस हेतु से।" "गौतम, वह पिता ने अनुपपन्न है।"

"इस प्रकार हे अम्बष्ठ, स्त्री की ओर से भी, पुरुष की ओर से भी क्षत्रिय श्रेष्ठ है।" गौतम के इस कथन का आशय यह है कि क्षत्रिय ब्राह्मणों को नहीं ग्रहण करने, जो क्षत्रिय ब्राह्मणों को ग्रहण करने हैं, उनके लिए क्षत्रिय जाति में कोई स्थान नहीं रहता। ब्राह्मण ऐसे क्षत्रिय लोगों को अपने में ले लेते हैं, जिन से हीत है। क्षत्रियों में स्त्री और पुरुष दोनों ही शुद्ध होने में क्षत्रिय श्रेष्ठ है। शुद्ध ने अनेक स्मृतियों पर ब्राह्मणों की इरादों, गिर्या की है कि वे सवर्ण विवाह के नियम का पालन न करें। हुए अन्य जणों की स्त्रियां ग्रहण करने हैं। मुक्त मुक्त (अ० नि० ५।४।६१) में ब्राह्मणों के ह्यास का वर्णन करते हुए, शुद्ध ने उनमें मुक्तों जैसे पाँच पुराण धर्म बताये हैं। उनमें पहला पुराण धर्म यह है—“भिक्षुओं, पहले ब्राह्मण ब्राह्मणों के पास जाते थे, अश्वामेधी के पास नहीं। भिक्षुओं, इस समय ब्राह्मण ब्राह्मणों के पास जाते हैं और अश्वामेधी के पास भी।” श्रोत मुक्त (अ० नि० ५।४।५।२) में ब्राह्मणों के वर्णन होने के प्रकार का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—“वह ब्राह्मणों के पास भी जाता है क्षत्रियाणी तथा वैश्याणी के पास भी, शूद्रा के पास भी, वैश्यी, रथधारिणी और पुस्तकती के पास भी।” ये उदाहरण उस समय ब्राह्मणों द्वारा निम्न जणों की स्त्रियां ग्रहण करने के विषय पर प्रकाश डालते हैं। अम्बष्ठ मुक्त के साथ यदि इन्हें मिलकर देखा जाए तो यह स्पष्ट है कि क्षत्रियों में सवर्ण विवाह का नियम पहले पला और वे अपने को इसीलिए अधिक श्रेष्ठ समझते थे। जैन पण्यों में कहा गया है कि जब भगवान् महावीर ने जन्म लेने का निश्चय किया तो वे यह सोचने लगे कि किस जाति में जन्म लूँ। क्षत्रिय जाति को श्रेष्ठ समझकर उन्होंने उसी जाति में जन्म ग्रहण किया।

यह कहा जा सकता है कि बौद्धों और जैनों के ब्राह्मण विरोधी होने से इन प्रमाणों की कोई महत्ता नहीं है, किन्तु ब्राह्मणों के गौरव का पालन करने वाले महाभारत में भी हमें क्षत्रियों की जातीय श्रेष्ठता व अहंकारपूर्ण सुवि की भावना दृष्टिगोचर होती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि महाभारत में ब्राह्मणों को कन्यादान करने के बहुत फल गिनाये गये हैं। हम इन्हें अन्यत्र विस्तार से देखेंगे। इन फलों और साहस-रत्नों के होते हुए भी बहुत बार क्षत्रिय राजा ब्राह्मण को अपनी कन्या देने से इनकार करते हैं या उसने लिए कोई कड़ी शर्त लगाते हैं। यह बात उल्लेखनीय है कि राजाओं को ब्राह्मणों की इच्छा पूरी न करने पर, उनके साथ का पूरा भय होता था, परन्तु फिर भी कुछ राजा वंश-शुद्धि के कारण अवश्य ऐसा करने का साहस करते थे। म० भा० (१३।२) में एक प्राचीन प्रतापी राजा दुर्योधन का वर्णन है। उसकी सुवर्चना नाम की एक कन्या अभूतपूर्व सुन्दरी थी। अग्नि ब्राह्मण का वंश धारण कर दुर्योधन के पास आया और उस कन्या की माचना करने लगा। राजा ने सोचा कि यह ब्राह्मण दरिद्र

और अंशवत् है, इसलिए उसने उसे कन्या देने में इन्कार किया (१३।२।२२)। म० भा० १३।४ में राजा गांधी की कथा है। कवचन का पुत्र ऋषीक भाग्य गांधीगज की कन्या गरुडवती के साथ पाणिघटन करना चाहता था। गांधीराज ने उसे दंडित समझकर दहने उसने साथ अपनी कन्या का विवाह कर्म से इन्कार किया। इस इन्कार के बाद भी जब ऋषीक ने हठ किया तो राजा ने एक ओर से प्यामकर्म तथा बापु वेद वाले १००० घोड़े दत्त पर ही अपनी कन्या देना स्वीकार किया। राजा की विस्वास था कि ऋषीक यह बातें गुरी न कर सकेगा। ऋषीक को वरुणदेव की कृपा से १००० ऐंसे घोड़े प्राप्त हुए। जब उसने ये घोड़े गांधी के आगे उपस्थित किये तो राजा यह देखकर हैरान रह गया और गांधी के भय उसने अपनी कन्या अशंकृत करके ऋषीक की ही (म० भा० १।१।४।३६)।

जानि शुद्धि के विचार की प्रचलता के साथ सवर्ण विवाह का निमग्न पुष्ट होने लगा। हम देख चुके हैं कि मनु (३।१३), पार० मू० (१।४), मीमांसन ध० सू० (१।२।२), वि० ध० सू० (२।४।१।४), मा० ध० सू० (१।२।४) ब्राह्मण की चार, वैश्व की तीन, वैश्य की दो और बौद्ध की एक स्त्री मानते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि प्रतिशोम विवाह उर्गे द्रष्ट नहीं था और यह उस समय प्रचलित न था। इसका अर्थ यह हुआ कि धर्ममूखों के काल (६०० ई० से ३०० ई० पू०) तक प्रतिशोम विवाह बन्द हो चुके थे, किन्तु अनुशोम विवाहों के बन्द न होने का कारण स्पष्ट है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी लड़की को उच्च या समान कुल में देना चाहता है, निम्न कुल में नहीं। लड़की अपनी इच्छा से भी उच्च कुल में जाना चाहेगी। भारत में ही नहीं, पश्चात्तय देशों में भी इसे बुरा माना जाता है।<sup>१४</sup> प्रतिशोम विवाह बन्द हो जाने के बाद विगुडिवादी (Paritan) धर्मशास्त्रों ने अनुशोम विवाहों का भी विरोध किया।

मनु ने नाकारी में समाज की परिस्थिति की दृष्टि में रखते हुए अनुशोम विवाहों की अनुमति दी है (३।१२), पर इच्छापूर्वक नहीं। वह कहता है— "द्विजों के पहले विवाह में सवर्णा स्त्री श्रेष्ठ होती है। किन्तु काम-व्यसना से प्रवृत्त होकर यदि कोई दूसरा विवाह करना चाहे तो निम्न वर्णों की स्त्रियाँ भी श्रेष्ठ होती हैं।" मनु के अति-दृष्टि दूसरे शास्त्रों में भी इस बात पर बल दिया गया है कि पहली स्त्री सवर्णा होनी चाहिये। मार्क० पुराण (१।१३)<sup>१५</sup> में कहा गया है कि पहली स्त्री सवर्णा ही

<sup>१४</sup> मगवानदास—पुरुषार्थ, पृ० ५२३।

<sup>१५</sup> मार्क० पुराण के अ० १।१३ में विष्टनाभाग की कथा है, वह एक सुन्दर वंश कन्या को देखकर उस पर मूग्ध हो गया, उसने उसके पिता से यह कन्या देने की प्रार्थना की। कन्या के पिता ने नाभागको इस कार्य के लिए अपने पिता से अनुज्ञा मांगने को कहा। जब राजा ने अधिव्यों से इस विषय में पूछा तो उत्तर मिला कि राज-

होनी चाहिए। यदि कोई पहली स्त्री निम्नवर्ण की जाती है तो वह अवश्य अधोगति को प्राप्त करता है।

स्मृतियों द्वारा अनुलोम विवाह बन्द करने के दो ढंग

अनुलोम विवाहों के प्रति अपनी अनिच्छा को शास्त्रकारों ने दो ढंगों में अभिव्यक्त किया है—(१) सवर्णों का असवर्णों पत्निर्मा को अपेक्षा अधिका अधिका और प्रतिष्ठा देकर, (२) अनुलोमज सन्तानों के साम्प्रतिक अधिवार कम करने। मनु (६।८५-८६) कहता है कि यदि द्विज की अनेक वर्ण की स्त्रियाँ हों तो वर्ण के अनुसार उनकी बड़ाई, पूजा और स्वाग दे, अपनी जाति की स्त्री को ही पनि मेघा मत, धर्म-सम्बन्धी काम और (रगोई आदि घर के) गित्यकर्म करने का अधिकार है, अन्य वर्ण की स्त्री को कभी नहीं। जो भोहवक अन्य वर्ण की भार्या में पुत्र पार्वा की सम्भवा है, वह पाण्डित को दुष्ट है।<sup>१४</sup> याज्ञ० (१।८८) मनु की व्यवस्था का अनुसरण करने हुए कहता है कि द्विज समर्ण स्त्री रहने पर अन्य वर्ण की भार्या से धर्म-सम्बन्धी कार्य

कुमार नामग की पहली शादी किसी क्षत्रिय कन्या से होनी चाहिए। उसके बाद ही वैश्य की कन्या उसकी स्त्री हो सकती है (श्लोक २०-२१)। नामग ने स्त्रियों के कथन की अवहेलना कर जब उस कन्या का जबर्दस्ती अपहरण करना चाहता तो पहले राजा की सेवा ने तथा बाद में राजा ने स्वयं उसके साथ संघाम किया। इस समय आकाश से एक परिराजक प्रकाट हुआ और उसने कहा (श्लोक ३०-३६) कि गुरुष अपने वर्ण की कन्या के साथ विवाह न करेंगे जिस हीन जाति को कन्या का पाणिग्रहण करता है, वह उसी के वर्ण का हो जाता है। वैश्य कन्या के साथ विवाह करने से अब यह वैश्य हो गया है, अब इसको क्षत्रिय के साथ पुत्र का अधिकार नहीं है।

इस कथा से दो महत्वपूर्ण बातें सूचित होती हैं—(१) पहला विवाह सवर्ण पत्नी से होता चाहिए, (२) हीनवर्ण की पत्नी के साथ विवाह करने पर उच्च वर्ण के गुरुष का वर्ण पत्नी के समान हो जाता है। वैश्य कन्या के साथ शादी करने पर द्विज नामग क्षत्रिय से वैश्य बन गया। किन्तु ध्यास स्मृति का मत इससे भिन्न है, इसमें कहा गया है कि सवर्ण स्त्री से विवाह के बाद अन्य वर्णों की स्त्रियों से शादी करने पर उनसे उत्पन्न पुत्र अपने वर्ण से हीन नहीं होता है।

<sup>१४</sup> मनु ६।८५-८७ मि० विष्णु १।६।१-४, याज्ञ० १।१८, कात्यायन—विवाह-रत्नाकर पु० ४२० में उद्धृत। विष्णु स्मृति सवर्ण स्त्री न होने की दशा में अव्यवहित विम्न वर्ण की पत्नी के साथ धर्म कर्म करने का विधान करता है, यद्यपि शूद्र स्त्री के साथ धर्म कार्य उचित नहीं माना गया। किन्तु संभवतः प्राचीन काल में

न कराये। कात्यायनस्मृति (८।६), व्यास स्म० (२।११-२२), विष्णु स्मृति (२६। १-२) ने सवर्णा का प्रस्ता एवं प्रतिष्ठित पद दिया है।

स्मृतियों में सवर्णा और असवर्णा पत्नियों में एक अन्य भेद भी प्रदर्शित किया गया। ब्राह्मण शुक्ली सवर्णा पत्नी से गुरु के समान पूज्य थी, किन्तु असवर्णाओं का सम्मान प्रत्यक्ष और अभिवादन से किया जाता था (मनु २।२१०)। विष्णु स्मृति में उसे अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है कि हीन वर्णोत्पत्ता गुरु पत्नियों को दूर से अभिवादन करना चाहिए, चरणस्पर्श आदि में नहीं (३।२५)। उसना स्मृति का भी मही मत है (३।२७)।

असवर्णा स्त्रियों के पुत्रों को साथ दाय में अन्याय

सवर्णा स्त्री प्रशस्त है, यह कहकर ही शास्त्रकार सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने असवर्णा स्त्रियों से उत्पन्न सन्तानों के दाय सम्बन्धी अधिकार कम करके इस श्रेष्ठता को मूर्खता प्रदान किया।<sup>१०</sup> असवर्णा स्त्रियों में जो जिसने निम्ने वर्ग की थी, उसे सम्पत्ति में उतना कम हिस्सा दिया गया। गौतम (२।६।३७) ब्राह्मण के शूद्र से उत्पन्न पुत्र को एकवर्णा बेड़ा होने पर भी वृत्तिमान देने की व्यवस्था करता है।<sup>११</sup> बसिष्ठ (१।७।४८-५०) उन्मत्त उल्लेख ही नहीं करता। मनु कुछ उदार होकर उसे पिता द्वारा दिये धन का अधिकारी मानता है (२।१५५ मि० म० भा० ५।१३।४७।५६-२०)। यह स्मरण रखना चाहिए कि बृहस्पति (२।५।३२) शूद्र के पुत्र को हिस्सा नहीं देता, न केवल शूद्र के साथ ही उपेक्षा का यह व्यवहार है, अपितु अन्य असवर्णा स्त्रियों के

ऐसी अव्यवस्था नहीं थी। मनु ने ६।२३-२४ में यह कहा है कि स्त्री जैसे गुण वाले पुरुष के साथ मिलती है, वैसे गुणवाली ही जाती है, निष्कृष्ट योनि में उत्पन्न होने वाली अशमाला और शारङ्गो ने बसिष्ठ और मन्वपाल के साथ परिणीत होने पर पूजा एवं सम्मान प्राप्त किया।

<sup>१०</sup> मि० म० भा० १।३।४७।२७-४५, युधिष्ठिर को यह संका है कि द्विज कथ से तुल्य होने पर भी ब्राह्मणी क्यों श्रेष्ठ है तथा क्षत्रिया और वैश्या क्यों हीन हैं। उनके पुत्रों में विषम विभाग क्यों करते हैं? भोष्म कहते हैं कि ब्राह्मणी श्रेष्ठ (गरीयसी) भार्या है, अतः उसे ये विशेष अधिकार प्राप्त हैं।

<sup>११</sup> गौ० ३।६।३७, मनु ६।१५५। किन्तु इसके साथ ही मनु ने यह भी कहा है— अन्य वर्ण की पत्नियों की सन्तानें हों या न हों शूद्र के पुत्र को दसवें हिस्से से अधिक नहीं मिलना चाहिए। मि० मनु ६।१५३—

अतुरोऽनान्दरेद्विप्रस्त्रोर्नान् अत्रियायुतः ।

वैश्यायुतो हरेद्द्वर्षशमसं शूद्रायुतो हरेत् ॥



पुत्रों के साथ भी यही बर्ताव किया गया है। पिता की सम्पत्ति में उत्तम की, वैय, सचारी या ओ कुछ उत्तम वस्तु होंगे वह ब्राह्मण के पुत्र को ही मिलेंगी। म० भा० (१३।४७।११), मनु (६।१५०) के अनुसार शेष सम्पत्ति को दस भागों में बांट दिया जाता था। इनमें से ४ हिस्से ब्राह्मणों के पुत्र को, ३ हिस्से क्षत्रिय की संतान को, २ भाग वैश्य के तथा एक भाग शूद्र के लड़के को मिलता था (मनु ६।१५३, विष्णु १८।१-३७ वी० ध० सू० २।२।३।१०।, मातृ० २।१२५ म० भा० १३।४७।१२-१८)। मनु और बोध्या० क्षत्रिय और वैश्य की अनुलाम्य सत्तानों के सम्पत्ति के बंटवारे को चर्चा नहीं करते, किन्तु मातृ० (२।१२५) उपर्युक्त क्रम से क्षत्रिय की मय्या स्त्री में उत्पन्न पुत्र को ६, वैश्या तथा शूद्रा के पुत्रों को क्रमशः ३, ३ हिस्सा देता है (मि० बृहस्पति० २५।२७, विष्णु १८।१ अनु)।<sup>१६</sup> अनुलाम्य सत्तानों के साथ यह अत्यन्त अग्रगण्यपूर्ण बर्ताव है। मुर्धाण्डर

१३ म० भा० १३।४७।४७-४४ में क्षत्रिय की सम्पत्ति के आठ हिस्सों में ४ क्षत्रिया पुत्र को, ३ वैश्या पुत्र को तथा एक हिस्सा शूद्रा के पुत्र को दिया गया है। वैश्य का बरखा से उत्पन्न पुत्र ४ भाग तथा शूद्रा से उत्पन्न एक भाग का अधिकारी है। निम्न वर्ग वाली कन्या से उत्पन्न पुत्र को नीचा वर्ग देने के उदाहरण मध्यकालीन यूरोप के जर्मनों तथा वर्तमान समय में इंग्लैण्ड आदि देशों के राज परिवारों में पाये जाते हैं। पुराने जर्मन सिविल कानून के अनुसार उच्च कुलों वर्ग से सम्बन्ध रखने वाले पुरुष का निम्न वर्ग की स्त्री के साथ विवाह बहुत बुरा समझा जाता था, ऐसे स्त्रियों को पत्नों का वर्ग नहीं मिलता था, पति की मृत्यु पर ऐसी स्त्री या उसकी सन्तान सम्पत्ति की उत्तराधिकारी नहीं बन सकती थी (वै० शा० हि० मै०, पृ० ६१)। ऐसे विवाहों को मार्गनेटिक (Marganatic) कहा जाता है, इसका शाब्दार्थ है प्रातः कालीन भेंट। क्योंकि इस विवाह में पति की सम्पत्ति पर निम्न वर्ग की स्त्री का कोई स्वत्व नहीं होता था, अतः इसकी क्षति-पूर्ति के लिए पति सुहागरात के बाद प्रातः काल पत्नी को बहुमूल्य भेंट देता था। इसका दूसरा नाम वामपाणि (Left handed) भी है क्योंकि इसमें बायां हाथ ही दिया जाता है (वैब्सटर डिक्शनरी, पृ० १५६४)। वर्तमान काल में इसका एक प्रसिद्ध उदाहरण इंग्लैण्ड के सम्राट् एडवर्ड अष्टम का सिम्पसन के साथ विवाह था। सिम्पसन राजकुल की स्त्री नहीं थी, इंग्लैण्ड के १७७२ के रायल मैरिज एक्ट के अनुसार एडवर्ड उसके साथ केवल वामपाणीय विवाह ही कर सकता था, उस वंश में उसकी सन्तान इंग्लैण्ड के राज सिंहासन पर नहीं बैठ सकती थी। एडवर्ड ने अपनी पत्नी तथा सन्तान को हीन स्थिति प्रदान करने वाला ऐसा विवाह करने की अपेक्षा राजगद्दी छोड़ना अधिक अच्छा समझा।

को इस व्यवस्था से बहुत ही आश्चर्य होता है। वह भीष्म से इस उपेक्षापूर्ण व्यवहार का कारण पूछता है तो उत्तर देते हुए भीष्म ने इसका हेतु ब्राह्मण आदि वर्ण की श्रेष्ठता बताया है (म० भा० १३।४७।२७-४५)।

### असवर्ण विवाहों के ऐतिहासिक उदाहरण

धर्मशास्त्रों द्वारा निम्नित उद्धरणों जाने के बावजूद असवर्ण विवाह हिन्दुओं में चलते रहे हैं। शुंगयुग, गुप्तयुग और मध्ययुगों में इस प्रथा का काफी प्रचार रहा। शुंगवंशी राजा ब्राह्मण थे। कालिदास ने मातङ्गिकाग्निमित्र नामक नाटक में ब्राह्मण पुष्पमित्र के पुत्र अग्निमित्र (पूतरी शती ई० पूर्व) का विवाह विदर्भ के क्षत्रिय राजा मन्त्रसेन की कन्या मातङ्गिका से करवाया है। मातङ्गिकाग्निमित्र के प्रथम अंक में रानी के बर्णान्तर भ्राता का वर्णन है, इसका अर्थ है कि वह रानी जैसे वर्ण की थी। वाकाटक राजा ब्राह्मण थे, किन्तु चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्त वाकाटक वंशी क्षत्रसेन द्वितीय (३३५ ई०) की मुख्य रानी बनी। यशोधर्म के मन्वसीर वाले छठी शती के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि वेद्यों के वंश में उत्पन्न और स्मृति मार्ग से विचलित न होने वाले रविवीरिणी नामक ब्राह्मण ने एक वैश्या भानुगुप्ता से विवाह किया।<sup>२२</sup> वाकाटकवंशी देवसेन राजा का संही सामन्त ब्राह्मण था, श्रुति, स्मृति में प्रतिपादित विधि के अनुसार आश्रय करने वाले सामं ने ब्राह्मणी और क्षत्रिया स्त्री का पाणिग्रहण किया।<sup>२३</sup> कदम्ब वंश का संस्थापक मयूर समी (राज्यकाल ३४०-६० ई०) ब्राह्मण था, किन्तु उसके वंशज वर्मा अर्थात् क्षत्रिय थे और इसी वंश के ककुत्स्थ वर्मा ने अपनी कन्याएं गुप्त राजाओं की कमाही।<sup>२४</sup> प्रतिहारवंश के संस्थापक हरिश्चन्द्र (५५० ई०) ने क्षत्रिय एवं ब्राह्मण वर्ण की दो स्त्रियों से शादी की थी।<sup>२५</sup> सातवीं शती में यद्यपि युवानन्व्याक ने लिखा है कि लोग अपनी जाति के अन्दर विवाह करते हैं,<sup>२६</sup> किन्तु वाग ने हर्षचरित के प्रथम उच्छ्वास के अन्त में अपने पारशव अर्थात् शूद्रा स्त्री के गर्भ से उत्पन्न दो सौतेले भाइयों-चन्द्रसेन और भातसेन का उल्लेख किया है। राज्यधी वैष्णवर्ण की थी। किन्तु उसका

२२ कलोट-कार्पस-इतिहासिकग्रन्थ इंडिकेरम, खण्ड ३, पृ० १५२-६४

२३ आर्किओलाजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न इंडिया, खण्ड ४, पृ० १४०। सोमस्ततः सोम इवापरोऽभूत् ब्राह्मणः क्षत्रियवंशजासु। श्रुतिस्मृतिभ्यां विहितार्थकारी इत्यमुं भार्यासु मनो दधार ॥

२४ एपिग्राफिया इंडिका, खण्ड ८, पृ० २४

२५ ए० ई०, ख० ८, पृ० ८७। तेन श्रीहरिवन्द्रेण परिणीता द्विजसमजा। द्वितीया क्षत्रिया भद्रा महाकुलमुपान्विता ॥

२६ वाट्स-अल युवानन्व्याक, ख० १, पृ० १६२।

विवाह भीखरि वंश के क्षत्रिय राजा यहवर्मा से हुआ। बलभी के क्षत्रिय राजा ध्रुवभट्ट ने वैश्यजातीय हर्ष की लड़की के साथ विवाह किया। ६५० ई० के टिपरा के एक दासपत्र में लोकनाथ नामक सामन्त को भारद्वाजगोत्री ब्राह्मण तथा उसके परमाना केजव को पारजाव लिखा है।<sup>१२</sup> दसवीं शती के प्रारम्भ में संस्कृत के कवि यायावर ब्राह्मण राज-भीखर ने चौहान कुल की गुणवती कन्या अवन्तिसुन्दरी से परिणय किया और उसकी प्रेरणा से कर्पूरभञ्जरी की रचना की (का० गी० पृ० १११)। ६७७ ई० का आठगुन का लेख यह बताता है कि बृहिल वंश के संस्थापक गृहदत्त ब्राह्मण के वंशज भर्गुगुप्त ने राट्गुप्त वंश की राजकन्या से शादी की। दसवीं शती के प्रसिद्ध टीकाकार मेधातिथि ने मन्वर्ण स्त्री त मिलने की दशा में असवर्णों से विवाह का उल्लेख किया है (मनु० ३।१४)। काबुल और सिन्ध में ब्राह्मणों के राज्य थे और वहाँ के क्षत्रिय राजपूतों को ब्राह्मण कन्याओं से विवाह का अधिकार था।<sup>१३</sup> कयामरिस्तायन (३५।१७१) में कहा गया है कि जब ब्राह्मण अशोकदत्त ने राजकुमारी से शादी की तो उन दोनों की भाँसा, विद्या और विनय की तरह हुई। कई बार पिता अपनी कन्या से पूछता था कि तू चारों वर्णों में से किस वर्ण के व्यक्ति को अपने पति के रूप में चाहती है।

१३ वीं शती तक अनुलोम विवाहों का जिलासेधों में उल्लेख मिलता है। विक्रम नगर के प्रसिद्ध राजा मुक्त प्रथम (१२६८-१२८८) की कन्या विक्रमादेवी का परिणय आर्य प्रान्त के शासक ब्रह्म नामक ब्राह्मण से हुआ।<sup>१४</sup> प्रयाग के अरब यात्रियों ने भी अनुलोम प्रथा को शनैः-शनैः बन्द होने का संकेत किया है। ६०० ई० के लगभग खुरदाद नामक अरब यात्री लिखता है कि कतरिय (क्षत्रिय) ब्राह्मणों का अपनी लड़की देते थे, पर उनकी लड़कियाँ नहीं ले सकते थे। इससे ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों में अनुलोम विवाह प्रचलित था, किन्तु इससे दो शायी बाद अलबेस्ली लिखता है—“हिन्दुओं को पहले अपने से नीच वर्ण की स्त्रियों से शादी करने का अधिकार था। परन्तु हमारे समय में ब्राह्मण कभी अपने से नीच वर्ण की स्त्री से शादी नहीं करते थे।” इससे स्पष्ट है कि खुरदाद के बाद २०० वर्षों में ब्राह्मणों में अनुलोम विवाह की परिपाटी उठ रही थी, फिर भी इस समय में हमें ऐसे विवाहों के कुछ उदाहरण मिलते हैं। अलबेस्ली के समय के ही एक कश्मीरी राजा संध्यामसिंह (१००३-१०२८) ने अपनी कन्या का विवाह एक ब्राह्मण मुक्क से किया। किन्तु १२ वीं शती के सुप्रसिद्ध कश्मीरी ऐतिहासिक कल्हण को यह विवाह पसंद नहीं था, उसने यह लिखा है कि इस विषय सम्बन्ध से उस राजा ने अपने यश की क्षति की (राजतरंगिणी ७।१०)।

१२ ए० ई०, ख० १५, पृ० ३०७।

१३ संघ—हिन्दू भारत का उत्कर्ष, पृ० ३०६।

१४ ए० ई० ख० १५, पृ० १२।

मध्यकाल के प्रारम्भिक टीकाकारों से ज्ञात होता है कि उस समय तीन द्विज वर्णों— ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों में परस्पर विवाह होते थे। नवीं शती के पूर्वार्ध में याज्ञ० स्मृति के पहले टीकाकार विष्णुकन के कथनानुसार ब्राह्मण की सारी अजिया से हो सकती थी (या० ३।३८३)। ६०० ई० के लगभग लिखे गये मेघातिथि के मनुस्मृति के भाष्य (३।१४) से प्रतीत होता है बूढ़ा स्त्री के साथ असवर्ण विवाह नहीं होता था, किन्तु ब्राह्मणों के क्षत्रिय और वैश्य कन्याओं के साथ असवर्ण विवाह हो जाते थे।

किन्तु १३ वीं शती से निबन्धकारों ने असवर्ण विवाह प्रथा की कलिवर्ज्य कहकर निन्दा की, स्मृतिचन्द्रिका (१२००-१२२५) ने इसमें गहल की। हेमाद्रि (१२२०-७७) ने भी इस विवाहों का विरोध किया (यतु० चिन्ता०, खण्ड ३, भाग २, पृ० ६६७)। बाद में पराशर माधवीय (१३००-१३८०), रघुनन्दन (१५२०-१५७५), कामलाकर (१६१०-४०) ने भी इसे कलिवर्ज्य समझा। इन सब निबन्धकारों का आधार बृहदारण्यक और आदित्यपुराण के बचन है।

### असवर्ण विवाहों के अप्रचलित होने का कारण

इस प्रथा के पुष्ट एवं दृढ़ होने का कारण यह था कि गायधुन में हमारी सभी सामाजिक संस्थाएँ पथराकर कठोर हो रही थी। हमारे धर्म में एक बड़ा परिवर्तन आ रहा था। इसी समय हिन्दू धर्म का वर्तमान काल का रूप मिला। शास्त्रकारों ने ज्ञान-गान और व्रतों के कठोर नियम बनाये। वर्ण व्यवस्था के अन्त की अधिक कठोर बनाया गया। श्लेष्मों के संसर्ग से बचने और उनसे जबरदस्ती बचावगत हो जाने पर उसके लिए कठोर श्रावणियों का विधान किया गया। विदेशी मुसलमानों के आक्रमण के कारण से प्रश्न उस समय की अव्यक्त समस्या थे। अपनी रक्षा के लिए हिन्दुओं ने अपने को संकुचित करना और अपने चारों ओर जातिधर्म के प्राकार को ऊँचा करना शुरू किया। इस मूढ़ता के युग में वैवाहिक बन्धनों का कठोर किया जाना स्वाभाविक ही था।<sup>२८</sup> इसी युग में राजपूत राज्यों का उदय हुआ और उन्होंने अपनी जातीय खुशियों को कायम रखने के लिए विवाह सम्बन्धी नियमों को बड़ा कठोर बनाया। उन्होंने केवल १६ कुल ही नहीं गिने, अपितु प्रत्येक कुल के कुटुम्ब (Clans) गिन गये। उनकी तात्तिकाएँ बनायीं और इनमें अन्तर्जातीय विवाह होना बन्द हुआ।<sup>२९</sup>

वर्तमान समय में विवाह न केवल अपने वर्ण या जाति में, किन्तु अपनी उप-

२८ इसके विस्तृत वर्णन के लिए देखिये चिन्तानभि विनयक श्रेष्ठ का हिन्दू भारत का अन्त, पृ० ६०२-६८५।

२९ टाड—एनएस, पृ० ६६१

जाति में होता है। इसका मुख्य कारण वर्णों के अवान्तर भेदों का विकास है, इससे उपरिविवाह (Hypergamy) को दृष्टि प्रसा प्रचलित हुई है।

वर्णों के अवान्तर भेदों का विकास

मध्ययुग में तथा वर्तमान युग में हिन्दू समाज के चार वर्णों की उपजातियों की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है और इसका वर्तमान विवाह प्रणति पर बड़ा प्रभाव पड़ा है, अतः यहाँ इनके विकास का संक्षिप्त परिचय उपर्युक्त होगा।

प्राचीन धर्मग्रन्थ चार वर्णों के अतिरिक्त बहुत घाँड़ी मंकर जातियों का उल्लेख करते हैं। मातृसम धर्मग्रन्थ में केवल चण्डाल (२।२।६), पौण्ड्रक (२।२।६), और शैव (२।२।६) नामक उपजातियों का उल्लेख है। गौतम ने पाँच अनुलोम तथा छः प्रतिलोम जातियों का वर्णन किया है। वसिष्ठ ने गौतम की अपेक्षा कम जातियाँ गिनायी हैं। मनुस्मृति (अध्याय १०) और विष्णु धर्मसूत्र (अध्याय १६) में मंकर वर्णों और जातियों का बहुत विराद वर्णन मिलता है। मनु के मतानुसार छः अनुलोम, छः प्रतिलोम, २० दुहरे रूप से संकर जातियाँ और २३ विभिन्न व्यवसाय करने वाली अर्धानु चार वर्णों के अतिरिक्त ५५ जातियाँ हैं। याज्ञ० स्मृति केवल १३ जातियों का वर्णन करती है। उनका ने जातीस जातियों के पेटे गिनाये हैं। सब स्मृतियों में कुल मिलाकर सौ से अधिक जातियों का उल्लेख नहीं है।<sup>३०</sup> मध्ययुग में लिखे गये जातिविशेष, शूद्रकसत्वाकर जाति ग्रन्थों ने इन जातियों की संख्या में वृद्धि की। विलसन ने मध्य कालीन संस्कृत ग्रन्थों में अंशित १३४ जातियों का परिचय दिया है।<sup>३१</sup> वर्तमान समय में भारतीय जनगणना की रिपोर्ट के आधार पर इनकी संख्या चार हजार के लगभग बतायी जाती है।<sup>३२</sup>

३० काणे—हिस्टरी आफ धर्मशास्त्र, ख० २, भाग १, पृ० ५७।

३१ विलसन—इंडियन कास्ट्स, ख० २, पृ० ६५-७०।

३२ १९०१ की जनगणना रिपोर्ट में प्रमुख जातियों की संख्या २३७८ दी गयी है (रिजली-गोपल आफ इंडिया)। रोज ने (इसा० मिटा०, ख० ४, पृ० ६७६) इनकी संख्या मोटे तौर पर ३ से ४ हजार तक बतायी है। हिन्दू समाज की आधुनिक जातियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए निम्न ग्रन्थ विशेष रूप से उपयोगी हैं—१९०१, १९११, १९२१ तथा १९३१ की भारत की तथा विभिन्न प्रांतों की जनगणना रिपोर्टें। रिजली-गोपल आफ इंडिया (१९१५), जे० एन० मट्ट-चार्य—हिन्दू कास्ट्स एण्ड सेक्ट्स (१८९६) फिट—कर्मपिंड्यम आफ कस्टमस् फाउण्ड इन इंडिया (१८८५), मैस्फील्ड—ए थ्रीक रिज्यू आफ वी कास्ट सिस्टम आफ वी नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध (१८८५), ओमेली—इंडियन कास्ट कस्टम्ज (१९३), इंडियन सोशल हैरिटेज (१९३४), सर एर्नेलस्टेन बेनेस—

चारणों से चार हजार जातियों के विकास का प्रधान कारण वैदिक युग से ही उन्नतता और सुदृढ़ता का विकास<sup>२३</sup> तथा इस कारण अपने की जन्म जातियों से मुख्य रखने की भावना है। प्रवेश, मूर्ति और धर्म के भेद से, भयी नस्लों के आगमन से इनकी संख्या बढ़ती जाती गयी।<sup>२४</sup> हिन्दू समाज हम समय चार हजार विभिन्न जातियों में किस प्रकार बढ़ता हुआ है, यह निम्न उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा।

एथनोग्राफी (१९१२), इसके अन्त में भारत के जाति भेद पर लिखे गये ग्रन्थों की बड़ी विस्तृत सूची है। एथ० ए० ऑरिंग—हिन्दू द्राविड्स एण्ड कास्टस्, १ खण्ड (१८७२-१८८१), जाल किसुन—इंडियन कास्टस् २ ख० (१८७७), स्टील्स एण्ड कास्ट्स आफ हिन्दू कास्टस् (१८६८)। विभिन्न प्रान्तों की जातियों के विस्तृत विवरण के लिए देखिए—इन्डो-इयान्-पंजाब कास्टस् (१९१६), इन्डो-कुर्ग—द्राविड्स एण्ड कास्टस् आफ मार्च वेस्टर्न प्राविन्स एण्ड अवध, ४ ख० (१८९६), आर०-ई० ए० एन्वोचन—द्राविड्स एंड कास्टस् आफ बोम्बे, ३ ख० (१९२०), रिजली—द्राविड्स एण्ड कास्टस् आफ बंगाल (१८९१), आर० बी० रसेल—द्राविड्स एण्ड कास्टस् आफ सेण्डुल प्रायमिजेस, ४ खण्ड (१९१४) वर्सटन एण्ड रंगाचारी—कास्टस् एण्ड द्राविड्स आफ साउथ ईशिया, ७ खण्ड (१९०९) एस० बी० मंगुवध्या और राय ब्रह्मपुर एल० के० अनन्त कृष्ण अय्यर—साईसीर द्राविड्स एण्ड कास्टस्, ख० १-४ (१९२०-२४), एल० ए० कृष्ण अय्यर—बी द्राविकोर द्राविड्स एण्ड कास्टस्, ख० १-३ (१९३७-४१), कृष्ण अय्यर—बी कुर्ग द्राविड्स कास्टस् (१९४८)। हिन्दी में विभिन्न जातियों के परिचय के लिए पञ्चालप्रसाद मिश्र का जातिभास्कर (बैकलेखर प्रेस) उपयोगी है।

- २३ उदाहरणार्थ, रात० आ० (३१२।३।४) में कुरु-पंचाल के ब्राह्मणों की याणी सर्वोत्तम बतायी गयी है। कौषीतकि आ० (७।६) में कहा गया कि उत्तर में उत्तम वाणी बोली जाती है, थोड़ा वाणी शीछने की इच्छा रखने वाले उत्तर की दिशा में जाते हैं और उत्तर से आने वालों की बोली सुनने की इच्छा की जाती है। भस्म्य पुराण (१६।१६) में म्लेच्छ देशवासियों, त्रिशंकु, बर्बर, औड्र (उड़ीसा), आन्ध्र, टक्क, द्रविड़ और कौकण के ब्राह्मणों की व्याख्या में बुझाने योग्य मूर्ती समझा गया। आजकल कौकण के चितपावन ब्राह्मण सारस्वत ब्राह्मणों की भोजन की दृष्टि से अपवित्र समझते हैं, भारत के अन्य भागों के ब्राह्मणों से वे अपने आप को इसलिए ऊँचा समझते हैं कि अन्य ब्राह्मण संस्कृत का शब्द उच्चारण नहीं कर सकते (ईसा० क्रि० ४।६८०)।

- २४ प्रवेशभेद से उपजातियों के विकास का एक सुन्दर उदाहरण ब्राह्मणों के निम्न दस वर्ग हैं—सरस्वती नदी के निकटवर्ती प्रदेश में रहने वाले ब्राह्मण सारस्वत, कन्नौज वाली

## वर्तमान जातियों के भेद

ब्राह्मण आजकल न केवल देश भेद से पंच गौड़ और पंच द्रविड़ नाम वाले दस

कान्यकुब्ज, मिथिलावासी मैथिल ब्राह्मण कहलाते हैं। इसी प्रकार आन्ध्र, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात, और द्रविड़ देश के अलग ब्राह्मण हैं। एक भूति, व्यवसाय या पेशा करने वालों का पृथक् जाति के रूप में परिणत होना अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। वैदिक युग में विभिन्न पेशों वाली जातियों के लिए दे० काणे—हि० ध०, ख० २, भाग १, पृ० ४६-५०। बौद्ध साहित्य में भी इसका बहुत वर्णन है। वर्तमान काल में इसके प्रसिद्ध उदाहरण व्यापार का कार्य करने वाले महाजन, अण्वाल, ओसवाल, छात्री, अरोड़ा, सुवर्णवर्णक, कोमली, बेंद्री आदि अनेक वर्ग हैं। इस प्रकार कृषकों, मालियों (अराई, काछी, सेंगी), पशुपालकों (अहीर, ग्वाला, छारो, घोसी), कारीगरों (सुनार, कम्पसन, राज, लुहार, कसेरा, ठठेरा), बुनकरों (जुलाहा, कौरो, ताली), तेलियों, नाइयों, धोबियों, मछली पकड़ने वालों, भंगियों, लठों, बाजीगरों, चोरों और शिकारियों की जातियां हैं। इनकी विस्तृत सूची सर एचलस्टेन बेंनेस की एथनोग्राफी पृ० १४६-१५१ पर मिलेगी। सम्प्रदाय भेद की दृष्टि से जातियों के बनने का उदाहरण गोसाईं, बैरागी, जोगी, कर्नाटक के बीरांव आदि हैं। नस्लों के भेद से पृथक् जाति के उदाहरण हमारे देश के पर्वतों और जंगलों में बसी हुई कोल, भोल, हो, मुण्डा, वंगा, ओरांव, गोंड, गारो, खासी, मीरो, डकला आदि जातियां हैं। इनकी सूची उपर्युक्त ग्रन्थ में पृ० १५१-२ है। इसके अतिरिक्त नई जातियां निम्न कारणों से भी बनती रही हैं (इंसा० रिली० ई०, ख० ३, पृ० २३२)—(१) संकरजनन—विभिन्न जातियों के मिश्रण से नई जातियां बन जाती हैं। (२) पेशे या स्थान के परिवर्तन से नई जाति बन जाती है। कुछ ब्राह्मणों ने जब अपना घनादि कराने वक्षिणा लेने का कार्य छोड़कर कृषि को अपनाया तो वे बिहार में बामन तथा उत्तर प्रदेश तथा (स्थायी) कहलाये। (३) विदेशी जातियां हिन्दू समाज में सम्मिलित होकर नये वर्ग बनाती रही हैं। वर्तमान युग में इसका एक अच्छा उदाहरण एक आदिवासी जाति बीच है। अहीर जाति का प्रादुर्भाव आभीर नामक विदेशों से आने वाली एक शक जाति से माना जाता है। (४) कुछ जातियां नस्लों के भेद या विभिन्नता से बनी हैं, जैसे पंजाब के जाट, गुजर, मेव, बंगाल के राजवंशी, कंबस, चण्डाल, बागड़ी, उत्तर प्रदेश के बुसाध, पासी, मद्रास के नायर, माल, परंयन, केन्नाल (इंसा० रिली० ई० ख० ३, पृ० २३१)।

भागों में बँटे हुए हैं।<sup>३४</sup> अतः इनमें प्रत्येक भाग की बीसियों अवांतर उपजातियाँ पा उपजातियाँ हैं। पंच गौड़ों में पहला भेद सारस्वत है, विलसन ने सारस्वतों की ४६६ उपजातियाँ गिनायी हैं।<sup>३५</sup> गौड़ों में आब, लुगव, धरम, सिंह, गौड़ादि ४२ शाखाएँ हैं।<sup>३६</sup> कान्यकुब्ज मुख्य रूप से पाँच शाखाओं में विभक्त है—कनौजिया, सरनरिया, जुप्रोतिया, ममाज्व, बंसाली, कनौजिया। इनमें प्रत्येक शाखा अनेक कुलों में विभक्त है।<sup>३७</sup> मैथिल ब्राह्मण सारग गौड़ों, १७७ डीह अथवा मूर्तों और पाँच कुलों (श्याम, योग, पंजीबड, नागर और जैम) में बँटे हुए हैं। बिहार की दृष्टि में से कुल यथावत कम से परवर्ती कुलों से श्रेष्ठ समझे जाते हैं।<sup>३८</sup> ईष द्रविड़ों से से गुर्जर ब्राह्मणों में ८४ श्रेणियाँ हैं।<sup>३९</sup> कर्णाट ब्राह्मणों की आठ जातियाँ और ११ गौड़ हैं।<sup>४०</sup> महाराष्ट्र ब्राह्मण पहले देवस्थ, चितपावन, करहाड़ आदि शाखाओं में विभक्त हैं, फिर इनमें प्रत्येक शाखा के अन्वेषी गुजुर्षवी आदि अनेक अवांतर भेद हैं और फिर इनके अनेक उपभेद हैं। श्रीमती कर्वे के पृ० १३४ पर दिने चिह्न से महाराष्ट्र के ब्राह्मणों की अवांतर शाखाओं का कुछ परिचय मिल सकता है।<sup>४१</sup>

ब्राह्मणों के समान अन्य जातियाँ भी इसी प्रकार अवांतर उपजातियों में विभक्त हैं। उदाहरणार्थ, पंजाब के खत्री तीत भुस्य वर्गों में विभक्त हैं बारी, खुजाही और सरिन। पहले वर्ग में बाराह, दूसरे में बाचन और तीसरे में १२३ उपजातियाँ हैं।<sup>४२</sup>

राजस्थान के राजपूतों में न केवल ३६ प्रमुख कुल हैं, किन्तु इनमें से प्रत्येक के

३४ एक सुप्रसिद्ध श्लोक के अनुसार विन्ध्याक्षल से उत्तर में बसने वाले पाँच गौड़ निम्न हैं—सारस्वताः कान्यकुब्जा गौडा मैथिलीरुक्ताः। पंचगौडा भवन्त्येते विन्ध्या-कुत्तरवासिनः ॥ विन्ध्याक्षल से दक्षिण में रहने वाले पंच द्रविड़ इस प्रकार हैं—द्राविडाश्चाध्रकण्टिमहाराष्ट्राश्च गुर्जरा। पंचैते द्राविडा प्रोक्ता विन्ध्या-हृक्षिपवासिनः ॥ ये श्लोक स्कन्द पुराण के सह्याद्रि खण्ड के उत्तरार्द्ध (१०। २-३) में कुछ अन्तर के साथ पाये जाते हैं। विलसन के इंडियन कास्टस् के खण्ड २, पृ० १७ में ये नाम कुछ पाठभेद के साथ दिये गये हैं।

३५ विलसन—इंडियन कास्टस्, खं० २, पृ० १२६, अन्वई प्रेजिडेन्सी गजेटियर के खण्ड ६, पृ० १८ में पंजाब के सारस्वतों के ४७० भेद बताये गये हैं।

३६ हिन्दो विश्वकोश, खं० ६, पृ० ४३७।

३७ वही, खण्ड ३, पृ० ७३०।

३८ हिन्दो विश्वकोश, खं० ६, पृ० ४३२, विलसन ने गुर्जर ब्राह्मणों की १६० उपजातियाँ गिनी हैं (इंडियन कास्टस् खं० २, पृ० ६२)

३९ हिन्दो विश्वकोश, खं० ४, पृ० १३६।

४० कर्वे—किनशिप आर्गेनिजेशन इन इंडिया, पृ० ८

४१ पंजाब की १६०१ की जनगणना रिपोर्ट, पृ० ३०३-४।





अनेक उपभेद है। कर्नेल टाड के वर्णनानुसार चित्तीड के सूर्यवंशी गृहिणों की २४ शाखाएँ हैं, बीहानों की चौबीस, चातुर्वर्ग्य की १६, प्रतिहारों की १२। इनके साथ ही टाड ने राजपूताने के स्थापारिगों की ८४ उपजातियाँ गिनायी हैं।<sup>४३</sup> वैश्य वर्ग के अप्रवासी में १७३ या अठारह गँध अथवा मुल माने जाते हैं।<sup>४४</sup> पंजाब के आसपासों में १६ उपजातियाँ हैं।<sup>४५</sup> यही दवा अन्य जातियों की है। उत्तर प्रदेश के कायस्थों के १२ भेद सुप्रसिद्ध हैं।<sup>४६</sup> उपजातिभेद की प्रवृत्ति से हिन्दुओं के भिन्नवर्ग भी अछूते नहीं बचे। भगियों में विवाह की दृष्टि से बीसियों उपजातियाँ कही जाती हैं।

चारों वर्गों के हजारों उपभेदों में बट जाने का पहला परिणाम यह हुआ कि धर्मशास्त्रों द्वारा प्रतिपादित स्वर्ण विवाह के नियम की शोनाचार ने उपवर्ग और उपजातियों के बहुत छोटे-छोटे वर्गों तक सीमित कर दिया है। उदाहरणार्थ पहले बताया गये महाराष्ट्र ब्राह्मणों के देशस्थ नामक ब्राह्मण वैदिक शाखाओं के भेद से चारवेदी, माध्यदिनी, काण्व और मंजामणी वर्गों में बटे हुए हैं। इनमें परस्पर विवाह नहीं होता

<sup>४३</sup> एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज आफ राजस्थान, संडन १९५०, अध्याय ७, पृ० ६८-१००।

<sup>४४</sup> कुका—ड्राइव्स एण्ड कास्टस् आफ दी नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सिज एण्ड अवध, पृ० १६, सत्यमेतु विद्यालंकार—अप्रवास जाति का प्राचीन इतिहास पृ० १२५।

<sup>४५</sup> पंजाब की १९०१ की जनगणना रिपोर्ट, पृ० ३२७।

<sup>४६</sup> सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव-विवाह संस्कार, पृ० १६, अब इनके विवाहों में शोध नहीं समझा जाता।

है। मैसूर के ब्राह्मण ६५ उपजातियों में विभक्त है।<sup>४७</sup> इनकी एक उपजाति स्मार्त (जंबार के अनुयायी) ५० उपभेदों में विभक्त है। इनका भी वैष्णव (रामानुज के अनुयायी) और माथ्य (माधवाचार्य के शिष्य) ब्राह्मणों के साथ विवाह नहीं होता।<sup>४८</sup> गुजरात के नागर, त्र्यंबीच्य आदि वर्ग अन्तर्जातीय विवाह नहीं करते। यदि काम्यकुम्भ को इस बात पर अभिमान है कि "मैं कस्तूरिज्ये तेरह बूट्टे" तो गुर्जर ब्राह्मण कहता है "तेरह गुजराति तेबीण (३३) बूट्टा।" प्रायः सभी उपजातियाँ इस बात का प्रमत्त करती हैं कि उनके जायी ब्याह उनकी उपजाति के भीतर ही हों।

## उपरिविवाह

चार वर्गों में उपर्युक्त जातियों और उपजातियों के विकास का दूसरा महत्वपूर्ण परिणाम है हिन्दू समाज में उपरिविवाह (Hypergamy) की प्रवृत्ति का प्रबल होना। आजकल वर्ण की समानता ही नहीं, किन्तु उपजाति की समानता भी विवाह के लिए आवश्यक समझी जाती है, और उपजातियों में भी कुछ ऊँची और कुछ नीची समझी जाती है।<sup>४९</sup> प्रायः अपनी कन्या को उच्च जाति में देने का प्रयत्न किया

४७ १९२१ की मैसूर की जनगणना रिपोर्ट, भाग १, पृ० १००।

४८ मैसूर गजेटियर, खं० १, पृ० २२१।

४९ श्रीनिवास-मैरिज एण्ड फॅमिली इन मैसूर, पृ० २७।

५० यह उच्चता अनेक तत्त्वों पर अवलम्बित होती है। ब्राह्मणों में विभिन्न उपजातियों की स्थिति उनके पञ्चमार्गों की सामाजिक स्थिति से निर्दिष्ट होती है। उदाहरणार्थ, श्रद्धियों और अप्रवालों के धार्मिक कार्य करने वाले ब्राह्मण धमारों तथा भणियों का पौरोहित्य करने वाले ब्राह्मणों से ऊँचे हैं। दूसरा तत्त्व वृत्ति या व्यवसाय के स्वरूप पर है। अल्पेष्टि संस्कार के समय मृतकों का दाग लेने वाले ब्राह्मण होम वृत्ति से देखे जाते हैं। अन्य जातियों में उच्चता को एक कस्तूरी यह है कि ब्राह्मण जिन जातियों से पानो, कच्चा या पक्का भोजन लेते हैं वे जिनो समझी जाती हैं। तीसरा तत्त्व कुछ सामाजिक रीति-रिवाजों का पावन है। विधवा विवाह करने वाली जातियाँ इसे न करने वाली जातियों से होन समझी जाती हैं। दक्षिण भारत में मन्दिर के सेवकों का एक वर्ग था जो अपनी जाति में इसलिये ऊँचा समझा जाता है कि वह विधवा को विवाह नहीं करने देता (ईसा० क्रि० ४१६=३)। यमुना के ऊपरी भाग में रहने वाले तागू ब्राह्मणों के अधःपतन का यह कारण था कि उनके एक पूर्वज ने अपनी सजातीय विधवा से शादी कर ली थी (ईसा० क्रि० ४१६=०)। चौथा तत्त्व धान-पान के नियम का है। एक ही वर्ग में पशु, पक्षियों के मांस का तथा मदिरा का सेवन करने वाले उसे न करने

जाता है। इसे उपरिविवाह (Hypergamy) का नियम कहा जाता है। रिजनी की परिभाषा के अनुसार उपरिविवाह वह रिवाज है जो किसी वर्ग विशेष की स्त्री को उससे निम्न सामाजिक स्थिति रखने वाले वर्ग के पुरुष से विवाह करने का निषेध करता है और उसे अपने समान अथवा ऊँचे वर्ग में विवाह के लिए बाधित करता है। इस नियम का अनुसरण करने वाला सामाजिक वर्ग उपरिविवाही वर्ग (Hypergamous group) कहलाता है। इनके पुरुष तो इसमें अथवा इसमें निचले वर्ग में जाड़ी कर सकते हैं, किन्तु स्त्रियाँ इस वर्ग में तथा इसमें उपरले वर्ग में ही विवाह कर सकती हैं। उपरिविवाह की प्रवृत्ति हिन्दू समाज की सभी जातियों में तथा सभी प्रायों में पायी जाती है (पंजाब की १९०१ की जनगणना रिपोर्ट, पृ० ३००)। भारत की विभिन्न जनगणना रिपोर्टों में इसका विस्तृत प्रतिपादन है। श्रीमती इरावती कर्षे की किराण्य आर्गेनिजेशन इन इंडिया में भी इसका रोचक विवरण है।

### सजातीय विवाहों के दुष्परिणाम

सजातीय विवाह का प्रतिबंध होने का मुख्य परिणाम यह हुआ कि घर-घर के पुनरा का दामरा बहुत संकुचित हो गया है। अथवा के जितों में पंचगौडालमंत सरयूपारीण, द्विबेदी और छिपाठी पक्षिपावन ब्राह्मणों में विवाह के सम्बन्ध के योग्य व्यक्ति बहुत घोंड़े रह गये हैं और कन्या के विवाह में बड़ी कठिनाई होने लगी है।<sup>५१</sup> छपर के समाज ब्राह्मणों की भी यही दशा है। कई जातियाँ इतनी छोटी हैं कि उनमें केवल = व्यक्ति हैं।<sup>५२</sup> विवाह योग्य व्यक्तियों की संख्या कम होने अनेक दुष्परिणाम उत्पन्न हो गये हैं। जल्दा के विवाह को हिन्दू समाज में रोका नहीं जा सकता, वह तो अवश्य करना होता है; किन्तु उसके लिए घर को अपनी जाति से बाहर नहीं बूझा जा सकता, अपने वर्ग तक सीमित लड़कों के साथ ही शादी करनी पड़ती है। इन लड़कों के माता-पिता कन्या के माता-पिता से सौदे-बाजी करते हैं और दहेज के लिए बड़ी-बड़ी राशियाँ माँगते हैं।<sup>५३</sup> उस समय या तो माता-पिता को भारी कर्ज लेकर ब्याह करना पड़ता है या फिर किसी ऐसे धनी वृद्ध के साथ अपनी लड़की को ब्याहना पड़ता है, जो दहेज न माँगता हो।

बाल विवाह की बुराई को भी इससे बहुत प्रोत्साहन प्राप्त होता है। कन्या के

बालों से उत्तम समझे जाते हैं। उड़ीसा में निम्न जातियाँ ही मद्यपान करती हैं (ईसा० रिली० ई० ३१२३५)।

५१ मगवानदास-पुस्त्याय, पृ० ४६०-६१।

५२ डे० विठ्ठल भाई पटेल का भाषण, १९१८ में अन्तर्जातीय बिल पेश करते हुए।

५३ दहेज के लिए दे० नीचे पृ० २१५-२२४।

माता-पिता यह चाहते हैं कि वे किसी तरह के साथ जल्दी से जल्दी अपनी लड़की को ब्याह दें। वे लड़कों के माता-पिता के पास पहले पहुँचने का सन करते हैं और उनकी कोशिश रहती है कि शारीर जितनी जल्दी हो जतना अच्छा है। यदि शारीर देर तक टाली गयी तो संभव है कि लड़के को कोई दूसरा अधिक इहेज देने वाला भिन्न जाति या अधिकांश कन्या मिल जाय, जता कन्या के पिता की मर्जी के पेटा रहती है कि विवाह शीघ्र हो।

जातियाँ छोटी होने से कई तरह मुश्कों को जर्बदस्ती अविविहित रहना पड़ता है। इस दशा में वे मुख्य दूसरी भिन्नियों से अनुचित संबंध रखते हैं, इन मुश्कों के लिए मित्रियाँ भयाकर पायी जाती हैं और इस तरह समाज में व्यभिचार की माता बढ़ती है। मित्रियों के बचने, बचला करने और किरासे पर अस्थायी परिवारों के तौर पर रखने के सुचित विवाह चल पड़ते हैं।

जब काम्याओं के विवाह करने में इतनी कठिनाता होती तो उसका बध और उनकी उपेक्षा होना स्वाभाविक है। इस प्रश्न पर अन्यत्र विशेष रूप से विचार किया गया है।<sup>४४</sup> किन्तु यहाँ यह कहना आवश्यक है कि हिन्दू समाज में कन्याओं की जो दुर्दशा है, उसका प्रधान कारण घर पहुँचने और उसे संशुष्ट करने की कठिनायता है। कन्या होने ही घर में जो शोक की लहर दौड़ जाती है, इसका कारण कन्या की विवाहविषयक चिन्ता होती है और इस चिन्ता का प्रधान हेतु सजातीय विवाह का कठिन बन्धन है। जातीय दृष्टि से हिन्दुओं का इस प्रथा से बहुत हानि हो रही है। जातिभेद की प्रथा जातीय एकता, संगठन सामूहिक चेतना और मेल के लिये सबसे बड़ी बाधा है। ज० जगबानदास के कथनानुसार हम आत्मसंतोष के लिए भले ही यह दावा करें कि भारत में हिन्दुओं की बहुसंख्या है, किन्तु यह दावा बिल्कुल धोखा और गलत है। वास्तव में हिन्दू-समाज आपस में लड़ते हुए अल्पसंख्यक समुदायों का, कोई तीन हजार जातियों और उपजातियों का, जो सब भोजन और विवाह के विषय में एक दूसरे की अल्पसंख्यक समझती हैं, एक प्रतिष्ठापन विरोधी-संघर्ष केर है।<sup>४५</sup> हमारा समाज तीन हजार टुकड़ों में बंटा है। इन टुकड़ों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। ये टुकड़े कट कर हमसे अलग हो रहे हैं। किन्तु निरन्तर धीन होते हुए भी हम आपस के जाति-भेदों को नहीं भूलते हैं, संगठित होकर उसवि के लिए यत्न नहीं करते हैं। अतः हिन्दू जाति के विभिन्न वर्गों में सौहार्द उत्पन्न करने और उन्हें एकमुख में प्रेषित करने के लिए अन्तर्जातीय विवाहों का होना अत्यन्त आवश्यक है।

### अन्तर्जातीय विवाह और न्यायालय

१९४६ के हिन्दू विवाह बंधन कानून के पास होने से पहले तक आधुनिक न्याया-

४४ हरिवत्स केवलंकार—हिन्दू परिवारभोगांता, पृ० १६६-२०१।

४५ जगबानदास—पुरुषार्थ पृ० ४७०-७१।

सब अन्तर्जातीय विवाहों के सम्बन्ध में एकमत नहीं थे। इस सम्बन्ध में इनके निर्णयों की दो भागों में बाँटा जा सकता है—(१) एक मुख्य जाति की अन्तर्जातीय शाखाओं के व्यक्तियों के मध्य में हुआ विवाह वैध माना जाता है।<sup>४६</sup> (२) पहले कुछ समय तक न्यायालय अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाहों का भेद न करते हुए सभी अन्तर्जातीय विवाहों को अवैध मानते रहे।<sup>४७</sup> किन्तु बाद में इन दोनों में अन्तर करते हुए बम्बई हाईकोर्ट ने प्रतिलोम विवाहों को अवैध माना और<sup>४८</sup> अनुलोम विवाहों को वैध स्वीकार किया।<sup>४९</sup>

प्रतिलोम अर्थात् हीनवर्ण के पुरुष के साथ उच्चवर्ण की स्त्री के विवाह को अवैध घोषित करने के जो परिणाम जनता के सामने आये, उनसे इन विवाहों को कानून द्वारा वैध बनाने का आंदोलन हुआ। इन व्यवस्था का सबसे बड़ा दुःप्रभाव म्त्रियों पर पड़ता था। बम्बई के दो उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जायगा; पहले में १६ वर्ष की एक ब्राह्मणी ने अपने से हीन वर्ण के पुरुष जमनादास के साथ शादी की, २५ वर्ष तक दाम्पत्य जीवन बिताते हुए इन्हें आठ संतानें प्राप्त हुईं। इसके बाद पति ने पत्नी को छोड़ दिया। पत्नी भी वर्ष तक अदालत में नहीं गयी, पर अन्त में लुकाये में भूख से तंग आकर उसने गरि से मुबारक पाने के लिए न्यायालय का द्वार खटखटाया, किन्तु न्यायालय द्वारा इस विवाह को अवैध माना गया और उसे कोई सहायता नहीं मिल सकी। २५ वर्ष तक इकट्ठा रहने पर भी न्यायालय ने उन्हें शास्त्रीय आधार पर पति-पत्नी स्वीकार करने में इन्कार

४६ गोपीकृष्ण बनाम सुसम्मात जगो (१९३६) ६३ ई० ए० २६५, ५८ अला० ३६७; इन्नासिह बनाम साधुसिंह ई० ला० रि० (१९४४) १ कल० २३३; नागप्पा बनाम सुब्रह्मण्यम् ई० ला० रि० (१९४६) महारा १०३।

४७ लक्ष्मी बनाम कल्याणसिंह (१९००) २ बं. ला. रि. १२८ (अज्ञिय और ब्राह्मण); मुन्नीमाल ब. श्यामा (१९२६) ४८ इलाहाबाद ६७० (सूत्र तथा वैश्य स्त्री); सेसपुरी ब० द्वारका प्रसाद (१९१२) १० इलाहाबाद ला० जर्नल १५१ (ठाकुर और ब्राह्मण); गदमकुमारी ब. सूरजकुमारी (१९०६) २८ अला० ४५८ (ब्राह्मण और अज्ञिय स्त्री)।

४८ काशी बनाम जमनादास (१९१२) १४ बं० ला० रि० ५४७, ५५२।

४९ जाई गुलाब ब० जीवनलाल (१९२२) ४६ बं० ८७१, नाथ बनाम मेहता छोटा-लाल। पंजाब में एक राजपूत और खत्री स्त्री (हरिदास बनाम कन्हैया [१९०८] पं० रि० ७२) तथा एक अज्ञिय और वैश्य स्त्री के विवाह (ब० ककीरचन्द १९०७ पं० रि० ५७) वैध माने गये। कलकत्ता हाई कोर्ट ने टिपरा के एक रिवाज के आधार पर वैश्य पति और कायस्थ पत्नी का विवाह जायज समझा (रामलाल ब० अछोयचरण ७ कल० बी० ६१९) तथा कायस्थ और ब्राम्हण का विवाह वैध माना (भोलानाथ ब० सख्ताट ५१ कल० ४४८)।

किया।<sup>६०</sup> शास्त्रीय दृष्टि से यह निर्णय ठीक होते हुए भी स्त्री के प्रति घोर अत्याचारी था। हमारे उदाहरण में कल्याणसिंह राजपूत ने लक्ष्मी नामक ब्राह्मणी से विवाह किया।<sup>६१</sup> लक्ष्मी की प्रति के घर में नौ बारा गंगा और बंगले काब न रहने दिया गया। कल्याणसिंह ने पत्नी प्राप्ति करने के लिए अवातल में तानिशा की, अवातल ने यह निर्णय दिया कि यर्ष्यामचमूच विवाह ही बुरा है, परन्तु प्रतिशोध विवाह होने से कानून की दृष्टि में यह कोई विवाह नहीं है, इसलिए, कल्याणसिंह पत्नी रूप में उसे अपने पास रखने का अधिकारी नहीं है।

हिंदू कानून के इस बंध की मुधारने के लिए सर्वप्रथम स्वर्ध्व विद्वान् भाई पटेल ने अन्तर्जातीय विवाहों को वैध बनाने का विधेयक (बिल) १९५८ में अविस्थापिका परिषद् में प्रस्तुत किया। इस बिल के प्रस्तुत होते ही काङ्ग्रेस, कट्टरपन्थी हिन्दुओं ने इसका तीव्र विरोध किया, क्योंकि इसमें कृषि प्रणीत व्यवस्थाओं पर आघात पड़ा था। एक कट्टर पंथी के शब्दों में यह बिल जातिव्यन्त को टुकड़े-टुकड़े कर देने वाला और उन कुत्तमियों के मुँहों के लिए है जो हिन्दू परिवार की प्रत्येक पत्ति और त्रिम बीज को पाँच तले चीटना चाहते हैं, जो बदमाशी और आचारमर्दी का जीवन बिताया चाहते हैं।<sup>६२</sup> इन शब्दों में विरोध की उधम का अनुमान किया जा सकता है। उन दिनों माटेयू थैम्स कोई मुधार लागू होने वाले थे, अतः यह बिल सर्वोच्च असेम्बली के लिए छोड़ दिया गया। इसके १६ वर्ष बाद २६ जनवरी १९७७ को डा० भगवानदास ने वेल्लीय व्यवस्थापिका परिषद् में पटेल वाला बिल उपस्थित किया। उन्होंने उसके समर्थन में प्रबल शास्त्रीय प्रमाण रखे, किन्तु वह सब अल्प रौदन ही सिद्ध हुआ। सरकारी विरोध के कारण बिल गिर गया। अन्त में १९४६ में भी ठाकुरदास भार्गव के भवोन्मय प्रयत्न में सब प्रकार के अन्तर्जातीय विवाहों को वैध बनाने का कानून भारतीय लोकसभा द्वारा पास हुआ।

इस कानून के पास होने से पहले हिन्दू विवाह दो प्रकार से हो सकते थे—  
१९७२ के विधेय विवाह कानून के अनुसार तथा १९५७ के धर्म विवाह वैधता कानून के अनुसार। पहला कानून बहुसंमत बाली ने अपने अन्तर्जातीय विवाहों को वैध करने के लिए बनाया था, इसकी तीसरी धारा के अनुसार वर-वधू को यह घोषणा करनी

६० काशी बनाम जमनादास (१९५२) १४ बं० ला० रि० ४४७, ४५२। न्यायाधीश खन्नावरकर ने इस विषय के सब शास्त्रीय प्रमाणों को समीक्षा करते हुए यह लिखा था कि इस प्रान्त में स्वीकार किये जाने वाले हिन्दू कानून के प्रधान ग्रन्थों के अनुसार ब्राह्मण पुण्य श्रविय, वैश्य और शूद्र स्त्री नहीं स्वीकार कर सकते।

६१ लक्ष्मी व० कल्याणसिंह २ बं० ला० रि० १२८।

६२ सनातन धर्म सभा लाहौर द्वारा प्रकाशित पैम्फलेट, सनातन हृत अन्तर्जातीय विवाह पृ० २२ पर उद्धृत।

पड़ती थी कि वे हिन्दू, बौद्ध, सिक्ख या जैन नहीं हैं। यद्यपि ब्रह्मसमाजियों का हममें कोई आपत्ति न थी, किन्तु अधिकांश हिन्दू ऐसी घोषणा करने के लिए तैयार नहीं थे। अन्तर्जातीय विवाहों को वैध बनाने की दिशा में दूसरा महत्वपूर्ण पग १८२७ का १८ वाँ कानून था। यह थी सनध्यामसिंह गुप्त के प्रयत्न का फल था। आर्यसमाज हिन्दुओं का मुद्धारक सम्प्रदाय है, यह जन्म से जातिभेद का विरोधी है, आर्यसमाजियों में अनेक अन्तर्जातीय विवाह होते थे, इनकी वैधता स्वीकार करने तथा इस विषय में मदेहा को दूर करने के लिये प्राथमिक विवाह वैधता कानून बनाया गया, यह १८ अप्रैल, १८२७ में लागू हुआ। यह कानून केवल उन हिन्दुओं पर लागू होता था, जो आर्यसमाजी थे, अब हिन्दुओं में प्रतिनिधि अन्तर्जातीय विवाह अवैध थे और अनुलोम विवाह उपर्युक्त कठिनातियों को उत्पन्न करने वाले थे। इस समय हिन्दू समाज में अन्तर्जातीय विवाहों का रिवाज बढ़ने लगा, उत्तर भारत में 'जात-भ्रात मोड़का मण्डल' ने इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया। हिन्दुओं के जागृत एवं शिक्षित वर्ग में ऐसे विवाहों में वृद्धि हुई। ऐसा एक उल्लेखनीय उदाहरण महात्मा गांधी के पुत्र देवदास गांधी का राजगोपालाचार्य की पुत्री के साथ प्रतिनिधि विवाह था। इन विवाहों की संख्या बढ़ने के साथ-साथ इन्हें वैध बनाने का आन्दोलन प्रचल हुआ। इसका परिणाम हिन्दू विवाह वैधता कानून था। यह ११ मार्च, १८४६ में मारे भारत में लागू हुआ। १८४१ के हिन्दू विवाह कानून में इसे सम्मिलित कर दिया गया है।

### हिन्दू विवाह वैधता कानून (१८४६)

यह कानून हिन्दुओं, सिक्खों, जैनों, इनकी विभिन्न जातियों, उपजातियों और सम्प्रदायों में होने वाले विवाहों को वैध करने के लिए बनाया गया है। इस कानून की तीसरी धारा का स्वल्प इस प्रकार है "इस समय लागू होने वाले हिन्दू कानून के किसी अन्य, नियम या ध्याव्या के अथवा किसी कोड़े और रिवाज के होते हुए भी हिन्दुओं में कोई विवाह केवल इस कारण अवैध नहीं समझा जायगा कि उसमें वर-वधू विभिन्न धर्मों, जातियों, उपजातियों या सम्प्रदायों से संबन्ध रखते थे।" यह कानून अनुलोम प्रतिनिधि दोनों प्रकार के विवाहों को वैध बनाता है, अब आर्य समाजी न होने तथा विशेष विवाह कानून के अन्तर्गत प्राचीन करने पर भी ऐसे विवाह वैध होंगे। इस कानून ने असम्पूर्ण विवाह विरोध के साम्राज्यीय नियम को पूर्णरूप से विलुप्त कर दिया है। यह सविनय से होने वाले विवाहों को ही वैध नहीं बनाता, अपितु इस कानून के पास होने से पहले किये गये विवाहों को भी वैध स्वीकार करता है। निःसन्देह वर्तमान युग में, हिन्दू विवाह के क्षेत्र में यह एक बड़ा कान्तिकारी और महत्वपूर्ण कानून है।

वर्तमान काल में हिन्दू समाज में जातिभेद की प्रथा का विषट्क करने वाली अनेक प्रवृत्तियाँ अन्तर्जातीय विवाहों के प्रोत्साहन में सहायक सिद्ध हो रही हैं। औद्योगिक कान्ति, मशीनों द्वारा कारखानों में बृहत् परिमाण में वस्तुओं के उत्पादन,

व्यापार के विकास, रेलद्वारा यातायात में वृद्धि आदि से पुरानी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं। गांधी में पुराने उद्योगों की समाप्ति से पुराने पैसों का अन्त हो रहा है, सफाई, डाकटरी आदि के नये पैसों बढ़ रहे हैं। इससे वृत्ति के आधार पर बनी पुरानी जातियों का प्रभाव और महत्व कम हो रहा है। रेजमाइनों में, होटलों में, तथा बड़े शहरों की भीड़-भाड़ में सड़कों पर जातीय झुद्धि और पवित्रता के नियमों की रक्षा संभव नहीं है। स्थूलजन्म प्राप्ति के बाद हमारे देश के अर्थ संविधान में सब नागरिकों के समान अधिकार स्वीकार किये गये हैं। कांग्रेस का लक्ष्य ब्रह्मजन्म प्राप्त करने का निर्माण करना है, जातिभेद की प्रथा को पुष्ट करने वाली अस्पृश्यता का कानून द्वारा उन्मूलन हो चुका है, आदिमूलक पदवियों को अपने नामों के साथ और पीछे लगाना बुरा समझा जाने लगा है। ऐसी रक्षा में जातिभेद के आधार पर किये जाने वाले सजातीय विवाह के नियम के सामन में भविष्य में पर्याप्त शिथिलता आने की सम्भावना है।

### अन्तर्जातीय विवाह के प्रति नवीन दृष्टिकोण

नगरों में नवीन आर्थिक एवं औद्योगिक परिस्थितियों के कारण हिन्दू समाज में अन्तर्जातीय विवाह के विषय में कुछ उदात्त दृष्टिकोण अपनाये जाने लगे हैं। एलीन डी० रास द्वारा किये गये अनुसन्धान ने इस विषय पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है। निम्नलिखित सांख्यिक में यह प्रदर्शित किया गया है कि साधारणतः किये जाने वाले किछने पुरुषों तथा स्त्रियों ने अन्तर्जातीय (intercaste), अन्तर्धर्मीय (interreligious) तथा अन्तः-प्रजातीय (interracial) विवाहों के पक्ष तथा विपक्ष में मत दिये।<sup>१३</sup>

अन्तर्जातीय			अन्तर्धर्मीय			अन्तःप्रजातीय		
पक्ष	विपक्ष	उत्तर देने वालों की सं०	पक्ष	विपक्ष	उत्तर दे.	पक्ष	विपक्ष	उत्तर दे.
पुरुष	१६	६०	२०	१२	३२	३०	२४	५४
महिला	२६	६१	६	३३	४२	६	३४	४३
सर्वयोग	७०	१२१	२६	४५	७४	३६	५८	९७

इस तालिका से कई मनोरंजन और महत्वपूर्ण परिणाम निकलते हैं—(१) पुरुषों पर नवीन विचारों और परिस्थितियों का अधिक प्रभाव पड़ा है। उनका दृष्टिकोण स्त्रियों की अपेक्षा अधिक उदार है। (२) प्रतिशत पुरुषों ने अन्तर्जातीय तथा अन्तर्धर्मीय विवाहों का समर्थन किया। इन विवाहों के समर्थन में जो बड़े तर्क दिये गये—पहला तर्क तो यह



था कि इससे जातिप्रथा की बुराई का उन्मूलन होगा। दूसरा तर्क विवाह में युवकों को अपने साथी का चुनाव करने की स्वतन्त्रता देना था। उनके मतानुसार जातिभेद के बन्धनों द्वारा युवकों के प्रथम-विवाहों में बाधा नहीं डाली जानी चाहिए। इस युवकों ने इस खान पर बल दिया कि अन्तर्जातीय विवाह हमारे लिए 'उत्तम समाज' (good society) का निर्माण करने वाले हैं, केवल इन्हीं से अस्पृश्यता के कलंक का तथा जातीय भेदभाव का उन्मूलन किया जा सकता है। अन्तर्जातीय अथवा विभिन्न नस्लों वाले विवाहों का समर्थन केवल पञ्चास प्रतिशत युवकों ने ही किया। अन्तर्जातीय विवाहों का समर्थन करने हुए भी नवयुवकों ने इस बात पर बल दिया कि अन्तर्जातीय विवाह करने वाले घर-बधू को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होना चाहिए, क्योंकि जातीय द्वन्द्व का मोड़ने के कारण माता-पिता तथा अन्य संबंधी इससे सन्त हो जाते हैं तथा उनमें इन्हें कोई महापथा माने की बाधा नहीं रखनी चाहिए। इसके अनिश्चित में विवाह दम्पती एवं इनके माता-पिता में मनोमालिन्य और वैमनस्य पैदा करने वाले तथा बच्चों के लिए कई शिष्टम गम-स्वाएँ उत्पन्न करने वाले होते हैं।

(२) इस सर्वेक्षण से मारियो द्वारा किये गये उत्तरों से यह प्रकट होता है कि वे पुरुषों की भाँति समाज को उत्कृष्ट बनाने के लिए अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन करने के लिए उत्सुक एवं आतुर नहीं हैं। वे अन्तर्जातीय विवाह को पक्षपाती होते हुए भी विभिन्न उपजातियों में विवाहों की अनुमति देने के पक्ष में हैं। अन्तर्जातीय विवाहों के पक्ष में २६ ने तथा विरोध में ३५ ने अपने मत अभिव्यक्त किये। उनके विरोध का मुख्य कारण यह था कि ऐसे विवाहों में घर-बधू को अपनी जाति के अन्य रीति-रिवाजों तथा सामाजिक प्रथाओं के साथ सामंजस्य स्थापित करने में बड़ी कठिनाई होती है, वे अपने कुल, जाति और विरादरी में समुचित स्थान न पाने से उनसे प्राप्त होने वाले संरक्षण और गुरुत्वा से वंचित हो जाते हैं, अतः उन्हें बड़ी कठिनाइयाँ और परेशानियाँ उठानी पड़नी हैं और ऐसे विवाह सफल नहीं होते हैं। एक युवती ने इस विषय में लिखा था—“मुझे यह विषयवाचक नहीं है कि अन्तर्जातीय विवाह सफल होंगे, क्योंकि जर्म और जाति विषयक नियम हममें इतने अधिक मुद्दह और अक्षम हैं कि हम विभिन्न आदर्शों और रीति-रिवाजों का पालन करने वाले व्यक्तियों के साथ सामंजस्य और आनुकूल्य स्थापित नहीं कर सकते हैं। यह विवाह सफल न होने की दशा में, लड़की के माता-पिता अपनी लड़की का परिवार में वार्णित लेने में बड़ा संकोच करेंगे।” अन्य युवतियों ने भी ऐसे विवाहों का विरोध करते हुए यह कहा कि दूसरी जाति के पुरुष के साथ विवाह करने पर लड़की अपनी जाति और अपने परिवार के व्यक्तियों से प्राप्त होने वाली सुरक्षा से वंचित हो जाती है तथा ऐसे विवाह के परिणाम माता-पिता की अपेक्षा बच्चों को अधिक भूलने पड़ते हैं। पुरुषों ने यद्यपि अन्तर्जातीय विवाह के प्रति अधिक उदार दृष्टिकोण प्रकट किया था, किन्तु उन्होंने अपने विचारों को कियात्मक रूप देते हुए स्वयमेव या अपने परिवार के सदस्यों के विवाह

जात-पात का अन्धन तोड़ कर नहीं किये थे। उनका यह कहना था कि वे यद्यपि इन विवाहों को बुरा नहीं समझते, फिर भी विवाह करते तथा समान को सष्ट करते वे अपनी समस्याओं को नहीं बड़ाया चाहते।

इस सर्वेक्षण से रास ने यह परिणाम निकाला है कि आधुनिक विचारों से प्रभावित युवक-युवतियाँ अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन करते हैं, किन्तु वे यह भी जानते हैं कि इनसे अनेक प्रकार की विषम समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, यदि उन्हें अपनी जाति में अपना जीवलग्नी मिल जाता है तो वे अन्तर्जातीय विवाह नहीं करते हैं। ऐसा विवाह केवल उन्ही दशा में किया जाता है जब युवक-युवती में प्रेम की भावना इतनी प्रबल हो कि वे सामाजिक प्रथाओं के विरुद्ध विद्रोह करने की तैयार हों, अथवा उन्हें ऐसा विवाह करने से सम्पत्ति अथवा सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने में बहुत बड़ा लाभ मिलता हो, ताकि वे अन्तर्जातीय विवाह से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों का समाधान कर सकें<sup>६४</sup>।

## वर-वधू का चुनाव तथा योग्यताएँ

### अन्य वैवाहिक प्रतिबन्ध

हिन्दू विवाह की तुलना एक बाधादौड़ (Hurdle Race) से की जा सकती है। बाधादौड़ का विजेता जिस प्रकार रास्ते की अनेक बाधाओं, विषम स्थलों, गहरे गड्ढों और ऊँचे टीलों को पारकर अपने लक्ष्य स्थान पर पहुँचता है, उसी प्रकार हिन्दू कन्या के माता-पिता पिण्ड, गौल, जाति के कठोर प्रतिबन्धों का पालन करते हुए तथा अन्य अनेक बाधाओं का सामना करते हुए यही कठिनता से वर का चुनाव कर पाते हैं। पिण्ड, गौल और जाति के प्रतिबन्धों की बर्षों पिछले अध्याय में विस्तार से ही चुकी है। इस अध्याय में वर-वधू के चुनाव के विषय में अन्य प्रतिबन्धों और नियमों का उल्लेख किया जायगा।

विवाह से पहले वर और वधू की अनेक दृष्टियों में जाँच की जाती है। उनके रूप, गुण, बुद्धि, कुल आदि अनेक योग्यताओं का विचार किया जाता है। कुछ विशेष रोग अथवा विकृतिवाँ होने पर उन्हें विवाह के योग्य नहीं समझा जाता। वधू के लक्षणों की परीक्षा पर प्राचीन ग्रन्थों में बहुत बल दिया गया है। मध्यकाल से विवाह में व्योतिष सम्बन्धी विचार प्रबल होने लगे। वर-वधू का गोत्र और कुल देखने के साथ उनके ग्रहों और नक्षत्रों के गुणों, ताड़ी, भूट आदि का खूब विचार होने लगा। ऐतिहासिक क्रम से यहाँ वर-वधू की योग्यताओं व अयोग्यताओं की बर्षों की जायगी। इन बातों या प्रतिबन्धों के विषय में यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि इनका पालन करना अच्छा समझा जाता है, परन्तु इनका भंग करते हुए यदि कोई विवाह कर ले तो वह अवैध नहीं माना जाता है।

### वर की योग्यताएँ (वर-सम्पत्<sup>१</sup>)

(१) ब्रह्मचर्य—वर की सबसे बड़ी योग्यता यह होनी चाहिए, कि वह अव्यक्त ब्रह्मचारी हो। बौधायन (४।१।११) कन्या के पिता को स्पष्ट रूप से यह सलाह देता है

१ इनका प्राचीन धर्मसूत्रों, स्मृतियों तथा निबन्धग्रन्थों में विशद वर्णन है, देखिये मनु २।८८, याज्ञ० १।५५, और मित्रोवय संस्कार प्रकाश, पृ० ७५४।

कि वह उस व्यक्ति को अपनी कन्या का दान करे, जिसका बहुचर्चित भोग न हुआ हो। मनु (३।२) तथा याज्ञवल्क्य (१।५३) ने वर के अखण्ड बहुचर्च के नियम का वर्णन किया है। अहाधर्माधम विद्याध्ययन के लिए है, गृहस्थ के संसर्ग विद्याध्ययन में बाधक होते हैं, अतः विद्याध्ययन के बाद ही विवाह हो, इस नियम की रक्षा के लिए यह व्यवस्था की गयी थी कि वर का ब्रह्मचर्य अखण्डित होना चाहिए। किन्तु बाद में बालविवाह का प्रचलन होने पर यह शर्त किन्तुलन व्यर्थ हो गयी। सम्भवतः काल में बहुचर्चाधम एवं वेदाध्ययन की परीक्षाएँ बिल्कुल भुल हो गयीं, उपनयन संस्कार का विषयावश्यकता होना था, ब्रह्मचारी काशी जाने का संकल्प करता था, किन्तु उसकी बहिन या अन्य सम्बन्धी उसे बजाते जाने की चेष्टा करने थे और वह अपना काशी जाने का निश्चय रद्द कर देता था। प्रायः उसी दिन मघावर्तन संस्कार हो जाता था। शव उपनयन और बहुचर्च इस प्रकार एक मज्जा का या लम्बा हो गया। यदि वर के लिए यह शर्त आवश्यक समझी जाती तो इसका एक बड़ा लाभ यह होता कि हिन्दू समाज में वैसे ही विवाहों का प्रसार अधिक न होता, ४० या ५० वर्ष की आयु वाले पहले से विवाहित बृद्ध असंतोषित कन्याओं का पाणिग्रहण न कर सकते। आजकल इस शर्त का कोई महत्व नहीं है।

(२) कुल—वर का कुल उत्तम होना चाहिए। यह समझा जाता है कि उत्तम कुल में जन्म देने के कारण व्यक्ति वर्ण-परम्परा द्वारा कुछ विशेषताओं को प्राप्त करता है और कुछ गुणों को वह अपने कुल के उत्कृष्ट एवं सम्मत्तापूर्ण द्वारा प्राप्त करता है, अतः विवाह में कुलीनता के गुण को बहुत महत्व दिया जाता है। आप० बृहत्सूत्र (१।५।१) एक विशेष पूर्वनिर्दिष्ट विधि के अनुसार वर-वधू के कुल की परीक्षा करने का

इनका सारांश यमस्मृति के निम्न श्लोक में है, जिसमें वर के लिए सात गुण आवश्यक बताये गये हैं—

कुलं च शीलं च संपूर्णवचं विद्यां च वित्तं च सनातनां च ।

एतान् गुणान्मम परीक्ष्य वेदा कन्या बुधः सेवमचित्तनोपम् ॥

स्टनबेक ने विभिन्न स्मृतियों के आधार पर वर के निम्नलिखित गुण बताये हैं—(१) अपना ही वर्ण रखने वाले (सर्वण, सदा) कुल का होना, (२) धनी होना, (३) मां-बाप तथा अन्य संरक्षक सम्बन्धियों का होना (सनातना), (४) उत्तमचरित्र (शील) तथा बुर, उत्कृष्ट स्थिरमति, बुद्धिमान होना, (५) विद्वान् तथा पढ़ा लिखा (श्रोत्रिय, पंडित) होना, (६) सुन्दर (अभिरूप मनु ६।८८) होना, (७) बड़े परिवार वाला होना (भूरि कुटुम्बवान्, नानाकुटुम्बवान्), (८) उदार (दाता) तथा बघालू (व्यसतागर) होना। (९) आनन्दोपभोग का प्रेमी होना, अन्तर्प्रिय, शिष्ट होना (अन्तरिप्रियः शिष्टः इव एशेष्ट इन्द्रिया, खं० २, पृ० ३२-३)।

विधान करता है। इस पूर्वनिर्दिष्ट विधि का संकेत आप० श्रौतसूत्र (१।३) की ओर है और यह राजसूय यज्ञ में वसन ग्रहण करने के योग्य ब्राह्मणों का वर्णन करती है। इसके अनुसार वर के माता और पिता दोनों और से वस कुलों तक ऐसे होने चाहिए जिनमें विवाह, सप्त और उत्तम कर्म पाये जाते हों, अथवा दस पीढ़ी तक जो शुद्ध ब्राह्मणवंश के हों, अथवा कुछ लोगों की सम्मति में पिता की ओर से ही केवल ऐसी दस पीढ़ियों वाले हों। मनु ने उत्तम कुल में शादी करने के लाभ और हीन कुल में विवाह करने की हानियों का स्पष्ट रूप से वर्णन किया है। उसने ४।२४४ में कहा है कि जो अपने कुल का उत्कर्ष चाहता है उसे उत्तमांतन व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध करने चाहिए और अधम लोगों के साथ सम्बन्धों का त्याग करना चाहिए। मनु यह समझता था कि जिन कुलों में कुछ बीमारियाँ पायी जायें उनमें कभी सम्बन्ध नहीं करना चाहिए। अतः ३।६-७ में वह स्पष्ट रूप से सब लोगों की चेतावनी देते हुए कहा है कि रोग वाले दस प्रकार के कुलों में मी, भेड़, बकरी, घन-घाव से परिपूर्ण हृत्ति पर भी विवाह सम्बन्ध न करे। ये दस कुल इस प्रकार हैं—जिनमें संस्कारों का पातन नहीं होता, जिनमें स्त्री सन्तानें ही उत्पन्न होती हैं, वेदाध्ययन नहीं होता हो, जिनमें व्यक्तियों के बहुत-बड़े-बड़े बास होते हैं, जिनमें अवासीर, क्षय, मन्दाग्नि, मिरगी, शिबल और कीड़ के रोग होते हैं। याज्ञवल्क्य ने भी महाकुल (१।१४) या श्रेष्ठ कुल पर बल दिया है। शारीत (वीरमित्रोदय, पृ० ५२६) कुल पर बल देने के कारण को स्पष्ट करता हुआ कहता है कि सन्तान माता-पिता के गुणों वाली होती है। हर्षचरित में प्रभाकरवर्धन ने यशोवती से कहा है कि वर में अन्य गुण रहते हुए, बुद्धिमान् व्यक्ति कुल की ही देखते हैं (नि० सा० सं० पृ० १४१)। कुल का विचार करके ही उसने "सकलभुवनतमस्कृत" मीखरीवंश के ग्रहकर्मा को अपनी कन्या देने का विचार किया था। कुल के विचार से, मध्यकाल में बंगाल में कुलीन ब्राह्मण-प्रथा का जन्म हुआ और लोग अपने कौलीन्य की रक्षा के लिए एक ही कुलीन ब्राह्मण के साथ अनेक कन्याओं की शादी करने लगे।

कुलीनता का इतना महत्त्व होते हुए भी मनु (२।२३८) ने मुख्य बात यह धृष्ट की है कि स्त्री यदि रत्न हो (अर्थात् रत्न की तरह श्रेष्ठ हो) तो उसे नीच कुल से भी ग्रहण कर लेना चाहिए (स्त्रीरत्न दुष्कुलावपि)।

(३) बुद्धि और गुण—वर बुद्धिमान् और गुणवान् होना चाहिए। आप० गृह्य सूत्र (१।४।२) कहता है कि कन्या बुद्धिमान् वर को देनी चाहिए। बौद्ध धर्म सूत्र (४।१।२०) के अनुसार कन्या गुणवान् को देनी चाहिए। कालिदास ने अभिज्ञान साकुन्तल में (चतुर्थ अंक) गुणवान् वर को कन्या देने का समर्पन किया है। मनु कन्या गुणवान् वर की देते पर बहुत बल देता है। वह कहता है (१।२६)—"चाहे कन्या को शत्रु-मयी होने पर आभरण पिता के घर पर रहना पड़े, किन्तु उसे कभी गुणहीन व्यक्ति को न दे।"

## अन्य योग्यताएँ

इनके अतिरिक्त वर के स्वभाव, स्वास्थ्य, धन, यश आदि अनेक गुणों को पुराने जमाने में देखा जाता था और आज भी देखा जाता है। यम (स्मृति चरित्रिका १।७८) ने कुल, बीज, शरीर, यश, विद्या, धन, माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धियों का होना—यें सात मुख्य गुण बताये हैं। बृहत्साराशर (त्रिषागन्द सं० १०० ११८) में वर के आठ गुण बताये हैं किन्तु वे यम से भिन्न हैं। वे गुण इस प्रकार हैं—आति, ज्ञान, पौवन, शक्ति, स्वास्थ्य, (नित्यादि शौ) सहायता, उच्च आकांक्षाएँ और धन।

(४) स्वास्थ्य—वर के लक्षण, स्वस्थ और रोगमुक्त होने पर बहुत बल दिया गया है और यह स्वाभाविक भी है। आश० सू० सू० (१।३।२०) वर की योग्यताओं में आरोग्य का परिगणन करता है। मनु ने विवाह में जिन दस कुत्यों का निषेध किया है (३।६-७), उनमें आँधकाश विभिन्न रोगों से पीड़ित है। दाजबल्य भी संज्ञामक संवारी रोग वाले मनुकुल में विवाह की अनुमति नहीं देता। कात्यायन उन्मत्त, कुप्टी, नपुंसक, स्वगोत्रज, कान, अन्धे, मिरसी वाले वर को कन्या न देने का परामर्श देता है।

(५) पुंस्त्व—मातृवल्यम् (१।४५) ने वर की पुंस्त्व परीक्षा पर बहुत बल दिया है। वर के पुंस्त्व की यलपूर्वक जाँच की जानी चाहिए (यलात् परीक्षितः पुंस्त्वे)। मातृवल्यम् ने इस परीक्षा की विस्तृत विधि नहीं बतायी। किन्तु नारद ने (५।११-१३) इस विषय पर कुछ प्रकाश डाला है। उसके मत में जिस पुरुष का वीर्य बल में तैरता है और जिसका भ्रूज चमकदार और हागदार है, वह व्यक्ति मनुष्य है और इनसे निपरीत लक्षणों वाला पुरुष गपुंसक होता है। विवाह से पूर्व वर की इस पुंस्त्व परीक्षा का उद्देश्य यह था कि पति-पत्नी का दाम्पत्य जीवन सुखी रहे। पश्चिम में आजकल इस लक्षण को मली-भाँति अनुभव किया जा रहा है, दाम्पत्य सुख के लिए यौन अनुकूलता (Sexual harmony) अत्यन्त आवश्यक मानी जाती है। यौन वैरम्य कभी-कभी इस सुख का सर्वथा अन्त कर देता है। अतः वहाँ दाम्पत्य सुख व रोगों की निवृत्ति के लिए डाक्टरों द्वारा वर-अधू की प्राग्विवाह परीक्षा (Premarital examination) पर बल दिया जाता है।

(६) शारीरिक लक्षण—वर में उपर्युक्त योग्यताएँ देखने के अलावा कुछ शारीरिक विशेषताएँ या लक्षण भी देखे जाते हैं। वीरमिश्रोदय (पृ० ७५२-७५४) ने इन लक्षणों का बहुत विस्तार से वर्णन किया है। ये लक्षण शारीरिक स्वास्थ्य, सौभाग्य एवं आम के सूचक होते हैं। उदाहरणार्थ जिसके दाँत, तन्त्र, केश, त्वचा और अंगुलियों के पीर सुख्य होते हैं, वह दीर्घजीवी माना गया है। माधा, सन्ध्या, नाक, छाती उन्नत या ऊँची उठी होगी चाहिए। कनिष्ठ अंगुलि के मोने से यदि अत्रिच्छिन्न रेखा हवेली के मध्य में जाती है तो ८० वर्ष की आयु होती है और कनिष्ठा के पीर अनामिका के पीर से बढ़ जाये तो पुरुष १०० वर्ष तक जीने वाला होता है (बी. मि., पृ० ७५३)। यदि कनिष्ठा के तथा

अनामिका के पीर बराबर हों तो आयु ८० वर्ष की होती है, यदि बराबर न हों तो ७० वर्ष की और पीर से आधी हो तो ६० वर्ष। किन्तु वर की अपेक्षा कन्या में इस प्रकार के लक्षण विशेष रूप से दृष्टे जाते हैं।

वर के गुणों की जांच कई बार स्वयंवर में कोई शर्त रख कर की जाती है। राम और अर्जुन के बल की परीक्षा इसी प्रकार हुई थी। कई बार वर की अनेक प्रतीभन देकर उसके प्रेम की परीक्षा की जाती थी। इनका सबसे सुन्दर उदाहरण अष्टावक्र की कथा है (महाभा० १३।१६ अनु०)। अष्टावक्र ने कथाम्ब कृषि की कन्या गृध्रा का पाणिग्रहण करना चाहा। कृषि ने उसे उत्तर दिया मैं भोजा अर्थात् उसे अनेक मृदांशों मिली। वह उनके प्रतीभन से कथाम्ब जब बापिन लौट आया तभी कथाम्ब ने अष्टावक्र से अपनी कन्या का विवाह कराया।<sup>१</sup>

### वर की अयोग्यताएं

वर की अयोग्यताओं को हम तीन भागों में बांट सकते हैं—(१) शारीरिक तथा मानसिक अस्वस्थता, पागलपन, बहिरापन, मृगपन या किसी अनाध्योग्यारी से पीड़ित होना, (२) मपुंसक होना, (३) अन्य अयोग्यताएँ।

वर के पास होने की कारवायस बभारद (५।३७) ने दोग माना है। पासनों को प्रायः सभी देशों में दीवानी अधिकारों से वंचित रखा जाता है। इंग्लैण्ड में पागल के विवाह की अपेक्ष समझा जाता है।<sup>२</sup> किन्तु वर्तमान समय में अदालतों ने हिन्दुओं में पागल के विवाह की अपेक्ष नहीं माना।<sup>३</sup> श्री मुखदान बैनर्जी ने अदालतों के निर्णय से बड़े पुष्ट प्रमाणों के आधार पर असहमति प्रकट की है। उनका कहना है कि विवाह

<sup>१</sup> घाम गीतों में वर के गुणों की जांच करने की कुछ सांकेतिक प्रक्रियाएँ मिलती हैं। एक बार ब्याह करने जाता है। बीच में गयी पड़ती है, बाबल घा गये हैं, वह नदी के किनारे खड़ा होकर पुकारता है—हे समुद्र जी, नग्न भोज होजिए ताकि मैं उस पर चढ़कर उस पार आ जाऊँ। समुद्र ने कहा—न मेरे पास नाव है, न केबल। जो मेरी कन्या चाहता है उसे नदी तैर कर आना चाहिए। वर कहता है—मेरा अंगरखा भोग जायगा, मेरी पगड़ी भोग जायगी। हे समुद्र, तुम्हारी कन्या के लिए मेरे सोलहों भूंगार भोग जायेंगे। समुद्र कहता है—भोगने दो। मैं अंगरखा दूंगा, पगड़ी दूंगा। हे ध्यारे, मैं भूंगार की सब सामग्री दूंगा, यदि तुम गंगा तैर कर आओगे (रामचंद्रेश त्रिपाठी—कविता कौमुदी, पृ० २०८-९)।

<sup>२</sup> मैरिज आफ़ मूनेटिक्स एक्ट (१८११) ५१ जर्ज ३५, सी ३७।

<sup>३</sup> देवी अरण मिल बनाम राधाचरण मिल २ मा २६. मौजिलाल बनाम कन्नायतो कुमारी (इं. ला. रि. ३८ कल. ७००)

में बनाया का दान किया जाता है। प्रायत व्यक्तिक या जन्मजान मूर्ख व्यक्ति (Idiot) में जब बुद्धि का सर्वथा अभाव है तो उसका कन्यादान ग्रहण करना वा न करना कोई अंतर नहीं रहता, इस अवस्था में इस विवाह का विवाह नहीं माना जा सकता।<sup>१५</sup> श्री वेनजी की यह सूक्ति तो विन्वुज ठीक है किन्तु इसके आगे अर्ध मंग के सम्बन्ध में उन्होंने मनु का एक प्रमाण<sup>१६</sup> इस बात की पूर्ति के लिए दिया है कि हिन्दू सामन्तकार पनि के प्रायत होने पर पत्नी को इसकी उपेक्षा करने को कहते हैं। हम नम्रतापूर्वक यह निवेदन करना चाहते हैं कि इस प्रमाण का आगम श्री वेनजी महोदय के आशय में सर्वथा प्रतिकूल है। मनु के इसमें पत्नी के प्रायत होने पर भी उसे छोड़ने का अधिकार दिया है।

हिन्दू समाज में सुर्माँ, बहिरों, तथा अराध्य लोगों ने पीड़ित व्यक्तियों को भी विवाह का अधिकार है।<sup>१७</sup> उनका विवाह अवैध नहीं समझा जाता।

नपुंसकता को मारद और वारयायन दोनों में वर का दौष माना है, किन्तु मनु और वासवध्वज की सम्मति ऐसी नहीं प्रतीत होती। नपुंसक भाक्तियों के यदि अपने पुत्र नहीं होते थे तो वे नियोग से पुत्र उत्पन्न करवा सकते थे और वे पुत्र अन्य सभी प्रकार के पुत्रों को भाँति पिला की सम्मति का हिस्सा लेते थे। मनु (६।२०३) व वासवध्वज (२।१४१-४२) में स्पष्ट रूप से ऐसा विश्वास है। मनु यद्यपि नपुंसक स्त्रियों के विवाह परम्व नहीं करता तथापि यदि कभी उन्हें विवाह की दृष्टि हो, उसी दशा में मनु उन्हें नियोग की अनुमति देता है। कमिसुत्र में नियोग वर्जित है तो क्या नपुंसक का विवाह भी वर्जित है? आजकल नीच जातियों में नपुंसकता के आधार पर तलाक दिया जा सकता है।<sup>१८</sup> किन्तु उच्च जातियों में प्रायतन के आधार पर अदालतें विवाह को नाजायज नहीं मानती।<sup>१९</sup>

## परिवेदन

प्राचीन काल में बड़े भाई के विवाह से पहले छोटे भाई के विवाह या परिवेदन को सह्याप समझा जाता था। अर्जुन ने द्रौपदी के साथ विवाह करने से इन्कार किया था, क्योंकि उसके दोनो बड़े भाइयों, युधिष्ठिर और भीम के विवाह नहीं हुए थे। द्रौपदी के साथ पाँचों पाण्डवों का आयु के क्रम से विवाह हुआ। विवाह होने पर इसी नियम के कारण

<sup>१५</sup> वेनजी—हि. ला. मं. स्त्री., पृ० ३६।

<sup>१६</sup> मनु ६।७६—उन्मत्तं पतितं मलीनमबीजं पापरोषिणम् ।

न त्यागीऽस्ति द्विष्यत्यारब्ध न च दामाप्यर्तनम् ॥

<sup>१७</sup> मौजीलाल बलाम चन्द्रावती ३८ कल. ७०० प्रि० को० ।

<sup>१८</sup> स्टोस—लां ग्राफ कास्ट्स, पृ० १६७

<sup>१९</sup> पुरयोत्तमवास बलाम बार्ड मोनी, इ० ला० रि० २१ बं० ६१०



पौन पाण्डव आयु के कम से पाँच दिनों में द्रौपदी के पास गये (म० भा० १।१६१।८, १।१६८।१३)। इसे शास्त्रीय परिभाषा में परिवेदन कहते थे। गौ० धर्मसूत्र (१।१।१०) तथा आप० धर्मसूत्र (२।५।१२-२२) बड़े भाई के विवाह से पहले अपना विवाह (परिवेदन) करने वाले छोटे भाई (परिवेता) को आह में बुलाने योग्य नहीं मानते। विष्णुधर्मसूत्र (३७।१५-१७) परिवेदन की गणना उपपातकों में करता है। दाम्नात में परिवेदन में पाप का विचार बहुत प्राचीन है और तै० ब्रा० (३।२।६) में भी यही एक कथा के अनुसार मनुष्यों में पापियों की एक कमबद्ध गृध्ना है। इस परिभाषा में गर्गशीत (अविवाहित बड़ा भाई) और परिवेता (विवाहित छोटा भाई) की गणना की गयी है। संक्षिप्त धर्मसूत्र (१।१८) में पापियों की गणना में परिवेता और गर्गशीत दोनों गिनाने गये हैं। तै० ब्रा० (३।४।४) के पुण्यमेव प्रकरण में परिवेति, गर्गशीतदान और विभिन्न प्रति का सम्बन्ध निर्दिष्ट, अति और अराटि (असफलता) के साथ बताया गया है। दामा० ४।१७।३६ में राजघातक, ब्रह्मघातक, गोघातक, चोर, हिंसक, नास्तिक के साथ परिवेता की गिनती करते हुए, उसे नरकगामी कहा गया है। महाभा० (१२।१६५।६८-६९, १२।३५।२७-२८) में परिवेता के लिए चान्द्रायण और कृच्छ्र नामक प्रायश्चित्तों का विधान किया गया है। मनु (३।१७१-७२) में कहा गया है कि जो अपना बड़ा भाई रखने पर भी विवाह करता है और चारुपत्यादि अग्निषों में प्रज्वलित करता है उसे परिवेता (आप० धर्मसूत्र २।५।१२।२२ इसे परिनिविधान और दामा० १।२२३ परिनिन्दक कहता है) कहते हैं और बड़े भाई को परिवेति। परिनिवि, परिवेता, व्वाही जाने वाली कन्या, कन्या का दाता तथा विवाह-संस्कार करने वाला—ये पाँचों व्यक्ति नरकगामी होते हैं। इस महापाप से मुक्त होने के लिए संक्षिप्त, हारीत, शंख, यम में कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र व चान्द्रायण प्रायश्चित्तों की व्यवस्था की है। विशालेखर ने शास्त्र ३।२६५ पर इन मतों का विस्तार से उद्धृत किया है।

कुछ अवस्थाओं में सूत्रकार परिवेदन को पाप नहीं मानते और छोटे भाई को बड़े भाई से पहले विवाह की अनुमति प्रदान करते हैं। गौ० धर्मसूत्र (१।१।१८।१९) कहता है कि यदि बड़ा भाई विदेश चला जाय तो छोटा भाई १२ वर्ष प्रतीक्षा करके अग्न्याधान करे तथा कन्या के साथ विवाह करे। कुछ लोगों का मत है कि वह छः वर्ष ही प्रतीक्षा करे। हरदत्त ने इस सूत्र पर संक्षिप्त का मत उद्धृत किया है कि ८, १० या १२ वर्ष प्रतीक्षा न करने वाला पापी होता है, १२ वर्ष तक उसकी प्रतीक्षा करना न्याय्य है। मध्यावस के स्मृतिकारों एवं निबन्धकारों ने इस नियम में कई अन्य अववाद भी बताये हैं। अतिसंहिता (१०५-६) बड़े भाई के तपस्यु, विदेशस्थ, पतित, मंग्यामी और योग-धातु का अभ्यासी होने पर परिवेदन में कोई दोष नहीं समझती। इतना ही नहीं,

बड़े बड़े भाई के कुबड़े, बौने, नपुंसक, गहिल, जड़, अन्धे, बहरे और मूमे होने पर परिवेदन में कोई बाप नहीं देखती।<sup>१०</sup>

### परिवेदन का कारण

बड़े भाई द्वारा पहले विवाह करने के नियम का कारण संयुक्त परिवार पद्धति थी। संयुक्त परिवार में बड़े भाई के विशेष अधिकार माने जाते थे। उसके अविवाहित रहने हुए दूजने भाइयों को विवाह का अधिकार देना उचित नहीं प्रतीत होता था। केरल प्रान्त के तम्बूदरी ब्राह्मणों में बड़े भाई का यह अधिकार इतना अधिक है कि विवाह करने का एगमात अधिकार १६३३ तक उसी को था। मध्यभाग में परिवेदन का नियम शिथिल होने लगा। संयुक्त परिवार पद्धति के विघटन के साथ-साथ इस नियम का भी अंत होने लगा। अब हिन्दू समाज में इस नियम का विवाह में कहीं भी बाधक नहीं माना जाता है। इसकी बात अवश्य है कि इस पर काफी ध्यान रखा जाता है कि बड़े भाई का विवाह पहले हो।

यूरोप में घर की अयोग्यताओं में से एक यह भी है कि विवाह के समय उनकी कोई बहुवी पत्नी जीवित नहीं ज़ांवी चाहिए। हिन्दू धर्मशास्त्रों ने इस प्रकार की कोई निश्चित व्यवस्था नहीं की। आश्व. धर्मसूत्र (२।१।१।१२-१३) धर्म और प्रजा का उद्देश्य पूरा होने पर अन्य विवाहों का निषेध करता है और दूसरा विवाह करने पर १।१।२८-१६ में इस पाप का प्राचक्षित भी बताया है। नारद (२।६४) पुत्र मानी, अनुकूल, दश स्त्री को छोड़ने वाले स्थिति को राजा द्वारा दण्डनीय बताया है, किन्तु मासान्तकः पुरुषों को विवाह के मामले में बड़ी छूट थी और घर की गहनी पत्नी होता, घर के विवाह में बाधक नहीं समझा जाता था। श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने मनु० ३।१२-१३ में यह सिद्ध करना कहा है कि एक पत्नी के रहते हुए दूसरा विवाह नहीं हो सकता, किन्तु यह बात उचित नहीं जान पड़ती। मनु (३।१२-१३) से उलका मत गुप्त नहीं होता और मनु (६।८१) से तो स्पष्ट रूप से उनके मत का खण्डन हो जाता है।

### बधू का चुनाव

हिन्दू शास्त्रकारों ने घर की अपेक्षा बधू के गुणों का और चुनाव के ढंग का अधिक वर्णन किया है। यह स्वाभाविक है क्योंकि घर का सुख, समृद्धि और शान्ति पत्नी पर ही

<sup>१०</sup> मेघातिथि ने मनु ३।१७१ में पहले श्लोक में मितता-जुलता श्लोक उद्धृत किया है। गोपिल स्मृ० १।७२-७४ के इस आशय के श्लोकों को मनु २० पृ० ६०, विक्रान्त मन्धन (१।६८।७७) में उद्धृत किया है। स्मृत्यर्थसार ५० १३ तथा औरमिखोवय ने पृ० ७६०-६६ में परिवेदन का विस्तृत वर्णन किया है। परा० (४।२४),

अव्यभिक्त है, पत्नी गृहस्थ का मूल आधार है। उसके अच्छा होने पर घर स्वर्ग ही प्रकट होता है और बुरा होने पर नरक, अर्थात् उसकी गुणों का विस्तार में प्रतिपादन आवश्यक था।

### वधू के गुणों का तारतम्य

घर में जो योग्यताएँ या गुण वृद्धि जाते हैं, वधू में भी उन गुणों का कुलमात्रा बराबर होनी चाहिए। वधू का कुल अच्छा होना चाहिए, धन तथा रूप सुवर्ण होना चाहिए, वधू का बुद्धिमान होना भी आवश्यक है। यदि वधू में ये सब गुण पाये जायें तो परम भीमात्मकी बनने दे। किन्तु यदि इनमें किसी गुण की न्यूनता हो तो क्या किया जाय? इनमें से कौन से गुण आवश्यक हैं और कौन से अनावश्यक? भारद्वाज गृह्यसूत्र (१:११) ने इन पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला है। वधू कहता है—“यदि सब गुण न पाये जायें तो धन की उपेक्षा करे। धन के बाद स्नान की उपेक्षा करे, किन्तु कुल और बुद्धि में किसी महत्ता दे, दस विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ कहते हैं कुल को महत्त्व देना चाहिए, दूसरे बुद्धि को अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं। आश्वलायन गृह्यसूत्र (१:५:१६) ने वधू के बुद्धि, रूप, मील लक्षण युक्त होने पर तौरांग होने पर बल दिया है। मनु० (३:४), मात० (१:५२), शांखा० सू० (१:५:६) ने कन्या के उत्तम लक्षणों वाली होने पर बल दिया है। ये लक्षण घर के लक्षणों की तरह शारीरिक विशेषताओं को सूचित करते हैं, कन्या के भ्रम्य और आयु को बताते हैं। गृह्यसूत्रों के समय से ही इन लक्षणों की बहुत महिमा गायी गयी है। मी० सू० सू० (२:१:३) कहता है—“स्त्री के लक्षणों को जानने वाले अतुर व्यक्ति द्वारा कन्या की परीक्षा कराये। उत्तम लक्षणों या चिन्हों वाली स्त्री को पत्नी बनाये।” मनु० (३:८-१०), शि० घ० सू० (२:४:१२-१६), मा० घ० सू० (१:३८), वात्स्यायन कामसूत्र (३:१:२), बृहत्संहिता (७:०:१) में इन लक्षणों की विस्तार से चर्चा है। वा० का० सू० का वर्णन अधिक संक्षिप्त एवं स्पष्ट होने के कारण पहले यहाँ उसी के आधार पर वधू के गुणों पर विशेष प्रकाश डाला जायगा। कामसूत्र इनका वर्णन करते हुए कहता है—

“कन्या उत्तम कुल वाली, माता-पितायुक्त, घर से तीन वर्ष कम आयु वाली होनी चाहिए। उल्लास्य आचार वाली, धन-धान्य परिपूर्ण, स्नेह रखने वाली तथा शूद्र संघर्षियों वाले कुल में उत्पन्न, रूपवती, मीलवती, लक्षणयुक्त बिल्कुल पुरे (न अधिक न कम और न नाट्य हुए) दांत, ललाटे, कान, केश, आँखें और स्तन रखने वाली तथा स्वस्थ शरीर की कन्या का बरण करे।”

वात्स्यायन कन्या के (३:१:१२) सौन्दर्य दोषों को गिनाता हुआ कहता है कि

महामा० (१:२:३४:२७) में भी छोटे भाई को उपर्युक्त बसाओं में विवाह का अधिकार दिया गया है।

ऐसी कन्याओं के साथ सम्बन्ध न करें। वे १६ इन प्रकार हैं—(१) वरेण्य वाली कन्या, (२) ऐसी कन्या जिसे छिया कर रखा गया हो, (३) जादना, (४) भूरी या कपिला (सि० मनु० ३।२), यह पनि को मारने वाली समझी जाती, (५) सफेद दागों वाली (पुण्या), ऐसी कन्या के बारे में यह विचार था कि वह धन का मुचलान करने वाली होती है, (६) मर्दान्नी श्रीम (युग्मा), (७) अने काने वाली (८) अमंगल आंखों वाली, (९) बड़े मोठे वाली, (१०) मूल पिता की किरा करने के कारण अमृद, (११) किसी दूसरे गृहम द्वारा युगित अमयात्ता नामक गन्तान वाली, (१२) रजम्बला, (१३) गर्भवती, (१४) मिला (१५) जिस को छोटो कहिन हो, (१६) जिसके हाथ पैरों में पसीना निकलता हो (पर्यवारी)।

कन्या के लक्षणों का तथा इन लक्षणों के फलों का विस्तृत उल्लेख ग्योनिप के ग्रन्थों में पाया जाता है। बृहन्महिषा, ग्योनिनन्दन आदि ग्रन्थों में इनका बहुत विस्तृत वर्णन है। उदाहरणार्थ, जिस कन्या के हाथ में कपट्टी से निकली रेखा मध्यमा उंगली तक चली गयी हो वह कन्या भ्राम्यकवी होती है, ऐसी स्त्री के साथ विवाह करना चाहिए। स्त्री का लम्बाट लम्बा होने से पता चलता है कि उसके देख का मान होता, उदर लम्बा होने से पक्कुर तथा मितम्ब दीर्घ होने से मधामी का मान होता है। ऐसी सुलक्षणा कन्या कभी नहीं ग्रहण करना चाहिए। प्राचीन काल में कपिल ग्योनिप का विचार बहुत प्रचल था और उसी के आधार पर इन लक्षणों की कन्या की गयी।<sup>११</sup>

**मृत्पिण्डों द्वारा लक्षण परीक्षा**—उपर्युक्त लक्षणों की परीक्षा कोई आसान बात नहीं है। गोभलि० पृथ्वसू० १।२।२ में इन लक्षणों की परीक्षा कुशल व्यक्ति से कराने का आदेश दिया गया है। कुशल धार्मिक यदि मुनम न हो तो उस इला में क्या किया जाय ? गृह्यसूत्र संभवतः इन लक्षणों के गौरवार्थ में बचने के लिए उसके चुनाव का एक विचित्र किन्तु मुषम उपाय बताते हैं। इनके अनुसार विभिन्न स्थानों में नये गये मिट्टी के ढेरों से बण के प्रविष्ट की जानकारी की जाती है। आश्व० सू० सू० (१।२।४-६) में कहा है कि मिट्टी के आठ पिण्ड बनाये जायं। वे आठ पिण्ड विभिन्न स्थानों की मिट्टी से बनाये गये हों—पहला पिण्ड वर्ष में दो कसाने देने वाले क्षेत्र की मिट्टी से, दूसरा गौशाला में, तीसरा वज्रवेदी में, चौथा कभी न सूखने वाले तालाब से, पाँचवाँ जूए के स्थान में, छठा जोगड़ में, सातवाँ बजर स्थान से और आठवाँ मशान से मिट्टी निकर बनाये जायं। इन आठ पिण्डों पर 'ऋतमर्ग' का मन्त्र पढ़े। इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—'ऋत सृष्टि में सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ, ऋत में सत्य प्रतिष्ठित है। यह कुमारी जिसके लिए उत्पन्न हुई है उसे ग्रहण करे, जो सत्य है वह दिखायी दे।' उन पिण्डों पर यह मन्त्र पढ़ कर

<sup>११</sup> भाग्यप्रसाद वसु के हिन्दी विश्व कोश खण्ड २१, पृ० ५६२-६४ पर कन्या के ऐसे लक्षणों का विस्तृत विचार किया गया है।

यह कुमारी से कहता है कि वह उनमें से एक पिण्ड ग्रहण करे। वह जो पिण्ड चुनती है, उसमें उसकी परीक्षा हो जाती है और उसके भाग्य का पता लग जाता है। यदि उसने फलसे देने वाले खेत का पिण्ड चुना है तो उसके पुत्र प्रचुर अभव वाले होंगे। यदि उसने गोमाला का पिण्ड चुना है तो वह खूब भण्डों वाली होगी। इसी तरह वेदी के पिण्ड में उसका बहुतेज्य पुत्रपुत्र, न सृष्टते वाले तात्प्राय के पिण्ड से प्रत्येक वस्तु से मुक्त होना, जुग के स्थान वाले खेत में जुआरी, चौराहे वाले पिण्ड से स्वैरिणी, बंजर में गरीब, और समानतः वाले से उस कन्या के पतिधामी होने का पता लगता है।

नीलित गृह्यसूत्र (२।१।१) भी यही विधि बताता है। अनंतर केवल इतना है कि उसके मत में इन आठ पिण्डों के अतिरिक्त सब पिण्डों से बौड़ा-बौड़ा अन्न लेकर नया पिण्ड बनाना चाहिए। "अतमन्ने प्रथम" के मन्त्र से वह कुमारी कोई एक पिण्ड उठावे, यदि वह पहले चार पिण्डों में से किसी को उठाती है तो उसके साथ विवाह करने, कुछ लोगों के मत में निमित्त पिण्ड उठाने पर भी उसके साथ विवाह किया जा सकता था।

आष० गृ० सू० (३।१५-१८) में इस विधि का यह रूप दिया गया है कि पाँच पिण्डों को ऊपर से एक जैसा बनाये और उन के भीतर विभिन्न वस्तुएँ छिपा कर रखे। पहले पिण्ड में नाना प्रकार के बीज, दूसरे में वेदी की धूल, तीसरे में खेत का डेला, चौथे में गोबर और पाँचवें में श्मशान का डेला छिपाये। कन्या को इन पिण्डों में से किसी को स्पर्श करने को कहें। पहले चार पिण्डों का छूना आदि का सूचक है। इसी प्रकार की वधु परीक्षा की विधियाँ बराह गृ० १०, भार० गृ० १।११, मानव गृ० १।७।६-१० में दी गयी हैं। यह एक प्रकार की लाटरी ही है।

**कन्या की गृणपरीक्षा का सुगम उपाय**—कन्या के गुणों की यह पहचान भी बहुत जटिल है। आष० गृ० (३।२१) इस विषय में एक बहुत सरल नियम देता है। उसके के अनुसार कुछ व्यक्तियों का मत है कि जिस कन्या में दिल और आँख लग जाय उसी कन्या से कल्याण प्राप्त होता है, उससे अन्य वस्तुओं की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए (यस्यां मनश्चक्षुर्धोनिबन्धस्तस्यामुद्दिनेतरदाप्रियेत्येके)। भारद्वाज गृह्य० इसी नियम का और भी अधिक सहृदा देता हुआ कहता है कि जिसमें मन और आँख लग गयी है उसमें शान या पिण्ड के धूल को नहीं डूँढ़ना चाहिए। वा० कान्वसूत्र ३।१।१४ में बहुत मामूली परिवर्तन के साथ आष० गृ० ३।२१ का उपर्युक्त वाक्य उद्धृत किया गया है। वास्तव में कन्या चरण करने का इससे अधिक सरल उपाय कोई दूसरा नहीं हो सकता है।

गौतम धर्मसूत्र ४।१, व० ८।१, पात्र० १।५२, मनु० ३।४ में वधु के अपनी जाति की होने तथा अवतथोनि होने पर बल दिया है। सजातीय विवाहों के प्रकरण में हम यह देख चुके हैं कि सजातीय विवाह का मन्धन जैसे प्रारम्भ हुआ और इसके अतिरिक्त शास्त्रों में कन्या का अवतथोनि होना भी अच्छा माना गया है। यह स्वाभाविक है कि पुरुष भुक्त-पूर्वा कन्या को पसन्द न करे। नारद (५।३६) संसृष्टमधुना को विवाह के लिए अयोग्य



रघुनन्दन ने उद्वाहृतत्व से माता के नाम वाली कन्या से शादी का निषेध किया है। यदि किसी ऐसी कन्या से सम्बन्ध हो गया है तो उसका नाम बदल कर उससे शादी करनी चाहिए। गुरु की कन्या के साथ भी पाणिग्रहण वर्जित है। महा. (१।३३) में देवराणी ने जब कच से विवाह का प्रस्ताव किया तो कच ने उसे दण्ड आधार पर अस्वीकृत किया कि वह गुरुपुत्री होने के कारण धर्म की दृष्टि से उसके लिए पूज्य है (१।३३।३)। देवराणी के अधिक आग्रह करने पर कच कहता है—'हे शम्भुनन्दन, तुम मझे अस्वीकृत कार्य के लिए कह रही हो। हे शम्भु, प्रसन्न होओ। तुम मेरे लिए गर्म में भी अधिक बर्ताओ। लुम्बाचार्य की जिम कोश में मुझे बास किया था उसी कोश में घेत बास किया है। इससे धर्मानुसार तुम मेरी वंशज हृषीकेश की पुत्री की वास न कहना (१।३३।१२-१४)। इस नियम के दो कारण दर्शाते हैं, पहला तो यह कि आचार्य दूरीय पिता सम्मता आता था (मनु २।१७१) और पिता की कन्या से शादी कन्या बहिन से शादी कन्या के समान अवश्य था। दूसरा कारण यह था कि पुराने समय में विशाचिमी की मिष्टा पदवी के कुत्त से हुंती थी, वे उसके घर पर रहते थे और, गुरु के परिवार से उनका सम्बन्ध सम्बन्ध होता था। इस बातबरण से अनुचित सम्बन्धों को रोकने के लिए यह आवश्यक था कि गुरु-कन्याओं के साथ विवाह को निषिद्ध ठहराया जाय।

मनु ३।११ व याज्ञवल्क्य १।४३ वधू के भ्रातृमयी होने पर बल देते हैं। उनके मतानुसार जिस कन्या का कोई भाई नहीं है उससे शादी विवाह नहीं करना चाहिए। शम्भु (१।१२४।३) एवं लघर्ष (१।१३।१) से इसके मकल है तथा वास्क ने निकत में (१३८-९) इसकी विस्तार से चर्चा की है। मनु ने अन्ध्रातृमयी कन्या के निषेध का कारण उस लड़की की पुत्रिका बनाने की सम्भावना को माना है। पुराने समय में जब किसी का पुत्र नहीं होता था तो वह लड़कों को पुत्रिका बनाता था और दौहित्र को अपना लड़का समझता था। अपने बामाता से वह यह कर्त करता था कि वह उसके घर में रहेगा, उसकी लड़की का लड़का (दौहित्र) अपने पिताकी पिण्ड दाल न देकर अपने नाना की पिण्ड दान करेगा था। पिता के पिण्ड दान से वंचित रह जाने के कारण अन्ध्रातृमयी कन्या से विवाह कन्या बहुत बुरा समझा जाता था। किन्तु आजकल स्थिति बिल्कुल बदल गयी है। लोग ऐसी कन्या को अधिक पसन्द करते हैं, क्योंकि उससे शम्भु की सम्पत्ति मिलने की सम्भावना हुंती है।

मनु ने (३।४) तथा दूसरे शास्त्रकारों ने सपिण्ड, सगौल तथा याज्ञवल्क्य (१।४३) एवं अन्य सूत्रकारों व स्मृतिकारों ने समानप्रकार वाली कन्या से शादी का निषेध किया है। पिछले अन्धकारों में इनका विस्तृत विचार ही चुका है। जिस स्त्री का एक ब्राह्म विवाह

लेख में पहले इस प्रथा का बहुत अधिक विचार था। वाष्क कहता है कि यदि किसी छोटी बहिन को पहले शादी हो जाती थी तो बड़ी बहिन उसको शादी पर जूते उतार कर नाचती थी ताकि उनका कुर्मांग दूर हो सके वे० शा० हि० सं०, पृ० ३६-३८।

हो चुका हो उस स्त्री का दुबारा विवाह नहीं हो सकता, क्योंकि पाणिग्रहण संस्कार के मन्त्र तब केवल कन्याओं के लिए ही पढ़े जाते हैं<sup>१३</sup> एक बार हिन्दू कन्या किसी पुरुष को स्वी होने पर उसने किसी प्रकार अलग नहीं हो सकती<sup>१४</sup> और कन्या का बाल एक ही बार होता है<sup>१५</sup>। यह केवल प्राचीन शास्त्रों का विधान हो ऐसी बात नहीं। भारतीय दण्डविधान को धारा ४६४ के अनुसार जीवित पति वाली स्त्री का दूसरे पति से विवाह एक दण्डनीय अपराध है।

मनु ने विधवाओं को विवाह के अयोग्य उद्घोषा है। मनुस्मृति के पंचम अध्याय के अन्त में (११७-१६०) यह उपदेश दिया गया है कि पति के मरने पर वह ब्रह्मचर्यपूर्वक रहे, पुत्र प्राप्ति के लालष में भी मृत पति का अतिक्रमण न करे, साध्वी स्त्रियों का कोई दुःख स्वामी नहीं हुआ करना। पराशर तथा नारद ने प्रत्येक विधवाओं को पुनर्विवाह ही अनुमति दी थी, तथापि मध्यकाल में इसे निषिद्ध हो समाप्त जाता रहा।<sup>१६</sup> १८६६ में विधवा-पुनर्विवाह कानून से विधवाओं को विवाह करने की आज्ञा मिली।

सेलापक या सेलत—मध्य युग में वर-वधू की जन्मकुम्भशी मिलाकर विवाह करने की परिघाटी प्रचलित हुई<sup>१७</sup> और आज तक प्रचलित है। इसका मूल उद्देश्य बहुत मन्दरा था। वर और वधू में जितनी अधिक बातों की अनुकूलता होगी उनका जीवन उतना अधिक सुखमय होगा। उनके स्वभाव, रुचियाँ, प्रवृत्तियाँ एक जैसी होनी चाहिए। यूरोप के कुछ आधुनिक विचारक इस बात पर बल देते हैं कि विवाह से पहले वर-वधू इसाट्टे रह बार पारस्परिक अनुकूलता को देखें, किन्तु भारतीयों में इसका हल ज्योतिष से बंध निकाला था। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव अपने जन्म के समय के

<sup>१३</sup> मनु ८।२२६—पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेष प्रतिष्ठिताः।

<sup>१४</sup> मनु ६।४६—न निष्कण्डविसर्गास्यां भर्तुर्मायां प्रमृच्यते।

<sup>१५</sup> बहो ६।३७ सकृदंगो निपतति सकृत्कन्या प्रवीयते।

<sup>१६</sup> दे० आगे—विधवा विवाह का प्रकरण, 'पृ० ३३६-३२

<sup>१७</sup> बैकमान (Backmann) ने On the Soul of Indian Woman (पृ० १८९) में यह मत प्रकट किया है कि जन्मपरिचयों का मिलाना ४०० ई० से हिन्दू समाज में प्रचलित हुआ है, इसी समय से बाल विवाह होने लगे थे। माता-पिता एक ऐसी व्यवस्था चाहते थे जिसके अनुसार उनके द्वारा किया गया शिष्टाचार का वैवाहिक सम्बन्ध ईश्वरीय व्यवस्था की स्वीकृति प्राप्त कर सके तथा उन्हें इस बात का विश्वास हो सके कि उनके बच्चों का दाम्पत्यजीवन सुखमय होगा। आजकल बालविवाह की प्रथा कम हो जाने पर भी माता-पिता जन्मपरिचयों के मिलाने पर बहुत बल देते हैं, क्योंकि वे इससे वर-वधू के चुनाव के भारी उत्तरदायित्व से बहुत कुछ मुक्त हो जाते हैं। वैवाहिक जीवन सुखमय



नक्षत्रों से निश्चित होता है। अतः दो व्यक्तियों में अनुकूलता देखने के लिए जन्मकुण्डलियों का मिलाना आवश्यक हो जाता है। विवाह के समय वर और वधू की कुण्डलियाँ देख कर शुभाशुभ स्थिर करने की मोटक या मेलन कहते हैं। यह मेलन बाठ भागों में बाँटा जाता है—ग्रहमैत्रीकूट, राशिकूट, वर्षकूट, वरमकूट, ताराकूट, योनिमूलाकूट, मूलाकूट, विनाडी कूट। तर्कवाद के वर्तमान युग में फलित ज्योतिष तथा उसके आधार पर की गयी कल्पनाओं का अमान्य होगा सर्वथा स्वाभाविक है। यदि थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाय कि प्रहों और नक्षत्रों का हमारे शरीर और स्वभाव पर असर पड़ता है, तो भी विवाह में कई कारणों से इनके फलाफल और शुभाशुभ की शुद्धता में शन्देह करने से प्रबल कारण है। पहला कारण तो यह है कि २२ प्रतिशत जन्म-कुण्डलियों में जन्म के समय के ग्रहों और राशियों की गणना कल्पित होती है। ज्योतिषाचार्य कहते हैं कि जन्म के समय के ज्ञान में एक दो पल का अन्तर होने से आकाश-मानस का अन्तर हो जाता है।

जन्मपत्र बनाने वाले पण्डितजी को धार्य ही कभी किसी बच्चे के जन्म का ठीक समय बताया जाता है। देहात में मध्ते नहीं लगते, बड़ियाँ नहीं होती और बच्चा पैदा होने के कई दिन बाद पण्डितजी को बताया जाता है कि अभीक दिन शाम के समय कलनु के लड़का हुआ है। यदि पण्डितजी ने शाम के समय का कुछ अधिक धारीकी में जानना चाहा तो यह उत्तर मिलता है कि गर्यो चर कर आ गर्यो बी। ज्योतिषी जी के लिए इतना संकेत पर्याप्त है। समय के इसी निर्भ्रान्त और अचूक ज्ञान के आधार पर ज्योतिषी जी जन्मपत्रों की ऊँची इमारत उठाते हैं और इसी शगुलक के द्वारा देखी गर्यो जन्म और गृहादि की स्थिति का निश्चय करते हैं। फिर इसी पर अविवल विश्वास करके विवाह काल उपलब्ध होने पर सबके-लड़कियों के आजीवन भाग्य विधान का अनुष्ठान होता है। इससे बढ़कर क्या विश्म्बना होगी? उपर्युक्त कारणों से जन्मकुण्डलियों के आधार पर वैवाहिक विचार को प्रामाणिक एवं आवश्यक नहीं समझा जाना चाहिए। किन्तु हिन्दू विवाहों में इनका बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऊपर हमने आठ कूट पनाये हैं। इनके आधार पर ३६ मूण निमत किमे गये हैं। जिस प्रकार विश्वविद्यालयों की परीक्षा में नियत बंक लेना आवश्यक होता है और उससे कम बंकों वाला परीक्षार्थी अनुत्तीर्ण समझा जाता है, वैसा ही नियम वर और वधू के लिए भी है। उन्हें ५० प्रतिशत अर्थात् १८ मूण

होने पर वे इसे भाग्य का परिणाम समझते हैं। बंकमान ने सिखा है कि जन्मपत्रों में विश्वास रखना एक ओर तो यह सूचित करता है कि भाग्य की रेखा अटल है और दूसरी ओर इसे पहले से ही जानने तथा अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया जाता है। वर्तमान वैज्ञानिक युग में भी जन्मपत्रों मिलाना आवश्यक समझा जाता है तथा कई बार वैवाहिक विचारणों में इसका स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाता है।

अवश्य प्राप्त करने चाहिए और उपर्युक्त ८ कूटों में अलग-अलग ५० प्रतिशत गुण करने चाहिए। इस विषय में जिन्हें अधिक कुतूहल हो वे मुहूर्तचिन्तामणि, दीपिका, राजमार्तण्ड आदि ग्रन्थ देख सकते हैं।<sup>१५</sup>

### वैवाहिक प्रतिबन्धों के दुष्परिणाम

हिन्दू विवाहों के उपर्युक्त प्रतिबन्धों के कारण घर और अधू के चुनाव में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। लड़के तो फिर भी कुछ देर तक अविवाहित रह सकते हैं, किन्तु कन्याओं का विवाह तो आचार हाँकर करना ही पड़ता है। कन्या के पिता का घर खूँझने और उसे सन्तुष्ट रखने में बितनी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं उन्हें भुक्तभोगी ही जानते हैं। एक ग्रामगीत में यह बिल्कुल ठीक कहा गया है कि जिस के घर में खारी कन्या हो भला उसे कैसे जीव आ सकती है। इन कारणों से हिन्दू घरों में कन्या के जन्म पर बहुत दुःख मनाया जाता है।<sup>१६</sup>

### वर-वधू के चुनाव की आधुनिक प्रवृत्तियाँ

वर्तमान युग में वर-वधू के चुनाव में तथा उनके लिए आवश्यक गुणों के स्वरूप में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं। पहला परिवर्तन वर-वधू द्वारा अपना जीवन साथी चुनने में स्वतन्त्रता की माँग करना है। पहले वर-वधू का चुनाव माता-पिता किया करते थे। बाद विवाह के प्रचलन के बाद यह सर्वथा स्वामाधिक था, माता-पिता द्वारा निर्धारित विवाह (Arranged marriage) हिन्दू समाज का सार्वभौम नियम था। किन्तु वर्तमान युग में पिछा के प्रसार से विवाह की आयु ऊँची उठने पर समानता और स्वतन्त्रता की भावना से ओतप्रोत हिन्दू युवक-युवतियाँ इस बात की माँग करने लगे हैं कि विवाह जैसे महत्वपूर्ण विषयों के निर्धारण में उनकी सम्मति और सहमति ली जानी चाहिए। इस विषय में हिन्दू समाज में होने वाला परिवर्तन एक हिन्दू नारी के निम्नलिखित कथन से स्पष्ट होगा—  
“जब हमारा विवाह हुआ था तो मेरी आयु १० वर्ष की तथा पति की आयु १६ वर्ष की थी, मेरे माता-पिता ने विवाह से पूर्व मेरे पति को तथा उन के माता-पिता ने मुझे देखा था, किन्तु हम दोनों ने विवाह संस्कार से पहले एक दूसरे को नहीं देखा था। किन्तु पिछले कुछ वर्षों में एक नयी प्रथा का श्रीगणेश हुआ है, इसे लड़की देखना कहा जाता है। जब मेरी लड़की की मादी हुई तो उस समय यह प्रथा प्रचलित हो चुकी थी। उसने तथा उसके भावी पति ने

<sup>१५</sup> इस विषय के संक्षिप्त वर्णन देखिए हिन्दी विश्वकोश (कलकत्ता) खण्ड १६, सौटक शब्द, पृ० ७४६-४७।

<sup>१६</sup> इसके विषय वर्णन के लिए देखिए हरिवन्त वेदालंकार—हिन्दू परिवार भीमांसा पृ० १६७-२०७।

एक-दूसरे को देखा, किन्तु उन्हें एक-दूसरे से बात करनेकी अनुमति नहीं दी गयी थी। किन्तु जब मेरी पोती का विवाह हुआ तो लड़के-लड़की ने आपस में बातचीत की और विवाह में पहले उन्हें घर से बाहर घूमने जानेकी अनुमति भी दी गयी थी। यद्यपि उनका यह विवाह माता-पिता ने तय किया था<sup>२०</sup>। माता-पिता द्वारा विवाह तय करने में न केवल युवकी को उनके परिपक्व अनुभव का पूरा लाभ मिलता है, अपितु वे अपने मापी का चुनाव करने में होने वाली परेशानियों और संझटों से बच जाते हैं। यह तथ्य बम्बई में स्वर्ण रूप में आजीविका कमाने वाले तथा अनुसंधान कार्य करने वाले एक नवयुवक के निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट हो जायगा—“यद्यपि मैं १० एच० बी० ग्राण करने के बाद फौरन विवाह करना चाहता हूँ, किन्तु मैंने इस प्रश्न पर विचार नहीं किया है कि मैं किस प्रकार की लड़की से विवाह करूँगा। इस विषय में मैं अपने पिताजी पर भरोसा रख रहा हूँ की वे मुझे एक लड़की चुँड देंगे और मुझे इस विषय में कोई परेशानी नहीं उठानी पड़ेगी। मेरे माता-पिता ने मुझे कुछ इस विषय में चुनाव करने का अल्पिम अधिकार दिया है, आशय मे इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि मैं उनकी दृष्टिकोणों के प्रतिबल कार्य नहीं करूँगा।”<sup>२१</sup>

रास द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण में बर-बधू के चुनाव के विषय में अविवाहित (unmarried), हाल में विवाहित (young married) तथा विन्काम में विवाहित (older married) स्त्री-पुरुषों से यह पूछा गया था कि वे अपने जीवन-साथी के चुनाव के बारे में पूरी स्वतंत्रता (complete choice) चाहते हैं, कुछ स्वतंत्रता चाहते हैं या कोई स्वतंत्रता नहीं (no choice) चाहते। इस विषय में वर-नारियों के उत्तर निम्न-लिखित तालिका में प्रदर्शित किये गये हैं।<sup>२२</sup>

वारिषी	चुनाव में पूरी स्वतन्त्रता	कुछ स्वतंत्रता	स्वतंत्रता का न होना	सर्वयोग
अविवाहित	७	५	५	१६
कुछ समय पहले विवाहित	३	५	५	१३
चिरकाल से विवाहित	२	१०	१०	२२
सिद्धियों की कुल संख्या	१२	२०	२०	५२

२० एलीन रास—वी हिन्दू कॉमिलो इन इन्स अर्बन सेटिंग, पृ० २५२

२१ एलीन रास—पृ० पु०, पृ० २५२

२२ एलीन रास—पृ० पु०, पृ० २५५

पुरुष	चुनाव में पूरी स्वतंत्रता	कुछ स्वतंत्रता	स्वतंत्रता का न होना	सर्वयोग
अविवाहित	१०	२१	३	४२
कुछ समय से विवाहित	६	८	१०	२४
बिचकाम से विवाहित	—	७	४	११
पुरुषों की कुल संख्या	२०	३६	१७	७३
सर्वयोग	३६	६६	२७	१२९

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि बिचकाम से विवाहित स्त्री-पुरुषों की अपेक्षा अविवाहित वर-नारियों में यह अच्छा निश्चित रूप में अधिक मात्रा में है कि उन्हें वैवाहिक साथी चुनने में स्वतंत्रता होगी चाहिए। ४२ पुरुषों में केवल तीन ही पत्नी का चुनाव माता-पिता पर छोड़ना चाहते थे। अविवाहित स्त्रियों में १४ पूरी या आंशिक स्वतंत्रता चाहती थी और पाँच अब भी अपने पति के चुनाव का भार माता-पिता के कंधों पर ही डालना चाहती थीं। इस तालिका की व्याख्या करते हुए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यद्यपि अविवाहित स्त्री-पुरुष वैवाहिक साथी के चुनाव में पूरी स्वतंत्रता चाहते हैं, तथापि यह संभव है कि उन्हें यह स्वतंत्रता न मिले। अब भी वर-नारियों की ऐसी संख्या पर्याप्त है जो चुनाव का भार माता-पिता पर डालना चाहती हैं। कुछ पुरुषों ने माता-पिता द्वारा निर्धारित विवाहों का समर्थन इस आधार पर किया है कि वे विवाह कई तत्त्वविशेषों से बने आ रहे हैं, वे सुखमय होते हैं, विवाह का निर्णय इतना महत्वपूर्ण है कि इसमें माता-पिता का परामर्श और यथप्रदर्शन अत्यावश्यक है।

आधुनिक हिन्दू युवक और युवतियाँ अपने वैवाहिक साथी में जिन गुणों की आवश्यक समझते हैं, उन पर नवीन सर्वेक्षणों से बहुत गंभीररूप से प्रकाश पड़ता है। पहले वर-वधू के गुण माता-पिता द्वारा देखे जाते थे, अब बड़ी आयु में विवाह होने के कारण युवक-युवती इन पर विचार करने लगे हैं। राश द्वारा किये गये सर्वेक्षण के आधार पर अविवाहित तथा विवाहित वर-नारियों ने अपने साथी में जिन गुणों की आवश्यक समझा है, उनकी प्राथमिकता एवं महत्ता के क्रम से निम्नलिखित तालिका में स्पष्ट किया गया है।

## वर-वधू के प्रभोष्ट गुण

गुण	वर		वारी	
	अविवाहित	कुछ समय पूर्व विवाहित	अविवाहित	कुछ समय पूर्व विवाहित
वरिष्ठ	४१	३	१७	११
समानता	३४	७	१२	३
उत्तम शिक्षा	२८	१	६	२
वर का कार्य	२१	७	—	—
रूप	१६	२	१	—
सामाजिकता	१३	—	४	—
नैतिक संबंध	१०	—	१२	४
सर्वयोग	१६३	२०	५४	२१

उपर्युक्त तालिका में दिये गये गुणों का स्वरूप इस प्रकार था—स्त्रियों के लिए वरिष्ठ का अधिप्राय सती, साध्वी, शुद्ध, पवित्र और नैतिक होता तथा पतियों के लिए इसका अर्थ उदारता, सम्बारी, ईमानदारी तथा विधवसनीयता के गुण थे। नर-नारियों में समानरूप से वरिष्ठ-सम्बन्धी इन गुणों को अपने वैवाहिक साथी के चुनाव में पहला स्थान दिया था, इससे यह स्पष्ट है कि दोनों एक दूसरे में विश्वास, श्रद्धा और सम्बन्ध की रूप, धर्म आदि अन्य गुणों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं। दूसरा गुण समानता का है। यह हिन्दू-विवाह में पति-पत्नी के सम्बन्ध में एक नूतन प्रवृत्ति को सूचित करता है।<sup>२३</sup> अब तक भारतीय नारी को सीता जैसे आदर्शों का अनुसरण करते हुए पति की सेवा करने के लिए कहा जाता रहा है। पति-पत्नी में स्वाधीन-सेवक का सम्बन्ध माना जाता रहा है, किन्तु अब जिनमें समानता की भावना को अभीष्ट समझा जाने लगा है। अविवाहित स्त्री-पुरुषों ने उपर्युक्त सर्वेक्षण में यह भावना बड़ी प्रबलता से प्रकट की है, सात अविवाहित पुरुषों ने स्पष्ट शब्दों में यह लिखा है कि वे अपनी पत्नियों पर शासन नहीं करना चाहते, चार स्त्रियों ने कहा कि वे पति को अपना स्वामी (Boss) बनाना पसन्द नहीं करती हैं। तेरह पुरुषों तथा चार स्त्रियों ने पति-पत्नी में सखा भाव (Companionship) का तथा सात पुरुषों ने मित्रता (Friendship) का सम्बन्ध बनाने का समर्थन किया। इसके बाद शिक्षा को महत्व दिया गया। २८ पुरुषों ने सुशिक्षित स्त्रियों की माँग की, आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होने के कारण

पत्नियों के लिए भी शिक्षा को बहुत महत्व दिया जाता है। इसके बाद पुरुषों ने स्त्रियों के लिए घरेलू कामों में यक्षता को तथा सुविधि होने को अधिक महत्व दिया।

एक पुराने संस्कृत श्लोक<sup>२४</sup> के अनुसार कन्या विवाह में रूप को विशेष महत्व देती है। किन्तु इस सर्वोपर्य की स्त्रियों ने पुरुषों में रूप के गुण को कोई महत्व नहीं दिया। १८ पुरुषों ने सामान्य रूप से सुन्दर पत्नी की माँग की, किन्तु इसके साथ ही इस ने यह भी कहा कि पत्नी अत्यधिक सुन्दर नहीं होनी चाहिए, क्योंकि अति सुन्दरता बड़ी खतरनाक होती है। यह हमें 'भार्य्यं व्ययती जलुः' की पुरानी कहावत का स्मरण कराती है। भारत में यद्यपि पति उजड़े रंग को अधिक पसन्द करते हैं, किन्तु पुरुषों में केवल एक व्यक्ति ने पत्नी के खेत रंग पर बल दिया। स्त्रियों ने सामान्य रूप से पुरुषों के रूप के गुण को विशेष महत्व नहीं दिया। वैयक्तिक सम्बन्ध का आद्य एक दूसरे के प्रति प्रेमपूर्ण, सहानुभूति रखने वाला तथा एक दूसरे का सहयोग तथा सहानुभूति करने वाला व्यवहार है। इसे पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों ने अधिक महत्व दिया। धन-सम्पत्ति को केवल एक विवाहित स्त्री ने तथा एक अविवाहित पुरुष ने महत्व दिया। सत्त पुरुषों का यह कहना था कि पत्नी के चुनाव में धन उनके लिए कोई महत्ता नहीं रखता। कुछ पूर्वजों ने यह भी भावना प्रकट की कि धनी घर की स्त्री में अपनी सम्पत्ति का अभिमान होगा, वह अपने को पति से ऊँचा समझेगी, नये परिवार में उसका निभाव पड़ने होगा, अतः धनी घर की लक्ष्मी में विवाह करना ठीक नहीं है।<sup>२५</sup>

२४ कन्या वरयते रूपं माता वितं पिता भूतम् ।

बान्धवाः कुलमित्रछन्ति मिष्टाग्रमितरे जनाः ॥

मि० यमस्मृति, कुलं च शीलं च सनातनं च विद्यां च वित्तं च वयुर्वैयश्व ।

एतान्पुत्रारस्य विचिन्त्य देया कन्या बुधः शेषमचिन्तनीयम् ॥

२५ एलोम रास—पृ० पु०, पृ० २५६

## विवाह के प्राचीन तथा नवीन रूप

हिन्दू विवाह के रूपों की विभिन्नता

हिन्दूओं में अत्यन्त प्राचीन काल में विवाह के अनेक रूप या भेद प्रचीन रह चुके हैं। हिन्दू समाज में बहुत-सी जातियाँ, सम्प्रदायों, सभों और मन्त्रों तथा वाचस्पत्य आदि अनेक उससे वैविध्य सर्वथा स्वाभाविक है। यों ही भेद न होते तो समाज की प्रजाति का विवाह प्रचलित होता तो निःसन्देह यह एक बड़े आश्चर्य की बात होती।

शास्त्रकारों ने विवाहों के इन भेदों को स्वीकार किया है और इनका विस्तृत वर्णन किया है। आश्वलायन गृह्यसूत्र (१।६) के मध्य में भूतनाम एवं स्मृतिनाम इनका नियमित रूप में उल्लेख करते रहे हैं। मौन्य (४।१।२३), बौधायन धर्मसूत्र (१।११), कौटिल्य (३।२), मनु (३।२१-४०), महाभारत [१।३।२।५-६ १३।४४-४५], लिङ्ग धर्मसूत्र (२।१।५-१६), याज्ञ० (१।१६), नारद (स्वीपुत्र, ३८-३९) में ब्राह्म, वैश्य, आर्य, प्राजापत्य, गान्धर्व, आसुर, राक्षस और वैशाख नामक आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया गया है।<sup>१</sup> इन धर्मों में इन विवाहों का एक निश्चित क्रम नहीं पाया जाता। अतः मनुस्मृति के प्रसिद्ध क्रम का अनुसरण किया गया है। आश्व० सू० सू० (१।६) के अनुसार उपर्युक्त क्रम की ३ की शीर्ष ४ की सख्या में अन्तर है, यहाँ पहले प्राजापत्य का और बाद में आर्य का उल्लेख है। इसी तरह अन्तिम दो में वैशाख की राक्षस से पहले गाँगा गया है। आपन्नाम्ब घ० सू० (२।४।११।

\* इनके संक्षिप्त वर्णन के लिए देखिए हरिवंश वेदासंस्कार—भारत का सांस्कृतिक इतिहास दूसरा अध्याय पृ० १४-२१।

\* सुप्रसिद्ध पोलिश विद्वान् लुब्लिक स्टर्नबेक (जूरिडिकल स्टडीज इन ऐंसेन्ट इंडियन ला, भाग १, पृ० २४७) ने इन आठ प्रकारों के वस्तुतः काल्पनिक दृष्टि से ११ प्रकार या भेद माने हैं। उसका यह मत है कि शेष तीन प्रकार ये हैं—गान्धर्व विवाह का राक्षस विवाह के साथ संयुक्त होने वाला प्रकार, गान्धर्व विवाह का राक्षस विवाह के साथ संयुक्त न होने वाला प्रकार तथा स्वयंवर नामक प्रकार। आगे प्रकाशान इनका वर्णन किया जायगा।

१७-२०, ३१।१३।१-२) तथा दसिष्ठ धर्मसूत्र में वह संख्या छा: ही है। आपस्तम्ब पेशाच और प्राजापय को भी छोड़ देता है और कनिष्ठ ध० सू० अन्तिम दो को मानुष नाम से तथा ब्राह्मण्य के शास्त्र के नाम से कहता है। महाभारत का अनुशासन पर्व (८४ अ०) ब्राह्म, क्षत्र, गान्धर्व, आसुर और राजस—ये पाँच भेद ही मानता है। मानव-गृह्यसूत्र के मत में विवाह के केवल दो भेद हैं—ब्राह्म और शौलिक। किन्तु अधिकांश किन्तुकों में विवाह के उत्पत्तिक आठ भेद माने हैं और मनु ने निम्नलिखित रूप में इनके संक्षेप किये हैं।

### विवाह के आठ भेद

(१) ब्राह्म—जब कन्या का पिता वेदों के विद्वान् एवं आचारवान् घर को स्वयं बुलाकर अपनी कन्या को बन्धुओं तथा भूपणों में अर्पण करके उसे दान करता है तो उसे ब्राह्म विवाह कहते हैं (३।२७)।

(२) दैव—ज्योतिषीमादि ज्ञानों के विस्तृत या दीर्घकाल आधी होने पर यमविधि यज्ञ का कार्य करने वाले ऋषिभू के लिए ब्राह्मणों से सुमंजस कन्या के दान को दैव विवाह कहते हैं (३।२८)।

(३) आर्य—दशादि के धर्म-कार्य की निष्ठि के लिए घर में गी-जैत्र की एक जोड़ी या दो जोड़ी लेकर विधिपूर्वक कन्यादान करना आर्य विवाह कहलाता है (३।२९)।

(४) प्राजापय—'तुम दोनों एक साथ मिलकर धर्म का आचरण करो' इस प्रकार जब आदेश दे करके तथा घर की पूजा करके कन्या का दान किया जाता है, उसे प्राजापय कहते हैं (३।३०)।

(५) आसुर—कन्या के पिता आदि को तथा सम्बन्धियों को कन्या के बदले में तथापत्ति धन देने घर की कोई इच्छापूर्वक कन्या का ग्रहण करता है, उसे आसुर विवाह कहते हैं (३।३१)।

(६) गान्धर्व—कन्या और घर का अपना इच्छा से एक दूसरे के साथ जो संयोग होता है वह गान्धर्व विवाह कहलाता है (३।३२)।

(७) राजस—जब कन्यापक्ष के लोगों का हुनन करके, कन्या के घर की रक्षा करने वाली दीवार आदि का भक्षण करके, राखी हूँ और बिल्लाती हूँ कन्या को जबर्दस्ती घर से भगा लिया जाय तो उसे राजस विवाह कहते हैं (३।३३)।

(८) पैशाच—साँती हुई, नग्न में बेहोश या उन्मत्त कन्या को एकान्त में जब घर में पुनःपूर्वक ग्रहण करता है तो सब विवाहों में अग्रम इस विवाह को पैशाच विवाह कहते हैं (३।३४)।



### विवाहों की श्रेष्ठता का तारतम्य

इन आठ विवाहों में धर्मशास्त्रों ने पहले चार को श्रेष्ठ व अन्तिम चार को निम्न माना है (मनू ३।२४)। पहले चार में भी श्रेष्ठता का तारतम्य है। इनमें ब्राह्मण विवाह सबसे अधिक श्रेष्ठ है और राजापर्यन्त की श्रेष्ठता सबसे कम है।<sup>३</sup> ब्राह्मण के लिए पहले चार प्रकार के विवाह वैध माने जाते हैं।<sup>४</sup> किन्तु क्षत्रियों के लिए गान्धर्व, आमुर और राजस विवाह भी वैध समझे जाते हैं। वैश्यों और शूद्रों के लिए आमुर, गान्धर्व और पैशाच विवाह वैध माने जाते हैं।<sup>५</sup> (मनु ३।२३)। बौ० ध० (१।११।१६) वैश्यों व शूद्रों में इन विवाहों की वैध उठराने के लिए दो विचित्र कारण देता है। पहला यह कि स्त्रियों की कोई सम्पत्ति नहीं होती और दूसरा यह कि दोनों स्त्री और सेवा का निरूप्य कार्य करते हैं।<sup>६</sup> मनु (३।२५) व महाभारत (४।६६-७०) ने पैशाच और आमुर विवाह की खूब तिर्याही की है।

इन विवाहों की सन्तानों के विषय में भी शास्त्रकारों ने कुछ रायें बताई हैं। आप० (२।५।१२।४) स्पष्ट रूप से यह कहता है कि जैसा विवाह होता है, सन्तान उसके अनुरूप होती है।<sup>७</sup> यदि ब्राह्मण विधि विधियों के अनुसार विवाह हुआ तो सन्तान अच्छी होगी और राजस व पैशाच विवाहों में सन्तान बहुत बुराई होगी। मनु ने (३।३६-४२) वायस्तम के उपर्युक्त मूल का तर्जमग भाष्य करते हुए यह बताया है कि ब्राह्मण चार विवाहों द्वारा कमला, शान्ती और तेजस्वी, स्वयानु, सुशी, धनी और १०० वर्ष की आयु तक जीने वाले पुत्र पैदा होते हैं। आमुर विधि विवाहों द्वारा क्रूर, झूठे, बेव व धर्म से दूर करने वाले पुत्रों की उत्पत्ति होती है। धर्मशास्त्रों की प्रतीति से ही समझी नहीं है। ये इस बात का भी विस्तार से प्रतिपादन करते हैं कि विभिन्न विवाहों द्वारा उत्पन्न सन्तानों से कितनी अगली और पिछली पीढ़ियों के पापों का मोचन हो जाता

<sup>३</sup> बौ० ध० सू० १।११।१०—तेष्वपि पूर्वः श्रेयान्। आप० ध० सू० २।५।१२।३—तेषां त्रय आद्याः प्रशस्ताः पूर्वः पूर्वः श्रेयान्। यहाँ तीन विवाहों का ही उल्लेख किया गया है, क्योंकि वह राजापर्यन्त विवाह का उल्लेख नहीं करता। गौ० ध० सू० १।४।१२, अत्रारो धर्म्याः प्रथमाः।

<sup>४</sup> किन्तु मनु ने ३।२३ में ब्राह्मणों के लिए छः विवाह धर्म्य माने हैं और पिछले चार क्षत्रिय के लिए अच्छे समझे हैं।

<sup>५</sup> बौ० ध० सू० १।११।१२ 'अत्रापि षष्ठसप्तमौ शत्रुधर्मनिर्णयौ तत्प्रत्यक्षत्वात् शत्रुस्येति।' यही १।११।१६ 'गान्धर्वमप्येके प्रशंसन्ति सर्वेषां स्नेहानुगतत्वात्।' मनु २।३६ 'गान्धर्वो राजसश्चैव धर्म्यौ शत्रुस्य तौ स्मृतौ ॥'

<sup>६</sup> बौ० ध० सू० १।११।१४-१५, अतिपण्डितकलत्रा हि वैश्यशूद्रा भवन्ति।

<sup>७</sup> आप० ध० सू० २।५।१२।४ यथापुनरौ विवाहस्तथापुनरौ प्रजा भवति।

है। मनु के मत में (३।३७-३८) ब्राह्म विवाहों द्वारा उत्पन्न पुत्र पूर्वजों की १० और वंशजों की १० तथा अपनी एक—इस प्रकार कुल २१ पीढ़ियों को निष्पाप बनाता है। वैश्व विवाह में उत्पन्न सन्तान १५ पीढ़ियों की, श्राद्धापन्न विवाह की सन्तति १३ पीढ़ियों की और आप्य विवाह में पैदा हुई सन्तान मात्र अपनी तथा पिछली पीढ़ियों को पाप मुक्त करती है।<sup>१</sup> धर्मशास्त्रकार पहले चार प्रकार के विवाहों को अच्छा समझते थे और उनकी प्रशंसा करने के लिए ही उन्होंने ऐसे खनन किये हैं। विष्णुसामयिककाल स्मृति पर टीका करता हुआ विश्वनाथ है कि ये सब वाले ब्राह्मण विवाहों की प्रशंसा के लिए हैं (स्तुतिगालमेवम्)।

### विवाहों का नामकरण

म विष्णु उसका सन्तान को पाने तथा कई पीढ़ियों को पाप मुक्त करने के लिये पहले चार विवाहों की प्रशंसा कई श्लोकों द्वारा की गयी है, अर्थात् उनके नाम की बहुत अच्छे रखे गये हैं। ब्राह्मणों, वैश्वों और क्षत्रियों के स्वभावानुसृत विवाहों की श्राद्ध, वैश्व और आप्य कहा गया है। निरूप्य समझे जाने वाले विवाहों की राक्षस, आमुर्, वैशाख नाम दिये गये हैं। कुल्लूक भट्ट ने मनु ३।२१ की टीका में लिखा है—ब्राह्म, राक्षस आदि नाम शास्त्र के व्यवहार तथा स्मृति और निन्दा प्रदर्शित करने के लिए हैं। अनेक विद्वानों ने यह कल्पना की है कि आमुर्, राक्षस आदि जातियों में प्रचलित होने से इन विवाहों को राक्षस, आमुर् आदि नाम दिये गये हैं। कन्वर्ट हाइकोर्ट के जज श्री बैस्ट ने बिजयनगरम् बनाम लक्ष्मण के मुकदमे में यह लिखा था—“हिन्दू शास्त्रों द्वारा स्वीकृत विवाह के विभिन्न रूप ऐतिहासिक दृष्टि से उन विभिन्न समुदायों और जातियों के आधार पर थे, जो समुदाय बाद में एक हिन्दू जाति के रूप में परिणत हो गये। आमुर् नाम यह सूचित करता है कि यह दस देश के मूल निवासियों या आर्यों के आक्रमण से पहले वहाँ बसने वाले व्यक्तियों में प्रचलित था।<sup>२</sup> श्री जित्नाथजी विनायक वैद्य असीरिया के रहने वालों को अमुर् बताते हैं और यह कहते हैं कि उनमें यह विवाह था कि वर कन्या के पिता को कुछ गुलक देकर कन्या के साथ शादी करता था, अतः ऐसे विवाह को आमुर् विवाह कहते थे। आगे प्रायेक विवाह के प्रकरण में, उसके नाम पर विशेष रूप से विचार किया जायगा, यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि आधुनिक विद्वानों की कल्पना की अपेक्षा कुल्लूक की यह व्याख्या अधिक सच्ची प्रतीत होती है कि ये नाम विवाहों की निन्दा या प्रशंसा को सूचित करने के लिए रखे गये हैं।

<sup>१</sup> मनु (३।३७।३८), मि० याज्ञवल्क्य १।५८-६०। आरवत्तापन गृह्यसूत्र (१।६)

<sup>२</sup> बिजयनगरम् बनाम लक्ष्मण ८ बी० २४४।

## आठ प्रकार के विवाहों का क्रमिक विकास

इन विवाहों में एक स्वाभाविक क्रमिक विकास दिखायी देता है। मानव मू० सू० (१।७।५) दो ही प्रकार के विवाह मानता है—ब्राह्म और गौलक। ब्राह्म विवाहों में कन्या को अलङ्कृत करके दान किया जाता था और गौलक में कन्या को पिता को कन्या का शूलक या दाम देना पड़ता था। वसिष्ठ (१।३५) गौलक विवाह को मानुष का नाम देता है। इस नाम से यह ज्ञात होता है कि यह विवाह उस समय साधारण ज़माने में बहुत प्रचलित था, किन्तु क्षत्रिय न तो ब्राह्मणों की भाँति कन्या को दान में देना पसन्द करते थे और न ही वे उसे खरीदना चाहते थे। वे उसका अपहरण करना अधिक पसन्द करते थे। मुद्र में प्रायः उन्हें इस प्रकार के अवसर मिलते थे, अतः उनमें राक्षस या क्षास विवाह की परंपराएँ प्रचलित थीं। इस प्रपन्न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों जातियों में ब्राह्म, राक्षस (क्षास) और आसुर (मानुष) विवाह बहुत पहले से प्रचलित थे। इनके अतिरिक्त प्रणय विवाहों को (Love marriages) गान्धर्व विवाह कहा गया है। यह विवाह संभवतः गान्धर्व नामक जाति में प्रचलित होने से ऐसा कहलाया। श्री ज्ञापसवाल आदि विद्वानों की कल्पना है कि गान्धर्व विवाह के नाम के आधार पर बाद में अन्य विवाहों को जातिपरक नाम दिये गये।<sup>१०</sup> ब्राह्म विवाह के बाद आर्य, वैश और प्राजापत्य नामक अवान्तर भेद उत्पन्न हुए और इस प्रकार हिन्दू जातियों में आठ विवाहों का विकास हुआ।<sup>११</sup>

## विवाहों का वर्गीकरण

आठ प्रकार के विवाहों के लक्षणों को ध्यानपूर्वक देखने से यह निश्चित होगा कि इनको चार वर्गों या श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—(१) वे विवाह जिनमें कन्या

<sup>१०</sup> ज्ञापसवाल—मनु एण्ड याज्ञवल्क्य

<sup>११</sup> स्टर्नबैक (Sternback) ने लिखा है कि प्रचलित प्रमाणों के अभाव में भारतीय विवाह पद्धति के विकास के सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है, फिर भी समाजशास्त्रीय साहित्य के अनुसार विवाह की संस्था के विकास को देखते हुए आठ प्रकार के विवाहों के विकास के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि इनमें सबसे प्राचीनतम रूप राक्षस और पैसाव विवाह का है, इनसे आसुर विवाह (Marriage by purchase) तथा अर्थ विवाह (Marriage by Sham purchase) का विकास हुआ, इसमें माता-पिता द्वारा कन्या से बिना पूछे उसके विवाह करने की व्यवस्था (ब्राह्म विवाह, वैशविवाह, प्राजापत्य विवाह) विकसित हुई, अन्त में बर-धूप को अपनी स्वतन्त्र सहमति से होने वाले विवाह (गान्धर्व विवाह) तथा स्वयंवर का विकास हुआ (ज्यूरिडिकल स्टडीज, पृ० ४२२-२३)।

का दान मुख्यवस्तु है। इस वर्ण में ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य नामक चार प्रकार आते हैं। (२) कुछ विवाहों में बहुत से निम्न कुछ धन या शुल्क देना पड़ता था (आमुत्र विवाह)। (३) अब बर और कछु अगती इच्छा से प्रेमपूर्वक विवाह करें (गान्धर्व विवाह)। (४) जब कन्या का हरण किया जाय, उस समय हरण के प्रकार-भेद में—राक्षस और पैशाच दो प्रकार के विवाह होते हैं।

भारतीय विवाहों के इन भेदों का समझने के लिए, इन विवाहों का विर्णाम क्रम में देखना अधिक सुविधाजनक है। कुछ समाजशास्त्रियों ने यह कल्पना की है कि पहले कन्याओं का अपहरण करने के लिये या राक्षस विवाह को पड़ता प्रचलित था, इसमें बहुत खूनखराबी होती थी। इसमें अग्नि के लिए कन्या का खरीद कर लाया जाने लगा और अग्नि में वर्णमान प्रथा शुरू हुई। यह कल्पना समोद्रेजक अवश्य है, किन्तु आगे चलकर हम देखेंगे कि सत्य नहीं है। विषय की स्पष्टता और सरलता के लिए यहाँ आम्बों के क्रम में सर्वथा विपरीत क्रम में इन विवाहों के भेदों का वर्णन किया जायगा अर्थात् पहले राक्षस और पैशाच का, फिर गान्धर्व का और अन्त में ब्राह्म, आर्ष, प्राजापत्य और दैव का।

राक्षस व पैशाच विवाह ✓

राक्षस एवं पैशाच नामक दोनों प्रकारों में कन्या का अपहरण किया जाता था। स्मृतिकारों ने इन विवाहों को घोर निन्दा की है। मनु ने पैशाच को अधम विवाह कहा है। इन विवाहों के नाम ही इस बात की सूचित करते हैं कि गान्धर्वकार इन्हीं घृणा की दृष्टि से देखते थे। राक्षस और पैशाच दोनों ऐसी जातियों के नाम हैं जो प्राचीनकाल में घृणा तथा निन्दा की दृष्टि से देखी जाती थी। कहा जाता है कि इन जातियों ने इन विवाहों का विशेष प्रचार था, अतएव इन्हें ऐसा नाम दिया गया था। ये राक्षस और पैशाच हिन्दुस्तान की मूल जातियों में थे। ये जातियाँ लंका तक फैली हुई थीं। रावण राक्षसों का राजा था। उसने सीता को पंचवटी से बलपूर्वक अपहरण किया था।

किन्तु हमें यह कल्पना ठीक नहीं प्रतीत होती। इस कल्पना के ठीक न होने का मुख्य कारण यह है कि प्राचीन भारत में इस प्रकार के विवाह क्षत्रियों में विशेष रूप से प्रचलित थे। महाभारत के समय अत्यन्त मान्य तथा पूजनीय समझे जाने वाले महापुरुष भीष्मपितामह तथा श्री कृष्ण ने कन्याओं का अपहरण या राक्षस विवाह किया था। श्रीकृष्ण ने तो स्पष्ट रूप से कहा है—“अतएव शूरवीर क्षत्रियों के लिए स्त्रियों को बलात्कार कर ले आना उत्तम मार्ग है” (महाभा० १।१२१।२१-२३)। अतएव कई स्थानों पर इसे शास्त्र अर्थात् क्षत्रियों के लिए उचित विवाह कहा गया है। दशि० ध० सू० (१।३६।३४) और महाभा० (१३।४७।१०) में इसी शब्द का प्रयोग है। यह नहीं कहा जा सकता कि राक्षसों में प्रचलित होने से इस विवाह का यह नाम पड़ा।

राक्षस नाम का असली कारण यह है कि स्मृतिकार इसे नापसन्द करते थे। उन्होंने इसकी बहुत निन्दा की है। वे इस विवाह को समाज में बन्द करना चाहते थे, अतः उन्होंने इसे राक्षस और पैशाच के बुरे नाम प्रदान किये हैं। अंग्रेजी में कहा जाता है कि कुत्ते को बुरा नाम दे दो और फाँसी पर लटका दो (Give dog a bad name and hang it)। राक्षस और पैशाच विवाहों के सम्बन्ध में संभवतः स्मृतिकारों ने यही किया। पहले इस विषय में कुत्तूबक का कथन उद्धृत किया जा चुका है।

उपर्युक्त कल्पना के आधार पर, यह गंका उदायी आ सचनी है कि यदि धर्मशास्त्र-कर्ताओं को ये विवाह नापसन्द थे तो उन्होंने इसका कर्त्तव्य क्या किया? इनका कर्त्तव्य करने से तो उन्हें वैधता प्राप्त हो गयी। श्री मैकनाटन ने इस विषय पर आश्चर्य व्यक्त किया है कि इन विवाहों को वैध मानकर हिन्दूशास्त्रियों ने विवाह में धाँधे को जायज माना है। वस्तुतः स्मृतिकार इन्हें नापसन्द करते हैं, इसकी धीरे निन्दा करते हैं। यदि उन विवाहों का उन्होंने उल्लेख किया है तो वह इनकी निन्दित एवं निरुपेक्ष बनाने के लिए ही किया है। दूसरा कारण यह है कि महाभारत के समय से समाज में अश्वत्थामाई एवं अनुरूपभूत कन्याओं का विवाह प्रशस्त समझा जाने लगा। उस समय राक्षस विवाह या कन्या-अपहरण की प्रवृत्ति भी प्रचलित थी। यदि शास्त्रकार इन विवाहों का उल्लेख न करते तो उन कन्याओं के साथ घोर अन्याय होता। वे कन्याएँ एक बार बगाने लिये जाने पर विवाह के अयोग्य समझी जाती। उस अवस्था में इन कन्याओं की जबरदस्ती आजीवन विधवा रहना पड़ता। ऐसी अभागी कन्याओं की रक्षा आवश्यक थी। मनु और याज्ञवल्क्य ने ऐसी कन्याओं की रक्षा के लिए विस्तृत नियम बनाये। मनु (८।३३६-३६६) तथा याज्ञवल्क्य (२।१६७-८८) से यह स्पष्ट है कि कन्या का हरण करने वालों को कन्या के साथ होम और सप्तपदी द्वारा विवाह कर लेना चाहिए, यदि कोई ऐसा नहीं करता है तो वह दण्डनीय होता है। किन्तु इस अवस्था में कन्या की क्या स्थिति होगी—यह बात मनु ने स्पष्ट नहीं की, किन्तु बसिष्ठ (१७।७३) ने स्पष्ट रूप से कहा है कि यदि कन्या का अपहरण वसपूर्वक हुआ हो और मंत्रों से उसका संस्कार न हुआ हो तो वह कन्या विधिपूर्वक दूसरे को देनी चाहिए, <sup>१२</sup> उसे काग्रा अर्थात् अधिवाहित ही समझना चाहिए। बी० ध० सू० (४।१।१७) ने भी यही व्यवस्था की है। इन कन्याओं की रक्षा के लिए स्मृतिकारों को लाचारी में ये दोनों विवाह मानने पड़े। इस प्रसंग में यह स्मरण रखना चाहिए कि आपस्तम्ब और बसिष्ठ धर्मसूत्र ने पैशाच विवाहों का उल्लेख नहीं किया। इसका एक कारण तो यह हो सकता है कि वे ऐसे विवाहों को पसन्द नहीं करते थे, किन्तु दूसरा कारण यह हो सकता है कि उनके समय में समाज में इन विवाहों की प्रथा उठ चुकी थी।

राक्षस और पैशाच विवाहों के लक्षणों और क्रम में धर्मग्रन्थों में कुछ मतभेद दिखाई देता है। आश्व० सू० सू० (१।६।७) पैशाच विवाह को राक्षस में पहले स्थान देता है और उसे राक्षस में अधिक उत्कृष्ट समझता है। इसका कारण यह है कि वह पैशाच का लक्षण मनु में सर्वथा भिन्न करता है। उसके मत में पैशाच का अर्थ चोरी से वधू का अपहरण है और जब वह चोरी से संभव नहीं होता तो बर शक्ति द्वारा कन्या का अपहरण करता है, आत पैशाच विवाह राक्षस की अपेक्षा अधिक उत्तम है। कामयूज भी आश्वलायन के मत की पुष्टि करता है। वाल्मीयक कामयूज (३।४।२४) पैशाच का वर्णन करता हुआ लिखता है कि 'अष्टमी चतुर्विंश' आदि के दिन मायिका की वासी या सोमिनी ब्रह्म उगे बादक शराय आदि पिनाकर मायक के पास सुरक्षित एकान्त स्वाम में बिगो बहाने में ले आये और उसी अवस्था में मायक या घर उसे दूषित करके ब्राह्मण के घर में आग लाकर विवाह संस्कार करे। यदि यह भी संभव न हो तो अन्त में आश्वलायन राक्षस विवाह की अनुमति देता है। जब कन्या हमारे पास या उछान की जा रही हो, तो उस समय मायक अपने मित्रों के साथ कन्या के स्नानों पर हुमता करे, उन्हें इरा कर भगा दे या मार दे और कन्या का अपहरण करे। राक्षस और पैशाच में चाहे लक्षणां में अन्तर हो, किन्तु इन दोनों में कन्या का हर्ष मुख्यवस्तु थी। किन्तु राक्षस विवाह में कन्या का अपहरण अनपूर्वक किया जाता था और पैशाच में प्रायः यह काम उसे धोखा देकर होता था।<sup>१३</sup>

- १३ पैशाच विवाह के धोखे या छल पर आधारित होने का स्पष्ट वर्णन याज्ञ० १।६१ (मि० संख ४।६) में है। मिताक्षराकार ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि कन्या जब सोयी हुई हो, उस समय उसे धोखे से अपहरण करके ले जाना पैशाच विवाह है। अन्य धर्मसूत्रों तथा स्मृतिमें में विद्ये गये विवरण से यह स्पष्ट है कि कन्या के धोखे या छल से अपहरण में निम्नलिखित परिस्थितियाँ होती थीं—  
(क) कन्या ली नहीं होती थी। (ख) कन्या मद्यपान या अन्य किसी प्रकार के नशे से बेहोश या अचेत होती थी। इस वशा में कन्या को दुष्कृत के विषय उससे मँपुन सम्बन्ध करके उसका अपहरण किया जाता था। पैशाच में छल का तथा राक्षस में बल का तत्त्व महत्त्वपूर्ण होता था।

पैशाच विवाह को राक्षस विवाह के समान निन्दित, अप्रसन्न, अधर्म्य समझा जाता था। मेघ (द्वैताद्वय आन हिवृत्ता) ने इसकी तुलना औरंगउत्तम नामक वनमानुष में सहसा पैदा होने वाली पाराविक कामोत्तेजना के साथ की है। शास्त्रकारों ने इसे जघन्य बताया हुए ब्राह्मणों के लिए इसे सर्वथा ब्रजित ठहराया है (मनु, ३।२४, महाभारत १३।४४)। किन्तु क्षत्रिय, वैश्यों और शूद्रों को ऐसे विवाह की अनुमति दी है (मनु ३।२३, बौधायन धर्मसूत्र १।११।२०।१३)। मनु

## राक्षस विवाह के प्राचीन उदाहरण

प्राचीन भारत में राक्षस विवाहों के सबसे अधिक उदाहरण महाभारत में उपलब्ध होते हैं। भीष्मसंहितामह जैसे महापुरुषों ने कन्याओं का अपहरण किया था। महाभारतकार ने कन्या अपहरण के कार्य को भीष्म के भीरुतापूर्ण कार्यों में गिना है (१।१३।६, १२, ४६, ५३)। भीष्म की मृत्यु पर संघा अपने पुत्र के इस कार्य का विशेष रूप से उल्लेख करती है। महाभारत में आस ने दो बार भीष्म द्वारा काशीराज की कन्याओं के अपहरण का विस्तृत वर्णन किया है (१।१०२, ५।१७३)। पहला वर्णन बहुत रोचक एवं प्रभावजनक है। विचित्रवीर्य के युवा होने पर भीष्म कन्याओं की स्वयंवर की चर्चा सुनकर काशी गये। स्वयंवर में जब कन्याओं ने उठा बूझ को देखा तो वे बड़ा से बड़ी गयी और राजाओं ने बूझ, मर्पद बालों से युक्त, निर्भय बलवान वहाँ आते जाने भीष्म की यह कह कर खिल्ली उड़ायी कि भीष्म ब्रह्मचारी के नाम में प्रमिद है, किन्तु उसके ब्रह्मचारी होने की बात सर्वथा मिथ्या है। भीष्म ने इस पर कुपित होकर सारे राजाओं को चुनौती देते हुए उन तीनों कन्याओं को हर लिया, अपने रथ पर बिठाया और राजाओं से कहा कि "आठ प्रकार के विवाहों में अश्वि स्वयंवर की प्रशंसा करते हैं, किन्तु धर्मवादी यह कहते हैं कि अश्विओं का मर्दन करके लायी हुई कन्या श्रेष्ठ होती है। मैं इनको बलपूर्वक हरण करके यहाँ से ले आया चाहता हूँ। तुम अपनी शक्ति से विजय या पराजय के लिए प्रयत्न करो" (महाभा० १।१०१।१६३)। राजाओं के साथ भीष्म का खीरबूझ हुआ, राजा परास्त हुए। शाक्यराज ने भीष्म का मार्गरोकना चाहा, किन्तु वह भी अपने ढंगपर में निश्चल हुआ। भीष्म ने तीनों कन्यायें विचित्रवीर्य की सौंप दी। इस प्रकार में भीष्म का यह वाक्य ध्यान देने योग्य है कि धर्मवादी इस प्रकार लायी हुई कन्या को उत्तम समझते हैं। दूसरे वर्णन (५।१७३) में भीष्म यह कहते हैं कि ये कन्याएँ वीर्यशुलका (शक्ति द्वारा प्राप्त होने वाली) थी, अतः वह उन्हें हर लाया।

दूसरा उदाहरण अर्जुन का है। अर्जुन ने सुभद्रा का हरण किया और कृष्ण ने इस कार्य में उसकी पूरी सहायता की। अर्जुन को द्रौपदी के पास असमय में जाने का प्रायश्चित्त करने के लिए, १२ वर्ष का वनवास भोगना पड़ा था। इसी राजा में वह द्वारका में कृष्ण के पास जाता है। दैवतक पर्यंत के उत्सव में वह सहेलियों से अवैकृत सुभद्रा को देखकर मुग्ध हो जाता है। कृष्ण ने उसका मजाक उड़ाते हुए कहा—“क्या वनवासी का मन भी कामभाव से अशुद्ध होता है”। अर्जुन ने कृष्ण के आगे अपना सारा मनोभाव खोलकर कहा और सुभद्रा की प्राप्ति का उपाय पूछा। कृष्ण ने उसे यह सलाह दी कि

(३।४२) इस विवाह को सन्तान की निन्दा करता है। आश्वलायन गृह्यसूत्र के अतिरिक्त अन्य सभी शास्त्रकार पंचाव विवाहों को आठ प्रकार के विवाहों में अंतिम स्थान देते हैं इसे निकृष्टतम या अधम विवाह मानते हैं।

"शत्रियों में स्वयंवर के विवाह का तो नियम है लेकिन यह संभवसाध्य है, क्योंकि (शत्रियों के) स्वभाव का कोई कारण (या जिम्मा) नहीं है कि वे कितने पसन्द करें। शत्रियों के लिए वलपूर्वक हरण ही उत्तम उपाय है, धर्मवेत्ता विद्वान् इसे शूरवीरों के विवाह का हेतु मानते हैं"। (महाभ० भा० १।१२।१।२१-२३)। कृष्ण के इस परामर्श पर अर्जुन उत्तम मन्त्र पर गया और देवी की पूजा करके तीरनी हुई सुभद्रा को रथ पर बैठा कर उसे अपने साथ भेजा नि गया। दुष्णि बहुत क्रुद्ध थे। उन्होंने अपनी सभा बुलाई। इस सभा में कृष्ण ने युधिष्ठिरों का कोप बाल करके हुए कहा—“अर्जुन ने जो कार्य किया है, हमारे हमारा अपमान गम्भीर हुआ, साम्राज्य में इसमें संदेह नहीं कि हमने तुम्हारा सम्मान हुआ है। अर्जुन जानता है कि सारथ्य धन के लोभी हैं, अतः उसने धनदेकर विवाह को भेड़ा नहीं की, स्वयंवर में गया रहती हैं, अतः उसने उसका भी प्रयत्न नहीं किया। गन्धु की भाँति कन्या का दान ग्रहण करना शत्रियों क्षत्रिय की अच्छा नहीं लगता और गन्धा केवले में भी कोई पुण्य ग्रहण नहीं है। मेरी यह सम्मति है कि अर्जुन ने इन दोषों का देखा है, अतः अर्जुन ने धर्मपूर्वक कन्यात्वर कन्या का अपहरण किया है” (महाभा० १।१२।३।३-६)। कृष्ण के इस उद्घरण से स्पष्ट है कि वे शत्रियों के लिए स्वयंवर विवाह को ही श्रेष्ठ समझते हैं।

दुर्योधन कर्ण के साथ कपित्थराज की कन्या के स्वयंवर में गया (शान्तिपर्व ४ वा अध्याय)। स्वयंवर में राजकन्या जब दुर्योधन को छोड़कर अपने वकी तो दुर्योधन से यह अपमान नहीं सह्य गया। उसने कन्या को अपने रथ पर बिठा कर वहाँ से प्रस्थान किया। दुर्योधन पर राजाओं ने आक्रमण किया। किन्तु कर्ण ने उन सब आक्रमणों का मुकाबला किया और राजाओं को युद्ध में हरा दिया। शत्रियों को धकलतापूर्वक भगा कर लाता शत्रियों की विरोधता क्षमशी जाती थी और इस कारण उनकी प्रशंसा होती थी। द्रोणपर्व (१०।१०।३३) में सारथ्य की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि उसने सीतारराज की महान् मेधा की मर्त्य करके सर्वोत्तम सुन्दरी भीमा की प्राप्ति किया था। इसी अध्याय में सारथ्येय की यह प्रशंसा की गयी है कि उसके कविर्षों की कन्या का अपहरण किया था।

अर्जुन अपहरणों के सम्बन्ध में कुछ बातें ज्ञात देने योग्य हैं। अपहरण अधिकतर अविवाहित कन्या का ही होता था। सुभद्रा, अम्बा, अम्बालिका, अम्बिका आदि कुमारियाँ ही थीं। यदि इनमें से, कोई अपने मन में किसी पति का चरण कर ले तो उसे बहुधा अपने पति के पास जाने दिया जाता था। अम्बा मन से जालन्धराज का वरण कर चुकी थी, अतः भीष्म ने उसे जालन्धराज के पास जाने की अनुमति दे दी। किन्तु कुछ अवस्थाओं में कोई व्यक्ति अपने पराक्रम से प्राप्त कन्या को इस प्रकार दूसरे के पास जाने देना मसन्द नहीं करते थे। शान्तिपर्व (अ० ८६) में कहा गया है कि हुरण करके साथी हुई कन्या से एक वर्ष तक कोई छूताछ न की जाय, चाहे वह स्वयं बीत जाने पर,



उसके साथ जबरदस्ती विवाह किया जाता था। यह अपहरण कई बार विवाहित कन्याओं का भी होता था। जयद्रथ ने द्रौपदी के हरण का प्रयत्न किया था। धौम्य ने जयद्रथ को यह कहा है कि "पाण्डवों को जीते बिना तुम इसे नहीं ले जा सकते। पुरातनकाल से अतिथियों का जो धर्म चलता आता है, उसकी ओर ध्यान दो"। धौम्य के इन वचन में यह ध्वनिता होता है कि शत्रु को जीतने पर विजेता को उसकी विवाहिता स्त्री को हर्षण करने का अधिकार होता होगा।<sup>१४</sup>

महाभारत में स्त्रियों के अपहरण की पर्याप्त निन्दा की है। महाभा० (१२। ३५। २५) में कहा है दूसरे की स्त्री को चुराने वाला एक वर्ष वा छह महीने उस पाप से मुक्त होता है। शिशुपाल के अपराधों में एक यह भी गिनाया गया है कि उसने एक स्त्री का अपहरण किया था। मोरों से यह आशा की जाती थी कि वे स्त्री का अपहरण या स्त्री-गमन का पापकर्म नहीं करेंगे। (१२। १३३। २७)। आतिथ्य के १३५ वें अध्याय में मयादा का पालन करने वाले एक शत्रु की कथा है। उस शत्रु ने अपने साधियों को पहला उपदेश यह दिया है (१२। १३५। १२ म०) कि तुम तपस्वी, स्त्री, भीत और बालक का बंध मत करना, लड़ाई न करने वाले को मत मारना और स्त्रियों को वन-पूर्वक न पकड़ना।

घरे-घरे राक्षस विवाह की प्रथा बुरी समझी जाने लगी। स्मृतिकारों ने इनकी निन्दा की और यह प्रथा समाज से उठने लगी। मध्यकाल में इसके एक दो उदाहरण ही दिखाई देते हैं। अमोघवर्ष के ७६३ शक संवत् के संजाल ताम्रपत्रों में यह तथ्य उल्लेख है कि इन्द्रराज ने खेडा के चालुक्यवंशी राजा की कन्या के साथ राक्षस विवाह किया (एपि० ६०, खण्ड १८, पृ० २४३)। वृष्णीराज चौहान ने जयचन्द की कन्या का अपहरण किया था। चन्द्रवरदाई की इस घटना में ऐतिहासिकों को धूरा सन्देह है, किन्तु जिस समाज वृष्णीराज रामो निष्ठा मया, चाहे वह १२ की कर्ती हो या १४ की शक्ती—राजपूत राजाओं में उस प्रथा को बुरा नहीं समझा जाता था। श्रीकृष्ण की तरह गायद के भी अतिथियों के लिए इस प्रकार के विवाह को श्रेष्ठ समझते थे, क्योंकि ऐसे विवाहों में अतिथियों को अपना शीर्ष विधान का अवसर प्राप्त होता था, अतः उनके लिए ये विवाह स्वाभाविक माने जाते थे।

१५ विजेता विजितों की पत्नियाँ प्रायः सभी देशों में ग्रहण करते हैं। मूत्ता ने डिडान्सी (२१। १०-११) में यह व्यवस्था की है कि तू विजित की पत्नी को ग्रहण कर सकता है। जहालत के अमाने में अरबों में शत्रु की पत्नी लेना बहुत अच्छी बात समझी जाती थी। प्राचीन त्पूतन जाति में भी यह पद्धति प्रचलित थी।

## राक्षस विवाह की कानूनी विशेषता

इसके सम्बन्ध में विभिन्न धर्मशास्त्रों में दिये गये वर्णनों से इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं—(१) यह अनपुर्वक अपहरण द्वारा मूढ़ द्वारा किया जाता था। कुछ धर्मशास्त्र इस प्रकार के मूढ़ में पड़की के माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धियों को मारने (मनु० ३।३३, जायव० १।६, ८ महाभारत १३।४४) का वर्णन करते हैं। यद्यपि यह अपहरण अलंकारिक या प्रतीकालम्ब (symbolical) न होकर वास्तविक होता था, क्योंकि इस समय लड़की अपहरण किये जाने पर खूब बिलसती और रोती थी। (२) इस विवाह में कन्या के माता-पिता कोई भाग नहीं लेते थे, इसमें कन्या को किसी प्रकार का प्रहेज नहीं दिया जाता था, इसके लिए कन्या के माता-पिता किसी प्रकार का कोई शुल्क नहीं लेते थे। इसमें कन्या अपहरण या डकैती द्वारा पारिवर्तिक शक्ति के प्रयोग से घर को प्राप्त होती थी। (३) धर्मशास्त्रकार इस प्रकार के विवाह को निन्दित (मनु ३।४२), अप्रमत्त और अधर्म्य (मनु ३।२३, २५, २६) मानते थे। (४) धर्मशास्त्रों के समय में यज्ञ एक पुरानी प्रथा का अवशेष या स्मृतिमात्र रह गया था और वे अनपुर्वक अपहरण द्वारा प्राप्त कन्या के विवाह को वैध बनाने के लिए इसका विवाह सम्कार करना आवश्यक समझते थे। बसिष्ठ (१७।७३) के मतानुसार यदि किसी कन्या का अपहरण करने के बाद नैदिक मन्त्रों के साथ उसका विधिपूर्वक पाणिग्रहण नहीं किया जाता, तो वह अविवाहित कन्या ही समझी जाती थी और किसी दूसरे व्यक्ति के साथ उसका विवाह हो सकता था। (५) राक्षस विवाह ब्राह्मणों के लिए वर्जित था (मनु ३।२५, नारद १२।४४)। यह राजाओं के लिए (महाभारत आदि-पर्व ७० ७३) तथा क्षत्रियों के लिए ही उचित माना जाता था (बौधायन धर्मसूत्र १।११।२०।१९, मनु ३।२४, २६)। (६) इस विवाह से उत्पन्न सन्तान निन्दित समझी जाती थी (मनु ३।४२)। (७) अधिकांश स्मृतियों में इसे बाढ प्रकारों में सातवाँ स्थान दिया गया है, केवल आपस्तम्बन गृह्यसूत्र इसे पंचाव विवाह के बाद आठवाँ स्थान देता है।

## अन्य जातियों में राक्षस विवाह के उदाहरण

कन्या का अपहरण करके उसके साथ विवाह करने की प्रथा भारत से बाहर संसार के अन्य बहुत से देशों की जातियों में पायी जाती है। दक्षिण अमेरिका के इण्डियन कन्या अपहरण के उद्देश्य से ही मूढ़ करते हैं। ब्राजील के अनेक कबीलों में स्त्रियाँ दूसरे कबीलों से पकड़ कर लायी जाती हैं। कैलिफोर्निया के लट वासी लुइसेनी (Luiseño) इण्डियनों में विवाह का एक यह ढंग प्रचलित है कि घर अपने कुछ भित्तों के साथ जिस स्त्री को ब्याहना चाहता है, उसे बलपूर्वक पकड़ कर ले जाता है। उ० पू० एशिया में रहने वाली चकची जाति के मुबक युवती को पकड़ कर, उसके हाथ-पैर बाँधकर, उस व्यक्ति के

घर से आते हैं जो उसे ब्याहना चाहता है। कालमुक्त लोगों की प्रथा वात्स्यायन के वैशाख विवाह का स्मरण कराती है। कई बार जब बर कन्या को बुराकर जाता है तो कन्या के माता-पिता उसके विवाह के लिए तैयार नहीं होते, किन्तु यदि वह कन्या बर के झोंपड़े में एक बार सो लेती है तो उसके माता-पिता को बाध्य होकर उससे शादी करनी पड़ती है। मलाया और आस्ट्रेलिया में ऐसे हमलावर तैयार किये आते हैं जो शत्रुओं का नष्टार कर उनकी स्त्रियों को पकड़ कर ले आते। अरबों और यहूदियों द्वारा युद्ध में कन्याओं या स्त्रियों को पकड़ लाने का पहला उल्लेख ही चूका है। प्राचीन आर्य जातियों में भी यह प्रथा सर्वत्र प्रचलित थी। डायोनिसियस यह बताता है कि किसी समय यूनान में यह प्रथा सर्वत्र प्रचलित थी। सकेलेरियोस कहता है कि यह प्रथा यूनान में आज तक पायी जाती है। स्पूतन जातों में मद्यपि इसे दण्डनीय अपराध बना दिया गया था तो भी यह चलती रही। स्वीडिशियन और स्लाव जातों में भी इसका प्रचलन था।<sup>१४</sup>

### राक्षस विवाह के प्रचलन के कारण

राक्षस विवाह के प्रचलित होने के कई कारण हैं—(१) स्त्री जब सामान्य उपाय से न प्राप्त हो सके तो उसका बलपूर्वक हरण किया जाता है। किसी मन्त्र में स्त्री के प्राप्ति न होने का कारण यह भी हो सकता है कि स्त्रियों की संख्या कम हो अथवा स्त्री और उसके माता-पिता बर के साथ अपनी कन्या का विवाह करने के लिए उद्यत न हों। बनील को तथा आस्ट्रेलिया की विभिन्न जातियों में राक्षस विवाह इसी उद्देश्य से प्रचलित है।

(२) बहुत सी जातियों में कन्याएँ धन लेकर बहोली जाती हैं। हम आगे चलकर देखेंगे कि भारत में इसी प्रकार की आसुर विवाह की पद्धति प्रचलित थी और बर को कन्या पाने के लिए मूल्य देना पड़ता था। जब बीर युवक इस मूल्य को देने में असमर्थ होते थे तो वे कन्या का अपहरण किया करते थे। रूस की समोयद (Samo-yed), वोटियाक (Votyak) और ओस्तियाक (Ostyak) आदि जातियों में तो युवक कन्या का मूल्य नहीं दे सकते थे, वे कन्या का अपहरण करते थे।

(३) बीर युवक अपहरण द्वारा प्राप्त की हुई कन्या को श्रेष्ठ समझते हैं। कहते हैं, घेर दूसरे का मारा हुआ निकार नहीं खाता; क्षत्रियों को दूसरे की धी हुई कन्या प्रसन्न नहीं आती। श्रीकृष्ण ने तो स्पष्ट रूप में कन्यादान को पशुओं के विकल्प जैसा एक व्यापार कहा है, क्षत्रिय दान नहीं लेता है। उसके लिए दान के लिए अपना हाथ पसारना आत्मभ्रष्टिष्ठा एवं आत्मसम्मान की हत्या करना है। अतः भीष्म और कृष्ण

१४ वेंस्टरमार्क—गार्ट हिन्दरो आफ मैरिज, पृ० ११०-११३; स्टर्नबैक—ज्यूरिडिकल स्टडीज इन एंथ्रोपॉलॉजी, पृ० ३६३-८।

ने राजस विवाह की शक्तियों के विना अपनी प्राप्ति करने का श्रेष्ठतम साधन कहा है।

कुछ समाजशास्त्रियों ने यह कल्पना की है कि प्राचीन काल में मानव समाज में राजस विवाह की प्रवृत्ति सार्वभौम थी।<sup>१६</sup> इस कल्पना की पुष्टि में, कुछ ऐसी प्रथाओं का उल्लेख किया जाता है जो प्राचीन राजस विवाहों का अवलोक कहे जाते हैं। कुछ स्त्रियों पर बधू के घर पर तकली हलाने किये जाते हैं और कृत्रिम सूर्य (Mocklight) होते हैं। बरमा में बंगाल की रोकने के लिए रान्से में रम्भो लगा दी जाती है। यूरोप में बंगाल के राम्से में लट्टे लाने दिये जाते हैं, तर की गाड़ी के अगले रस्सा बांध दिया जाता है और कुछ धन देने पर ही भाग्य की यह बाधा हटायी जाती है। बंगाल में विवाह में अगले दिन जब जब बधू का मांगना है तो उसे साक इन्कार कर दिया जाता है। इसके बाद वह बधू को जबरदस्ती अपने धोड़ें पर बिठा कर भागता है, बधू के गले वाले उसका पीछा करते हैं और बड़े संघर्ष के बाद उसे बधू को ले जाते की अनुमति मिलती है।

कुछ जातिधर्मों में यह प्रथा अवश्य मानी जा सकती है, किन्तु इन अवस्थाओं के आधार पर हम क्या भी सार्वभौम कहना टीक नहीं है। अनेक अवस्थाओं में इन अवस्थाओं (Survivals) की कई अन्य प्रकार में भी व्याख्या हो सकती है। विवाह की प्रत्येक प्रथा के बारे में यह कल्पना नहीं की जा सकती है कि वह किसी वास्तविक घटना की सूचित करती है। वैदिकमार्ग से उसका एक बड़ा समीक्षक उदाहरण दिया है। बहुत ही जातिधर्मों में पति-पत्नी का राजा-रानी कहा जाता है। क्या इस प्रथा में यह परिणाम निकाला जा सकता है कि प्राचीनकाल में केवल राजा और रानी का ही विवाह होता था और यह प्रथा उस काल का अवशेष है? उक्त लेखक के मत में कृत्रिम सूर्य (Mocklights) वास्तव में कन्या के सम्बन्धियों की कन्यादान की अभिप्राय की सूचित करते हैं।

- <sup>१६</sup> विछलो हलाखी के अधिकांश समाजशास्त्री मैकलोनान (McLennan), सर जान लम्बक (John Lubbock) तथा स्पेन्सर इसी मत के थे। इनका यह विचार था कि स्त्रियाँ आरम्भ में समूचे परिवार, कुटुम्ब या कबीले की सम्पत्ति होती थीं, इन पर किसी व्यक्ति का निजी या विशेष अधिकार तभी स्वीकार किया जाता था, जब वह किसी अन्य कबीले या जाति की स्त्री को बलपूर्वक जीतकर अपने घर में ले जाता था। मैकलोनान का यह मत था कि इस प्रकार राजस विवाह के प्राचुराव का कारण कन्यावध की वृद्धित प्रथा थी, इससे अपने समाज में स्त्रियों की कमी होने के कारण पुरुषों को अन्य जातियों से स्त्रियों का बलपूर्वक अपहरण करना पड़ता था। लम्बक इस कल्पना को दोषपूर्ण मानते हुए यह कहता है कि राजस विवाह का प्रचलन इसलिए हुआ कि किसी स्त्री पर अपना वैयक्तिक स्वामित्व स्थापित करने का एकमात्र उपाय स्त्रियों का बलपूर्वक अपहरण करना था (स्टनबेक—इयूरिडिकल स्टडीज, पृ० ३६२)।

उन्हें इसमें संकोच होता है कि उनकी कन्या किसी दूसरे पुरुष द्वारा अपहरण हो। कन्या स्वयमेव इस विषय में बहुत संकोच करती है। म्यूलर ने स्पाटा की कन्याओं के बारे में लिखा था कि वे अपने कौमार्य एवं विशुद्धता का तब तक परिचाय नहीं करनी थी, जब तक पुरुष उन्हें अपनी शक्ति से बाधित नहीं कर देता था। कई स्थानों पर वधू के सम्बन्धी अपनी कन्या का कौमार्यहरण बरदाश्त ही नहीं कर सकत। मोब के अर्थों में यह रिवाज है कि जब वर वधू को लेने जाता है तो वे उस पर हस्तप्रक्षालन करते हैं। वे उनके आगमन को अपनी जाति का अपमान समझते हैं (वै० शा० हि० पै० पृ० १२४)। स्त्रियों में कौमार्यभंग के भय के कारण संकोच या अनिच्छा हो, यह बात नहीं। कई बार पुरुषों में भी यह संकोच पाया जाता है। अस्वाम की गरीब जाति में वधू वध के सोच वर के पास इन उद्देश्य से जाती है कि वे उसे विवाह के लिए घर पर ले आएं। वर यह धुनवार जंगल में भाग जाता है। वे उसकी गलाश करते हैं, उसे तरह-तरह के प्रलोभन देकर व्याह के लिए तैयार करते हैं और जब वह नहीं मानता तो उसे एक तालाब में धोखा देते हैं और पानी में उसे तब तक गोते खिलाते रहते हैं जब तक वह विवाह के लिए तैयार न हो जाय। इस तरह के सब रिवाज वास्तव में कन्या पक्ष वालों की अनिच्छा को ही सूचित करते हैं, न कि राक्षस विवाह की व्यापकता को।

एक लेखक (सम्प्रर्ष पृ० १०५-६) ने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि हिन्दुओं में पहले यह प्रथा प्रचलित थी और उसके बाद दूसरे विवाह प्रचलित हुए। अपने पक्ष के समर्थन में उसने जो युक्तियाँ दी हैं, वहीं इनका प्रतिपादन करते हुए इनकी अलोक्यता को जायगी।

(१) विवाह-दानक सभी शब्द राक्षस विवाह की आधीनता को सिद्ध करते हैं। राक्षस विवाह में कन्या का अपहरण किया जाता है और विवाह का अर्थ भी वधू को लेकर ले जाना है (यह आपण्य)। वधू और नवोद्गा शब्द भी 'वह' धातु से बनते हैं और उनके अर्थ से जानो (आर्ह) जाने जानी स्त्री है। परिणय भी 'भीज्' आपण्य से बना है और इसका अर्थ वधू को ले जाना (पहुँचाना) है।

किन्तु इस युक्ति से अपहरण की व्यापकता को नहीं सिद्ध किया जा सकता। कन्या तो प्रत्येक विवाह के बाद पति के घर में जाती है, चाहे वह राक्षस विवाह हो या ईव। पति का घर उसका स्वाभाविक निवास स्थान है, वह वही जायगी। परिणय और विवाह शब्द इसी भाव को सूचित करते हैं कि कन्या पिता के घर से पति के घर को ओर जाती है। इससे यह नहीं सिद्ध किया जा सकता कि वह अपहरण करके ही लानो जाती रही है।

(२) विवाह प्रथा के कुछ अवशेष इस बात को पुष्ट करते हैं। विवाह में सिन्दूर दान की प्रथा है। सिन्दूर खरस होता है। यह इस बात को सूचित करता है कि प्राचीन काल में कन्या के अपहरण में बहुत खूबखराबी होती थी। यह उसी काल का

एक अवशेष है। जब लड़ाइयाँ बन्द हो गई तो इन प्रथा के स्मृति चिह्न के तौर पर वधु की माग में सिन्दूर भरा जाने लगा।

वास्तव में सिन्दूर-दान की प्रथा अनार्य है—सिन्दूर का त तो कोई वैदिक नाम है और नही सिन्दूर भरने की विधि का कोई भन्व है। सायबेदीय षट्स्थायन में सिन्दूर को स्पष्ट रूप में मल कहा जाता है वह यह है—“ओ३म् सिन्धोरुक्छ्वासे पतसन्तम् उक्षितम्”—उत्थादि। गजबेदीय षट्स्थायन में “ओ३म् सिन्धोरुक्छ्वासे” का मल और विवाह में “सिन्धोरुक्छ्वासे” कहा जाता है। इन तीनों में प्रथम और तृतीय मंत्र (श्रुवेद ७।४६।४३) में पाया जाता है, वहा सिन्धु नदी के उच्छ्वास का प्रसंग है। केवल शब्द नाम्य मात्र से वह सिन्दूर के मल के रूप में व्यवहृत हुआ है। द्वितीय मन्त्र श्रुवेद का ४।५।५७ वाँ मंत्र है। इसका साथ ही सिन्दूर का सम्बन्ध नहीं है।<sup>१०</sup> ऐसी अवैदिक और अनार्य सिन्दूर-दान की प्रवृत्ति के आधार पर प्राचीन आर्यों में राक्षस विवाह की प्रथा सिद्ध करना बालू की नींव पर विमान प्रसाद कहा करता है।

(३) कहा जाता है कि वराह के नाम से अधिक से अधिक मनुष्य ले जाने की परिपाटी भी राक्षस विवाह की प्राचीनता का सिद्धांश है। उस समय कन्या का अपहरण करते हुए युद्ध अनिवार्य होता था। उस युद्ध में कितने अधिक तापी हो, विजय की प्राप्ति उनकी ही अधिक होती थी, अथ लड़ी-घटी खराने ले जाना का रिवाज बना।

यह युक्ति भी उपर्युक्त युक्तियों की तरह सारहीन है। प्राचीन काल में अपहरण के जो उदाहरण मिलते हैं उनमें वराह का वर्णन नहीं है और जहाँ वराह का वर्णन है वहा अपहरण की गन्ध तक नहीं है। भीष्म ने एकाकी काशीराज की कन्याओं का अपहरण किया था। युगप्रा को भी अर्जुन ने अकेले ही हरा था। वराह का रिवाज भारत में अत्यन्त प्राचीन माना से है। अथर्ववेद में वराह का बहुत सुन्दर वर्णन है, किन्तु उसमें राक्षस विवाह का कोई संकेत नहीं।<sup>११</sup>

अतः यह नहीं कहा जा सकता कि प्राचीन काल में राक्षस विवाह ही प्रचलित था। क्षत्रियों में उसका अवकाश प्रचलन था, किन्तु वह धीरे-धीरे कम होता गया। आजकल भारत में कुछ जगह जातिधर्म में इस प्रथा का जीवित रूप दिखायी देता है। उड़ीसा राज्य

<sup>१०</sup> श्री अतिमोहन सेन—भारतवर्ष में जातिमेव, पृ० ७७

<sup>११</sup> डाक्टर जाली के प्रसिद्ध जर्मन ग्रन्थ के अंग्रेजी अनुवादकर्ता श्री वल्लुण्ण घोष ने एक टिप्पणी (पृ० १०६) में लिखा है कि दक्षिण में विवाह के बाद गले में ताली बाँधे जाने का रिवाज यह सूचित करता है कि पहले कन्याओं का अपहरण किया जाता था। दक्षिण की ताली उस युग का एक स्मारक अवशेष है। ताली की यह बड़ी उपहासास्पद व्याख्या है। यदि यह सच माना जाय तो यह भी मानना पड़ेगा कि ब्रूडियो स्त्रियों की हत्यकड़ियाँ हैं और पाजेब बेड़ियाँ।

की भइया जाति में यह प्रथा है कि यदि कोई युवक किसी युवती से प्रेम करता है, किन्तु वह कन्या या उसके माता-पिता विवाह के लिए तैयार नहीं होते, तो वह युवक अपने साधियों का एक जत्था तैयार करता है और मौका मिलने पर उस कन्या का अपहरण करता है। उसके साथी अपहरण में उसकी सहायता करते हैं। इससे कई बार बड़ा रक्तपात और भीषण युद्ध हो जाता है। बंगाल की कुछ जातियों में मण्डी में हो रहे नाच में से कुछ व्यक्ति किसी कन्या को प्रकट लाते हैं और बाद में कन्या का मुक्त दण्ड होता है। पटनावाँ में जिनके पास थोड़ी स्त्रियाँ होती हैं वे अस्वपत्नीयों से मुरजित होकर बाहर निकलते हैं और कमजोर कबीलों में से कन्याओं को बलपूर्वक छीन कर ले जाते हैं।<sup>१६</sup> राजपूतों में तथा कमारों, ओरावों, भील, कुनबी, गोंड और कोटा जाति में कुछ ऐसी प्रथाएँ प्रचलित हैं जिनमें राक्षस विवाह के तत्त्व मिलते हैं।<sup>१७</sup> किन्तु इन प्रथाओं के बारे में बहुत संदेह है। उदाहरणार्थ, पंजाब में कई जगह यह रिवाज है कि दूल्हा कृपाण से कण्ठ के छेद की एक छाल काटता है, मन्वन्त-गार को भी काट गिराता है और मिट्टी के ध्यान फाँड़ता है। इन प्रथाओं के बारे में यह कहा जाता है कि ये राक्षस विवाह का अवशेष हैं। किन्तु यह सर्वोत्तम माना जाय कि ये वर की वीरता का प्रदर्शित करती हैं। वर्तमान काल में राक्षस विवाह के जो निश्चित उदाहरण हैं, वे बंगाल और आसाम की मूल जातियों में ही पाये जाते हैं।

### स्वयंवर विवाह

स्वयंवर विवाह राक्षस विवाह का विलोम था। राक्षस विवाह में पति को चुनाव करने का अधिकार था, किन्तु स्वयंवर में कन्या स्वयं अपने पति का चुनती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयंवर पद्धति कई अवस्थाओं में से होकर गुजरी है। प्राचीनकाल में उसका बहुत रिवाज था। धीरे-धीरे उस रिवाज को मर्यादित एवं सीमित किया जाने लगा। द्रौपदी और सीता के स्वयंवर सच्चे अर्थों में स्वयंवर नहीं थे। स्त्री को वर चुनने की पूरी स्वाधीनता देना संभवतः उचित नहीं समझा जाता था। धर्मशास्त्रों ने स्वयंवर विवाह का उल्लेख ही नहीं किया। वे शान्धर्व विवाह का उल्लेख करते ही चुप हो गये हैं और उसका उल्लेख भी उन्होंने अपनी नापसन्दगी जाहिर करते हुए किया है। यह स्पष्ट है कि वे ऐसे विवाहों को अच्छा नहीं समझते, राक्षस आदि विवाहों को अच्छा न समझते हुए भी उन्होंने इन विवाहों का उल्लेख किया है, किन्तु स्वयंवर का उन्होंने स्पष्ट रूप

<sup>१६</sup> वै० शा० हि० मै०, पृ० १११-१२

<sup>१७</sup> जा० हि० ला० क्र०, पृ० १०६ की तीसरी टिप्पणी में इन सब जातियों के नाम विस्तार से दिये गये हैं।

में उल्लेख नहीं किया।<sup>११</sup> बाण ने कादम्बरी (पृ० ४७८) में पल्लवों से यह कहलवाया है कि यदि ऐसी बात न हो (अर्थात् कन्याएँ पतिव्रतों का वरण न करती हों) तो धर्मशास्त्रों द्वारा उपदिष्ट स्वयंवर की विधि व्यर्थ है। बाण का आशय सामयिक नहीं माना जावे। यदि धर्मशास्त्रों का आशय धर्मसूत्रों एवं स्मृतियों से हो तो उनमें यह विधि नहीं मिलती। इन गान्धर्व विवाह के अन्तर्गत समझा जाय तो बाण का यह कथन ठीक ही सकता है। १७ वीं शती का 'वीरमित्रोदय' इस कालका को पुष्ट करता हुआ गहता है कि स्वयंवर का गान्धर्व विवाह का अंग ही समझना चाहिए।<sup>१२</sup> दाम्नाय में यह बात ठीक नहीं है। गान्धर्व विवाह में मुख्य युवती दोनों एक दूसरे को समस्त रूप से गाढ़ों है और विवाह में दोनों की सहमति आवश्यक हो जाती है। किन्तु स्वयंवर में अन्तिम अधिकार कन्या का है। स्वयंवर की पद्धति अखिल राजाओं में विशेष रूप से प्रचलित थी; सावित्री, सीता, दमयन्ती राजाओं की कन्याएँ थी। ब्राह्मणों में इस पद्धति का गिवाज बहुत कम था। अतः शास्त्रों द्वारा लिखी गयी स्मृतियों में स्वयंवर का उल्लेख भी नहीं है।

### स्वयंवर की तीन भेद

स्वयंवर की पद्धति की विधाओं की दृष्टिसे तीन अवस्थाओं में बाँटा जा सकता है।  
(१) इसमें अत्यन्त प्राचीन काल में कन्याओं की पति चुनने की पूरी स्वाधीनता होती थी।  
(२) स्वयंवर में कोई शर्त रख दी जाती थी। इस शर्त को पूरा करने वाले पुरुष को ही कन्या वरण करती थी। (३) जब पिता राजस्वना हो जाने पर भी कन्या की निश्चित अवधि तक शादी नहीं करता था तो स्मृतियों ने इस दशा में कन्या को अपना वर स्वयं तलाश करने की या स्वयंवर करने की आज्ञा दी थी।

(१) पहली अवस्था के स्वयंवर का सर्वोत्तम उदाहरण कुन्ती और दमयन्ती है। यह प्रथा बहुत प्राचीन थी। वैदिक काल में यद्यपि पतियों का स्वयं वरण करती थी,<sup>१३</sup>

२१ स्टर्नबैक ने स्मृतिकारों द्वारा स्वयंवर का उल्लेख न करने का यह कारण बताया है कि जब कन्या पिता द्वारा विवाह न करने पर अपना पति स्वयमेव चुन लेती थी, तो वह कन्या के पिता को कोई शुल्क नहीं देता था, क्योंकि समुचित समय में कन्यादान न करने के कारण उसका पिता अपनी कन्या पर स्वामित्व खो बैठता था। स्मृतिकारों के लिए उत्तम विवाह यही था जिसमें कन्यादान होता था। कन्या द्वारा स्वयमेव पति चुन लेने में ऐसा संभव नहीं था, अतः उन्होंने इस प्रकार के विवाह का उल्लेख करना उचित नहीं समझा (ज्यूरिडिकल स्टडीज, पृ० ३०७)

२२ बी० मि० भा० १।६१ 'एवं च स्वयंवरोऽपि विवाहः।'

२३ आ० १०।२७।।२२ 'भद्रा यधूमन्ति यस्तुपेशाः स्वयं सा मित्रं कृणुते जने इत्।'।



किन्तु उसका विस्तृत वर्णन नहीं मिलता। महाभारत में ऐसे वर्णन विस्तार में उपलब्ध होते हैं। कुन्तिबीज ने पुत्रा या कुन्ती के स्वयंवर में राजाओं को बुलाया। कुन्ती ने रंगभूमि में राजाओं में शार्दूल, महावली एवं सूर्य की तरह सब राजाओं की प्रभा को द्रष्टा होने पाण्डु को देखा और उसने कामभाव में विह्वल होकर यज्ञाते हुए अपनी मान्दा पाण्डु के गले में डाल दी (महाभा० १।११२)।

महाभारत में जब-दमयन्ती उलूकमान जनार्दन में बड़े विस्तार में (५३ अ० में ७६ तक) दिया गया है। दमयन्ती के पिता विश्वंशराज भीम ने अपनी कन्या को प्राण-धोबना देखकर, राजाओं को स्वयंवर का निमन्त्रण भेजा (५४।८-९)। राजा मन का प्रणय-संदेश दमयन्ती के पास होत द्वारा पहुँच ही चुका था। दमयन्ती हृदय में मन को चाहती थी। दमयन्ती के अश्वत्थ वपकी होने के कारण एन्द्र, अग्नि, वायु और यम लोकपाल यह चाहते थे कि दमयन्ती उन्हें प्राप्त हो। ये लोकपाल मन को अपना दूत बनाकर दमयन्ती के पास भेजते हैं। पर दमयन्ती भस् को ही पति रूप में चरण करने का वृद्ध निश्चय करती है। स्वयंवर के दिन चारों देवता मन का रूप धारण करके, उस मन्दा में आये। दमयन्ती पाँच नरों को देखकर बड़े असमंजस में पड़ी और उसने देवताओं को छाना रहित, अनिमेष, पसीना रहित और न मुझने वाली माता से युक्त देखकर पश्चात्तप लिया कि ये देवता हैं, इस प्रकार दमयन्ती ने अश्वत्थ सुन्दर माना मन के गले में डाल दी। राजाओं ने इस पर हाहाकार किया और अग्निमें ने प्रमत्तता का जघनघात (५५।३०)। यहाँ दमयन्ती को अपना पति चुनने की पूर्ण स्वाधीनता मिली थी। यह बात अवश्य विचारणीय है कि जब दमयन्ती का मन से प्रेम हो चुका था तब स्वयंवर का आशम्बर रखने का क्या लाभ था? दमयन्ती का चुनाव तो पहले से निश्चित था, दूसरे राजाओं को बुलाकर उन्हें व्यर्थ में दुःखी बनी किया गया?

बौद्ध साहित्य में जित स्वयंवरों का उल्लेख है, वे इसी कोटि के हैं। भ्रमरपद की टीका (अष्ट पृ० २७८-७९) के अनुसार भ्रमरराज वेपथि ने किसी भी भ्रमर राजकुमार को अपनी कन्या देना वसन्द नहीं किया। उसने कहा—“मेरी कन्या इच्छा ने अपना पति चुनेगी।” उसने सब भ्रमरों को बुलाया और अपनी कन्या को एक माना देने हुए कहा—“वो पति तुम्हें अनुकूल प्रतीत हो उसे चुन लो।” कन्या ने अपनी इच्छा के अनुसार पति का चरण किया और उसके गले में जयमाया डाली। कृपाल जातक (सं० ५३६) में डौपदी और पाँचों पाण्डवों की कन्या एक दूसरे ही ढंग से कही गयी है। इसमें कन्या (इष्टा) नामक राजकुमारी के स्वयंवर का वर्णन है। वह स्वयंवर में राजा पाण्डु की पाँच पुत्रों अर्जुन, नकुल, भीमसेन, युधिष्ठिर और सहदेव को देखती है और उन पर मुग्ध होकर पाँचों के गले में वरमाना डाल देती है और माता से यह कहती है कि मैं इन पाँचों को वसन्द करती हूँ, ये पाँचों व्यक्ति उसके पति बनते हैं। उसके स्वयंवर को माता-पिता स्वीकार करते हैं।

काव्यों में ऐसे अनेक स्वयंवरों का वर्णन है, जिनमें कन्या को वरण का पूरा अधिकार था। काविलदास ने रघुवंश में अज और इन्दुमती के स्वयंवर का यथा भावपूर्ण और सुन्दर चित्र खींचा है। प्रत्येक राजा इन्दुमती के पास आने पर किलना प्रसन्न और उसके आगे निकल जाने पर किलना दुःखी होता था, काविलदास ने इस लक्ष्य को एक अत्यन्त भावपूर्ण उपाय से व्यक्त किया है और उस उपाय में काविलदास को अमर बना दिया है तथा उसे 'दीर्घाश्रया-काविलदास' का नाम प्रदान किया है।<sup>१२४</sup> विष्णु ने १२वीं जलौ में अपना काव्य निम्नलिखित हूण विक्रमांकदेव चरित्र के दृश्य में एक स्वयंवर का यथा वर्णन किया है। इस स्वयंवर में गरहाट के शिलाहार, राजा की कन्या बन्धनेखा कल्याण के राजा चातुर्वय विक्रमांकदेव का वरण करती है। अश्वमेधार्थ ने संध्यागता के स्वयंवर का बड़ी आंखझिपी भाषा में वर्णन किया है। पृथ्वीराज चौहान का कन्नौज के राजा जयचन्द की पुत्री संध्यागता के साथ विवाह आधा स्वयंवर और आधा दास्य विवाह है।

महाभारत और काव्यों में स्वयंवर का वर्णन होने पर भी इसके ऐतिहासिक प्रमाण बहुत कम मिलते हैं। शिलालेखों में स्वयंवर, कथ का प्रयोग मिलता है, किन्तु यह सर्वथा अलंकारिक अर्थ में है। उदाहरणार्थ, सम्राट् बुधगुप्त के ४८४-८८ ई० के गुप्त प्रस्ताव लेख में यह उल्लेख है कि महाराज मानुविष्णु को राजलक्ष्मी स्वयंवर द्वारा प्राप्त हुई थी (स्वयंवरापेक्ष राजलक्ष्म्यप्रगतेन)। समुद्रगुप्त के जूनागढ़ शिलालेख में यह कहा गया है कि राजलक्ष्मी ने समुद्रगुप्त का वरण किया। शिलादित्य सप्तम के ७६६-६७ के अलीगढ़ ताक्षपर्वी पर यह उल्लेख है कि ध्रुवसेन तृतीय का राजलक्ष्मी द्वारा स्वयंवर किया गया है। राजा के राज्य प्राप्त करने का यह काव्यमय वर्णन है। इन वर्णनों को ऐतिहासिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता।

(२) स्वयंवर का दूसरा रूप यह था कि कन्या के विवाह के लिए कोई शर्त या पण निश्चित कर दिया जाता था। उस शर्त को जो राजा पूरा करता था, उसके साथ उस कन्या का विवाह कर दिया जाता था। इसमें कन्या के जुताय का कोई प्रश्न नहीं था। इसमें लक्ष्मियों की शक्ति या वीर्य की परीक्षा होती थी। जो अश्विज बीरता और शूरता में सबसे अधिक बढ़ा-बढ़ा होता था, वही कन्या के साथ विवाह के लिए योग्य समझा जाता था। अतः वे वीर्यशुलक स्वयंवर कहलाते थे। वास्तव में इसे स्वयंवर नहीं कहना चाहिए, क्योंकि इसमें कन्या के वरण का कोई महत्त्व नहीं था। द्रौपदी का अर्जुन के साथ और सीता को रामचन्द्र के साथ विवाह करना पड़ा था। उन्होंने यह विवाह इसलिए नहीं किया कि वे अर्जुन और श्रीराम को चाहती थी, किन्तु इसलिए किया था

<sup>१२४</sup> रघुवंश ६।७, संक्षारिणी दीपशिखेय राजौ यं यं व्यतीताय पतिवरा सा।

नरेन्द्रमार्गट ह्य प्रपेदे विवर्णधार्य स स भूमिपालः ॥

कि उन्होंने स्वयंवेध और जिवजी का धनुष उठाने की तर्तें पूरी की थीं।

स्वयंवर की इस प्रथाति के प्रचलित होने का यह कारण दिखाई देता है कि यदि का चुनाव कन्या पर छोड़ देने पर, कन्या जिस राजा का स्वयमेव वरण करती थी। दूसरे राजा उससे डाह और ईर्ष्या करते थे। दमयन्ती के मामले में तो राजा ब्राह्मणकार करके ही चुप हो गये थे किन्तु कई बार भोजन मूखों की मौखल आ जाती थी। इन मूखों में बचने का यह तरीका था कि कोई ऐसी शर्त रखती चाय जिसे पूरा करने पर विवाह किया जाय। उन अवस्था में असन्तुष्ट राजाओं को शरणा करने के लिए कोई विशेष आधार या कारण नहीं रहता था। यदि वे स्वयंवर में सफल नहीं हुए तो इसका कारण उनकी अपनी असमर्थता थी। जब तक कन्या के चुनाव में कोई कर्नाटी नहीं थी, उन्में युद्ध होना अधिक संभव था, किन्तु एक कसौटी या परीक्षा नियत हो जाने पर, राजाओं की इस तरह की विधायकता का कोई अवसर नहीं रहता था। दूसरा कारण यह था कि माता-पिता को यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि वे सौम्यतम और सबसे अधिक और पुत्र्य की अपनी कन्या का दान करें, शत्रियों की भी इसमें अपनी शूरता दिखाने का अवसर मिलना है।

साक्षात् से जीवित बचकर निकलने के बाद पाण्डव ब्राह्मण वेस में भूम रहे थे। धौम्य ज्ञान के परामर्श से वे पञ्चाशद्वेस में द्रौपदी का स्वयंवर देखने के लिए रवाना हुए। मार्ग में उन्हें कुछ ब्राह्मण मिले। उन ब्राह्मणों ने भी पाण्डवों की स्वयंवर में जाने के लिए उत्साहित किया कि सायद द्रौपदी उन दर्शनीय देवस्य ब्राह्मणों में से किसी का वरण कर ले (१।१८६-१८८)। द्रुपद ने अर्जुन को अपनी कन्या देने के उद्देश्य में एक बृह धनुष बताया था, जिसे कोई दूसरा व्यक्ति नहीं झुका सकता था और आकाश में एक मन्त्र में एक लक्ष्य बनवाया था। उस धनुष में डोरी बड़ाकर उस लक्ष्य को बिद्ध करने वाले वर को कन्या देने का निश्चय किया गया था। द्रुपद ने इस निश्चय की सूचना तथा अपनी कन्या के स्वयंवर का समाचार सब राजाओं की भिजवाया था। यह समाचार सुनकर राजा वहाँ आने लगे। १६वें दिन द्रौपदी उस सभा में आई और धृष्टद्युम्न ने स्वयंवर की तर्तें की उद्घोषणा की—“यह धनुष है, यह लक्ष्य है, ये पाँच बाण हैं, इन पाँच बाणों से दंत के छिद्र को बिद्ध करना है। जो राजा इस कार्य को करेगा, मेरी बहिन कृष्णा उसकी पत्नी होगी।” राजा बाण धनुष पर डोर चढ़ाने का प्रयत्न करने लगे, किन्तु उसमें सफल नहीं हुए। कर्ण उठा, उसने प्रयत्न चढ़ा तो और धनुष पर बाण भी लगाने लगा। द्रौपदी यह देखकर उच्च स्वर से कह उठी कि मैं मृत के साथ विवाह नहीं करूँगी (१।१८०।२२)। कर्ण ने रोषपूर्वक धनुष पीछे फेंक दिया। अन्त में अर्जुन ने देखते ही देखते धनुष उठाया, उस पर डोरी चढ़ाई और पाँच बार लेकर लक्ष्य बंध कर दिया। ब्राह्मण इस पर अत्यधिक प्रसन्न हुए किन्तु शत्रियों ने कहा कि ‘स्वयंवर शत्रियों में होता है, यह बात प्रसिद्ध है (१।१८७।७)। ब्राह्मणों का उसमें कोई अधिकार नहीं है। यदि हम दब गये तो अन्त स्वयंवरों में भी यही बना होगी।’ स्वधर्म की रक्षा के लिए शत्रियों ने द्रुपद पर हमला किया।

भीम और अर्जुन ने उनके आक्रमणों का नष्कत्तापूर्वक निराकरण किया और द्रौपदी पाण्डवों के साथ उनकी कुटुम्बा पर लगी गयी।

द्रौपदी के स्वयंवर में दो बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पहली तो यह कि स्वयंवर में यद्यपि यज्ञ शर्त जरूरी थी कि लक्ष्य भेद करने वाले को ही द्रौपदी प्राप्ति हो, किन्तु द्रौपदी ने यन्त्र में पर्याप्त स्वतंत्रता दिखायी। कर्ण भी संभवतः लक्ष्यभेद कर नेता, किन्तु द्रौपदी उमे गगन नहीं जाती थी, अतः उसने कर्ण का स्पष्ट रूप में निराकार किया। दूसरी बात यह है कि स्वयंवर की पद्धति क्षत्रियों के लिए ही प्रचलित समझी जाती थी। क्षत्रिय राजाओं ने द्रौपदी के विवाह पर यह आपत्ति उठायी है कि ब्राह्मणों को इस प्रकार वरण करने का अधिकार नहीं है। धृष्टद्युम्न ने प्रारंभ में स्वयंवर के पण के सम्बन्ध में जो घोषणा की है, उसमें क्षत्रिय या ब्राह्मण होने की कोई शर्त नहीं लगायी थी। वाच में हुनद भी यथिष्ठिता से कहता है—“चाहे क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र कोई हो, वह प्रतिभा पूरी करने वाले को द्रौपदी देगा।” किन्तु फिर भी यह मानना पड़ता है इस प्रथा का अधिक प्रचलन क्षत्रियों में ही था। इस घोरतापूर्ण कार्य की शर्त द्वारा स्वयंवर को वीर्यशुल्क स्वयंवर की पद्धति कहते थे।

वीर्यशुल्क स्वयंवर का दूसरा उदाहरण सीता का है (बा० रा० १।६६।६७)। जनक ने सीता के विवाह के लिए यह शर्त रखी थी कि जो निवर्तों के धनुष को उठाकर उस पर प्रत्यंका चढ़ायेगा, वह सीता के पाणिग्रहण का अधिकारी होगा। रामचन्द्र के मिथिला आने पर, देव सी व्यक्ति उस लोहे की पेट्टी को पसीठ कर लाने जिसमें वह धनुष रखा था। राम ने उसे बड़ी आसानी से उठाया, उस पर प्रत्यंका चढ़ायी और उसे खींचकर जब बाण छोड़ना चाहा तो धनुष टूट गया। इसके बाद सीता का राम से विवाह हो गया।

कई बार इन स्वयंवरों के बाद, भयंकर संघर्ष होते थे। म० मा० ७।१४४ में कहा गया है कि देवक की कन्या के स्वयंवर में शक्ति विजयी हुआ। वह देवकी को अपने रथ पर बिठा कर चला, किन्तु सोमदत्त से यह बरदाश्त न हुआ, उसने शक्ति पर हमला किया। अर्धरात्रि दोनों में घुसेबाजी और भयंकर युद्ध चला। अन्त में सोमदत्त इस युद्ध में बुरी तरह मारा गया।

(३) तीसरी क्रांति के ये स्वयंवर हैं जो साधारण में किये जाते थे। जब माता-पिता कन्या के लिए वर नहीं ढूँढ़ सकते थे तो साधारण में ये कन्या को स्वयं अपना पति ढूँढ़ने की अनुमति देते थे। सावित्री के पिता जब मृद हो गये तो उन्होंने सावित्री को अपना पति स्वयं ढोज लाने के लिए कहा। सावित्री ने बहुत देशों में भ्रमण कर लेने के बाद सत्यवान को अपना पति चुना। गीतम (१८।२०) और विष्णु धर्मसूत्र (२५।४०-४१) यह व्यवस्था करते हैं कि यदि माता-पिता कन्या के रजस्वला होने के बाद तीन महीने (तीन ऋतुओं) तक विवाह न कर सके तो कन्या स्वयं अपने पति का वरण कर ले।

किन्तु वासिष्ठ ध० सू० (१७-६७-६८), मनु (६।६०), बौधायन ध० सू० (४।१।१३) यह अवधि तीन वर्ष तक बढ़ा देते हैं<sup>२५</sup>। वाङ्मयलक्ष्म (१।६४) ने पिता या संरक्षक के अभाव में प्रत्येक कन्या को स्वयंवर का अधिकार दिया है। यह वास्तविक स्वयंवर नहीं था, किन्तु तानाजी थी।

रामायण और महाभारत में इस प्रकार के स्वयंवर की वर्णित निम्नता की गयी है। रामायण (१।३२) में राजा कुशनाभ की १०० कन्याओं की कथा है। ये सुवर्ती कन्याएँ अलङ्कृत होकर वन विहार के लिए जाती हैं, वहाँ खेमनी-बदनी गाचली है। वाम देवता उनके रूप और गौरव में मुग्ध होकर, उनमें प्रणय की गाचना करता हुआ कहता है—  
‘मैं तुमसे प्रेम करता हूँ तुम मेरी निव्याँ बनो। मनुष्य जाति के विवास और कंठों की छोटी वयों के मनुष्य जाति का जीवन सणमंगुर होता है। मेरे साथ तुम असुर होओ।’ कन्याओं ने वामदेवता की प्रार्थना सुनते पर उनका खूब मजाक उड़ाया और कहा—“हे मूक! यह समय न आये, जब हम अपने मर्यादापति पिता से पूजा करके अपनी इच्छानुसार स्वयंवर करें। हमारा पिता हमें जिस व्यक्ति को प्रदान करेगा वही हमारा पति होगा।” महाभारत (१।४।४।४) में भीष्म ने सावित्री के स्वयंवर की निम्नता की है। सावित्री ने पिता की आज्ञानुसार सत्यवान को स्वयं वरण किया था। उसके इस कार्य की कुछ लोग प्रशंसा करते हैं, किन्तु धर्मज्ञ उसके इस कार्य की प्रशंसा नहीं करते। भीष्म धर्मशों के प्रशंसा न करने का कारण स्पष्ट करता हुआ कहता है—“क्योंकि दूसरे माधु पुत्रों ने ऐसा आचरण नहीं किया है, और साधुओं का आचरण ही धर्म का सबसे बड़ा रक्षण

२५ विष्णुस्मृति के टीकाकार नन्द पंडित ने यह लिखा है कि ऋतु का अर्थ वर्ष करना चाहिए। यदि इस व्याख्या को सही माना जाय तो विष्णु और मनु के तीन ऋतुओं तथा तीन वर्षों की अवधि में कोई विरोध नहीं रहता है। किन्तु नन्द पंडित की व्याख्या ठीक नहीं प्रतीत होती है। ऋतु का अर्थ यहाँ मासिक धर्म हो करना चाहिए। प्राचीन शास्त्रकार राजस्वला होने से पहले ही स्त्री के विवाह की व्यवस्था करते हैं ताकि उसका कोई भी ऋतुकाल व्यर्थ न जाय और अधिक से अधिक सन्तान उत्पन्न हो सके। बौद्धि ने जनसंख्या की वृद्धि की दृष्टि से ऋतुधर्म (तीर्थ) की उपेक्षा की धर्म की हत्या करना बताया है (कौ०, तीर्थोपरोधो हि धर्मवधः।) अतः माता-पिता का यह कर्त्तव्य था कि ऋतुकाल से पहले ही कन्या का विवाह कर दिया जाय (सि० गौतम धर्मसूत्र १।८।२२—प्रदानं प्रातुतोः)। यदि पिता किसी कारणवश अपनी कन्या का विवाह ऋतुकाल या रजोदर्शन से पहले नहीं करता है तो तीन ऋतुकाल बीतने पर कन्या को अपना विवाह स्वयं कर लेने का अधिकार था। अतः विष्णु स्मृति में ऋतु के स्वाभाविक अर्थ को छोड़ कर उसे वर्ष का पर्याय मानना उचित नहीं प्रतीत होता है।

है।" भीष्म ने जनक के माता-पिता का धन उद्धृत करते हुए अन्त में स्वयंवर के विरोध का टीका-टीका कारण यह बताया है—“स्त्रियों को स्वाधीनता देना आसुरधर्म है। पुराने जमाने के विवाह कार्यों में हमने इसे कभी नहीं मुला।” महाभारत (३:१६:३६) में कन्याओं द्वारा पतियों के वरण करने के गिवाज को प्रलय का पूर्वलक्षण बताया गया है। मार्कण्डेय स्मृति कविसूत्र के भविष्य का वर्णन करते हुए कहते हैं—“उस समय न कोई कन्या को मांगता है और न कोई कन्या दी जाती है। युग के अन्त में सब लोग स्वयं एक दुसरे के साथ परस्पर विवाह करते हैं।” धर्मशास्त्रकारों ने स्त्री को पति वरण करने की आज्ञा मजबूरी की शक्त में दी थी। अमिनपुराण (२:६:४१) स्त्रियों के इस अधिकार का अतिव्यापक स्वीकार करता है। स्वयं पति का वरण करने वाली स्त्री राजा द्वारा दण्डनीय नहीं होती। किन्तु ब्रह्मपुराण (२:१६) स्त्रियों के लिए स्वयंवर को स्पष्ट शब्दों में बुरा बताते हुए एक स्त्री के बारे में कहता है कि “पिता के होते हुए दण्डित स्वतन्त्र होकर और धर्म को छोड़ कर पतियों का वरण किया है, अतः यह अधोमति पाते वाली ही।” स्वयंवर के निषेध का कारण यह था कि शास्त्रकार स्त्री को पति के चुनने में अप्रतिबद्ध एवं पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं देना चाहते थे। वाम विवाह के प्रचलन के कारण कन्यादान को अत्यधिक पवित्र एवं धार्मिक कर्तव्य बना दिया गया था। अतः स्वयंवर की प्रथा का ह्रास होने लगा। महाभारत में लोक गीतों में इस प्रथा के कुछ अवशेष पाये जाते हैं और आश्वलायन भी इस प्रकार के एक दो उदाहरण कभी-कभी देखने-सुनने में आ जाते हैं।

## आसुर-विवाह

**स्वरूप**—आसुर विवाह में कन्या प्राप्त करने के लिए वर कन्या के माता-पिता को धन देता है। पुराने शब्दों में, इस विवाह में कन्या धन द्वारा खरीदी जाती है। महाभारत (१:३:४७:३) में भीष्म ने आसुर विवाह का लक्षण यह किया है—“प्रायः धन से (कन्या को) खरीद कर और उसके सम्बन्धियों को धन का तालाब देकर जो विवाह होता है, विद्वान् लोग उसे असुरों का धर्म कहते हैं।” आजकल कन्या के लिए धन की चिन्ता करने वाले माता-पिता को संभवतः यह बात आवश्यकजनक जान पड़ेगी कि किसी युग में वर कन्या के माता-पिता को विवाह के लिए धन दिया करता था। उस समय वर के माता-पिता को वैसी ही चिन्ता और परेशानी उठानी पड़ती होगी जैसी आजकल कन्या के माता-पिता को उठानी पड़ती है। इस समय अधिकांश हिन्दू-समाज में वर का विक्रय होता है, आसुरविवाह में कन्या का विक्रय होता था। आज कन्या के माता-पिता वर की सब तरह से खुशामद करते हैं और दहेज आदि से उसे संतुष्ट रखना चाहते हैं, आसुर विवाह में वर को कन्या के माता-पिता की खुशामद करनी पड़ती थी। कन्या विक्रय की प्रथा न

केवल भारत में अपितु संसार के अन्य देशों में भी बहुत व्यापक रूप से पायी जाती है।<sup>१३</sup>

२६ असम्भ्य सम्बन्धी जाने वाली जातियों में दो तीन प्रकार का मूल्य या कन्याशुल्क कन्या के पिता को दिया जाता है: (१) कई स्थानों पर कन्या विनिमय (Exchange) द्वारा ग्रहण की जाती है। डा० हर्बर्ट ने आस्ट्रेलिया के मूल निवासियों के सम्बन्ध में लिखा है कि उनमें यह आम रिवाज है कि भ्राता-पिता अपने लड़कों के लिए दूसरे घरानों से लड़कियाँ लाते हैं और उनके बदले में अपनी लड़कियाँ उन घरानों में विवाह के लिए भेज देते हैं, जहाँ से वे लड़कियाँ लाये थे। कई बार मुश्किल यह अवलम्बित करने के लिए होती है। वे अपनी बहिन या किसी दूसरी लड़की को दूसरे कुल में देकर, वहाँ से अपने लिये पत्नी प्राप्त करते थे। आस्ट्रेलिया में अत्यन्त निर्धनता के कारण पत्नी पति के लिए मूल्यवान् सम्पत्ति होती है, अतः यह घर को अपनी कोई बहुमूल्य स्त्री सम्बन्धी देकर ही बदले में प्राप्त हो सकती है। भारत में विनिमय द्वारा होने वाले विवाहों की कमी नहीं। पंजाब का 'बट्टा-सट्टा' इसी प्रथा का रूप है।

(२) कन्या के शुल्क का एक रूप यह भी है कि घर बच्चे के घर पर कुछ दिन तक नौकरी करता है। इस नौकरी के बावजूद वह बेटन या भुति के रूप में कन्या को प्राप्त करता है। उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका, साइबेरिया, मलाया प्रायद्वीप और हिन्द चीन में इस प्रथा का प्रचलन है। यहाँ सेवा का काल १ से १५ वर्ष तक होता है। बाइबल में बताया गया है कि याकूब ने इराक में जाकर लाबान की बेटी रैचल को पाने के लिए लाबान से यह प्रतिज्ञा की कि मैं रैचल को पाने के लिए ७ वर्ष तेरी सेवा करूँगा (जिनोसस २६:१८)। लाबान इससे सहमत हो गया और याकूब ने लाबान की ७ वर्ष ईमानदारी से सेवा की। इसके बाद उसने लाबान से कहा कि मेरी अवधि पूरी हो गयी है, रैचल से मेरी शादी कर दो। इस पर लाबान ने रात को रैचल के बदले अपनी बड़ी बेटी लीह को याकूब के पास भेज दिया। सबेरे जब याकूब की इस धोखे का पता लगा तो उसने लाबान से इसका कारण पूछा। लाबान ने कहा कि बड़ी लड़की के अविवाहित रहने पर छोटी लड़की का व्याह नहीं किया जा सकता, वृ ७ वर्ष और सेवा कर, मैं तुझे रैचल भी दे दूँगा। याकूब ने दूसरी बार ७ वर्ष की सेवा के बाद रैचल को प्राप्त किया। सेवा द्वारा बच्चे को प्राप्त करने की प्रथा के मूल में कन्या को मुक्त देने की अनिच्छा तो है ही, किन्तु इसके साथ दो कारण और भी हैं। पहला तो यह कि निर्धनता के कारण जो कन्या का दाम या शुल्क न दे सके अथवा जिसके पास विनिमय करने के लिए अपनी कोई बहिन या स्त्री सम्बन्धी न हो वह सेवा द्वारा अपने इन दोनों अभावों की पूर्ति कर सकता है। दूसरा कारण यह है कि इससे कन्या पक्ष

## वैदिक युग में आसुर विवाह

उपमा के रूप में कन्याविभ्रम का संकेत वैद में है। ऋ० १।१०।१२ में कहा गया है—हे इन्द्र और अग्नि, मैंने यह सुना है कि तुम दोनों कुछ दीप रखने वाले जैवाँडे

वर को प्रोद्यताओं को भूलों-भंति जान जाता है, सेवाकाल में इस बात को अच्छी तरह जाना जा सकता है कि वह लाभता बनाने लायक है या नहीं। इ० जोकरन ने साइबेरिया के कुर्याक लोगों के बारे में लिखा है कि उनमें वर को सेवाकाल में तरह-तरह के कष्ट दिए जाते हैं। उसको रहीं से रहीं खाना और कपड़ा बेकार कड़े से कड़ा परिश्रम कराया जाता है। वर को अच्छी तरह परीक्षा करने के बाद ही कन्या का पिता उसे विवाह की अनुमति देता है। नौडोवेसीस (Naudowessios) नामक जाति (उत्तरी अमेरिका) में कन्या का पिता इस परीक्षा से यह जान लेता है कि वर अपने परिवार के भरण-पोषण में भी समर्थ होगा या नहीं।

(३) कन्या का शुल्क या दाम रुपये, पशुओं तथा सम्पत्ति के रूप में भी दिया जाता है। यूरेशिया में इस प्रकार के कन्या शुल्क (Bride price) को महर कहते हैं। यूरेशिया में विवाह की एक यह भी विधि थी कि दो साक्षियों की उपस्थिति में वर वधू को एक सिक्का देता हुआ यह कहता था कि आज से तू मेरे लिए बंध हुई। इस विधि को कसेक कहा जाता था और इसके बिना कोई विवाह लाभज नहीं माना जाता था। मध्यकाल में सिक्के के स्थान पर अंगूठी का प्रयोग होने लगा। अरबों में भी इसे महर कहा जाता था, और भारत के मुसलमानों में यह इसी नाम से प्रसिद्ध है। प्राचीन आर्य जातियों में यह प्रथा बहुत प्रचलित थी। अरस्तू बताता है कि यूनानी प्रारम्भिक युग में अपनी स्त्रियों को खरीदा करते थे। जर्मनी के टेन्तन (Tenton) लोगों में पत्नी खरीदने के मुहारे का प्रयोग मध्ययुग तक प्रचलित था। हालैंड में आज तक वधू को वरकोष्ट (Varkocht) अर्थात् खेची हुई कहते हैं। तब में वर का पिता वधू के घर पर जाकर पहली बात यह कहता है—हमारे पास एक ग्राहक है और तुम्हारे पास माल है, क्या तुम अपना माल खेचोगे? इसके बाद जो बातचीत होती है, वह वही ही होती है जैसे गौ आदि के लिए सौदे की बातचीत की जा रही हो। पिछली सरी में साक्षियों में कन्याओं का दाम इतना बढ़ गया था कि जहाँ के राजा आज को इसे एक इक्के तक मर्यादित करना पड़ा।

कन्या का शुल्क या दाम लेने का कारण ऊपर यह बताया गया है कि कन्या के माता-पिता कन्या को बेने में अनिच्छा प्रकट करते हैं, अतः वे उसे मूल्य लेने पर ही बेते हैं। किन्तु इस अनिच्छा के अन्य भी अनेक कारण हैं—(१) कन्या आदिम



और साले के लिए अधिक दान देने वाले हो।" इस मन्त्र से यह बात होना है कि जैसे आजकल कन्या के दायर में किसी प्रकार की कमी या दोष होने में उनके माता-पिता

समाजों में आर्थिक दृष्टि से बहुत लाभकर होती है। इन समाजों में औरतों से मजदूरों की भाँति काम लेने का रिवाज बहुत प्रचलित है। कन्याएं घर का तथा खेती आदि का काम करती हैं, उनके व्याह्र जाने से पिता को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है, अतः यह आवश्यक है कि पिता कन्या का दाम ले। इस प्रसंग में यह बात ध्यान देने योग्य है कि समाज के उच्चवर्ग में स्त्री पुरुष पर भारी होती है। पुरुष को उस स्त्री के पालन-पोषण की जिम्मेवारी लेनी पड़ती है। कोई भी पुरुष इस जिम्मेवारी को लेते हुए संकोच करता है, अतः कन्या के माता-पिता घर को बहेज आदि देकर उसके इस भार को कुछ हल्का करते हैं। यहाँ माता-पिता को कन्याओं के व्याह्रने की गरज अधिक है और पुरुष उसमें अनिच्छा प्रकट करता है, अतः उसे बहुत सा रुपये बिया जाता है। किन्तु जिन समाजों में स्त्री कमाने वाली होती है वहाँ उसे पाने के लिए पति को रुपये देना पड़ता है। यह अर्थशास्त्र के माँग और पूर्ति (Demand and Supply) के नियम का सुन्दर उदाहरण है।

कन्या को बिना मूल्य देने का यह अर्थ भी लगाया जा सकता है कि वह बिलकुल निकम्मी थी, क्योंकि निकम्मी वस्तु का कोई दाम नहीं होता। कन्या के सम्बन्ध में इस तरह के प्रभाव की अपने कुल के लिए कलंक समझा जाता है। अतः कई जातियों में कोई व्यक्ति अपनी कन्या को किसी हासत में मुक्त देने की तैयार नहीं होता है। माफ़ूतों में इसका अर्थ यह समझा जाता है कि वह बहिष्कृत और मित्ररान्य थी, उसका कोई मूल्य नहीं था। अफ्रीका की कार्फिर स्त्रियाँ उस स्त्री को अल्पतः धुगित समझती हैं, जो किसी पशु से न खरीदी गयी हो। ऐसी स्त्री को वे बिल्ली कहते हैं, क्योंकि बिल्लियों की इतना निकम्मा प्राणी समझते हैं कि उसको कभी कोई नहीं खेचता है। कन्या का शुल्क उस की योग्यता की कसौटी है।

कुछ समाजशास्त्रियों के मत में पहले राक्षस विवाह प्रचलित था। इसमें खूनखराबी और हत्या देखकर लोगों ने धन देकर स्त्रियाँ खरीदनी शुरू की। अपने इस क्रम के समर्थन में वे यह तर्क उपस्थित करते हैं कि कई स्थानों में कन्या को पहले हरा लिया जाता है और बाद में उसका दाम तय हो जाने पर उसके साथ शादी हो जाती है। इसे मोचन धन (Ransom) कहते हैं, इससे यह सिद्ध होता है कि पहले कन्या को भया कर ले जाने की पद्धति का रिवाज था। किन्तु कन्या का दान मोचन धन नहीं है; कन्या का दाम लिये जाने के

जैसाई को प्रचुर धन का जालज देते हैं, धन की वस पर अपनी कन्या के दोष छिपते हैं और बहुत बड़े दहेज के साथ उसकी शादी करते हैं, उसी तरह वैदिक काल में, घर के रूप रंग या कपड़ों में कोई दोष होने पर, वह कन्या के पिता का खूब खपसा देता था। उपमा उसी वस्तु को दी जाती है जो खूब प्रसिद्ध या प्रचलित हो। शायद ऐसे जैसाइयों की उस समय बहुत संख्या रही होगी, तभी इस तरह की उपमा दी गयी है। शास्त्र (६।६) ने उक्त मंत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है—“मैत्रे मुना है, तुम दोनों विजामाता या सवोप जैसाई से अधिक धन देने वाले हो। दाक्षिणात्य खरीदी हुई स्त्री को पति को विजामाता कहते हैं”। इससे बात होता है दक्षिण में यह प्रथा अधिक प्रचलित थी। शास्त्र में ३।४ में इस प्रश्न पर विचार किया है कि कन्याओं की संपत्ति में उत्तराधिकार मिलना चाहिए या नहीं। इस प्रकार में भी उसने स्त्रियों के खरीदे जाने का संकेत किया है। स्त्रियों की संपत्ति दिये जाने के विरोधी लोगों का पक्ष रखते हुए शास्त्र ने अनेक युक्तियाँ दी हैं। इनमें एक युक्ति यह भी है कि स्त्रियों का शान, बिक्रय और दान होता है, अतः वे संपत्ति की अधिकारिणी नहीं हैं। इसके उत्तर में कन्या को संपत्ति देने के पक्ष का समर्थन करने वालों ने स्त्रियों के बिक्रय या बेचे जाने के तथ्य से इनकार नहीं किया, अपितु यह कहा है कि यदि वह युक्ति मान ली जाय तो पुत्रों की भी संपत्ति में अधिकार नहीं रहेगा, क्योंकि पुत्र भी बेचे जाते हैं, जैसे शुनजोष का उसकी पिता अजीमने ने राजा हरिश्चन्द्र को बेचा था (निरुक्त ३।४)।

स्त्रियों के खरीदे जाने का एक स्पष्ट प्रमाण मैत्रायणी संहिता (१।१०।११) में है—“यश्च कृत और तस्य है, स्त्री ब्रूत है, मिश्रय से वह स्त्री ब्रूता (या पाण का) जान करती है जो पति से खरीदी जाने पर भी दूसरे व्यक्तियों के साथ बिचरण करती है”।<sup>२४</sup> योमांता दर्शन में जैमिनि ने तथा इस के भाष्य में जबर ने भी इस प्रश्न पर विचार किया है। जबर जैमिनीय सूत्र के ६।१।१० का पूर्व पक्ष इस प्रकार रखता है<sup>२५</sup>—“स्त्रियां कय-विक्रय से

कारण कुछ और ही हैं जो ऊपर दिये गये हैं। कन्या का शुल्क लेने की प्रथा ऐसी जातियों में भी है जिनमें अपहरण द्वारा विवाह करने की प्रथा कभी नहीं रही और राजस विवाह के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि पहले कहीं यह विवाह पद्धति सामान्य रूप से प्रचलित थी (वे० शा० हि०, मै० पू० १४६-७०)।

२४ मै० सं० (१।१०।११) ‘कृतं वै सत्यमतोऽनृतं स्त्री अनृतं वा एवा करोति या पत्युः श्रौता सत्ययान्यम्बरति।’

२५ जै० सू० (६।१।१०) पर शबर का भाष्य ‘कयविक्रयं संपुक्ता हि स्त्रियः । विप्र्रा विप्रोयन्ते भर्ता कीयन्ते । विक्रया हि श्रूयते । सतमतिरथं दुहितुमते दद्यात् । जै० सू० (६।१।१५) पर शबर भाष्य ‘यत्तु कयः श्रूयते धर्ममार्तं नु तत् । नास्ती कय इति नियतं दिव्यं शानम् । सतमतिरथं शोभनामशोभना च कथां प्रति’।

मुक्त होती है, वे पिता द्वारा बेची जाती हैं और पति द्वारा खरीदी जाती हैं। श्रुति में उनके विषय का वर्णन है—“लड़की के पिता को १०० गीएँ और एक रथ दे।” फिर उसने १०० सं० के उपर्युक्त श्राव्य की व्याख्या करते हुए कहा है कि कन्याओं के पिता को दिया जाने वाला उपर्युक्त शुल्क निश्चित धन राशि है; चाहे कन्या सुन्दर हो, या न हो वह हर हालत में दिया जाता है। वास्तव में कन्याशुल्क की प्रथा इतनी अधिक बढ़ चुकी थी कि उसे स्वीकार किये बिना काम नहीं चल सकता था। अब उसे मना ही था तो धर्म के नाम पर लेना सबसे अच्छा था। शायद ने ऐसा ही किया।

### महाभारत में आसुर विवाहों के उदाहरण

इसमें कन्याशुल्क के कई ऐतिहासिक उदाहरण सम्मिलित हैं। उनमें ज्ञात होता है कि यह प्रथा दक्षिण में ही नहीं, अपितु उत्तर भारत के भी अनेक प्रदेशों में प्रचलित थी।

कुन्ती के साथ पाण्डु का विवाह करने के बाद, भीष्म ने उसका दूसरा विवाह करना चाहा। वे अपने भ्रात्रियों के साथ मद्रदेश (म्यांमार) गये। भीष्म ने मद्रराज शल्य से उसकी बहिन माद्री पाण्डु के लिए मांगी। मद्रपति शल्य ने कहा “मेरी यह सम्पत्ति है कि मेरे लिए आपसे अच्छा कोई बर नहीं होगा, किन्तु हमारे कुल में पूर्वजों द्वारा कन्या के लिए शुल्क लेने का नियम चला आ रहा है, वह चलता ही चला जाएगा, मैं उस नियम का उल्लंघन नहीं कर सकता। आप उस नियम को जानते हैं, अतः कन्यादान की बात आपके लिए उचित नहीं है। शुल्क लेना हमारा कुलधर्म है और पहले लोग इस विधि का अनुसरण किया करते थे, अतः इसमें कोई दोष नहीं है।” भीष्म ने इसके उत्तर में शल्य से कहा कि यह सुन्हारी साधुसम्मत मर्यादा है (महाभा० १।११३।८-१३)। अतः भीष्म ने, शल्य को सोता, विविध प्रकार के रत्न, हजारी हाथी, घोड़े, रथ, कपड़े, आभूषण मणि, मानिक्य, मोती, मृग आदि माद्री को पाने के लिए दिये। शल्य ने यह सब धन लेकर नाना अलंकारों से सजी हुई अपनी बहिन भीष्म को दान कर दी।

आगे चलकर हम देखेंगे कि भीष्म स्वयं इस प्रथा की घोर निन्दा करता है किन्तु यहाँ यह आसुर विवाह की बहना द्वारा चलाया हुआ (बाह्य) धर्म मानता है और इसमें कोई दोष नहीं समझता। शल्य को शुल्क माँगने में अचरम कुछ शिथिल हुई, किन्तु भीष्म ने उस शुल्क को देने में कोई संकोच नहीं किया।

उपपर्व में (३।११४।२०-३०) सान्यकुन्ज के राजा गांधि की इसी प्रकार की कथा है। राजा गांधि की अप्सराओं जैसा रूप रखने वाली एक लड़की सत्यवती हुई। प्लक्षीक भार्गव ने राजा गांधि से इस कन्या की जाचना की। गांधि ने कहा “हमारे कुल के पूर्वजों ने यह प्रथा बना दी है कि एक हजार काले कान वाले, श्वेत वर्ण और महा-वेगवान् घोड़े कन्या का शुल्क होते हैं (३।११६।२२३)। हे भार्गव, मैं आपसे यह शुल्क

कैसे माँगू ?" ऋचीक ने कहा—“मैं आपको एक हजार पयान रुपये, ध्येव वर्ण, वेगवान् घोड़े दूँगा। आपकी कन्या मेरी स्त्री होगी।” ऋचीक ने ये घोड़े वस्त्र से प्राप्त किये और उन्हें देकर गांधि ने सत्यवती को प्राप्त किया। द्विजलेष्ट ऋचीक ने धर्मभूषक भार्या को प्राप्त कर उससे यथाकाम रमण किया। यहाँ भी अपने कुल में निरकाल से चले आने वाले इस नियम को धर्म कहा गया है और इस विवाह को एक भृगुवंशी ब्राह्मण ने किया है।

कन्या-शुल्क के अनेक अन्य उदाहरण उपलब्ध किये जा सकते हैं। मणिपुर के राजा चित्रवाहन ने अर्जुन से अपनी कन्या का यह शुल्क माँगा था कि अर्जुन से चित्रावता का जो गुरू उत्पन्न हो वह उससे कुल की बचाने वाला हो (महाभा० १।२३५)। रामायण से ज्ञात होता है कि दशरथ ने सीतेयी का पाणिग्रहण भी शुल्क देकर किया था। कन्या विक्रय की इस प्रथा को भारत में यूनानियों ने आकर देखा था। उन्होंने लिखा है कि तजशिना नगरी में घुबती कन्याएँ बाजार में बेचने के लिए लायी जाती हैं और जो सबसे अधिक कीमत देता है उसी के साथ झुका लय होता है।

### कन्या शुल्क तथा आसुर विवाह की निन्दा

महाभारत और धर्मशास्त्रों में कन्या के लिए शुल्क देने की धारा निन्दा की है। महाभारत में इसका विस्तार से वर्णन है। हम पहले यही देखेंगे। अतुशासन पर्व में राजस और आसुर दोनों प्रकार के विवाह करने वाला भीष्म मुधिष्ठिर को उपदेश देता है कि ये दोनों विवाह अधर्म हैं और इन्हें कभी नहीं करना चाहिए।<sup>१३</sup> मुधिष्ठिर ने शुल्क के संबंध में जो प्रश्न किये हैं, उनसे यह ज्ञात होता है कि कन्या का शुल्क उन दिनों एक ज्वलन्ता समस्या थी। मुधिष्ठिर प्रश्न करता है—“एक कन्या के लिए कोई शुल्क दे, कोई यह कहे कि मैं इसे दान करता हूँ, कोई उसे हर ले, कोई उसे धन का लोभ दिखाने और कोई उसका पाणिग्रहण करने वाला हो तो उस कन्या का वास्तविक गति कौन होगा (१३।४४।१६-२०)।” इसी तरह मुधिष्ठिर ने आगे चल कर यह प्रश्न किया है कि यदि कन्या के लिए एक पुण्य ने शुल्क दे दिया है और धर्मापेक्षाम-सम्पन्न कोई अन्य वर पहले पुण्य की ओरता अधिक अच्छा मिल जाता है तो क्या किया जाना चाहिए। दोनों पक्षों से योग्य है, यदि शुल्क देने वाले से कन्या का विवाह होता है तो कन्या को अच्छा वर नहीं मिलता और यदि वह शुल्क लेकर दूसरे से विवाह करता है तो भी उसे पाप लगता है, इस दशा में क्या करना चाहिए। (१३।४४।२०-२६) भीष्म ने इन प्रश्नों का उत्तर बड़े विस्तार से दिया है। वह कहता है—“कन्या के लिए शुल्क ग्रहण करने से विवाह की छिड़

<sup>१३</sup> म० भा० १३।४४।६, पंचानां तु त्रयो धर्म्याः द्वावधर्म्यौ मुधिष्ठिरः।

पैताघ्नमासुरपक्षे न कर्तव्यो कथंचन ॥

होगी है, ऐसी बात नहीं है। मायु लोग शुल्क ग्रहण करके कन्या का दान कभी नहीं करते।<sup>३०</sup> इस विषय में वह कहता है कि यदि शुल्क से ही विवाह हो जाता हो तो फिर पानग्रहण संस्कार की क्या आवश्यकता है। जो लोग क्य या शुल्क को मानते हैं, वे धर्मज्ञ नहीं हैं। शुल्क के साथ कन्या की कभी नहीं व्याहृता चाहिए। भार्या का कभी क्य-विक्रय नहीं करना चाहिये।<sup>३१</sup> आगे चल कर भीष्म आसुर विवाह की निन्दा करता हुआ कहता है कि इस विवाह से असूयामुक्त, अधर्मनिष्ठ और लठ पुल पैदा होते हैं। धर्मशान्त्व के ज्ञाने वार्त, धर्मशास्त्र में बंधे हुए अजन्त पुरुष आसुर विवाह की निन्दा में हम द्वारा गाये हुए दो क्लोत्तों का उल्लेख करते हैं—“ओ मनुष्य पुत्र को बेचकर धन लाभ करते हैं अपना जीवितप को लिए शुल्क ग्रहण करके कन्या प्रदान करते हैं, वे मूढ़ पुरुष महाघोर सातवें नरक में, स्वेद, मूत्र और शिंटा का भोग करते हैं (१३१४५।१७-२०)।” शुल्क लेने की इससे अधिक भयंकर निन्दा क्या हो सकती है?<sup>३२</sup>

धर्मसूत्रों ने आसुर विवाह की प्रथा का विरोध कई प्रकार से किया। किन्तु विरोध करते हुए भी उन्होंने कई जगह इसे शब्दों में इसुक्त समर्थन भी कर दिया। बौधायन धर्मसूत्र (१।१।१।२०-२१) ने शुल्क देकर खरीदी हुई स्त्री को वैध पत्नी नहीं स्वीकार किया और उसे दासी का दर्जा दिया है। उसके शब्दों में इस प्रसंग में आचार्य पुरातन तत्त्वों को उद्धृत करते हैं—“धन से जो स्त्री खरीदी जाती है, वह पत्नी नहीं बनती जाती। वह देवताओं की पूजा तथा पितरों के तर्पण में, पति के साथ सम्मिलित नहीं हो सकती। कथ्य उस दासी कहता है। जो लोग लोग के कारण अपनी लड़कों को, शुल्क या दाम में बेते हैं वे आत्मा का विक्रय करने वाले महापापी हैं। वे घोर नरक में जाते हैं (बौधायन धर्मसूत्र १।१।१।२०)।” अगस्त (२।१।७६) यहीं धर्मसूत्र कहता है कि जो अपनी कन्या को बेचता है वह अपने पुण्यों को बेचता है, लेकिन बौधायन यह स्वीकार करता है कि आसुर विवाह क्षत्रियों के लिए धर्मानुकूल है (१।१।१।१२)। किन्तु वसिष्ठ धर्मसूत्र इसका नाम

३० महाभा० १३।४४।३१, तहि शुल्कपराः सन्तः कन्यां ददति कर्हिचित्।

३१ वही ४५-४७ ‘ये मय्यन्ते क्वं शुल्कं न ते धर्मविदो नराः। न भेदेभ्यः प्रजातव्या न बोधव्या तन्वाविद्या। न ह्येव भार्या केतव्या न विक्रेय्या कथंचन। ये च कीचन्ति दासीं च मिषीणन्ति तथैव च। अवेत्तेषां तथा निष्ठा लुब्धानां पापचेतसाम्॥

३२ शुल्क की निन्दा के अन्य वचनों के लिए देखें महाभा० १३।६३।१३३ व १३।६४।३१, ७।४३।३७, ७।४३।४२। पहले दो स्थलों में कन्या शुल्क लेकर कन्यादान करने वालों को अत्यन्त गर्हणीय एवं कुकर्म करने वाले मनुष्यों में गिनाया गया है। १३।४५।२३ में कहा गया है, जब अन्य पशुओं को बेचना भी उचित नहीं है तब मनुष्य द्वारा संतान का बेचना कभी धर्मसंगत नहीं हो सकता (अन्योऽप्यथ न विक्रेयो मनुष्याः कि पुनः प्रजाः) मि० मनु० ३।५३।

मानव अर्थात् मनुष्यों में प्रचलित होता है। वसिष्ठ इसकी निन्दा नहीं करता, किन्तु ऋष के उन पुराने बचनों को उद्धृत करता है जिन्हें शबर ने उद्धृत किया है। मानव गृह्यसूत्र (१।७।८) में इसका नाम शौल्क दिया है, किन्तु निन्दा नहीं की। मनु ने (३।२१-५५) कहा है कि कन्या का पिता घन ग्रहण करने के दोष को जानता हुआ अनुमात्र भी शूलक न ले; शीघ्र से उसे ग्रहण करता हुआ वह संतान वैचरन वाला होता है। किन्तु जब कन्या के सम्बन्धी वर का शूलक अपने आप नहीं मिले किन्तु कन्या का शीप देते हैं, तब वह कन्याओं का अर्हण या पूजन है, इसमें कोई दोष नहीं है। मनु शूद्र तक को कन्या का शूलक लेने से मना कराता है, क्योंकि वह प्रच्छन्न कान्धा-विषय है (४।६८)। अस्तुतः इन श्लाकों में मनु ने अपने आदर्श को सूचित किया है। वह यह अवश्य चाहता था कि शूलक न दिया जाय, किन्तु समाज में कन्याशूलक लेने की प्रथा काफी दृढमूल थी। अतः अन्यत्र (४।६३ व ८।१६६) में उसने शूलक को स्वीकार किया है। मनुस्मृति (४।६३) में कहा गया है कि शत्रुमुक्ता कन्या का परिणय करने वाला वर पिता को कन्या का शूलक न दे, क्योंकि पिता उसके शत्रुकात्त का निरोध करने से कन्या पर अपना स्वामित्व खो बैठता है। इसी तरह ८।१६६ में समान जातीय कन्या को दूषित करने वाले युवक के लिए दण्ड की व्यवस्था करता हुआ वह कहता है कि यदि पिता इस विवाह को पसन्द करे तो वर कन्या का शूलक ही दे, उसे और कोई दण्ड नहीं। ८।२०४ में मनु कहता है कि यदि कन्या का पिता शूलक लग करने के समक्ष अच्छी कन्या दिखाता है और बाद में विवाह के समय दूसरी (दोष वाली) कन्या देता है, तो एक ही शूलक से वर दोनों कन्याओं के दाप लायी कर ले। इन दोनों श्लाकों से स्पष्ट है कि मनु कन्या के पिता को शूलक लेने का स्वाभाविक अधिकारी मानता था। याज्ञवल्क्य ने (३।२३६) संतान वैचरन उपासकों में गिना है (मि० मनु० १।१।६१)।

कन्याशूलक की तीव्रतम निन्दा महानिर्वाण तत्त्व (१।१।८४) तथा पद्मपुराण में है। म० नि० कहता है—“राजा नास्तिक और पतित व्यक्ति की तरह अपनी कन्या का शूलक लेने वाले व्यक्ति को भी अपने राज्य से निर्वासित कर दे”। पद्मपुराण व० ख० (२४।२६) कहता है—“बुद्धिमान् कन्या वैचरन वालों का मुख न देखे, यदि अज्ञान से उनका मुख देख ले तो सूर्य का दर्शन कर उस पाप की निवृत्ति करे”।<sup>३३</sup>

स्मृतिकारों की उपर्युक्त व्यवस्थाओं से यह स्पष्ट है कि वे शूलक की प्रथा को बन्द करना चाहते थे। संभवतः उन्होंने इसीलिए ऐसे आसुर विवाह का नाम दिया। असुर भी राक्षसों की तरह एक बदनान् और देवताओं की जिरहो जाति थी। उस बुरी जाति में प्रचलित प्रथा का अनुसरण शिष्ट लोगों को नहीं करना चाहिए। श्री वैद ने यह कल्पना

३३ जर्मन लोगों में भी यह रिवाज था कि जब तक कन्या का शूलक न दिया जाय तो विवाह बंध नहीं समझा जाता था (व० शा० हि० मै०, पृ० १७६-७)।

की है, कि कन्या का शुल्क लेने की परिपाटी असीरिया में प्रचलित थी। अगोरिया के संसर्ग से यह भारत में आयी और भारत के उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों—मद्र, केरुप आदि में उसके बहुत उदाहरण मिलते हैं। भाद्री कैनेर्नी के विवाह शुल्क से दूर थे, अतः डम प्रथा को आसुर कहा गया था। इस कल्पना में पहला दोष तो यह है कि कन्याशुल्क की प्रथा केवल पश्चिमी भारत तक ही सीमित नहीं थी। वास्तव में दक्षिणार्धों का विवाह बनाया है महाभारत में पवित्र आर्यदेश के कान्यकुब्ज जैसे महत्त्वपूर्ण स्थान के राजा गांधि की अपनी कन्या का शुल्क लेने वाला बताया गया है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि यह प्रथा पश्चिमी भारत तक ही सीमित थी और वहाँ वालों ने इसे असीरिया में प्रक्रम किया। दूसरा दोष यह है कि श्री वैश्व ने असीरिया में डम प्रथा के प्रचलित होने के कोई निश्चिन् प्रमाण नहीं दिये। केवल आसुर और असीरिया के नामसाम्य से यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें यह प्रथा प्रचलित थी।

### आसुर विवाहों की निन्दा का कारण

धर्मशास्त्रों द्वारा आसुर विवाहों की निन्दा का मुख्य कारण यह प्रतीत होता है कि वे कन्या को दान की वस्तु समझते थे। कन्यादान और विवाह पर्यायवाची शब्द हैं। दान की वस्तु की खरीद नहीं जाता। दान और खरीदना दो विरोधी वस्तुएँ हैं। जब कन्या को एक बार दान की वस्तु समझ लिया गया तो उसके विक्रय का निषेध एवं निन्दा सर्वथा स्वाभाविक थी। किन्तु इस पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि कन्या को दान की वस्तु क्यों माना गया? हम यह देख चुके हैं कि असभ्य जातियों में पिता और सम्बन्धी अपनी कन्या को आसानी से नहीं देते हैं। इसमें उदका स्नेह तथा स्वार्थ दोनों कारण हो सकते हैं। प्राचीन भारत में भी पहले कन्या विक्रय होता था और आजकल भी भारत की निम्न तथा असभ्य जातियों में उसका श्रृंख प्रचलन है। आसुर विवाह में स्त्रियों का दर्जा ऊँचा हो जाता है। राजस विवाह में इनकी कोई कीमत नहीं और ब्राह्म, दैव आदि में उनकी कोई पूछ नहीं है। जब व्यक्ति को पत्नी खरीद कर लानी पड़ती है तो वह उसके साथ दुर्व्यवहार या अत्याचार नहीं कर सकता, उसे कोई शपथ नहीं दे सकता, क्योंकि हमेशा उसे यह भय रहता है कि यदि उसने पत्नी को शपथ किया और पत्नी ने उसे छोड़ दिया तो नहीं पत्नी जाने के लिए उसे और खया खर्च करना पड़ेगा। उसका यह भय समाज में स्त्रियों को प्रतिष्ठा, गरिमा और स्वतन्त्रता प्रदान करता है। हम अन्यत्र विस्तार से यह देखेंगे कि ब्राह्मण स्मृतिकारों को 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' का सिद्धान्त बहुत प्रिय है और विवाह-सम्बन्धी नियमों में उन्होंने स्त्रियों के साथ अन्याय किया है। कई बार, यह अन्याय स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों से किया गया है। ब्राह्मण प्रत्येक वस्तु को दान में चाहना था, चाहे वह कन्या हो या दक्षिणा। कन्याशुल्क के नियम में निर्धन ब्राह्मणों को बहुत अनुविधा उदानी पड़ती थी। भीष्म ने तो मद्रराज की भाद्री का शुल्क

सोना, चांदी, बहुमूल्य मणि-माणिक्य के रूप में यहाँ प्रसन्नता से दिया, किन्तु श्रद्धा की भाव्यता को शांति की कन्या का शूलक देने के लिए वरुण से १००० घोड़ों की याचना करती थी, अतः ब्राह्मणों के लिए यह स्वाभाविक था कि वे कन्या के शूलक को निन्दा करें।

मध्यकाल के स्मृतिकारों और पुराणों द्वारा इस प्रथा की धीरे-धीरे निन्दा का एक कारण भी अस्तेकर ने 'पौनोत्तन आफ़ वुमैन इन एंसेष्ट इंडिया' (पृ० ४६) में यह बताया है कि बालविवाह के प्रचलन में शूलक की बुराई बहुत बढ़ गयी थी क्योंकि कन्या के माता-पिता घर में शूलक मानते थे। किन्तु यह कारण ठीक प्रतीत नहीं होता। बालविवाह में सम्बन्धता होने से पहले ही कन्या का ब्याह देने का नियम था, उसे रोक रखने पर माता-पिता को बड़ा पाप लगता था। इस बात में कन्या के माता-पिता किसी भी प्रकार कन्या का विवाह कर देना चाहते थे। कन्या का शूलक मानने से तो कन्या के विवाह में देरी होने की संभावना थी। इसके विपरीत, वे घर के माता-पिता को विवाह के लिए दहेज के रूप में प्रस्तावन देना उचित समझते थे। अतः बालविवाह दहेज की बुराई को बढ़ाने वाला कारण अवश्य है, किन्तु कन्या के शूलक के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्मशास्त्रों द्वारा निन्दित होने पर भी यह प्रथा प्राचीन एवं मध्यकाल में चलती रही। वैदिक काल में तथा मौर्यकाल में कन्या-विक्रय के प्रचलन का उल्लेख हो चुका है। मध्य काल में कन्याशूलक को सूचित करने वाले बहुत से शिलालेख मिलते हैं। एरण (जि० सागर) प्रस्तर स्तम्भलेख में यह उल्लेख है कि राजा ने बती साध्वी (दासदेवी) से पाणिग्रहण किया, उस कन्या का शूलक उसने अपनी बीरता और जीम के रूप में प्रदान किया।<sup>३४</sup> चन्द्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि के शिलालेख में यह वर्णन है कि उसने पृथ्वी को अपने विक्रम से खरीदा था (विक्रमायकमकीता)। यह प्रयोग आश्चर्यजनक है किन्तु कन्याविक्रय की पद्धति को अवश्य सूचित करता है।<sup>३५</sup> लंकाराचार्य के सम्बन्ध में केरल में यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने ६४ आचार नियत किये थे। इन आचारों में कन्या-विक्रय तथा सती प्रथा का विशेष भी है।<sup>३६</sup> १४२५ ई० के पईबिडु (जि० अर्काट) के एक शिलालेख में कर्णाट, तामिल, तेलगु, अंलिट ब्राह्मणों का यह समझौता उल्लेख है

३४ फ्लीट—इंडिक्रान्तम इंडिकेरम, पृ० २० 'प्रीत्यपराक्रमवत्तशुल्का।'

३५ वही पृ० ३४, कालिदास ने 'बुहितुशुल्क' शब्द का दो स्थानों पर संकेत किया है। अज-दनुमती स्वयंवर में भोज का वर्णन करते हुए वह इसके लिए 'हरण' शब्द का प्रयोग करता है। मल्लिनाथ के मत में हरण कन्या के शूलक को कहते हैं। इसी प्रकार १११३० में उसने जनक की 'बुहितुशुल्क' संस्था का उल्लेख किया है। ये दोनों उद्धरण इतने स्पष्ट हैं कि इनसे कोई परिणाम नहीं निकाला जा सकता है।

३६ इण्डियन एन्डोक्वेरी, खण्ड ४, पृ० २४४-४६



कि वे अपनी कन्याओं के लिए सुवर्ण नहीं लेंगे और उनका दानगात्र कर देंगे। जो व्यक्ति कन्या के विवाह के लिए शुल्क देगा वह राजा द्वारा दण्डित होगा और ब्राह्मण उसे जाति से बहिष्कृत कर देंगे। १११८०० ई० के लगभग महाराष्ट्र में पेशवा ने काई (जि. सतारा) के ब्राह्मणों के नाम यह आज्ञा निकलवाई थी कि ब्राह्मण कन्याओं के लिए शुल्क न लें, जो शुल्क लेंगे, उन्हें दण्ड दिया जाएगा। जो यह शुल्क देंगे या जो घटक (गाई) उस शुल्क को तय करायेंगे वे भी दण्डित होंगे।<sup>१२</sup>

### गान्धर्व विवाह

**स्वरूप**—युवक-युवती परस्पर प्रीति उत्पन्न होने पर माता-पिता की अनुमति के बिना जो विवाह करते हैं, उसे गान्धर्व विवाह कहा जाता है।<sup>१३</sup> आजगन्त पश्चिम में जिस प्रकार के प्रणय विवाह (Love marriages) चल रहे हैं, प्राचीन काल में उसी तरह गान्धर्व विवाह प्रचलित था। पिछली कई जतिमों में दाम्प-विवाह का अत्यधिक प्रसार होने से गान्धर्वविवाहों की प्रथा हिन्दू समाज में उठ गयी है और उनमें ऐसे विवाहों की कल्पना न हो और न ही की जा सकती है। आज से ७० वर्ष पूर्व हिन्दू विवाह की दशा को देखते हुए श्री रिजली ने लिखा था—“इस विषय पर विचार करने हुए हमें अनुरंजन (Courtship) के सब विचार अपने दिल से निकाल देने चाहिए।” ये सब विचार यूरोपियन लोगों के विवाह के साथ अधिक सम्बद्ध है। रिजली के मन में ‘प्रणय विवाह’ यूरोप की विशेषता है, किन्तु यह मत ठीक नहीं प्रतीत होता है। जब तक हमारे देश में दाम्प-विवाहों का रिवाज नहीं थला था उस समय तक प्राचीन भारत में प्रणय-विवाह होते थे; क्षत्रियों के आश्रमों में, सारिताओं के कुलों पर, बेटस कुञ्जों में प्रेमी-प्रेमिका का मिलन होता था। वे एक-दूसरे के प्रति सत्प्रसन्न रहने की प्रविज्ञा किया करते थे।

### वैदिक युग में गान्धर्व विवाह

वैदिककालीन साहित्य में प्रणय विवाहों का बड़ा मधुर वर्णन है। ऋ० (१०। ३४।१) में अश्वरी यह सिद्धायत करता है कि मैं जुआ न खेलने का संकल्प करता हूँ, किन्तु जब पाशों के पड़ने की आवाज आती है तो मैं जुए के स्थान पर उसी तरह खला जाता हूँ,

<sup>१२</sup> हुला—साउथ इण्डियन इन्स्क्रिप्शंस सर्व० ५६।

<sup>१३</sup> कान्हे-हिस्टरी आफ धर्मशास्त्र, खं० २ भा० १, पृ० ४०६-७।

<sup>१४</sup> बौ० धं० सू० १।१।१२, सकामेन सकामायां मिथः संयोगो गान्धर्वः। मि० ब० धं० सू० १।३।३, अगं० धं० सू० २।५।१।२०, गौ० धं० सू० १।४।८ इच्छन्त्या स्वयं संयोगो गान्धर्वः।

जैसे प्रेमिका प्रिय से मिलने के लिए निश्चित संकेत स्थान की ओर जाती है। सोम के प्रकरण से उपमाकृष से कहा गया है कि उगलियां सोम को उसी तरह स्वाती है जैसे बाल्या प्रेमी से प्यार करती है (अथर्व ६।५६।३)। ऋग्वेद २।३२।५ में भी स्त्री का प्रेमी के पास जाने का वर्णन है। केवल स्त्रियों ही पुरुषों के पास जाकर, उनसे प्रणय प्राप्त करने का यत्न नहीं करती, अतः पुरुष भी स्त्रियों से प्रेम पाने की आकांक्षा रखते और उसके लिए माना प्रकार के यत्न करते थे। अथर्ववेद के कामान्वा (६।८) और कामिनी-मनोभिमुखी-कारण (प्रेमिका के मन को अपनी तरफ आकृष्ट करना) नामक (२।३०) सूक्तों के मंत्रों की टेंक है—“मेरी प्रेमिका मुझे चाहने वाली हो। मेरे से दूर हट कर जाने वाली न हो।” अथर्व ६।८।१ में प्रेमी प्रेमिका से उस तरह के आलिषन की माँग करता है, जैसा आलिषन तथा युद्ध के साथ करती है। एक दूसरे सूक्त में पुरुष अपनी कामिनी या प्रेमिका के प्रेम को प्राप्त करने के लिए माना प्रकार के उपार्यों का आश्रम लेता है, वह अनिवारियों से सहायता माँगता है (२।३०।२), ओषधि का प्रयोग करता है और अन्त में सफल होकर कहता है कि तू मेरे पास वसित की इच्छा से और मैं तेरे पास पत्नी की इच्छा से आया हूँ। हिनहिनाते घोड़े की तरह मैश्वर्य के साथ तेरे पास आया हूँ (अथर्व २।३०।५)। कामान्वा सूक्त (अथर्व ६।६) में भी पुरुष ने इस प्रकार की अभिलाषा व्यक्त की है—हे कामिनी, तू मेरे शरीर, पैर, आँख, सन्धि की शोभना कर, क्योंकि तूरी आँखें और केश स्यादितम् से मुझे जला रहे हैं। हे कामिनी, मैं चाहूँ मैं खरी हुई तुझको अपनी प्रेमलता बनाता हूँ ताकि तू मेरी इच्छा (संकल्प) वाली हो और मेरे विस को प्राप्त करे (अथर्व ६।६)। अभिसौमनस्य सूक्त (६।१०२) और स्मरसूक्तों (६।१३०।३१) में भी प्रेमी ने कामिनी के प्रति अपने प्रेम की विज्ञापना एवं आतुरता को प्रकट किया है—“अस्मिनी, जैसे यह घोड़ा सारथी की इच्छा से आता जाता है (अर्थात् पूर्णरूप से उसके अधीन हो जाता है) हे कामिनी, उसी तरह तेरा मन मेरी ओर आये जाये (पूर्ण रूप से मेरे अधीन हो)।” (६।१०२।१)। छोटे काण्ड के स्मरसूक्त (१३०।३१) की टेंक यह है—हे देवी (मेरी कामिनी या प्रेमिका के पास) काम देवता को भेजो ताकि वह मेरी ही चिन्ता करती रहे (देवा प्रहिषत स्मरसौ नामनुवाचनु)। उनके पास देवताओं का, गन्धर्वों का, अम्बरज्यों का काम भेजो (ताकि मेरी प्रेमिका) मुझे प्यार करने लगे, मेरा प्रेमी मुझे याद करने लगे (अथर्व ६।१३०।२)। हे अग्नि, हे इन्द्र, हे अन्तरिक्ष, तुम मेरी प्रेमिका को इस तरह उन्मत्त बनाओ कि वह मेरा ही ध्यान करे (अथर्व ६।१३०।३)। पुरुष के द्वारा प्रणय की इतनी तीव्र और स्पष्ट याचना भारत के प्राचीन साहित्य में बहुत कम अभिव्यक्त हुई है।

युवक-युवती के प्रेम का उदय होने पर कई बार माता-पिता उसमें बाधक होते हैं। गान्धर्व विवाह की दूसरे विवाहों से यह विशेषता है कि इसमें माता-पिता की परवाह नहीं की जाती। अथर्व ३।२५ में प्रेमी अपनी प्रेमिका के प्रति काम के इतने अवर्दस्त

बाप फैला है कि उसकी प्रेमिका माता के पास हो या पिता के पास, किन्तु वह प्रेमी के पास में हो जाती है: "हे कामिलो, अपने (प्रेम के) चादुक से मेरी लाइला कर, मैं ऐसी प्रेरणा करता हूँ कि चाहे तू माता के पास हो या पिता के, तू मेरे संकल्प वाली हो और मेरे भित्त को प्राप्त करे।" प्रेमी चाहता है कि उसका प्रेममाण ऐसा प्रपन्न हो कि प्रेमिका उसमें बिड़ होकर रात को सोने की इच्छा न करे (या धृया: शयने न्ने)। वह बाप उसके हृदय को मुखा दे और उसमें बिड़ होकर उसका बानु बिन्दुन मुख जान और वह प्रेमी के पाग प्रियवादिनी होकर बैठ जाय (अथर्व ३।२६।४-५)। शिव ने कामदेव का विध्वंस ज्ञान के तीसरे नेत्र में किया था, किन्तु और काम का विरंध्य है। प्रेमी को भय है कि यदि प्रेमिका कुछ ज्ञान वाली हुई तो वह उसे प्राप्त नहीं कर सकेगा, अतः वह भित्त और बरण देवों से प्रार्थना करता है कि तुम इसे बुद्धिशून्य (अश्रु) बना दो और मेरे पक्ष में कर दो (३।२६।६)।

वेद में इन वर्णनों के इतने विस्तार से उपलब्ध होने के कारण यह बात सर्वथा स्वाभाविक प्रतीत होती है कि उस समय गान्धर्व या प्रणय विवाहों का प्रचलन था। कौष और शैकडान्त ने यह कल्पना की है कि उस समय पिता पुत्र के विवाह को नियन्त्रित करता था जो इस पद्धति के सर्वथा विपरीत है। किन्तु डिमर यहाँ तक कहता है कि पिता लड़कियों के विवाह में हस्तक्षेप नहीं करता था।<sup>४०</sup> यदि इन विरोधी सिद्धान्तों को सर्वथा सत्य न माना जाय तो भी इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि मुख्य-पुत्रियों को उस समय प्रणय विवाह करने में पूर्णतः स्वच्छन्दता थी।

### महाभारत में गान्धर्व विवाह (दुष्यन्त-सकुन्तला)

प्राचीन काल के इतिहास में गान्धर्व विवाह का सुप्रसिद्ध उदाहरण दुष्यन्त और सकुन्तला का है। कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल ने उसे अमर बना दिया, किन्तु दोनों वर्णनों में अन्तर है। महाभारत के अनुसार (१।६६) दुष्यन्त अगणित सेना और अनेक बाहुनों के साथ पशुओं का शिकार करने के लिए घने वन में गया, उसने अनेक प्राणियों का शिकार किया, अन्त में वह साजिनी नदी के तट पर पहुँचा। उसने कण्व ऋषि के उधोवन में प्रवेश किया, कण्व ऋषि बाहर गये थे। राजा ने आश्रम को सूना पाकर यह पूछा कि यहाँ कौन है? आश्रम इस प्रश्न से मूँझ उठा। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए लक्ष्मी-सी एक लपकती उपस्थिनी कन्या उस आश्रम से बाहर निकली। उसने अतिथि की अन्वेषणा की, उसके स्वास्थ्य और कुशल का समाचार पूछ कर मुस्कारते हुए कहा—“आपको क्या कार्य है?” राजा ने कहा कि “मैं महर्षि कण्व से मिलने आया हूँ।” उस कन्या ने उत्तर दिया वे फल कटोरने आश्रम से बाहर गये हुए हैं, आप क्षण भर टहरिये,

वे थोड़ी देर में लौट आयेगे। राजा ने उसके बाद कन्या के रूप की प्रशंसा करते हुए कन्या का परिचय पूछा। कन्या ने विस्तार से अपनी जन्म कथा सुना दी।

दुष्पन्त ने उसकी जन्म कथा समाप्त होते ही यह कहा—“तुम राजपुत्री हो, मेरी पत्नी बन जाओ।” फिर बाद में शकुन्तला को लालच देते हुए कहा—“मैं तुम्हारे लिये सुवर्ण हार, कम्ब, सुवर्ण कुण्डल, मणि और रत्न लाऊंगा, मेरा सारा राज्य तुम्हारे लिये है। हे सुन्दरी, तुम मेरी पत्नी बन जाओ, हे श्रीम, तुम मेरे साथ गान्धर्व विवाह करो, क्योंकि गान्धर्व विवाह सब विवाहों में श्रेष्ठ होता है (१।७३।४)।” शकुन्तला बोली—“मेरे पिता जब बटोरने के लिए गए हैं, आप क्षण भर ठहरें, वह श्रावण मेरा सम्प्रदान करेंगे।” दुष्पन्त को इसका धर्म नहीं था कि वह कण्व की प्रतीक्षा करता। वह बोला अपना आत्मा ही अपना बन्ध है (श्रावणी बन्धुरानैव), वही अपनी गति है, अपना दाग तुम स्वयं ही कर सकती हो अर्थात् तुम्हें कण्व में पड़ने का या उस द्वारा अपना दान करवाने की आवश्यकता नहीं। आठ प्रकार के विवाहों का वर्णन करते हुए वह कहता है कि “गान्धर्व और राजस अविधियों के लिए धर्मविवाह है (१।७२।१३)। इसमें गाँका मत करी। इसमें मन्देह नहीं कि ये दो प्रकार के विवाह, बाहे अलग रूप से हों या मिलकर हों, राजाओं के लिए उचित हैं। मैं तुम्हारी कामना करता हूँ और तुम मुझे चाहती हो, अतः तुम गान्धर्व विवाह के द्वारा मेरी भागी बन सकती हो।”

शकुन्तला राजा की अभिवादा की तीव्रता का अनुभव कर, मीठी से साध जटाती है और राजा के साथ अपने विवाह की बातें तय करती हुई कहती है—“गर्व मही धर्म एवं है, मेरा अत्मा मेरा स्वामी है तो हे पौरव जगन्नाथ के विषय में मेरी बातें सुनो, मैं एकान्त स्थान में जैसा कहती हूँ, मेरे साथ वैसी प्रतिज्ञा करो। मुझ से जो पुत्र उत्पन्न हो, वह युवराज हो और आपमें पीछे राज्य का अधिकारी हो। हे दुष्पन्त मैं सब कहती हूँ यदि ऐसा हो तो आपके साथ मेरा संगम हो सकता है (१।७३।१२-१७)।” राजा ने शकुन्तला की यह बातें मान ली और विधिपूर्वक शकुन्तला से पारिव्रत किया। उसके साथ सहवास किया और बाद में उसे यह विश्वास दिला कर राजधानी भेजा गया कि मैं तुम्हें लिवाने के लिए चतुरंगिणी सेना भेजूंगा।

कुछ समय बाद कण्व आपि आश्रम में लौट आये। सज्जावता शकुन्तला उनके पास नहीं गयी। कण्व ने दिव्य ज्ञान से सारी बात जानकर कहा कि “आज मेरी सम्मति के बिना एकान्त में पुरुष से मिलने पर तुम्हारे धर्म की हानि नहीं हुई क्योंकि अलिप के लिए गान्धर्व विवाह ही श्रेष्ठ कहा गया है। निर्जन स्थान में कामयुक्त पुरुष का कामयुक्ता नारी से जो मिलन होता है, वही गान्धर्व विवाह कहलाता है।” प्रयासमय शकुन्तला का एक पुत्र उत्पन्न हुआ। छोटी आयु में वह गोर, हाथी आदि सभी भयंकर पशुओं का दमन करने से सर्वदमन कहलाया। उसके छः वर्ष का होने पर कण्व ने अपने शिष्यों के साथ शकुन्तला की दुष्पन्त के पास भेजा।

शकुन्तला ने राजमन्दिर में राजा की अपनी प्रतिमा का स्मरण किया। राजा ने उस प्रतिमा को वाप कर ले लिया था, यह कहा कि "मुझे कुछ स्मरण नहीं है, वृद्धा लक्ष्मी है। तेरे साथ मेरा धर्म, अर्थ, काम का कोई सम्बन्ध हुआ हो, वह मुझे वाप नहीं आता। तू चाहे जो कर, चाहे चली जा, चाहे यहाँ रहे (१।७।१६-२०)"। शकुन्तला ने इसके उत्तर में एक लम्बी वक्तव्य दी है। स्त्रियों के अधिकारों का उसमें जैसा प्रबल समर्थन किया गया है, बीसवीं सदी के स्त्री समानाधिकारवादी आन्दोलनवादी (Feminists) भी संभवतः नारों के अधिकारों का वैसा तीव्र समर्थन नहीं करते हैं। पहले उसने दुष्मन्त को सर्व व्यापक परमेश्वर की तुलना दी है, जिसके आगे कोई भाग नहीं छिपा रहता, किन्तु उसने प्रतिज्ञा होने के कारण, राजा से परमेश्वर होने की प्रार्थना की है। बाद में उसने पत्नियों के सहस्र एवं शौर्य के गीत गाये हुए, यह कहा है कि "अतिक्रूर होने पर भी पति को पत्नी को पसन्द न आने वाला काम नहीं करना चाहिये"।<sup>४१</sup> शकुन्तला को शायद यह आशंका थी कि पुरुष नारियों के वर्णोपनिषद् की मुक्तक प्रभावित नहीं हो सकते, अतः उसने अगली अपील पुत्र के नाम पर की है। दुष्मन्त ने औरों की सूची तथा अविश्वास्य बलात्कृत हुए, मेलना से उत्पन्न होने के कारण शकुन्तला को बेपया भी मानते करने वाली कहा है। शकुन्तला ने इस पर दुष्मन्त की खूब खरी खरी-मुताबी है—“राजन्! आप सरसों (के दाने) जैसा दूसरों का सूक्ष्म दोष देखते हैं और बेलपत्र जैसा अपना बड़ा दोष नहीं देखते”। वह राजा की तुलना पिछा चुनने वाले मूख और ऐसे क्रूर व्यक्ति से करती है, जिसे अपनी सुन्दरता का अभिमान है, किन्तु उसने भीषण में अभी तक अपना मुँह नहीं देखा है। शकुन्तला की अन्तिम अपील सत्य के नाम पर है। “सत्य ही परब्रह्म है और सत्य ही परम नियम है। हे राजन्! आपने मुझ से जो प्रण किया था, उसे पूर्ण कीजिये, अन्यथा मैं जाती हूँ”। शकुन्तला चली गयी। उसके बाद एक आकाशवाणी हुई—“शकुन्तला ने जो कहा है, वह सब सत्य है मुझे उसके पुत्र का भरण करना होगा” (१।७।११७-१६)। राजा ने मन्त्रियों से कहा कि मैं जानता था कि इस पुत्र ने मुझसे जन्म लिया है, किन्तु यदि मैंने शकुन्तला के वक्तव्यानुसार पुत्र को ले लिया होता तो प्रजा यह सोच करती कि यह पुत्र शूद्र नहीं है।<sup>४२</sup>

४१ १।७।१५२ ‘सुसंरब्धोऽपि रामाणां न कुर्वादाप्रियं नरः।’ कालिदास ने शकुन्तला के लिए महर्षि कश्यप के मुँह से इससे बिल्कुल उल्टी बात कहलाई है—

मर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया या स्म प्रतीपं नमः।

४२ कालिदास ने महाभारत की इस कथा को अपनी कल्पना से परिमार्जित कर अज्ञानशकुन्तल में कुम्भ बना दिया है। कालिदास की शकुन्तला तो प्रगल्भ होकर राजा की अपनी जन्मकथा कहती है और न अपने पुत्र के लिए राजा होने की बात बाँधती है। कालिदास का दुष्मन्त भी शकुन्तला को जानबूझ कर नहीं

### बौद्ध साहित्य में गान्धर्व विवाह

बौद्ध साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय गान्धर्व विवाह का पर्याप्त प्रचलन था। आतक (सं० ७) की कथा कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल की कथा से बहुत भेद जाती है। एक बार काशीराज ब्रह्मवत् अपने प्रमोद के लिए उपवन में गया। वह फल और फूल पूँवता हुआ घूम रहा था। अकस्मात् उसकी दृष्टि कुंज में लकड़ियाँ धीनती और गाली हुई एक लड़की पर पड़ी। दृष्टि पड़ते ही राजा उग पर मुग्ध हो गया। कन्या को राजा से शर्म रह गया। उसने राजा से यह बात कही। राजा ने उसे अपनी मुद्रा देते हुए कहा कि यदि लड़की हो तो इस अंगूठी से धन प्राप्त करना तथा उस धन को पालन-पोषण पर व्यय कर देना और यदि लड़का होता तो वह अंगूठी और वच्चा मेरे पास ले आना। तत्पश्चात् एक आलस उत्पन्न हुआ। उसने माता से अपने पिता के बारे में पूछा। माता ने कहा—“बादागसी का राजा तेरा पिता है” और उसे अंगूठी वाली बात सुना दी। पुत्र ने माता से आप्रह किया कि वह उसे राजा के पास ले जाए। माता राजदरबार में गयी, उसने मुद्रा उपस्थित की। राजा जानता था कि वह सच कह रही है, किन्तु दरबारियों के जागै यह बात स्वीकार करने में उसे नज्वा का अनुभव हुआ। उसने दुष्यन्त की तरह स्पष्ट प्रत्याख्यान करते हुए कहा कि यह मेरा लड़का नहीं है। माता ने मुद्रा का साधस उपस्थित किया, राजा ने उगमें भी इन्कार कर दिया। अन्त में उस वच्चे के अलौकिक जन्मस्वर दिखाने पर राजा ने उस बालक को स्वीकार किया। उसे एक ज्ञान का शासक बनाना और राजा के भर जाने के पश्चात् उसने पिता के राज्य पर शासन किया। ४४

कई बार स्त्रियाँ अपने प्रेमीयों के साथ भाग जाती थी। धावस्ती के एक घनी घेष्टी की कन्या पाटञ्जारा जब १६ वर्ष की हुई तो उसे सातवी मंदिन पर बड़ी शौकस्ती में रखा गया। किन्तु उस कन्या का रक्षक से ही प्रेम हो गया। माता-पिता ने इसकी एक दूसरे युवक से शादी तय कर दी, किन्तु शादी के दिन वह कन्या अपने प्रेमी के साथ भाग गयी (धम्मपद अठ्ठ० कथा, खण्ड २, पृ० २६०)। अन्त अठ्ठ कथा (खण्ड १, पृ० १६१) में उज्जयिनी के चण्ड-प्रज्जोत की पुत्री वासुतवता की कथा

सुसता, अपितु दुर्वासा के साथ के कारण उसे शकुन्तला का विस्मरण हो जाता है।

४४ ऐसा जान पड़ता है कि यह कथा महाभारत और कालिदास की शकुन्तला की मध्यवर्ती है। महाभारत में अंगूठी की चर्चा नहीं है, इस कथा में पहचानने के लिए राजा द्वारा अंगूठी के दान की चर्चा है। सं० भा० और आतक में प्रत्याख्यान का मूल हेतु लोकनज्वा है, किन्तु कालिदास अंगूठी गुप्त करके तथा शाप द्वारा राजा को शकुन्तला का विस्मरण करा कर इस कथा को स्पर्धा नया रूप देता है।

वी गयी है। उसके पिता ने कन्या को हाथी पकड़ने का मतलब मिथाने के लिए उदयन को नियत किया। उदयन और वामदेवता का प्रेम हो गया और वामदेवता उसके साथ भाग गयी। यह बौद्ध कथा कौशाम्बी के वामदेवता और उदयन की प्रणय कथा का स्मरण कराती है।

भास ने प्रतिज्ञामौगन्धरायण नामक नाटक में उदयन और वामदेवता की कथा लिखी है। वाम (प्रणय के पाश का प्रदेण) के राजा उदयन और उज्जयिनी के राजा प्रद्योत ने शत्रुता थी। उदयन की हाथी पकड़ने का बहुत मौक था। वह हाथियों को मस्त कर देने वाली बीणा बजाता जानता था। प्रद्योत ने उसके इस व्यसन का लाभ उठाया। एक बार उदयन सामन्त में हाथी पकड़ने गया। प्रद्योत ने एक नएली हाथी में सिपाही भरवा दिये और उदयन उस हाथी में छिपे हुए सिपाहियों के हाग पकड़ लिया गया। प्रद्योत ने उसे अपनी कन्या वामदेवता को बीणा मिथाने के लिए शिक्षक नियत किया। बीणा सौख्य के समय दोनों के बीच में परवा गूहता था। एक बार अकस्मात् उदयन ने वामदेवता को देखा। दोनों में प्रेम उत्पन्न हो गया। मत्स्यराज उदयन अपने मंत्री की योजना से उसे भगा लाया।<sup>४४</sup>

### वात्स्यायन तथा गान्धर्व विवाह

वात्स्यायन ने कामसूत्र में प्रणयविवाहों की बड़े विस्तार से चर्चा की है। कामसूत्र के तीसरे अधिकरण का विषय है—“कन्या किस प्रकार प्राप्त की जाय।” वात्स्यायन ने एक यह मत लिखा है कि जिस कन्या में युवक का दिल और आँखें लग गयीं हों उसी कन्या से उत्तम सिद्धि हो सकती है, दूसरी से नहीं।<sup>४५</sup> वह कहता है कि जब कन्या विवाह योग्य आयु की हो जाय तो माता-पिता उसे अलंकृत कर एवं राजाघर यज्ञों में, विवाहों में तथा सखियों के साथ बसन्त आदि उत्सवों में भेजें। वहाँ लोग खूब इकट्ठे होते हैं, क्योंकि कन्या सौदेबाजी की वस्तु है।<sup>४६</sup> कन्या को वरण करने वाले या चाहने वाले जो व्यक्ति घर पर आये माता-पिता उन्हें कन्या की दूसरे-दूसरे बहानों से दिखा दें।

कई बार इस प्रकार के प्रणय-विवाहों में माता-पिता बाधक होते थे। किन्तु

<sup>४४</sup> उदयन और वामदेवता की कथा प्राचीन भारत में बहुत लोकप्रिय थी। कालिदास ने मेघदूत (१।३२) में इसका संकेत किया है।

<sup>४५</sup> ३।१।१४ वात्स्यायन कामसूत्र।

यस्यां मनश्चक्षुषोर्निखन्धस्तस्यामुद्रिः मे तरामाश्रियेत ।

<sup>४६</sup> वा० का० सू० ३।१।१६ नित्यप्रसाधितायाः सखीभिः सह कीडा । यत्र विवाहादिषु जनसंज्ञावेष्टु प्राप्यतिनकं वर्धनम् । तपोऽसवेष्टु च । पण्यसधर्मवात् ॥

वात्स्यायन विवाह में प्रीति को ही मुख्य मानता है (३।१।२५)। अतः उसका मत है कि वर-बधू में प्रीति उत्पन्न होने पर माता-पिता को उस सम्बन्ध के लिए तैयार रहना चाहिए। यदि माता-पिता मित्रों के आग्रह पर तैयार नहीं होते तो कण्ट्यपूर्ण उपायों को बरतने में कोई बाधा नहीं है। वर के मिल कन्या के माता-पिता को दूसरे वरों को बुरा-बुरा बनाकर उन्हें अन्य वरों के साथ व्याह्नने से रोकें (३।१।६)। एक मित्र पथोतिथी का रूप धारण कर कन्या के घर जाये और यह बतलाये कि यह, नग्न और शत्रुन बताते हैं कि वर को भविष्य में सम्पत्ति या बड़ा पद मिलने वाला है (३।२।७)। उसके दूसरे मित्र कन्या की माता से जाकर कहें कि उस प्रेमी या नायक को दूसरी अच्छी लड़की मिल रही है (३।१।८)। इस प्रकार कन्या के माता-पिता को तामा उपायों से प्रलोभित कर एक-दूसरे को बाह्य बनाने युक्त-युधती का विवाह कराया जाय।

कई बार व्यक्ति के धनहीन या गृहहीन होने पर उसका विवाह नहीं हो सकता था। वात्स्यायन इस दशा में उसे यह समाह्व देता है कि ऐसा युवक बचपन से किसी कन्या का अनुरजित (Courtship) करे (३।३।२)। वह उस कन्या के साथ फूल चने, माता गूँथे, गुड़ियाओं के खेल खेले, रसोई बनाये, तरह-तरह के नुस्खे, बीच की अगुली अलाने के तथा अन्य खेलों की, जो उस देश में प्रचलित हों तथा कन्या की जाय के अनुकूल हों, खेले। अपनी प्रेमिका के साथियों—नौकरों और दासियों के साथ भी वे खेल खेले (३।३।६)। इनके अतिरिक्त लड़की और उसकी सहोदरियों के साथ, आश्विचोनी, आराधिका, नवणवीरिका, सांघनपुजिका आदि खेलों का अभ्यास करे। वह कन्या को शिक्षाने के लिए उसे ऐसे खिलाँने और गुड़िया दें जो दूसरी लड़कियों के पास न हों, रसोई के बरतन, तोते, कोयल आदि के पिंजरे, तबकीरें, नीमा आदि वाद्य बजा करता रहे। यह दान उसे एकान्त में छिपाकर करे। एकान्त में उसे दान देता हुआ यह बात कहे कि मैं तुम्हें ये वस्तुएँ इसलिए दे रहा हूँ कि खुले तौर पर देने से माता-पिता तथा गुरुजन नाराज होंगे और दूसरी लड़कियाँ भी ऐसी चीजें चाहेंगी। जब वह कन्या कुछ प्रेम दिखाने लगे तो मनोरंजक कथाएँ सुनाकर उसके चित्त को प्रसन्न करे। यदि वह हँसना हो तो लड़के के खेल दिखाकर उसे और अधिक आश्चर्य में डाले। यदि उसे कलाओं से प्रेम है तो उनमें अत्यन्त कौशल प्रकट करे। यदि उसे गाना सुनने का शौक है तो उसे गाना सुनाये। जब वह अष्टमी, पूर्णिमा आदि के मेले पर जाय तो युवक उसे गूलदस्त, कान के आभूषण, कपड़े, अंगुठी, जेवर आदि भेंट करे। प्रेमी सेविका द्वारा कन्या को यह भी जतलावे कि वह रीत काम में बहुत कुशल है। इस सारे समय में वह अपने कपड़े बहुत अच्छे रखे (वात्स्यकमप्रकरण ३।३)।

इस प्रकार पुरुष द्वारा प्रेम प्रदर्शित किये जाने के बाद कन्या भी उस पुरुष के प्रति अनुरक्त होती है। वात्स्यायन ने बड़े विस्तार से यह बताया है कि पुरुष लड़की की कितनी चेष्टाओं से यह जाने कि वह उसके प्रति अनुरक्त हो गयी है (इशिताकार सूचन



प्रकरण ३।३)। पुरुष को जब यह निश्चय हो जाय कि कन्या उसे चाहती है तो वह उसे प्राप्त करने के और उपाय करे। जूना तथा दूसरी खेलों में खपड़ा करना हुआ उसका हाथ इस प्रकार पकड़ ले जैसे उसने उस कन्या के साथ ब्याह किया हुआ हो। इसी तरह नायिकाओं के साथ आलिंगन आदि करे, बलश्रैद्ध में प्रेमिका ने कुछ दूरी पर सोला लगाएँ, और उसके पास आकर उसे छुकर, फिर सोला भगाये। उसको ऐसे सजने सुनाये कि तुम जैसी स्त्रियों के साथ मेरा समागम हुआ है। गोंडियों और भमाजों (Parties) में वह प्रेमिका के पास बैठे। किसी वहाने में उसका स्पर्श करे, उसका पैर अपने पैर से दबाता रहे। नायिका के प्रेम की परीक्षा करने के लिए वह झूठ मूठ बीमार पड़ने का बहाना करे। उससे सिर दबाने का तथा अन्य कामें कारवाये। तीन सायंकाल या तीन रात तक वह परीक्षा करे। यदि प्रेमी इन उपायों में सफल न हो तो वह अपने मित्रों की तथा नायिका की सहेलियों की सहायता ले। अपनी नीकरानियों को उसकी सहेलियाँ बनाये। इसके बाद वह पर्वी (धार्मिक त्योहारों), विवाहों, उत्सवों, यात्रा, नाटक आदि वाले स्थानों में नायिका के अकेली होने पर उगलन अनुरंजन (Courtship) करे (बा० कामसूत्र ३।४।१-३४)।

वात्स्यायन ने कन्याओं को भी अपने प्रणय व्यवहार द्वारा प्रेमियों के हृदय जीतने के कुछ क्रियात्मक उपाय सुझाये हैं (प्रयोग्यावर्तन प्रकरण ३।४ ३५-४१)। वह ऐसे पुरुष से प्रेम दिखाये जिसके विषय में उसे यह संभावना हो कि वह दुर्वेन्द्रिय (अपनी वात्सलाओं को रोकने में असमर्थ) है और विवाह में माता-पिता की परवाह नहीं करेगा। प्रेमिका प्रेमी से एकान्त में मिले। उसे फूल, रत्न और पान आदि को भेंट करे। सिर दबाने आदि की अपनी कला के प्रदर्शन से, उसे प्रसन्न करे, किन्तु वात्स्यायन कन्या को यह चेतावनी देता है कि प्रणय के मामलों में उसे बहुत अधिक पहन नहीं करनी चाहिए। प्रेमी द्वारा अकारणरूपता होने पर भी, वह कोई उद्विग्नता न दिखाये। जब कन्या को निश्चय हो जाय कि प्रेमी मूल पर अनुरक्त है तब वह प्रेमी द्वारा कौमार्य बंध के लिए जल्दी कराये। अपने आप तथा अपनी विश्वासपात्र सहेलियों द्वारा इस समाचार को अच्छी प्रकार प्रकट कर दे (३।४।१०)।

इस प्रकार अनुरंजित नायिका के अनुराग को और अधिक बढ़ाने के लिए, नायक उसके पास अपनी माई को लड़की (धातुरी) की भेजे। वह उसके आगे नायक के गुणों का इस ढंग से बखान करे, कि नायिका को यह सन्देश न हो कि वह नायक (प्रेमी) द्वारा भेजी हुई है। वह दूसरे बरों की खूब निन्दा करे, यदि माता-पिता का यह बर परावद न हो तो उनके धारे में लड़कों को यह कहे कि माता-पिता तो गुणों को न पहचानने वाले और धन के पीछे मरने वाले हैं, वे गुणवान् बर को छोड़कर तेरे सिधे निकम्मे धनी बर को दुँड़ रहे हैं। अपनी बुद्धि और इच्छा से, पाणिग्रहण करके प्रसन्नता रहने वाली शकुन्तला आदि की कथाएँ उस नायिका को सुनायी जाय। प्रेमी के

प्रति अत्यन्त अनुरक्त होने पर दाई कन्या के दिन में मे माता-पिता और पुत्रजन का भव निकाल दे और यह भिन्ना भी निकाल दे कि गान्धर्व विवाह कोई बुरा कार्य है। उसे यह समझा दे कि तेरा प्रेमी यदि तुझे मन्वपूर्वक और अमानक हरे ले जाय तो इसमें तेरा दोष नहीं है (वा० का० सू० ३।३।१।१०)। ऐसी प्रेमिका को तावक एकान्त स्थान में ले जावे, वहा आशुष के घर में यज्ञ की अग्नि लावे, कुशा बिछावे और वपविधि कन्या के साथ तीन बार अग्नि की परिक्रमा कर, विवाह कर ले, क्योंकि अग्नि को राक्षसी बनाकर किये गये विवाह भय नहीं किये जा सकते। इस विवाह की सूचना अपने-माता-पिता को दे दे। उस कन्या के कौमार्यहरण की खबर को भी ज्ञेय दे, इस प्रकार प्रेमी को ऐसी सौवता मिलती चाहिये कि बदनामी के और राजा के दण्ड के भय से कन्या प्रेमी को देती पड़े (वा० कामभूज ३।४।११-१३)। यही गान्धर्व विवाह है।

कई बार कन्याएँ अपने नाहमिक कार्य के लिए तैयार नहीं होती थी। माता-पिता अपनी इच्छानुसार अपनी कन्या का विवाह किसी दूसरे युवक से निश्चित कर देते थे। ऐसी अवस्था में वात्स्यायन ने तावक को यह समझा दी है कि वह दाई आदि किसी स्त्री द्वारा अपनी प्रेमिका को किसी दूसरे बहाने से बुलावे और वाह्यन के घर से अग्नि वाकन विधिपूर्वक सम्पन्न करे और उस कन्या का पाणिग्रहण करे। प्रेमी को प्रेमिका के भाई को अपना मित्र बनाना चाहिये। उसका भाई उसकी उन्नयन होने के कारण, उसे ऐसे मामलों में पर्याप्त सह्यता देगा। वह उसके भाई को भेंट आदि से खुश खुश रखे और उसे यह बतावे कि मैं तेरी बहन को चाहता हूँ। युवक अपने समानसीत्वमयन वाले मित्रों के लिए प्राण तक छोड़ने के लिए तैयार रह जाते हैं, अतः अपने मित्र की इस अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए उसका भाई अवश्य तैयार होगा। प्रेमी प्रेमिका के भाई द्वारा प्रेमिका को किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दे और वहाँ उसके साथ विधिपूर्वक विवाह कर ले।

वात्स्यायन के इन परामर्शों और आदेशों को प्रेमी-प्रेमिका गान्धर्व विवाहों में बिना हृद तक काम में लाते थे, यह जानने के लिए हमारे पास निश्चित ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है, किन्तु वात्स्यायन ने इस प्रकरण की इतने अधिक विस्तार से लिखा है और इतने क्रियात्मक सुझाव दिये हैं कि इनसे इतना बात में सन्देह नहीं रह जाता कि वात्स्यायन के समय में इस प्रकार के विवाह प्रचलित थे।

### संस्कृत काव्यों में गान्धर्व विवाह

संस्कृत नाटकों और काव्यों में गान्धर्व विवाहों का बहुत वर्णन है। अभिज्ञान-शाकुन्तल में कालिदास ने बताया है कि अनेक राजपत्नियों ने गान्धर्व विवाह किये

और माता-पिता द्वारा वे पसन्द किये गये।<sup>४३</sup> कालिदास के इस नाटक का विषय दुष्प्रसन्न और अकुण्ठता का गान्धर्व विवाह है। छठीं शती के मध्य में या अन्त में होने वाले गुप्तध्व की आसन्नवत्सा में चिन्तामणि के पुत्र कामन्दकेतु और कुसुमागुप्त के राजा शृंगारगोष्ठर की कन्या वासवदत्ता के प्रणय-विवाह का वर्णन है। साठवीं शती में वाच भट्ट ने कादम्बरी लिखी। इसमें कादम्बरी और चन्द्रापीड के राधा महाप्रव्रता और पुण्डरीक के गान्धर्व विवाह का वर्णन है। सायंमान के समय वर्तमान पुण्डरीक की मनोव्यथा की प्रकट करने के लिए महाप्रव्रता के पास आता है और उसे पुण्डरीक का ज्ञान सुनाता है, किन्तु महाप्रव्रता की माता की आती देख-देखकर जल्दी लौट आता है। बाण ने कुछ ही समय बाद होने वाले भवभूति ने वाल्मीय के काममुख का पूरा अनुसरण अपने मालतीमाधव नामक नाटक में किया है। तद्मावती राज्य के मंत्री भूरिवसु और वैदर्भराज के मंत्री देवराज ने एक-दूसरे के पास शिक्षा ग्रहण करते हुए यह प्रतिज्ञा की थी कि वे अपनी सन्तानों का परस्पर विवाह करेंगे। अतः देवराज के पुत्र साधव का भूरिवसु की कन्या मालती से विवाह होना चाहिए था। माधव इस उद्देश्य से तद्मावती में आता है। किन्तु भूरिवसु राजा को प्रसन्न रखने के लिए अपनी कन्या का विवाह राजा के एक कृपापात्र मन्दत से करता चाहता है। कामन्दकी (एक बौद्ध मिथुनी जो इस नाटक में वाल्मीयभक्तनाम्न द्वितीय या प्रालेयी का कार्य बड़ी खूबी से पूरा करती है)<sup>४४</sup> को भूरिवसु का यह व्यव-भंग बहुत बुरा प्रतीत होता है। वह साधव और मालती को कई बहानों से मिलाकर उनमें प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न कर देती है। भूरिवसु से जब लोगों ने कहा कि उसने मालती को नन्दन के साथ व्याहृते का निश्चय करके अपने भग्न किया है, तो भूरिवसु ने कहा कि कन्या पर पिता का पूरा अधिकार होता है। परन्तु कामन्दकी इसका विरोध करती हुई कहती है—विवाह में सर्वोत्तम मंगल वर-वधू का पारस्परिक प्रेम है, जिसमें वर-वधू के मन और आँखें मिली रहती हैं, उसी में समृद्धि होती है।<sup>४५</sup> यह कथन अक्षरशः वाल्मीयन (३।१।१४) से मिलता है। वाल्मीयन ने यह सलाह दी थी कि प्रेमिका को अकुण्ठता आदि की कुरापें सुनाकर, प्रेमी के प्रति अधिक अनुरक्त बनाना चाहिए।

४४ अभिज्ञानराकुण्ठन, तृतीय अंक श्लोक २१

गान्धर्वेण विवाहेन बहुष्वो राजविकल्पकाः ।

श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिरचाभिगन्विताः ॥

४५ कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' में ऐसा कार्य एक परित्राजिका कौशिकी ने किया है। संन्यासिनी होने से सब लोगों का उन पर विश्वास होता था अतः वह यह कार्य दूसरी स्त्रियों की अपेक्षा अधिक आसानी से कर सकती थी।

४६ मालतीमाधव, २ रा अंक—इतरेतरानुरागो हि वारकर्मणि परार्थ्यं मंगलम् ।  
गोतृव्यामर्थो अंगिरसा यस्या मनश्चक्षुषो निबन्धस्तस्यामुद्धिरिति ॥

कामन्दकी दूसरे अंक में इस महाह का पूरा उपयोग करनी हुई मानती को बताती है कि पुराने समय में शुक्रन्तला ने शुक्रन्त का तथा उर्वशी ने पुरुष का वन्य किया था। वासवदत्ता को इसके पिता ने सजय नामक राजा को देना चाहा, किन्तु उसने उदयन के प्रति अलमलमर्षण किया। मानती पिता द्वारा अपने को इस प्रकार उपहार दिये जाने पर आश्चर्य प्रकट करती हुई कहती है कि पिता के लिए राजा को प्रशस्त रखना बड़ा महत्व रखता है, किन्तु मानती को उसे पन्नाह नहीं है। कामन्दकी दूसरे अंक की समाप्ति पर कहती है कि मैंने मानती के दिन में दूसरे वर के प्रति उष उत्तरण का दिया है और वह अपने पाणिग्रहण के विषय में पिता के अधिकार में सर्वेह प्रकट करने लगी है, उसे ऐतिहासिक उदाहरण मृताश्व मैंने कर्त्तव्य का भी निर्देश कर दिया है। माघव के भाग्य, कुल और सुर्षों की वृद्धि को है और जब उनका सम्बन्ध (विवाह) भाग्य पर छोड़ दिया है।<sup>४८</sup> अपने पिता की इच्छा के प्रतिकूल होने पर भी मानती माघव से ही पाणिग्रहण करना चाहती है और मानती तथा माघव का विवाह सम्पन्न होने के साथ ताटक की समाप्ति होती है। इस ताटक से स्पष्ट है कि आर्यों की तब तक हिन्दू समाज में गान्धर्व विवाह प्रचलित थे।

### गान्धर्व विवाहों में संस्कार की आवश्यकता

गान्धर्व विवाहों में अग्निहोत एक संस्कार आवश्यक है या नहीं, यह एक सर्वाधिक प्रश्न है। वात्स्यायन के समय तक विवाह-संस्कारों का विचार बहुत प्रचलित हो चुका था। एक बार संस्कार ही जाने पर विवाह अविच्छेद सम्बन्ध माना जाने लगा था। अतः वात्स्यायन ने गान्धर्व राजस और पशुपति विवाहों में इस बात पर बहुत जोर दिया है कि कन्या को पितृगृह से हट लेने के साथ तुरन्त शास्त्र के धर्म से अभिसाकार विवाह संस्कार कर देना चाहिए, क्योंकि अग्निसाक्षिक विवाहों का भग्न नहीं हो सकता।

ऐसा जान पड़ता है कि पुराने जमाने में संस्कार आवश्यक नहीं समझा जाता था। कण्व ने स्पष्ट रूप में महाभारत (१।७२।२७) में गान्धर्वविवाह को निर्मन्त्रविधि कहा है।<sup>४९</sup> इसी का अनुसरण करते हुए कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में दुष्यन्त

<sup>४८</sup> मानतीमाघव, २ रा अंक

वरेऽन्यस्मिन्नेषः पितरि विचिकित्सा च ज्विता  
पुरावृत्तोद्गारैरपि च कथिता कार्यपदवी ।  
स्तुतं माहाभाग्यं यदभिजनतो पंच गुणतः ।  
प्रसंगाद्विस्तस्येत्यथ तत् विधेयः परिचयः ॥

<sup>४९</sup> महाभा० १।७७।२६ अत्रियस्य हि गान्धर्वो विवाहः श्रेष्ठ उच्यते ।

सकाभावाः सकातेन निर्मन्त्रो रहसि कृता ।

और शत्रुन्तला का विवाह संस्कार नहीं कराया। किन्तु धीरे-धीरे इस बात की आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि ऐसे विवाहों को समाज द्वारा स्वीकृत कराने के लिए विवाह-संस्कार का होना उचित है, अन्यथा समाज में ऐसे विवाहों के बढ़ने की संभावना थी, जिसमें पहले कोई अपनी प्रेमिका से शादी कर ले और बाद में उसे छोड़ दे। इस प्रकार छोटी हुई स्त्रियाँ अनान और असह्य हो जाती हींगी और इन विवाहों के समाज द्वारा स्वीकृत न होने के कारण उन्हें पति से अपने विवाह के लिए किसी प्रकार की सहायता माँगने का कानूनी अधिकार भी नहीं होता होगा। इन असह्य स्त्रियों की रक्षा के लिए तथा इस प्रथा से बढ़ने वाले दुराचार को रोकने के लिए समाज ने इन विवाहों में संस्कार की आवश्यकता समझा ली, किन्तु फिर भी छोटी स्त्रियों के मध्य में मुख्य रूप से नायक-नायिका के लिए विवाहमहोत्सव आवश्यक नहीं समझा। अब घर-घर में अनुराग उत्पन्न हो गया तो उनके लिए विवाह की किसी दूसरी विधि की आवश्यकता नहीं है। मुख्य ने प्रेम के बन्धन को संस्कार के बन्धन में अधिक दृढ़ मानते हुए कन्दर्पकेतु और वासवदत्ता का कोई संस्कार नहीं कराया और विवाह के बिना कन्दर्पकेतु ने वासवदत्ता के साथ अभिलषित सुरलोक के दुर्लभ मृशों का अनुगत करने हुए बहुत समय व्यतीत किया।<sup>४२</sup> किन्तु वाणभट्ट ने मुख्य को इस मत में असहमति प्रकट की है। कादम्बरी का पिता चित्ररथ जन्मापीठ के पिता तारापीठ से कहता है कि यद्यपि इन दोनों का परस्पर प्रेम होने के कारण धर्मानुसार विवाह ही चुन है, किन्तु विवाह विधि के लिए लोक-व्यवहार का अनुसरण करना चाहिए (कादम्बरी, पृ० ७००)।

### धर्मशास्त्र तथा गान्धर्व विवाह

धर्मशास्त्रों ने सामान्य रूप से गान्धर्व विवाहों का समर्थन नहीं किया। वे कन्या-दान को आदर्श मानते हैं, अतः अपनी इच्छा से किये जाने वाले विवाहों को वे काम-वासना की सन्तुष्टि करने वाला समझते हैं,<sup>४३</sup> अतः धर्मशास्त्र गान्धर्व विवाहों को क्षत्रियों

यद्यपि म० पा० (११७३१२०) में कहा है—

‘अप्राह विधिवपाणाववाह च तथा सह ।’ किन्तु सफ़ार कर रिसर्च इंस्टीट्यूट पुना के संस्करण में इस श्लोक को प्रक्षिप्त समझकर छोड़ दिया गया है।

४२ वासवदत्ता—अन्तिम कण्विका।

४३ इसीलिए अधिकांश धर्मशास्त्रों-बीषायन १; १११२०, नारद १२१३८, ३६) ने इसे धार धर्मानुकूल (धर्म्य) और प्रशस्त विवाहों के बाव पाँचवाँ स्थान दिया है। आपस्तम्ब (३१५१२) और बसिष्ठ (११२६) अप्राप्त्य का उल्लेख न करने के कारण केवल ब्राह्म आर्य और वैश्य विवाह को ही धर्मानुकूल मानते हैं, वे इनके बाव

के लिए ही उचित समझते हैं। महाभारत १।७.३।२७ में स्पष्ट रूप से यह बात कही गयी है। मनु ३।३६ में इसका समर्थन करता है, किन्तु धीमावन घ० सू० (१।११।१३) वैश्य और क्षत्र के लिए भी गान्धर्व और राजस विवाह को वैध मानता है, क्योंकि उनकी स्त्रियों की संख्या नियत नहीं होती और वे खेती और सेवा का कार्य करते हैं (१।११।१४।१५)। इसके बाद कुछ लोगों का मत उद्धृत करते हुए यह कहता है— "कुछ लोग सब जातियों के लिए गान्धर्व विवाह की प्रशंसा करने हैं, क्योंकि यह पारम्परिक प्रेम में होता है" (वी० घ० सू० १।११।१६)। यह चारों वर्णों के लिए इसे अच्छा मानता है। वा० का० सू० में दो विरोधी मत मिलते हैं। धर्मशास्त्र की पराधा का अनुसरण करने हुए, पहले यह ब्राह्म विवाह को सर्वश्रेष्ठ बताता है (वा० का० सू० ३।५।२०) किन्तु इसके बाद अपनी सम्मति देगा हुआ कहता है (३।५।२१-३०)— "विवाहों का एक अनुराग है, इसलिए मध्यम या छोटे दर्जे का गान्धर्व विवाह अनुराग स्वीकार्य है, युक्त होने के कारण सम्मान्य होता है। गान्धर्व विवाह सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि इसमें वर-वधू के दुश्मन का संघट नहीं, प्रत्येक को सुख होता है, अधिक क्लेश नहीं है और वर-वधू में परस्पर प्रेम भी पाया जाता है" (वा० कामसूत्र ३।५।२१-३०)।

### गान्धर्व विवाह के दो भेद

मनुस्मृति (३।२६) में कहा गया है कि गान्धर्व और राजस नामक विवाह स्त्रियों के लिए धर्मानुकूल (धर्म्य) हैं, मने ही वे पृथक्-पृथक् रूप से हों या मिश्रित रूप से। इस श्लोक के आधार पर, सर्वसंकेतने यह कल्पना की है कि उस समय गान्धर्व-विवाह के दो प्रकार प्रचलित थे। पञ्चमा राजस विवाह से मिश्रित गान्धर्व विवाह तथा दूसरा इससे अमिश्रित विवाह। मैघातिथि ने उपर्युक्त श्लोक की टीका में पहले प्रकार का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा है कि यदि कोई कन्या अपने पिता के घर में रखी हुई किसी लड़के को देखती है, उसकी प्रशंसा सुनती है, उससे प्रेम करती है, किन्तु माता-पिता के विरोध के कारण उससे न मिल सकने की दशा में प्रेमी के साथ गुप्त समझौता करती है, उसको किसी प्रकार से अपना अपहरण करने को कहती है, वर-वधू होने के कारण उसके सम्बन्धियों को मार कर तथा धामस करके उस कन्या का अपहरण करता है, तो इसमें वर-वधू के परस्पर प्रेम की गान्धर्व विवाह की शर्त पूरी होती है तथा वधू का अपहरण करने से राजस विवाह की शर्त भी पूरी होती है। अतः इसमें दोनों प्रकारों का समन्वय हुआ है। भागवतपुराण में वर्णित जैनियों का

इसे चौथा स्थान देते हैं किन्तु मनु (३।२१) तथा याज्ञवल्क्य (१।५६-६१) ब्राह्म, वैश्य, आर्य, प्राजापत्य और जामुर के बीच छठा स्थान देते हैं।

विवाह इसी प्रकार का है। दूसरे प्रकार में अपहरण नहीं होता था, किन्तु बर-बधू माता-पिता की इच्छा के बिना परस्पर प्रीति होने पर विवाह कर लेते थे।

गान्धर्व विवाह का अर्थ है—गन्धर्वों की जाति में होने वाला विवाह। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि गन्धर्व स्वर्ग लोक में रावकों को एक विशेष देव मानते हैं। इस जाति के लोग संगीत, नाच और नाट्य कला में प्रवीण और अत्यन्त कपयानु होते हैं। गन्धर्व शब्द का अर्थ ही माने वाला है (भाष्य धार्वरति मि० विष्णु पुराण १।५)। ब्राह्मण ग्रन्थों में गन्धर्वों को स्त्रीप्रेमी बताया गया है।<sup>४४</sup> गन्धर्वों के स्त्रीप्रेमी होने से उनमें प्रणय विवाह की प्रथा का होना स्वाभाविक है।

मध्यकाल में बालविवाह की प्रथा का प्रचलन होने तथा स्त्री-अधिकारों का पूर्णरूप से अपहरण कर लिये जाने के बाद गान्धर्व विवाह का चित्रण बहुत कम हो गया, किन्तु जिन जातियों में तरुण-विवाह प्रचलित था, उनमें मध्यकाल में प्रणय विवाह (गान्धर्व विवाह) चलता रहा और आजकल की कुछ जातियों में गान्धर्व विवाह की पद्धति प्रचलित है।

### वर्तमान काल में गान्धर्व विवाह

प्राचीन काल की तरह आजकल भी यह विवाह धर्मियों एवं राजाओं में अधिक प्रचलित है। त्रिपुरा के राजापरिवार में प्रचलित **मुखचन्द्रिका** नामक विवाह गान्धर्व विवाह का एक भेद है, मुखचन्द्रिका में बर-बधू के बीच में परस्पर दर्जन से प्रेम उत्पन्न हो जाने पर शास्त्रीय विधि से उनका विवाह कर दिया जाता है।<sup>४५</sup> बंगाल की सदर अदालत ने १८९७ में ऐसे विवाहों को वैध माना था, फिर १८५० और १८५३ में भी इन की वैधता स्वीकार की गयी, परन्तु इलाहाबाद हाईकोर्ट ने भवानी बनाम महाराजसिंह के मामले में यह फैसला दिया था कि यह विवाह उत्पत्ती या रखने के अतिरिक्त कुछ नहीं है।<sup>४६</sup> उत्तर प्रदेश में भले ही यह विवाह मान्य न हो किन्तु बंगाल में यह विवाह वैध है।

गान्धर्व विवाहों में शास्त्रीय विधियाँ आवश्यक है या नहीं, इस विषय में हाईकोर्टों में मतभेद है। बंगाल के राजाओं में प्रचलित गान्धर्व विवाह में बर-बधू परस्पर मालाओं का आदान-प्रदान करते हैं, इसमें हवन करना आवश्यक नहीं समझा जाता। कलकत्ता हाईकोर्ट ने क्षत्रियों में इस प्रकार के विवाह वैध माने हैं, किन्तु मद्रास हाईकोर्ट ने ऐसे विवाहों में होम (हवन) को आवश्यक विधि माना गया है। मद्रास में उसके बिना ये विवाह अवैध समझे जाते हैं।<sup>४७</sup>

४४ तै० सं० ६।१।६।५ ऐ० ब्रा० ५।१ 'स्त्रीकामा वै गन्धर्वाः'।

४५ बोकली रिपोर्ट १८४ (१८६४) २५ बी रि० ४०४ (१८७६)

४६ भवानी बनाम महाराजसिंह ३ इलाहाबाद, ७३८

४७ हिन्दा वमन बनाम राधा मनि १२ मद्रास, ७२

मान्धर्व विवाहों में अपनी जाति में ही विवाह करने के नियम का भंग होने की संभावना बनी रहती है। यह आवश्यक नहीं कि जिस युवक और युवती में प्रेम उत्पन्न हो, वे एक ही वर्ण के हों। काम का वैधता अर्थात् है, जाति एवं धर्म के नियमों में ऊपर उठा रहता है। समाजीय विवाहों के प्रकरण में इस अर्थ पर विशेष विचार किया गया है। इस प्रकार से केवल उतना ही उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है कि मान्धर्व विवाह जब अन्तरजातीय होते हैं तो अदानते कई बार उनकी संभन्धा स्वीकार करने में इत्तफा कर देती है। बाबट्ट में एक राजपूत और ब्राह्मणी तथा बूढ़ा के मान्धर्व विवाहों को अन्तरजातीय होने से स्वीकृत नहीं किया गया।<sup>४०</sup> किन्तु पंजाब में राजपूत और महाजन स्त्री की शादी का जगज उद्घाटन गया।<sup>४१</sup>

गन्धर्वी गव्यता एवं शिक्षा के प्रकार तथा कानूनों और विश्वविद्यालयों में सहायिका के कारण कुछ समय से मान्धर्व विवाहों की संख्या बढ़ने लगी है। भविष्य में इन प्रकार विवाहों के बढ़ने की पूरी संभावना है।

### ब्राह्म, वैव, आर्य और प्राजापत्य विवाह

दत्त बारो विवाहों में कन्या का दान किया जाता है। कन्या का दान करते समय माता-पिता या अभिभावक कन्या की धामूषणों एवं कर्मों से अनंकृत करने उसका दान करते हैं। ब्राह्मविवाह को सर्वश्रेष्ठ माना गया है, इसमें कन्या का पिता वेदज्ञ मुनीन वर को अपने घर घर बुलाता है और उसे अपनी कन्या को उत्तम वस्त्रों से आच्छादित कर दान कर देता है<sup>४२</sup> (मनु ३।२७)। ब्राह्म विवाह में कन्या पक्ष से घन आदि ग्रहण नहीं किया जाता। आर्य विवाह में नाम मात्र के लिए गौओं का एक जोड़ा पिता को दिया जाता है।<sup>४३</sup> यज्ञ के बहुत सम्मान करने पर, यज्ञ के समय में पुरोहित को जब अलंकृत कन्या का दान किया जाता है तब उसे वैवविवाह कहते हैं।<sup>४४</sup> जब कन्या अलंकृत करके, पति को दत्त वाक्यों के साथ सौंपी जाय कि तुम हमके साथ गाव्यजीवन धर्म का पालन करो, उसको प्राजापत्य विवाह कहते हैं।<sup>४५</sup>

४० लक्ष्मी बनाम कलियनसिंह, २, बम्बई ला० रि० १२० बार्ड कासो बनाम जयना-  
बास १४ ब० ला० रि० ५४७

४१ खेर बनाम फकीरखन् ५७ पं० रि० (१६०६)

४२ मि० बी० घ० सू० १।११।२, आप० घ० सू० २।५।११।१६

४३ बी० घ० सू० १।११।४, आप० घ० सू० २।५।११।१८, गौ० घ० सू० १।४।६।

४४ ब० घ० सू० १।३१, बी० घ० सू० १।११।५,

४५ बी० घ० सू० १।११।३, गौ० घ० सू० १।४।५। आपस्तम्ब धर्मसूत्र तथा बसिष्ठ धर्मसूत्र इस विवाह का वर्णन नहीं करते।



ब्राह्म विवाह आसुर विवाह से बिल्कुल उल्टा है। पहले में कन्या का दान किया जाता है और दूसरे में कन्या खरीदी जाती है। आर्य विवाह इन दोनों का मध्यवर्ती है। इसमें कन्या के पिता को गौ-वीर की एक जोड़ी दी जाती है। आर्य विवाह में कन्या का पिता शुल्क नहीं माँगता, किन्तु उसे यह भेंट दिया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि गौ-वीर की जोड़ी प्राचीनकाल में दिये जाने वाले शुल्क का एक अवशेष या प्रतीक मात्र है। यह भी संभव है कि घर के माता-पिता यह अनुभव करते होंगे कि हमें कन्या पर जो कुछ देना चाहिए। इस भावना से या अपनी इच्छा से, वे कन्यागण का यह भेंट देते होंगे। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि आर्य विवाह में गोमयुत के दान की परिपाटी प्राचीन काल के शुल्क का अवशेष है या स्वेच्छापूर्वक दिया जाने वाला दान। किन्तु प्राचीन भारत में आर्य विवाह का पर्याप्त प्रचलन था। सूताजी वादियों ने ऐसे विवाहों का उल्लेख किया है। स्ट्रुवो ने मेगस्थनीस के इस कथन को उद्धृत किया है कि एक लोड़ी बेलों में पुरा पलियाँ खरीद लेते थे। २४

धर्मशास्त्रों में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि आर्य विवाह में दिया जाने वाला दान शुल्क नहीं है। हम यह देख चुके हैं कि धर्मशास्त्र कन्याशुल्क के विरोधी है। आप० ध० सू० २।६।१३।१० में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सन्तान का कय-विकय नहीं होता। यह स्पष्ट हो सकता था कि आर्य विवाह में दिया जाने वाला यह दान एक पञ्चम विकय है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (२।६।१३।११) इसका विरोध करते हुए कहता है—“आर्य विवाह में लक्ष्मी वाले के लिए दान देना श्रुति द्वारा प्रतिपादित है। श्रुति में कहा गया है इग्नियं लक्ष्मी वाले के लिए १०० गौएँ और एक रथ देना चाहिए। यह भेंट उन दोनों की होती है। इसका उद्देश्य लक्ष्मी का दान उन्हा उठाने की मां-बाप की कामना और धार्मिक कर्तव्यों को पूरा करना है। इस सम्बन्ध में 'कय' शब्द आन्कारिक है, क्योंकि पति-पत्नी का सम्बन्ध धर्म से होता है न कि विक्रय से (आप० २।६।१३।११)। बौधायन धर्मसूत्र के टीकाकार गोविन्द स्वामी ने स्पष्ट रूप से कहा है कि कन्या के पिता को गौ-वीर की जोड़ी देकर उससे उसे फिर बापित ले सेवा ही आर्य कहनाता है। महाभारतकार इस भेंट को बापित करने से सन्तुष्ट नहीं था। उसे इसमें कन्याशुल्क की गन्ध आती थी, अतः उसने आर्य विवाह में इस दान की स्पष्ट रूप से निन्दा की है २५

२४ मेगस्थनीस का भारतवर्षीय विवरण, पृ० ३४

२५ स्टर्नबैक ने इस बचन के आधार पर यह परिणाम निकाला है कि महाभारत का उक्त संदर्भ यह सूचित करता है कि किस प्रकार आसुर विवाह (Marriage by purchase) से प्रतीकात्मक धनराशि लेने वाले आर्यविवाह (Marriage shame purchase) की पद्धति विकसित हुई और इसके बाद कन्या का देहज देने की परिपाटी का विकास हुआ (ज्यूरिडिकल स्टडीज, भाग १, पृ०, ३६७)

(म० भा० १३।४५।२०-२१)। उसने यह भी कहा है कि "कन्या के पिता, भाइयों, श्वशुर आदि की कन्या के प्रति पूरा सम्मान दिखाता चाहिए, यदि वे मुख्य प्राप्त करना चाहते हैं तो उन्हें कन्या को आनूपणों से अवकृत रखना चाहिए। इससे उनके मुख में खुशी होती है। हे राजन्! कुछ व्यक्ति आर्य विवाह में गोमिथुन देने को मूलक कहा करते हैं, यह भी मिथ्या वचन है, क्योंकि मूलक छोड़ा हो या अधिक, उसको लेने से कन्या का विकृत हो जाता है। यद्यपि कुछ लोग ऐसा करने हैं पर यह मनानग धर्म नहीं है।"<sup>६६</sup> अथर्व (३।५।१-५४) महाभारत दश पद्धति की मधू की सम्मानित करने का उद्यम करता है और हिन्दू समाज में कई स्थानों पर आज तक यह रिवाज है कि विवाह संस्कार के समय मधू की गन्ध पहनायी है वे घर के दिग्गुण होते हैं। हिन्दुओं में विवाह के समय घर पर से ली जाने वाली मोदान की परिपाटी सम्भवतः घर की ओर से मधू को दिये जाने वाले दस गौ-बैल के जोड़े से शुरू हुई होगी। किन्तु अब इसका स्वरूप बिलकुल बदल गया है। घर द्वारा दिये जाने के स्थान पर अब मोदान कन्या के पिता द्वारा होता है और वह दहेज का एक अंग बन गया है। इस समय विवाह में दहेज का बहुत महत्व है, अतः यहाँ उसका वर्णन किया जायगा।

### दहेज प्रथा

वैदिक युग के प्राक् विवाह में कन्या को अर्पण करने देने की प्रथा का चरम विकास दहेज के रूप में हुआ। वेद में कन्या के विवाह-अवसर के योग्य अर्पणों और आनूपणों की स्पष्ट चर्चा है। उस समय दहेज के लिए 'वहतु' शब्द का प्रयोग किया जाता था। ऋग्वेद (१०।८५१३) तथा अथर्ववेद (१४।१।१३) में कहा गया है कि सूर्या को उसके पिता ने जो दहेज दिया था, वह मधू के श्वशुरालय पहुँचने से पहले ही वहाँ पहुँच गया।<sup>६७</sup>

उस समय पतिगृह को जाती हुई मधू के साथ कुछ आनूपण एवं वस्त्र भेजे जाते थे। अथर्व १४।१।६-७-८ में एक रूपक द्वारा मधू के दहेज (वहतु) का यह वर्णन किया गया

६६ म० भा० ३३।४५।१६-२० आर्ये गोमिथुनं शूलकं केविवाहं मूर्धयतत् ।  
अल्पो वा बहु वा राजन् त्रिकयस्तावदेव । सा यद्यप्याचरितं केशव नैव धर्मः  
सनातनः ॥

६७ ऋ० १०।८५।१३, सूर्याय वहतुः प्रागात् सविता यमवांसुजत् ।

सामान ने वहतु की व्याख्या करते हुए लिखा है कि कन्या की प्रसन्नता के लिए विवाह के समय यौ आदि जो पदार्थ दिये जाते हैं, वे वहतु कहलाते हैं। अन्यत्र भी उसने लड़की को विवाह के समय प्रेमपूर्वक दिये जाने वाले वस्त्र, अर्पण आदि को वहतु कहा है।

है—“जब यधू पति के घर गयी तो उससे वस्त्र निश्चित रूप से अच्छे से और सन्नों से परिष्कृत थे, उसके नीकर स्तन थे और छन्द ही कुरीर और आंघरा नाम के आभूषण थे।”

**महाभारत व दहेज**—महाभारत के अनुसार राजकुमारों के विवाह में दहेज खूब दिया जाता था। राजा कुन्तिभोज ने पाण्डु के साथ अपनी पुत्री दुर्न्ती के विवाह के बाद, दामाद की नाना प्रकार के धनों से पूजा की (१।११३।१२)। दुष्प ने विवाह के समय अपनी कन्या को रत्नों से आभूषित कर दिया (१।२००।६)। उसने पाण्डवों को दहेज में सोने की रास वाले चार चाँदों से युक्त ५०० रथ, मुनहरी झूल गया हीरायुक्त १०० हाथी, मुलम्बान सहने, कपड़े साज्यादि से सजी हुई ५०० दासियाँ, आभूषण और वस्त्र दिये (१।२००।१५-१७)। राजा समर ने द्राक्षार्णों की कन्यादान करके उनके लिए अलंकृत प्रासादों का तथा अन्य ऐश्वर्य सामग्री का भी दान (दहेज) दिया। इन दहेज में असंख्य गोएँ, रेशमी वस्त्र, कपड़े, सजे हुए हाथी, घोड़े, रथ, पदाति, गुप्तर दास-वामिसाँ, सेना, मोती, मूया आदि वस्तुएँ थीं (१।७४।३-५)। सुमद्रा के विवाह में भी श्रीकृष्ण और बलराम ने अर्जुन को बहुत अधिक दहेज दिया था (म० भा० १।२२१।४४)।

**बौद्ध ग्रन्थ व दहेज**—बौद्ध ग्रन्थों में दहेज का पर्याप्त वर्णन है। दहेज विवाह का अनिवार्य अंग नहीं था, किन्तु धनी लोग अपनी कन्याओं का विवाह करने समय बहुत अधिक दहेज दिया करते थे। इसका तब से प्रसिद्ध उदाहरण विशाखा की कथा में पाया जाता है। विशाखा के पिता धर्तजय देव्डी ने अपने दामाद पूर्ववर्धन को अपनी कन्या सौ करोड़ आभूषणों से भूषित करके दी थी। इसके साथ ही सोने के बर्तनों को ५०० गाड़ियाँ, घो, साफ किमे हुए चाबलों और हल आदि कृषि के उपकरणों की भी पाँच सौ गाड़ियाँ विशाखा के दहेज में थीं। ६० हजार शक्तिशाली शैल और ६० हजार गायें भी उक्त दहेज के साथ दी गयीं। यम्पद की टीका खण्ड १ अनु० नि० अ० ८० (१।७।२) में ६०० दासियाँ और १०० उत्तम रथों के देने का वर्णन है।

संस्कृत कान्थों में भी दहेज का कुछ उल्लेख मिलता है। विदर्भराज साँज ने अपनी कन्या इन्दुमती को अज के साथ विवाह संस्कार के समय रत्नादि के साथ मधुपर्क और रेशमी दुपारों का एक जोड़ा दिया (रघुवंश ७।१८) और बाद में अज के बत्तने के समय अपने उत्साह के अनुसार वह बितनी संपत्ति दे सकता था उसनी संपत्ति दी (रघुवंश ७।३२)। विवाहों में भी हिमालय द्वारा लाये हुए सरल अर्घ्य और नवीन दुकूल को ग्रहण किया (कु० सं ७।१२)। बाण ने राज्यधौ के विवाह से पहले के राजकुल का वर्णन करते हुए कहा है कि राजकुल के आगम में दौतक (दहेज) में दिये जाने योग्य हाथियों और घोड़ों का चूनाव किया जा रहा था। उस चूनाव के लिए इतने हाथी-खोड़े लाये गये कि सारा आंगन उन से भरकर तरंगित हो गया (ह० व० पु० ५४२)।

बहेज प्रचलित होने के कारण

ऐसा जान पड़ता है कि आपविवाह की पद्धति समाज में सर्वमान्य होने से इस प्रथा को बहुत प्रोत्साहन मिला। कन्याओं को रजस्वला होने से पूर्व ब्याहने का निषेध प्रचलित होने से माता-पिता अपनी कन्या को शादी जल्दी करने में जल्दी करना चाहते थे। उन्हें कन्या के ब्याहने की गंज थी, किन्तु नदकों के माता-पिता को अपने नदक ब्याहने की कोई गंज नहीं थी। कन्या के पिता गरजमन्द होकर नदकों के पिताओं के पास पहुँचते थे। नदकों के अभिभावकों की दृष्टि में अपने नदक के लिए अधिक से अधिक मूल्य पाने का यह अच्छा अवसर था। कुलीन विवाह ने तथा अपनी जाति में कन्या की ब्याह ने भी इच्छा ने भी बहेज को प्रभावित किया। संगान में कुलीन शाहियों की संख्या थोड़ी थी, अधिकांश कन्याओं के पिता ग़रीब देकर उनके साथ अपनी नदकियों को शादी कर देते थे। राजपूतों में जो जितना कुलीन होता था वह उतने ही अधिक बहेज की मांग करता था।

हिन्दू समाज के उत्पन्न में कन्या पिता एवं पति दोनों के घर में वालन्त-गोबन्त योग्य होने से भारण होती है। जित्त समाजों में कन्या अधिक दृष्टि से काम करती है, वहाँ कन्या का पिता उसे बेचता है और घर को वह खरीदनी पड़ती है। किन्तु जहाँ अधिक दृष्टि से स्त्री पति पर वश है वहाँ कन्या के माता-पिता उसके बोल को हलका करने में सहायता करते हैं और वह सहायता बहेज के रूप में दी जाती है। बहेज में प्रायः गृहस्थी को चलाने के लिए उपयोगी सामान, बस्त्र, बरतन, पलंग आदि उपकरण दिये जाते हैं। रोम में बहेज का स्पष्ट रूप से यही उद्देश्य था। अतः भिन्न-भिन्न देशों में लिखता है—“बहेज पत्नी को उसके पितृ-गर्भार द्वारा दिया जाने वाला ऐसा हिस्सा है जो पति को गृहस्थी का ध्यम चलाने में सहायक हो”।<sup>१५</sup> भारत में इस प्रथा का प्रारंभ अपनी

१५ बहेज की प्रथा अन्य देशों में भी इसी प्रकार के उद्देश्यों से प्रचलित हुई है। मिस्र में बहेज के दायों को बधू के लिए फर्नीचर, पोशाक और आभूषण खरीदने में व्यय किया जाता है। पुराने समय में बहेज का उद्देश्य आकस्मिक संकट में पत्नी को सहायता देना था। सीजर ने लिखा है कि पत्नी पिता के घर से जितना बहेज लाती थी उतना ही पति को अपनी ओर से उसमें जुटाना पड़ता था और यह संयुक्त राशि पति के मरने पर पत्नी को मिलती थी। एथेन्स में युनानी स्त्रियाँ प्रायः बहेज लाती थी और इस बहेज पर स्त्री का स्वामित्व समझा जाता था। शादी और गृहस्थी के खर्च में यह पत्नी का हिस्सा समझा जाता था और इसके कारण पति अकारण या तुच्छ कारण से पत्नी को छोड़ नहीं सकता था। स्त्रियों के पास इस प्रकार की बहुत-सी सम्पत्ति रहती थी। अरस्तू के जमाने में स्पार्टा में २/५ सम्पत्ति बहेज के रूप में स्त्रियों के पास सुरक्षित थी। रोम बहेज के बारे में यूनान

कन्याओं को अर्जकृत करने के दान करने से शुरु हुआ। बालविवाह, मजदूरीय विवाह और कुलीन विवाह से इसको उल मिला और मध्यकाल में यह प्रथा भारत में बहुत व्यापक हो गयी।

**बहेज तथा ग्रामगीत**—बहेज के कारण कन्या का जो कष्ट उठाना पड़ता है, उसकी कुछ झलक ग्रामगीतों में पायी जाती है। ऐसे ग्रामगीत हमारे सामाजिक जीवन का आदर्श प्रतिबिम्ब है, अतः उनमें इसका पाया जाना स्वाभाविक है। एक गीत में पिता कन्या के लिए बर की खूब तलाश करने के बावजूद कन्या ले कहता है—मैंने पूरब बुझा, पश्चिम बुझा, दिल्ली और मुजरात भी बुझ लिया, किन्तु बेटी, मुझसे लिए कहीं बर नहीं पाया। मुग़ कुमारी रहो। बेटी ने कहा—हे पिता, तुमने पूरब भी बुझ डाला पश्चिम भी बुझ डाला, दिल्ली और मुजरात भी बुझ लिया, पर बार ही कदम पर अयोध्या मगरी है, जहाँ दाँ बर बवारे है। पिता ने (बड़े गुस्से से) कहा—हे बेटी, वे धोड़ा, हाथी और गन्धम माँहरें तथा जो साख का दहेज मांगते हैं। मेरी हिम्मत तो इसका देने की नहीं है।<sup>१४</sup> एक दूसरे गीत में पिता गंगा में खड़ा होकर सूर्य से प्रार्थना करता है कि हे सूर्य, मेरे बल पर कन्या न देना, कन्या का जन्म तभी हो जब घर में सम्पत्ति हो।<sup>१५</sup> एक अन्य गीत में कहा गया है—जब ब्याह हो गया, सौग में सिन्दूर पड़ गया और नौ साख की सम्पत्ति भी धोड़ी सम्झी गयी, तब माँ ने भीतर का बरतन बाँधा बाहर पटक दिया और कहा कि शक् के भी कन्या न हो।<sup>१६</sup>

ये भी एक कदम आगे था। पिता से बहेज की माँग करना स्त्री का कानूनी अधिकार था, वह संयुक्त परिवार के छर्चों को चलाने के लिए आवश्यक हिस्सा समझा जाता था। इस पर पति का अधिकार माना जाता था। किन्तु जस्टीनियन के नियम से स्त्री द्वारा तत्ताक देने पर उसे यह बहेज वापिस देना पड़ता था, बसलें कि पत्नी को छोड़ने का कारण पति का दुर्व्यवहार न हो। जस्टीनियन ने यह नियम बनाया था कि बहेज उच्च वर्ग के लिए ही आवश्यक है, किन्तु उसके इस नियम पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। क्रांति में नैपोलियन के आदेशानुसार माता-पिता के लिए यह आवश्यक नहीं रहा कि कन्या उनसे कानूनी तौर से बहेज की माँग कर सके। इंग्लैण्ड में बहेज एक विचित्र कारण से प्रचलित है। वहाँ स्त्रियों की संख्या अधिक है और एक विवाह का नियम प्रचलित है। अतः कुछ स्त्रियाँ अवश्यमेव अविवाहित रह जाती हैं। जो पिता अपनी कन्याओं को ब्याहना चाहते हैं उन्हें धन आदि देकर अपनी कन्याओं के लिए पति को खरीदना पड़ता है (वे० शा० हि० सं०, पृ० १७८-८३)।

१४ रामनरेश त्रिपाठी—ग्रामगीत, पृ० १४०

१५ यही पृ० १४४—गंगा पैठि बाबा सूरज के बिनवाई मोरे बूते छोरिया जिन होई, छोरिया जन्म तब दिहा बिधुता जब घर सम्पत्ति होई।

१६ यही, पृ० १४२

अपनी कबोरी कन्या के विवाह और दहेज की चिन्ता में एक पिता इतना परेशान होता है कि गलत को उसे सही भी नहीं आती। विवाह की आड़ से बेटी बहती है—पिताजी, आपको भी देख आ रही है। पिता ने कहा—कुछ-कुछ नारा रहा है, कुछ-कुछ जाग रहा है। जिसके घर में कबोरी कन्याओं, भग्न उन्हें सौंदर्य आ सकती है।<sup>२२</sup>

वर्तमान युग में दहेज प्रथा के बढ़ने का कारण

अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव—पिछली सदी में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार से दहेज की प्रथा भारत की उच्च जातियों में बहुत अधिक बढ़ गयी है। इस शर्त के आरंभ में गिरिन्द्रनाथ ने बंगाल के विद्वानों में जो बात लिखी थी वह आजकल सारे भारत के सम्बन्ध में सत्य समझी जा सकती है। वस्तुतः घर के पिता के लिए बस्तालसन द्वारा चलाई गयी कुलीन प्रथा की अपेक्षा विषयविद्यालयों की शिक्षा अधिक लाभप्रद है। यदि एक बी० ए० (बीचमर आफ आर्ट्स) अधिवाहित है, भले ही वह मित्रों की ख्यालता एवं सहायता पर जीवन बिता रहा हो, किन्तु बंगाली मुहावरों के अनुसार वह बेघर की परी चाहेगा जो सिंग से पैर तक सोते के आभूषणों और रत्नों में लदी हुई है और साथ में वह अपने लिए ४००० रु० मांगेगा। पिता के दुर्भाग्य में यदि कन्या का रंग सांवला है या उसमें कोई दोष है तो वह मात्र १५,००० रु० तक जा पहुँचती है। प्रायः यह स्थापना पहले ही से विद्या जाता है या कुछ घर नीचता की दम हद तक उतर आते हैं कि एक जवानकी कामज पर पहुँचे ही निश्चय वेने है कि कन्या का पिता घर की इतना सामान देगा ताकि बाद में यदि कन्या का पिता यह खलि न दे तो अदालत में मुकदमा चलाकर लिया जा सके। जस्टिस मित्र ने 'कायस्थ परिवार' में लड़के के पिता पर अर्थव्यय करते हुए लिखा था कि एक लड़के का पिता, जिसके पास अपना घर नहीं और जो एक किसानों के मकान में रहता है, वह अब लड़के की शादी करके दुर्नजिले मकान का स्वामी बनना चाहता है। वह वर्ज में बूढ़ा हुआ है किन्तु बेटी के ब्याह से अपना सारा वर्ज उतारना चाहता है, वह अपने बेटे को धार्मिक बी० एस० बनने के लिए इंग्लैण्ड भेजना चाहता है, उसके पास धन नहीं, इसलिए लड़के की शादी से उसे यह धन अवश्य प्राप्त करना चाहिए। भारतीय बण्ड विधान में चोरी-टकड़ी की सजाएँ हैं किन्तु ऐसे घाप को बण्ड देने के लिए कोई विधान नहीं है, यद्यपि यह अपराध उपर्युक्त अपराधों जैसा ही बुरा है।<sup>२३</sup> आजकल भारत के सभी प्रांतों में दहेज की बुराई भीषण रूप से प्रचलित है। घर के लिए भर्ग जाने वाले दहेज की माग्रा उसकी सामाजिक स्थिति और प्रतिष्ठा के साथ बढ़ती जाती है। उदाहरणार्थ,

<sup>२२</sup> वही, पृ० १६२ कुछ रे सुतोला कुछ जागिला बेटी नीन्वो न आवे।

जाहि घर कन्या कुंवारी बेटी नीर कैसे आवे।

<sup>२३</sup> रिजली—पीपल आफ इंडिया, पृ० १६८-७० पर उद्धृत।

उत्तर प्रदेश की विधान परिषद् में हुई बहुसंख्यक के अनुसार इस प्रदेश में विधवाविवाहों के प्रवृत्ति के लिए बार से पाँच हजार रुपये तक के दहेज की मांग की जाती है। दंडोपनिषद् तथा डाक्टर बर के लिए १० से १४ हजार की, प्रांतीय मिशन बोर्ड्स वाले के लिए २० से २५ हजार तथा आई० सी० एस० के लिए तीन लाखों हजार रुपये के दहेज की मांग होती है।<sup>१४</sup> दक्षिण भारत में मांगे जाने वाले दहेज के सम्बन्ध में श्रीनिवास ने उगो प्रकार के अनेक रोचक तथ्य दिये हैं।<sup>१५</sup>

दहेज की कुप्रथा में हिन्दू समाज में मध्ययुग में कल्याण<sup>१६</sup> जैसे प्रीतण दुर्गास्थान उत्पन्न किये थे। इस समय इसके प्रधान दुर्गास्थान निम्नलिखित हैं—

(१) माता-पिता की चिन्ता तथा ऋणग्रस्त होना—इस प्रथा के कारण उत्पत्ती के लिए बर दुर्गना एक जटिल समस्या हो जाती है। इसमें माता-पिता को बड़ी कठिनाईयें उठानी पड़ती हैं। साधारण स्थिति वाले माता-पिता कन्या की शादी के लिए अपने अपने दहेज को जुटाने के लिए साधुकारों से ऋण लेते हैं और कई बार इस ऋण की उधारते हुए उनका सारा जीवन चिन्ता, परेशानी और भुखमरी में जीताता है। कन्या के विवाह की चिन्ता से तो वे मृक हो जाते हैं, पर उस पर किये गये व्यय का भार उतारने के लिए आभरण, एक नयी चिन्ता से ग्रस्त हो जाते हैं।

(२) कन्याओं का अविवाहित रहना तथा आत्महत्याएँ—जिन कन्याओं के माता-पिता दहेज जुटाने तथा बर प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं, उनका विवाह नहीं होता है। माता-पिता को अपनी कन्या का विवाह न होने से प्रीतण मानसिक कष्ट होना है। कई बार बंगाल की स्नेहलता जैसी लड़कियाँ माता-पिता के कष्टों का अन्त करने के लिए मिट्टी का तेल छिड़क कर आत्महत्या कर लेती हैं।

(३) अनेतिकता—कन्याओं का विवाह न होने पर उनके सर्वेव ब्रह्मचरिणी बने रहने की आशा करना दुराशासात्र है। स्वाभाविक मनोबेशों और जामनाओं पर नियंत्रण रखना सबके लिए संभव नहीं है। बड़ी संख्या में कन्याओं के अविवाहित रहने में समाज में अनाचार तथा अनेतिकता की वृद्धि होती है।

(४) कन्याओं की उपेक्षा—दहेज की कठिनाई के कारण कन्याएं परिवार में बुरी समझी जाती हैं, इसलिए पहले तो व्यापक रूप से उनके वध की कुप्रथा प्रचलित थी। अब यद्यपि कानून और लोकमत के कारण उनका वध बन्द हो गया है, किन्तु उन्हें माता-पिता की मूसीबतों की लड़ और विपत्तियों का मूलस्रोत समझा जाता है।

(५) बेमेल तथा वृद्धविवाह—कई बार जब माता-पिता अपनी कन्या के लिए

<sup>१४</sup> रास—हिन्दू फेमिली इन इटस् अर्बन सेंडिंग, पृ० २६१

<sup>१५</sup> श्री निवास—मैरिज एण्ड फेमिली इन माइसोर, पृ० ५७

<sup>१६</sup> हरिवत्स वेदान्तकार—हिन्दू परिवार मीमांसा, पृ० १६७-२००

उपयुक्त वर द्वारा माया जाने वाला दहेज जुटाने में असमर्थ होते हैं तो वे उसका विवाह ऐसे अनुपयुक्त बरों से कर देते हैं जहाँ दहेज कम मागा जाय। वे वर प्रायः धनी एवं कन्या की आयु से बहुत अधिक तथा कई बार उसके पिता की आयु रखने वाले बूढ़े व्यक्ति होते हैं। ये प्रायः किसी प्रकार के दहेज की माग नहीं रखते हैं। कई बार वे अधिक बूढ़े होने पर कन्या को अपनी और में दहेज भी प्रस्तुत कर देते हैं। किन्तु ऐसे बेमेल विवाहों में कन्या का वैवाहिक आनन्द और अधुर कालनाश नाट हो जाती है, उसका जीवन मारमयी बन जाता है, बूढ़े व्यक्ति के माथ साम्राज्य जीवन दूसर हाथला है, पति के बूढ़े होने के कारण पत्नी के विधवा होने की सम्भावना बढ जाती है। कई बार वह आत्महत्या करके ही उन मारमयी जीवन में छटकारा पाती है।

(६) अन्य दुष्प्रभाव—इसके अन्य दुष्प्रभावों का उल्लेख करते हुए एक लेखक ने लिखा है कि कम दहेज लाने वाली विधवाओं की सुरक्षा में बड़ी अप्रतिष्ठा होती है, उन्हें गरह-बरह के लगे सारे जाते हैं, सा-बाप में अधिकांशमा लाने के लिए विवश किया जाता है, ऐसा करने के लिए उनके माथ भीषण दुर्व्यवहार किया जाता है। कई बार इन प्रजन पर प्रती तनातनी सब जाती है कि बहूओं की हत्या करने की सोच आ जाती है।<sup>१०</sup> अधिक दहेज लाने वाली बहूओं की संयुक्त में अधिक प्रतिष्ठा होती है, कम दहेज लाने वाली बहूओं का तथा उनके पतियों का हीन दृष्टि से देखा जाता है। इससे घरो में असन्तुष्टि, अज्ञानि, कलह और वैमनस्य में वृद्धि होती है। दहेज का एक बुरा पहलू यह है कि पहले इस विषय में मर जाते तब करने के बाद विवाह संस्कार के समय वर पक्ष वाले अपनी मागे एकचम यह सोचकर बड़ा देते हैं कि इस समय बारात का वापिस लौटना कन्यापक्ष के लिये बर कलक की बात होगी और उनसे मुँहमागी वस्तुएँ मिल जायेंगी।<sup>११</sup> यह स्पष्टबच में इकती है। इसी पिस्तौल सीने पर रख कर धन मागता है, कन्यापक्ष बारात लौटाने की क्षमकी विधा कर कन्या के माता-पिता से अधिकाधिक राशि जसुल करवा चाहता है। इस विषय में एक भुक्तभोगी कन्या की माता का विवरण इस प्रकार है—

<sup>१०</sup> रास—वही, पृ० ३६३

<sup>११</sup> इसका सर्वोत्तम उदाहरण साहौर हाईकोर्ट का विपिनचन्द्रपाल का मामला है। विपिनचन्द्र पाल अपनी पत्नी दयावती को इस बात के लिए निरन्तर परेशान करता रहता था कि उसको बहुत कम दहेज दिया गया है, वह उससे एक रेडियो सेट के लिए ४००) रु. लाये। दयावती ने कहा कि उसके माता-पिता इतना धन नहीं दे सकते कि उसकी सब इच्छायें पूरी कर सकें। इस पर पति ने उसके साथ दुर्व्यवहार आरम्भ किया तथा १२ नवम्बर को हवाई जहाज विधाने के बहाने उसे छत पर लेजाकर वहाँ की मुँदेर से धक्का देकर नीचे गिराकर उसकी हत्या का प्रयत्न किया। अदा-लत ने विपिनचन्द्र पाल को ७ वर्ष की कड़ी कैद का दण्ड दिया।



"मैं विधवा थी, मेरे पास पर्याप्त पैसा नहीं था, फिर भी मैंने अपनी लड़की के लिए दहेज की सब वस्तुएँ देने का प्रयत्न किया। सादी तथा करीब समय बर पक्ष के व्यक्ति हमारे घर आये और हमने दहेज में दी जाने वाली सब वस्तुओं की सूची तय की। किन्तु विवाह संस्कार के समय इस सूची में ऐसी बहुत सी चीजें बढ़ा दी गयीं जिन्हें देने के लिए मैं तैयार नहीं थी। फिर भी मुझे इन वस्तुओं को देना पड़ा। लड़की की सादी हो जाने के बाद भी घर के माता-पिता प्रत्येक त्यौहार पर हीरे की अंगूठी, कलाई पर बांधने वाली मड़ी आदि विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की मांग करते रहे। मैं अपनी लड़की को दमनीय दशा के लिए पाँच छः वर्ष तक मिरगार रौती रही।"<sup>१४६</sup> एक अन्य विधवा ने लिखा है कि दहेज में कन्याओं के माता-पिता को विवाहित बना दिया है, उन्हें साहूकारों के बंजल में फँसा दिया है, सादी की गतिष्ठ धार्मिक संस्कार के स्थान पर व्यागार और सौदेबाजी बना दिया है और समुदाय में निर्दोष वधुओं का जीवन नाशक बन गया है।<sup>१४७</sup>

हिन्दुसमाज में दहेज के भीषण दुष्प्रभावों के होते हुए भी, उसने समाज में कुछ व्यक्तियों की दृष्टि में कई उपयोगी कार्य हो रहे हैं। (१) पहला कार्य शिक्षा के प्रसार का है। शीनिवास का विचार है कि दक्षिण में अनेक निर्धन विद्यार्थी दहेज न मिलने की दशा में अपनी उच्चशिक्षा को कभी पूरा नहीं कर सकते थे। (२) दूसरा महत्वपूर्ण कार्य बालविवाह की बुराई बन्द करना तथा विवाह की आयु को अधिक ऊँचा उठाना है क्योंकि इससे मध्यम तथा निम्न श्रेणी के माता-पिता को अपनी कन्या का ऐसा बर बुढ़ने में काफी समय लगता है, जिसके लिए दहेज देना उनके लिए संभव हो। इसकी शोख से काफी समय लग जाता है और इस बीच में कन्या की आयु बढ़ती चली जाती है। (३) तीसरा कार्य यह है कि यह अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहित करता है। जब कन्या के माता-पिता को दहेज की कठिनाई के कारण अपनी जाति में घर नहीं मिलते तो वह इन्हें अपनी जाति से बाहर बुढ़ने के लिए विवश होता है। (४) चौथा कार्य साबले रंग वाली, बड़ी और बढसूरत कन्याओं का विवाह हो जाता है, इनके लिए दहेज अधिक दिया जाता है और दहेज के स्वाभाव में युवक इनसे विवाह के लिए तैयार हो जाते हैं। यदि दहेज की प्रथा बन्द कर दी जाय तो ऐसी कन्याओं के पिताओं के लिए बड़ी कठिन समस्या उत्पन्न हो जायगी। इस समय दहेज से निर्धन कन्याओं के माता-पिता परेशान हैं, इस प्रथा के बन्द होने पर बढसूरत कन्याओं के माता-पिता की परेशानी बढ जायगी। (५) पाँचवाँ कार्य यह है कि दहेज में दी गयी सामग्री से गवदम्पती को अपनी नयी गृहस्त्री तथा घर का साज-सामान जुटाने में बहुमूल्य सहायता मिलती है। दहेज का आरम्भिक उद्देश

<sup>१४६</sup> रात—पृ० पु०, पृ० २९२

<sup>१४७</sup> आर्यन पाथ, नवम्बर १९५४, पृ० ५२३

भी यही था। वैदिक साहित्य में कन्या द्वारा वहनु में घड़ेनु सामान, अन्न तथा अलंकार ले जाने का वर्णन है। दहेज का आरंभ इसी भावना से हुआ था, माता-पिता कन्या की अपनी इच्छा से उसका नया घर बसाने के लिए आवश्यक सामग्री दिया करते थे। यह लड़की को पिता की सम्पत्ति में से प्राप्ता होने वाला हिस्सा समझा जाता था, लड़कों को पिता की जमीन-आपदाद मिलती थी, लड़कियों को विवाह के समय दहेज के रूप में समुचित अंश दिया जाता था। यह उनका स्वीधन समझा जाता था।<sup>५१</sup>

वर्तमान दहेज में तथा इसके प्राचीन मूल रूप में दो बड़े भेद थे— (१) यह माता पिता द्वारा अपनी इच्छा से प्रमत्तता पूर्वक दिया जाने वाला धन था, वर्तमान दहेज कन्या के भाग-पिता से अव्यवस्ती बसूल की जाने वाली धनराशि है। (२) दूसरा भेद यह है कि पुराने दहेज (वहनु) का स्वीधन समझा जाता था, अतः उस पर पत्नी का पूरा प्रभुत्व और स्वाभिव्यक्ति होता था, किन्तु वर्तमान दहेज प्रायः घर को न मिलकर उसके माता-पिता को मिलता है। कई बार पति को दहेज में से एक पाई भी नहीं मिलती है, यद्यपि यह उनके नाम से लिया जाता है। उसके पिता का इस पर पूरा अधिकार होता है और वह इसका यथेच्छ विनियोग कर सकता है; प्रायः वह इसे अपनी लड़कियों की शादी में व्यय करता है। इन दो महत्वपूर्ण भेदों के कारण कई उपर्याप्तो कार्य करते हुए भी दहेज ने इस समय भ्रष्टाचार कुप्रथा का रूप धारण कर लिया है।

**दहेज की कुप्रथा बन्द करने के उपाय**

(१) इसका पहला उपाय अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहित करना है। इस समय दहेज की बुराई बन्दे का एक प्रधान कारण अपनी ही जाति में कन्या के लिए घर बुझने का नियम है, इससे घर के बुनाव का क्षेत्र सीमित और संकुचित हो जाता है। जब घर बहुत छोड़े होते हैं तो वे दहेज की मांग बढ़ाने लग जाते हैं। यदि घरों को अपनी जाति से बाहर बूझा जाए, चुनाव का क्षेत्र विस्तृत हो तो दहेज की बुराई स्वयमेव बन्द हो जायगी। (२) दूसरा उपाय दहेज विरोधी प्रचार और प्रबल लोकमत है। जब तक समाज में इस प्रथा के विरुद्ध प्रबल जागरण नहीं हो पाता और इसे पाप एवं बुराई नहीं समझा जाता, तब तक इस कुप्रथा का उन्मूलन संभव नहीं है। नवयुवकों में ऐसी भावना भरनी जानी चाहिए कि वे दहेज की माँग करना छोड़ दें। समाजसुधारक संस्थाओं को ऐसा प्रचार करना चाहिए। श्रीनिवास ने दक्षिण भारत के बारे में लिखा है कि कुछ आदर्शवादी नवयुवक बरदशिवा (दहेज) लेने से इन्कार करने लगे हैं। कलकत्ता में अखिल भारतीय मारवाड़ी सम्मेलन ने यह प्रस्ताव पास किया था कि युवक-युवतियाँ इस बात को प्रतिज्ञा करें कि वे अपने विवाह में कोई दहेज नहीं लेंगे। इस प्रकार दहेज

विरोधी प्रबल आन्दोलन इस कुप्रथा का अन्त कर सकता है। (३) तीसरा उपाय कानून द्वारा इसका निषेध करना है। यह १९६० के दहेज निषेध कानून (Dowry Prohibition Act) से कर दिया गया है। किन्तु अभी तक दहेज विरोधी प्रबल लोकमत न होने के कारण इस कानून से हिन्दुसमाज में दहेज की दुराई का उन्मूलन नहीं हुआ और यह पूर्ववत् प्रचलित है तथा कन्या के भाता-पिता को व्यथित और सतप्त कर रही है।

जिस ब्राह्म विवाह में शारम्भ में कन्या को इच्छापूर्वक असहज वारके दान किया जाता था, आज उसमें अबदेखती दहेज और शय्या सामा जाता है। यह बड़ा शोचनीय और दुःखद परिवर्तन है। यदि प्राचीन काल में स्मृतियों में आवृत्त विवाहों की इसानिष्ट निन्दा की थी कि उसमें कन्या का विक्रय किया जाता है, तो दहेज द्वारा होने वाले वर-विश्रय की कन्या कुल से भी अधिक निन्दा की जाती चाहिए।

### देव विवाह

यह विशेष परिस्थितियों में किया जाता है। उत्तर वैदिक युग में याज्ञिक कर्म-काण्ड का आरम्भ बहुत बड़ा गया, सप्ताहों, महीनों और वर्षों तक चलने वाले यह शुरू हुए। जिन पुरोहितों या ऋषियों को इन यज्ञों में लगा रहना पड़ता था वे अपने विवाह आदि वैयक्तिक कर्तव्यों की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे सकते थे। कई बार यज्ञ-मात ऐसे सन्धे यज्ञों को चलाने वाले पुरोहित को दक्षिणा रूप में जाँ बेस हो अथवा कन्या का दान किया करते थे। एक बड़े यज्ञ में बीसियों पुरोहित बुलाये जाते थे। इनमें कुछ अधिवाहित भी होते होते और कुछ यजमान अपनी कन्याओं का विवाह करना चाहते होते। कन्याएँ भी इस अवसर पर अपने पतिव्रतों को प्राण सफाई थी। अतः ऐसे अवसरों पर बहुत से विवाह होते थे। इस प्रकार के विवाह जो देव अर्थात् देवताओं की प्रसन्नता के लिए किये जाने वाले यज्ञों में किया जाने वाला विवाह कहा जाता था।

इस देव के अर्थ को विश्वरूप (मातृवर्णन स्मृति १।५६-६०) ने कुछ स्पष्ट करने का प्रयास किया है। वह कहता है—“देव ऋषिज् जो कहते हैं, जो विवाह ऋषिजों अर्थात् देवों के योग्य हो उसे देव विवाह कहते हैं।”<sup>१२</sup> देव के बारे में यह भी कल्पना की जाती है कि देवताओं के आराधन के लिए किये जाने वाले यज्ञों में इन विवाहों के किये जाने से उत्तम नाम देव विवाह हुआ।

बौधायन धर्मसूत्र (१।१।१५) के टीकाकार ने इन विवाहों के स्वरूप को कुछ अधिका स्पष्ट किया है, वह कहता है—“यज्ञ में ऋषिजों के चलने के समय वर की योग्यताओं से युक्त किसी व्यक्ति को पुरोहित रूप से वरण कर और दक्षिणा के समम उसको हिंसो में साथ कन्या का भी दान कर दे।” विश्वरूप ने भी इस मत की

<sup>१२</sup> विश्वरूप मा० १।५६-६० देवा ऋषिजस्तै एवमहोतीति देवः।

पुष्टि करने हुए कहा है कि (धधूवा) यह दान दक्षिणा के अतिरिक्त होता है।

अब तथा हिन्दू धर्म में दीर्घकाल तक चलने वाले यज्ञ होते थे, उस समय तक दैव विवाह का पर्याप्त प्रचलन था। बृहदेवता (५४५०, ७६) में एक अन्तर्जातीय दैव विवाह का भर्तृरत्नका उदाहरण दिया गया है। दार्ष्य ने रथवीति यज्ञ करने के लिए अर्चनानस आश्रय को पुरोहित का पद दिया। अर्चनानस का पुत्र श्यावाश्व भी उस यज्ञ में पिता की महत्तता पर गहा था। श्यावाश्व ने राजा की सुन्दरी कन्या को देखा और उस पर मूग्ध होकर उसके साथ विवाह करना चाहा। राजा ने राजी के आगे श्यावाश्व के साथ अपनी कन्या के विवाह का प्रस्ताव रखा। राजा इस सम्बन्ध को पसन्द करता था, किन्तु राजी ने कहा कि श्यावाश्व पुरोहित है, लेकिन मंत्र ज्ञाता ऋषि नहीं है। यदि किसी ऋषि को दन्यादान किया जाय तो वह सहमति दे सकती है। श्यावाश्व निराश होकर अपने पितामह अथि के आश्रम में वापिस जाता गया। जंगल में उसके सामने बद्धमण आधिभूत हुए और उसने 'य इमं बहुमते' नामका मन्त्र का दर्शन किया। ऋषि हो जाने के बाद श्यावाश्व योग्य वर समझा गया और राजकन्या के साथ उसका विवाह हो गया।

४ वी, ५ वीं शती ई० प० के बाद वैदिक यज्ञों का प्रचलन बन्द हो गया। यद्यपि इन यज्ञों की पहले पुष्पामित्र और समुद्रगुप्त ने तथा बाद में कुमारिल ने पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न किया, तथापि ये यज्ञ हिन्दूसमाज के दैनिक धर्म का अंग न रहे। इन यज्ञों के अन्तर्गत से दैव विवाह भी बन्द हो गये।

### प्राजापत्य विवाह

अब कन्या अलङ्कृत करके पति को इन बच्चों के साथ सौपी जाय कि तुम इसके साथ पाषण्डीयन धर्म का पालन करो, तो उसे प्राजापत्य विवाह कहते हैं। वास्तव में ब्राह्म विवाह से इसमें कोई भेद नहीं है, हिन्दू विवाह का उद्देश्य ही धर्मपालन है। आप० धर्मसूत्र (२।६।१३।१६-१८) कहता है कि पति-मन्त्री में कोई पृथक्ता नहीं है, पाणिग्रहण करने से वे सब कामों में एक ही जाते हैं।<sup>२३</sup> अब पाणिग्रहण का यह उद्देश्य है तो प्राजापत्य में, ब्राह्म की अपेक्षा क्या विशेषता है? धर्मसूत्रकार इस विषय में शौन है, किन्तु टीकाकारों की सम्मति है—“अब मातृजीवन एकविवाह (Monogamy) के आदर्श की रक्षा की जाय और संन्यास न किया जाय तो वह प्राजापत्य विवाह होता है।” उनकी यह बात कुछ ठीक प्रतीत होती है। अन्यत्र हम देखेंगे कि बहुपत्नीविवाह का प्राचीन हिन्दू समाज में बहुत अधिक प्रचलन था। आपस्तम्ब

<sup>२३</sup> आप० धर्मसूत्र २।६।१४।१६—जायापत्योर्ने विभागी विद्यते पाणिग्रहणं हि सार्व्व कर्मसु ।<sup>२४</sup>

ही एकमात्र ऐसा सूत्रकार है जिसने स्पष्ट शब्दों में बहुभार्यता की निन्दा की है। विवाह को वह धर्म के लिए ही समझता है। अतः उसके मत में ब्राह्मविवाह के बाद कोई स्त्री दूसरी स्त्री से विवाह नहीं कर सकता था। यही कारण है कि उसे एक विवाह के बन्धन को अनिवार्य बनाने वाले प्राजापत्य विवाह का अलग उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई, उसने केवल छः विवाह ही माने हैं। अन्य सूत्रकार ब्राह्म विवाह में एक-विवाह के बन्धन को आवश्यक नहीं समझते थे, अतः एकविवाह के आदर्श के लिए उन्होंने प्राजापत्य नामक श्रेष्ठ की पृथक् कल्पना की।<sup>५४</sup>

हर्दत्त गौतम धर्मसूत्र १।१।४ की व्याख्या करते हुए कहता है कि यद्यपि ब्राह्मादि विवाहों में पति-पत्नी एक साथ अर्धाचरण करते हैं, किन्तु प्राजापत्य में जीवन दर्शन पत्नी के साम धर्म का आचरण करने, दूसरे आश्रम में न प्रविष्ट होने और दूसरी स्त्री के पास न जाने के अर्थों का प्रतिपादन करने वाले मन्त्रों द्वारा प्रतिज्ञा की जाती है। ब्राह्मादि विवाहों से प्राजापत्य की यही विशेषता है। बीरमित्तोवस (पृ० ८५२) तथा संस्कार-कोस्तुम (पृ० ७३२) भी हर्दत्त के अर्थ का ही समर्थन करते हैं। संस्कारकोस्तुम प्राजापत्य में, दूसरे आश्रम के अन्तर्गत जाने का निषेध मानता है तथा पत्नी पत्नी के जीवित रहते हुए दूसरे विवाह की अनुमति नहीं देता। इस प्रकार प्राजापत्य विवाह की विशेषता एकविवाह का बन्धन है। ब्राह्म विवाह में इस प्रकार की कोई विशेष शर्त या बन्धन नहीं है।

प्राजापत्य शब्द के अर्थ को विश्वरूप ने कुछ स्पष्ट किया है। उसके मत में प्राजापति स्नातक है, क्योंकि उसने प्रजा के उत्पादन की इच्छा की है। यह विवाह प्राजापति के योग्य होने से प्राजापत्य कहलाता है (याज्ञ० स्मृति १।२६-३०)।

### हिन्दू विवाहों के आधुनिक रूप

विवाह के प्राचीन रूपों में इस समय केवल ब्राह्म और आसुर रूप ही अधिकतर प्रचलित हैं। किन्तु वर्तमान हिन्दू समाज के विभिन्न वर्गों, वर्णों, उपवर्णों, जातियों, कबीलों एवं समुदायों में विवाह की कुछ ऐसी पद्धतिमाँ प्रचलित हैं जिनका शास्त्रों में कोई उल्लेख नहीं है। ये विवाह इन जातियों में सैकड़ों वर्षों से होते चले आये हैं और अदालतें इनको रिवाजी कानून के रूप में स्वीकार करती हैं। इनमें किसी भी प्रकार की

<sup>५४</sup> याज्ञवल्क्य स्मृति (१।६०) की आलम्पट्टी टीका में इस बात को स्पष्ट रूप से कहा गया है कि प्राजापत्य विवाह एक-विवाह (Monogamy) का आदर्श पालन करने वाले दम्पती के लिए है, इस प्रकार से परिणय सूत्र में आबद्ध होने वालों के लिए एक-विवाह के नियम का पालन करना आवश्यक था। प्राजापत्य विधि से विवाह करने वाला पुरुष दूसरा विवाह नहीं कर सकता था।

शास्त्रीय विधि का पालन नहीं होता। इस प्रकार के विवाहों का यहाँ संक्षेप से उल्लेख किया जायगा।

### दक्षिण भारत के विवाह

हिन्दू समाज ने विवाहों को इतने अधिक शास्त्रीय बन्धनों में जकड़ दिया है कि हूब अब यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि कोई ऐसा भी विवाह हो सकता है जिसमें कोई पुरोहित न बुलाया जाय, कोई मन्त्र न पढ़े जाय और कन्या का दान न किया जाय। दक्षिण के हिन्दू समाज में इस प्रकार के विवाह बहुत प्रचलित हैं। इतना ही नहीं, आज हिन्दू समाज जिस यशस्क के नाम से चौंका उठता है, वह उल्लान्त दक्षिण की कुछ उच्च समझी जाने वाली जातियों में प्रचलित है। अस्पृश्यता आदि विषयों में दक्षिण भारत बहुत ही कट्टर है, किन्तु विवाह के विषय में, उनके कुछ वर्गों में विलक्षण स्वाधीनता पायी जाती है।

मलाबार और कनारा की नामर और नम्बूवरी जातियों में विवाह के कई रूप प्रचलित हैं। उन्हें विवाह न कहकर स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध कहना अधिक उचित होगा। इन सम्बन्धों का कानून द्वारा स्वीकृत नहीं माना जाता है। ये सम्बन्ध अविच्छेद्य संस्कार नहीं हैं, इन्हें जब चाह तब तोड़ा जा सकता है, इनमें कोई पुरोहित नहीं आता, कोई वैदिक मन्त्र या पौराणिक पलोंक नहीं पढ़ा जाता और कोई विशेष विधि भी नहीं की जाती।

इन विवाहों की एक और विशेषता यह है कि हिन्दू समाज के सभी विवाहों में पति पत्नी को अपने घर पर ले जाता है, किन्तु दक्षिण के इन विवाहों में पत्नी अपने पिता के घर में रहती है, पति उसकी घर पर जाता है। पहले स्त्री अपनी इच्छा के अनुसार एक, दो या कई पुरुषों से सम्बन्ध रख सकती थी और इससे समाज में उसकी कोई अप्रतिष्ठा या बदनामी नहीं होती थी। इसलिए यह कहा जाता था कि मलाबार में कोई विवाह-नियम नहीं है। यहाँ संक्षेप से इन विवाहों की चर्चा की जायगी।

**तालिकेट्टु तथा संबन्धम्**—मलाबार के नामरों में यह एक विशेष एवं विशिष्ट प्रथा है कि प्रत्येक स्त्री को दो प्रकार का विवाह करना पड़ता है। पहले तो तालिकेट्टु अर्थात् ताली का बांधना और दूसरे को संबन्धम् कहते हैं। ताली बन्धीर के पत्ते के आकार की सोने की बनी हुई एक वस्तु होती है। स्त्री का नाममात्र का पति ताली को उसके गले में बांधता है। यह विधि बड़े ठाठ-बाट और नान के साथ की जाती है और यदि यह न हो जाय तो उस स्त्री का सामाजिक बहिष्कार किया जाता है। एक ही आदमी, (भायः यह एक बृद्ध ब्राह्मण होता है) बहुत सी कन्याओं का पति बनकर उनके गले में ताली बांध देता है और उसके बाप दक्षिणा लेकर वह ब्राह्मण अपने घर चला जाता

है। इसके बाद उस व्यक्ति का उन कन्याओं से कोई कानूनी संबंध नहीं रहता; जिस कन्या के साथ ताली बांधने के द्वारा उसने विवाह किया है, उसके साथ सहवास करने का उसे कोई अधिकार नहीं है।

पुत्रावस्था प्राप्त कर लेने पर नगर कन्या का दूसरा विवाह होता है। इसे संबन्धम्, गूणदोषम्, पदवसूरी (कपड़ा देना) या कौटाकोरम (शय्या का विवाह) कहते हैं। इसकी विधि बहुत सारी होती है। घर, वधू के स्वी-सम्बन्धियों के सामने राज की वधू-गृह में वधू को पान या दस्त्र देता है। उत्तरी मलाबार में सम्बन्धम् की पदवसूरी विधि अधिक प्रचलित है। इसमें पहले एक ज्योतिषी घर और वधू की जन्मपत्नी मिलाता है। यदि दोनों की पत्नी मेल खाती है तो विवाह का एक दिन निश्चित कर दिया जाता है, फिर ज्योतिषी और बरातियों को वधू के घर घर भोजन कराया जाता है, घर की बहुत सी भेटें मिलती हैं। इस प्रारम्भिक विधि को परमुरि कुरुकल कहा जाता है।

विवाह के नियत दिन से ३ या ४ दिन पहले परमुरि (Paramuri) विधि मगायी जाती है। इस अवसर पर घर अपने घर के बड़े-बूढ़ों की नारियल देता है और उनसे विवाह की आज्ञा प्राप्त करता है। विवाह के लिए नियत दिन पर सूर्यास्त के पश्चात् अपने मित्रों सहित घर वधू के घर पर जाता है। वहाँ उसका स्वागत होता है और वह घर के दक्षिणी भाग में बिठाया जाता है। वह ब्राह्मणों को दान देता है, एक सहभोज होता है, ज्योतिषी मंगलमूर्त की पूजा देता है। घर को फिर घर के मुख्य कमरे में या "पदिनहट्ट" में लाया जाता है। बराती अपने साथ बहुत से कपड़े और नारियल लाते हैं। इन कपड़ों को पदिनहट्ट में इकट्ठा किया जाता है। इसी कमरे में प्रायः घर के आवश्यक धार्मिक उत्सव किये जाते हैं। इसे संसार एक क्षयतकल बना दिया जाता है। इसमें प्रदीप तथा विवाह के अवसर की जाठ मांगस्तिक वस्तुएँ—चावल, जल, नारियल के पत्र, मांस, दूध, तबीन अम्ल और एक गोखल लकड़ी का डब्बा (बप्पु) रखा जाता है। घर अपने एक मित्र के साथ पूर्वी द्वार से उस कमरे में प्रविष्ट होता है, पश्चिमी द्वार से उत्तम-उत्तम रत्नों और बहुमूल्य वस्त्रों से अलंकृत एवं सुसज्जित वधू अपनी चाची या किसी अन्य बड़ी स्त्री के साथ आती है। घर का मित्र घर की वधू के लिए कुछ कपड़े देता है। इसके बाद बूढ़ा स्त्री उन दोनों के सिर और प्रदीपों पर चावल फेंकती है, घर इस समय दक्षिणी कमरे में अपने मित्रों को पान-मुपारी भेंट करता है, अतिथियों के जाने के बाद घर वधू के साथ क्षयतकल में चला जाता है। २५

यह विवाह घर और वधू की इच्छा न रहने पर भंग किया जा सकता है। सामान्य कारणों पर प्रायः विवाह का विच्छेद नहीं होता है। लोकमत तथा मलाबार के संयुक्त परिवारवादी व्यवस्था का भुविमा प्रायः ऐसे विच्छेदों के विरुद्ध होते हैं। यदि पति

संपन्न होता है तो पत्नी उसके घर में रहती है, अन्यथा वह अपने परिवार में ही रहती है और उसका पति व्यवसाय में उसके पास जाया करता है। मन्नास हाईकोर्ट ने एक निर्णय में इन विवाहों के विषय में यह लिखा था—‘पति और पत्नी के बीच का यह सम्बन्ध वास्तव में विवाह नहीं है, अपितु एक प्रकार का रखरखापन है। स्त्री अपनी इच्छा से इस सम्बन्ध को अपने सपत्नी है।’ विवाह को इस रूप से यह स्पष्ट है कि स्त्री अपने परिवार में रहती है और उसका पति उसके पास जाता है। यद्यपि कानारा में स्त्रियों कुछ अवस्थाओं में अपने परिवारों के साथ रहती हैं, किन्तु इसमें मन्वेह नहीं कि वे अपनी इच्छा से यहाँ रहती हैं, वे अब चाहे अपने परिवार में लौट सकती हैं।<sup>२२</sup>

सम्बन्धम् की प्रथा के प्रचलित होने के मूल कारण

इस विविध विवाह का कारण यह बताया जाता है कि इस प्रथा के मूल में यह विश्वास था कि विवाह की प्रथम भेंट देवताओं या उनके प्रतिनिधि ब्राह्मणों को देनी चाहिए। कैंप्टन हेमिल्टन ने यह लिखा था कि जब जर्मोन विवाह करना है तो वह अपनी पत्नी के साथ जब तक सहवास नहीं कर सकता जब तक कि मुख्य पुरोहित (नम्बूरी या नम्बूदरी) उसका उद्देश्य न कर ले। यदि वह पुरोहित आह्वान करता है तो उस स्त्री के साथ तीन रात्रि सहवास कर सकता है, क्योंकि विवाह का प्रथम फल उन देवताओं के लिए भेंट करना चाहिए जिनकी वधू पूजा करती है। कुछ धार्मिक लोग ब्राह्मणों के लिए इन उद्धार होने हैं कि वे उन्हें यह कर लेने देते हैं, किन्तु सामान्य जनता उन्हें यह ऐसा नहीं करने दे सकती, अतः पुरोहित का स्थान वे स्वयं ले लेते हैं।<sup>२३</sup>

यह कारण ठीक प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि यह प्रथा ग्रीक जातियों में भी प्रचलित है और इन जातियों की स्त्रियों के साथ कोई ब्राह्मण कभी सहवास नहीं कर सकता। इस विवाहों के प्रारम्भिक वर्णनों में ब्राह्मण वर्ग का उल्लेख नहीं मिलता। इस विषय में गेट की यह कल्पना अधिक युक्ति-युक्त प्रतीत होती है कि पहला विवाह नागरों की बहुभर्तृता (Polyandry) प्रथा को ब्राह्मणों द्वारा संस्कृत एवं दृढ़ करने का एक प्रयत्न मानना चाहिए। नागर लोगों की राजनीतिक प्रभुता होने पर भी ब्राह्मण उनके इस कार्य को पूरी तरह पराजित नहीं करते थे। उन्होंने यह व्यवस्था बनायी कि कन्या का विधिपूर्वक विवाह एक बार अवश्य हो जाना चाहिए, इसके बाद भले ही नागर अपनी प्रथा के अनुसार कुछ भी करते रहें।<sup>२४</sup>

<sup>२२</sup> सी० रि० ई०, १९११, खण्ड १, भाग १, पृ० २४२

<sup>२३</sup> रिजली—वीपल आफ दी इंडिया, पृ० २०६

<sup>२४</sup> सी० रि० ई०, १९११, भाग १, खण्ड १, पृ० २४२



### मलाबार विवाह कानून

पिछली शती के अन्त तक मलाबार में सम्बन्धम् विवाह होते थे, किन्तु वहाँ विवाह विषयक विधिलता को दूर करने के लिए पिछली शती में खोर आन्दोलन हुआ। मद्रास सरकार ने १८६१ में इस विषय पर विशेष विचार करने के लिए मलाबार विवाह कमीशन की नियुक्ति की थी। इस कमीशन को दो कार्य सौंपे गये—(१) मरम्भकषायम शय भाष के नियम को मानने वाले व्यक्तियों की वैवाहिक प्रथाओं का निश्चय करना, (२) इस विषय पर अपनी सम्मति देना कि क्या इन विवाहों की किसी विधि को कानूनी तौर पर स्वीकृत करना आवश्यक है या नहीं। इसके छः सदस्यों में से पाँच का यह मत था कि निम्न कारणों से विवाहों के लिए एक अनुमति देने वाले कानून (Permissive Legislation) की आवश्यकता है—(१) अनुमति देने वाला कानून बन जाने पर जो चाहेंगे, वे कानूनी विवाह कर सकेंगे और वेप इसके लिए बाध्य नहीं किये जाएंगे, (२) राष्ट्रीय उन्नति एवं सवाचार के लिए विवाह के कानून का बनना आवश्यक है, (३) यदि कानून नहीं बनाया जायेगा तो प्रति वर्ष इसके लिए माँग दोहरायी जायगी। अदालतें उस समय तक इन विवाहों को अवैध मानती थीं। कमीशन के प्रधान ने इस बात पर बल दिया कि जब तक इस विषय का कोई कानून नहीं बनेगा, अदालतें ऐसे विवाहों को अवैध मानती रहेंगी। अतः इन्हें वैध बनाने के लिए एक कानून अवश्य बनाया जाना चाहिए। तब सन् १८६६ में इन विवाहों को अदालतों द्वारा वैध माने जाने के लिए मलाबार मैरेज एक्ट पास किया गया।

इस कानून में सम्बन्धम् विवाह का लक्षण यह किया गया है—सम्बन्धम् एक स्त्री और पुरुष के बीच का ऐसा सम्बन्ध है जिस सम्बन्ध में वे अपनी जाति की प्रथा के अनुसार पति-पत्नी के रूप में सहवास करते हैं या सहवास करने का विचार रखते हैं। यह सम्बन्धम् निषिद्ध पीढ़ियों के अन्दर नहीं हो सकता। जिन समुदायों या वर्गों में विवाह निषिद्ध है, उनके साथ भी यह सम्बन्धम् नहीं होना चाहिए और नाबालिग को अपने अभिभावक की सहमति प्राप्त करना आवश्यक है।

विवाह की सूचना विवाह के रजिस्ट्रार को देनी चाहिए, यदि इस पर कोई आपत्ति नहीं उठायी जाती तो सूचना देने के एक मास पश्चात् विवाह हो सकता है। ऐसा विवाह कानून द्वारा वैध होगा और पति पत्नी तथा सन्तानों को पालने के लिए बाध्य होगा।

१९३३ के मद्रास मरम्भकषायम एक्ट द्वारा इस कानून को और अधिक परिष्कृत एवं विस्तृत किया गया है। इस कानून द्वारा निम्न महत्त्वपूर्ण परिवर्धन हुए हैं—(१) सम्बन्धम् को कानूनी विवाह समझा गया है। (२) तलाक का पूर्ण अधिकार दिया गया है। तलाक के लिये कोई कारण बताने की आवश्यकता नहीं है, (३) एक-विवाह (Monogamy) के सिद्धान्त को लागू किया गया है।

## नम्बूदरी विवाह

नम्बूदरी ब्राह्मणों में यह प्रथा भी कि उनमें केवल बड़े भाई को ही विवाह करने का अधिकार था, छोटे भाई सबन्धम् ही कर सकते थे और इनकी सन्तानों माता के परिवार में उसके साथ रहती थी। इस नियम का उद्देश्य बड़े भाई को सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार देकर भूसंपत्ति को विभक्त होने से बचाये रखना था, किन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि नम्बूदरी जाति का विस्तार विस्तृत रुक गया, क्योंकि छोटे भाइयों द्वारा उत्पन्न सभी जातक माता की जाति के समझे जाते थे। आजकल प्रजातन्त्र के युग में संकाय का बहुत महत्त्व है। मुंबई नम्बूदरियों ने देखा कि यदि उनकी वर्तमान प्रथा के अनुसार बड़े भाई के पास ही विवाह का अधिकार बना रहा, तो उनकी संख्या अवश्यमेव कम हो जायेगी, राजनीतिक जीवन में उनका कोई महत्त्व नहीं रह जायेगा। अतः १९३३ में मद्रास नम्बूदरी विवाह कानून पास हुआ। इस कानून की ६ वीं धारा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस धारा के अनुसार प्रत्येक नम्बूदरी की अपनी जाति में विवाह करने का पूरा अधिकार है और प्रत्येक कन्या के लिए विवाह में दहेज की मात्रा निम्न कर दी गयी है। यह मात्रा कन्या के हितों में आने वाली सम्पत्ति के तिहाई भाग से अधिक १०,००० रुपयों से अधिक न होगी। नम्बूदरियों को एक-विवाह का नियम पालन करना पड़ेगा। केवल निम्न तीन अवस्थाओं में उन्हें एक पत्नी के रहते हुए दूसरी स्त्री से विवाह करने का अधिकार है—(१) जब पत्नी ५ वर्ष से किसी असाध्य रोग से पीड़ित हो, (२) जब १० वर्ष तक पत्नी से कोई सन्तान न हुई हो, (३) जब स्त्री जाति से बहिष्कृत हो गयी हो। यह स्मरण रखना चाहिए कि नम्बूदरियों को तलाक का अधिकार नहीं दिया गया।

कराव—यह विवाह संयुक्त प्रान्त के आठ,<sup>५६</sup> गुजरात और लोधीयों<sup>६०</sup> में प्रचलित है। पंजाब में भी इसका प्रचार है। इस विवाह में बिना किसी विधि के मृत पत्नी की स्त्री को उसका भाई ले सकता है। इस विवाह को अदातत वैध मानती है। करार में कोई विशेष विधि नहीं होती है। इसमें मुख्य बात यह है दोनों पति-पत्नी सम्बन्ध के लिए सहमत हों अथवा कन्या के माता-पिता या अभिभावक अपनी कन्या को उसके साथ विवाह की इच्छा रखने वाले युवक को देने के लिए तैयार हों। ऐसे अवसर पर विधवा प्रामः ज्ञान रूपसे पहनती है और पति उसे कंगन, नथ, बाली या वैवाहिक जीवन की प्रतीक कोई अन्य वस्तु देता है। कई स्थानों पर इस विवाह के लिए यह विधि भी जाती है कि स्त्री-मुख एकट्ठे बैठ जाते हैं और कोई ब्राह्मण, साधु या बड़ा भाई उन दोनों पर एक सफेद चादर डालता है,

<sup>५६</sup> रटिगेन—पंजाब कस्टमरी ला० ७ नं० संस्करण, पृ० १४१, पूर्वमत बनाम तुलसी ३ आगरा पृ० ३४०

<sup>६०</sup> ४ मा० ३० प्रोभि० हा० को०, रि० पृ० १२८

स्त्री को उपयुक्त भेंट या हार में एक श्वरा दिया जाता है। घर-बधू पर चादर डालने के कारण इसे 'चादर अंदाजी' भी कहते हैं। करण प्रायः विधवाओं की चादर अंदाजी को कहते हैं। जब ऐसी बधू बुढ़का देकर लायी जाती है उस समय कोई विधि आवश्यक नहीं समझी जाती। पति द्वारा पत्नी को खरीदना ही उन दोनों के वैवाहिक जीवन का प्रारम्भ करने के लिए पर्याप्त समझा जाता है।

**खाण्डा विवाह**—यह दक्षिण भारत के कुम्बला जमींदारों में प्रचलित है। जब बधू किसी भीची जाती थीं और वह कुलों या जमींदारों, तब यह विवाह हो जाता है। इस विवाह में खाण्डा या खंजर का उपयोग आवश्यक है; इसलिए इसे खाण्डा विवाह कहते हैं। जमींदार विवाह के समय उपस्थित नहीं होता, उसके स्थान पर एक खंजर रख दिया जाता है। इस खंजर के सामने बधू को यह (मंगल मूल) बांध दिया जाता है। जमींदार के साथ इस प्रकार विवाहित स्त्रियों को भोग-स्त्रियाँ कहा जाता है और नियमपूर्वक विवाहित स्त्री महास्त्री कहलाती है।<sup>६१</sup> यह विवाह तंबोर के राजकुलों में प्रचलित था, प्रिंसी कौन्सिल ने इस विवाह की निन्दा की है और ऐसी स्त्री की मंगाने अर्थात् मानी है।<sup>६२</sup>

**शान्ति गृहीत**—टिपरा (बंगाल) में यह प्रथा प्रचलित है कि विपुला देवी की पूजा करने के बाद पुरोहित राजा-रानी को मालाएँ और चंदन धमकार देता है, तत्पश्चात् उन्हें शांति-जल दिया जाता है। यह शान्तिर्विवाह का एक भेद माना जाता है।<sup>६३</sup>

**आनन्द विवाह**—सिक्खों के विवाह पहले हिन्दू विधि के अनुसार होते थे। उन्हें ब्राह्मण पुरोहित कराते थे। हिन्दू व सिक्ख विवाहों में केवल इतना अंतर था कि सिक्खों विवाह के समय हिन्दू गीतों के स्थान पर गार्वा भावा करती थीं। यह गार्वा सिक्खों के बोधे गुरु श्री रामदास ने अपने विवाह पर बनाये थे। बाद में सिक्खों में दाह्य संस्कार किया जाने लगा। पहले हिन्दू पद्धति में विवाह होता था, बाद में विवाहित दम्पती गुणगुण चाहिक की बार-बार प्रदक्षिणा करते और इन्हीं उक्त लायी पढ़ता था। पारस्परिक प्रतिज्ञाएँ पंजाबी में होती थीं। लावाँ चार फेरों (अग्नि के चारों ओर प्रदक्षिणा या पंजाबी परकमा—परिक्रमा) का ही प्रतिकार है और विवाह की अनिवार्य विधि माना जाता है। लावाँ के बाद आनन्द-बाणी पढ़ी जाती है। यह हिन्दू शान्तिपाठ की तरह है। विवाह के साथ इसका विशेष सम्बन्ध नहीं है, किन्तु कोई भी सांगतिक विधि आनन्द-

<sup>६१</sup> १७ मद्रास ४२२। रामसरणीसह बनाम महावीर सेवकसिंह १९३४ प्रो० कौ० ७४ अफ्फजल वीरचन्द्र १वीं रि० १९४, राजकुमार तहरीन बनाम वीरचन्द्र २५वीं रि० ४०।

<sup>६२</sup> महाराज कोल्हापुर बनाम सुन्दरम् अम्बर ४८ म १

<sup>६३</sup> स्टील पु० ३१

वाणी के बिना पूरी नहीं समझी जाती। इसके बाद सदा स्या या अधिक का कथाह्र मयाह (हलवा) खाता जाता है। इस विधि का आनन्द विवाह कहा जाता है। यह स्पष्ट है कि आनन्द विधि में पवित्र अग्नि का स्थान मुख्यतः माहिब को दे दिया गया है और अग्नि की तरह मुख्य माहिब की प्रशिक्षणा की जाने लगी है।

दिलवाहों के विवाह की तीसरी अवस्था यह हुई कि उन्होंने हिन्दू विवाह पद्धति का सर्वथा त्याग कर दिया। उनमें केवल लावा और आनन्द-वाणी के साथ ही विवाह होने लगे। पहले इन विवाहों की वैधता में सन्देह किया जाता था। १९०६ में आनन्द सँदेह एकट्ठा हांग एग प्रकार के सब विवाहों को वैध बना दिया गया है। आनन्द विवाह सिविल धर्म स्वीकार करने वालों में ही वैध माना जाता है।<sup>१४</sup>

**कण्ठी-बदल विवाह**—बीजावों में बर-बधू के कंठी बदलने पर विवाह वैध माना जाता है।<sup>१५</sup>

**कविद्यानम् विवाह**—कुछ दिगामतों (बीरवाँतों) में विवाह की यह परिपाटी है कि वे भोग देते हैं, उसमें बर और बधू अतिथियों के सामने एक आसन पर बैठते हैं और पान खाते हैं। उनके कपड़े एक साथ बंध दिये जाते हैं। उसी राति को सहवास किया जाता है। यही कविद्यानम् (कल्याणम्) कहा जाता है। विधवाओं के ऐसे विवाह को 'उदबेलि' कहते हैं।

**नातक विवाह**—गुजरात की कुछ जातियों में पहली स्त्री को छोड़ कर कोई पुरुष या दूसरा विवाह करता है उसे नातक (नाता या नया सम्बन्ध होना) कहते हैं। महाराष्ट्र में स्त्री या विधवा के दूसरे विवाह को 'पाट' कहते हैं।

**बादर अन्दाजी विवाह**—पंजाब के सिक्ख और राजपूत इस विधि के अनुसार मुसलमान सिधियों के साथ विवाह करते हैं। पंजाब केसरी महाराज रणजीतसिंह ने बादर डालकर कई मुसलमान स्त्रियाँ ग्रहण की थीं, शेरसिंह ने भी इस विषय में उनका अनुसरण किया था। एक मुसलमान बेगमा ने कुंवर देवरासिंह की सम्पत्ति में इस आधार पर उत्तराधिकारी होता जाहा था कि देवरासिंह ने बादर डालकर उसे ग्रहण किया था। अदालत ने सिक्ख सरदारों से इस विषय में पूछताछ करवाई। सरदारों ने कहा कि यद्यपि महाराज रणजीतसिंह और शेरसिंह ने ऐसे विवाह किये हैं किन्तु वे राजा थे, उन्होंने इस विषय में आचार और प्रथा की परवाह नहीं की, अतः उनका यह कार्य सामाजिक नहीं माना जा सकता। पंजाब के भीक कौटने १८६८ में एकाजाट जाम्हीरदार के एक बाह्मणी के साथ बादर अन्दाजी द्वारा किये गये विवाह को अवैध माना था। किन्तु बाद में अदा-

१४ सं० रि० पं० १९११ भा० १ खण्ड १ पृ० २७७

१५ विनोद बनान शशिभूषण २४ कल० बी० लो० सं० ६४८

सतों ने पंजाब में ऐसे विवाहों को बंध माना है। पंजाब के हिन्दुओं के विभिन्न वर्गों में ये विवाह प्रचलित हैं।

**सर्वस्वधनम् विवाह**—यह विवाह दक्षिण के सम्बूतरियों में प्रचलित है। इसका उद्देश्य अपने दोहते या लड़की के लड़के को अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाना होता है। जब किसी व्यक्ति की कोई पुत्र सन्तान नहीं होती और लड़कियाँ ही होती हैं, उस समय यह विवाह किया जाता है। विवाह के समय पिता दामाद से कहता है—“मैं यह अलङ्कृत कन्या तुम्हें देता हूँ। इस कन्या का कोई भाई नहीं है। इसका जो पुत्र होगा वह मेरा पुत्र समझा जायगा।” कुर्ग में भी यह रिवाज पाया जाता है। जिस व्यक्ति की कोई पुत्र सन्तान नहीं होती, वह अपनी कन्या का विवाह इसी शर्त पर करता है कि उसका दोहता उसके घर में रहेगा। धारवाड़ के होलेयों, मद्रास के कुन्नावत और माधियों और कांची के सिंहलियों में भी इसका रिवाज है। आसाम और कश्मीर में भी इसका प्रचलन है। आसाम में ऐसा दामाद न केवल स्वशुर की सम्पत्ति का अधिकारी होता है, बल्कि उसका गोल भी वही माना जाता है, जो गोल उसके स्वशुरालय का होता है। छोटा नागपुर के संथालों और ओराओं में ऐसी स्त्री का पति, जिसका कोई भाई नहीं है, स्वशुरालय में रहकर काम करता है और स्वशुर के बाद उसकी सम्पत्ति का अधिकारी होता है। पंजाब में पुत्र न होने पर स्वशुर द्वारा दामाद को पुत्र बना लिया जाता है। यह स्वशुर के घर में रहता है, उसे घर लंबाई, घर-दामाद या भाला-दामाद कहते हैं।<sup>६६</sup>

**सप्त परिवर्तन (सप्त परिवर्तन)**—दो परिवारों में जब यह निश्चय हो जाता है कि एक परिवार द्वारा एक विवाह किया जाने पर, दूसरा परिवार उसके बदले में उस परिवार के साथ दूसरा विवाह करेगा तो दोनों कुल या परिवार आपस में कन्याओं का आदान-प्रदान या परिवर्तन करते हैं। बम्बई और बंगाल में इन विवाहों का विशेष रिवाज है। बंगाल में ये विवाह ब्राह्मणों में भी प्रचलित हैं। पंजाब में ऐसे विवाहों को बट्टा-मट्टा (अदल-बदल या परिवर्तन) कहते हैं। मथुरा के विशिष्ट वर्गों में भी बदला-विवाह पाये जाते हैं।

## विवाह संस्कार

### संस्कार का उद्देश्य

वर्तमान युग में हिन्दुओं का कोई भी विवाह, विवाह-संस्कार के बिना पूर्ण नहीं माना जाता। पुराने जमाने में गान्धर्व आदि विवाहों में वर और वधू की स्वीकृति को ही पर्याप्त समझा जाता था, किन्तु बाद में अपनी दृष्टा से किमें जाने वाले प्रणय-विवाहों में भी संस्कार को आवश्यक माना जाने लगा। विवाह-संस्कार का मुख्य उद्देश्य यह है कि विवाहित होने वाले स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को सार्वजनिक एवं वैध बना दिया जाय। संस्कार के बिना नर-नारी का जो सम्बन्ध होता है समाज उसे वैध, ग्राह्य एवं आने लिए हानिकर समझता है। ऐसा सम्बन्ध रखने वालों को समाज में भुजा की दृष्टि से देखा जाता है; अतः न केवल हिन्दू समाज में अपितु मानव समाज के अधिकांश भागों में कुछ ऐसी विधियाँ आवश्यक समझी जाती हैं जिनको करने के बाद ही स्त्री-पुरुष पति-पत्नी बन कर रह सकते हैं। इस प्रकार समाज विवाह-संस्कार द्वारा विवाहों का निमन्त्रण करता है, यह निमन्त्रण कई प्रकार से हो सकता है। कुछ समाजों में यह विवाह-संस्कार पुरोहित द्वारा कराया जाता है। हिन्दू समाज, रोमन समाज और ईसाई जगत के अधिकांश विवाहों में पुरोहित की उपस्थिति आवश्यक है। मुसलमानों में विवाह एक दीवानी मामला है, अतः वहाँ विवाह के समय में दो साक्षियाँ आवश्यक हैं। आजकल के दीवानी विवाहों (Civil marriages) में किसी मजिस्ट्रेट के सामने विवाह की घोषणा आवश्यक मानी जाती है। स्त्री-पुरुष में चाहें कितना ही सच्चा प्रेम हो, समाज उनके सम्बन्ध को तब तक वैध नहीं मानेगा जब तक उसके साथ समाज द्वारा स्वीकार की जाने वाली कुछ विशेष विधियाँ न की जाय और जहाँ कोई पुरोहित या मजिस्ट्रेट साक्षी न हो।<sup>१</sup>

हिन्दू समाज के प्रत्येक वर्ग, समुदाय या जाति में विवाह-संस्कार की अलग-अलग विधियाँ हैं और अत्यन्त प्राचीन काल से इनकी विविधता इसी प्रकार चली आ रही है। यह कहावत प्रसिद्ध है कि कोस-कोस पानी बदलता है और १२ कोस पर पानी

<sup>१</sup> मलाबार का सम्बन्धम् नामक विवाह इस विषय का अन्वय है।

अद्वय जाती है। विवाह की विधियों के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है कि वे १२ फीस पर बदल जाती हैं। आजनायन गृह्यसूत्र ने आज से ३००० वर्ष पूर्व यह कहा था कि विभिन्न नहरों और गाँवों के रीति-रिवाज विभिन्न-विभिन्न होते हैं। जिस तरह आजकल पुराने रिवाजों के बारे में डूबी औरतें सामाजिक मानी जाती हैं, उसी तरह आपसम्बन्ध के जमाने में भी इनके रीति-रिवाजों को परम प्रमाण माना जाता था (आप० गृ० गृ० २।१५)। काठक गृह्यसूत्र (२५।७) में भी विवाह में देशाचारों और कुलों के आचारों के मानन की अनुमति दी है। पारस्कर गृह्यसूत्र (१।२।११।१३) प्राचीन विधियों के साथ साम की विशेष विधियाँ करने की अनुमति देता है। इन आचारों के कारण, हिन्दू विवाह की विधि बहुत विस्तृत, जटिल और पेचीदा हो गयी है, विवाह-संग्रह एक बहुत लम्बा-बोड़ा ग्रन्थ फर्माकाण्ड हो गया है। इसमें बहुत सी विधियाँ रिवाज के तौर पर की जाती हैं और बहुत सी विधियाँ वैदिक मंत्रों के साथ पूर्ण की जाती हैं। यहाँ हम पहले वैदिक मन्त्रों के साथ की जाने वाली शास्त्रीय विधियों पर उल्लेख करेंगे और बाद में विवाह के सम्बन्ध में किये जाने वाले अन्य लोकप्रचारों या देशाचारों का संक्षिप्त वर्णन होगा।

### वैदिक युग की विधियाँ

वैदिक युग की विधियों का विशेष ज्ञान ऋग्वेद के सूक्तसूक्त (१०।८५) में तथा अथर्ववेद के तैत्तिरीय ब्राह्मण में होता है। इनमें विवाह की प्रायः सभी विधियों पर प्रकाश डाला गया है। इनमें सबसे पहले आर्चकारिक रूप से सोम का वर्णन है (ऋ० १०।८५।१-५; अथर्व० १५।१।१-५)। अगने मन्त्रों में कन्या के आर्चकारिक दहन की बताया गया है (ऋ० १०।८५।६, ८.१०-१३; अथर्व० १५।१।६-१०)। ऋग्वेद में पाणिग्रहण (१०।८५।३६), केशमोचन (१०।८५।३४), वधू की विदाई (१०।८५।२६-३२, ३३), स्वयंराज्य प्रवेश (१०।८५।२७, ४१-४६) व कन्यादान (१०।८५।३६-४१) की विधियाँ हैं; किन्तु उसमें अश्मारोहण, सूर्यदर्शन, ध्रुवदर्शन आदि विधियाँ नहीं हैं। अथर्ववेद (१५।१।४८।५२) में पाणिग्रहण का अधिक विस्तार से वर्णन है; अश्मारोहण (१५।१।४७) का भी प्रतिपादन है। वधू के वस्त्रों (१५।१।४५), स्नान (१।५७), स्वयंराज्य प्रवेश (१।५०-६४) का उल्लेख है। किन्तु यहाँ भी ध्रुवदर्शन और ताजाहोम का वर्णन नहीं है।

### गृह्यसूत्रों की विधियाँ

हिन्दू विवाह को गृह्यसूत्रों ने कमबख्त एवं सुव्यवस्थित किया। पुरानी विधियों में कुछ नयी विधियाँ जोड़ी गयीं। ध्रुवदर्शन और ताजाहोम इसी युग में विवाह के आवश्यक अंग बने। इन गृह्यसूत्रों में विधियों की संख्या और स्वरूप अनिश्चित रहा है तथा

उनके विषय में परस्पर मतभेद रहा है। वर्तमान समय में वास्तवीय हिन्दू विवाहों में इन्हीं विधियों का अनुसरण किया जाता है। अतः इन विधियों का विस्तार से वर्णन किया जायगा। इस वर्णन में आपबलायन गृह्यसूत्र तथा पारस्कार गृह्यसूत्र की विधि को आधार बनाया गया है, किन्तु यहाँ अन्य गृह्यसूत्र विशेष विधियों का उल्लेख करते हैं, यहाँ उनका भी साथ में निर्देश कर दिया गया है। ये विधियाँ प्रायः सभी प्राचीन आर्यजातियों में पायी जाती थीं। पाण्डित्यपिण्यों में यथासम्भव इसका उल्लेख किया गया है।

विवाह की विधियों को दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है—(१) विवाह की प्रारम्भिक विधियाँ। ये यधू के घर पर की जाने वाली विवाह की आवश्यक रस्में हैं, यथा पाणिग्रहण, पाजाहोम, अश्वारोहण आदि विधियाँ। (२) यधू को श्वशुरालय ले जाकर की जाने वाली विधियाँ। उवाहरणार्थ, धूपधरान की विधि यधू के श्वशुरालय पहुँच जाने पर होती थी, किन्तु वर्तमान समय में दोनों विधियाँ प्रायः एक साथ ही यधू के घर पर पूरी की जाती हैं। इन विधियों के पौवापर्य में विभिन्न सूत्रकारों में बहुत मतभेद है। आपबलायन गृह्यसूत्र सप्तपदी से पहले अग्निपरिभ्रमण का निर्देश करता है। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र सप्तपदी का अग्निपरिभ्रमण से पहले मानता है। पाणिग्रहण को अधिकांश सूत्रकार सप्तपदी से पहले मानते हैं, किन्तु गोमिन, आदिर, बौधायन इसे बाद में मानते हैं। यहाँ इन विधियों का वर्णन-क्रम पारस्कार और आपबलायन गृह्यसूत्रों के अनुसार है। यह आश्चर्य की बात है कि आपबलायन विवाह संस्कार को पाणिग्रहण की विधि से शुरू करता है, उससे पहले मधुपर्कादि की महत्वपूर्ण विधियों का वर्णन नहीं करता। यहाँ पहले इन विधियों का वर्णन उचित जान पड़ता है।

**मधुपर्क**—विवाह के लिए बर बरातियों के साथ यधू के घर पर पहुँचता है। कन्या के घर पर बरात ले जाने का रिवाज अत्यन्त प्राचीन है और वैदिक काल से चला आ रहा है। अथर्व० (११।२।१) में एक आर्लकारिक विवाह का वर्णन करते हुए यह पूछा गया है कि उस विवाह में कौन बराती (अन्धा) थे और कौन दुल्हा था। बरात के साथ बर द्वारा यधू के घर पर पहुँचने पर उसका स्वागत किया जाता था। पारस्कार गृह्यसूत्र के मत में बर अर्घ्य देने योग्य (सत्कार करने योग्य) होता है, अतः जब वह द्वार पर आता है तो यधू पक्ष के लोग उससे कहते हैं कि "आप अच्छी तरह बैठिए, हम आपका सत्कार करेंगे" (१।३।४)। यधू पलबाले दर को बैठने के लिए आसन, पाँच छोने और आबमन करने के लिए जल, (अर्घ्य) तथा मधुपर्क देते हैं।

मधुपर्क प्राचीन काल में सम्माननीय व्यक्तियों को दिया जाता था। पारस्कार गृह्यसूत्र (१।३।१) में कटिक, बर, स्नातक, राजा और प्रिय व्यक्ति को मधुपर्क के सम्मान के योग्य समझा गया है। बौधायनगृह्यसूत्र (१।३।६५) अतिप्रियों को भी इस योग्य



समझता है।<sup>२</sup> मधुपर्क में क्या चीजें होती थीं, इस प्रश्न पर गृह्यसूत्रों में बड़ा मतभेद है। इस बात पर सब सहमत है कि उसमें मधु पीना चाहिए। मधुपर्क का अर्थ यही है कि मधु से मिली हुई (संपृक्त) वस्तु। किन्तु मधु के साथ मिलायी जाने वाली अन्य वस्तुओं के सम्बन्ध में मतभेद है। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र व आपस्तम्ब गृह्यसूत्र इसे मधु और दही या मक्खन का मिश्रण बताते हैं। आप० गृह्यसूत्र (१३।११।१२) कुछ लोगों की यह सम्मति उद्धृत करता है कि इसमें जो भी मिलाया चाहिए। कौशिक सू० (६२) में ६ प्रकार के मधुपर्कों के मिश्रण का वर्णन है। मानव सू० सू० (१।६।२२), त्रिरथःश्री गू० सू० (१।१३।१४) तथा औघातन गू० सू० (१।२।११-१४) में मधुपर्क में गौ या बकरी के शीश को भी देने का वर्णन है, बाद में इसे घृषा समझा जाने लगा। इस समय हिन्दू समाज में मधुपर्क का रिवाज बहुत कम हो गया है, केवल विवाह के समय दही और मधु मिलाकर मधुपर्क दिया जाता है।

गृह्यसूत्रों में मधुपर्क की बहुत विस्तृत विधियों का वर्णन है। कई मंत्रों को पढ़ते हुए वर मधुपर्क का ग्रहण करता है, उसको अनामिका और जंगूठे से बिलोता है, फिर कुछ मन्त्र पढ़ता हुआ मधुपर्क का भक्षण करता है। मधुपर्क की विधि की समाप्ति मोक्षान से होती है। यजमान या इषगुरु अतिथि या वर को तीन बार गौ शब्द कहकर गौ का दान करता है। इस मोक्षान से बहेज का भ्रम होगा स्वामाधिक है, किन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। मोक्षान मधुपर्क की विधि का अंग है और मधुपर्क का विवाह से सम्बन्ध नहीं है, वह अतिथि, ऋत्विक्, वर, स्नातक, इषगुरु, मामा, आचार्य किसी भी प्रिय व्यक्तिके घर आने पर दिया जाता था। वह विवाह में ही होता हो, ऐसी बात नहीं। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र विवाह के पहले किसी मधुपर्क का उल्लेख नहीं करता। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र (३।८), औघात० गू० सू० (१।२।१), मानव गू० सू० (१।६), काठक गू० सू० (२।४।१-२) में विवाह से पहले मधुपर्क का वर्णन है। कात्या० गू० सू० (१।१२।१०) विवाह से पहले और वधू के घर में प्रवेश करने के समय मधुपर्कों का उल्लेख करता है। काठक गू० सू० (२।४।१) पर टीका करते हुए आदित्यदर्शन लिखता है कि मधुपर्क विवाह के अन्त में देना चाहिए, परन्तु उसके बाद वह लिखता है कि सब प्रवेशों में मधुपर्क विवाह से पहले दिया जाता है।

गृह्यसूत्रों के समय में चाहे जैसी परिपाटियाँ रही हों, किन्तु इस समय सर्वत्र हिन्दू समाज में मधुपर्क विवाह में पहले ही दिया जाता है और उसका मुख्य उद्देश्य वर का स्वागत एवं सत्कार करना है।

<sup>२</sup> गौ० घ० सू० ५।२५, आप० गू० सू० १३।१६-२० आप० घ० सू० २।३।८।५-६  
बौ० घ० सू० २।३।६३-६४, गौ० घ० सू० ४।१०।२३-२४, छ० गू० सू० ४।४।२६, मनु,  
३।१।१६ व अनु० तथा पात० स्मृति में मधुपर्क की विधि विस्तार से बतायी गयी है।

**वस्त्रदान**—गंधुपर्क द्वारा स्वागत होने के बाद घर बधू को कुछ वस्त्र पहनाता है। उस समय 'अहो मच्छ' तथा 'आ अङ्गुत्तन्नवमन्' (अथर्व १४।१।४५) के मन्त्रों का पाठ करता है। दोनों मन्त्रों का अर्थ इस प्रकार है—'हे कन्या, तू बुद्धावस्था तक पहुँचने वाली हो, (मेरे दिये हुए) इस वस्त्र को तू पहन, कामादि से बचने हुए व्यक्तियों के बीच में उनके अभिषाग से अपनी रक्षा करने वाली हो, १०० वर्षों तक जीवित रह, तेजस्विनी होकर धन और पुत्रों का संग्रह कर, हे आयुष्मति, इस वस्त्र को धारण कर।' दूसरे संज्ञ में यह कहा गया है—'ये वस्त्र घर के घर की स्त्रियों द्वारा काते और बुने गये हैं, वे तुझे बड़ाये तक ऐसे वस्त्र पहनाती रहें। जिन देवियों ने इस वस्त्र के सूत का काता है, जिन्होंने इसके सूत को पीलाया है, जिन देवियों ने दोनों ओर से ताने जाने में रम पीलाया है, वे देवियाँ तुझे बुद्धावस्था पर्यन्त ऐसे ही वस्त्र पहनाती रहें। हे आयुष्मति, इस वस्त्र को पहन' (अथर्व, १४।१।४५)। गृहसूत्र घर द्वारा बधू को इन वस्त्रों के पहनाये जाने का विधान करते हैं, किन्तु आजकल ये वस्त्र बधू को प्रदान किये जाते हैं और वह इन्हें स्वयं धारण करती है।

**कन्यादान**—पारस्कर (१।४।१३) ने इसका उल्लेख मात्र किया है, किन्तु मा० गू० सू० (१।५।१६) ने इसका विस्तार से वर्णन किया है। कन्यादान करने वाला पिता या भाई तीन बार संयत जघ्न करना हुआ 'ददामि' (देता हूँ) कहे और चार बार 'प्रतिगृह्णामि' (स्वीकार करता हूँ) कह कर कन्या को स्वीकार करे। कई बार घर कन्या को शुभक देकर खरीदता था। उस परिस्थिति के लिए मा० गू० सू० यह कहता है कि घर अपनी संज्ञति में शुभक का धन भर ले, कन्या को स्वीकार करते हुए वह धन कन्या के पिता को दे दे। पिता उस समय यह कहे कि मैं तुझे धन के लिए देता हूँ और घर यह कहे कि मैं पुत्रों के लिए तुझे स्वीकार करता हूँ (धनाय त्वा ददामि, पुत्रेभ्यस्त्वा प्रतिगृह्णामि)। इसमें कन्या के और घर के गोश्लों का व प्रपितामह तक के नामों का उच्चारण किया जाता है और कहा जाता है—'किस्ने दिया, किस्को दिया, काम ने काम को दिया। काम देने वाला है, काम लेने वाला है। काम समुद्र में तू प्रविष्ट हो, मैं तुझे काम से ग्रहण करता हूँ' (तै० ब्रा०)। इस मन्त्र से स्पष्ट है कि वास्तव में विवाह परस्पर इच्छापूर्वक होता था, पिता कन्या का नाममात्र का दाता है, वास्तविक दाता काम ही है।

ऋग्वेद में कन्या के पिता (सविता या उत्पावक) द्वारा कन्या के दान का उल्लेख है और आतंकारिक रूप से अग्नि द्वारा कन्या को दिये जाने का वर्णन है (ऋ० १०।८५।३६-४१, अथर्व १४।२।३-४)। बाद में आतंकृत कन्या के दानबारे ब्राह्म विवाह को बाढ विवाहों में सर्वश्रेष्ठ विना गया है। आश्वलायन (१।२२) से बताया गया है कि घर कन्या को लेते समय कहे कि मैं तुझे धर्म और प्रजा की प्राप्ति के लिए ग्रहण करता हूँ (धर्मप्रजासिद्धयर्थं त्वा प्रतिगृह्णामि)। सं० कौ० में इस अवसर

पर बोले जाने वाले विविध मन्त्र दिये गये हैं। इस समय कन्या का पिता वर से कहता है—“तू इस मन्त्रों के प्रति धर्म, अर्थ और काम के कर्त्तव्यों को पूरा करने में कोई उपाधा या डील नहीं करना (धर्मो अर्थो च कामे च नातिभरितव्या त्वया इयम्)। वर उम्हारे उत्तर देते हुए यह कहता है कि मैं इन कर्त्तव्यों का पालन करने में कोई डील नहीं करूँगा (नातिवरामि)।

**परस्परसमीक्षण**—पारस्कर गृह्य सूत्र कन्यादान के बाद वधू के परम्पर-समीक्षण की विधि का वर्णन करता है। कड़े पदों का पावन करने वाले हिन्दुओं को यह जानकर, मायम आश्चर्य हो, किन्तु पुराने जमाने में वर-वधू को एक-दूसरे का दर्शन कराना एक महत्त्वपूर्ण विधि थी। पारस्कर इस समय यद्वा १०।२५।४४, ४०, ४१, ३७ मंत्रों को गङ्गा का वर्णन करता है। इन मन्त्रों के अर्थ इस प्रकार है—“हे कन्या तू सौम्यदृष्टि या अपागदृष्टि वाली होती हुई वृद्धि को प्राप्त कर, पति के प्रयोजनों का धात करने वाली न हो, वधूओं के लिए मंगलकारिणी हो, उत्तम मनवाली व तेजस्विनी हो, बीवी को उत्पन्न करने वाली, विद्वानों को चाहने वाली, मनुष्यों और चौपायों के लिए सुखकर हो। सोम, गन्धर्व, अग्नि तेरे पहले पति में, वह मनुष्य तेरा चौमा पति है। सोम ने तुझे गन्धर्व को, गन्धर्व ने अग्नि को और अग्नि ने मुझे दिया और इसके साथ पुत्र और धन को दिया। जो पूपा देवता है, वह इसे मंगलकारिणी बनाकर इसे हमारे प्रति प्रेरित करे (हमारे साथ अनुरक्त करे)।

आश्वलायन गृह्यसूत्र परिशिष्ट (१।३३) में परस्पर समीक्षण की विधि का बड़ा मनोरंजक वर्णन है। एक अवलुत वर ने जहाँ अब मंगल गीत गाये जा रहे हों, वहाँ वर वर को पूर्वाभिमुख तथा वधू को पश्चिमाभिमुख करके दोनों के बीच में एक मांगलिक परदा (स्वस्तिका, तिरस्करीणी) डाल दे। इस समय ब्राह्मण सुगन्ध-सूक्त का पाठ करे, स्त्रियाँ मंगल गीत गावें और निश्चित समय पर ज्योतिर्विद् परदे को उठा दे, दोनों गुरु जीरे को एक दूसरे पर फेंकते हुए तथा उपर्युक्त मंत्रों का पाठ करते हुए एक दूसरे का निरीक्षण करें। लघु आश्वलायन स्मृति (१।५।२०) में भी इसी तरह वर-वधू द्वारा एक दूसरे का निरीक्षण करने का वर्णन है। इस विधि को आपस्तम्ब गु० सू० (४।४), बौधायन गु० सूत्र (१।२४-२५) में भी दिया गया है।

**अग्नि स्थापन और होम**—अग्नि स्थापन विवाह की आवश्यक विधियों में से है। अग्नि देवता की साक्षी बनाकर किये गये विवाह अविच्छेद्य समझे जाते थे। आगे चलकर हम देखेंगे कि बारम्बार अग्नि स्थापन ने अग्नि साक्षिक विवाहों पर बहुत बल दिया है। होम को इतना महत्त्व देते हुए भी, उसकी आधुनिकता के स्वल्प और संख्या में मतभेद है। पारस्कर के मत में अग्निहोम की सामान्य आधुनिकता के बाद राष्ट्रभूत होम की १२ आधुनिकता दी जाती है, फिर अपाहोम की १३ आधुनिकता और अभ्यातान होम की १८ आधुनिकता। राष्ट्रभूत का अर्थ है राष्ट्र का पोषण करने वाला, अभ्यातान का अर्थ है जैव-

तक सर्वांगीण विकास करने वाला। राष्ट्रभूत पराई के लिए है, अन्धतात स्वार्थ के लिए। इन दोनों के समन्वय से विजय होती है। यहाँ पहले सामूहिक प्रायश्चा की गयी है और बाद में वैयक्तिक प्रायश्चा। इससे यह सूचित किया जाता है कि हमें राष्ट्र के हित को वैयक्तिक हित से ऊँचा रखना चाहिए। यह भावना रखने का परिणाम यह होता है कि ऐसे व्यक्तियों वाले राष्ट्र को विजय प्राप्त होती है।

**पाणिग्रहण**—होम के बाद पाणिग्रहण होता है। पाणिग्रहण विवाह की इतनी आवश्यक विधि है कि पाणिग्रहण और विवाह एक दूसरे के पर्याय समझे जाते हैं। इस विधि में वर-वधू एक-दूसरे का हाथ पकड़ते हुए, जीवन भर एक दूसरे के साथ इकट्ठे रहने की प्रतिज्ञा करते हैं। पाणिग्रहण केवल हिन्दू विवाह की ही विशेषता नहीं है, अपितु रोमन तथा जर्मन जातियों में भी इस प्रथा का प्रचलन है। यह विधि वर-वधू के सम्बन्ध को दृढ़ बनाने वाली समझी जाती है।

पाणिग्रहण के सम्बन्ध में आश्वलायन गृह्यसूत्र की विधि सबसे अधिक संक्षिप्त है। उसका पहले वर्णन करते फिर गोमिन गृह्यसूत्र (२।२।१६) की विधि का वर्णन किया जायगा। आश्वलायन की विधि में यह बात अनार्यजक है कि वह पुत्र और पुत्री प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के पाणिग्रहणों का वर्णन करता है। वह कहता है कि आग्नि-प्रतिष्ठापन के बाद पत्यार को रखकर उत्तर पूर्व में पानी का पड़ा रखे, फिर वह आग्याहुति दे। वह पूर्व दिशा में मुख किये हुए, पश्चिम की ओर मुख करके बैठे हुए वधू के अंगूठे की 'गृह्णामि ते सौभाग्यताम्' (१०।२५।३६) मंत्र के पाठ के साथ पकड़े। यदि वह यह चाहता है कि उसकी सन्तानें पुत्र ही पैदा हों तो वह वधू का अंगूठा पकड़े, यदि वह पुत्री चाहता है तो उसकी अंगुली पकड़े। यदि वह सबका सबकी दोनों चाहता है तो बायें वाली तरफ से (हथेली की उल्टी ओर से) वधू के अंगूठे सहित हाथ को पकड़े। पाणिग्रहण के मन्त्र (श्रु० १०।२५।३६) का पूरा अर्थ इस प्रकार है—'मैं तेरा ह्याम सौभाग्य के लिए पकड़ता हूँ। तू मुझ पति के साथ मुझसे तक पहुँचने वाली हो, अर्थमा, सविता और पुरंधि देवताओं ने गृहस्थ के कर्तव्यों का पालन करने के लिए मुझको तेरा दान किया है।' गोमिन गृह्यसूत्र (२।२।१६) में भी पाणिग्रहण की विधि में यह मंत्र पढ़ने का वर्णन है।

इन मंत्रों के अर्थ से स्पष्ट होता है कि हिन्दू विवाह के क्या उद्देश्य थे। इनमें पति पत्नी से कहता है कि मैं तुझे गार्हपत्य या सन्तानोत्पत्ति रूपी गृहस्थ के प्रधान कर्तव्य के लिए ग्रहण करता हूँ, तू धर्मपूर्वक मेरी पत्नी है। सन्तानोत्पत्ति धर्म है और उस धर्म के पालन के लिए तू मेरी पत्नी बनी है, भोगविलास या काम वासना की पूर्ति के लिए पत्नी नहीं बनी है। पति का दूसरा मुख्य कर्तव्य यह है कि वह पत्नी और बाल-बच्चों का पोषण करे। परिवार का पालन पति का एक आवश्यक कर्तव्य है, इसीलिए वह पत्नी को अपने द्वारा पोषित होने वाली (ममैयमस्तु पोष्या) कहता है। पति और

पत्नी सातविक दृष्टि से एक और अमिश्र होते हैं और उनमें यह अमिश्रता इतनी अधिक होती है कि वर कहता है—किसी भी प्रकार का सखट उपस्मृति होने पर मैं चोरी से या अलग कभी किसी वस्तु का उपभोग नहीं करूँगा।

**अग्निवरिणयन (फेरे)**—आश्वलायन के अनुसार वर अग्नि और जल के घड़े को अपनी दाहिनी तरफ रखता हुआ वधू से अग्नि की प्रदक्षिणा करवाता है। इन प्रदक्षिणाओं के समय वह "अमोक्षमस्मि" (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।७।११) के मंत्र का पाठ करता है। इस मन्त्र का यह अर्थ है—मैं यह हूँ, तू यह है; तू यह है मैं सह हूँ। मैं शुद्धोक्त हूँ, तू पृथिवी लोक है, मैं सोम हूँ तू श्वेत है, हम दोनों यहाँ विवाह करके सन्तान उत्पन्न करें, हम दोनों एक दूसरे के प्रति प्रेम रखते हुए उत्तम मनवाले होकर १०० वर्ष तक जीयें।" अग्नि की प्रदक्षिणा विवाह का आवश्यक अंग है। यह प्रदक्षिणा साज्जाहोम के समय और उसके बाद भी की जाती है। इन परिक्रमाओं की संख्या चार है। अग्नि के चारों ओर परिक्रमा करते समय कन्या का भाई शलकलश लेकर उनके पीछे चलता है। अग्निकाण्ड से रक्षा के अतिरिक्त इसका सम्बन्ध अर्थ यह है कि यदि कभी किसी आकस्मिक कारण से पति-पत्नी में कलहान्नि प्रवर्धित होगी तो घर के बादमी इस शीतल जल की तरह ठंडे दिमाग से काम लेते हुए मधुर, सान्त्वनादायक एवं शीतल वचनों से उस अग्नि को बुझाने का प्रयत्न करेंगे। परिक्रमा की प्रथा अन्य देशों में भी पायी जाती है।

**अम्मारोहण**—अग्नि प्रदक्षिणा करते हुए प्रत्येक फेरे में वर वधू को पत्थर पर चढ़ाता है और कहता है "कि इस पर चढ़, पत्थर की तरह स्थिर रह, शत्रुओं पर विजय पा, शत्रुओं को कुचल।" अम्मारोहण की विधि का आशय यह है कि "हे वधू तू पाषाण के समान दृढ़ हो, अपने पर आक्रमण करने वाले व्यक्ति का दुष्टापूर्वक मुकाबला कर, उसे हरा और उसे इस पत्थर की तरह अपने पाँव के नीचे कुचल।" अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करने में तू पुरुष पर ही आश्रित मत रहना, अपने आप भी इस कार्य में समर्थ बनना और इस कार्य के लिए अपने शरीर को पत्थर के तुल्य मजबूत बनाना।

**साज्जाहोम तथा केसामोचन**—आश्वलायन के मतानुसार वधू का भाई या भाई के स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति खीलों को वधू की अंजलि में दो बार डालता है, यदि वर का गोत्र जनश्रमि है तो तीन बार वधू की अंजलि में खीलों को डालता है। इस समय वर यह मन्त्र पढ़ता है—"कन्या ने अर्यमा देवता का यज्ञ किया है। अर्यमा इस कन्या को यहाँ (पितृगृह) से मुक्त करे, वहाँ (पतिगृह) से मुक्त न करे। कन्याओं ने वरुण देवता का यज्ञ किया, वह इस कन्या को यहाँ से छुड़ा-दे, वहाँ से न छुड़ाये, कन्याओं ने पूषा देवता का यज्ञ किया, वह इस कन्या को यहाँ से मुक्त करे, वहाँ से मुक्त न करे।" इन मंत्रों के साथ वधू की अंजलि को बिना छोले वर खीलों की हवि डालता है, अग्नि की प्रदक्षिणा किये बिना चौथी बार वह मौन भाव से खीलों की आहुति देता है। इसके बाद वह वधू के

वालों की दो लटों को यदि वे बंधी है तो खोलता है। वाहिनी लट को ऋ० १०।८५।२४ के मंत्र से तथा बायी लट को 'प्रेतो मुञ्चामि' (ऋ० १०।८५।२५) के मन्त्र से खोलता है।<sup>३</sup>

पारस्कार गृह्यसूत्र में लाजाहोम के सम्बन्ध में यह बात विशेष बतायी गयी है कि लाजा में घसी के पत्ते भी मिला देने चाहिए। आयुष्मतायन गृह्यसूत्र के मंत्र के अतिरिक्त उसने दो मंत्रों का और विधान किया है। इनका यह अभिप्राय है कि मेरा पति आयुष्मान् हो और मेरे भाई-बन्धु बड़ें। हे पति, मैं तेरी समृद्धि करने वाली इन खोलों को अग्नि में ज्वानती हूँ। मेरा और तेरा जो अमुराण है, अग्नि देव उसकी अनुमति दे।<sup>४</sup>

- ३ खोलों की हवि के साथ जो मन्त्र पढ़ जाते हैं, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि खोलों की विधि को यहाँ विशेष उद्देश्य से किया जाता है। धान के बीधे जिस प्रकार एक स्थान से उखाड़े जाकर, दूसरी स्थान पर बीधे जाते हैं, उसी प्रकार कन्या पितृगृह में बड़े चुकने के बाव अथ पतिकूल में वृद्धि के लिए लपटी जा रही है, यह इसके लिए मंगलमय हो। लाजाहोम के एक मन्त्र ऋ० १०।८५।२४ में पुरोहित कहता है, हे वधू, सुखदाता तेरे पति ने जिस धर्म-नियम के पाश से तुझे बांधा था, मैं उस पाश से तुझे मुक्त करता हूँ। हे वधू, तुझे उपश्रवण कर पुष्प के स्थान (पति के घर) में पति के साथ रखता हूँ। दूसरे मंत्र ऋ० १०।८५।२५ में यह कहता है कि हे वधू, मैं तुझे पितृगृह से मुक्त करता हूँ, वहाँ (पतिगृह के साथ) तुझे स्थिर बनाता हूँ ताकि यह वधू उत्तम पुत्रों और सौभाग्य वाली हो। लाजाहोम या इससे मिलते-जुलते रिवाज, जिनमें वर-वधू पर धान की खोलें या फल फेंके जाते हैं, अथ अनेक आर्घ्य जातियों में पाये जाते हैं। पुराने यूनान में वधू जब वर के घर में प्रविष्ट होती थी और अग्नि की प्रवक्षिणा करती थी तो उस पर खजूर, अंजीर आदि फल बरसाये जाते थे। रोम में तथा कई स्लाव देशों में भी यह रिवाज था। फ्रांस में दम्पती पर गेंदों बरसाया जाता था। इंग्लैण्ड में चावल के सिवा अन्य अन्नो का प्रक्षेपण होता था। सर्व से लौट कर आते ही वधू के सिर पर गेंदों के दाने डाले जाते थे।

समाजशास्त्रियों ने इस प्रथा का उद्देश्य समृद्धि प्राप्त करना, सन्तान प्राप्त करना, वधू के लिए पतिगृह को सुखमय बनाना, वधू को बुरी दृष्टि से बचाना आदि अनेक कारण बताये हैं। किन्तु वैदिक लाजाहोम का उद्देश्य तो उपर्युक्त मंत्रों से स्पष्ट है (वे० शा० हि० मं०, पृ० १६३-६६)। यह वधू के लिए पति के नवीन गृह में निवास की समृद्धिपूर्ण और सुखमय बनाना है।

- ४ इयं नार्यपत्नौ लाजानावपत्निका। आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्ता मे ज्ञातय। इधम-  
नूलाजानावपाम्यन्तौ समृद्धिकरणं तव। मम तुभ्यं च संवत्स तदग्निस्तु मयता-  
मिदं स्वाहा। पहले मंत्र के लिए वे० अथर्व० १।४।२।६३।

**सप्तपदी**—साजाहोम के बाद विवाह की अत्यन्त महत्वपूर्ण सप्तपदी विधि प्रारम्भ होती है। वर वधू को पूर्वोत्तर दिशा (अपराजिता दिक्) में सात कदम ले जाता है और प्रत्येक कदम के साथ वह ये वचन कहता है<sup>४</sup>— (१) अन्न के लिए एक कदम उठाने वाली हो, (२) वस्त्र के लिए दूसरा कदम उठाने वाली हो, (३) सम्पत्ति के पोषण के लिए तीसरा कदम<sup>५</sup>, (४) आनन्दमय होने के लिए चौथा कदम<sup>६</sup>, (५) सन्तान के लिए पाँचवाँ कदम<sup>७</sup>, (६) ऋतुओं (विषम पालन या दीर्घ जीवन) के लिए छठा<sup>८</sup>, (७) तू मेरी मिल बनने के लिए सातवाँ कदम उठा। तू मेरे अनुकूल वग रचने वाली या मेरा अनुसरण करने वाली हो।<sup>९</sup> हम अग्रे में तुझों का प्राण करें, वे स्वर्ग की आयु तक पहुँचें।

सप्तपदी विवाह का महत्वपूर्ण अंग है। इसमें वर को गृहस्थ के आवश्यक कर्तव्य बताये गये हैं। गृहस्थ में सबसे पहले अन्न की प्राप्ति के लिए यत्न करना पड़ता है, अन्न प्राप्ति के अभाव में धर्म कार्य तो क्या, जीवण यात्रा का निर्वाह बठिन हो जाता है। अतः सबसे पहले अन्न आवश्यक है किन्तु वह ऐसा होना चाहिए जिसमें तृप्ति की वश, पुष्टि और शक्ति मिले। इसके अतिरिक्त गृहस्थ को धन के लिए भी यत्नशील होना चाहिए और वह धन सुखमय बनाने वाला हो। ये बातें पहले बार मन्त्रों में कही गयी हैं, पाँचवें वग में गृहस्थ के मुख्य उत्सव सन्तानोत्पादन की ओर संकेत किया गया है। छठे वग में सब कार्यों को नियमपूर्वक समय पर करने का संकल्प है और सातवीं प्रतीका सबसे महत्वपूर्ण है कि पत्नी पति की सखी या मित्र बनकर रहे।

**मूर्धाभिषेक (वरवधू के सिर पर पानी छिड़कना तथा पूर्वविधि की समाप्ति—)** सातवाँ पद पूर्ण होने पर दोनों के सिर मिलाकर आचार्यों उनके सिर पर पानी के थड़े से पानी छिड़कता है। वधू को उस रात को ऐसी ब्राह्मणी के घर रहना चाहिए जिसका पति और पुत्र जीवित हो (आश्वलायन गृह्यसूत्र १।७।२०-२१)। यह नियम उसी वया में लागू होता है जब वर दूसरे गांव का हो और वधू को उसी रात अपने घर न ले जा सकता हो। आश्वलायन गृह्यसूत्र (१।८।३) व गोभिल गृह्यसूत्र में भी यह विधि पायी जाती है। पारस्कर 'आपः शिवानः, आपो हि ऋताः' मन्त्रों के साथ इस विधि को करने

<sup>४</sup> सप्तपदी के पाँच उठाने के विषय में गो० गू० सू० (२।२।१२-१३) में यह विशेष नियम दिया गया है कि वधू वग उठाती हुई पहले बायाँ पैर उठाये और बाव में बायाँ (वक्षिणैव प्रथम्य सव्येनानुक्रमतु)। वर उसे यह कहे कि बायें पैर से पहले बायाँ पैर मत उठा (या सव्येन वक्षिणमतिकामेतत् क्रमात्)

<sup>५</sup> 'सा मामनुव्रता भव। पुत्राग्विन्वाभहे ब्रह्मस्ते सन्तु जरवष्टयः' यह उपर्युक्त सातों वधनों की देक है और उनमें से प्रत्येक के बाद पड़ा जाता है। पारस्कर गृह्य सूत्र (१।८।२) इस वाक्य के बाद 'विष्णुस्त्वा नमस्तु' के वाक्य की वृद्धि करता है।

का आदेश देता है। पार० के टीकाकार जयराम के अनुसार जब छिड़कने वाला वर, आश्वलायन गृह्यसूत्र के टीकाकार के अनुसार आचार्य और गोभिल गृह्यसूत्र के मत में पानी का पड़ा उठाने वाला होता है।

**सूर्यदर्शन व हृदयस्पर्श**—पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार जलसेचन और ध्रुवदर्शन के बीच में सूर्यदर्शन और हृदयस्पर्श की दो विधियाँ और हैं। पारस्कर गृह्यसूत्र (१।७।८) में कहा गया है—‘इत्थं वाद वर वधू को ‘तन्मन्त्रादर्थवर्हित’ (अ० ७।६६।१६, मन्त्र० ३६।२४) मंत्र के साथ सूर्य दर्शन कराये। सूर्य दर्शन के समय वर-वधू यह संकल्प करते हैं कि हम सौ वर्ष तक जल शक्ति सम्पन्न रहें, १०० वर्ष तक धन्य, १०० वर्ष तक स्वर्ण और वाणी की शक्ति से मुक्त हों, सौ वर्ष तक अमीन होकर रहें और १०० वर्ष में अधिक आयु तक ये सब कर्म करें।’

हृदयस्पर्श में (पा० गृ० सू० १।८।८) वर वधू के दायें कन्धे पर ने अपना दाया हाथ ले जाते हुए उससे वधू के हृदय को स्पर्श करते हुए ‘मम जले ते हृदयं वधामि’ मंत्र का पाठ करता है। पूरे मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—‘हे वधू, मैं तेरे हृदय को अपने शरीर के अनुकूल धारण करता हूँ। मेरे शरीर के अनुकूल तेरा शरीर रहे। तू एक प्राण मन से मेरी सेवा कर। मेरा का वास्तव करने वाला परमात्मा तुझे मेरे लिए नियुक्त करे।’

हृदय स्पर्श के बाद वर वधू के मस्तक पर हाथ रखकर लोगों ने ‘सुमंगलीरियं वधूः’ के मन्त्र द्वारा यह कहता है कि इस कल्याणकारिणी वधू को आशीर्वाद देकर अपने-अपने घर जाओ। आश्वलायन गृह्यसूत्र ने इस विधि को ध्रुवदर्शन के बाद लिखा है, वास्तव में यह पहले होनी चाहिए, क्योंकि हृदयस्पर्श के बाद पहली विधि समाप्त हो जाती है। आश्वलायन गृह्यसूत्र जल सेचन के बाद पूर्वविधि को समाप्त कर देता है और कहता है कि वे दूसरे घाग को जाते हुए रात को ब्राह्मण के घर में ठहरें।

पारस्कर इसके बाद वधू को सुरक्षित घर में बिठाते तथा अपनी जाति में प्रचलित अन्य विधियों को करने का आदेश देता (१।८।११।१३)—‘वे गाँव के लोगों, बूढ़ों और स्त्रियों द्वारा कही गयी बातों का पालन करें, क्योंकि विवाह में और भक्षण में गाँव वालों के वचन को प्रमाण मानना चाहिए, ऐसा धृति में कहा गया है। इसके बाद वर ब्राह्मण होने पर आचार्य की नौ का, क्षत्रिय होने पर ग्राम का, वैश्य होने पर पाँडे का दान करे।

**ध्रुवदर्शन**—जब वधू अस्तवर्ती और सन्तपि को देखे तो वह यह कहे कि मेरा पति जीवित रहे और मैं सन्तान प्राप्त करूँ। ध्रुवदर्शन विधि को आश्वलायन गृह्यसूत्र की अपेक्षा पारस्कर और गोभिल गृह्यसूत्र ने अधिक स्पष्ट किया है। पा० गृ० सू० (१।८।१६) के अनुसार वर सूर्यास्त होने पर वधू को ध्रुवदर्शन कराता है और वह कहता है कि ‘तू ध्रुव है, मैं तुझे निश्चल भा स्थिर देखता हूँ। गृहस्थ धर्म में स्थिर रहने वाली



तेरा मैं पालन करूँगा। मुझमें तू बुद्धि को प्राप्त हो। इसीलिए ब्रह्मा ने मुझे तेरा पालन किया है। अतः तू मुझ पति के साथ पुत्र-पौत्र मुक्त होगी हुई १०० वर्ष तक जीवन बिता।" गो० गू० सू० (२।३।८-३२) के अनुसार पति-पत्नी को ध्रुव का दर्शन कराये। वधू उसे देखकर कहे—हे ध्रुव, जैसे तू निश्चल है, वैसे ही मैं पतिकुल में निश्चल (स्थिर) होंगी। आश्व० तथा पारस्कर की अपेक्षा गोभिल ने ध्रुव के साथ अग्न्यग्नी की बुद्धि की है। वर अग्न्यग्नी की दिखाये, वधू यह कहे कि "अग्न्यग्नी, मैंने तू (वसिष्ठ के पास) कही हुई है उसी तरह मैं भी (अपने पति के पास) बँध गयी हूँ।" शाखायन ब्राह्मण (१।३।७) में ध्रुवदर्शन के उद्देश्य की स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जैसे यह ध्रुवीय स्थिर है, पृथ्वी निश्चल है, यह सारा जगत् अचल है, यह पर्वत अपनी स्थिति में स्थित है, वैसे ही यह स्त्री पति कुल में स्थिर हो।<sup>१</sup>

इस विषय में सबसे अधिक स्थिर वस्तु ध्रुव है और उसके आदर्श को दिखाते हुए वर-वधू से यह कहा गया है कि वे अपने गृहस्थ धर्म में स्थिर बने रहें।

**वधू की बिवाई और रक्षारोहण**—आश्वलायन के मत में यदि (वर और वधू को पुस्तरे गाँब तक जाने के लिए) यात्रा करनी हो तो 'गृपा त्वेतां नयतु' (ऋ० १०।८५।२६) मन्त्र के साथ वधू को रथ पर बिठाये (आश्वलायन १।८।११)। पूरे मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है, "हे कन्या, गृपा हाथ पकड़कर तुझे यहाँ (पितृगृह) से ले जाये। अश्विनी तुझे रथ से अच्छी प्रकार ले जायें, तू अपने पति के घर की जा ताकि तू घर की स्वामिनी बने, पति की वश में करने वाली और यज्ञ, सभा आदि में अच्छी तरह बोलने वाली हो।" यदि मार्ग में नदी पड़ती हो तो 'अस्मन्वती रीमते' (ऋ० १०।३३।८) के मंत्रों से वधू को नाव पर नचाये और उत्तरार्ध से वधू को पार कराये। इस मन्त्र का आशय इस प्रकार है—"हे मित्रो, पथरीली नदी वह रही है। उत्तरार्ध मुक्त होओ, उठो, नदी को अच्छी तरह पार कर जाओ। जो कुछ दुष्प्रदायक तथा अयोग्य है, हम उन्हें यही नदी पर छोड़ते हैं, हम कल्याणकारी पदार्थों को प्राप्त करते हैं।" यदि वधू पितृगृह से विदा होने पर रोये तो 'धीर्ध्वं रुदन्ति' (ऋ० १०।१४०।१०) का पाठ करें। वे विवाह को अग्नि की निरन्तर आगे ले जाते हैं। सुन्दर प्रवेश, वृष या घौराष्ट्रा आने पर 'मा विद्वन्परिपन्निगः' (ऋ० १०।८५।३२, चौर डाकू, बटमार प्राप्त न हों) के मन्त्र का पाठ वर-वधू करें। मार्ग में प्रत्येक बस्ती में दलों को 'सुमंगलीरियं वधूः' (ऋ० १०।८५) के मंत्र के साथ वधू को दिखायें (आश्व० गू० सू० १।८।२-७)।

**वधू का श्वशुरालय प्रवेश**—इह ध्रिम् प्रजवा' (ऋ० १०।८५।२०) मंत्र के साथ

<sup>१</sup> गोभिल गू० सू० २।३।६ 'ध्रुवमसि ध्रुवाहं पतिकुले गृपातम्। अग्न्यग्निपति सहोऽहमसि, गा० मं० गा० १।३।७ ध्रुवा घौर्ध्रुवा पुमिवी ध्रुवं विश्वमिदं अगत्। ध्रुवाता पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुलेऽयम्।

वर वधू को अपने साथ वर में प्रविष्ट कराये। इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—“(हे वधू) इस पति-कुल में सन्तान के साथ तेरा सुख बूझ बड़े। इस घर में तू गृहस्त्री के कार्यों के लिए सदा आगच्छ रह। तू इस पति के साथ अपने शरीर का संसार कर, वृद्धावस्था को प्राप्त होके हुए, तुम दोनों पति-पत्नी जानयोग्यियों में धोजने वाले होगी।” इसके बाद (समिधानों से) विवाह की अग्नि को प्रदीप्त कर पश्चिम दिशा में बैल का चर्मालन बिछाये। उसके बालों वाले हिस्से को ऊपर रखें और उनकी गर्दन पूर्व की ओर रखें। वधू उस भाग पर बैठ आय और वर के हाथ को पकड़ लें। वर वार लूचाओं से वार आहुतियाँ दे। ये वार आहुतियाँ ‘आ नम्रणां जनयतु’ (१०।८।४।३-४६) अग्नि वार में ही से होती है। इनमें गृहस्थ का आदस और कर्त्तव्य भली-भाँति अभिव्यक्त हुए हैं। इनमें ही का अर्थ इस प्रकार है, “हे वधू प्रजापति हमारी सन्तान को उत्पन्न करे। अर्थात् देवता जराजस्था तक जीने के लिए हमें समर्थ बनाये। हम मंगल प्राप्ति करें। मनुष्य और वीर्याओं के लिए सुखकर हों। पति का हनन न करने वाली तथा प्रामः प्रिय दृष्टि वाली, तू बुद्धि को प्राप्त हो, सब पशुओं के लिए मंगल करने वाली उत्तम मन और तेज वाली, वीरों को उत्पन्न करने वाली, देवर की कामना करती हुई, सुख वाली हे वधू, तू हम मनुष्यों व हमारे वीर्याओं के लिए मंगलकारिणी हो। हे ऐश्वर्ययुक्त वर्षा वर, तू इस वधू को उत्तम पुत्र युक्त और सुन्दर सौभाग्य वाली बना। इस वधू में दस पुत्रों को उत्पन्न कर (अधिक नहीं)। हे वधू, पति का ही ११ को पुत्र समस्त। हे वधू, तू स्वशुभ के लिए सम्यक् प्रकाशमान या रागी हो, सास, नवद और देवरों के साथ रागी बनकर रह।”

फिर वर ‘विश्वेदेवाः’ (१०।८।४।७) मन्त्र के साथ कुछ वही खामे और बाकी वही वधू को दे दे अपना पक्ष से बने हुए भी को वह अपने तथा वधू के हृदय पर लगाये। ‘विश्वेदेवाः’ मन्त्र का अर्थ यह है—सब देवता हमारे हृदयों को मिलाये, उन्हें संगत करें, वायु देवता तथा उत्तम उपदेश करने वाला धाता हम दोनों का जीवन सम्यक् प्रकार से धारण कराये।” यह विधि वर-वधू के अभिन्न या एक होने को सूचित करती है।

निरावधत या विवाहोत्तर संयम—आश्वलायन (१।८।१०।१५) के अनुसार इसके बाद पति-पत्नी वार<sup>८</sup> और लवण न धार्यें, बह्मचारी रहें, आभूषण न धारण करें और अनीन पर सौंयें। विवाह के बाद ३ या २ रात तक इस नियम का पालन करें अपना कुछ आचार्य एक वर्ष तक इस नियम के पालन का उपदेश करते हैं। वे आचार्य

<sup>८</sup> वार का अर्थ आश्वलायन के टीकाकार नारायण ने राजमाष, मूंग, मधूर आदि दानें लिखा है। मातृवत् (हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र १।८।१) पत्नी द्वारा बने पुत्र आदि को वार कहता है। हरवत् आप० घ० सू० (२।६।१५।१२) में मूँह में पानी ला देने वाली वस्तु पुत्र आदि को वार समझता है।

कहते हैं कि इस प्रकार एक कृषि जैसा पुत्र उत्पन्न होगा। इस प्रकार दत्त पूरा करने पर वर सूर्य सूक्त (१०।८५) को जानने वाले को वधू के बल्ल का दान करे, ब्राह्मणों को दान दे तथा उनसे स्वस्तिवाचन का पाठ कराये। आश्व० गृ० सू० की अन्तिम विधि का पारस्कर गृह्यसूत्र (१।८।२१) में भी समर्पण किया गया है।<sup>१</sup>

### अन्य विधियाँ

आश्वनायन और पारस्कर की इन विधियों के अतिरिक्त अन्य सूत्र ग्रन्थों में कुछ और विधियाँ भी पायी जाती हैं। इन विधियों में निम्नलिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

**वर प्रेषण**—इस विधि के अनुसार लड़के के माता-पिता अपने लड़के के लिए उपयुक्त वधू ढूँढने के लिए कुछ व्यक्तियों या मित्रों को भेजा करते थे। ऋग्वेद में सोम के लिए अश्विनी देवताओं ने वधू ढूँढने का काम किया था (ऋ० १०।८५।६)।

- \* यहाँ विवाहोत्तर संयम की व्यवस्था का उल्लेख किया गया है। इस विषय में गृह्यसूत्र इसके अतिरिक्त कुछ नहीं कहते कि इससे ऋषि का पुण्य रखने वाली सन्तान होगी। वात्स्या० का० सू० और आजकल के पश्चिमी डाक्टर भी गृह्यसूत्र को इस विधि का समर्थन करते हैं। उनका कहना है कि विवाह में संभोग से पहले पति-पत्नी को पूर्ण रूप से मानसिक अनुकूलता प्राप्त कर लेनी चाहिए। इस अनुकूलता को प्राप्त किये बिना यह कार्य पशुता है, इसका सन्तान पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। वात्स्यायन कामसूत्र ३।२।६ कहता है कि स्त्रियाँ कुसुम की तरह सुकुमार होती हैं, उनमें उपक्रम बहुत सुकुमार होना चाहिए। जबर्जस्ती संभोग से कई बार उन्हें हिन्दुओं घर के लिए यौन सम्बन्ध से घृणा हो जाती है, अतः वात्स्यायन १० दिन तक बहुचर्च्य को भोग न करने की सलाह देता हुआ कहता है कि इस समय वह कन्या के पास जाये, उसे विश्वास दिलाये, किन्तु दत्त भोग न करे। मालतीमाधव (७ म अंक) में बुद्धरक्षित ने इस नियम का भंग करने के लिए नव्वन की भर्त्सना की है। आधुनिक विवाहशास्त्री वैज्ञानिक ज्ञान डिबेट्स ने Ideal marriage नामक ग्रन्थ में मानसिक अनुकूलता पर बल दिया है (अध्याय ८)। आजकल कई जातियों में विवाहोत्तर संयम कई विभिन्न कारणों से किया जाता है। मन्दास के कनका, कनेबा, कुछ कुख्यात जातियाँ तीन महीने तक संभोग नहीं करतीं। उनमें एक साल में एक परिवार में तीन बालियाँ जन्म सम्भो जाती हैं। वे इस दुर्भाग्य को हटाने के लिए, संयम आवश्यक समझते हैं। अगरिया एक महीने तक यह देखने के लिए संयम रखते हैं कि कहीं पत्नी गर्भवती तो नहीं है (से० रि० ई० १६११, खण्ड १, भाग १, पृ० २६१)।

साध्या० गू० सू० (११६११-४), बी० गू० सू० (११११४-१५), आप० गू० सू० (२११६११-२, ३) में इस विधि का वर्णन है। लड़के का पिता वरान्धेयन के लिए व्यक्तियों को घर में भोजता हुआ, ऋ० १०।२५।२३ का पाठ करता था, जिसका अर्थ है—“हे देवी, वे मार्ग निष्कण्टक और सरल हों, जिन मार्गों में हमारे भित्त कन्या के पिता के घर जाते हैं। अर्यमा और भग हमारा अच्छी तरह नेतृत्व करें।”

आजकल हमें भले ही यह गरिपाटी विचित्र प्रतीत हो, किन्तु प्राचीन काल में वर पक्ष पहल करता था। कालिदास ने कुमारसम्भव (६।२८-२९) में इसी तथ्य को दिखाया है। शिव और पार्वती एक-दूसरे के साथ प्रेम करते हैं किन्तु पार्वती कहती है कि मुझे प्राप्त करने के लिए मेरे पिता हिमालय में प्रार्थना करे। शिवजी सप्तभिषों तथा जम्बूधती को अपना दूत बनाकर हिमालय के पास भेजते हैं, उनकी प्रार्थना पर हिमालय शिवजी के साथ अपनी कन्या को व्याह्न के लिए तैयार हो जाते हैं (कुमारसम्भव ६७। सर्ग)। वाण ने ७वीं शती में, इसी परम्परा का उल्लेख किया है। सहस्रगो के दूत प्रभाकरध्वज के पास इस उद्देश्य से आते हैं कि राजा अपनी कन्या राज्यश्री का सहस्रगो से विवाह कर दें।<sup>१०</sup>

बौद्ध साहित्य में वर-प्रेषण के कई मनोरंजक उदाहरण मिलते हैं। श्यावस्फी के नेट मृगार को अपने पुत्र पूर्णवर्धन के पूजा होने पर उसके लिए उपर्युक्त वधू भोजने का आदमी भेजने पड़े। वे व्यक्ति अन्त में साकेत पहुँचें। उस समय साकेत की बहुत-सी कन्याएँ नगर से बाहर उत्सव मनाने गयी हुई थी, इसी समय यहाँ होने लगी। कन्याएँ अपने कीमती वस्त्रों को भीगने में बचाने के लिए दीड़-बर बाहर में आने लगीं। किन्तु एक कन्या सबसे अन्त में बड़ी मन्दगति से चली आ रही थी। नगर के द्वार पर खड़े हुए मृगार के व्यक्तियों ने उससे यह प्रश्न किया—“क्या तुम अभी से बूढ़ी हो गयी हो कि धीरे-धीरे चल रही हो” ? कन्या ने बड़ी चतुराई से उत्तर दिया कि “मुझे साक्षियों के भीगने की चिन्ता नहीं, मेरे घर में बहुत-सी साक्षियाँ हैं, किन्तु यदि यहाँ में फिसलकर मेरा कोई अंग खराब हो गया तो विवाह में दिक्कत होगी।” मृगार के आदमियों ने उसे ही अपने स्वामी के पुत्र के लिए उपर्युक्त वधू समझा (देखिये विशाखाचरित, अमृतार नि० अ० क० १।७।२)। किन्तु इससे भी अधिक मनोरंजक कथा पिप्पली माणवक की है। पिप्पली की जिव भी वह विवाह नहीं करेगा। किन्तु माता-पिता ने उसे विवाह के लिए बहुत परेशान किया। अन्त में उसने इस परेशानी से बचने के लिए सोने की एक सुन्दर स्त्रीमूर्ति बनावायी और यह कहा कि यदि इस मूर्ति जैसी कोई सुन्दरी मिले, तभी मैं व्याह करूँगा। माता-पिता

१०. हर्षचरित—शोभने च दिवसे प्रह्वर्षणः कन्यां प्रार्थयितुं प्रेषितस्य पूर्वागतस्यैव प्रधानदूतपुत्रस्य सर्वराजकुलसमक्षं दुहितृदानजलम् अयाचत।

ने बधू को दुड़ने के लिए अपने जादमी भेजे। अन्त में वे जादमी सुन्दर स्त्रियों की खान मद्रदेस (स्वातकोट) में पहुँचे और सदी के धाट पर मूर्ति रखकर स्नान करने लगे। इतने में वहाँ एक दासी आमी और उसने मूर्ति की बण्ड मारते हुए कहा "तू कितनी बेकार है जो यहाँ खड़ी है।" वास्तव में उसे इस मूर्ति से अपनी मालकिन की लड़की का भ्रम हुआ था। पिप्पली के आदिमियों ने यह देखा और वे समझ गये कि जिसकी तलाश में वे निकले हुए हैं, वह उन्हें मिल गयी। स्वर्णमूर्ति सदा सुन्दरी भद्रा कागिमायमी से अन्न में पिप्पली माणवक की शादी हुई (संयुक्त मिकाय अ० क० १५।११११, अ. नि. अ. क. १।१।४)।

**बाग्यान या वाङ्निश्चय**—आजकल इस विधि का प्रचलित महत्त्व है, किन्तु गृह्यसूत्रों में से केवल श्र० गृ० सू० (१।६।१४-६) इसका वर्णन करता है। बाग-विवाह का प्रचार बड़ने के साथ-साथ बाग्यान का महत्त्व बढ़ता गया। जिस प्रकार आजकल कई जातियों में सन्तान उत्पन्न होने से पहले ही वो व्यक्ति अपनी सन्तानों का बाग्यान करने है उसके एक-दो उदाहरण पूर्व मध्ययुग में भी मिलते हैं। मातृतीमाधव (१ म अंक) में मातृती और माधव के पिता भूरिवनु और देवदात ने बचपन में अपनी सन्तानों के बाग्यान का निश्चय कर लिया था। सं० २० मा० ने बाग्यान की शास्त्रीय विधि का बड़े विस्तार से उल्लेख किया है, किन्तु आजकल भारत के अधिकांश भाग में यह विधि रिवाज के तौर पर होती है।

**विवाह का मुहूर्त**—विवाह एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक कृत्य है और उसे विशेष अवसर पर किया जाना चाहिए। यह विचार बहुत पुराना है, श्र० (१०।८५।१३) में फाल्गुन मास में व्याह का वर्णन है। आश्वलायन गृह्यसूत्र (१।४।१-२) विवाह के काल के विषय में अपनी सम्मति देता हुआ कहता है कि उत्तरायण, शुक्ल पक्ष और कल्याणकारण नक्षत्र में, चैत्र, उपमयन, मृगश्रवण और विवाह संस्कार कराये। इसके बाद यह कुछ लोगों का मत उद्धृत करता है कि विवाह हर समय हो सकता है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय शुभ नक्षत्रों का विचार बहुत अधिक दृढ़ नहीं हुआ था, किन्तु धीरे-धीरे हिन्दू समाज में यह विश्वास जड़ पकड़ने लगा। गोभिल गृह्यसूत्र कहता है कि पुष्य पक्ष में विवाह करना चाहिए।<sup>११</sup> किन्तु दूसरे सूत्रकार इस काल का निश्चित निर्देश करते हैं (बौध्दा० गृ० सू० १।१।१८-२१, जा० गृ० सू० २।१२।१३)। अगस्त्य (३।३) की तो यह सलाह है कि भी यह कहता है कि उसकी लड़की पति की प्रियतमा बने, उसे स्वाति नक्षत्र में विवाह करना चाहिए। वह रोहिणी, मृगशिरा, उत्तराफाल्गुनी भी उत्तम समझता है (मि० मा० गृह्य सूत्र १।३।५)। श्री रामचन्द्र का विवाह भगदेवता वाले उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में हुआ था (वा० रामा० १।७२।१३, १।७१।२४)। महाभारत (१।८।१६) में रुद्र

<sup>११</sup> गो० गृ० सू० २।१।१ 'पुष्यनक्षत्रेण वारान् कुर्वीत।'

का प्रमद्वरा के साथ विवाह अगवैवता के मन्त्र में हुआ, किन्तु द्रौपदी के विवाह के विषय में महाभारत ने इतना ही बताया है कि वह पुण्य दिवस था (१।१६७।२०)।

**अन्य विधियाँ—**गृह्यसूत्रों में विवाह के लिए मन्त्र बताना (पारस्कर गृह्यसूत्र १।४), नान्दीश्राद्ध और पुण्याहवाचन (बीधायन गृह्य सूत्र १।१।२४), बधू को गहलाने, कपड़े पहनाने (आप० सू० ४।८ काटका सू० २४।४, पारस्कर गृह० १।४), मंगलमूल बौधने (प्रतिरत्नबंधन, मांखा० १।१२।६-८, को० सू० ७६।८) की विधियाँ पायी जाती हैं। इन विधियों का उस समय विशेष महत्त्व नहीं था, किन्तु मध्यकाल के निबन्धकारों ने इनमें से अनेक विधियों को बहुत महत्त्व दिया है।

गृह्यसूत्रों में वर्णित उपर्युक्त विधियाँ लगभग इसी रूप में आज तक चली आती हैं, प्रत्येक धार्मिक विवाह में होम और सप्तपदी आवश्यक होती है। वैवाहिक कर्त्तव्यों और आदर्शों की जितनी सुन्दर अभिव्यक्ति हिन्दु विवाह में हुई है, उतनी सामय ही किसी दूसरे समाज के विवाह में हुई हो। प्रत्येक विधि एक निश्चित उद्देश्य से की जाती है और उस विधि के साथ जुड़े जाने वाले मंत्र से उस विधि के उद्देश्य एवं प्रयोजन का ज्ञान हो जाता है। विवाह की विधियों में कुछ तो बर बधू की अभिसरा के सूचक हैं और कुछ विवाह के उद्देश्य एवं महत्त्व को बताती हैं। पहनी का उवाहरण हृदयस्पर्श और दूसरी का पाणिग्रहण, सप्तपदी और धूम्रवर्षण है।

### रामायण व महाभारत की वैवाहिक विधियाँ

रामायण व महाभारत में विवाह-विधि के सम्बन्ध में जितनी नई बात का उल्लेख नहीं है। श्री रामचन्द्र के विवाह में मुख्य विधियाँ कन्यादान, पाणिग्रहण, मूर्धोन्निषेक तथा अग्निपरिणयन थीं। महाभारत में द्रौपदी के विवाह में उपर्युक्त विधियों का पालन करते हुए द्रुपद ने बहुत-सा दर्शन दिया है। महाभारत में विवाह की विधि का सबसे मधुरतम स्थल कुन्ती का अपनी बहू को दिया गया यह आशीर्वाद है—“हे कल्याणि, जिस प्रकार इन्द्राणी महेन्द्र की, स्वाहा विभावसु की, दशपत्नी तल की, मद्रा कुबेर की, अरुण्यती बसिष्ठ की, तक्षमी नारायण की पत्नी है, वैसे ही तू अपने पति की पत्नी बनो। भदे, तू दीर्घ जीवन वाले पुत्र उत्पन्न कर। बहुत सुख और सीमाव्य से मुक्त हो, पतिव्रता बन, अतिथि, ब्राह्म, बृद्ध, गुरुओं की सेवा करते हुए तेरा समय बीते। हे गुणवति, पृथ्वी पर जो अच्छे रत्न हैं, तू उनको प्राप्त कर। हे कल्याणि, तू १०० वर्ष तक जीती रह।” (१।२०।१।४-१।१), वर्तमान समय में विवाह की समाप्ति पर बोले जाने वाले सांगलिक श्लोकों में कुन्ती के उपर्युक्त आशीर्वादवाचक शब्दों का स्पष्ट प्रभाव है।

**वैवाहिक आशीर्वाद, उप श—**कुन्ती से आशीर्वाद और वैवाहिक आशीर्वाद में बड़ा अन्तर है। वैदिक आदर्श में पत्नी को पशुरास्य में रानी बनने का आदेश दिया था, कुन्ती ने पत्नी के लिए पति के अनुकूल रहते हुए जीवन बिताने का उपदेश दिया है।

किन्तु कालिदास के समय तक यह आदर्श बिलकुल बदल गया था। वैदिक युग की स्वाधीनता और तेजस्विता कालिदास के समय तक पतिव्रता पत्नी के पूर्ण आत्ममर्त्य के रूप में परिचित हो गयी थी। कालिदास ने शकुन्तला के लपेवन से विदा होने पर कण्व के मुह से उसे यह आशीर्वाद कहलवाया था—‘गृह्यो की सेवा करो। सौती को गलेली समझो, पति द्वारा अपमानित होने पर भी काँध में उसके प्रतिकूल आचरण मत करो, सेवाको पर अधिक उदार हो। अपने मान्य पर बहुत अभिमान करने वाली न हो। इन प्रकार सुवर्तिनी गृहिणी पद की प्रतिष्ठा को प्राप्त करनी है। इसके प्रतिकूल आचरण करने वाली स्त्रियाँ कुल को धोड़ा देने वाली व्याधियों की तरह होती हैं’।<sup>१२</sup> बौद्ध साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्यावाचस्पति (अ० नि० अ० का० १।७।२) ने बधू को दी जाने वाली शिक्षा पर बड़ा मनोरंजक प्रकाश गड़ता है। विद्यावाचस्पति के पिता धनञ्जय नेठ ने अपनी कथा को यह उपदेश दिया था—“श्वशुरालय में निवास करने हुए (१) भीतर की आस बाहर नहीं ले जानी चाहिए, (२) बाहर की आस भीतर नहीं लानी चाहिए, (३) देने हुए की देना चाहिए, (४) न देते हुए की देना चाहिए, (५) देते हुए तथा न देते हुए की देना चाहिए, (६) सुख से बैठना चाहिए, (७) सुख से खाना चाहिए, (८) सुख से बैठना चाहिए, (९) अग्नि परिचर्य करना चाहिए, (१०) भीतर के देवताओं की नमस्कार करना चाहिए।” पहले दो उपदेशों का अर्थ था कि घर के भीतर सास आदि में जो गुण बात, झगडा आदि पैदा होता है वह बास-बासियों में नहीं कहनी चाहिए। अपने घर में बाहर की बातें और झगडे घर में नहीं खाने चाहिए। तीसरे-चौथे उपदेश का अर्थ यह था कि जो मगनी की बीजे से जाकर लौटाते हैं या नहीं लौटाते, उन सबको समान रूप से दान करना चाहिए। छठे से दसवें तक के उपदेश बधू के गृह कार्यों को बताते हैं। सुख से खाना चाहिए का अर्थ है कि सास, समुर, स्वामी को भोजन परोसकर उन्हें खिलापिनाकर स्वयं सबसे पीछे भोजन करना चाहिए।

### कालिदास द्वारा वर्णित विवाह विधि

संस्कृत काव्यों से और विशेषकर कालिदास<sup>१३</sup> के कव्यों से निम्न प्रकार के विवाह

<sup>१२</sup> अग्नि० शा० ४।१८ शुभ्रस्त्र गुरुशुभ्र प्रियसखीर्वांस सपत्नीजने, पत्युविप्र-  
कृतापि रोषगतया मा हम् प्रतीपं गमः। भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्ये-  
त्वेनूत्सेकिनी, पाल्येयं गृहिणोपयं युवतयो वामाः कुलस्थाधयः ॥

<sup>१३</sup> कालिदास (रघुवंश ७।३३) ने विवाह के समय बर-बधू के एक दूसरे को अन्य व्यक्तियों से दृष्टि बचाकर जोरो से देखने का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—  
तपोरपांगप्रतिस्तरितानि क्रियासमापत्तिविधितानि।

स्त्रीपुंस्त्रयामानशिरः प्रनीतामन्योन्यलोलानि विलोचनानि ॥ (रघुवंश ७।३३)

की विधि शात होती है। घर के दूत कन्या के पिता के पास जाते थे, यदि कन्या का पिता विवाह के लिए तैयार हो जाता था तो विवाह के लिए एक शुभ दिवस नियत किया जाता था। बधू के घर की तथा घर के मां के दोसती वस्त्रों से लगी हुई पल्लवाकों ('चीनांशुकोः कल्पितकेतुमासम्' कु० सं० ६।३) तथा तीरणों से खूब सजाया जाता था। पति और पुत्र वाली मित्रयाँ बधू का दूर्वा के साथ तथा दोसती वस्त्र से शृंगार करती थीं। बधू को स्नान कराया जाता था और बेदी में पूर्वोन्मुख बिठा दिया जाता था। यहाँ उसके केलों की दूर्वा से युक्त भफेद मधुक पुणों से बांधा जाता था, उसके अंग को मारीचका में चिखित किया जाता था, पैरों को महावर से रंगा जाता था, नेत्रों में अंजन लगाया जाता था और अंगों में आभूषण धारण कराये जाते थे। माता हरलाज और सतः शिला द्वारा आई हाथों से कन्या का तिलक कराती (७।२४) और उसके हाथ में मंगल हस्तमूत्र बाँधती थी (७।२५)। बधू कुल देवताओं का प्रणाम कर पतिव्रता स्त्रियों की चरणचन्दना कर, उनसे आशीर्वाद प्राप्त करती थी। दूल्हे को भी इसी तरह सजाया जाता था। शरीर में आभूषण पहनाने जाते थे और भस्मक पर हरिलाज तिलक लगाया जाता था (७।३२-३३)। दुसूल पहनकर दूल्हा बरातियों के साथ बधू के घर पर आता था। बरात के साथ मार्गजिक बाजे बजते रहते थे (७।४०)। चतुर्थे हुए घर के ऊपर आतपल और चामर लगाया जाता था (वाण० ह० व०, २० व० ७।१७)। बधू का पिता उसको अगवानी करता था। गृह की स्त्रियाँ दूल्हे को देखते हुए उस पर अशत आदि की बर्षा करती थीं। घर को महाभय आसन पर बिठाकर रत्नयुक्त मधुपर्क और कपड़े (दुकूल धूम) दिये जाते थे। अग्नि का होम करके पुरोहित घर-बधू की पाणिग्रहण विधि कराता था (२० व० ७।२०-२१) पाणिग्रहण के बाद अग्नि की प्रदक्षिणा समीपलवमिश्रित लाजाहोम (२० व० ७।२५-२६) के बाद होती थी और पुरोहित कहता था (कु० ७।०३) "हेवत्स, अग्नि तुम्हारे विवाह कर्म में साक्षी है। तुम्हें पति के साथ धर्मपूर्वक आचरण करना चाहिए।" उसके बाद पति-पत्नी को धूब दर्शन कराया था और पत्नी धूब की देखने के बाद कहती थी—“मैंने धूब दर्शन कर लिया है”। पति-पत्नी के आसन पर बैठ जाने पर स्नातक उन पर आश्रितारोपण (आवल का तिलक) करते थे। (कु० सं० ७।५८, २० ७।२८)। विवाह-विधि समाप्त होने पर घर-बधू को नाटक आदि दिखाकर उनका मनोरंजन किया जाता था (कु० सं० ७।६१) और बाद में पति-पत्नी सजे हुए कालकक्ष में प्रविष्ट होते थे। वाण ने राज्यश्री के विवाह का हर्षचरित के अनुसार उच्छ्वास में बड़े विस्तार से वर्णन किया है, किन्तु उसके तथा कालिदास के वर्णन में कोई अन्तर नहीं है।

### मध्यकालिक विधियाँ

मध्यकाल के निम्नलिखित लोगों ने लौकिक आचारों को रखा करते हुए कई नई विधियों का विवाह में विधान किया। इनमें कुछ विधियाँ नीचे दी जाती हैं। ये विधियाँ



वीरमित्रोदय, धर्मसिन्धु, संस्काररत्नमाला आदि ग्रन्थों में पायी जाती है। इनमें से अधिकांश महाराष्ट्र में विशेष रूप से प्रचलित है।

**आद्रक्षितारोपण**—अक्षत बिना टूटे हुए चावल की कहते हैं। इस विधि में चावल को घी या दूध में आई करके बर बधू के ऊपर फेंका जाता है अथवा उनका तिलक लगाया जाता है, अतः इसे आद्रक्षितारोपण कहते हैं। रघुर्वंश तथा कुमार संभव में कालिदास इसे विवाह की अंतिम विधि कहता है। किन्तु आजकल महाराष्ट्र में यह विधि विवाह होने से पहले की जाती है। एक वंजश (बांदी आदि के) पात्र में सफेद चावल लेकर उन पर थोड़ा दूध या घी डाला जाता है। बर, बधू की अञ्जलि में घी या दूध लगाकर उस अञ्जलि में अक्षत चावल भर कर घी या दूध छिड़क देता है। बर की अञ्जलि को कोई भी आग्नि इस प्रकार भर देता है, फिर कन्या का पिता उसमें सोता रखकर कन्या की अंजलि की बर की अञ्जलि पर रखता हुआ 'कन्या तारयतु वक्षिणाः पान्तु बभ्रुर्देवं वाम्तु पुण्यं वर्धनाम् शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु' का पाठ करता हुआ बधू की अंजलि को उठाकर उससे 'भगो मे कामः समुध्यताम्' का पाठ करता हुआ चावल या अक्षत बर के गिर पत्र चम्बाना करता है। 'कामः समुध्यताम्' का मंत्र पढ़ता हुआ अपनी अंजलि के अक्षत बधू के गिर पत्र डालता है। इस प्रकार बर-बधू तीन-तीन बार कमला, पद्म, धर्म, यज्ञ और भग, श्री तथा प्रजा की समुद्रि की प्रार्थना करते हुए अक्षतारोपण करते हैं, अन्त में बर अपने सिर का एक पुष्प लेकर उसे दूध या घी में जाप्तावित करके बधू के भस्मक में तिलक लगाता है। बधू भी इसी प्रकार बर का तिलक करके उसके गले में एक गुणामाला डालती है। फिर बर कन्या के गले में मात्सा डालता है। बर बधू को एक मंगलसूत्र बांधता है और ब्राह्मण पुरोहित द्वारा पूजी गयी सुपारियों को दोनों के कपड़ों के एक छोर में बांधता है। विवाह की विधि की समाप्ति तक यह गठ नहीं खीली जाती।

**ऐरणी दान**—ऐरणी दास की बनी टोकरी को कहते हैं। जब कन्या विवाह के चौथे दिन पिता के घर से अपनी सुसज्जित जाने लगती है, उस समय कन्या का पिता ऐरणी को बहुमुख बख्त तथा अन्य भेंटों से भर कर बर की माता को इस टोकरी या ऐरणी का दान करता है। पहले यह कन्यादान की सिद्धि के लिए इस वंशपात्र के दान का संकल्प करता है। इसमें उसका उद्देश्य यह है कि पति-पत्नी की प्रीति उमा-महेस्वर जैसी हो। इसे देते हुए अन्त में यह कहता है—'इतने वर्ष तक इस कन्या को मैंने पुत्रवत् पाला है, अब आपके पुत्र के लिए देता हूँ। जब आप इसे स्नेहपूर्वक पालें।'

**मंगलसूत्रबन्धन**—बधू के गले में मंगलिक स्वर्णहार डालने का प्राचीन सूत्र ग्रन्थों में कही वर्णन नहीं है। पारस्कर (१।१) का टीकाकार गदाधर स्पष्ट रूप से कहता है कि सूत्रों में इस विधि के न पाये जाने पर भी बधू-बर मंगलसूत्र और गले में माता धारण करें। शौनक, लघ्याश्वलायन (१।१।३३) यह कहते हैं कि मंगलसूत्र धारण करना चाहिए। पुराना रिवाज चाहे कुछ रहा हो, लेकिन आजकल हार और मंगल

सूत्र विवाह का एक आवश्यक अंग बन गया है।

**प्रारम्भिक पूजाएँ**—संयुक्त प्रान्त में विवाह के पहले गणपति तथा अन्य देवताओं की पूजा की जाती है। संस्कारकौस्तुभ (पृ० ७६६), संस्काररत्नमाला (पृ० १३४) तथा धर्मसिन्धु (पृ० ६१) गौरी तथा हर की पूजा का विधान करते हैं। इसी तरह सं० कौ० (पृ० ७५६) में तथा सं० २० भा० (पृ० १४१) में इन्द्राणी की पूजा का विधान है। सं० कौ० (पृ० ७६८) में कहा गया है कि कन्या का पिता ग्राम की सीमा पर वाकर बनाने की शतावधि करे (शिवान्त पूजन)। ये सब विधियाँ मध्यकाल में प्रचलित हुई हैं, जो संस्कार विधान अर्थों में कोई उल्लेख नहीं हैं।

**५५ विवाह**—वाल्मीकिस्मृतिकार ने विवाह की व्यवस्था की जाती थी। श्रीनिवासस्वामी (पृ० ८३८) ने मातृवैद्य का एक वचन उद्धृत करते हुए कहा है कि यदि जन्म-मर्त्यों में वात संशय का कारण हो तो पुत्र के पुनर्जन्म के लिये प्रतीमादि से एकान्त में विवाह करके बाद में वह वैवाहिक स्वरूप का विवाह करना चाहिए। १४ इस विवाह में बड़े में विष्णु की स्वर्णमूर्ति डाल दी जाती है और कन्या की मंगलशुद्धि से आर्घ्यादि किया जाता है, एकान्त मन्दिर में विधिपूर्वक विवाह करके बड़े को एक तालाब में जाकर धोए देते हैं। उस समय कुम्भ से पिता यह प्रार्थना करता है—“हे पुत्र, तू कन्या के प्रति और पुत्रों को घर तक जीवित रख।” विवाह की समाप्ति पर ब्राह्मणों को दान दिया जाता है। इस विवाह का निर्णयसिन्धु (पृ० ३१०), संस्कारकौस्तुभ (पृ० ७४६) संस्काररत्नमाला (पृ० १२८) में भी वर्णन किया है।

**अश्वत्थ व प्रतीमा विवाह**—वीरभित्तादय (पृ० ८६८) ने वात वैधव्य के परिवार के लिए इन विवाहों का वर्णन किया है। इनकी विधि कुम्भविवाह से मिलती है। पिता रम्य भूमि में मण्डप सजाये, गौरी, गणपति, बनानी की पूजा करके वह कहे कि मैं सौभाग्य और सुख के लिए इस सुन्दर कन्या की अश्वत्थ के साथ विधिपूर्वक शादी करूँगा।

इसके बाद वह कुम्भ विवाह की तरह अपनी कन्या का अश्वत्थ (पीपल) से विवाह करे। इसी प्रकार सोने की विष्णुमूर्ति बनाकर, अपनी कन्या का उसके साथ विवाह करे। विष्णु की यह मूर्ति शुद्ध स्वर्ण की अथवा अपनी शक्ति के अनुसार शिपर, गण्ड, चक्र, गदा से युक्त और पीताम्बर धारण किये हुए होनी चाहिए। उसको देते समय कन्या एक मन्त्र पढ़ती है जिसका यह अन्तिमार्थ है कि “महाघोर वैधव्य के दुःख समूह का नाश करने के लिए और बहुत सौभाग्य की प्राप्ति के लिए मैं महाविष्णु की अपनी शक्ति से बनायी हुई इस मूर्ति को तुझे देती हुई आज मैं इस दान से निष्पाप हो गयी हूँ”। ब्राह्मण इस पर उसे ‘एवमस्तु’ का उपदेश कहे और बाद में पिता उसका विवाह करे।

•४ को० मि०, पृ० ८६८।

वातवैधव्ययोगोऽपि कुम्भद्वयप्रतिमाविधिः ।

**अर्क विवाह**—जास्त्रों में तीसरी स्त्री से विवाह करना निषिद्ध है, क्योंकि इसे अशुभ माना जाता था। वीरमिस्रोदय (पृ० ८७६) ने मत्स्यपुराण व कथम का यह वचन उद्धृत किया था कि "रतिसिद्धि के लिए कभी भी तीसरी स्त्री से शादी न करे। सोह में या अज्ञान से यदि कोई ऐसी शादी करता है तो शार्ङ्ग के वचन के अनुसार वह मृष्ट हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि श्रुतीय पत्नी से यदि वह शादी करता है तो वह स्त्री विधवा हो जाती है, अतः चौथा विवाह करने के लिए तीसरी बार अर्क (आक के पेड़) में शादी करनी चाहिए"।<sup>१४</sup>

ब्रह्मपुराण तथा व्यास ने अर्कविवाह की यह विधि दी है—नहाकर, उत्तम वस्त्र और अलंकार धारण कर उत्तम पुष्प और शाखा वाले अर्क के पेड़ के पास आये। वहाँ नाचो श्राद्ध, मधुपर्क आदि विवाह की विधियों को पूरा करे और यह प्रार्थना करे कि "हे त्रिलोकेश्वरी, सात घोड़ों वाले, छाया सहित सूर्य, तीसरे विवाह से उत्पन्न होने वाले दुःख का निवारण करो और सुख दो (वीरमिस्रोदय पृ० ८७७)। यह विवाह ब्राह्मण द्वारा अर्क या सूर्य की पुत्री के साथ किया गया समझा जाता है, उसके बाद चौथा विवाह करने में कोई दोष नहीं माना जाता। निर्णयसिन्धु (पृ० ३२८), सं० को० (पृ० ८१६) तथा बौधायनसंस्करण २।५ में भी इसका वर्णन है।

इस समय पंजाब में ऐसे विवाहों का प्रचलन है। एक विधुर जब तीसरी या पंजाब के पहाड़ों में बौथी स्त्री से शादी करना चाहता है, तो वे स्थियाँ उसके लिए अशुभ मानी जाती हैं। अतः वह पहले (अर्क) आक से या किसी दूसरे पेड़ से शादी कर लेता है ताकि तीसरी या चौथी शादी से उत्पन्न होने वाले दुर्भाग्य या दोष से बच सके।

पश्चिमी पंजाब में ऐसी दशा में पुरुष की सेव से, मध्य पंजाब में बैर या पीपल, से और पूर्वी पंजाब में आक के साथ तीसरी शादी की जाती है। यह प्रथा अनिमो, अरोहों और खजियों में विशेष रूप से प्रचलित है। तीन की संख्या को बुरा समझा जाता है और यह विचार किया जाता है कि यह विध्वंस या नाश का चिह्न है। वैसे पहली पत्नी के मरने पर यह सोचा जाता है कि दूसरे विवाह से उसकी आत्मा को बलेश पहुँचेगा, वह भूत मा भ्रत बनकर इस विवाह को खराब करने का यत्न करेगी। पहली पत्नी के भूत को खुस करने तथा धोखा देने के लिये दो उपान किये जाते हैं:—(१) दूसरी पत्नी के मने में विवाह के समय मृत पत्नी का, सोने या चांदी के पत्रे में उत्कीर्ण चित्र बाँधा जाता है, ताकि यह समझा जाय कि वह विवाह पहली पत्नी से हो रहा है। (२) दूसरी पत्नी को गुजर, मालिन या महरा का वेश पहनाया जाता है और यह कहा जाता है कि यह शादी वास्तविक पत्नी से नहीं अपितु गुजर, मालिन आदि किसी दासी से हो रही है। इसी

<sup>१४</sup> को० मि० (पृ० ८७६) तृतीयां यदि भोडहेसहि सा विधवा भवेत् ।

अनुषाविधिवाह्य तृतीयेर्कं समुद्देत् ॥

सावधानी रखने के बाद भी यदि दूसरी पत्नी मर जाती है तो यह समझा जाता है कि पहली पत्नी की प्रेतात्मा ही उसकी मृत्यु का कारण है। इस प्रेतात्मा के प्रकोप से बचने के लिए तीसरी बार तीसरी स्त्री से शादी करने के उद्देश्य किसी पेड़ या पशु के साथ शादी की जाती है। आफ या बंद के पेड़ का कपड़ों और चतुर्मुख रत्न आदि से खूब सजाया जाता है और चर उसकी प्रदक्षिणा (लातां या फेरे) करके उसके साथ विवाह किया है और बाद में चौथी बार किसी मानवीय पत्नी का पाणिग्रहण करता है। पश्चिमी पंजाब में भेड़ को खूब सजाया जाता है और घर विवाह में पहले भेड़ के साथ फेरे लगाता है तब विवाह की अन्य विधियाँ दोहराता है, तीसरी शादी में ही ये विधियाँ आवश्यक समझी जाती हैं, चौथी में नहीं।

इसका कारण यह माना जाता है कि पहली पत्नी की प्रेतात्मा का दुष्प्रभाव अगली दो पत्नियों तक ही प्रभाव डाल सकता है, उसके बाद नहीं। कई बार काले कुत्ते या किसी दूसरे काले जानवर को भीये विवाह में पहली प्रेतात्मा का दुष्प्रभाव रोकने के लिए बेदी पर लाया जाता है और उससे अग्नि को परीक्षा करायी जाती है <sup>१६</sup>।

पंजाब में उपर्युक्त विवाहों से मिलती-जुलती एक प्रथा यह है कि यदि यह शात हो कि किसी स्त्री को विधवा हो जाता है, तो उस दोष को दूर करने के लिए कुम्भी-विवाह किया जाता है। पानी से भरे एक घड़े का लड़के की तरफ सजाया जाता है और लड़की का इस नकली दूल्हे के साथ विवाह पूरा संस्कार किया जाता है। राप में असली दूल्हे को वगैर पूरा विवाह विधि किये लड़की दे दी जाती है। इस सम्बन्ध के विषय में यह सँचा जाता है कि कन्या का असली विवाह तो घड़े से हुआ है और यदि पति पर कोई दुर्भाग्य या आफत पड़ती है तो वह घड़े पर पड़ेगी, असली पति पर नहीं। करनाल जिले के निवासियों में यह रिवाज पाया जाता है (पं० सी० रि० १९११ खं० १ भाग १ पृ० २८४)। इस प्रकार के विवाह को कृत्रिम विवाह (Mock Marriage) कहा जाता है। यह विवाह अन्य प्रांतों में नहीं पाया जाता है। <sup>१७</sup>

<sup>१६</sup> पंजाब व सेन्सस रिपोर्ट १९११, ख० १, भाग १, पृ० २८४।

<sup>१७</sup> हिन्दू समाज में कृत्रिम विवाहों (Mock Marriages) के कई अन्य विविध उदाहरण- निम्नलिखित हैं—उत्तरी कनारा में बहुपत्नीप्रथा बिल्कुल नहीं है, वहाँ दूसरी शादी बुरी समझी जाती है। अतः जब कोई ज्योतिषी किसी व्यक्ति के बारे में यह सन्निध्यवाणी करता है कि इस व्यक्ति की दो स्त्रियाँ होंगी, तो इसका अर्थ यह समझा जाता है कि पहली पत्नी मर जायगी। यदि उसकी पत्नी बीमार पड़ती है तो वह एक केले के पेड़ के साथ शादी करता है और बाद में उस पेड़ को काट डालता है। वह यह मानता है कि दूसरे विवाह की पत्नी के मर जाने से उसकी वास्तविक पत्नी जीवित रहेगी (सी० रि० ई० १९११, पृ० ३६०-६१)।

## वाग्दान का विचार

वाग्दान विवाह को आवश्यक तथा अविच्छेद्य सम्बन्ध बना देता है या नहीं, इस प्रश्न पर शास्त्रकारों में मतभेद है; किन्तु अधिकांश धर्मशास्त्रियों का झुकाव इस ओर है कि वाग्दान होने के बाद विवाह सम्बन्ध उचित है, किन्तु आवश्यक नहीं। मनु-स्मृति (६।१६-७०) ने यह व्यवस्था दी है कि जिस कन्या का वाग्दान बिना जाने पर, उसका पति मर जाय तो वह कन्या देवर के साथ शादी करे। मनु (६।७१) यह भी कहता है कि किसी व्यक्ति के साथ वाग्दान करके बुद्धिमान् व्यक्ति वह कन्या को किसी दूसरे को न दे, दूसरे व्यक्ति को कन्या देता हुआ वह अनृत वीथ को प्राप्त करता है। मनु ने यद्यपि वाग्दान को अविच्छेद्य सम्बन्ध उत्पन्न करने वाला नहीं माना, फिर भी उसने वाग्दान करके दूसरे व्यक्ति के साथ अपनी कन्या का विवाह करने वाले को बहुत निन्दा की है। व्यास स्मृति (२।८) ने यह विधान किया है कि "मे गृहे कन्या दुःखा, मे मेरी कन्या दुःखा। ऐसा निश्चय हो जाने पर जो इसका पालन नहीं करता, वह दण्ड का भागी होता है।" रघुनन्दन ने 'शुद्धितत्व' में वाग्दत्ता कन्या के मरने पर उसके पिता और पति दोनों के घर में तीन दिन का अशौच माना है (खण्ड २, पृ० १४७)। बम्बई की सदन दीवानी अदालत ने भी इस विषय में यह फैसला दिया था कि वाग्दान एक अविच्छेद्य सम्बन्ध है।<sup>१८</sup>

किन्तु यह सिद्धान्त ठीक नहीं जान पड़ता। यद्यपि अकारण दूसरी जगह विवाह करना बुरा है, तथापि माता-पिता कन्या का वाग्दान करने से बिल्कुल इस प्रकार नहीं बंध जाते कि वे अपनी कन्या का विवाह किसी दूसरी जगह न कर सकें और वाग्दान किये हुए पति के मरने पर उनकी सड़की हमेशा विधवा ही रहे। वासिष्ठ धर्मसूत्र ने कहा है कि जब एक कन्या का वाग्दान जल के साथ मायाजी द्वारा पुष्ट हो चुका हो और उसका पति मर जाय और विवाह के मन्त्र न पढ़े गये हों तो वह कुमारी पिता की ही रहती है, पिता उसकी दूसरे व्यक्ति से शादी कर सकता है।<sup>१९</sup> मनु (८।२३७) सप्तपदी से विवाह की पूर्णता समझता है। नारद (१२।२-३) का भी यही मत है, अतः यह स्पष्ट है कि विवाह को अविच्छेद्य बनाने के लिए वाग्दान पर्याप्त नहीं है। माझराज्य (१।१५) तो यहाँ तक कहता है कि कन्या यदि एक बार किसी को दी जा चुकी है और उसके बाद उससे योग्य वर मिल जाता है तो पहने वर को दो हुई कन्या को वापिस ले ले। यह व्यवस्था मनु (९।१६-७१) के सर्वथा प्रतिकूल है; किन्तु यह स्पष्ट है कि वाग्दान को प्राचीन धर्मशास्त्रों ने विवाह का अविच्छेद्य सम्बन्ध उत्पन्न करने वाला नहीं माना।

<sup>१८</sup> बंध—हिन्दू सौ, पृ० ५६।

<sup>१९</sup> स्मृति चन्द्रिका में उद्धृत पृ० २१६। अर्जुनवाच प्रवृत्ता या त्रियेतोर्व्वं नरो यदि।  
न च मन्त्रोपनीता स्पष्ट कुमारी पितुरेव सा ॥

कई बार यह प्रश्न उठाया जाता है कि वाग्दान भग करने वाले की क्या अदालत द्वारा अपनी कन्या का विवाह करने के लिए बाध्य किया जा सकता है। इस विषय में पहले अदालतों के निर्णय स्पष्ट नहीं थे, किन्तु अब यह स्पष्ट हो चुका है कि वाग्दान भग करने वाले को अदालत विवाह करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती। १८७७ के स्पेसिफिक रिलीफ एक्ट (Specific Relief Act) के भाग २१ की धारा ८ के अनुसार वाग्दान का समझौता या सविद्ध (Contract) अदालत द्वारा अव्यवस्थी लागू नहीं कराया जा सकता। यदि कोई पक्ष यह समझता है कि विवाह न होने से उसे कोई नुकसान उठाना पड़ा है, तो वह दूसरे पक्ष पर हर्जाना का दावा कर सकता है।<sup>१२</sup> इस प्रकार के हर्जाने के दावे छोटी अदालतों में पेश नहीं हो सकते।

### वाग्दान का लौकिक रूप

वाग्दान की प्रथा का शास्त्रीय व कानूनी रूप देखने के बाद उसका रिवाजी रूप देखना उचित प्रतीत होता है। पंजाब में वाग्दान को सगाई या कुदमाई कहते हैं। पश्चिमी पंजाब में लड़के के सम्बन्धी कन्या के घर पर अपने लड़के के विवाह के लिए भार्यगा बनने जाते हैं, कन्या का पिता उनका मिठाई फल आदि से स्वागत करता है, विशेष पूजन तथा गाना-बाज के पाठ के बाद लड़के के सम्बन्धी उपहारों के साथ खौट आते हैं। मध्य पंजाब में पहले लड़के के घर से लड़की के घर पर सगुन (मिठाई वस्त्र आदि का उपहार) भेजा जाता है और बाद में लड़की के घर से भी इसके बदले में सगुन आता है और इसे ले जाने वाला पुरोहित लड़के के माथे पर तिलक लगाता है, और इस सम्बन्ध की घोषणा करता है। उत्तर प्रदेश, बिहार में वाग्दान तिलक की प्रथा के रूप में प्रचलित है।

एक बार वाग्दान हो जाने पर उसे विशेष कारणों के न होने पर भग नहीं किया जा सकता। ये विशेष कारण लड़के का कोई असाध्य रोग या जग विकार होता है। कई बार सगाई का दूसरा रिश्ता करने के पहले कुछ ऐसी कियार्थ की जाती है जिनसे पहले रिश्ते का रद्द समझा जाय। श्री राज ने ऐसी कुछ विधियों का १९०१ की पंजाब जनगणना रिपोर्ट (पृ० २१७) में मर्नाएजक वर्णन लिखा है—“वाग्दान भग करने पर जबरदस्ती आदी नहीं करायी जा सकती। पश्चिमी पंजाब के किराबों (अरोंबों) में यह नियम है कि वे विवाह दो शर्तों पर करते हैं— (१) विनिमय से— अपने कुल की लड़की दूसरे कुल में इस शर्त पर व्याहते हैं कि वह कुल भी अपनी किसी लड़की को हमारे कुल में देगा। इसको बट्टा-सट्टा (विनिमय) कहते हैं। वहाँ सट्टा के तीन भेद हैं—(क) जामी साम—इसमें एक पक्ष अपनी लड़की की दूसरे पक्ष की एक

लड़की लेकर ब्याहता है, (ख) धैर्मज—इसमें परस्पर तीन वाग्दान एक साथ इकट्ठे किये जाते हैं। तीन लड़कियों के वादान-प्रदान का निश्चय होता है, (ग) धौर्मज—इसमें एक दूसरे के साथ चार वाग्दान एक साथ इकट्ठे किये जाते हैं। इन वाग्दानों को करने के लिए सब सम्बन्धी एक नियत स्थान पर इकट्ठे होते हैं। एक-दूसरे को लड़कियाँ देने का वायदा करते हैं। इसके बाद लड़की का पिता लड़के के पिता की पुढ़ तथा दूसरी भिताई देता है, जो घर में जाकर बैठ दी जाती है।

(२) वाग्दान का दूसरा प्रकार रुपये लेकर वाग्दान करना है। जब बट्टा-सट्टा नहीं होता और न रुपये लिये जाते हैं तो उस वाग्दान को 'धर्मनाता' कहते हैं। रुपये वाली सगाई खू करने पर स्वयं जापिस देने पड़ते हैं।<sup>२१</sup>

### विवाह की आवश्यक विधियाँ

- विवाह संस्कार के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि वैध विवाह के लिए कौन-सी विधियाँ आवश्यक हैं। हम यह देख चुके हैं कि गृह्यसूत्रों तथा निबन्धकारों की विधियों में बहुत से भेद हैं। आवश्यकताम गृह्यसूत्र तो स्पष्ट रूप से यह कहता है कि वह केवल सामान्य विधियों का उल्लेख करेगा, ऐसी वशा में किन विधियों को प्रामाणिक समझा जाय ?

मनु ४।१५२ कहता है कि विवाहों में यज्ञ और होम तो केवल मंगल के लिए हैं वास्तव में कन्या के दान से ही पति का उस पर अधिकार हो जाता है। ३।३४ में भी उसमें यही बात डुहरायी है। किन्तु कुल्लूक की यह व्याख्या ठीक जग पड़ती है कि मनु की वास्तव में यहाँ केवल कन्या के स्वामित्व की बातना ही अभीष्ट है। कन्यादान से उसके पिता का स्वामित्व हट जाता है और पति का स्वामित्व स्थापित होता है। इससे वह नहीं समझना चाहिए कि वह उसकी स्त्री हो गयी। स्त्री, पति की पत्नी तो सप्तपदी पूरी होने पर ही बनती है।

मनु ने अन्यत्र विवाहों की आवश्यक विधियों पर अपनी सम्मति स्पष्ट रूप से प्रकट की है और अधिकांश स्मृतिकार उससे सहमत हैं कि सप्तपदी होने पर विवाह को पूर्ण समझना चाहिए। "विद्वानो को यह जानना चाहिए कि पाणिग्रहण के मन्त्रों के साथ कन्या का पाणिग्रहण हो जाना भार्यात्व का कारण है, सप्तपदी विधि पूरी होने पर भार्यात्व की पूर्णता हो जाती है"<sup>२२</sup>

नारद विवाह के लिए पाणिग्रहण के मन्त्रों की आवश्यक समझता है (१२।३)

२१ पं० सं० रि० १६११, खण्ड १, भाग १।

२२ मनु० ८।२२७, पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारसंक्षणम् ॥

तेषां निष्ठा तु विज्ञेया चित्तुः सप्तमे पदे ॥

किन्तु किसी विशेष विधि का निर्देश नहीं करता। तपु आश्वलायन स्मृति (१५।६०) कहती है कि विवाह के समय जब तक सप्तपदी नहीं होती तब तक विवाह पूरा हुआ नहीं समझा जाता। यमस्मृति में कहा गया है कि अन्न द्वारा, दान से या सामदान से कोई कन्या का पति नहीं होता, बल्कि पाणिग्रहण संस्कार से सप्तपदी के बाद ही वह उसका पति होता है।<sup>२३</sup> स्मृतिचन्द्रिका तो वहीं तक कहती है कि सप्तपदी से पहले पति के अरने पर भी पत्नी विधवा नहीं होती।<sup>२४</sup> आश्वलायन ने सप्तपदी को इतना महत्व नहीं दिया, वह अग्निहोम या अग्नि की साक्षी को ही विवाह के अविच्छेद होने का प्रमाण मानता है।<sup>२५</sup>

वर्तमान समय में अदालतों ने प्राचीन धर्मशास्त्रों का अनुसरण करते हुए विवाह में यज्ञ (होम) और सप्तपदी को ही आवश्यक विधियाँ स्वीकार किया है।<sup>२६</sup> १९५५ के हिन्दू कानून में धार्मिक विवाहों में इन दोनों विधियों को या आचार को विवाह को वैध सिद्ध करने के लिए पर्याप्त समझा गया है।

### असवर्ण कन्याओं के विवाह की विधि

यह स्मरण रखना चाहिए कि उपर्युक्त सब संस्कार और विधियाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के लिए अपने-अपने वर्णों में ही विवाह करने के लिए हैं। मनु अपने वर्ण की कन्या से ही पाणिग्रहण संस्कार की व्यवस्था करता है, अन्य वर्णों की कन्याओं के साथ विवाह के लिए वहाँ विशेष व्यवस्था बतलायी गयी है। श्रेष्ठ जाति (ब्राह्मण वर्ण) के पुरुषों के साथ विवाह होने के समय क्षत्रिया कन्या घर के हाथ के अग्नि छोर को ग्रहण करे, वैश्य कन्या घर के हाथ में स्थित पैने (प्रतोद) का छोर पकड़े और शूद्रा कन्या घर के बस्त्र का छोर पकड़े। मनु (३।४३-४४) पाश० स्मृ० (१।६२), गण्ड स्मृति (४।१४) में भी यही व्यवस्था दोहरायी गयी है। शूद्रों की वेद मन्त्रों का अधिकार नहीं है, अतः उनकी शादी में आचार या कड़ि को ही परम प्रमाण माना जाता है। गृहस्थ-

२३ नोदकेन वाचा वा कन्यायाः पतिरिष्यते। पाणिग्रहणसंस्कारात् पतित्वं सप्त-  
मे पदे ॥

मि० द्रोणपर्व ५५।१५-१६ मनोवातमुद्विजंभावा दत्ता श्रीवकपुर्वकम्।

पाणिग्रहणमन्वाश्व प्रथितं वरसप्तमम् ॥ नत्वेवा निश्चिता निष्ठा निष्ठा-  
सप्तपदी स्मृता ॥

२४ एवं च सप्तमपवादवाक् परिणेतुर्मरभेऽपि न विधवात्वमित्युक्तं भवति।

२५ शा० का० सू० ३।५।१३ अग्निसाक्षिका हि विवाहा न निर्वतन्त इत्याचार्यसमयः।

२६ लुशासलवन्द बनाम माईमनी ११ ब० २५३, बेकट वरपुल बनाम रंगाचार पुल  
१४ म० ३१८



रत्नाकर (पृ० ५७) में कहा गया है कि शूद्र का विवाह उस समय पूर्ण समझना चाहिए जब कन्या घर के कपड़े के छोर को पकड़ ले।

### विवाह संस्कार से स्त्रियों के सम्बन्ध की अविच्छेद्यता

हिन्दू समाज में विवाह संस्कार पत्नी के लिए पति के साथ अविच्छेद्य सम्बन्ध उत्पन्न करने वाला समझा जाता है। पुरुष को कुछ अवस्थाओं में पुनर्विवाह (अधिवेशन) का अधिकार प्राप्त है।<sup>२०</sup> किन्तु स्त्री को पाणिग्रहण के बाद इस जन्म में दूसरा विवाह करने का कोई अवसर प्राप्त नहीं है। मनु ने इस स्थिति के समर्थन में दो युक्तियाँ दी हैं—(१) कन्या दान देने जाने योग्य वस्तु है, किसी वस्तु का दान एक बार ही दिया जाता है, इसके बाद उस पर दूसरे का स्वामित्व हो जाता है। विवाह के बाद स्त्री कन्या नहीं रहती है। अतः व्याही गयी कन्या के लिए मन्त्र नहीं पढ़े जा सकते हैं।<sup>२१</sup> मनु (८। २२६) की इस व्यवस्था का दुष्परिणाम यह हुआ कि हिन्दू समाज में विधवाओं का विवाह बिल्कुल बन्द हो गया। मनु ने निवोध तथा वैवाहिक सम्बन्धों की मिश्रितता का अन्त करने के उद्देश्य से विवाह संस्कार को अविच्छेद्य माना था, किन्तु बाद में विधवा विवाह निषेध के रूप में इस व्यवस्था के कुल हिन्दू समाज का मंगल पड़े। वर्तमान हिन्दू समाज किस प्रकार इससे भीषण क्षति उठा रहा है, इसका उल्लेख आगे विधवा विवाह वाले अध्याय पृ० ३३६-५२ में किया जायगा।

### अविच्छेद्य हिन्दू विवाहों की अविच्छेद्य ईसाई विवाहों से ग्रामक तुलना

बहुधा हिन्दू विवाहों की इस अविच्छेद्यता की तुलना रोमन कैथोलिक विवाहों की अविच्छेद्यता से की जाती है, किन्तु इस तुलना में यह बात भुला दी जाती है कि रोमन कैथोलिक विवाहों में यह प्रतिबन्ध स्त्री और पुरुष दोनों पर समान रूप से लागू होता है। दोनों के लिये विवाह अविच्छेद्य समझा जाता है, स्त्री एवं पुरुष दोनों किसी दूसरे पुरुष या स्त्री से शादी नहीं कर सकते। हिन्दू विवाह का अन्धन विधिवत है। वह पुण्य के लिये बिल्कुल नहीं है। पुरुष पहली पत्नी के रहते हुए यथेच्छ विवाह कर सकता है किन्तु स्त्री से जागा रही जाती है कि वह उसकी मरने पर भी दूसरे पति का नाम न ले।<sup>२२</sup>

वास्तव में विवाह का आदर्श नियम ही यह होना चाहिए कि उसमें पति-पत्नी के अधिकार तुल्य होने चाहिए। यदि विवाह संस्कार हो जाने पर पत्नी को यह अधिकार

<sup>२०</sup> हरिवंश वेदालंकार—हिन्दू परिवार मीमांसा, पृ० ६१

<sup>२१</sup> मनु० ८।२२६ पाणिग्रहणिका मन्त्रा कन्यास्त्वेव प्रतिष्ठिता।

नाकान्यायु ववचिन्नुषां सुप्तधर्मकिया हि ताः ॥

<sup>२२</sup> ईसाई धर्म ने विवाह को बहुत बेर बाद अर्थात् १२वीं से सवीं से संस्कार (Sacr-

नहीं है कि वह दूसरी शादी कर सके तो पति को भी पुनर्विवाह का अधिकार नहीं होना चाहिए। १९४४ के हिन्दू विवाह कानून में ऐसी ही व्यवस्था कर दी गयी है।

वर्तमान समय में अचानक भी धार्मिक विधि से सम्पन्न हुए हिन्दू विवाह को अविच्छेद्य सम्बन्ध मानती है। विवाह के अविच्छेद्य सम्बन्ध को स्वीकार करते के दो मुख्य परिणाम हुए हैं—(१) पति के मरने पर स्त्री में पुनर्विवाह का अधिकार छीन लिया गया। विवाह दो आत्माओं का मिलन है, अतः पति की मृत्यु के बाद पत्नी को यह स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त होगी कि वह कोई दूसरा पति कर सके। (२) पति के जीवित रहने हुए पत्नी अपने पति को किसी भी कारण से तलाक नहीं दे सकती।<sup>३०</sup> बसंत कि उस आति में तलाक की प्रथा न हो। पत्नी व्यभिचारिणी हो,<sup>३१</sup> मेम्बा हो,<sup>३२</sup> इत्यादि

मौल) बनाया। प्रारम्भ में विवाह बिल्कुल ऐहिक या सांसारिक (Secular) कार्य समझा जाता था। पुरोहित विवाह को आशीर्वाद से पवित्र बनाता था।<sup>३३</sup> किन्तु इस आशीर्वाद के न होने पर भी विवाह वैध समझा जाता था। इसके बाद यह रिवाज चला कि विवाह की लौकिक विधियाँ पूरी करके चर्च में जाकर उसे सेक्युलर (धार्मिक संस्कार) का रूप दिया जाय। १२वीं सदी तक विवाह की प्रारम्भिक विधियाँ चर्च से बाहर होतीं जो और उसका अन्त चर्च में प्रार्थना (Mass) के साथ होता था। १३वीं सदी में सारी विधि पुरोहित द्वारा ही होने लगी। यह प्रथा यहाँ तक बढ़ी कि ट्रेंट की परिषद् (Council of Trent) ने १६ वीं सदी में होने वाले वैयक्तिक विवाहों को पाप और अपराध बना दिया। इसके बाद विवाह को चर्च की विधियों के साथ करना आवश्यक हो गया। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि उस परिषद् में कुछ व्यक्तियों ने उपर्युक्त प्रस्ताव के विपक्ष में वोट दिये थे। इस सम्बन्ध को अविच्छेद्य बनाने में चर्च को कई बातों से प्रेरणा मिली। बाइबिल में आदम और हव्वा को एक ही शरीर (One flesh) बरत बताया गया है, फिर चर्च और ईसा का सम्बन्ध भी अविच्छेद्य समझा जाता था। विवाह इसी सम्बन्ध का लौकिक प्रतीक था, अतः वह अविच्छेद्य होना चाहिए। जब ईसाई सन्त अण्ड्रय ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा लेते थे तो पुरुषों के लिए अण्ड्रय एवं अविच्छेद्य विवाह की व्यवस्था क्यों न हो। अतः १४६४ में विवाह अविच्छेद्य संस्कार स्वीकार किया गया और १६वीं सदी में वैयक्तिक विवाहों को गैर कानूनी व अवैध ठहरा दिया गया।

<sup>३०</sup> कुवामी बनाम जोतीराम ३ कल ३ (३०८), तलकल बनाम बसवरा २८ कल० ७५१ (७५८), नारायण बनाम तिलोक २६ अला ४ (६)

<sup>३१</sup> मुन्नाया बनाम रामस्वामी २३ म० १७१ (१७६, १७८)

<sup>३२</sup> बही, मुम्बरी बनाम पीतम्बरी ३२ कल ८७१, बम्बई सरकार बनाम गंगा, ४, ३३

या किसी दूसरे धर्म को स्वीकार कर चुकी हो, तो भी पति के साथ उसका विवाह-बन्धन वैवाचिक कायम रहता है और पति अपनी पत्नी को या पत्नी अपने पति को दुराचार या धर्मपरिवर्तन के कारण नहीं छोड़ सकती।

पहले परिणाम का ११वें अध्याय में विस्तार से प्रतिपादन होगा। यहाँ केवल दूसरे परिणाम पर विचार किया जायगा। पत्नी के व्यभिचारिणी होने पर भी पति उसे नहीं छोड़ सकता है।<sup>३३</sup> कुछ मुरुधर्मों में अदालतों ने यह स्वीकार किया है कि दुराचार से विवाह-सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है।<sup>३४</sup> किन्तु दाम्पत्य अधिकारों के प्रकरण में हम यह देखेंगे कि शास्त्रकारों ने यह सिद्धात किया है कि स्त्री के व्यभिचारिणी होने पर भी पति का यह कर्तव्य है कि वह उसका भरण-पोषण करे और यदि वह कुमारी में विरत नहीं होती तो पति केवल यही कर सकता है कि भरण-पोषण की साख को कम कर दे, किन्तु उसे पत्नी के साथ विवाहसम्बन्ध विच्छिन्न करने का कोई अधिकार नहीं।

### धर्म परिवर्तन और विवाह की अविच्छेद्यता

हिन्दू विवाह एक धार्मिक सम्बन्ध है, अतः पति-पत्नी में किसी एक के धर्म-परिवर्तन से या जाति से अथः पतित होने के बाद भी यह सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं होता है। बम्बई में एक हिन्दू स्त्री गंगा मुसलमान हुई और उसने पहले हिन्दू पति के जीवित रहते हुए एक मुसलमान से शादी की। सरकार की ओर से उस पर मुकदमा चलाया गया और पहले पति के जीवित रहने पर, दूसरे व्यक्ति के साथ विवाह करने के अपराध में उस स्त्री को सजा दी, गयी।

बंगाल में हिन्दू स्त्रियों ने अपने अत्याचारी पतियों से परित्राण पाने के लिए धर्म परिवर्तन के उपाय का बहुत अधिक अवलम्बन किया। वहाँ यह रिवाज चल पड़ा था कि जो स्त्री अपने पति द्वारा छोड़ दी जाती थी या बहुत सतायी जाती थी, वह मुसलमान हो जाती थी और अदालत में अपने पति के विरुद्ध यह दावा कर देती थी कि वह अपने गैर मुस्लिम पति के साथ नहीं रह सकती, इसलिए या तो पति मुसलमान हो जाय, ताकि वह उसके साथ रह सके, या अदालत उसे अपने पहले पति की तलाक देने की स्वीकृति प्रदान करे। ऐसी दशा में प्रायः पति अदालत में उपस्थित नहीं होते थे; क्योंकि वे इसलाम नहीं स्वीकार करना चाहते थे। अदालत प्रतिवादी की अनुपस्थिति में

<sup>३३</sup> विश्वेश्वर बनाम मातामुलाम २ मार्च वेस्टर्न प्रोविन्स हा० को० रि० ३००, सद्दात बनाम मारियमुत्ती ४ स० २४३। एडमिनिस्ट्रेटर जनरल बनाम आनन्दाचारी ६ स० ४६६, स्वर्णमयी बनाम भारत मन्त्री १५ कल० २५४।

<sup>३४</sup> रामप्रसाद बनाम सुमुबाई ४ ता० ला० रि० ३१ (४१, ४२) शिबसिंह बनाम मिलात १२ स० २७७, नरसिम्हा बनाम रंगू १३ स० १३३ ॥

पत्नी को हिन्दू पति ने सत्ता की स्वीकृति दे देती थी। इस प्रकार अपने पति को सत्ता देने के बाद वह स्त्री आर्यसामाजिक विधि से मुक्त होकर फिर हिन्दू बनती थी और अपनी पसन्द के दूसरे पति से अपनी शादी कर लेती थी। पतियों को इस उपाय की तरफ लेने की आवश्यकता नहीं होती थी क्योंकि १९५५ तक प्रचलित हिन्दू कानून के अनुसार वे यच्छेष्ट नित्यों में शादी कर सकते थे।

मुसलमान बनकर अपने पहले हिन्दू पति से मुक्ति पाने का सबसे प्रसिद्ध उदाहरण श्रीमती सीतादेवी का है। वह पीठापुरम् (मद्रास) के महाराज की तृतीय कन्या है। ६ अगस्त १९३३ को एक प्रतिष्ठित हिन्दू से उसका विवाह सम्पन्न हुआ। १० अक्टूबर १९४३ को बम्बई में उसने एक काजी बुलाया, कलमा पढ़ा और मुसलमान हो गयी। उसने अपने पति को यह लिखा कि मैं मुसलमान हो गयी हूँ, तुम भी मुसलमान हो जाओ। पति ने मुसलमान होने से इन्कार कर दिया। इस पर मद्रास सिटी सिविल कोर्ट में सीता देवी ने यह प्रार्थनापत्र दिया कि "६ अगस्त १९३३ को हिन्दू विधि के अनुसार हुए मेरे विवाह को यह ममला जाय, क्योंकि मैं १० अक्टूबर १९४३ को मुसलमान हो गयी हूँ। मैंने पति को मुसलमान होने के लिए लिखा किन्तु उसने ऐसा करने से इन्कार किया है।" २३ दिसम्बर १९४३ को यह मुकदमा श्री सम्प्रद कमानुडीन के मामले पेच हुआ। जज ने अपने फैसले में लिखा कि "श्री प्रतिवादी अदालत में उपस्थित नहीं हुआ और वादी बम्बई के काजी के सामने मुसलमान हो चुकी है, वह कहती है कि इस्लाम के सिद्धान्तों से आकृष्ट होकर वह मुसलमान बनी है। काजी की गवाही से भी गयी है। उसका पति मुसलमान बनना स्वीकार नहीं करता। विरसन ने एंग्लो मुहम्मदन लॉ (पैरा ७४ ए०) में कहा है कि वर वधू में से यदि कोई मुसलमान हो जाता है तो विवाह पर कोई असर नहीं पड़ता, किन्तु यदि वह मुसलमान नहीं होता तो दूसरा पक्ष सत्ताक दे सकता है। यह विधि दाखलस्तान या मुस्लिम देशों के लिए है, अतः अदालत द्वारा यह विवाह-सम्बन्ध विच्छिन्न घोषित किया जाता है।" इस निर्णय के आठ दिन बाद १ जून १९४४ को सीतादेवी का विवाह बम्बई में बड़ौदा के महाराज श्री प्रतापसिंह से हो गया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सीतादेवी दूसरे विवाह से पहले मुक्त होकर हिन्दू बन चुकी थी।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत के विभिन्न हाई कोर्टों में इस सम्बन्ध में मतभेद है कि वर-वधू में से किसी एक के मुसलमान होने पर भी विवाह-सम्बन्ध विच्छिन्न होता है या नहीं, किन्तु अधिकांश कोर्टों का झुकाव इस ओर है कि यह विवाह-सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं होता है। ऊपर हम बम्बई हाईकोर्ट के गंगा धाले मामले का उल्लेख कर चुके हैं। कलकत्ता हाईकोर्ट ने १९६१ में राजकुमारी के मामले में भी ऐसा ही फैसला दिया था (इ. ला. रि. १८ का. २६४)। मामला इस प्रकार था कि एक हिन्दू स्त्री मुसलमान हुई और उसने एक मुसलमान से शादी कर ली। अदालत ने स्पष्ट रूप से यह कहा कि स्त्री के मुसलमान हो जाने पर भी वह हिन्दू कानून की परिधि से बाहर नहीं बनी जाती। १९४१

में कलकत्ता हाईकोर्ट के जस्टिस एगले (Edgley) ने एक दूसरे मामले में ऐसी पद्धति की धत्तेलगा की। इस मामले में पंलैण्ड की एक कमी स्त्री ने दीखानी पद्धति से एक कमी पुरुष से बर्लिन में शादी की, पति मृत्युवाला गया और पत्नी भारत में आयी, वह मुसलमान हो गयी। उसने अपना नाम मुरजहाँ रखा और पति का नाम भेजा कि यह मुसलमान हो जान। पति ने मुसलमान होने से इन्कार कर दिया। इस पर मुरजहाँ ने कलकत्ता हाईकोर्ट में पति से तलाक़ पाना चाहा। स्वामाधीन श्री एगले ने यह फैसला किया कि मुसलमान त बनने वाले पर विवाह-सम्बन्ध के विच्छेद का इस्लामी कानून ब्रिटिश भारत में लागू नहीं हो सकता। १८६६ में कलकत्ता हाईकोर्ट में यह कड़ा था कि इस्लामी कानून भारत का कानून नहीं है और यह बात न्याय (Equity) और उत्तम अन्तःकरण (Good conscience) के सर्वथा प्रतिकूल है कि किसी हिन्दू को इस्लामी कानून से किसी प्रकार बाधित किया जाय। एगले के मत में, इसी तरह किसी व्यक्ति के मुसलमान बनने पर दूसरे व्यक्ति को मुसलमान बनने या विवाह-सम्बन्ध विच्छेद करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता, यदि ऐसा मान लिया जाय तो राज्य धर्म-परिवर्तन में सहायक बन जायगा।

इस विषय में स्टिकनर वराम आर्ट (१८७१-७४ मूर की इडिशन अपील ३०६) के मामले का उल्लेख उपयोगी है। इस मामले में एक ईसाई विधवा ने जान बसर से साथ अपना सम्बन्ध रखा। जान बसर की पत्नी जीवित थी और ईसाई कानून के अनुसार उसका एक विधवा के साथ दूसरा विवाह दण्डनीय अपराध था। उसने बचने के लिए दोनों मुसलमान हो गये, क्योंकि इस्लाम में बार सादियां आयज होती हैं। इलाहाबाद हाईकोर्ट और प्रिंसी कौमिल दोनों ने इस विवाह की निन्दा की और उसे वैध नहीं माना।

अतः उपर्युक्त फैसलों से यह स्पष्ट है कि वैयक्तिक स्वार्थपूर्ति के उद्देश्य में किये गये धर्मपरिवर्तन को अदालत आयज नहीं मानती और न ही अदालतों को ऐसा मानना चाहिए। यदि ऐसा मान लिया जाय तो धर्म एक मजाक और खिनवाड़ की चीज हो जायगी। यह अद्वैत अत्यन्त निन्दनीय है कि बहुविवाह का आनन्द लेने या अभीष्ट व्यक्ति से विवाह करने के लिए धर्म परिवर्तन के पर्युषीय मार्ग का अवलम्बन किया जाय।

हिन्दूदम्पती में यदि कोई ईसाई हो जाता है तो भी उन पर विवाह की अविच्छेदता का बन्धन लगा रहता है। मरनिया वराम प्रेसिडेंस (८ ब. सा. रि. ८२६) के मामले में मरनिया ने भारतीय तलाक़ कानून (१८६६ का ४ वा कानून) के अनुसार अपने पति से तलाक़ पाना चाहा। अदालत को यह पता लगा कि उनकी शादी हिन्दू विधि से हुई थी और उसके बाद वे ईसाई हुए। अदालत ने यह फैसला दिया कि भारतीय तलाक़ कानून में एकविवाही (Monogamous) विवाहों का विधान है, शादी-प्रतिवादी की शादी हिन्दू कानून के अनुसार हुई, इसमें बहुविवाह आयज है,

अतः हिन्दू कानून लागू होने की वजह से भारतीय तत्काल कानून उन पर नहीं लागू हो सकता ।

यद्यपि हिन्दू विवाह सम्बन्ध अविच्छेद्य है, किन्तु ईसाई धर्म स्वीकार करने वाले हिन्दू कुछ विशेष अवस्थाओं में देशी ईसाई विवाह भंग कानून (Native Converts Marriage Dissolution Act, १८६६ का २१ वाँ कानून) के अनुसार कुछ बातों का पालन करने हुए तत्काल प्राप्त कर सकते हैं । यदि पति-पत्नी में से किसी एक के ईसाई बन जाने पर दूसरा निरन्तर छः मास तक जान-बूझकर उसका सहवास परित्याग करता है तो पहला व्यक्ति दाम्पत्य अधिकारों (Conjugal rights) के लिए दावा कर सकता है । यदि प्रतिवादी इस दावे के बाद कोई ठोस स्वीकृत एक वर्ष की अवधि तक उसे पुनः दाम्पत्य सुख देने से इनकार करता है तो अदास्त उस विवाह को भंग कर सकती है । यह स्मरण रखना चाहिए कि इस कानून का उद्देश्य तत्काल को सुख बनाना या प्रोत्साहित करना नहीं, अपितु यह है कि अन्यत्र में से किसी एक व्यक्ति के ईसाई हो जाने पर, यदि दूसरा धर्म परिवर्तन के कारण पहले का त्याग करता है तो परित्यक्त व्यक्ति को दूसरी जाती का अवसर मिल सके । इसी कानून के २५ वें भाग में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि सहवास-परित्याग (Desertion) धर्मपरिवर्तन के कारण होना चाहिए । यदि यह परित्याग कूरता या दुराचरण के कारण होगा, तो उस अवस्था में यह कानून लागू न होगा ।

### प्राचीन भारत में सामयिक या सशर्त विवाह (Contractual Marriages)

आजकल इस प्रश्न पर तीव्र मतभेद है कि विवाह अविच्छेद्य धार्मिक सम्बन्ध (Sacrament) है या दो पक्षों द्वारा आपस में तय किया हुआ एक समझौता, समय या ठेका (Contract) मात्र । पिछले दो हजार वर्षों में विवाह संस्कार की धार्मिकता एवं अविच्छेद्यता पर इतना अधिक बल दिया गया है कि हम यह भूल गये हैं कि अत्यन्त पुराने कालों में ऐसे अनेक विवाह होते थे जिनमें विवाह सम्बन्ध सामयिक या सशर्त (Contractual) होता था, वर-वधू कुछ बातों पर विवाह करते थे । तै० बा० (२।३।१०) में श्रेमिका अपने प्रेमी सोम से यह कहती है कि वह उसके साथ तब तक विवाह नहीं करेगी, जब तक कि वह उसकी कुछ बातों को स्वीकार नहीं करेगा । महाभारत में कर्तव्य विवाहों के अनेक उदाहरण मिलते हैं । अरुणाचल का जब अपने पितरों की रक्षा के लिए साधारण होकर विवाह करने का निश्चय करना पड़ा तो उसने अपने पितरों से कहा कि मैं इन शर्तों पर विवाह करूँगा—

१—मुझे अपने नाम वाली पत्नी मिले ।

२—मुझे वह भिक्षा में मिले ।

३—मुझे अपनी पत्नी का भरण-पोषण न करना पड़े । किन्तु उस बड़े आदमी

को, जिसने तपस्या से अपने शरीर को बिलकुल क्षीण कर डाला था, कौन अपनी कन्या देता ? अन्त में उस ऋषि ने जंगल में जाकर तीन बार धीरे-धीरे कहा कि "मम जंगलवासी सुन, मेरे पितर संकट में हैं, और उन्होंने मुझे विवाह के लिए आज्ञा दी है। मैं कन्या चाहता हूँ।" इसके बाद ऋषि ने अपनी बातों की भी प्रशंसा की। साम्राज वासुकि के अनुचरों ने यह समाचार अपने स्वामी के पास पहुँचाया। वासुकि जलेश्वर के विवाह की इच्छा मुनो ही अपनी सखी-सज्जामी बहिन की नेकर वन में उस ऋषि के निकट आया और उस महात्मा से उसने यह कहा कि "यह कन्या मेरी बहिष्ठ है, तुम्हारे नामवासी है, तुम इसे पत्नी रूप से स्वीकार करो। मैं ही इसे पालूँगा।"<sup>३५</sup> ऋषि ने कहा—“मेरी यह शर्त है कि मैं इसका भरण-पोषण नहीं करूँगा और यह कन्या कभी मेरा अग्रिय कार्य नहीं करेगी। अग्रिय कार्य करने पर मैं इस कन्या को छोड़ दूँगा।”<sup>३६</sup> वासुकि ने यह शर्त मंजूर कर ली। वासुकि के घर ऋषि गये। प्रथाविधि विवाह के बाद वह भावी सहित वासगृह में प्रविष्ट हुआ और वहाँ अपनी पत्नी के सामने भी उसने यह शर्त पेश की “मेरा अग्रिय कार्य न करना और मुझे अग्रिय लगने वाला वचन न बोलना। ऐसा करने पर मैं तुझे छोड़ दूँगा।”<sup>३७</sup> वासुकि की बहिन ने बड़े दुःख से ‘एवमस्तु’ कहकर ऋषि की शर्त स्वीकार की और बहुत साधधानी के साम ऋषि की सेवा करने लगी।

एक दिन जलेश्वर अपनी पत्नी की नौद में सिर रख कर सो रहे थे। सूर्य अस्त हो गया, किन्तु ऋषि की नौद नहीं हटती। पत्नी उस समय बड़ी चिन्ता में पड़ गयी। यदि वह अपने पति को नहीं जगाती तो ऋषि के संध्या समय के धार्मिक कार्य में बिध्न पड़ता है, उससे धर्मलोप या पाप लगने का संभावना है और यदि वह अग्राती है तो पति की निद्रा भंग करने का अपराध करती है। पत्नी ने धर्मलोप और पति की निद्राभंग में से धर्मलोप को अधिक महत्त्वपूर्ण समझा और यह कहते हुए पति को जगाया—“हे व्रतशील, भगवान् सूर्यदेव डूब रहे हैं, उठकर जल स्पर्श कर संध्याभासना कीजिए। देखिए अग्निहोत्र का समय आ गया है।

पत्नी की यह बात सुन कर ऋषि बड़े क्रुद्ध हुए। वे बोले—“तूने इस प्रकार से मेरा अपमान किया है, मैं तेरे साथ अब न रहूँगा। मैं यह बात निश्चित रूप से जानता हूँ कि मेरे सोये रहने से सूर्यदेव कभी उचित समय पर अस्त नहीं हो सकता। अपमानित होकर कोई पुरुष नहीं रहना चाहता। मूस-जैसा धार्मिक व्यक्ति तो ऐसी हालत में कभी नहीं रह

<sup>३५</sup> म० भा० १।४७।४। नं परित्यजेऽहमेतां वा एव मे समयः कृतः।

अग्रियवचनं न कर्तव्यं कृते खेनां त्यजाम्यहम् ॥

<sup>३६</sup> वही १।४७।६-१० विप्रियं मे न कर्तव्यं न च वाच्यं कदाचन।

त्यजेमं विप्रियं ज त्वां कृतं वाचं च ते गृहे ॥

सकता।" पत्नी ने खड़ी सफाई वेश की, हाथ-पैर जोड़े, किन्तु अग्नि नहीं पिघले। उन्होंने अपने वचन का स्मरण कराया और पत्नी को छोड़कर अन्यत्र चल दिये (महाभा० १।४।२५-४४)।

इस कथा से स्पष्ट है कि प्राचीन हिन्दू समाज में विवाह कई बार शर्तों पर होता था और उन शर्तों के भंग होने पर विवाह संबंध किञ्चित्त ही जाता था। इस संबंध में उर्वशी-गुरुदया और देवयानी-ययाति की कथाएँ भी स्मरणीय हैं।

### दीवानी विवाह

इस अध्यास के आरंभ में यह कहा जा चुका है कि स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को समाज द्वारा स्वीकृत करने के लिए कोई न कोई विधि आवश्यक होती है, चाहे वह पुरोहितों द्वारा पुरी की जाय या सजिस्ट्रेट के आगे सम्पन्न की जाये। पहली विधि से होने वाले विवाह को धार्मिक विवाह (Sacramental marriages) और दूसरे को दीवानी विवाह (Civil marriages) कहते हैं। हिन्दू समाज में पुरोहितों द्वारा अग्नि के सम्मुख पाणि-ग्रहण संस्कार की वैवाहिक विधि सदियों से आवश्यक मानी जाती रही है। मानव विवाह के प्रकरण में हमने यह देखा था कि परस्पर प्रेम उत्पन्न होने पर विवाह के लिए, पहले संस्कार की आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। गकुन्तला और दुष्यन्त के विवाह में कोई संस्कार नहीं किया गया था। किन्तु शास्त्राचार्य के समय तक ऐसे विवाहों को नियमबद्ध करने तथा प्रेम के नाम पर होने वाले व्यभिचार को रोकने के लिए संस्कार की शर्त अनिवार्य बना दी गयी। उसके बाद पिछली शताब्दी के मध्य तक हिन्दू विवाह को वैध बनाने का एक मात्र उपाय पाणिग्रहण संस्कार था।<sup>३०</sup> किन्तु १८७२ के विधायक विवाह कानून से कुछ विशेष व्यक्तियों के लिए सजिस्ट्रेट या रजिस्ट्रार के सामने कानून द्वारा नियत शर्तों

<sup>३०</sup> आजकल अधिकांश पश्चिमी देशों में दीवानी विवाह की प्रथा प्रचलित है। पहले (पृ० २६२-३ टि०) यह बताया जा चुका है कि यूरोप में १२ वीं शती तक विवाह चर्च का विषय नहीं समझा जाता था। चर्च में इसे अपने अधिकार में लेने का चल किया, किन्तु लूथर तथा अन्य सुधारकों ने कहा कि विवाह दीवानी अध्यासों का विषय है। ईश्वर की परिषद् ने सुधारकों की इस सम्मति को कुफ (Heresy) घोषित किया किन्तु इसके बावजूब यूरोप के अनेक कॅथोलिक देशों में दीवानी विवाह ही एक मात्र कानूनी विवाह माना जाता है, जर्मनी में केवल दीवानी विवाह को वैध माना जाता है। उत्तरी अमेरिका की रियासतों में विवाह एक समझ (Contract) मात्र है। यूरोप के अधिकांश देशों में दीवानी विवाह के बाव चर्च में विशय या पुरोहित के सामने धार्मिक विधि से बुबारा विवाह किया जाता है (इंसा० बिटा०, खण्ड १४, पृ० ६४२-४४)



के अनुसार किये जाने वाले दीवानी विवाहों (Civil marriages) को भी वैध समझा गया। भारत में इन विवाहों को वैध बनाने का मनोरंजक इतिहास है।

### दीवानी विवाह के कानून का इतिहास

ब्रह्मसमाज १९वीं शताब्दी में भारत का सबसे पहला और एक महत्वपूर्ण धार्मिक सुधार आन्दोलन था। ब्रह्मसमाज ने हिन्दू समाज में कई शताब्दियों में बने जाने वाले अंधविश्वासों और कुदृष्टियों को दूर करना चाहा। ब्रह्मसमाजी मूल पूजा को नहीं मानते थे, क्योंकि उस समय हिन्दुओं का कोई भी संस्कार किसी न किसी देवता की मूलपूजा के बिना पूरा नहीं हो सकता, अतः ब्रह्मसमाजी ऐसी सब विधियों से अलग रहते थे। जिस समय महर्षि देवेन्द्र बाबू के घर में कोई धार्मिक उत्सव होता, उस समय वे मूल पूजा से बचने के लिए जंगल में जाते जाते थे। १८४७ में ब्रह्मसमाज में एक प्रतिभासम्पन्न मेधावी और तेजस्वी युवक श्री केशवचन्द्र सेन का आगमन हुआ और उन्होंने ब्रह्मसमाज को बड़ी तेजी से सुधारवाद के नाम पर ईसाइयत का जामा पहनाना शुरू किया। प्रगतिशील ब्रह्मसमाजी विवाह के हिन्दू आदर्श एवं विधि दोनों को ही एवं त्याज्य समझते थे, उनका कहना था कि विवाह स्त्री और पुरुष के बीच में एक सन्धीता (contract) मात्र है, कन्यादान बिल्कुल बेकार है और विवाह की पौराणिक विधि त्याज्य है। प्रगतिशील ब्रह्मसमाजियों ने मूलपूजा के प्रभावों को सर्वथा दूर करते हुए विवाह की एक नयी विधि बनायी।

किन्तु यहाँ ही यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि इस विधि के अनुसार किये गये विवाह क्या वैध होंगे? प्रगतिशील ब्रह्मसमाजियों ने उस समय के एडवोकेट जनरल श्री कोबी से इन विवाहों को वैधता के सम्बन्ध में सम्मति ली। श्री कोबी की सम्मति थी कि ये विवाह वैध नहीं माने जा सकते। इस पर ब्रह्मसमाजियों का एक प्रतिनिधि मण्डल उस समय के वायसराय लार्ड लैसब्राउट से मिला और उन्होंने ब्रह्मसमाजियों के विवाहों को वैध बनाने के लिए एक कानून पास करने की माँग की। उस समय स्थिति यह थी कि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यूरोपियन और पारसी जातियों के लिए विवाह के कानून बने हुए थे किन्तु ब्रह्मसमाजी अपने को न हिन्दू मानते थे न मुसलमान, न ईसाई, न पारसी। अतः उनके लिए कानून द्वारा विवाह करने का कोई तरीका नहीं था। इसका मतलब यह था कि कानूनी दृष्टि से ब्रह्मसमाजी विवाह कर ही नहीं सकते थे। इस दोष को दूर करने की दृष्टि से ब्रह्मसमाजियों के विवाह के लिए एक कानून बनाना आवश्यक था। किन्तु इसमें सबसे बड़ी दिक्कत यह थी कि ब्रह्मसमाज का कोई निश्चित रूप नहीं था। ३० वर्ष के अन्दर ही इसमें दो दल पैदा हो गये थे और दोनों विवाह के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद रखते थे। सरकार किस दल की सम्मति और विधि को प्रामाणिक माने? दूसरी आवृत्ति यह थी कि यदि प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय के लिए अलग कानून बनाये जाते

सर्वे ती वीसियों विवाह कानून बनाने पड़ेगे। हर एक सम्प्रदाय अपने लिए अलग-अलग कानून की माँग करेगा। साम्प्रदायिक विवाह कानून (Denominational Marriage Acts) बनाने में एक यह भी बाधा थी कि विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के बीच में होने वाले विवाह का नियमन किस प्रकार किया जायगा ?

भारत सरकार के तत्कालीन कानून सदस्य सर हेनरी मेन ने इस समस्या का यह हल निकाला कि ईसाई धर्म की न मानने वाले तथा हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, पारसी या पट्टरी धार्मिक विधि से शादी न करने वालों के लिए एक कानून बनाया जाय। १८ नव० १८६८ को उन्होंने इस प्रकार के कानून का मसिबदा पेश किया और सम्मति के लिए, वह मसिबदा प्रान्तीय सरकारों के पास भेजा गया। प्रान्तीय सरकारों ने इसका इस आधार पर धोर विरोध किया कि यह हिन्दू-मुस्लिम कानूनों में क्रांतिकारी परिवर्तन करने वाला है। विवाह के विषय में, हिन्दू कानून और हिन्दू धर्म एक है, जो हिन्दू विवाह को नहीं मानता। वह हिन्दू कानून को भी नहीं मानता, उसे हिन्दू धर्म में रहने का कोई हक नहीं। व्यवस्थापिका परिषद् का यह अधिकार नहीं कि वह हिन्दू मुस्लिम कानूनों को मतमाने बत से बदलती रहे। कानून सदस्य सर स्टोफन ने इस बिल को १८७१ में व्यवस्थापिका परिषद में पेश करते हुए उठा आगति को पड़े सुन्दर शब्दों में अविव्यक्त किया था। उनका कहना था कि हम व्यवस्थापिका परिषद् के कानूनों द्वारा न तो हिन्दुओं को संघेज और न अंग्रेजों को हिन्दू बनाने का अधिकार रखते हैं।

मेन के मसिबदे में से उपर्युक्त आपत्ति हटाने के लिए इस कानून में एक प्रस्तावना जोड़ी गयी और वह प्रस्तावना ही इस बिल का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। इसमें यह कहा गया है कि जो लोग हिन्दू धर्म, ईसाइयत, इस्लाम, पारसी, बौद्ध, सिक्ख या जैन धर्म नहीं स्वीकार करते, उनके लिए यह कानून बनाया जाता है। इस कानून के अनुसार विवाह करने वाले का यह घोषणा करनी पड़ती थी कि वह हिन्दू धर्म को नहीं मानता है।

### दीवानी विवाह का स्वरूप

इस कानून के अनुसार, विवाह मुख्य से एक दीवानी मानता समझा गया और इसमें किसी धार्मिक विधि का पालन आवश्यक नहीं है। यह विवाह विवाहों के रजिस्ट्रार के सामने कुछ शर्तें पूरी करने पर नियत विधि के अनुसार हो सकता है। वे शर्तें इस प्रकार हैं—बर वधू कमरा कम से कम १८ और १४ वर्ष के हों, यदि वे २१ वर्ष से कम आयु के हैं तो उनके अभिभावक की सहमति होनी चाहिए। उनमें सपिण्डता या कृत्तिम सपिण्डता (Affinity) नहीं होनी चाहिए और उनमें किसी की पत्नी या पति नहीं प्रीकित होना चाहिए (धारा २)। विवाह से पूर्व बर या वधू को अपने निवास स्थान के रजिस्ट्रार की विवाह की सूचना देनी पड़ती है। निवास स्थान उसे माना गया है जहाँ उक्त सूचना देने से कम से कम १४ दिन पहले से बर या वधू में से कोई रहता हो (धारा ४)।

सूचना देने से १४ दिन बाद तक यदि उस विवाह संबंध पर कोई आपत्ति न उठानी जाय तो वह विवाह तीन साक्षियों की उपस्थिति में रजिस्ट्रार के सामने हो सकता है। यह विवाह किसी भी विधि से किया जा सकता है। यहाँ कि पति-पत्नी एक-दूसरे को रजिस्ट्रार तथा साक्षियों को श्रवण कराते हुए क्रमशः ये शब्द कहें कि मैं तुझे पति के रूप में स्वीकार करती हूँ। और मैं तुझे पत्नी के रूप में स्वीकार करता हूँ (धारा १५)। ऐसे विवाहों में उल्लेख विभा जा सकता है (धारा २५)।

**नये कानूनों का निर्माण**—१८७२ का कानून हिन्दुओं को संतुष्ट न कर सका, क्योंकि भारत में उन समय तक कोई ऐसा कानून नहीं था, जिस कानून के अनुसार हिन्दुओं में दीवानी विवाह हो सकें, इस कानून से पर-बन्धु की यह घोषणा करना आवश्यक था कि हम हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन, सिख या पारसी धर्म नहीं स्वीकार करते। बहुत से हिन्दू ऐसे थे जो अपने धर्म में ही रहते हुए दीवानी विवाह करना चाहते थे। इस मामले में देशी राज्यों ने प्रयत्न किया। १८०८ में बड़ौदा राज्य में तथा १८१६ में इन्दौर राज्य में दीवानी विवाहों को वैध बनाने के कानून बने। कोल्हापुर में भी इसी तरह का कानून बना। भारत सरकार ने स्वयं इस दिशा में कदम नहीं उठाया। श्री हरि मिश्र गौड़ ने १८२३ में हिन्दू-समाज में दीवानी विवाहों को वैध बनाने का मसिदा केन्द्रीय व्यवस्थापिका परिषद् में उपस्थित किया। उनकी इच्छा थी कि भारत की सभी जातियों के लिए दीवानी विवाह का कानून बनाया जाय, किन्तु मुसलमानों और पारसियों ने इसका घोर विरोध किया। अतः अन्त में यह मसिदा केवल हिन्दू, बौद्ध, सिख और जैन धर्मों तक के लिए मर्यादित किया गया और १८७२ के ऐक्ट को १८२३ के कानून के अनुसार संशोधित किया गया। इस संशोधन के पश्चात् अब एक हिन्दू को यह घोषणा करने की आवश्यकता नहीं रही कि वह हिन्दू नहीं है। वह हिन्दू होते हुए भी दीवानी विवाह कर सकता था। १८५४ के विशेष विवाह कानून (Special Marriage Act) द्वारा इसमें अनेक आवश्यक और समायोजक संशोधन किये गये हैं। इसकी सबसे अधिक कांति-कारी व्यवस्था पारस्परिक सहमति (Mutual consent) द्वारा विवाह विच्छेद का विधान है। अब हिन्दू इस कानून के अनुसार दीवानी विवाह कर सकते हैं।

## दाम्पत्य कर्तव्य व अधिकार

विवाह संस्कार द्वारा पति-पत्नी एक मूल में आयोज्य हो जाते हैं। पत्नी पति के घर में बसी जाती है और, पति के साथ मिलकर गृहकार्यों का संभाषण करती है।<sup>१</sup> इस समस्या में दोनों कि एक-दूसरे के पति कुछ कर्तव्य और अधिकार उत्पन्न हो जाते हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि प्राचीन काल में हिन्दू समाज में कर्तव्यों पर अधिक बल दिया गया था और आजकल अधिकारों की जोरदार माँग की जाती है, अतः प्राचीन धर्मशास्त्रों में पति-पत्नी के और विवेचन: पत्नी के कर्तव्यों की वृत्ति अधिक है और अधिकारों की कम। हिन्दू स्त्रियों की स्थिति गिरने से पूर्व वैदिक युग में पति-पत्नी के अधिकार तुल्य थे, विवाह के बाद गन्धर्व धर्म की रानी हो जाती थी।<sup>२</sup> किन्तु दूसरी से पाँचवीं सदी के बीच में चलने वाली व्यासस्मृति ने उसे नौकरानी का दर्जा दिया।<sup>३</sup> मारी की स्थिति में यह परिवर्तन गुप्त युग तक पूर्ण हो चुका था।<sup>४</sup> इस परिवर्तन के कई कारण थे।

(१) पहला कारण प्रतीय कर्मकाण्ड में अत्यधिक शुद्धि के विचार की वृद्धि से पत्नी-पति: स्त्रियों का प्रतीय कामों से वृद्धि किया जाना था। शास्त्रिक धर्म अथवा राजकपी मूल के कारण स्त्रियाँ अपवित्र मानी जाने लगी थीं। धीरे-धीरे इस विचार को सब लोग मानने लगे और यज्ञ विधायक कामों में पत्नी का अधिकार कम होने लगा। यज्ञ में स्त्री का अधिकार न रहने से वह शुद्ध की तरह हीन मानी जाने लगी, क्योंकि शुद्धों का भी यज्ञ में कोई अधिकार न था।

<sup>१</sup> दक्षिण भारत के कुछ प्रदेशों में पत्नी अपने घर में रहती है, पति उसके घर में आता है। इसके वर्णन के लिए देखिए हरिदत्त वैवाहिकार—हिन्दू परिवार मोमांसा, पृ० २७०-७२।

<sup>२</sup> ऋ० १०।८५।४६—संभ्राती स्वशूरे मन सभ्रातो अधिदेव्यु। मि० अथर्व० १५। १।४३।

<sup>३</sup> व्यासस्मृ० २।२७—दासीवद्विष्टकार्येषु भार्या भर्तुः सदा भवेत्।

<sup>४</sup> इसके विवाद प्रतिपादन के लिए देखिए हरिदत्त वैवाहिकार—हिन्दू परिवार मोमांसा, पृ० १०८-१७

(२) पुत्र पिता के वंश को चलाने वाला और पितरों को पिण्ड दान करने वाला होता था। यौद्धा जातियों के जीवनसंघर्ष में कन्या की उपेक्षा पुत्र पिता को अधिक सहानुभूति दे सकता है, अतः ऐसे समाज में कन्याओं की उपेक्षा स्वाभाविक थी।

(३) स्त्री शिक्षा का अभाव व बाल विवाह—वैदिक काल में कन्या ब्रह्मचर्य पूर्वक शिक्षाध्ययन करके ही युवती होकर विवाह करती थी। बाद में स्त्रीशिक्षा की उपेक्षा एवं बाल विवाह के प्रचलन से जब बहुत ही छोटी आयु में कन्याओं के विवाह होने लगे, उस समय स्त्रियों के अधिकारों की उपेक्षा स्वाभाविक थी।

(४) इस स्थिति में यह विचार उत्पन्न हुआ कि स्त्री स्वतन्त्र नहीं रह सकती, उसका कोई व कोई रक्षक होगा चाहिए<sup>४</sup>। इन सब कारणों ने हिन्दू समाज में नारी की स्थिति में बड़ा अन्तर आने लगा।

### वैदिक युग में दाम्पत्य अधिकार

वैदिक युग में उपर्युक्त कारणों में से कोई कारण विद्यमान नहीं था, अतः कुछ ऐसे कारण थे जिनसे स्त्रियों का अधिक महत्ता मिली। उस समय अनाथों के साथ संघर्ष था, अतः राजनीतिक दृष्टि से रत्नाओं की बहुत अधिक कामना थी जाती थी। ऋग्वेद में १० पृथ्वी को पैदा करने की भावना प्रकट की गयी है (१०।८५।४५)। मित्रां पुथ्वी के प्रत्येक काम में सहायक होने से समाज का अत्यन्त उपयोगी अंग थी और सम्पत्ति तथा त्यागवाद के विचारों के प्रबल न होने से विवाह एक आवश्यक कर्तव्य समझा जाता था। स्त्रियों के शिक्षित एवं सुसंस्कृत होने के कारण विवाह में उनकी इच्छा तथा अधिकारों का पूरा ध्यान रखा जाता था।

इन कारणों से पति-पत्नी के अधिकारों में उस समय बड़ा वैषम्य नहीं था। पत्नी घर की रानी थी और पति का कोई यज्ञ या धार्मिक कार्य पत्नी के बिना पूर्ण नहीं हो सकता था। ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर (१।७२।५, ५।३।२) पति-पत्नी द्वारा एकट्ठे होकर धरेलू कार्य व यज्ञ करने का वर्णन है। तै० ब्रा० (३।७५) उन्हीं यज्ञकूपी रथ में जुड़े हुए यो वैत कहता है। तै० ब्रा० (३।७।१) यह बताता है कि उस यज्ञकर्ता का आधा फल मष्ट हो जाता है, जिसे यज्ञ के दिन (ऋतुकाल के कारण) स्त्री नहीं प्राप्त होती है। अथर्ववेद यज्ञ में पत्नी घोंद्रे का अभ्यञ्जन करती है, अतः उसका इस यज्ञ में उपस्थित रहना अनिवार्य होता है। सीता के न होने पर राम को उनकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनवानी पड़ी थी (रा० ७।६१।२५)। यज्ञ में पति के साथ बैठने तथा यज्ञ की कियारें करने की दृष्टि से स्त्री को

<sup>४</sup> स्त्री की स्वतन्त्रता के विचार के लिए देखिये हरिदत्त—हिन्दू परिवार भीमांसा, पृ० ११७-८, पृ० ४३६-४०

'पत्नी' कहा जाता है (शत० बा० १।१६।२।१४, भाषिणि ४।१।३) तथा उसके साम्प्रत्य सम्बन्ध की बातों के लिए जाया शब्द का प्रयोग होता था। ब्राह्मण ग्रन्थों के समय से पति को पत्नी का आधा अंग कहा जाने लगा था (शतपथ ब्रा० ४।१।६।१०)। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (२।६।१४, १६, २०) तो पति-पत्नी में अभेद स्वीकार करते यह कहता है कि दोनों की सब कार्य एकट्ठे करने चाहिए।

बाद में यज्ञों में जाया की दृष्टि में स्त्री का महत्त्व घटने लगा। शत० (१।१।६।१३) में बात होता है कि एक यज्ञ में पहले जाया ही आहुति डाला करती थी, किन्तु बाद में इस कार्य को पुरोहित भी करने लगा। मनु के समय तक स्त्रियों की धार्मिक यज्ञों में पति के साथ सम्मिलित होने का पूरा अधिकार था, किन्तु उनसे मन्त्रोच्चारण का अधिकार छीन लिया गया था। मनु (३।१८१) यह कहता है कि सायकान के पके अन्न की बलि को पत्नी मन्त्रोच्चारण के बिना ही दे। इससे पहले गौतम धर्मसूत्र (४।६।२) और गोभिल गृह्यसूत्र (१०४।१६, १६) ने बलि का वर्णन किया था, किन्तु वे ऐसे किसी प्रतिबन्ध का उल्लेख नहीं करते।

यज्ञीय अधिकारों के सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि पत्नी को ये अधिकार समुक्त रूप में ही प्राप्त थे। पृथक् रूप में तो मनु के शब्दों के अनुसार (४।१४५) स्त्रियों के लिए कोई यज्ञ, दान या उपवास नहीं है (मिलाइये विष्णुस्मृति २४।१५, मार्क० पुराण १६।६१, महाभारत १।१५८।२६, १३।८।२०)।

यज्ञों में अधिकार कम होने से ब्राह्मणग्रन्थों के समय पत्नी रानी के दर्जे से मित्र के दर्जे तक उतर आयी (हिन्दू परिवार, पृ० ७२)। ब्राह्मण ग्रन्थों में स्त्रियों की निन्दा के अनेक वचन मिलते हैं, उनका अन्यत्र उल्लेख हुआ है (हिन्दू परिवार, पृ० ११६)। शत० ब्रा० (१।६।२।१२।) में कहा गया है कि पत्नी को पति के बाद भोजन करता चाहिए क्योंकि एक मास बैठकर भोजन करने से दुर्बल सत्ता पैदा होती है। बसिष्ठ धर्मसूत्र (१३।३१) में शतपथ का अनुमोदन किया गया है। बौधायन ने (१।१।१६) स्त्री के साथ बैठकर भोजन करने को पहिल आवश्यकता माना है। ऐत० (३।२४।७) व गोप (२।३।२२) ब्राह्मणों में जवाब न देने वाली (अप्रतिवादिनी) स्त्री की प्रशंसा की गयी है। इसी समय से स्त्रियों को जगहों बनाने की यह प्रक्रिया शुरू हुई, जिसका चरम विकास होने व्यास जैसी स्मृतियों में दिखायी पड़ता है।

### बौद्ध साहित्य में श्वशुर-बहू सधर्म

बौद्ध साहित्य से हमें ज्ञात होता है कि उस समय सास और बहू में घर में अधिकार के लिए बड़े ज्वरदस्त अगवहे होते थे। इनमें कभी-कभी सास के हाथ बाणी रहती और कभी बहू के। बौद्ध युग में सास पर शासन करने वाली बहू इस काल में कभी-कभी सास के अत्याचारों से इतनी अधिक परेशान हो जाती थी कि वह उसके अत्याचारों से बचने के

लिए मठों में शरण-द्वंद्वीयी (बेरीगाथा ४५, जल्ले० पौ० पु० १०७)। सास गुस्से में बहू को नुसल से पीटकर जान से मार डालती थी। किन्तु इसके विपरीत कुछ कहूँओं में पुराना शासन और रीज कायम रखा, ऐसे घरों में सासों को भिक्षुणी बनना पड़ता था (धम्मपड अ० क० ११५)। चार बहूएँ जब एक बार अपने स्वगुर में बहुत तंग आ गयीं तो उन्होंने उसे अपने घर में बाहर निकाल दिया। (धम्मपड अ० कथा ३२४)। जातक सं० ३२४ में सास-बहू के झगड़े की एक मनोरंजक कथा दी गयी है। दम में बहू ने सास को मारने का पूरा प्रयत्न किया, किन्तु वह असफल रही। वाराणसी में मगरमच्छों और घड़ियालों से भरी एक नदी के किनारे एक ध्वस्त रहता था। उमंगी गिरा के मरने पर माता ही उसकी देखभाल करती थी और उसके न चाहते हुए भी माना ने अपने लड़के का स्नान कर दिया। बहू ने पहले ही सास के प्रति प्रेम दिखाया, किन्तु पाप में लड़के-लड़कियाँ होते पर वह सास से छुटकारा चाहने लगी, बहू की माँ भी उसी घर में जाकर रहने लगी। बहू ने पति पर यह दबाव डाला कि मैं तुम्हारी माता की नज़ीरान सफ़ती, पुन उसे मार दो। लड़के ने पूछा—कैसे? बहू ने जवाब दिया कि जब वह मौ जाय तो हम उसे बिस्तार समेत घड़ियालों वाली नदी में डाल देंगे। सास और बहू की माता एक ही कमरे में सोती थीं। बहू ने सास की पहचान के लिए एक निशान बना दिया, किन्तु रात के अंधेरे में सास वाली खाट को उठाकर नदी में डाल दिया गया। अगले दिन बहू को यह पता चला कि रात को अंधेरे में उसने अपनी माँ की नदी में डाल दिया है। वह बहुत दुखी हुई। सास से छुटकारा पाने की दूसरी योजना यह कनी कि उस बुढ़िया का प्रमथान में आस दिया जाय। एक रात पति-पत्नी रात को सोती हुई रास का प्रमथान में ले गये, किन्तु वहाँ आस न मिली। पति आस लेने के लिए जाने लगा, किन्तु पत्नी वहाँ अकेले में हर अंग के कारण उसके साथ चली गई। उधर प्रमथान की ठण्डी हवा में बुढ़िया की नींद खुल गयी। आस-प्राप्त का हाल देखकर उसे सारी स्थिति समझ में आ गयी। उसके जल्दी से उठकर पास ही पड़ी एक लाश को उस बिस्तार में बाँध दिया और स्वयं एकाग्रा में छिप गयी। पति-पत्नी ने झूठकर चिता का आस लगा दी। उधर बुढ़िया का धुआँ में हारे, मोती, व आभूषणों की एक पोतली मिली। सबेरे जब वह उस पोतली के साथ घर पहुँची तो बहू के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। सास के पास हारे-मोती देख कर उसने झुंड में पानी भर आया। उसने पूछा कि आपने ये कहाँ पाये। जालाक बुढ़िया ने जवाब दिया कि इस प्रमथान की चिता पर जलते वाले सभी व्यक्तियों का जीवन के क्षण के साथ यह पोतली भेंट मिलती है। बहू बुढ़िया के हाँसे में आ गयी और यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अपने जालक में बहू चिता पर जल भरी और सास को बहू से मुक्ति मिली। अगुसर निवास की अ० क० (१:७:१२) में विवाह के अपने स्वगुर के साथ बड़े मनोरंजक झगड़े का वर्णन है। इस झगड़े का निर्णय करने के लिए पंच इकट्ठे होते हैं। वे विवाह का निर्णय पाते हैं और अन्त में स्वगुर विवाह से क्षमा माँगता है। किन्तु बोड

तन्हीं में सामान्य रूप से बहुओं में अपने मातृ-पितृ के प्रति आदर भाव पाया जाता है।<sup>१</sup>

### महाभारत में दाम्पत्य कर्तव्य

महाभारत में हमें पति-पत्नी के कर्तव्यों के सम्बन्ध की बहुत-सी बातें ज्ञात होती हैं। पहले यह बताया जा चुका है कि हिन्दू शास्त्रों में पति की अपेक्षा पत्नी के कर्तव्यों पर अधिक बल दिया गया है, किन्तु महाभारत इसका अपवाद है। महाभारत में हमें पति-पत्नी के सम्बन्धों के संघिर्वास का धूँधला-सा जिल मिलता है। इसमें यदि पति द्वारा पत्नी में कुछ कर्तव्यों की आशा की जाती है, तो पत्नी पति से भी उसके कर्तव्यों के पालन की माँग करती है। यद्यपि सामान्य रूप से महाभारत पत्नी के लिए पति की देवता मानने के विचार पर बल देती है, किन्तु उसमें प्राचीन संघर्ष की कुछ झलक अवश्य है। इसमें सारी अपने अधिकारों की रक्षा के लिए प्रयत्न कर रही दृष्टिमोचर होती है।

शकुन्तला ने दुष्यन्त द्वारा तिरस्कृत होने पर पति-पत्नी धर्म की विस्तृत मीमांसा की है (महाभा० १।७४।३७)। उसके बारे माघण में बड़ा ओष और उन्नता है। हमें इसमें संदेह है कि आजकल स्त्री की स्वतंत्रता तथा समानाधिकार के लिए उक्त आन्दोलन करने वाले नारीवादी (Feminist) पत्नी संज्ञना से नारियों के महत्त्व का प्रतिपादन करते हैं। उनके मतानुसार "स्त्री मनुष्यों का बाया अंग है, स्त्री पुरुषों का चेटुलम मित्र है, विवर्ग का भूत है, एकान्त में श्रिय बोलने वाला सखा है, धर्म-कर्म में हितैषी पिता के समान है, पीड़ा की दशा में माला के समान है। यह पति के लिए विद्यावान् रास्ते में पथिक को आश्रम देने वाले स्वयं की भाँति है, अतः अति क्रुद्ध होने पर भी पति को पत्नी का अधिष्ठित कार्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि रति, प्रीति और धर्म सब भार्या के द्वारा हैं।"<sup>२</sup> शकुन्तला की गारी मुक्तियों का सारोप है कि पति पत्नी के बिना ग धर्म को पूरा कर सकता है और न सुखी रह सकता है, अतः हमें ओष के आवेश में भी स्त्री की दण्डा के विरुद्ध कोई काम नहीं करना चाहिए।" निःसंदेह शकुन्तला का यह बहुत बड़ा दावा था और वैदिक युग की भावना को सर्वथा अनुकूल था। किन्तु शास्त्रकारों ने इस अधिवाह को नहीं माना, और भार्या के अग्रियवादिनी होने के दाँप पर ही, एक पत्नी को छोड़ कर दूसरी पत्नी को ग्रहण करने का आदेश दिया (वैधावन धर्मसूत्र तथा मनु)। भारतीय आदर्शों का चिन्तन करने वाले कालिदास ने शकुन्तला को कण्व के मुँह से यही उपदेश दिनवापा था कि पति द्वारा अपमानित होने पर भी पति के प्रतिकूल आचरण मत करना (अभि० शा० ४।१८)।

<sup>१</sup> बेरी गाथा, श्री अलेकर द्वारा उद्धृत, देखिए मोजीवान् आफ बुर्मन

<sup>२</sup> महाभा० १।७४।२२ सुसंस्कृतमपि रामाणां न कुर्वावप्रियं नरः।

रति प्रीति च धर्म च तास्वपायतमवेक्ष्य हि ॥



## पति का मुख्य कर्तव्य—पत्नी का पालन

महाभारत में पति का प्रथम कर्तव्य पत्नी का भरण-पोषण करना बताया गया है। पत्नी भरण करने योग्य होने में भार्या कहलाती है, इसका भरण करने वाले व्यक्ति को भर्ता कहा गया है और उसका पालन करने से वह पति कहलाता है। ओं पति अपनी पत्नी का पालन न कर सके तो क्या उसे छोड़ कर पत्नी दूसरा विवाह कर सकती है; यह प्रश्न कुछ विवादार्थक है। दीर्घतमा श्री पत्नी प्रश्नेपी आने पति को उम्मेक कर्तव्य का स्मरण कराती हुई कहती है (१।१०।४।३१) कि "मै तुम्हारी उन्मत्तधन के कारण तुम्हारा और तुम्हारे पुत्रों का भरण-पोषण करती नरती भक घसी हूँ, अब और भरण नहीं कर सकूंगी"। इसके बाद अगदें में यह आर्ष पति को गुन्धी द्वारा बोला से पिटाया देती है। महाभारत (१२।२६६।३६-३७) में यह स्पष्ट कहा गया है कि सन्तुष स्त्री के भरण में भर्ता और पालन से पति कहलाता है, यदि वह उस कर्तव्य का पालन नहीं करता तो वह भर्ता नहीं है और न पति।<sup>६</sup> पति की हर हालत में पत्नी का पोषण करना बाह्य, यह विचार स्मृति-कारों ने बहुत बल के साथ रखा है। मनु ८।३८६ में कहा है कि माता-पिता, स्त्री और पुत्र समा के योग्य नहीं हैं, उनकी सेवा और भरण-पोषण की नहीं छोड़ा जा सकता। इन की छोड़ने वाले को राजा की ओर से ६०० पण का दंड होता चाहिए।<sup>७</sup> याज्ञवल्क्य (१।७४) एक पुरुष द्वारा दूसरा विवाह कर लेने पर पत्नी स्त्री के भरण-पोषण का आग्रहक कर्तव्य मानता है। यदि पुरुष आज्ञा पालन करने वाली, दम पुत्र पैदा करने वाली, मधुर बोलने वाली स्त्री को छोड़ देता या तो याज्ञवल्क्य के अनुसार उसे अपनी मर्मांत का तीव्रता हिंसा पत्नी को देना पड़ता था। यदि पति निर्धन हो तो उसे पत्नी का भरण-पोषण तो व्यवस्था करना पड़ता था (मात्र० १।७६, नारद स्त्रीपु० २५)। दशस्मृति (२।३६) योग्य वर्ग में अर्थात् पालन-पोषण करने योग्य व्यक्तियों में पत्नी की गणना करती है। हम आगे यह देखेंगे कि वर्तमान अदालत श्री पति के भरण के कर्तव्य पर दख देती है।

## स्त्री की पराधीनता

धर्मसूत्रों के समय से बातविवाह के प्रचलन तथा कन्या की शिक्षा के बन्द होने से

<sup>६</sup> महाभारत १।१०।४।३१, भार्याया भरणःपूर्ता पालनाच्च पतिः स्मृतः। मि० १२।२६६।३६ भ्रणार्थि स्त्रिया भर्ता पालनाच्च स्त्रियाः पतिः। गुणस्यास्य निपुणो नृप न भर्ता न पुनः पतिः।

<sup>७</sup> मनु ८।३८६, न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हेति। त्यजन्पतितानेतायाता वण्ड्यः शताणि षट् ॥ यह श्लोक धर्मशास्त्रकारों को बहुत प्रिय है, दे० मनु० ६।३, गौ० ध० सू० १।१।१, बसिष्ठ ध० सू० ५।१।२, याज्ञ० १।८५, नारद १३।२८।३१, विष्णु २५।१२।१३, महानिर्णयतन्त्र ८।१०६, बीया० २।२।५२, भा० १३।२०।३१।

स्त्री की स्थिति मिरने लगी और उसके अधिकारों का ह्रास होने लगा। उसी समय यह सिद्धांत प्रचलित हुआ कि स्त्री स्वतंत्र नहीं है, कथपन में पिता उसकी रक्षा करता है। जीवन में पति और कुटुम्ब में पुत्र, स्त्री कभी स्वतंत्र होने योग्य नहीं है (मनु० ६/३)। बौधायन धर्मसूत्र उसी वाक्य के साथ यह कहता है कि पति की आज्ञा का पालन करके पत्नी स्वर्गलोक प्राप्त करती है। स्त्रियों की इस सामंतीय अवस्था से क्षुब्ध होकर एक आधुनिक स्त्री ने यह सिद्धांत कि हिन्दू स्त्री पति से केवल एक ही स्थान पर स्वतंत्र हो सकती है और वह स्थान है नरक।<sup>१०</sup>

चारुतम में दम सम्बन्ध में हमें बहुत अधिक भावुक न लगते हुए, उस समय के, समाज की स्थिति को देखना चाहिए। जब कमाओं की छांटी आगु में शादी हो और वे मिलकुल ज्ञानगुल ही, तब उन्हें स्वतंत्रता कैसे दी जा सकती थी? न केवल भारत के किन्तु उस समय दूसरे सभ्य समाजों की भी यही दशा थी। टकरने प्राचीन मृतानी समाज के विषय में लिखा है कि प्राचीन यूनान में कोई स्त्री अपने जीवन के किसी भी समय में संरक्षाहीन नहीं हो सकती थी। यदि उसका पति जीवित न हो तो उसका निकटतम पुरुष सम्बन्धी उसका अभिभावक होता था और उसका स्नाह होने के बाद भी वह अभिभावक बना रहता था। पति के निधित, सभ्य और वात्सल्यगुल होने के कारण पत्नी पर उसका प्रभाव रहना आवश्यक था।

**मनु का आदर्श**—मनु ने विवाह के विषय में जितना अच्छा आदर्श हमारे सामने रखा है, वह संभवतः किसी अन्य स्मृतिकार ने नहीं रखा। उसके मतानुसार पति-पत्नी आसुरण एक-दूसरे के प्रति सच्चाई (अव्यभिचार) का व्यवहार करें, संशय में वही स्त्री-पुरुषों का सर्वोच्च धर्म है। विवाह करने स्त्री-पुरुष ऐसा दलत करें कि (धर्मोपकाम के विषय में) एक दूसरे से अलग होकर आपस में प्रतिज्ञा भंग या व्यभिचार न करें।<sup>११</sup>

**स्त्री के अन्य कर्तव्य**—स्मृतिकारों ने स्त्री का परम धर्म पति की सेवा और घर का काम करना बताया है। पतिसेवा उसके लिए मुख्य में निवास के तथा घर का काम अग्निहोत करने के तुल्य है (मनु २/१७)। उसके गारिद्वारिक कामों का वर्णन करते हुए मनु कहता है (५/१५०, ५/१५१) “स्त्री का धर्म है कि वह सदा प्रसन्न रहे, घर के कामों में अतुर हो, घर की सामग्री को साफ रखे, खर्च कम करे, पिता से अथवा पिता की अनुमति से भाई ने स्त्री को जिस पति को सौंप दिया, वह उस पति के जीने तक उसकी सेवा

<sup>१०</sup> रमाबाई—बी हार्ड कार्ट हिन्दू धर्म, पृ० ४१। इस विषय के विस्तृत विवेचन के लिए देखिये हरिदत्त—हिन्दू परिवार मोमासा, पृ० ११८

<sup>११</sup> मनु ६/१०१-२ अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः। एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः॥ तथा निरयं यतेमासा स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ। यथा नामि-  
चरेतां तौ विमुक्तावितरेतरम्।

करे, उसके मरने पर भी उसका उत्सर्जन न करे। पति के लोक में जाने की इच्छा वाली पतिव्रता स्त्री को उचित है कि वह अपना पाणिग्रहण करने वाले पति के जीवन काल में अथवा उसके मरने पर भी उसका कोई अग्रिम कार्य न करे।" ये बातें ती-टीक थीं, किन्तु इनके अतिरिक्त मनु ने ५।१५४ में अपने उपर्युक्त वैवाहिक आदर्शों के सम्बन्ध प्रतिकल्प यह कहा कि पतिव्रता स्त्री को उचित है कि पति यदि शीघ्रमृत्यु, परस्त्रीगमन अथवा गुणों में हीन हो तो भी वह देवता के समान उसकी सेवा करे।

### पतिव्रत का आदर्श तथा माहात्म्य

मनु स्त्रियों के लिए पतिव्रत धर्म का गान्त। परम्परा के उत्तम कर्त्तों के प्रबोधन से तथा नरक के दुष्कर्त्तों की भीति द्वारा भावजनक बना देना चाहता है। "जो स्त्री मनु, कचन और देह से भी गरुपुरष के साथ व्यवहार करती रहती है, वह मरने पर पनि के साथ स्वर्ग में निवास करती है और श्रेष्ठ लोगों द्वारा पतिव्रता कही जाती है। जो स्त्री पति के साथ व्यवहार करती है, वह इस लोक में निन्दित होती है, मरने पर सिधारित बनती है और अनेक लोगों से पीड़ित होती है" (मनु ६।२८-३०, ५।१६८)। महाभारत तथा पुराणों में पतिव्रता का महत्त्व को अताने के लिए अनेक किंवदन्तियाँ और चमत्कार बताये गये हैं। कृष्ण ने पतिव्रता गान्धारी से कहा है कि शुभ अग्निशोध में दीप्य मेघ द्वारा मारी पृथ्वी को जलाने में समर्थ हो (६।३।२१)। मावित्री ने धर्म में अपने पतिव्रत के प्रभाव से मृत पनि को पुनः प्राप्त किया था (महाभारत ३।२६३-२६६)। कायव इसी आधार पर स्कन्दपुराण (३ ब्रह्मखण्ड, धर्मोपनिषद् ३।५४, ५५) कहता है कि "जैसे सपेरा जिन से साँप का निवृत्तता है, वैसे ही पतिव्रता अपने पनि के जीवन को मृत्यु के दूतों से छीन लेती है, पति के साथ स्वर्गलोक को पहुँचती है, पतिव्रता को देखकर यमदूत भाग जाते हैं।" पतिव्रता के माहात्म्य की पराकाष्ठ। हिन्दूधर्म में स्त्रीप्रथा के रूप में हुई।

**पतिव्रता के कर्त्तव्य**—स्मृतिवर्ग में पतिव्रता स्त्रियों के अनेक कर्त्तव्य बताये गये हैं। आसस्मृति (२।२१ प्र०) स्त्री के दैनिक कर्त्तव्यों का वर्णन करती हुई कहती है कि "वह पति से पहले उठे, शरीर की धुँडि करे, शय्या को ठाँपे, झाड़ू आदि में घर का साफ करे, अग्निशाला व आंगन को सीप कर मुँह करे। (चौके से) बाहर रसाई के सब पारों को धोये, मिट्टी के चूल्हे को सीप कर उसमें आग रखे। पाली के समान सदा पनि को आज्ञा का पालन करे, रसाई बनाकर बलिबैश्वदेव दिये हुए अन्न को पुतादि को और पनि को खिलाये और पति की आज्ञा होने पर बचे हुए अन्न से स्वयं भोजन करे। भोजन करके शेष दिन को आनन्दनी और छर्चे की भिन्ता में बिताये।" पतिव्रता स्त्री निरप ही उत्तम स्वादिष्ट पक्वान्न बनाकर प्रीतिपूर्वक पति को खिलाये, फिर स्वयं भोजन करके भत्ती प्रकार शय्या को बिछाकर पति की सेवा करे, पति के सो जाने पर धन में पति का ध्यान करती हुई उसके निकट से जावे।

**स्त्री के लिए निषिद्ध कार्य**—अनेक स्मृतियों में पत्नी के लिए निषिद्ध कार्यों का विस्तार से परिचयन किया गया है। उदाहरणार्थ, मिताक्षराकार विशानेश्वर वाज० १।८७ की टीका में स्त्रियों के जीवन आचार के विषय में शेष द्वारा निर्दिष्ट निम्न निषेधों का उल्लेख करता है—“वह घर से बिना कहे बाहर न जाये, उत्तरीय ओढ़े बगैर न जाये, जल्मी न चले; बनिवे, संन्यासी, बूढ़ बैर के अतिरिक्त किसी परपुरुष से बात न करे, अपनी नाभि खुली न रखे, एड़ी तक कापड़ा पहने, स्तनों पर से कापड़ा न हटाये, वह मुँह बने बिना न हँसे, गति या मंचंधियों से धुना न करे। वह बेपया, धूर्त, अभिमारिणी, संन्यासिनी, भाव्य वागने वाली, जादू-टोना तथा गुप्त विधियाँ करने वाली दुःशील स्त्रियों की संगति न करे। इनकी संगति से कुलस्त्रियों का खरिख खराब हो जाता है।”

पति के विदेश जाने पर, मोपितपतिका पत्नी को सब प्रकार के आनन्दों से बचे रहने का परामर्श दिया गया है। राजवल्क्य कहता है (१।४।८)—“मोपितपतिका गेव वादि के खंय, शरीर की सजाना, समान और उत्तव देखना, हँसना और दूसरे के घर में जाना छोड़ दे”। व्यासस्मृति (२।५२) तो इस वशा में पत्नी को पेट भर कर पूरा भोजन करने से भी मना करती है। शंख-निश्चित ने मोपितपतिका के करणीय कर्तव्यों की एक तन्वी सूची दी है। उसे झूठे और नाच से बचे रहना चाहिए। शिव नहीं देखने चाहिए, उपवनों में नहीं घूमना चाहिए, खुले स्थानों में अनावृत होकर नहीं सीना चाहिए, उत्तम भोजन और पेश में खचना चाहिए, गेव से खेलना, सुसंश्रित द्रव्य, झूला और आभूषण, दन्त मंजन और आँख का अंजन उसके लिए वर्जित है।

**पतिव्रता बनाम पत्नीव्रत**—स्त्री के धर्म संक्षेप में कहने हों तो ये ये हैं—“मन, वचन, शरीर से बूढ़ रहती हुई वह हमेशा छाना की तरह पति का अनुसरण करे, सखी के समान पति का हित करे, दासी के समान पति की आज्ञा का पालन करे।” एक जगह में कहें तो पति, पत्नी का देवता है। महाभारत के शब्दों में “स्त्रियों के लिए पति देव है”। पति अच्छा हो वा बुरा, उचित आज्ञा दे वा अनुचित, पतिव्रता पत्नी का तो एक ही कर्तव्य है कि वह उसे आँख मूँद कर माने और उसकी इच्छा पूरी करे क्योंकि पति देवता है, देवता की आज्ञा का पालन होना चाहिए। हिन्दू तारियों का आदर्श पतिव्रता सीता हैं। उनके आदर्श बचन ये हैं—“स्त्री के लिए पति देवता है, वही उसका गुरु और बन्धु है, अतः पत्नी को प्राणों द्वारा (अपने प्राण देकर भी) पति के लिए प्रिय कार्य करना चाहिए।”

सीता के इस आदर्श पर चलती हुई करोड़ों हिन्दू स्त्रियों ने पतिव्रता के कठोर धर्म का पालन किया है।

अब वैवाहिक अधिकारों के सम्बन्ध में निम्न प्रश्नों पर विचार किया जायगा।

- १- पत्नी को दण्ड देने का अधिकार,
- २- वाम्पत्य अधिकारों की पुनः प्राप्ति,
- ३- व्यभिचार विषयक नियम।

### दण्ड का अधिकार

पति अपनी पत्नी को दो प्रकार से दण्ड दे सकता है—पीट कर या जुर्माना करके। वर्तमान युग में भले ही हम पीटने के अधिकार पर नाक-भौं सिकोड़ें, किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि पुराने जमाने में यह अधिकार सब देशों के पतिव्रतों को प्राप्त था और सम्प्रति के अधिमाजी एंग्लोइण्ड में १८६१ तक पति पत्नी को पीट सकता था। पुराने जमाने में भारत में जब रिश्ता अपने अधिकारों के प्रति जागरूक थी, पति अपनी पत्नी को एक निश्चित मर्यादा के भीतर ही पीट सकता था। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र (५.६।६-११) में यह व्यवस्था की थी कि "यदि स्त्री पति की आज्ञा न मानती हो तो पति उसे 'नंगी', 'अधनंगी', 'वापमरी', 'मांमरी' आदि गालियाँ न देकर मर्यादापूर्वक रझने की शिक्षा दे। यदि इस प्रकार शिक्षा देने पर भी पत्नी उसकी आज्ञा पर ध्यान न दे तो बांग की पत्नी अपनी, रस्सी या हाथ में उसे तीन बार मारा जा सकता है। यदि वह फिर भी वह न माने तो (अदालत द्वारा) उसे बामदण्ड या योग्य दण्ड का आधा दण्ड दिया जा सकता है"। इतने में यह स्पष्ट है कि पति अपनी पत्नी को तीन से अधिक बपंड़ नहीं मार सकता था। मनु (५।२६६-१००) अपराध करने पर स्त्री, पुत्र, दास, नौकर और भाई को रस्सी या बाम की अपनी (बेगुरल) से पीटने का विधान करता है, किन्तु इस बात के साथ कि इन्हें सर्वत्र पीट प्रहार जाह, सिर पर नहीं। इस नियम का उल्लंघन करने वालों को पार का दण्ड दिया जाना चाहिए। गणस्मृति (१४।१६) के अनुसार भाई को सर्वत्र प्यार करना चाहिए और मारना भी चाहिए क्योंकि ऐसा करने से वह स्त्री शोचनीय होती है, अन्धसा नहीं। इन अवसरों से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में पति को कुछ उद्देश्य से तथा कुछ मर्यादाओं के भीतर रहते हुए पत्नी को पीटने का अधिकार था।

पत्नी को दण्ड देने का दूसरा उपाय उस पर जुर्माना करना या उसकी सम्पत्ति छीनना था। मनु (६।८४) के अनुसार जो स्त्री रोके जाने पर भी सराब पीती थी या घर से बाहर नाज-उमारा देखने जाती थी उसे अर्धदण्ड दिया जाता था। मनु (६।७७) के अनुसार पति अपने से ब्रेष रखने वाली स्त्री को एक वर्ष तक देखता रहे, एक वर्ष के बाद भी यदि वह ब्रेष करे तो पति उसकी सम्पत्ति छीन ले और उसको सहवास के सुख से वंचित कर दे।

### दाम्पत्य अधिकारों की पुनः प्राप्ति

विवाह ही जाने पर पति-पत्नी का यह अधिकार है कि वह परस्पर सहवास के सुख का उपभोग करें। यदि उन दोनों में कोई एक दूसरे को इस अधिकार से वंचित करता है तो वह निःसंदेह अधर्म करता है। बौधायन धर्मसूत्र ४।१।१६।२०-२२ ने इस विषय पर बहुत स्पष्ट व्यवस्था दी है कि "यदि पति तीन वर्ष तक श्वशुरमती स्त्री के पास नहीं जाता है तो उसे भ्रूणहत्या का पाप लगता है, जो स्त्री पति की अपने पास जाने से रोके, उसे पति

गति में झूणतृत्वानी प्रसिद्ध करके घर से बाहर निकाल दे"। समाज में संन्यास एवं त्यागवाद की प्रवृत्ति बढ़ने पर बहुत से लोग संन्यास लेने लगे थे। यह पत्नियों के साथ अन्त्यास था। महाभारत में इस विषय पर कुछ प्रकाश पड़ता है। राजा जनक ने राज्य छोड़ कर काश्या नरक व्रतण पर गिये और भिसावृत्ति का निश्चय किया। उस समय उनकी पत्नी ने इस अकरणीय कार्य के लिए पति को बहुत कुछ कहा (महाभा० १२।१५। १५)। उसके शब्दों में—“गुम धर्मपत्नियों का परित्याग करके अब जीना चाहते हो। इस कार्य में तुम्हें पाप मरण, दुर्लोक और परलोक दोनों का त्याग नहीं मिलेगा”। इससे स्पष्ट है कि अश्ली विवाहित स्त्री का परित्याग कर संन्यासी होना पाप था, क्योंकि इससे वह स्त्री दाम्पत्य गुण से संबंधित होती थी। किन्तु उस समय स्त्री इस अधिकार की प्राप्ति के लिए या भगवत्प्रेषण के किसी अधिकार की प्राप्ति के लिए अवसलत में बाधा देकर कर नहीं सकती थी। मारुत ने (५।८६) पति-पत्नी के शगड़े को संबंधियों या राजा के पास ले जाने का निषेध किया है। मितक्षर (२।२।६४) अवश्य यह कहती है कि पति-पत्नी के शगड़े राजा के पास नहीं ले जाने चाहिए, किन्तु यदि राजा की प्रत्यक्ष रूप से या कर्णपरम्परा द्वारा किसी शगड़े का शम होता है तो उसे अवश्य पति-पत्नी को तीक गान्ते पर लाना चाहिए। स्त्री की स्थिति गिर जाने में सामय ऐसे सख्यों को राजा के सामने लाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी।

व्यभिचार के विषय में हिन्दू कानून अन्य देशों के कानूनों की अपेक्षा स्त्री के प्रति अधिक उदार है यद्यपि पुरुष के इस अपराध के लिए कठोर दण्ड थताया गया है। मनु के मत में परस्त्रीगमन गौवध आदि के सनान उपातक है (१।१।६०), और इस पाप की शुद्धि आन्दायणवत से ही सकती है (१।१।६८)। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (२।१।२६। १८-२१) ने किसी स्त्री के साथ व्यभिचार करने वाले पुरुष को शिषणछेद का भयंकर दण्ड दिया है और यदि यह स्त्री वृधारी हो तो व्यक्ति की सारी सम्पत्ति जब्त करके उससे देश-निर्वासन का विधान किया गया है। विष्णु स्मृति (५।१८६) में परस्त्रीगमन को आततायी माना गया है और आततायी को मारने का पूरा अधिकार है (मि० व० ४० सू० ३।१६-१७)। महानिर्वाणान्त (१।१।५३) में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि यदि कोई अपनी पत्नी को किसी दूसरे की भुजाओं में देखता है और वह दोनों को मारता है तो राजा उसे दण्ड न दे। टाड द्वारा वर्णित (एनलस, ख० २, पृ० ३२३) ब्रवी के सुवराज गोपीनाथ की कथा से उपर्युक्त दण्ड की पूर्ण होती है। गोपीनाथ एक रात की ब्राह्मण की पत्नी के पास जाता है, ब्राह्मणी का पति राजा से आज्ञा प्राप्त करके युवराज को मार देता है। राष्ट्र ने गोरखों के कुछ ऐसे उदाहरण दिये हैं (हिस्ट्री आफ नैपाल, पृ० ३२)। मनु ने ८।३५६-३५६ में परस्त्रियों के साथ मदी, लीन, जघान में बल करने, माताओं व सुगंधित वस्तुओं आदि का उपहार भेजने, धोड़ा करने, स्त्री के कपड़ों व आभूषणों को छूने, पद आद पर बैठने, अदेष (अन्धान) में स्त्री को स्पर्श करने पर ब्राह्मणतर पुरुष

के लिए मृत्युदण्ड की व्यवस्था की है। अगनी जाति और गृणी के अभिमान में परपुरुष के साथ संग करने वाली स्त्री के दण्ड का आगे उल्लेख होगा। किन्तु ऐसा अपराध करने वाले पुरुष को मनु में लोहे के गरम विस्तर पर आग में जला देने का विधान किया है (८।३.७२)। मारुत ने (१.६।२) व्यभिचार की, महापाप बताते हुए पुरुष पर १००० पण के दण्ड की, सम्पत्ति की अर्धी की, निष्कासन की, शिम्नछेदय की और मृत्यु-दण्ड की व्यवस्था की है।

व्यभिचारी होने पर गुरुओं के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था करने हुए, शास्त्रकारों ने व्यभिचारिणी स्त्री को दण्ड देने में तरसी दिखायी है। मनु (८।३.७१), गौतम (१२.३।१४) और महाभा० (१२।१५.५।६१-६४) ने यथार्थ उग्र विषय में उग्रता दिखायी है और व्यभिचारिणी स्त्री को गार्वजगत स्थान में कुत्तों द्वारा गटवाये जाने का विधान किया है, किन्तु अतिपात्र स्मृतिकार हल्के दण्ड तथा नरम प्रायश्चित्त को पर्याप्त समझते हैं। कुछ स्मृतिकार यहाँ तक कहते हैं कि उन्हे सुद्धि की आवश्यकता भी नहीं, बल्कि रजःस्राव से ही मुक्त हो जाती है। व्यभिचारिणी होने पर भी उसे पति से भरण-पोषण पाने का पूरा अधिकार है। मनु ने स्वयं १.१।१.७७-७८ में व्यभिचारिणी होने पर स्त्री को घर में रोक रखने तथा रोक़ी जाने पर व्यभिचारिणी होने पर भी चान्द्रायण व्रत से उसकी सुद्धि मानी है। याज्ञ० (१।७.०) कहता है कि व्यभिचारिणी स्त्री से घर के सब अधिकार छीन कर, जैसे शस्त्र पहिना कर उसे केवल जीवित रहने के लिए निर्बाह योग्य भोजन देकर, अनादर के साथ सदा भूमि पर सुत्ताना चाहिए। मारुत (१.२।६१-६२) ने ऐसा विधान किया है, किन्तु पुराने मूलकार इस हद तक नहीं गये थे। बौधायन २।२।५० में सामान्य व्यभिचार में कुछ व्रत से और गृह के साथ समागम करने पर चान्द्रायण व्रत से स्त्री का शुद्ध होना मानता है। वसिष्ठ (२.१।५-१०) व्यभिचारिणी स्त्री को सुद्धि की बड़ी विस्तृत विधि देता है। अनेक शास्त्रकारों का मत है कि स्त्री व्यभिचार से दूषित नहीं होती है। याज्ञ० (१।७।१) ने कहा है कि स्त्रियों को पन्द्रमा ने शौच, गन्धर्व ने उत्तम वाणी और पवित्रता दी है, इसलिए स्त्रियाँ सब प्रकार से पवित्र हैं। बौधायन (२।२।५७) ने स्त्रियों की सर्वथा शुद्ध होने की दृढ़री-युक्ति यह दी है कि प्रतिमास का रजःस्राव इनके पापों और मत्तों को दूर करता है<sup>१३</sup>। दह युक्ति अति ३।१.६५ में भी पानी जाती है। याज्ञवल्क्य ने परपुरुष से प्राप्त गर्भ को त्यागने पर व्यभिचारिणी स्त्री को सुद्धि मानी है। अति (३।१.६१-३, मि० देखल ५०-५५) ने विस्तारपूर्वक यह बताया है कि स्त्रियों को अपनी व्यभिचारिणी स्त्रियों का परित्याग नहीं करना चाहिए, स्त्रियाँ किसी भी सम्बन्ध से दूषित नहीं होती, क्योंकि प्रति मास रजःस्राव उनकी अशुद्धि को

<sup>१३</sup> बौधायनधर्मसूत्र २।२।५७, शिष्टयः पवित्रमनुत्तं तथा बुध्यन्ति कर्हिहित् । मासि मासि रजो ह्यसौ दुरितान्यपकर्षति ॥

धो देना है। केवल गर्भ होने पर ही वह कल्प (सन्तान) की प्रतीक्षा करे उसके निकल आने पर रजःस्राव के बाद के कुछ ही जाती है।

शास्त्रकारों द्वारा स्त्री को व्यभिचार को इतने हलकेपन से देखे जाने का विशेष कारण है। वे स्त्री को सर्वदा परतन्त्र समझते थे, अतः स्त्री यदि ऐसा कार्य करती है तो हम पाप के लिए उसका पति दोषी है, जो उस पर ठीक तरह नियन्त्रण नहीं रखता है। इसी लिए बर्हिष्ठ धर्मसूत्र (१६।४४) में तथा मनु ८।३१७ में कहा गया है कि स्त्री के व्यभिचारिणी होने पर उसके पति को उसके व्यभिचार का पाप लगता है।

स्त्रियों के व्यभिचारिणी होने पर, केवल पुराने शास्त्रकारों ने ही उन्हें हलका दण्ड नहीं दिया, बल्कि वर्तमान विधान-निर्माताओं ने भी भारतीय दण्ड विधान में व्यभिचार को दण्डनीय अपराध बताते हुए स्त्री को इस अपराध के दण्ड से मुक्त किया है। स्त्री को ऐसी छूट देने का कारण वा कमीशन ने इस प्रकार स्पष्ट किया था—“इस देश की स्त्रियों की रीति ब्रूमिण्यवश श्रमलैष्य और फास की स्त्रियों से सर्वथा भिन्न है। उनका बचपन में विवाह हो जाता है। पति गृहस्थी मुखती पत्नियों के कारण उनकी अपेक्षा करता है। अपनी कई सौतों के साथ ही वे पति का ध्यान अपनी ओर खींच सकती हैं। जब तक पति का अपना अन्तःपुर स्थियों से भरने की कागुत द्वारा पूरी स्वतन्त्रता किसी हुई है, तब तक पत्नी के व्यभिचार को दण्डनीय अपराध बनाने के कानून को हम राष्ट्रीय नहीं समझते”।

गुनाविवाह के विषय में स्त्रियों के साथ वास्तव में अन्याय हुआ है, किन्तु इस विषय को हम अगले अध्याय में विस्तार से देखेंगे।



## विवाह-विच्छेद या तलाक

हिन्दू समाज में यह विश्वास पाया जाता है कि विवाह एक अविच्छेद्य सम्बन्ध है, पति-पत्नी के जीवनकाल में विवाह विच्छेद नहीं हो सकता, मृत्यु भी इस सम्बन्ध को भंग नहीं कर सकती, सही स्त्रियाँ जन्म-जन्मान्तरी में भी अपने पति का प्राण करती हैं। उनमें कोई संदेह नहीं कि यह विश्वास पिछले काल के धर्मशास्त्रों में तथा पुराणों में प्राप्त होता है, किन्तु यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो मान्य होगा कि दूसरी सताब्दी ई० पू० से भगुम्भूति तथा इसके बाद की अन्य स्मृतियों ने विवाह को अविच्छेद्य सम्बन्ध के रूप में प्रतिपादित किया। । उनमें पहले सभी विवाहों को यह पवित्रता नहीं मिली थी। स्त्रियों का एक विवाह हो जाने के बाद उन्हें कुछ विशेष अवसरों में दूसरा विवाह करने का अधिकार था। भगुम्भूति के बाद की कुछ स्मृतियों ने भी स्त्रियों का यह अधिकार स्वीकृत किया, किन्तु बाद में हिन्दू समाज में स्त्रियों की इस गिरावणी गयी और उनसे यह अधिकार छिन गया।

### वैदिक काल में स्त्री का पुनर्विवाह

वैदिक युग में पति के मर जाने पर पत्नी को दूसरा विवाह करने का अधिकार निश्चित रूप से था।<sup>१</sup> यदि पति-पत्नी का सम्बन्ध अविच्छेद्य है, तो पत्नी को दूसरे विवाह का अधिकार नहीं होना चाहिए। उसे आभरण वेश्म का जीवन बिताते हुए अपने मृत पति की भक्ति करनी चाहिए। हम आगे चल कर यह देखेंगे कि जिस समय से हिन्दू समाज में विवाह को अविच्छेद्य सम्बन्ध मानने का सिद्धान्त पूर्ण रूप से माना जाने लगा, उसी समय से स्त्रियों का दूसरा विवाह बन्द हो गया। किन्तु वैदिक साहित्य में स्त्रियों के पुनर्विवाह के कुछ संकेत मिलते हैं। अथर्ववेद के एक मन्त्र में स्त्री के पुनर्विवाह की चर्चा है—“जो पहले पति को प्राण करने के पश्चात् दूसरे पति को प्राप्त करती है, वे दोनों, ‘पंचोदन अज’ को देते हैं और पूषन् नहीं होते। जो दूसरा पति ‘पंचोदन अज’ और दक्षिणा तेज से युक्त अज को देता है, वह पुनर्विवाहित स्त्री के साथ समान तेज वाला होता

<sup>१</sup> जो वां राधुना विधवेव देवरम्। (ऋक्० १०।४०।२)

उदीर्घ्वं तार्यभि जीजलीकं गतासुमेतमुपशंस एहि।

हस्तप्राभत्य दिधिपोस्तवेदं तप्युर्नन्तिवभि सं समूय (ऋक्० १०।१८।२)

है।<sup>२</sup> हमें यहाँ 'पंचोदन अज' के पक्ष में पढ़ने की जरूरत नहीं है, यह तो विषमालोच है, किन्तु इससे यह स्पष्ट है कि स्त्रियों को कुछ विशेष दशाओं में पुनर्विवाह का अधिकार था। वेदों से पुनर्विवाह की विशेष दशाओं पर कुछ अधिक प्रकाश नहीं पड़ता।

### धर्मसूत्र और पुनर्विवाह

वैदिक युग के बाद मनुष्यों के आचार की वेदानुसूल एवं उत्तम बनाने के लिए धर्मसूत्रों की रचना हुई। इन धर्मसूत्रों में विवाह सम्बन्धी आचारों का भी प्रतिपादन है। वेदों से स्त्रियों के पुनर्विवाह की विशेष दशाओं पर अधिकार का पन्दा पड़ा हुआ है, धर्मसूत्रकारों ने उस पन्दे को थोड़ा सा उदा दिया है। स्त्रियों के पुनर्विवाह की अवस्थाओं में प्रथम मुख्य है। वसिष्ठ धर्मसूत्र में इस विषय का विस्तार से प्रतिपादन है और वह इस प्रकार है—“प्रापित-पत्नी (जिसका पति विदेश चला गया हो) पाँच वर्ष तक प्रतीक्षा करके, उसके बाद पति के पास जाय। यदि धार्मिक व आर्थिक कारणों से उसके पास न जा सके तो उसे इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए कि उसका पति मर चुका है। सन्तानवती ब्राह्मणी पाँच वर्ष तथा निःसन्तान चार वर्ष, सन्तानवती क्षत्रिया पाँच वर्ष तथा निःसन्तान तीन वर्ष, मन्तानवती वैश्या चार वर्ष और निःसन्तान दो वर्ष तथा मन्तानवती बूढ़ा या वर्ष और निःसन्तान एक वर्ष पति की विदेश से लौटने की प्रतीक्षा करे। इसके बाद वह पति के समान स्वार्थ, जाति, पिण्ड, उदक व गोत्र वाले व्यक्ति से विवाह करे। इसमें गृहस्था व्यक्ति पिछलों से अधिक पौरव वाला है।<sup>३</sup> वसिष्ठ की इस व्यवस्था से स्पष्ट है कि प्रोपित पति का पत्नी को ब्राह्मण वर्ण की होने पर पाँच वर्ष बाद दूसरा पति वरण करने का अधिकार था। इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि वर्तमान युग में यातायात एवं पत्र-व्यवहार के साधन वसिष्ठ धर्मसूत्र के समय की अपेक्षा बहुत उन्नत हो गये हैं, तो भी इंग्लैण्ड के १९३६ के 'दि मैट्रिमोनियल काजेज एक्ट'

२ या पूर्वं पति हित्वा अचाम्य विन्दते पतिम्।

पंचोदनं च तावज्जं ददातो न विमोक्षतः ॥

समानलोको न भवति पुनर्भूया परः पतिः।

घोडनं पंचोदनं दक्षिणा व्योतिथं ददाति ॥ (अथर्व० ११।१२६-२७)

अथर्व ५।१७।८-९ में अनेक पतियों का संकेत है किन्तु यह वर्णन आलंकारिक प्रतीत होता है।

३ प्रोपितपत्नी पंचवर्षाभ्युपासीत्। ऊर्ध्वं पंचेभ्यो वर्षेभ्यो भर्तृसकारां गच्छेत्। यदि धर्मार्थिन्या प्रवर्त्तते प्रत्यनुकामा न स्यादपरा प्रेत एव वर्तितव्यं स्यात्। एवं ब्राह्मणी पंच प्रजाताप्रजाता चत्वारि... अत ऊर्ध्वं समानार्थं जन्मपिच्छीदकगोत्राणां पूर्वं पूर्वां गरीयान् (वसिष्ठ धर्मसूत्र अध्याय १७, सूत्र ७५-८०)।

(The Matrimonial Causes Act) में यह अबधि सन् १८५२ के हिन्दू विवाह कानून में भी यह अबधि सात वर्ष है। किन्तु ब्रिटिश ने इसे अधिक से अधिक ब्राह्मणी के लिए पाँच वर्ष तथा शूद्रा के लिए कम से कम दो वर्ष रखा है। ब्रिटिश धर्मनूत्र ने पाँच अन्य अवस्थाओं में भी पत्नी को पुनर्विवाह का अधिकार दिया है—जो पति का नपुंसक होता, जातिभ्रष्ट होता, मर जाता आदि है। "जो अपनी कुमारावस्था के भर्ता को छोड़ कर दूसरे व्यक्तियों में विचार्य करके उस परिवार में आ जाती है वह 'पुनर्भू' है। जो नपुंसक, आदि से अन्ध या उन्मत्त पति को छोड़ कर अथवा पति के गर्भ पर दूसरे पति को प्राप्त करती है, वह भी 'पुनर्भू' होती है"।<sup>४</sup> श्रीधामन धर्मनूत्र (२२।२६) केवल गृह्यसूत्र और आतिश्रंश को ही स्त्री के पुनर्विवाह का कारण मानता है। इस प्रसंग में यह भी कह देना उचित है कि विवाह संस्कार के समय यदि पति मर जाता है तो ऐसी अवस्थायामें कन्या के पुनः सम्भार का दावा धर्मनूत्रों में विद्यमान है (श्रीधामन धर्मनूत्र २१।१५८, ब्रिटिश १७।६२, ६४)।

महाभारत व बौद्ध साहित्य में तलाक

प्राचीन इतिहास में विवाह विच्छेद के ऐतिहासिक प्रमाण बहुत कम मिलते हैं। श्रीधामन की पत्नी प्रदेवी ने अपने पति से तंग आकर उसे पुरी द्वारा रांग में फेंकवा दिया था (महाभारत आदि पर्व)। किन्तु महाभारत इस विषय में मौन है कि प्रदेवी ने दूसरा विवाह किया या नहीं। बौद्ध वाङ्मय में अवश्य इस प्रकार के केंद्र मिलते हैं कि स्त्रियों का पुनर्विवाह होता था। उच्छल जलक (सं० ६७) से हमें ज्ञात होता है कि एक बार एक स्त्री का पति, भाई और पुत्र मर चुके थे। उसने अपने सम्बन्धियों के लिए उच्छल से विलाप शुरू किया। उस स्त्री के विलाप भरे आर्तनादन राजा के हृदय को इतित कर दिया। राजा ने उससे कहा—मैं इन तीन में से एक को छोड़ सकता हूँ। तुम इनमें से किसे छोड़ना चाहती हो? स्त्री ने उत्तर दिया—"महाराज। यदि मैं जीवित रहूँ तो मैं दूसरा पति और दूसरा पुत्र प्राप्त कर सकती हूँ, किन्तु मेरे माता-पिता मर चुके हैं, अब मैं दूसरा भाई प्राप्त नहीं कर सकती, इसलिए मुझे मेरा भाई देने की कृपा करें।" स्त्री का यह उत्तर स्पष्ट रूप से सिद्ध करता है कि उस समय स्त्री दूसरा विवाह कर सकती थी। बेरीपाथा अ० क० (पृ० २६०) में इसी नामक दासी का वर्णन है। इसीपासी का विवाह पहले अयोध्या के एक व्यापारी से हुआ था। उस व्यापारी ने उसे एक महीने में ही छोड़ दिया। इसके बाद उसने पिता ने एक अन्य व्यक्ति से इसीपासी की शादी की, किन्तु यहा

<sup>४</sup> ब्रिटिश धर्मनूत्र १६।१६-२०, या कौमारं भर्तारमुत्सृज्यान्वायैः सह चरित्वा तस्यैव कुटुम्बमाश्रयति सा पुनर्भू भवति। या च क्लीबं पतितमुन्मत्तं वा भर्तारमुत्सृज्यान्वं पतिं किञ्चिन्ते मृते वा सा पुनर्भू भवति।

भी यह पति को बसन्त नहीं आयी और एक महीने बाद माता-पिता के पास लौट आयी। फिर उसका एक तीसरे व्यक्ति से विवाह हुआ, किन्तु यह विवाह १५ दिन भी नहीं टिका। उसे यह पता लगा कि उसके पति ने उसकी अनुपस्थिति में दूसरा विवाह कर लिया है तो उसने पति के पास लौटने में इन्कार किया। बुढ़ के कहने से एक राजा ने उसे गोद ले लिया और उसका विवाह सभारत कुल के एक व्यक्ति से कर दिया। मजिहान निकस (पा० टै० सं० खण्ड २, पृ० १०६) ने एक ऐसे परिवार का वर्णन है, जिस के व्यक्ति एक तलाक दी हुई स्त्री को उसकी उच्छा के विरुद्ध एक नये पति से व्याहता चाहते थे। किन्तु बीड़ काल में स्त्रियों के पुनर्विवाह का घुरी दृष्टि से देखा जाने लगा था। कम्हदीपायन (कृष्ण द्वैपायन) ज्ञातक (८४४) में माण्डव्य अपनी पत्नी से यह प्रश्न करता है कि "मेरे घरे घर से तुझे अविकसित बुद्धि वाली जवानी की दशा में अपनी स्त्री के रूप में यहाँ ले आया था, तू बिना मेरे मेरे साथ अपने सारे जीवन में किस प्रकार रही?" माण्डव्य की स्त्री उत्तर देती है कि "इस कुल में यह रिवाज नहीं है कि विवाहित स्त्री कोई नया पति करे, न कभी ऐसा हुआ है। मैंने इस रिवाज का पालन किया ताकि मुझे कोई नीच न कहे। ऐसे अपवाद के भय ने मुझे यहाँ उठने लया तेरे साथ प्रेमगुण्य होकर रहने को बाध्य किया।" उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि बौद्ध साहित्य में विवाह विच्छेद के अनेक उदाहरण मिलते हैं, किन्तु उस समय इस प्रथा को अच्छा नहीं समझा जाता था।

### कौटिल्य तथा पुनर्विवाह

धर्मसूत्रों के बाद कौटिलीय अर्थशास्त्र में इस विषय की विस्तार से चर्चा है कि पति के प्रवास एवं विदेश गमन से उत्पन्न परिस्थितियों तथा विवाह विच्छेद के सम्बन्ध में कौटिल्य ने बहुत सुन्दर तथा न्यायपूर्ण विधान बनाया है। कौटिल्य यह अच्छी तरह समझता था कि स्त्रियों की कुछ अवस्थाओं में जबकि वे अपने पति से विमुक्त हो जाती हैं, यदि पुनर्विवाह का अधिकार न दिया गया तो समाज में अधर्म, व्यभिचार एवं अन्याय बहुत बढ़ जायगा। प्राणियों के लिए प्रकृति से प्राप्त सहज मौल प्रेरणा के आवेग की यदि खिन्न मार्ग नहीं मिलेगा तो वह अनुचित मार्गों से उस आवेग को शान्त करेगी। इसलिए कौटिल्य (३।३।४२) ने स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा की कि "स्त्री के शत्रुकाय का उपरोध (शत्रुकाय से पुरुष के संगम का न होना) धर्म का वध है।"<sup>१</sup> उस मूल सिद्धांत की दृष्टि में रखते हुए कौटिल्य ने आठों प्रकार के विवाहों में, चाहे वे प्रसक्त हों या अप्रसक्त, कुछ विशेष परिस्थितियों में दूसरे विवाह का विधान किया है। आजकल हिन्दू समाज में धर्मविवाहों को महत्व दिया जाता है और उन्हें अविच्छेद्य माना जाता है, अतः इन विवाहों के विषय में कौटिल्य की व्यवस्था जानना अधिक उपयुक्त है।

\* तीर्थोपरोधो हि धर्मवध इति कौटिल्यः । (अर्थशास्त्र ३।३।४२)

उसके मतानुसार (३।४।३३-४१) धर्मविवाह से परिपुत्रीत कुमारी यदि आपत्ति-यस्त हो और पति उससे बिना कहे विदेश भेजा गया हो, तो स्त्री सात तीर्थों (मासिक धर्मों) तक प्रतीक्षा करे, कहकर गया हो तो एक वर्ष तक प्रतीक्षा करे, पति के विदेश जाने पर कोई समाचार न मिले तो पाँच तीर्थों तक प्रतीक्षा करे और बिनने पर दस तीर्थों तक। इनके बाद धर्माधिकारी की आज्ञा पाकर वह अपनी इच्छानुसार विवाह कर सकती है। चौड़े समय के लिए बाहर जाने वाले (हस्तप्रवासी) पतिम्राँ की मुखहीन स्त्रियाँ एक वर्ष तक प्रतीक्षा करें और मुखवती दससे अधिक। यदि पति इनके भरण-पोषण का प्रबन्ध कर गये हों तो दुर्गम काल तक। पत्न के उद्देश्य से गये ब्राह्मणों की स्त्रियाँ दस वर्ष तक प्रतीक्षा करें और राज्य कार्य पर गये पुरुषों की स्त्रियाँ आयु पर्यन्त (अर्धशाम्भ ३।४।२६-३०)। आयु पर्यन्त प्रतीक्षा की अवधि बहुत लम्बी होती है। कौटिल्य ने इस अवधि के लिए विशेष छूट दी है। इस तरह आयु पर्यन्त प्रतीक्षा करने वाली स्त्री का यदि समान वर्ग के किसी पुरुष से सम्बन्ध पैदा हो जाय तो वह निन्दनीय नहीं है (अर्धशाम्भ ३।४।३१)। तीर्थोपराध को धर्मबन्ध मानने वाले कौटिल्य के लिए ऐसी व्यवस्था करता स्वामानिक ही है। इसीलिए कौटिल्य (३।४।४३) ने पति के वीर्यप्रवासी एवं संवासी होने अथवा मर जाने पर सात महीने की प्रतीक्षा के बाद स्त्री को पुनर्विवाह की आज्ञा दी है।

तलाक के सम्बन्ध में कौटिल्य (३।२।५६) का स्पष्ट मत है कि नीच, प्रवासी, राजद्रोही, पातक (जाति अथवा धर्म के आधार से) धर्तित, तपुंसक पति स्त्री के लिए त्याज्य है।<sup>६</sup> वह नियम पहले चार प्रकार के ब्राह्मणिक धर्मविवाहों के लिए है। दूसरे विवाहों के लिए कौटिल्य बहुत उदार है। प्राचीन धर्मशास्त्रों में आठ प्रकार के विवाह माने गये हैं—ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्य, दैव, गान्धर्व, आसुर, राक्षस और पैशाच। इन में पहले चार धर्मविवाह कहलाते थे। इनमें उपर्युक्त कारणों से तलाक सम्भव था। पिछले चार प्रकार के विवाहों में वह एक दूसरे से द्वेष होने की अवस्था में तलाक की अनुमति देता है। विवाहों में कई बार ऐसी स्थिति आ जाती है कि पति-पत्नी में द्वेष उत्पन्न हो जाता है। कई बार यह द्वेष इकतरफा होता है और कई बार दोनों ओर से। यह द्वेष उत्पन्न हो जाने पर विवाह एक मार-माझूम होने लगता है और पति-पत्नी वैवाहिक बन्धन से मुक्त होना चाहते हैं। कौटिल्य परस्पर द्वेष के आधार पर पिछले चार प्रकार के गान्धर्व, राक्षस, आसुर, पैशाच नामक विवाहों में स्त्री-पुरुष को मोक्ष अर्थात् तलाक का अधिकार देता है। कौटिल्य (३।३।१७-१९) ने इस विषय में स्त्री-पुरुष के अधिकार तुल्य ही रखे हैं।<sup>७</sup> पति की इच्छा न होने पर उसके साथ द्वेष रखती हुई स्त्री उसका त्याग नहीं कर सकती। ऐसी अवस्था में पति भी अपनी पत्नी का परिद्वान नहीं कर सकता। दोनों का एक दूसरे के साथ द्वेष

<sup>६</sup> नीचत्व परदेश च प्रस्थितो राजकिल्बिषी।

प्राणानिहन्ता पतितस्त्याज्यः क्लीबोऽपि वा पतिः ॥

होने से परित्याग संभव है"। ऊपर दी दृष्टि से परस्पर द्वेष की शर्त कुछ विभिन्न सी जान पड़ती है। किन्तु आगे हम देखेंगे कि वर्तमान काल में पवित्रमी जगत् के वर्तमान दसेस जैसे उच्च कोटि के विचारक यह बाधप्रसक्त समझते हैं और स्वीडन, नार्वे, डेन्मार्क, बेल्जियम और स्विट्जरलैण्ड के नये तलाक कानूनों में यह शर्त रखी गयी है। १९५४ के भारत के विभिन्न विवाह कानून में इस कारण नैऋत पर विवाह विच्छेद की अनुमति दी गयी है।

कौटिल्य धर्मसूत्रकारों की तरह विवाह को संस्कार नहीं मानता। उसकी सम्मति में यह एक अनुबंध (Contract) या ठेका है, जैसा आजकल पश्चिमी देशों में होता जाता है। बर-बधू या उसके अभिभाषक इसे करते हैं और अन्य अनुबंधों की भांति इसे पूरी महानि पर यह तंका भी जा सकता है। कौटिल्य (३।१६।१७) ने वस्तुओं के क्रय-विक्रय प्रकरण में विवाह का उल्लेख किया है और यह विधान बनाया है कि प्रथम तीन वर्षों में पाणिपण्य हो जाने पर भी यदि स्त्री-पुरुष के प्रथम प्रायतकाल में किसी में (स्त्री या पुरुष में) कोई दोष मालूम पड़े तो विवाह सम्बन्ध तोड़ा जा सकता है। कया के किसी गुण दोष को छिपा कर यदि कोई उस का विवाह करता है तो उसे ६६ पण के दण्ड का विधान है और जो वर के दोषों को छिपाता है तो उसे ११२ पण दण्ड का। दोनों अवस्थाओं में स्त्री-धन व गुणक उल्लंघन किया जाता था।

मौर्यवंश की समाप्ति के साथ भारत में बौद्ध धर्म के विरुद्ध प्रयत्न प्रतिक्रिया हुई। महाराज पुष्पमित्र के मृत्यु में ब्राह्मण धर्म का अभ्युदय हुआ और इसी समय वर्तमान काल में उपलब्ध मनुस्मृति के अधिकांश भाग का सम्पादन हुआ। अर्थात्साल के निम्नो के विरुद्ध धर्मसूत्रकारों ने आवाज उठायी और कौटिल्य के नियमों में बहुत परिवर्तन किया। स्मृतिकार अर्थात्सालकारों की भांति विवाह को ठेका या अनुबंध (Contract) मान नहीं मानते थे, अपितु एक पवित्र धार्मिक बन्धन समझते थे। स्मृतिकारों की समूची वैवाहिक व्यवस्थाएँ इस मूल सिद्धान्त से प्रभावित थी। इसलिए कौटिल्य ने स्त्री की जिन हातों में मोक्ष का अधिकार दिया था, मनुस्मृतिकार ने उस अधिकार को, उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार, सीमित कर दिया। हमने ऊपर कौटिल्य के प्राधिकृतपतिका के निम्न देखे हैं। यदि पत्नी पुत्रवती हो, तो वह पति के लौटने की अधिक से अधिक ५ वर्ष तक प्रतीक्षा करे और निःसंतान हो तो बार वर्ष तक। इसके बाद वह धर्मविवाह में इच्छानुसार पति का वरण कर सकती थी। यदि वह कुमारी हो, तो कुछ मास प्रतीक्षा करके पुनर्विवाह का अधिकार पा लेती थी। मनु ने अर्थात्साल की इन व्यवस्थाओं के स्थान पर अपनी यह व्यवस्था दी कि प्राधिकृतपतिका की यदि पति उसके निर्वाह के लिए वृत्ति दे गया हो, तो वह उससे निर्वाह करे। यदि वृत्ति नहीं दे गया है तो समाज में तिन्दनीय न समझे जाने वाले शिल्पों से अपना निर्वाह करे। इस प्रकार निर्वाह करती हुई पत्नी धर्म कार्य से पति के विदेश जाने पर, ८ वर्ष विद्या के लिए जाने पर, ६ वर्ष, अन्य काम के लिए जाने पर ३ वर्ष प्रतीक्षा करे (मनु ६।७५-६)। इस प्रतीक्षा के बाद भी यदि उसका

का पति न लौटे तो पत्नी भ्रमा करे, इस विषय में मनु सर्वथा मौन है। बगिच में प्रतीक्षा की अवधि व्यतीत होने पर पति के पास जाने या पुनर्विवाह करने की आज्ञा दी भी और कौटिल्य ने इच्छानुसार वरण का अधिकार दिया था। किन्तु मनु इस विषय में कुछ भी व्यवस्था नहीं करता। मनुस्मृति के टीकाकारों में मनु के इस मौन पर बहुत मनबेद है। नन्दन ने लिखा है कि स्त्री को पुनर्विवाह का अधिकार है, किन्तु मेधातिथि ने उनका विरोध किया है। दूसरे टीकाकार कहते हैं कि पत्नी का पति की आज्ञा के बिना जाया चाहिए। मनु के समय से स्त्रियों से पुनर्विवाह व गलाक का अधिकार छिन गया और पुरुषों ने एक स्त्री के रहते हुए दूसरी स्त्री के साथ विवाह करने को निषेध अथवा अधिकार के अधिकार का उपयोग किया।

### कौटिल्य तथा मनु की तुलना

कौटिल्य ने विवाह के बाद पति-पत्नी में कोई दोष प्रकट होने पर दोनों को तर्का या मोक्ष का अधिकार दिया, किन्तु मनु यह अधिकार पुरुषों तक ही सीमित कर देता है। विवाह के बाद पत्नी के दोष आत होने पर वह उसे छोड़ सकता है, किन्तु पत्नी पति के दोष प्रकट होने पर उसे नहीं छोड़ सकती है (मनु १।७२)।

पति के तपसका व राजद्रोही होने की वजह से कौटिल्य पत्नी के पुनर्विवाह के अधिकार को स्वीकृत करता है, किन्तु मनु (१।७६) पति के उन्मत्त या कर्माघ होने पर भी पत्नी से यह आज्ञा करता है कि वह पति की सेवा करेगी। यदि वह पति की सेवा नहीं करती, तो उस के साथ अभी विवाह की गयी है कि पति को उसका त्याग नहीं करना चाहिए। मौर्य कालीन भारत में पत्नी का अधिकार था कि वह ऐसे पति को मोक्ष (तन्का) देकर दूसरा पति स्वीकार करे। गुप्त वंश के समय पत्नी पर यह अनुग्रह किया गया कि ऐसे पति की सेवा न करने वाली स्त्री का पति त्याग न करे। मनुस्मृति में पति के साथ एक बड़ी उदारता दिखायी गयी है कि उसके उन्मत्त, पतित या सर्वविध होने पर भी पत्नी उसे छोड़ नहीं सकती, किन्तु यदि पत्नी पति के साथ एक वर्ष से अधिक ठहर रखे तो पति को उसका अलंकारादि दान छीन कर उसका त्याग कर देना चाहिए (१।७३)। जो स्त्री द्यूतादि न्यसनग्रस्त, मर्दिरोन्मत्त या सग्न पति की सेवा न करके उसका अपमान करती है, पति उसने अलंकार छीन कर उसका तीन महीने के लिए त्याग करे (मनु १।७८)। पत्नी के मद्यप, दुष्कील, प्रतिभूल, रुग्ण, हिंस्र तथा अपव्ययी होने पर पति को दूसरा विवाह कर लेना चाहिए। सती व्रज्या हो तो आठवें वर्ष, उस की सन्तान पैदा होकर मर जाती हो तो १०वें वर्ष, सड़कियाँ ही उत्पन्न होती हो तो ११वें वर्ष तथा अभियवादिनी होने पर पति को एकदम दूसरा विवाह कर लेना चाहिए (मनु १।८०-८१)।

पुरुषों को अधिकवेदन या दूसरे विवाह की इतनी सरल छूट देने का, स्त्रियों की स्थिति पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। कौटिल्य के समय तक दोनों के अधिकारों में कोई

विशेष अन्तर नहीं था। स्त्री ननूतक और पतित पति को छोड़ सकती थी। समुस्मृति में पत्नी से यह अधिकार छीन लिया गया और साथ ही पति को दूसरा विवाह करने की खुली छूट दे दी गयी। प्रायः यह कहा जाता है कि दूसरे विवाह का अधिकार स्मृतिकारों ने पुत्र न होने की दशा में ही दिया है, किन्तु समुस्मृति के उपर्युक्त पक्षों से यह स्पष्ट है कि अन्य अनेक अवस्थाओं में, स्त्री को अग्रिमवादी होने की दशा तक में, पति को पुनर्विवाह का अधिकार है। इस का परिणाम गुप्तों तथा स्त्रियों, दोनों के लिए वातफ हुआ। गुप्त एकपत्नीप्रत के उच्च आदमों को भूलने लगे और स्त्रियाँ भी दशा में उस समय से गिरजी गूँह टूट, वह मध्यकाल में निरन्तर गिरती गयी।

गुप्त युग में स्त्रियों का पुनर्विवाह, पुनर्भू का स्वरूप :

प्राचीन काल से चले आने वाले स्त्रियों के अधिकारों के उपर्युक्त अपहरण को बाद के अनेक स्मृतिकारों में स्वीकार नहीं किया। गुप्त युग के स्मृतिकार नारद ने पति के नपुंसक होने की दशा में पत्नी को दूसरे विवाह का अधिकार दिया।<sup>१०</sup> गुप्तकाल में स्त्रियाँ अपने पतियों को छोड़ सकती थीं। इसका एक प्रबल प्रमाण यह है कि समुद्रगुप्त के ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त की पत्नी ध्रुवस्वामिनी ने अपने पति को छोड़ कर चन्द्रगुप्त के साथ विवाह किया।<sup>११</sup> मध्यकाल में कलिगुप्त के लिए प्रामाणिक मानी जाने वाली पराशरस्मृति (४।३०) ने भी पति के लापता, मृत, कबीर, पतित और सम्भासी होने पर पहले पति को छोड़कर दूसरे पति के साथ विवाह की अनुमति दी।<sup>१२</sup> किन्तु हिन्दू स्त्रियों की स्थिति इतनी गिर चुकी थी कि वे अपने अधिकारों का उपयोग करते में असमर्थ हो गयीं। स्त्रियों के पुनर्विवाह के बिन्दु हिन्दुसमाज में प्रबल लोकमत उत्पन्न हो गया। इस लोकमत की प्रचलता का अनुमान इसी एक सत्य से हो सकता है कि विधवा विवाह कानून को पात हुए एक सतावीस से अधिक समय हो गया है, किन्तु हिन्दू समाज में विधवाओं की संख्या अभी तक यथापूर्व है और इनका पुनर्विवाह बहुत कम होता है।

गुप्त युग तक स्त्रियाँ पुनर्विवाह कर सकती थीं, इसका प्रबल प्रमाण नारद का पुनर्भू स्त्रियों का विस्तृत वर्णन है। पुनर्भू का अन्वयार्थ स्त्री उसे कहते हैं जो एक पति से

<sup>१०</sup> अपत्याय स्त्रियः सृष्टाः स्त्रीभेदे बीजिनी नराः ।

श्रेष्ठ बीजकते देयं नाबीजो श्रेष्ठमर्हति ॥ (नारद)

<sup>११</sup> विशेष विस्तार के लिए देखिए—वामदेव उपाध्याय का गुप्त साम्राज्य का इतिहास।

<sup>१२</sup> परा० स्म० ४।३०, नष्टे मृते प्रव्रजिते कौले च पतिते पती ।

पंचस्वापस्तु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥

यह श्लोक नारद ५।६७ व अग्निपुराण १।२।६७।१०१।१४।४६ में पाया जाता है ।



सादी करने के साथ, उसके मर जाने पर या किसी अन्य कारण से दुबारा (पुनः) विवाह करके दूसरे पति का प्राप्त करती है। पुनर्भू शब्द का अर्थ है जो दुबारा किसी व्यक्ति के साथ पत्नीत्व प्राप्त करे और अन्यपुर्षों का सम्बन्ध है पहले पति से मिश्र भर्ता से विवाह करने वाली स्त्री।<sup>१</sup> नारद के मतानुसार (स्त्रीपुं ५।४५) आठ प्रकार की ऐसी (परपूरा) स्त्रियाँ हैं जिनकी एका पुण्य से सादी होने के बाद दूसरे पुण्य से सादी होती है। इनमें तीन प्रकार की पुनर्भू हैं और चार प्रकार की स्वीरिणी। तीन प्रकार की पुनर्भू स्त्रियों में पहली यह है जो अक्षयपानि है, किन्तु विवाह संस्कार से दूषित है। इनको दुबारा संस्कार हो सकने के कारण पुनर्भू कहते हैं (मि० मनु० २।१७६, वि० १५।२)। देश धर्म का विचार करके पुण्यों द्वारा जो कन्या किसी को दी जाती है, किन्तु वह (अपनी इच्छा से) नियम मंग करके (व्यभिचार द्वारा) दूसरे पति के पास चली जाती है, उसे दूसरे प्रकार की पुनर्भू कहते हैं। तीसरी पुनर्भू वह है जो (पति के मरने पर) देवरों का त होने पर भूत व्यक्ति के सवर्ण और समिष्ट पुरुष का भी जाय। चार प्रकार की स्वीरिणियाँ ये हैं—(१) पति के जीवित होने पर, उसकी चाहें सन्तान हो या न हो, वह कामवास दूसरे के पास जाती है। (२) जो अपने विवाहित पति को छोड़कर दूसरे के घर चली जाय और फिर पति के घर में वापस आ जाय। (३) पति के मरने पर देवर आदि के साथ पत्नी रूप में रहने वाली स्त्री। (४) रक्षा की इच्छा से भारी हुई, पैर में खरीदी हुई या भूख-प्यास से सड़ायी हुई को स्त्री "मै लेरी हूँ" यह कहते हुए किसी पुण्य के पास आवे (स्त्रीपुं ५।४५)। नारद के मत में पहली पुनर्भू श्वशा वाद की पुनर्भू स्त्रियों की अपेक्षा अधिक अच्छी है। नारद की इस किस्तूत भेदशृङ्खला को विषयकप (मात० १।६७) बिलकुल बेकार समझता है क्योंकि उसके समय तक पुनर्भू के विवाह की प्रथा बिल्कुल बन्द हो चुकी थी। पूर्व मध्ययुग के स्मृतिकारों ने पुनर्भू स्त्रियों का उल्लेख बड़ी निन्दा और तिरस्कार के साथ किया है। स्मृतिचन्द्रिका (खण्ड १ पु० ७५) में ब्रह्मण तथा बौधायन द्वारा गिनाई गई पुनर्भू स्त्रियों का उल्लेख है। इनमें अधिकांश अक्षयपानि से सम्बन्ध रखती हैं। बौधायन तो इनके विषय में इतना ही कहता है कि इन्हें पहल न करे, किन्तु कण्वक कहता है कि यहण किये जाने पर वे कुल का आय की तरह से जफा देती हैं।

पुनर्भू से उत्पन्न होने वाले पुत्र को पौनर्भव पुत्र कहते थे और उसके पति को पौनर्भव पति कहा जाता था। स्त्रियों के पुनर्विवाह होते थे, इसका प्रबल प्रमाण यह है कि अनेक स्मृतियों में दायभाग में पौनर्भव पुत्रों की चर्चा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसका दर्जा नीचा है। बसिष्ठ धर्मसूत्र (१७।१६-२०), गोतम धर्मसूत्र (१६।२), बौधायन (२।२।३१),

१\* वाचस्पत्य कोश पु० ४३६३—

पुनर्भू स्त्री, पुनर्भवति जायत्वैन ।

एकैव स्त्र्यायां पुनरन्यहोतायाम् भार्यायाम् ।

महाभारत (१।१२०।३५-३६), मनु (६।१९०), याज्ञवल्क्य (२।१३।४), और नारद (१३।४५) इन पुर्वी का उल्लेख करते हैं तथा इन्हें हीन पुर्वि में देखते हैं।

पुनर्भू के सम्बन्ध में उपर्युक्त स्त्रियों को ध्यानपूर्वक देखने से यह बात हुई कि वैदिकयुग में तथा धर्म सूत्रों के समय में दूसरी पत्नी ई० पु० तक स्त्रियाँ पति के विदेश जाने पर, आविष्ट होने, भयंकर अपराधी होने, नपुंसक, संन्यासी और मृत होने की दशा में दूसरा विवाह कर सकती थी। मनु के समय से स्त्रियों का पुनर्विवाह निषिद्ध मयमा गया। किन्तु नारद के समय तक स्त्रियों के पुनर्विवाह बड़े सामने जाने पर भी प्रवर्तित थे। स्त्रियों का पुनर्विवाह बन्द होने के वही कारण थे, जिन कारणों से विधवा विवाह का निषेध हुआ। इनकी अन्यत्र विवेचना की गयी है। इस समय स्त्रियों की स्थिति किस हद तक गिर गयी थी यह दूर बात से जाना जा सकता है कि कौटिल्य के समय (४थी शताब्दी ई० पू० के अंत में) पति पत्नी को तीन बार से अधिक बांध की बंधन या रस्ती से प्रहार करता था या बंधन मारता था, तो पत्नी पति के बिरुद्ध न्यायालय में मुकदमा चला सकती थी। आज यदि यह अधिकार हिन्दू पतिव्रतों का प्राप्त हो जाय तो न जाने कितने पतिव्रतों को न्यायालय में उपस्थित होना पड़े। याज्ञवल्क्य के समय से स्त्री का परम धर्म पति के वचन का पालन हो गया है।<sup>११</sup>

पुस्त्रों का पुनर्विवाह तथा बहुविवाह की सुविधा देने से स्त्रियों के लिए भीषण दुःखों और अत्याचारों का सूत्रपात हुआ। दूसरी स्त्री के आ जाने पर पहली स्त्री की क्या दशा होती है, इसे मन्वी में पूर्णरूप से प्रकट करना असंभव है। सौमित्रा बाहू पहली स्त्री के जीवन को नरक बना देता है। अधिकांश घरों में पहली स्त्रियाँ बाह की स्त्रियों की दासियाँ बनकर ही अपना जीवनयापन कर सकती हैं। ऐसी स्त्रियों के लिए, बाह उनके पति मर गये हों या जीवित हों, याज्ञवल्क्य ने इहलोका तथा परलोका में कर्तव्य प्राप्त करने का साधन यही बतलाया है कि उन्हें किसी दूसरे व्यक्ति के पास नहीं जाना चाहिए, किन्तु वहीं याज्ञवल्क्य पतिव्रतों के लिए सर्वथा भिन्न व्यवस्था करते हैं। पत्नी को तो पति के मरने पर भी उसका ध्यान करना चाहिए किन्तु पति की पत्नी के मरने ही दूसरा विवाह कर लेना चाहिए। स्त्री के अधिकारों का यह कितना क्रूर उपहास है।<sup>१२</sup>

मध्यकाल में स्त्री की अवस्था मनुप्रतिपादित उत्तम साध्वी के उच्च धरातल से गिर कर दासी तक पहुँच गयी।<sup>१३</sup> मनु ने पत्नी को यह आदेश दिया था कि बाहें उसका पति दुःखीत, परतन्नीयामी, गुणहीन क्यों न हों, पत्नी को उसकी देवता के समान

<sup>११</sup> याज्ञ० ३।७७—स्त्रीभिः मर्तुर्वचः कार्यमेव धर्मः परः स्त्रियाः ।

<sup>१२</sup> याज्ञ० ३।८६—बाह्विवाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः ।

आहरेद् विधिवद्द्वारानग्नीषेवाकितम्बपन् ॥

<sup>१३</sup> व्यास स्मृति २।२७—दत्तौघविष्टकार्येण भार्या भर्तुः सदा भवेत् ॥

पूजा करती चाहिए।<sup>१४</sup> किन्तु पराशरस्मृति ने सही तक व्यवस्था दे जानी कि जो पत्नी वरिद्ध, रोगी या धूर्त पति का अपमान करती है वह बार-बार कुत्ती तथा मूअरी होती है।<sup>१५</sup> स्त्रियों के लिए पति के साथ सती होने के आदर्श का मौखिक वर्णन लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि पत्नी को न तो पति की जीवितापस्था में और न उसके मरने के बाद ही द्वितीय विवाह का अधिकार रहा। सती प्रथा ने पति के मरने के बाद अधिकतर अवस्थाओं में पत्नी को जबरदस्ती सती होने पर बाध्य किया। अक्सर ने इस कुरीति को दूर करना चाहा, किन्तु यह हमेशा सफल नहीं हो सका। विधवा जबरदस्ती विवाहोत्सव से वर्णन के लिए भुलबुलान हो जाती थी। ऐसी सामाजिक स्थिति में तलाक की कल्पना भी सर्वथा विस्मृत हो गयी और यह विशाल सर्वमान्य हो गया कि हिन्दूधर्म में विवाह एक पवित्र बन्धन है और उसमें तलाक संभव नहीं है।

हिन्दू समाज के उच्चवर्गों में शास्त्रों द्वारा तलाक की प्रथा का सर्वथा निषेध होने पर भी नीची जातियों में रिवाज के तौर पर तलाक पुराने जमाने से चला आता है। १९११ की भारत की जनगणना रिपोर्ट में तलाक के सम्बन्ध में आधुनिक स्थिति का यह चित्र खींचा गया है—“कट्टर हिन्दू विवाह को एक धार्मिक संस्कार मानते हैं और इस सम्बन्ध का प्रश्न नहीं किया जा सकता। एक व्यवहारिणी स्त्री में उसका दर्जा छीना जा सकता है, उसे जाति से बाहर किया जा सकता है, लेकिन तलाक असंभव है। किन्तु उत्तर भारत की नीची जातियों में तथा दक्षिण भारत की ऊँची एवं नीची जातियों दोनों जातियों में, विशेषतः जहाँ ‘सम्बन्धम्’ विवाह प्रचलित है, तलाक पाया जाता है। उत्तरी मल्लभार में, जहाँ विवाह का बन्धन बहुत पक्का है, कुछ व्यक्ति अपने वैवाहिक साथी का दो-नीन बार परिवर्तन करते हैं। कोरवा जाति में ज्ञान पति करने वाली स्त्री की बड़ी प्रतिष्ठा होती है। विवाहों और धार्मिक संस्कारों में वह अगुआ बनती है। बदमा स्त्री अपनी इच्छानुसार जितनी बार चाहें तलाक की बड़ी सज्ज विधि से पति बदल सकती है। कदर, बल्लवन और पानारी जातियों में भी यही दशा है। मध्य भारत के सम्बन्ध में मादिन ने सूचना दी है “जहाँ स्त्रियों की अधिक मोग है वहाँ उन्हें अपना पति चुनने की पर्याप्त स्वतंत्रता है और होशंगाबाद के जदमों जैसी उच्च जाति (जो अन्तर्विवाही राजपूतों की एक शाखा है) के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि कई बार एक स्त्री के ६ या १० तक पति होते हैं। छत्तीसगढ़ में स्त्रियों को प्रायः पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है कि वह एक पति के

<sup>१४</sup> मनु ४।१५४—विवाहितः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः ।

उपवर्षः स्त्रिया साध्व्या सततं देववर्षति ॥

<sup>१५</sup> पराशर स्मृति ४।१६—

वरिष्ठं व्याधितं धूर्तं भर्तारं पावमन्येत ।

सा सुनी जायते भूत्वा शूकरी च पुनः पुनः ॥

बाद दूसरे पति बदल लें। बहुत सी अवस्थाओं में पहले विवाह को विच्छेद के लिए पति की स्वीकृति या अनुमति आवश्यक समझी जाती है। इन जातियों में पुनर्विवाह का नियम तलाक के रिवाज की स्वीकार करता है। पुराने पति की विवाह का खर्च लौटा दिया जाता है और नया पति इस अवसर पर जाति को ग्लोबल देता है। इस भोज को "भरतो-बोती" का भोज कहते हैं। इसका यह मतलब है कि पत्नी पहले पति के लिए मर गयी और नये पति के लिए जिन्दा हो गयी है। कई बार पत्नी का दूसरा विवाह करने के लिए 'छोड़-छिटी' (अपने साथ सम्बन्ध को छोड़ कर दूसरे के साथ विवाह करने का लिखित अनुमति-पत्र) दी जाती है। पत्नी इस छिटी से पहले पति को छोड़ सकती है। कुछ जातियों में पतियों द्वारा सहवास त्याग (Desertion) पर पत्नी को पुनर्विवाह की आज्ञा दी जाती है।

"महौदा प्रदेश में सभी जातियों में तलाक की अनुमति है, किन्तु इस का प्रचलन प्रायः नीची जातियों में ही है। आसाम के खासियों में तलाक बहुत ही सामान्य बात है। नैपाल में एक सेवार औरत अपने पति से असन्तुष्ट होने पर उसे किसी भी समय तलाक दे सकती है। अपने प्रस्थान की सूचना के चिह्न के रूप में वह अपने बिस्तर पर दो सुराहियाँ छोड़ जाती है। किन्तु वह नयी जन्म चाहे अपने पहले पति के पास लौट सकती है और परिवार का भार संभाल लेती है। नैपाल की सरंग जाति में तलाक की खूबी अनुमति है और तलाक दी हुई स्त्री दुबारा पूरी विधि के साथ वापसी कर सकती है। विधवाएँ ऐसा नहीं कर सकती। जहाँ तलाक आसानी से प्राप्त हो जाता है वहाँ स्त्रियों का प्रायः पुनर्विवाह से नहीं रोका जाता, किन्तु मंगलपुर की ओर गोलों में पहले यह नियम था कि स्त्री सुविधियों को कुछ घन देकर दूसरा विवाह कर सकती थी। पंजाब के कई हिस्सों में स्त्रियों की कमी है, वहाँ स्त्रियाँ बाहर से खरीदी जाती हैं और नाममात्र की विधि के साथ ब्याह दी जाती हैं। कई बार इस तरह स्त्री खरीदने वाले को अपना सौदा पसन्द नहीं आता, वह उस स्त्री को कुछ कम दाम पर किसी और को दे देता है। अस्मू के पहाड़ों में, कुछ जातियाँ स्त्री को अपनी इच्छानुसार पति बदलने की आज्ञा देती हैं बशर्ते कि नया पति पहले पति की वंशज धनराशि प्रदान करे।"<sup>११</sup>

### वर्तमान समाज में तलाक

अदालतों ने, विशेष रूप से बम्बई व कलकत्ता हाईकोर्टों ने, विभिन्न जातियों में रिवाज द्वारा होने वाले इन पुनर्विवाहों की वैधता स्वीकार की है।<sup>१२</sup> उन के फैसलों के अनुसार शूद्रों में इसका अधिक रिवाज है।<sup>१३</sup> किन्तु उच्च जातियों में इनका रिवाज कम

<sup>११</sup> भारत की जनगणना रिपोर्टें १९११, खण्ड १, भाग १, पृ० २४४

<sup>१२</sup> सत्य सिंग्ग् बनाम मुम्बत १७ अ. ४७६; जानकी बनाम सप्रातो १६ कल ६२७

<sup>१३</sup> रेवम्बर बनाम उमेशाकर १० अ हा० की० रि० ३८१

नहीं है।<sup>१९</sup> अहमदाबाद के साम्प्रदाय ब्राह्मणों में तलाक प्रचलित है। उ० प्र० के अधीन और दक्षिण के लिखावत बनिमों में तलाक दिये जाते हैं।<sup>२०</sup>

बम्बई प्रांत में ऐसे विवाहों पर विशेष प्रचलन है। स्त्रियाँ पहला पति ओकिंग होती हुए अथवा विधवा होने पर दूसरा विवाह कर सकती हैं। महाराष्ट्र में इस विधवा को 'पाट' कहते हैं। पाट विन्व चारणों से किम्बा ज्ञाता है—

(१) **जाति की विभिन्नता या पौख की समानता**—यदि पत्नी के दुकी होने या बच्चा होने से पहले विवाहीयता या सम्बंधना का पना चन जाय तो पति, पत्नी को छोड़ चिट्ठी दे देता है और पत्नी दूसरा विवाह कर सकती है। (२) **गर्भसक्तता**—पति की गर्भसक्तता का ज्ञान होने पर पंचायत की अनुमति से पत्नी की दूसरी शादी हो जाती है। (३) **पारस्परिक सहमति**—जब तलाक पति-पत्नी दोनों की सहमति में होता है, उस समय पति पत्नी के हस्त की माथा या आभूषण के दो टुकड़े करता हुआ उसे छोड़-चिट्ठी दे देता है।<sup>२१</sup> (४) **दुर्व्यवहार**—तलाक देने का कारण कई बार यह भी होता है कि पति-पत्नी के साथ बुरा बर्ताव करता है और उसे कष्ट देता है। स्त्री के पुनर्विवाह की विधवा विवाह की अपेक्षा अधिक बुरा समझा जाता है। इस विवाह में उनकी सामाजिक स्थिति नीची हो जाती है। ऐसी स्त्रियों को किसी के विवाह के समय उपस्थित नहीं होने दिया जाता तथा पर्वों पर वे भोजन आदि नहीं बनाती।<sup>२२</sup> पहले पति की सम्मति पर उनका अधिकार जाता रहता है और पहले पति से उत्पन्न बच्चे भी उसने छिन जाते हैं।<sup>२३</sup> किन्तु पुनर्विवाह से उत्पन्न बच्चे जायज माने जाते हैं और सम्मति में उन्हें विवाह द्वारा परिणीत स्त्रियों के बच्चों के तुल्य अधिकार मिलता है।<sup>२४</sup>

**विवाह विच्छेद की कानूनी व्यवस्था की मांग**

१९५५ का हिन्दू विवाह कानून पास होने से पहले वर्तमान समय में हिन्दू विवाह एक पवित्र धार्मिक संस्कार एवं अविच्छेद्य बन्धन था। हिन्दुसमाज के निम्न वर्ग में ऊपर बतायी जातियों में ही रिवाज के आधार पर तलाक की व्यवस्था थी, किन्तु उच्च वर्ग में तलाक की कोई व्यवस्था नहीं थी। बीसवीं शताब्दी में भारत में समाज सुधार के आन्दोलनों के परिणामस्वरूप जो अभूतपूर्व नारी-जागरण तथा नवीन सामाजिक चेतना

१९ केसरी बनाम सारधन ५ ना० बी० प्रा० हा० को० रि० ६४

२० श्रीरत्नगंगा बनाम शत्रुघ्ना ।

२१ स्टील—ला भाग कास्ट्स, पृ० १६६

२२ माले का डाइजेस्ट, पृ० २८६, श्री बेंनजी द्वारा उद्धृत पृ० २४६

२३ स्टील—वही, १६६ व ३६४-६५

२४ वही, पृ० १७६-३७७

उत्पन्न हुई, उसके परिणामस्वरूप हिन्दू विवाह में तलाक की माँग कई कारणों से की जाने लगी। पहला कारण स्त्री जाति के साथ समान व्यवहार की आकांक्षा थी। हिन्दू नर-नारियों के वैवाहिक अधिकारों में विषमता स्त्रियों के प्रति अत्याधमूलक थी। उपर्युक्त कानून पास होने से पहले हिन्दू समाज में पुरुषों को पदेच्छ विवाह (अधिपदेन) करने का अधिकार था, अतः यदि किसी पुरुष को पहली पत्नी में कोई दोष प्रतीत होता था, उससे वह किसी कारण सन्तुष्ट नहीं था, तो वह दूसरा विवाह कर सकता था। इस प्रकार, विवाह उसके लिए अविच्छेद बन्धन नहीं था। किन्तु भारी एक बार विवाहित होने पर स्त्रियों भी प्रकार दूसरा विवाह करने का अधिकार नहीं रखती थी, वह अपने और दुःखमय विवाहों से मुक्ति किसी भी दशा में नहीं पा सकती थी। इस प्रकार दोनों के वैवाहिक अधिकारों में उग्र वैषम्य था। इसे दूर करने के लिए नर-नारी पर समान रूप से एक-विवाह (Monogamy) का बंधन लगाने तथा दुःखमय विवाहों से मुक्ति पाने के लिए हिन्दू समाज में तलाक की व्यवस्था की प्रयत्न माँग की जाने लगी। यह माँग देश के जागृत महिला वर्ग की ओर से विशेष रूप से की गयी। इसका दूसरा कारण विवाह को सुखमय बनाना तथा उसके मूल उद्देश्यों को पूरा करना था। पहले यह बताया जा चुका है कि विवाह का प्रधान उद्देश्य सन्तानोत्पादन करना तथा जीवन को सुखमय बनाना है। यदि पति नपुंसक हो, गन्तान उत्पन्न न कर सकता हो, सापना हो जाय, बीर कुरता और दुर्व्यवहार के कारण पत्नी के प्राणों को संकट में डाल दे, तो इस दशा में विवाह के प्रधान प्रयोजन पूरे नहीं होते, पत्नी के लिए दाम्पत्यजीवन नरकनुत्पन्न हो जाता है। इस विषम स्थिति में उसका उद्धार करने के लिए तथा वैवाहिक जीवन के प्रधान प्रयोजनों को पूरा करने की दृष्टि से तलाक की माँग की जाने लगी। इसके परिणामस्वरूप १९५५ के हिन्दू विवाह कानून द्वारा इसकी व्यवस्था की गयी है।

### हिन्दू विवाह कानून की तलाक सम्बन्धी व्यवस्था

इस कानून के खण्ड (Section) १३ में वर्तमान हिन्दू समाज में पहली बार तलाक की व्यवस्था की गयी है। इससे पहले कानूनी स्थिति यह थी कि एक बार संपन्न हुए हिन्दू विवाह को किसी प्रकार भंग नहीं किया जा सकता था, धर्म के परिवर्तन से, जाति से श्रुत और बहिष्कृत होने से, किसी एक पक्ष के व्यभिचाररत होने से, पति द्वारा पत्नी को छोड़ देने या पत्नी के वेश्वा बन जाने पर भी हिन्दू विवाह भंग नहीं हो सकता था।<sup>२४</sup> इस कानून ने यह स्थिति बदल दी है। अब धारा १३ के अनुसार कोई भी विवाह, चाहे वह इस अधिनियम के पास होने से पहले हुआ हो या बाद में हुआ हो, पति या पत्नी में से

२४ एग्मिनिसट्रुटर जनरल आफ मद्रास का मामला (१८८६) ६ मद्रास ४६६, १८ कलकत्ता २६४, नारायण ब० जिलोक (१९०७) २६ इलाहाबाद ४

किसी भी अदालत में प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित कारणों में भंग किया जा सकता है—

(१) **व्यभिचार**—यदि दोनों में से कोई एक पक्ष व्यभिचाररत रहने हुए जीवन व्यतीत करता है (Lives in adultery) (धारा १)। इनका यह अभिप्राय है कि यदि पति या पत्नी में से कोई एक बार ऐसा कार्य करता है तो दूसरा पक्ष इस आधार पर तलाक की माँग नहीं कर सकता, ऐसी दशा में वह जीवन दूसरे पक्ष में न्यायिक पार्ष्ण (Judicial Separation) की हो माँग कर सकता है।<sup>२३</sup> तलाक की माँग के लिए यह सिद्ध करना आवश्यक है कि दूसरा पक्ष निरन्तर व्यभिचारपूर्ण जीवन बिता रहा है। पुराने हिन्दू कानून के अनुसार व्यभिचार के कारण पत्नी के वैध्या वन जाने पर भी विवाह सम्बन्ध संग नहीं होता था, ऐसी दशा में विवाह का प्रयोजन विफल हो जाता था। अतः इस कानून में किसी एक पक्ष के कुछ समय तक निरन्तर व्यभिचारपूर्ण जीवन बिताने की दशा में दूसरे पक्ष को तलाक का अधिकार दिया गया है। व्यभिचार का अर्थ पति-पत्नी में से एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति में यौन सम्बन्ध स्थापित करना है। न्यायालय में व्यभिचार विषयक प्रत्यक्ष साक्षी उपस्थित करना प्रायः संभव नहीं होता, अतः इस विषय में न्यायालय ऐसे प्रमाण (Circumstantial evidence) को भी स्वीकार कर लेते हैं, जो इस बात की सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हो कि कोई पक्ष व्यभिचारपूर्ण जीवन बिता रहा है। उदाहरणार्थ, यदि कोई विवाहित स्त्री लम्बे घर से बार-बार दिन-रात गिरन्तर मायब रहती है, किसी अन्य तथा पति के कुल से सर्वथा अपरिचित पुरुष के साथ देखी जाती है, वह इसके साथ विभिन्न स्थानों में अपने-बैठे जाने का कोई समुचित कारण नहीं दे सकती है, तो यह परिणाम निकाला जा सकता है कि उसका उस पुरुष के साथ अवैध सम्बन्ध है और वह उसके साथ व्यभिचारपूर्ण जीवन बिता रही है।<sup>२४</sup>

(२) **धर्मपरिवर्तन**—यदि दोनों पक्षों में कोई एक हिन्दू धर्म को छोड़ कर इस्लाम, ईसाइयत, पारसी, यहूदी आदि किसी अन्य धर्म को ग्रहण करता है तो दूसरे पक्ष को विवाहविच्छेद देने का अधिकार है। बौद्ध, जैन तथा सिक्ख धर्म हिन्दू धर्म के ही अंग समझे जाते हैं, अतः किसी हिन्दू के बौद्ध वन जाने पर दूसरे पक्ष को विवाह विच्छेद की माँग करने का अधिकार नहीं है। इस कानून से पहले धर्मपरिवर्तन से भी हिन्दूविवाह का विच्छेद संभव नहीं था। इस कानून में यह व्यवस्था इस आधार पर की गयी है कि दाम्पत्य प्रेम को बनाये रखने के लिए धर्मपरिवर्तन करना

<sup>२३</sup> **त्रिवलसिंह व मुसम्मात बिमला देवी**, आ० ई० रि० १२५६, जम्मु तथा कश्मीर ७२।

<sup>२४</sup> **काशीप्रसाद सक्सेना**—हिन्दू मैरिज एक्ट, २४७

ठीक नहीं है, यदि कोई पक्ष धर्मपरिवर्तन कर लेता है तो हिन्दू बने रहने वाले दूसरे पक्ष को तलाक की माँग का अधिकार होना चाहिए। १८६७ के विवाह विच्छेद कानून के अनुसार हिन्दू या मुसलमान को इसी तरह अनानुचित पर यह अधिकार दिया गया था कि धर्म परिवर्तन के बाद यदि दूसरा पक्ष उसे छोड़ देता है तो वह दाम्पत्य अधिकारों की पुनः प्राप्ति के लिए उसके विरुद्ध अभियोग चला सकता है। इसके बाद भी यदि यह उसका परिवर्तन करता है तो न्यायमय इस विवाह के भंग होने की संख्या कर सकता है। वही अधिकार हिन्दुओं को इस कानून द्वारा किसी एक पक्ष द्वारा धर्म परिवर्तन की दशा में दूसरे पक्ष को प्रदान किया गया है।

(३) पागलपन—यदि पति-पत्नी में से कोई एक निरन्तर तीन वर्ष से ऐसे मानसिक पागलपन से पीड़ित है जिसकी चिकित्सा करना संभव नहीं है, तो दूसरा पक्ष उसे तलाक दे सकता है। यदि पागलपन चिकित्सा से ठीक हो सकता है तो तलाक नहीं दिया जायगा। इस विषय में यह स्वरण रखना चाहिए कि यदि कोई पक्ष विवाह के समय ही पागल हो तो यह विवाह इस कानून के खण्ड १२ बी० के अनुसार वून्यकरणीय या खण्डित (Voidable) घोषित किया जा सकता है। इसका यह अभिप्राय है कि इस विवाह को न हुआ समझा जायगा। यदि ऐसा पागलपन दो वर्ष से हो तो इसके लिए न्यायिक पार्यन्त (Judicial Separation) का आदेशन-पत्र दिया जा सकता है।

(४) कोढ़ की बीमारी—यदि कोई पक्ष तीन वर्ष से असाध्य एवं उग्र (Incurable and virulent) कोढ़ से पीड़ित हो तो दूसरा पक्ष तलाक के लिए आदेशन-पत्र दे सकता है।

(५) संक्रामक यौन रोग—विवाहविच्छेद की माँग एक पक्ष इस आधार पर भी प्रस्तुत कर सकता है कि दूसरे पक्ष को ऐसा यौन रोग है, जिसकी छूट उसे भी लग सकती है तथा उसे ऐसा रोग आदेशन-पत्र देने से तीन वर्ष पहले से था। इस दशा में न वैवाहिक दाम्पत्य सम्बन्ध संभव नहीं है, अतः दूसरे पक्ष के इस रोग से पीड़ित होने की आशंका है, अतः इस दशा में तलाक की व्यवस्था की गयी है।

~~(६)~~ संन्यासी होना—यदि कोई पक्ष सांसारिक जीवन का त्याग करके संन्यासी हो जाता है तो दूसरा पक्ष तलाक पाने का अधिकार रखता है। इसका यह कारण है कि संन्यास का अर्थ सांसारिक कर्तव्यों की दृष्टि में व्यक्ति का समाप्त हो जाना या उसकी दीर्घायु मृत्यु (Civil Death) है। इससे दूसरे पक्ष के साथ वैवाहिक संबंध जैसे ही समाप्त हो जाता है जैसे मृत्यु से समाप्त हो जाता है। ऐसी दशा में नारद, पराशर आदि प्राचीन शास्त्रकारों ने स्त्रियों को पुनर्विवाह का अधिकार दिया था। इस कानून में इसी का अनुसरण किया गया है। संन्यासी होने का अनिप्राम केवल भगवत् व्रत धारण करता नहीं है, किन्तु इस आश्रम में प्रवेश के लिए आवश्यक सभी साध्वीय



विधि-विधानों का पालन करना है।<sup>२५</sup> दूध की संव्यासी होने का अधिकार नहीं है, अतः वह इस आधार पर तलाक नहीं ले सकता। वैरागी संव्यासी होते हुए भी विवाह कर सकते हैं।<sup>२६</sup> अतः इस बात में सन्देह है कि कोई व्यक्ति वैरागी सम्प्रदाय में दीक्षित हो जाय तो दूसरा पक्ष उससे इस आधार पर तलाक ले सकता है।

(७) लापता होना—यदि दोनों में से किसी पक्ष का कोई व्यक्ति मान बर्ष तक दूसरे पक्ष को या उसके ऐसे सम्बन्धियों को नहीं मिलता, जिन्हें यह मनाचार मिलना चाहिए था, तो इस दशा में यह मान लिया जाता है कि लापता व्यक्ति वीं मृत्यु हो चुकी है। इस दशा में दूसरे पक्ष को तलाक पाने का अधिकार दिया गया है। यह व्यवस्था प्राचीन काल में परागद ने की थी, हिन्दू विवाह के कानून की यह धारा एंग्लिश के १९५० के विवाह कानून (Matrimonial Causes Act) से प्रेरण की गयी है।

(८) पुनर्प्राप्ति के बाद सहवास न करना—पति-पत्नी में से जब कोई पक्ष अदालत से पुनर्प्राप्ति की आज्ञा प्राप्त कर लेता है तो इसमें उनका वैवाहिक सम्बन्ध भंग नहीं होता है। यदि इससे वाक्य उनमें पुनः समझौता हो जाता है और वे एकट्ठा रहने लगते हैं तो उनके पुनर्प्राप्ति की अदालत की आज्ञा रद्द की जा सकती है (१५वीं धारा)। यदि ऐसी आज्ञा बिना रद्द करवाये पति-पत्नी एकट्ठा रहने लगते हैं तो ऐसी आज्ञा तलाक का कारण नहीं बन सकती है। किन्तु यदि ऐसी आज्ञा प्राप्त करने के दो वर्ष बाद तक भी वे सहवास नहीं करते हैं तो इस आधार पर तलाक की भूमि की जा सकती है। इसमें वादी की तीन बातें सिद्ध करनी पड़ती हैं—(क) उसने प्रतिवादी के विषय कानूनी अलहदगी की आज्ञा अदालत से प्राप्त की है। (ख) ऐसी आज्ञा प्राप्त किये हुए दो वर्ष बीत चुके हैं। (ग) आज्ञा प्राप्त होने के बाद दोनों ने सहवास आरम्भ नहीं किया, सहवास का अर्थ दाम्पत्य जीवन बिताते हुए पति-पत्नी का एक साथ रहना है।

(९) दाम्पत्य अधिकारों की पुनः प्राप्ति की आज्ञा का पालन न करना—यदि दोनों पक्षों में से कोई पक्ष दूसरे पक्ष को दाम्पत्य सम्बन्ध से वंचित करता है और दूसरा पक्ष पहले पक्ष के विषय इस विषय में अदालत से दाम्पत्य अधिकारों की पुनः प्राप्ति (Restitution of Conjugal Rights) की आज्ञा प्राप्त कर लेता है, किन्तु इस आज्ञा के बावजूद यदि बी बर्ष तक पहला पक्ष इसका पालन नहीं करता, तो दूसरा पक्ष इस आधार पर तलाक के लिए आवेदन पत्र दे सकता है। इसका कारण स्पष्ट है, पति-पत्नी दाम्पत्य जीवन बिताने के लिये विवाह-सूत्र में आविष्ट होते हैं, यदि इन दोनों में से कोई एक दूसरे की जान बूझकर दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित करने से वंचित करता है तो दूसरे को न्यायालय द्वारा इसे पाने का अधिकार है। यदि वह इस विषय में न्यायालय

<sup>२५</sup> बलदेवप्रसाद व० आर्य प्रतिनिधि समा (१९३०) ५२ अन्ता० ७८६

<sup>२६</sup> श्री राधकृष्ण व० माइनर सत्रज्जु बबन्ना १९५२ म० ४१३

की आशा की अवहेलना करता है तो इसका यह अभिप्राय है कि वह दूसरे पक्ष के साथ साम्प्रत्य सम्बन्ध नहीं रखना चाहता है। इस दशा में वैवाहिक सम्बन्ध को अनादे रखने में कोई लाभ नहीं है, अतः इस कारण के आधार पर इस कानून में तलाक की व्यवस्था की गयी है।

**पत्नी द्वारा तलाक प्राप्त करने के दो अन्य कारण—**उपर्युक्त तीनों कारणों के आधार पर पति-पत्नी समान रूप में अदालत में तलाक के लिए आवेदन-पत्र दे सकते हैं। किन्तु इनके अनिश्चित दो कारण ऐसे हैं जिनके आधार पर केवल पत्नी विवाह-विच्छेद की माँग कर सकती है। पहला कारण गुरु ने अधिक पत्नियों का जीवित होना है। इस कानून द्वारा गुरु-विवाह की अवस्था को हिन्दू समाज में कठोरतापूर्वक लागू किया गया है और एक पत्नी के जीवित रहते हुए दूसरे विवाह को दण्डनीय अपराध बना दिया गया है। किन्तु इससे पहले के हिन्दू कानून में पुरुषों को बहुविवाह की खूली शूट थी, किसी कानून से ऐसे विवाहों को रद्द नहीं किया जा सकता था, अतः इन विवाहों के कारण काष्ठमय जीवन बिताने वाली स्त्रियों को इस व्यवस्था में तलाक पाने का अधिकार दिया गया है। इसका सम्बन्ध इस कानून के पास होने से पहले किये गये बहुविवाहों में है, क्योंकि इस कानून के पास हो जाने के बाद कोई पक्ष दूसरे पक्ष के जीवित रहते हुए दूसरा विवाह नहीं कर सकता है। इस व्यवस्था के अनुसार तलाक पाने के लिए बाधों का निम्नलिखित वर्गें सिद्ध करनी पड़ती है—(क) प्रतिबाधों में इस कानून के पास होने से पहले उसके साथ तथा किसी अन्य स्त्री या स्त्रियों के साथ विवाह किया है। (ख) आवेदन-पत्र देने के समय उसकी अन्य पत्नियाँ जीवित हैं। पत्नी द्वारा पति से तलाक लेने का दूसरा विशेष कारण पति द्वारा बलात्कार (Rape), गुदामैथुन (Sodomy) या पशुमैथुन (Bestiality) का अपराधी होना है।

**तलाक का आवेदन-पत्र देने की अवधि**

हिन्दू विवाह कानून के खण्ड १४ के अनुसार कोई भी न्यायालय तलाक के किसी आवेदन-पत्र पर तब तक विचार नहीं कर सकता, जब तक कि आवेदन-पत्र देने के समय विवाह सम्पन्न हुए तीन वर्ष न व्यतीत हो चुके हों। यह व्यवस्था १९५४ के विशेष विवाह कानून की तथा इंग्लैण्ड के १९५० के विवाह कानून की व्यवस्था से मिलती है। इसके अनुसार विवाह के आरम्भिक तीन वर्षों में तलाक का कोई आवेदन-पत्र नहीं दिया जा सकता। इसका उद्देश्य यह है कि पति-पत्नी विवाह के बाद कौरव तलाक न दें, तीन वर्ष तक एक-दूसरे के साथ मिलजुल कर रहने का और तिभाव करने का प्रयत्न करें, तीन वर्ष ऐसा विभाव करने के बाद उनमें स्वाभाविक रूप से ऐसा प्रीतिपूर्ण सम्बन्ध हो जायगा कि तलाक की संभावना बहुत कम हो जायगी।

विवाह के पहले तीन वर्षों में सामान्य रूप से तलाक का अधिकार न देते हुए

भी दो विशेष दशाओं में इसका आवेदन-पत्र देने का अधिकार इस कानून में स्वीकार किया गया है। पहली दशा असाधारण दुश्चरितता (Exceptional Depravity) की तथा दूसरी असाधारण कष्ट (Exceptional Hardship) की है। इन दोनों की कानून में कोई स्पष्ट व्याख्या नहीं की गयी। सामान्य रूप से असाधारण कष्ट का यह अभिप्राय है कि जब पुरुष के साथ बड़ी क्रूरता का व्यवहार किया जाय, इसके साथ पति व्यवहार भी अथवा पत्नी को छोड़ देने वाला हो। पत्नी का व्यवहारपूर्ण सम्बन्ध से सन्तान उत्पन्न करना भी इसी प्रकार का कष्ट है। कष्ट का अभिप्राय शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और सामाजिक आदि सभी प्रकार के ऐसे कारणों में है, जिनके आधार पर तलाक की माँग की जाती है। असाधारण दुश्चरितता का अभिप्राय प्रतिवादी द्वारा वादी के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध ऐसी दशा में तीन सम्बन्ध स्थापित करता है, अथवा तीन रोग तथा कोढ़ से पीड़ित हो। बॉर्मेन व. बॉर्मेन के एक ब्रिटिश मामले में असाधारण कष्ट और दुश्चरितता के बारे में निम्नलिखित सिद्धान्त निश्चित किए गये हैं—(१) पत्नी के लिए असाधारण कष्ट उस दशा में होता है जब पति व्यवहाररत होने के साथ-साथ पत्नी का दूसरी स्त्री के लिए परित्याग करे अथवा उसके साथ क्रूर व्यवहार करे, केवल व्यवहार असाधारण कष्ट नहीं है। (२) व्यवहार के साथ इसका परिणाम अर्थात् पत्नी द्वारा अवैध सम्बन्ध से सन्तानोत्पादन भी असाधारण कष्ट है। (३) यदि पति विवाह के कुछ समय बाद ही माँ की से या घर की नौकरानी से अनुचित अवैध सम्बन्ध स्थापित करता है तो यह असाधारण दुश्चरितता है। मद्रास के मेघनाथ वत्तम सुशीला (आ. सं. रि १६५४ म. ४२३) नामक मामले में उपर्युक्त ब्रिटिश मामले का अनुसरण किया गया है। उपर्युक्त दोनों कारणों के आधार पर किये जाने वाले तलाक के मामलों पर विचार करते हुए न्यायालय दो बातों का ध्यान रखेगा, पहली बात बच्चों की सुरक्षा और व्यवस्था की है। यदि इनके हितों का कोई आंच आती है तो तलाक के आवेदन-पत्र पर विचार नहीं हो सकता। दूसरी बात इसकी पुष्टिपूर्व संभावना है कि तीन वर्ष की अवधि समाप्त होने से पहले ही उनमें समझौता हो जायगा। न्यायालय को इस बात का प्रयास करना चाहिए। यदि इस बात की संभावना हो तो तलाक की प्रार्थना अस्वीकार कर दी जानी चाहिए।

### पुनर्विवाह करने की प्रक्रिया

तलाक का आवेदन-पत्र स्वीकार होते ही दोनों पक्षों को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं प्राप्त हो जाता है, इसके बाद एक वर्ष तक उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ती है (खण्ड १५)। इस अवधि के बीत जाने पर ही दोनों का विवाह-सम्बन्ध पूर्ण रूप से विच्छिन्न हो जाता है और वे नया विवाह कर सकते हैं। एक वर्ष की यह अवधि जानबूझ कर रखी गयी है। इसका उद्देश्य लोगों को तलाक के लिए निरुत्साहित करना और नयी

सादी के लिए ही तलाक पाने की प्रवृत्ति को रोकना है।

जब हिन्दू विवाह कानून में तलाक की व्यवस्था का प्रस्ताव रखा गया था, उस समय सड़िवादी हिन्दुओं ने इसका इस आधार पर घोर विरोध किया था कि इससे समाज में तलाक की बाढ़ आ जायगी तथा अनैतिकता में घोर वृद्धि होगी। किन्तु हिन्दू विवाह कानून में इसकी व्यवस्थाएँ इतनी कठोर बनायी गयी हैं कि इसे कोई आसानी से प्राप्त नहीं कर सकता है। सामान्य रूप से विवाह के पहले तीन वर्षों में तलाक का कोई आवेदन-पत्र नहीं दिया जा सकता, तीन साल बाद आवेदन-पत्र देने पर विवाह के दौखानी मामलों का फैसला होने में दो तीन वर्ष लगना सामूली बात है। इससे बाद पुनर्विवाह के लिए दोनों पक्षों को एक वर्ष की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इस प्रकार तलाक प्राप्त करने में पाँच-छः वर्ष लग जाते हैं और भारी व्यय करना पड़ता है, अतः इस उपाय का ज्वलन्मान सेवक वही लोग करते हैं, जो वास्तव में अत्यन्त दुःख में हैं। वस्तुतः तलाक की व्यवस्था ऐसे ही लोगों के लिए है, अतः अब तक हिन्दू समाज में तलाक की व्यवस्था का दुष्प्रभाव नहीं हुआ, इससे अनैतिकता में कोई वृद्धि नहीं हुई और भविष्य में इसकी कोई संभावना नहीं प्रतीत होती है।

## बालविवाह

वैदिक युग में बालविवाह की पद्धति का अभाव

मध्ययुग से बीसवीं शताब्दी आरम्भ होते तक हिन्दू समाज में बालविवाह की प्रथा सार्वभौम थी। किन्तु प्राचीन वैदिक युग में इस पद्धति का प्रचलन नहीं था। उस समय के विवाहसम्बन्धी वैदिक मंत्रों एवं सूक्तों में यह बात अती-भोति प्पट्ट होगी है। बाद में आठ और दस बरस के और बहुत बार इससे भी कम आयु के और अनेक जातियों में गर्भस्य बालक-बालिकाओं के विवाहों का प्रचलन हुआ तथा विवाह का गृह्ये-गृहिण्याओं का खेल बना दिया गया, किन्तु बेटों में इसकी कोई मन्ध तक नहीं है। प्राचीन वैदिक युग के लिए तो यह एक कल्पनाहीन वस्तु थी। इस युग में विवाह तभी होता था जब बर (माँस) बधू की कामना करता था और बधू पति की इच्छा करती थी।<sup>१</sup> उस समय बर के माता-पिता बधू की तलाश करते थे और कन्या के माता-पिता बर को अपनी कन्या देते थे। युवक-युवती में प्रेम का उदय युवावस्था प्राप्त करने पर ही हो सकता है, बाल्यावस्था में नहीं। वेद में बार-बार बर-बधू द्वारा एक-दूसरे का चिन्तन करने तथा अपने मनों को एक-दूसरे के अनुकूल बनाने और प्रेम प्राप्त करने का वर्णन है। तैत्तिरीय उपनिषद् (१।६।१) में एक स्थान पर बधू बर से कहती है—“मैंने इस बात को जान लिया है कि तुम मेरा ध्यान करते हो और सन्तानोत्पत्ति के कार्य के लिए मुझे अपना सहयोग देने को प्रस्तुत हो”। बर बधू को इसका उत्तर देते हुए कहता है—“मैंने यह जान लिया है कि तुम मन से मुझे चाहती हो। सन्तान चाहती हो। हे सुवर्ती स्त्री, तुम मेरे पास जाओ और हे पुत्र की कामना करने वाली, तुम सन्तान उत्पन्न करो (तैत्ति० उप० १।६।२)। अथर्ववेद के प्रीतिसंजनन (६।८।६), अनुराधन (६।१०।२), स्मर (६।१३।१) सूक्तों से तरुण विवाह की प्रथा सूचित होती है। ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर अग्निनी देवताओं (बर के माता-पिता) द्वारा विवाहों के संपन्न होने का उल्लेख है।

<sup>१</sup> ऋ० १०।८।६ ‘सौमी बधूपुरभवरश्चिन्तास्तामूभा बरा । सुर्वा पत्यस्य संसन्ती मनसा सविता ददातु’ । सायणाचार्य का भाष्य पत्ये संसन्तीम्, पति कामयमानाम्, प्राप्तवीचनामित्यर्थः ।

एक मुवती कहती है—हे अश्विनौ ! युवा पति मुवती के सामं गृह में निवास करता है (ऋ० १०।४४।११) । ऋ० २।३५।४ में उस की मति अत्यन्त निर्मल, सयामारिणी, प्रसन्नवदना मुवतियों को युवा पुरुष प्राप्त होने का वर्णन है ।

वैदिक विवाह में दम्पती के जित कर्तव्यों, दायित्वों एवं आदकों पर बल दिया गया है वे तथैव विवाह में ही पूरे हो सकते हैं । विवाह के सन्तों में दम्पती धार्मिक-प्रसन्न, सन्तपदी तथा अन्य विधियाँ करते हुए जो मन्त्र पढ़ते हैं उनमें परस्पर प्रेम, सहयोग और यावन्वीचन (एक दूसरे के अनुकूल रहने की प्रतिज्ञाएँ) की गयी है । उनका आशय यदि वे न समझते हों तो सारी विवाह विधि एकजम डोंग मात्र रह जाती है । विवाह के समय बधू को यह आशीर्वाद दिया जाता है कि तु श्वशुरासय में सास और ससुर पर रानी बनकर रह (ऋ० १०।८५।४३) । यह आशीर्वाद आज इस तरह की ऐसी बालिका को नहीं दिया जा सकता, जो अपने आप को कठिनाता से संभाल सकती है । यह अवोध बालिका श्वशुरासय को संभालने और शासन करने के दायित्व को किस प्रकार पूर्ण कर सकती है । यह कार्य केवल योग्य और मिलित मुवती द्वारा ही संभव है । ऋग्वेद में विवाह के मध्य के सहवास या सम्भोग के मन्त्र भी हैं (१०।८५।२७-२८, ३७) । बाल-विवाह के समर्थक कहते हैं कि शूर्मां मुत्ता विभिन्न प्रकार के मन्त्रों का संकलन मात्र है, वस्तुतः महामासविधि विवाह होने के कई वर्ष बाद होती थी और उस समय के मन्त्र इस मुक्त में जोड़ दिये गये हैं । किन्तु विवाह के समय गये जाने वाले मन्त्र इस स्वापना का खण्डन करते हैं । अग्नि के सम्मुख धर, बधू को अविलम्ब तत्ताग उत्पन्न करने के लिए अपने पास बुलाता है (अग्नितीय गृहसूत्र २।१।८) । विवाह के तीसरे दिन गर्भाधान का विधान है । यह कर्तव्य धर-बधू के युवा होने पर ही हो सकता है । विवाह होते ही बधू धर के घर आती है और धर के सारे काम-यशादि को संभाल लेती है । पत्नी को पति के घर में प्रविष्ट होते हुए कहा जाता है कि तू इस घर में गृहस्थ के कार्य के लिए सदा जागरूक रह (ऋ० १०।८५।४६) ।

ऋग्वेद के कुछ स्थलों से वैदिक युग में बाल-विवाह सिद्ध करने का यत्न किया जाता है । इन स्थलों में अभंग तथा अर्भा शब्द का प्रयोग हुआ है । कहा जाता है कि अर्भा और अभंग का अर्थ बालिका एवं बालक है । ऋ० १।१११।१ में अश्विनियों द्वारा अभंग विमद को अर्भात् बालक विमद को पत्नी दिये जाने का वर्णन है । ऋ० १।५१।१३ में यह उल्लेख है कि इन्द्र ने कशीवान् को अर्भा अर्भात् बालिका वृष्णा दी । किन्तु इन दोनों स्थलों पर अभंग और अर्भा का अर्थ बालक और बालिका नहीं है । विमद को अर्भग कहने का आशय केवल इतना ही है कि वह अपने अन्य प्रतिद्वन्द्वी राजाओं की अपेक्षा कम आयु का था । सामय्याचार्य द्वारा वर्णित पौराणिक गाथा के अनुसार उसने युद्ध में अपने प्रतिद्वन्द्वी राजाओं को हरा कर बधू प्राप्त की थी । दूसरे स्थल में वृष्णा को अर्भा का जो विशेषण दिया गया है, उसका कारण यह है कि कशीवान् की बड़ी आयु की

सुलना में युग्मा की आयु बहुत छोटी थी।

वैदिक युग में बाल-विवाह न होने का एक प्रबल कारण यह था कि बालकों तथा बालिकाओं को शिक्षा के लिए कुछ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता था, उपनयन एवं विद्याध्ययन के बिना व्यक्ति गृह ममता जाता था। उपनयन संस्कार के साथ गुरु के पास ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाध्ययन करने के बाद ही व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट हो सकता था। वेद का अध्ययन करने के लिए कम से कम १२ वर्ष या समय लगाना पड़ता था। उपनयन संस्कार प्रायः ८ वर्ष की उम्र में होता था। ८म शिमाब्द में २० वर्ष से कम आयु के पुरुष का विवाह अगम्य था। अतः वैदिक व्यवस्था के अनुसार गृहस्थ आश्रम के लिए उपयुक्त वही व्यक्ति था जो युवा हो। "जो पुरुष यज्ञोपवीत और ब्रह्मचर्य सेवन से उत्तम शिक्षा और सिद्धापूर्वक, गुन्दर बस्त्रों वाला पूर्ण युवा होकर गृहस्थाश्रम में जाता है वही मंगलकारी होता है" (ऋ० ३।८।४)। पुरुषों के ब्रह्मचारी रहकर वेदाध्ययन करने में किसी को संशय नहीं है, किन्तु कुछ लोग स्त्रियों के ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाध्ययन करने में सन्देह करते हैं। किन्तु अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त में बर्ण स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि ब्रह्मचर्य द्वारा कन्या युवा गणि को प्राप्त करनी है (ब्रह्मचर्यो कन्या युवानं विन्दते पतिम्)। वैदिक काल में स्त्रियों भी पुरुषों की तरह ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाध्ययन करती थीं। विश्ववारा (ऋ० १।२८), अपाता (ऋ० ८।६९) तथा घोषा ऋषीवती (ऋ० १०।३६) विविध मूलों के मन्त्रों का वर्णन करने वाली हुई हैं। इस प्रकार स्त्री-पुरुष का विवाह ब्रह्मचर्यपूर्वक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त ही पूर्ण युवा-वस्था में होता था। बाद में स्त्रियों और पुरुषों के ब्रह्मचर्य व्रत एवं शिक्षा की उपेक्षा होने से ही बाल-विवाह आरम्भ हुआ।

गृह्यसूत्रों के आरम्भिक काल में हिन्दू समाज में तरुण विवाह प्रचलित रहा, किन्तु बाद में बाल-विवाह का बोझ बहुत प्रचलन होने लग गया। आपस्तम्ब, आपस्तम्ब तथा अन्य गृह्यसूत्रों में विवाह की विधियों का विस्तार से वर्णन है, किन्तु बर तथा धनु की आयु का कोई निश्चित निर्देश नहीं है। गृह्यसूत्रों में विवाह के बाद अविनम्य मर्माधान का वर्णन है। छांदागम (१।१७।४-५), गारुड और आपस्तम्ब गृह्यसूत्रों में विवाह के बाद ही मर्माधान की व्यवस्था है, इससे यह स्पष्ट है कि कन्या विवाह के समय युवती होती थी, आपस्तम्ब गृह्यसूत्र स्पष्ट रूप से कहता है कि पति-पत्नी घर आने पर तीन दिन ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर चौथे दिन मर्माधान करें, किन्तु लीलाक्षि (काठक) गृह्यसूत्र कुमारियों का ब्रह्मचर्य १० या १२ वर्ष ही बताता है और ११ वें या १३ वें वर्ष को विवाह की अवस्था बताता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि इससे पहले के वैदिक साहित्य में आयु का कोई निश्चित संकेत नहीं मिलता। यदि कन्याओं का उपनयन ८ या १० वर्ष में माना जाय तो कन्याओं का विवाह काल १८ या २० वर्ष होगा। किन्तु हिरण्यकेशी (१।१६।२) और गोभिल गृह्यसूत्र (३।४।६) में कहा गया है कि विवाह

के लिए ननिंका कन्या श्रेष्ठ होती है।<sup>२</sup> ननिंका पण्ड की व्याख्या करते हुए गोभिल के आधुनिक भाष्यकार ने 'गृह्यसंश्लेष' का यह मत उद्धृत किया है कि ननिंका उस कन्या को कहते हैं जो अशुभमती न हो। इसी टीकाकार ने एक दूसरे जगोत्र में ऐसी कन्या को ननिंका बताया है जो पुरुषों के जागे भी सज्जा से अपने अंगों को न दापती हो। अतः टीकाकारों के मत में ननिंका उस कन्या को कहते हैं जिसमें अभी तक सज्जा की वृद्धि उत्पन्न नहीं हुई। किन्तु यह अर्थ ठीक नहीं जान पड़ता। हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र का टीकाकार मातृदत्त मेघनाहं भी ही ननिंका समझता है।<sup>३</sup> धीरमित्रोदय ने महाभारत का एक श्लोक उद्धृत किया गया है, जिसमें १६ वर्ष की कन्या को ननिंका बताया गया है। डा० अम्बारकर ने बताया है कि हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र को गोबिल परम्परा द्वारा सुरक्षित रखने वाले अनेक वैदिक ब्राह्मणों में तथा इस गृह्यसूत्र की अनेक हस्तलिखित प्रतिमें में "सजाता ननिंका" के स्थान पर "सजाताननिंका" पाठ है, अर्थात् 'अगनिंका' कन्या से ही जादी करनी चाहिए।<sup>४</sup> यदि इस कल्पना को छोड़ कर हिरण्यकेशी में ननिंका का ही पाठ माना जाय और उसका अर्थ छोटी-सी बालिका किया जाय तो इसके आगे ब्रह्मचारिणी

२ ननिंकान्तु बहेरकन्यां यावन्तुमती भवेत्। अशुभमती स्वननिंका तां प्रयच्छेत् ननिंकाम्। अप्राप्तरजसा गोरो प्राप्ते रजसि रोहिणी। अव्यञ्जिता भवेत् कन्या कुचहीना च ननिंका ॥

३ गोभिल गृ० सू० ३।४।६ में उद्धृत—यावन्न सज्जयाणानि कन्या पुण्यसन्निधौ योन्यावीन्यवगृहेत तावद्भुवति ननिंका। मि० हिरण्य० गृ० सू० १।१।२ ननिंकाभासवर्तमानम्। तस्माद्वस्त्रविशेषणाहं ननिंका मेघनाहंतिवर्षः।

४ उपर्युक्त बचनों से स्पष्ट है कि ननिंका के अर्थ के सन्निधौ में धर्मशास्त्रियों में दो मत थे। पहले मत में ननिंका ऐसी कन्या को कहते थे जिसे मंगी रहने में सज्जा का अनुभव नहीं होता था, जिसने यौवन नहीं प्राप्त किया था, जिसको रजोवर्शन नहीं हुआ था, जिसमें यौवन के चिह्न—कुचादि प्रकट नहीं हुए थे। भविष्यपुराण के मतानुसार यह १० वर्ष की लड़की थी। दूसरा मत इसे प्राप्तयौवनावस्था तथा मेघनयोग्य कन्या मानता था। १० वर्ष से अधिक आयु को तथा यौवन न प्राप्त करने वाली लड़की गन्धारी कहलाती थी। पारस्कर और संवत् १० वर्ष की तथा भविष्यपुराण १२ वर्ष की लड़की को कन्या कहते हैं, इसके कुछ अधिकतम होते थे। इसी को श्यामा भी कहते हैं। कुमारी यौवन प्राप्त करने वाली १२ वर्ष से अधिक आयु की लड़की होती थी। रजस्वला १० या १२ वर्ष से अधिक आयु की कन्या होती थी। रोहिणी युवावस्था में आरोहण करने वाली तथा रजोवर्शन आरम्भ करने वाली लड़की होती थी (एल० स्टनबैक—ज्यूरिडिकल स्टडीज इन एंशेल्ड इंडियन लॉ, भाग २, विलो १६६७, पृ० ३६)।



का विशेषण स्वयं जान पड़ता है। नग्निका शब्द की इस परस्पर विरोधी व्याख्या का यही समन्वय हो सकता है कि पहले 'नग्निका' का अर्थ 'युवती' ही था, किन्तु जब बालविवाह की पद्धति प्रचलित हो गयी तो टीकाकारों ने इसका अर्थ खरदस्त्री 'बालिका' कर दिया। इस प्रकार का एक और सुन्दर उदाहरण छान्दोग्य उपनिषद् की (१।१०।१) उपस्ति-चाकरण की कथा का प्रथम भाग है। निर्धनावस्था में फसल खराब होने के कारण कुशदेश में, अमण करनेवाली उपस्तिचाकरण की पत्नी के लिए मूल में "आटिकी" शब्द है। शंकर ने यही आटिकी शब्द का अर्थ ऐसी बालिका किया है जिसमें यौवन के चिह्न अभी नहीं प्रकट हुए हैं।<sup>५</sup> ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय बालविवाह की प्रवृत्ति प्रारम्भ हो गयी थी। प्रारम्भ में जब विवाह प्रोत्सावस्था में होता था तो वेद तथा ग्राह्य-सूत्रों में विवाह की आयु का निश्चित संकेत देने की आवश्यकता भी नहीं समझी गयी, किन्तु जब बाल विवाह होने लगा तो गोभिल और हिरण्यकेशी को धर्म की आयु का नग्निका के रूप में निर्देश करना पड़ा। मुद्गुल ने भी (हार्नली के मत में इसका समय ८ वीं शती ई० पू० है) बाल-विवाह की प्रवृत्ति को रोकने का यत्न किया और निम्नलिखित संकेत दिए थे न्यून आयु वाली स्त्री और पच्चीस वर्ष में न्यून आयु वाला पुरुष यदि गर्भग्राहक करते हैं तो वह गर्भ ठीक नहीं बनता, उत्पन्न होने पर वह देश तक जीवित नहीं रहता और यदि जीवित रहता है तो दुर्बलेश्वर्य हो जाता है, इसलिए अल्पवयु बाला में गर्भ स्थापन न करें।<sup>६</sup> सोलह वर्ष से कम आयु वाली कन्या की सुश्रुत अत्यन्त बाला समझता था।<sup>७</sup> किन्तु यह एक विचित्र बात है कि अग्न्यत (सटीक म्यान् १०।१३) में सुश्रुत ने कन्या की विवाह योग्य आयु १२ वर्ष लिखी है।<sup>८</sup> संभवतः सुश्रुत को उनी

<sup>५</sup> छान्दो० १।१०।१ मटवीहतेषु कुरुआटिक्या सहजातयोस्तितृ चाकायवः इत्य घाने प्रथमक उवाच, शंकर—आटिक्या अनुपज्ञात व्यसनया यशोधरादि। संकेत ब्रह्म आदि की ईस्ट सीरीज के इस उपनिषद् के अनुवाद में यही अर्थ दिया गया है, किन्तु अट गती धातु का अर्थ ही यहाँ ठीक जान पड़ता है।

<sup>६</sup> सुश्रुत शा० स्या० (१०।४४-४५) ऊनयोऽसत्कर्षायां प्राप्यः पंचविंशतिम् यथाघृते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते। जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा-दुर्बलेश्वर्यः, तस्मादल्पवयवबालायां गर्भाधानं न कारयेत्।

<sup>७</sup> बालेति गोपते नारी पावद्वर्षाणि योऽशः। सु० शा० स्या० १०।५३

<sup>८</sup> अथास्मै पंचविंशतिवर्षायां द्वावरावर्षा पत्नीमाकरोतः। धर्माधिकतमप्रज्ञां प्राप्स्य-तीति। सुश्रुत की १६ वर्ष की आयु का समर्पण आजकल के परिचयी डाक्टर भी करते हैं। उनका कहना है कि भारत में कन्याओं का विवाह १६ वर्ष से कम आयु में कदापि नहीं होना चाहिए। डा० लैकास्टर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक द्यूबर्-

समय यह बेताबनी बने की आवश्यकता प्रतीत हुई होगी जब यह बुराई प्रचलित हो चुकी होगी ।

### धर्मसूत्र व बालविवाह

पिछले गृहसूत्रों की अपेक्षा धर्मसूत्रों में बालविवाह की प्रवृत्ति अधिक स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होती है । धीरे-धीरे यह विचार प्रचलित होने लगा कि ऋतुकाल के समय तक कन्या का प्रदान कर देना चाहिए, यदि उस समय के बाद भी पिता कन्या का विवाह नहीं करता तो कन्या को कुछ प्रतीक्षा करके अपना विवाह स्वयं कर लेता चाहिए । गौतम (१८१२०-२३) के मत में यदि तीन ऋतुकाल बीत जाने के बाद भी पिता कन्या की शादी नहीं करता तो कन्या अनिन्दित पुरुष के साथ विवाह कर ले और पिता के दिये हुए बहनों को छोड़ दे । पिता को ऋतुकाल से पहले ही कन्या प्रदान करना चाहिए (प्रधानं प्रावृत्तिः) । कुछ आचार्यों के मत में तो कन्या के वस्त्र पहनने के योग्य होने से पहले ही उसका दान कर देना चाहिए । इससे स्पष्ट है कि गौतम से पहले ऐसी कन्याओं का भी विवाह प्रारम्भ हो चुका था और तत्तः पहलता न जानती हों । किन्तु गौतम उनके असहमत होता हुआ ऋतुकाल से पहले कन्या के दान का विधान करता है । बौधायन (४१११२-१४) और वसिष्ठ (१०१७०-७१) उपर्युक्त विधान का अनुसरण करते हैं और यह बात और बढ़ा देते हैं कि जब तक कन्या अविवाहित है उस समय तक प्रति ऋतुकाल में भूषणव्यास का दाँप उसके माता-पिता की सगता है । योग्य वर न मिलने पर कन्या विवाह करे या नहीं, इस पर कुछ सम्मति-भेद है । मनु (६।८८-८९) उत्कृष्ट, अभिरूप एवं सद्गुण वर पर बल देता है और यह कहता है कि ऋतुमती होने तथा जन्मपर्वन्त कुमारी रहने पर भी कन्या का विवाह गुणहीन वर के साथ न करे । यदि माता-पिता कन्या का विवाह न करें तो कन्या तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करके योग्य वर से स्वयं विवाह कर ले, इसमें उसे कोई पाप नहीं सगता (६।६०-६१) । मनु ने गौतम की तीन ऋतुओं की अवधि की ३ वर्षों तक पहुँचा दिया तथा उपर्युक्त वर न मिलने पर कुमारी रहने का विधान किया । किन्तु बौधायन धर्मसूत्र (४१११२-१४) कहता है कि पिता कन्या की गुणवान् वर के लिए वे, गुणवान् वर नहीं मिलता तो गुणहीन को ही दे,

कलौतिल इन ईशिया (भारत में क्षयरोग, पृ० १४७) में लिखा है—यह कहा जाता है कि उष्ण प्रदेशों में स्त्रियों के जीवन का परिपक्व शीघ्र होता है और समशीतोष्ण कटिबंध के प्रदेशों की अपेक्षा भारत की कन्याएं शीघ्र ताकम्ब प्राप्त करती हैं । इस शीघ्र विकास के लिए दो वर्ष कम किये जा सकते हैं । पश्चिम में विवाह को न्यूनतम आयु १८ वर्ष समझा जा सकती है, इस देश (भारत) में यह आयु १६ वर्ष होती चाहिए ।

किन्तु रजस्वला कन्या को घर में रोक कर न रखे।<sup>१०</sup> ऋतुमती होने के बाद ही तीन वर्ष तक यदि कन्या का विवाह नहीं होता तो कन्या स्वयमेव योग्य पति प्राप्त करे और यदि योग्य पति नहीं मिलता तो गुणहीन का ही आश्रय ग्रहण करे। पाञ्चनल्य (१।६४) ने भी 'रजस्वला कन्या के विवाह न करने पर माता-पिता को भ्रूणहत्या का दोषी ठहराया है और कन्या को स्वयं विवाह करने की आज्ञा दी है।

रजस्वला होने से पहले कन्या का विवाह कर देने के लिए इस प्रश्नों में जो बाधुरता दिखायी है उसके दो कारण प्रतीत होते हैं। पहला कारण धार्मिक है और दूसरा राजनीतिक। धर्मशास्त्रों में भ्रूणहत्या एक अत्यन्त पाप माना गया है और ब्रह्महत्या की तरह इसके लिए १२ वर्ष तक प्रायश्चित्त करने का विधान है (मनु ११।५७, याज्ञ० ३।२४६)। प्रत्येक ऋतुकाल में स्त्री गर्भ धारण करने योग्य होती है। उस समय यदि गर्भाधान न हो तो यह रज व्यर्थ जायगा। इस रज को नास्तकार्यों ने भ्रूण के तुल्य समझा है और जो पिता कन्या के रजस्वला होने पर भी उसका विवाह नहीं करता उसे भ्रूणहत्या के पाप का भागी कहा गया है। इस भ्रूणहत्या के पातक से बचने का एक ही उपाय था कि कन्या की शायी रजस्वला होने से पहले कारवी जाय ताकि भ्रूणहत्या की संभावना ही न रहे।

दूसरा कारण राजनीतिक था। जनसंख्या की आवश्यकता के कारण स्त्रियों से उत्तम पुत्र प्राप्त करने की अपेक्षा अधिक से अधिक पुत्र उत्पन्न करना अधिक अच्छा समझा जाता था। कौटिल्य ने १२ वर्ष की ही स्त्री को बालिग समझा।<sup>११</sup> मनु ने भी कन्या को इसी अवस्था में विवाह के योग्य समझा है। कौटिल्य ने अपने निष्कर्षों में इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि स्त्री के ऋतुकाल का उपरोध नहीं होना चाहिए। इसको वह धर्मवध के तुल्य समझता है। कौटिल्य की यह चिन्ता संभवतः जनसंख्या को बढ़ाने की दृष्टि से थी। थोड़ा जातिघों को जीवन संघर्ष में जितने पाने के लिए सदा वीर पुरुषों की आवश्यकता रहती है और वे अधिक से अधिक सन्तानों को उत्पन्न करने पर बल देते हैं।<sup>१२</sup>

१० बौधायन ४।१।१२, 'दद्याद्गुणयते कन्यां तमिकां ब्रह्मचारिणे। अपि वा गुण-होनाय नोपदक्याद्वजस्वलाम्।'।

११ कौटिलीय अर्थशास्त्र—द्वारकावर्षा स्त्री प्राप्त्यवहारो भवति।

१२ इसके आधुनिक उदाहरण जर्मनी और इटली हैं जहाँ आर्थिक सहायता, भत्ते, कार्य तथा अन्य अनेक सुविधाएँ देकर जनसंख्या बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है। इटली के जर्मनी में १ जून अगस्त १९३३ से लेकर ३० सितम्बर १९३७ तक ८,२२,०० इम्पतिगों को आर्थिक सहायता दी गई। इन सहायताओं का यह परिणाम हुआ कि जहाँ १९३२ में जर्मनी में ४,१७,००० विवाह हुए थे वहाँ

भारत पर ईरानी एवं यूनानी हमलों के समय समुप्यों की संख्या का वैसा ही महत्त्व बह गया होगा, जैसा १६३०-४० में जर्मनी, इटली आदि देशों में था। उस समय के इतिहास में नव्यों की विमान सेना का उल्लेख पाया जाता है। यूनानी सैनिक उस सेना की बर्षा सुनकर डर गये थे और सिकन्दर को व्यास नदी के तट से यूनान की ओर वापिस लौटना पड़ा था। कौटिल्य ने संभवतः इस राजनीतिक आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए ही "तीर्थोपरीध" न होने (छत्रकान् व्यर्थ न जाने) की तथा १२ वर्ष की कन्या के विवाह की व्यवस्था की।<sup>१३</sup>

**बालविवाह का मुख्य कारण—स्त्रीशिक्षा का अप्रचलन**

भ्रूणहत्या का भय तथा जनसंख्या की आभुरता के कारण तो ब्राह्मणवर्णों एवं-  
गृहसूत्रों के समय भी रहे होंगे, उस समय क्यों तबल विवाह होता रहा, यह एक जटिल

१६३४ में यह संख्या ७,४०,००० हो गयी अर्थात् दो वर्ष में अड़ार्ह लाख विवाहों की वृद्धि हुई। १६३६ में यह ६,१०,००० हो गई। यह १६३२ की अपेक्षा १ लाख ज्यादा थी। इटली ने १६३७ में उन श्रमजीवी दम्पतियों को जो निश्चित बितों पर शादी करते थे कुछ धन राशि या प्रीमियम देना शुरू किया। १६३६ में इटली में २,२७,५२४ विवाह हुए थे। किन्तु प्रीमियम देने के बाद १६३७ में यह संख्या २,६६,२६६ हो गई। इस प्रकार इटली ने एक ही वर्ष में पौन लाख के लगभग विवाहों की संख्या बढ़ा ली (ईसाइयलोपीडिया क्रिस्टानिका की पीअर बुक, १६३८, पृ० ४०१)।

१३ संख्या बढ़ाने की दृष्टि से बाल विवाह तथा कन्या का १२ वर्ष में विवाह करना हिन्दू समाज के लिए ही विशेष बात नहीं थी। यहूदियों में २० वर्ष की आयु के के बाद भी यदि कोई विवाह नहीं करता था तो उसे अवांस्त द्वारा विवाह करने पर मजबूर किया जाता था। पुरुष के विवाह की आयु १८ तथा स्त्रियों के विवाह की आयु १२ वर्ष थी। बालिग होने के भी यही वर्ष समझे जाते थे। किन्तु हिन्दुओं की भांति बाद में यहूदियों ने विवाह की आयु को बहुत घटा दिया और १८ वर्ष से पहले जो लड़का विवाह नहीं करता था वह पापी समझा जाता था। क्योंकि यह परमात्मा के "बड़ो और द्विगुणित होओ" (Increase and multiply race) के आदेश को भंग करने का अपराधी था। १३ वर्ष का होते ही उसे विवाह का अधिकार हो जाता था। १३वीं सती में यहूदी कन्याएं नाबालिग अवस्था में ही ब्याह दी जाती थीं। १७वीं सती के उत्तरार्द्ध में वर प्रायः १० वर्ष से अधिक का नहीं होता था और यधू इस से भी कम आयु की होती थी (बैस्टर मार्क—गाटे हिस्टरी ऑफ मैरिज, पृ० ४०)

समस्या है। यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त दोनों कारण बातविवाह की प्रवृत्ति में सहायक एवं उत्तेजक हो सकते हैं, किन्तु मूल कारण नहीं हो सकते। बातविवाह का मूलकारण स्त्रियों की शिक्षा की उपेक्षा एवं अज्ञानत्व है। हम देख चुके हैं वैदिक युग में स्त्रियों ब्रह्म-चारिणी रहकर ज्ञान प्राप्ति करती थीं। उनमें से अनेक श्रुती विदुषी होती थीं कि उन्होंने वैदिक सूक्तों के गूढ़ अर्थों को स्पष्ट किया और मन्त्रद्वारा होने से ज्ञापि कह-सायीं। मार्गी में ही कुछ ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ आजीवन अविवाहित रह कर अपना गारा समय दर्शन आस्त की गतिवर्ती सुखसाधने में बिताया करती थीं। किन्तु मार्गी-जने: स्त्रियों की स्थिति गिरने लगी। पुरोहिता अधिक उपमोहिता, स्त्रियों के रज को अपवित्र समझ कर रजस्वलाओं को अशुद्ध एवं दूषित समझना, शूद्र स्त्रियों के साथ विवाह के बाद उन्हें यश के अधिकार से वंचित रखने की प्रवृत्ति, स्त्रियों को शूद्र समझना, कर्मकाण्ड की वृद्धि के साथ-साथ ब्राह्मणों के प्रभाव की वृद्धि तथा ब्राह्मणों द्वारा स्त्रियों की गिरावट आदि अनेक कारणों से स्त्रियों की स्थिति गिरने लगी।<sup>१४</sup> जब रज की अपवित्रता के कारण उन्हें शूद्र समझा जाने लगा तो शूद्रों की तरह उनके उपनयन, शिक्षा एवं वेदाभ्यसन की उपेक्षा स्वाभाविक ही थी। हारीत ने इस प्रवृत्ति का विरोध करना चाहा। उसने जिस उग्रता से यह विरोध किया है उससे यह स्पष्ट है कि स्त्रियों को शूद्र समझने तथा उनका उपनयन संस्कार न करने और शिक्षा न देने की बुराई काफी बड़ चुकी थी। यह कहता है कि "स्त्रियों शूद्रों के समान नहीं हैं क्योंकि शूद्र को गोमि में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य नहीं पैदा होते। इसलिए स्त्रियों के सब संस्कार वैदिक मन्त्रों के साथ ही करने चाहिए"।<sup>१५</sup> स्त्रियों के दो भेद हैं—(१) वेद का अध्ययन करने वाली ब्रह्मवादिनी तथा (२) शीघ्र विवाह करने वाली स्त्रियाँ। वेद का अभ्यसन करने वाली स्त्रियों का उपा-नयन संस्कार होता है। वे पवित्र अग्नि प्रज्वलित रखती हैं, अपने घर में अध्ययन करती हैं तथा शिक्षा द्वारा प्राप्त भोजन पर निर्वाह करती हैं। रजोदर्शन के समय उनका समावर्तन होता है। दूसरी स्त्रियों के लिए ये बातें गौण हैं और उनकी प्रतिज्ञाएँ शीघ्र ही समाप्त हो जाती हैं। यह बड़े दुःख की बात है कि हमें हारीत का ग्रन्थ उद्धरणों के रूप में सध्यकाजीन लेखकों के ग्रन्थों में ही मिलता है,<sup>१६</sup> संभवतः उसने अपना ग्रन्थ तब लिखा

<sup>१४</sup> इसके विस्तृत वर्णन के लिए देखिए हरिवंश वेदासंस्कार—हिन्दू परिवार मीमांसा, पृ० १०६-११७

<sup>१५</sup> हारीत २।१।२०-२३ 'न शूद्रसमाः स्त्रियः । न हि शूद्रपौत्री ब्राह्मणक्षत्रियवैश्या जायन्ते तस्माच्छब्दसा स्त्रियः संस्कार्याः । तासां द्विविधो विकल्पः ब्रह्मवादिन्यः सद्योऽब्राह्मणेति ब्रह्मवादिनीनामुपनयनमग्निसंस्कारः स्वनृतेऽध्ययनं संध्यवर्त्तनं च प्राप्ती रजसः समावर्तनम् । अतिरिक्तोऽप्रधानम् सद्योऽप्यध्यसनम् ।

<sup>१६</sup> हारीत का धर्मसूत्र पूर्ण रूप से उपलब्ध न होने से उसका समय निर्धारण बहुत

जब बालविवाह की प्रथा बहुत अधिक चल पड़ी थी। उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि हारीत ने स्त्रियों से छीने जात हुए अध्वयन के अधिकार को विरुद्ध अपनी आवाज उठाया था।

किन्तु हारीत की यह व्यवस्था अरण्योपवन मात्र सिद्ध हुई। किसी धर्मसूत्रकार ने हारीत के इस मत का समर्थन नहीं किया। समय के प्रभाव से हारीत की इतनी बात तो माननी पड़ी कि स्त्रियाँ योऽह की होंती हैं और वेदाध्ययन करने वाली स्त्री का शिक्षाकाय रजोदर्शन से पूर्व ही समाप्त हो जाता है। अधिकांश स्त्रियों का उपनयन विवाह मात्र ही रह गया। मनु (२०० ई० पू०) के समय यह कहा गया कि स्त्रियों के उपनयन में वैदिक मन्त्रों के पाठ की आवश्यकता नहीं है (२।६६)। इसके साथ ही मनु ने कन्या के पिता विवाह संस्कार को ही उपनयन संस्कार माना, क्योंकि कन्या के पिता पति की सेवा ही मुख्य काम के तत्त्व है और घर के कार्य ही प्रायः शार्ङ्गकाय के अग्निहोत्र है (मनु २।६७)।

कन्याओं की शिक्षा की समाप्ति से बालविवाह को दो तरह से प्रोत्साहित किया। पहला तो यह था कि यदि कन्याओं को शिक्षा नहीं दी जाती तो घर-घर वे बिलकुल खाली रहेंगी। “खाली दिमाग ब्रह्मण का घर होता है” और शासक कुमारी अवस्था में खाली रहना बहुत बर्बर है। वैदिक काल में यह विष्णुस प्रचलित था (श्रु० १।०।२५। ४०-४१) कि कन्या के विवाह से पहले सोम, शान्धर्व, और अग्नि उसका उपभोग करते हैं। सो० सू० (३।४।६) में उद्धृत गृह्यसंग्रह कन्या में यौवन के लक्षण प्रगट होने पर इन तीनों देवताओं द्वारा उसके उपभोग की रक्षा करता है, और उसका मत है कि इन लक्षणों के प्रगट होने से पूर्व ही कन्या का विवाह कर दिया जाय। वह विष्णुस सत्य हो या न हो, कन्या के माता-पिता अपनी कन्या के सम्बन्ध में कोई प्रवाद खड़ा होने से पूर्व ही उसका विवाह कर देना अच्छा समझते लगे और प्रवाद से बचना तभी संभव हो सकता था जब कन्या की मायी बहुत जल्दी कर दी जाय। कालरित्सागर (स. सा. ३।४।२२६) में एक गिता स्पष्ट रूप से अपनी कन्या से कहता है कि यदि तू इस नमी जबानी में मुझे दुःख देना चाहती तो इच्छापूर्वक देर तक कुमारी मत रह, क्योंकि इसमें बदनामी बहुत आसानी से हो जाती है।

कन्याओं की शिक्षा के अप्रचलन ने वैवाहिक आयु को एक दूसरे रूप में इस प्रकार प्रभावित किया कि जब संस्कार की दृष्टि से विवाह की उपनयन समस्त लिया गया तो यह स्वाभाविक था कि विवाह उपनयन की अर्थात् आठ वर्ष की आयु में ही किया

कठिन है। किन्तु औघायन (२।१।५०) आपस्तम्ब १।४।१३।११, १।६।१०।२, १।६।१६।१२, १।१०।२०।१, ५, १६, १।१०।२६।१२, १६, बसिष्ठ (२।६) ने हारीत का मत उद्धृत किया गया है। अतः इसका काल औघायन के काल ५००-२०० ई० पू० से पहले ही होता चाहिए।

जाय। यम ने कहा है कि जब विवाह को उपनयन कहा गया है तो गर्भ से या जन्म से बाढ़ें वर्ष विवाह करना श्रेष्ठ है। स्मृतिचौस्तुभ में कहा गया है कि भूमि स्त्रियों का विवाह उपनयन का स्थानापन्न है, अतः उपनयन की अवस्था में ही विवाह करना चाहिए।

इस समय जाति, पिण्ड, पीलादि के वैवाहिक प्रतिबन्ध क्रमशः दूर हो रहे थे। इनकी दृढ़ता ने भी छोटी आयु में विवाह को अनिवार्य बना दिया। यदि कन्याओं और बालकों के विवाह में जल्दी नहीं की जायगी तो मौखन के विकास के साथ-साथ जब उनमें प्रेम का स्रोत क्षरण लगेंगा तो यह आवश्यक नहीं कि यह त्याग पिण्ड, जाति और यौव की मर्यादाओं में रहता हुआ ही बड़े, बड़े मर्यादाओं का अतिक्रमण करके भी रह सकता है। इसलिए उपर्युक्त मर्यादाओं की रक्षा करने के लिए यह अलगा समझा गया कि प्रेम की धारा का समय पर ही बाँध दिया जाय, जिससे वह धारा बाढ़ में उद्गम होकर मर्यादा के बूलों का अतिक्रमण न कर सके। इस धारा के बाँध के रूप में बालविवाह की उपर्यागिता स्वतः सिद्ध थी।

### बालविवाह के अन्य कारणों की आलोचना

**नेस्कील्ड की कल्पना**—बालविवाह के उद्गम के सम्बन्ध में नेस्कील्ड ने १८८५ में यह बिलक्षण कल्पना की थी कि पहले पुद्गल अपनी इच्छानुसार किसी भी स्त्री के साथ सम्बन्ध कर सकते थे, स्त्रियाँ सारे समाज या वर्गों की साथी सम्पत्ति थी। इन पर किसी का वैयक्तिक अधिकार नहीं था। समाज में सामूहिक विवाहों (Communal Marriage) का प्रचलन था और कई बार दूसरी जाति की स्त्रियाँ पकड़ कर जायी जाती थीं। ये स्त्रियाँ भी सामूहिक सम्पत्ति का अंग होती थीं। किन्तु बहुत से मनुष्यों को यह बात पसन्द न थी, वे स्त्री पर अपना पूर्ण वैयक्तिक अधिकार चाहते थे। उन्हें यह अच्छा जान पड़ता था कि कोई दूसरा व्यक्ति उनकी स्त्री का उपभोग करे। अतः उन्होंने बचपन से ही परायी कन्या को अपने गान रखना शुरु किया ताकि वह उनकी वैयक्तिक सम्पत्ति समझी जाय। बालविवाह की प्रथा स्वच्छन्द विवाहों की प्राथमिक कड़ियों (Primitive morges) के विरुद्ध जबरदस्त नैतिक विद्रोह था। इस प्रकार हिन्दू समाज में प्राचीन काल में बालविवाह की प्रथा का अन्त्युदय हुआ।<sup>१०</sup>

इसमें कोई शक नहीं कि यह एक बिलक्षण सूझ है, किन्तु यह जालबूझकड़ जैसी सूझ है। इसमें भारत के पुराने इतिहास पर कुछ भी विचार नहीं किया गया, न ही अपनी कल्पना के समर्थन में कोई प्रमाण उपस्थित किये गये हैं। हम पहले अध्याय में यह देख चुके हैं कि वैदिक साहित्य में कामचार (Promiscuity) या सामूहिक विवाहों का कोई उल्लेख नहीं है। वैदिक युग में वैयक्तिक विवाह होते थे। विवाह से

<sup>१०</sup> रिजलो—गोपल आफ इंडिया, पृ० १८८

पहले युवक युवतियों का काफी अनुरंजन, अभ्यर्षन और प्रसादन (Courtship) करते थे और युवतियाँ इच्छानुसार अपने पतिव्रतों का चरण किमा करती थीं। यदि बालविवाह प्रापनिका युग के जंगली रिवाजों के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया थी तो वैदिक साहित्य में हमें उसका कोई प्रमाण क्यों नहीं मिलता? वेदों में तरुण युवकों और युवतियों के विवाह की क्यों चर्चा है? वैदिक युग तक यदि आर्य अंगलोपन छोड़ चुके थे तो उनमें बालविवाह की प्रथा होनी चाहिए और यदि उनमें अंगलोपन वा तो वेर में कसबवार (Promiscuity) या सामूहिक विवाह (Communal Marriage) का उल्लेख होना चाहिए। किन्तु इन दोनों में से एक भी बात ऋग्वेद वा अथर्ववेद में नहीं पायी जाती। इस वजह से ऐस्कीलड की कल्पना मनोरंजक होने पर भी प्रमाण के अभाव में निराधार और अमान्य है।

बालविवाह के उद्गम के सम्बन्ध में सर्वसाधारण जनता में एक अग्र्य भ्रान्ति-मूलक विश्वास यह प्रचलित है कि मुसलमानों के हमले होने पर स्त्रियों की रक्षा के लिए उनका छोटी आयु में विवाह किया जाने लगा। किन्तु यह कारण भी पूरी तरह सत्य नहीं प्रतीत होता है। इस्लाम का आविर्भाव ७ वीं शती में हुआ और मुसलमान ८ वीं शती के प्रारम्भ में भारत की सीमा पर पहुँचे। यदि यह कारण सही हो तो भारत में ८ वीं शती से पहले बालविवाह की प्रथा बिलकुल नहीं होनी चाहिए। लेकिन ऊपर हम देख चुके हैं कि बालविवाह की प्रथा गुप्तसूत्रों तथा धर्मसूत्रों के समय से शुरू हो चुकी थी। कम से कम गौतमधर्मसूत्र के समय—ई.पू. ६०० से बालविवाह का रिवाज अच्छी तरह से प्रचलित हो चला था। मुसलमान इसके १२०० वर्ष बाद भारत में प्रकट हुए। अतः उन्हें बालविवाह के उद्गम का कारण नहीं माना जा सकता। इस कल्पना में इतना सत्य अवश्य है कि इसने पहले से चली आने वाली प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया होगा।

अनेक विद्वानों की यह कल्पना है कि बालविवाह की प्रथा को हिन्दुओं ने द्रविड़ जातियों से ग्रहण किया।<sup>१८</sup> किन्तु यह भी कोई कल्पना है और बिलकुल स्पष्ट तथ्यों के विरुद्ध मानी जाने वाली है। सैकड़ों वर्षों से बालविवाह करने वाले हिन्दुओं के साथ रहते हुए अब भी अधिकांश द्रविड़ जातिमों में तरुण विवाह होते हैं। कुछ अपवादों को छोड़कर उनमें बालविवाह की प्रथा प्रचलित नहीं है। श्री रिजली ने लिखा है कि छोटा नागपुर, मध्य प्रान्त और मद्रास की पहाड़ियों में रहने वाली द्रविड़ जातियों में तथा हिमालय, आसाम और बर्मा की मंगोल जातियों में अब तक तरुण युवक-युवतियों में अनुरंजन (Courtship) और विवाह की परिपाटी प्रचलित है।<sup>१९</sup> जो जातियाँ अभी तक तरुण विवाहों की प्रथाओं को अपनाये हुए हैं उनसे अतीत काल में हिन्दुओं ने बाल-

१८ सं० रि० इ० १९११, भाग १, खण्ड १, पृ० २७०

१९ रिजली—पीपल ऑफ इंडिया, पृ० १८७



विवाह की प्रथा ग्रहण की होगी, यह बात विश्वसनीय नहीं प्रतीत होती है।

और गेट की यह कल्पना है कि बालविवाह आर्य-इण्डि संघर्ष का परिणाम है।<sup>२०</sup> इण्डि लोगों में आर्यों के साथ सम्पर्क में आने से पहले तरल विवाह की प्रथा प्रचलित थी। इसके साथ ही उनमें युवक-युवती को विवाह से पहले पराजित माना में स्वतन्त्रता व स्वच्छन्दता प्राप्त थी। आर्यों के साथ सम्पर्क में आने से वे इस स्वच्छन्दता को बुरा मानने लगे और उनमें अक्षतमोर्नि कुमारी कन्याओं के साथ विवाह अच्छा माना जाने लगा। ऐसी कन्याएँ शर्मा मिल सकती हैं जब कन्याओं का विवाह बचपन में कर दिया जाय, अतः उन आतिथ्यों में बालविवाह का शिवाज बन्द पड़ा। बाद में आर्यों ने उनसे यह शिवाज ग्रहण किया। यह कल्पना भी पिछली कल्पना की तरह अमान्य है, क्योंकि मिल इण्डि आतिथ्यों में आज भी बालविवाह प्रचलित नहीं है उन आतिथ्यों में आर्यों ने बालविवाह को ग्रहण किया होगा, यह संभव नहीं प्रतीत होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त कारणों से बालविवाह की प्रथा जो वैदिक काल में अल्पकाल नहीं थी, ईसा से दसवीं शती पूर्व से भारत में फैलने लगी और दूसरी शती ईसवी तक लगभग १००० वर्ष में उसका प्रभाव इतना बढ़ गया कि सब धर्मशास्त्रकारों में रजो-दर्शन से पूर्व ही कन्या के विवाह को श्रेष्ठ समझा। किन्तु धर्मशास्त्रकारों की अवस्था के बावजूद इस सारे समय में तथा १००० वर्ष बाद तक विरोधतः क्षत्रियों में तथा विवाहों का प्रचलन रहा और कुछ स्थानों पर मध्यकाल में भी मूल्य विवाह की पद्धति प्रचलित रही।

अब ऐतिहासिक दृष्टि से बालविवाह के विकास पर विचार किया जायगा।

**बालविवाह तथा रामायण**—राम और सीता के विवाह की आयु का ठीक-ठीक निर्णय करना कठिन है, क्योंकि इस विषय में अनेक परस्पर विरोधी श्लोक मिलते हैं। इस सारे प्रकरण में एक बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए और वह यह है कि जनक-पुरी से विवाह करने जा रहे आर्यों के अधोभ्या सपत्नीक शीटने पर कहा गया है कि सब स्त्रियों ने पतियों के साथ एकान्त में रमण किया (१।७७।१३-१४)। इसका अर्थ यह है कि ये विवाह जीवन अवस्था को प्राप्त करने के बाद ही हुए थे। अधोभ्यावर्ण्ड (२।११६।३४) में सीता अनुरुधा से यह कहती है कि मेरे पिता मेरी विवाह योग्य अवस्था को देखकर उसी प्रकार चिन्तित हो गये, जैसे धन का नाश हो जाने से निर्धन व्यक्ति चिन्तित हो उठता है, अतः यह स्पष्ट है कि सीता उस समय बालिका नहीं थी। किन्तु अरण्यकाण्ड में सीता रावण की अपना परिचय बतलाते हुए कहती है कि विवाह के बाद वह अधोभ्या से १९ वर्ष रही। राज्याभिषेक के समय राम की अवस्था २४ वर्ष की थी और इस समय मेरी अवस्था १८ वर्ष की है। सीता की इस उक्ति को ठीक माना जाय तो

विवाह के समय सीता की अवस्था ६ वर्ष और राम की अवस्था १३ वर्ष माननी पड़ेगी।<sup>२१</sup>

सीता अनुसूया से विवाह के समय अपनी आयु कम से कम १२ वर्ष की बता चुकी है। इससे न केवल सीता को ही आयु में संदेह उत्पन्न होता है, अपितु राम की आयु भी विवादास्पद बन जाती है। रामचन्द्र के वनवास का निश्चय हो जाने पर कौसल्या विषामित्र करती हुई कहती है कि 'तुझे पेश हुए १७ वर्ष हो चुके हैं और मैंने ये वर्ष इस आश्रम में बिताये हैं कि मेरे दुखों का अन्त होगा (२।२०।४५)। बालकाण्ड में अज विश्वामित्र राक्षसों के संहार के लिए रामचन्द्र को मंगने आते हैं तो उस समय वरदश कहते हैं कि मेरा कामचगवन राम तो सोलह वर्ष का भी नहीं हुआ (१।२०।२)। यदि यह मान लिया जाय कि राम का विवाह १६ वर्ष में हुआ तो वनवास के समय राम की अवस्था २० वर्ष की होनी चाहिए, क्योंकि सीता स्वयं यह कहती है कि वह अयोध्या में राम के साथ १२ वर्ष रही, किन्तु वनवास के समय राम की अवस्था २५ वर्ष बताती है। इस प्रकार वनवास के समय कौसल्या के अनुसार राम की अवस्था १७ वर्ष, सीता के अनुसार २५ वर्ष और वरदश की वर्णमगना के अनुसार २० वर्ष वैली है। अन्तिम दो संख्याओं में कोई विरोध अन्तर नहीं, किन्तु पहली दो संख्याओं में बहुत अन्तर है। टीकाकारों ने अपने व्याख्याकारों ने इस अन्तर को दूर कर दिया है। उनका मत है कि कौसल्या ने राम के जिस जन्म का वर्णन किया है वह उपनयन द्वारा प्राप्त दूसरा जन्म है। कलिय का उपनयन संस्कार ११वें वर्ष में होता है इस प्रकार राम अभिषेक के समय १० वर्ष के थे। इस हिसाब से राम का विवाह १६ वर्ष में हुआ। इस तरह राम की आयु तो ठीक बन जाती है, किन्तु सीता की अवस्था की समस्या हल नहीं होती। कुछ लोगों ने इसे हल करने का बड़ा सरल उपाय सूझा है, वे कहते हैं कि सीता का परपुरुष के साथ इस प्रकार का संघाप सर्वथा अस्वाभाविक है, इसलिए अरण्यकाण्ड का उपसृक्त अंश प्रक्षिप्त है। वास्तव में रामायण की वर्तमान रूप महाभारत के वर्तमान रूप के बाद दूसरी सती ई० पू० में प्राप्त हुआ। पहले हम देख चुके हैं कि इस काल में बालविवाह का प्रचलन हो चुका था, अतः रामायण के संस्कर्ताओं ने अपने युग के विचार रामायण में डाल दिये। इसलिए यह निश्चय करना कठिन है कि राम और सीता की विवाह के समय वास्तव में क्या आयु थी ?

**बाल विवाह तथा महाभारत**—महाभारत का वर्तमान रूप रामायण के वर्तमान रूप से प्राचीन है। हमें इसमें प्राचीन काल के तथ्य विवाह की प्रथा उपलब्ध होती है, यद्यपि कई स्थानों पर कथा की आयु काफी छोटी बतायी गयी है। द्रौपदी का स्वयंवर के समय जो वर्णन किया गया है उससे स्पष्ट है कि वह उस समय तरुणी थी। प्राचीन

२१ ३।४७।१०-११ उदित्वा द्वादशसमा इवाकूना निवेशने। मम भर्ता महातेजाः  
वधता पंचविराटः। अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि जायते ॥

गृह्यसूत्रों की व्यवस्था के अनुसार पाण्डव द्रौपदी के साथ विवाह होते ही पत्नी के साथ बारी-बारी से सहवास करते हैं। विवाह से पहले ही कुलीन का कर्तव्य पुत्र—कन्या उत्पन्न हुआ था। सुभद्रा भी हरण के समय युवती ही थी। उत्तरा का अभिमन्यु से विवाह होने के बाद सीमा ही दोनों का समागम हुआ और परीक्षित नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। स्वयंवर एवं शोधर्व विवाह का अचलन होने से यह स्वाभाविक ही था कि स्त्रियों का विवाह गणनायिका में ही। अनुत्तला विवाह में समय तकनी थी। देवपत्नी ने भी युवावस्था में ही कच में प्रणय भिक्षा माँगी थी।

अनुशासनपर्व में (४४।१४) विवाह के विषय में यजुर्वेद का उद्देश देने समय भीष्म ने कहा है कि ३० वर्ष की आयु वाला पुरुष १० वर्ष वाली नर्मिका की और २५ वर्ष की अवस्था वाला सात वर्ष की कन्या को भाषा रूप में ग्रहण करे।<sup>(३)</sup> दूसरे श्लोक को मध्यकाल के निबन्धकारों ने उद्धृत करते हुए दण के स्थापन पर पौडन का पाठ किया है, पौडन शब्द का पाठ मानने से छन्दोभंग का योग पैदा होता है। वालविवाह के युग में मध्यकाल में होने वाले निबन्धकार जब छन्दोभंग की परवाह न करने पौडन पाठ देते हैं, तो यह मानना पड़ता है कि मूल में पौडन का ही पाठ था। इस पाठ को ठीक मानने का यह भी कारण है कि महाभारत में युवावस्था प्राप्त कर लेने पर ही विवाह का वर्णन है। ब्रह्मसुर के पास जाने की बारी आने पर (१।१५६) जब ब्राह्मण की कन्या राक्षस के पास स्वयं आने की तैयार होती है तो ब्राह्मण ने उसे गमसाया है कि अभी नू वाला है, तुझे अभी तारण्य को नहीं प्राप्त किया, तू अपने स्वामी के लिए अभी धरोहर रूप नहीं हुई है (१।१५७।३४)। एक दूसरे स्थान पर कहा गया है कि वयस्क (तकनी) से ही शादी करनी चाहिए। वयस्क संस्कृत का पारिभाषिक शब्द है और तरुण के लिए प्रयुक्त होता है। महाभारत में पुरुष की विवाहयोग्य आयु कम से कम १६ वर्ष बतायी गयी है (१।४।५६।२२-२३)। गौतम उक्त से कहता है कि यदि आप १६ वर्ष के हो तो मैं आपको अपनी कन्या पत्नी रूप में दे दूंगा। इस प्रकार महाभारत के अनुसार उस समय तरुण अपना वयस्क विवाह का ही प्रचलन प्रतीत होता है।

**बालविवाह तथा बौद्ध साहित्य**—बौद्ध साहित्य में प्रायः तथ्य विवाहों का उल्लेख मिलता है। शेरयाबा की अट्टकथा में पिप्पलीमाणवक और भद्रा कपिलासनी की भनोरजक कथा में विवाह के समय पिप्पली की अवस्था २० वर्ष और भद्रा की आयु १६ वर्ष लिखी है। अ० नि० अ० क० (१।७।२) में विशाखा के विवाह का विस्तृत वर्णन है। इस वर्णन से स्पष्ट है कि विशाखा विवाह के समय तमसदार तकनी थी। अतिशय

२२ महर्षा० १३।४।१४ विशद्वर्षे दशवर्षा भाषां चिन्तेत ननिकाम्।

एकविंशतिवर्षा वा सप्तवर्षाभवाऽनुयात्।

मिलाइये मनु० २।६४

आतंक (सं० १२६) में एक ऐसी राजकन्या का वर्णन है जिसका विवाह १६ वर्ष की आयु में हुआ था। धम्मपद की टीका (२।२१७) में राजसूत के एक श्रेष्ठी की सुन्दर कन्या कुण्डलकेणी को अविवाहित बताने हुए कहा गया है कि इस उम्र में स्त्रियाँ पुरुषों की कामना किया करती हैं।

**मौर्ययुग में बाल विवाह**—मौर्य युग में बाल-विवाह की प्रथा का प्रचलन हो चुका था। कौटिल्य का इस प्रकार का विधान हम पहले ही देख चुके हैं, किन्तु मेगस्थनीज के इस कथन में सहसा विश्वास नहीं होता कि पाण्ड्य (मयुरा, तिमिलली जिले) देश की स्त्रियाँ जब ६ वर्ष की होती हैं तब प्रसव करती हैं। यह प्राकृतिक दृष्टि से असंभव एवं अविश्वसनीय है कि छोटे बर्रों में पुत्र उत्पन्न हों। एरियन इस असंभव घटना पर विश्वास कराने के लिए लिखता है कि इतनी छोटी आयु में प्रसव होने का यह कारण था कि उन्हें यूनानी देवता हिरोक्लीज द्वारा ऐसा बददान मिला हुआ था। मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र में बैठे हुए सुदूर दक्षिण के विषय में सुनी हुई बातों के आधार पर लिखा होगा अतएव उसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। पाटलिपुत्र के बारे में यदि वह इस प्रकार का उल्लेख करता तो कुछ प्रामाणिक माना जा सकता था। मेगस्थनीज को वेदवाक्य की तरह से प्रामाणिक मानने की प्रवृत्ति ने अनेक धर्मों को उत्पन्न किया है। मेगस्थनीज ने लिखा है कि हिन्दुस्तानियों को शिक्षा नहीं आता था, बहुत देर तक इसे सत्य माना जाता रहा किन्तु अब प्राचीन गिलालेखों के मिल जाने के बाद मेगस्थनीज की इस उक्ति में कोई विश्वास नहीं रख सकता। अतः उसकी पाण्ड्य देश की कन्या सर्वथा अविश्वसनीय प्रतीत होती है।<sup>२३</sup>

सातवाहन, गुप्त एवं पूर्व मध्ययुग में लिखे गये काव्यों में यह स्पष्ट है कि इस समय तक हिन्दू समाज में तरुण-विवाहों का प्रचलन था। माघर्ष और स्वयंवर विवाहों का इस काल के कव्यों में प्रचुर उल्लेख है और ये दोनों तरुण विवाह की सूचना देते हैं। कालिदास व भवभूति के नाटकों की नायिकाएँ प्राप्तमौलिका कन्यायें हैं। शकुन्तला, मातङ्गिका और मातङ्गी गौणजावस्था की पार कर सौवनाकम्भा में गैर रख चुकी हैं। यह एक बड़े आश्चर्य की बात है कि भवभूति ने मातङ्गीमालव में नायक-नायिका का विवाह युवावस्था में कराया है, किन्तु उत्तररामचरित में उसने सीता की विवाह के समय बिलकुल

२३ मेगस्थनीज के यूनान में बालविवाह खूब प्रचलित था, सामय्य उसने अपने देश के हिसाब से भारतीयों के बारे में यह कल्पना की हो। बड़े डिमास्थनीज ने अपनी पाँच वर्ष की कन्या का विवाह अपने भतीजे के साथ किया। गर्थमीनी (Gorthmian) के नियम के अनुसार कन्याएँ १२ वर्ष में विवाह योग्य हो जाती थीं (इंसा० रिलीजन एण्ड ईथिक्स, खण्ड ८, पृ० ४४५)

बालिका दिखाया है। तायय रामायण का उपर्युक्त वर्णन इसका मूल कारण है। बाण की महाकवेता तथा राज्यकी विवाह के समय युवतियाँ थी।

### स्मृतियों द्वारा बाल विवाह की प्रोत्साहन

काव्यों में लक्ष्मी नायिकाओं के वर्णन के बावजूद उस समय की स्मृतियों और पुराणों में विवाह की आयु को कम कर देने की प्रबल प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। पराशर स्मृति ने (निर्माणकाल १ वीं से ५ शताब्दी के बीच में) बालविवाह पर बहुत बल दिया, आयु की सीमा बहुत कम की तथा स्नातदर्शन से पूर्व कन्या का शीघ्र विवाह न करने वाले पिता की निन्दा तथा १२ वर्ष के बाद कन्या की अपाहर्ण बाल व्यक्तियों की समा में भाषण करने तथा पंक्ति में बैठने के अयोग्य समझा। उसके अनुसार आठ वर्ष की लड़की गौरी, ६ वर्ष की रोहिणी तथा १० वर्ष की कन्या होती है, इनके बाद वह रजस्वला हो जाती है। जो मनुष्य कन्या के १२ वर्ष की हो जाने पर भी उसका विवाह नहीं करता उसके पितर प्रतिमास उसका रज पीते हैं। उसके माता-पिता और बड़ा भाई तीनों अनव्याही रजस्वला कन्या को देखकर नरक में जाते हैं, जो ब्राह्मण नेगी कन्या से शादी करता है वह संभाषण करने तथा पंक्ति में बैठने योग्य नहीं है, उसको वृधलीपति जानना चाहिए।<sup>२५</sup> गौरी पहले १० से १२ वर्ष की कन्या समझी जाती थी (वैश्वानर धर्मसूत्र)। पराशर ने इसकी दो वर्ष और घटा दिया। पराशर के इस विधम का उसके बाद के स्मृतिकारों ने खूब अनुमोदन किया। संवर्तस्मृति (६५-६६) और बृहस्प (२०-२२) पराशर के समर्थक हैं किन्तु पराशर ने जहाँ १२ वर्ष तक विवाह का विधान है, वहाँ संवर्त (६८) में कहा गया है कि कन्या का रजस्वला होने से पहले ही विवाह कर देना चाहिए, ८ वर्ष की कन्या का विवाह उत्तम है। कर्मप ने आठ वर्ष की गौरी को ७ वर्ष का बना दिया। भविष्यपुराण (वीरमिर्लोचय, पृ० ७८६) ने सात वर्ष का समर्थन किया, किन्तु मरीचि ने तो कन्या की आयु ५ वर्ष की बतायी (वीरमिर्लोचय पृ० ७८६) और ब्रह्मपुराण ने कहा है कि ४ वर्ष के बाद कन्या विवाह के योग्य हो जाती है। यह बड़े संतोष की बात है कि स्मृतिकार ४ वर्ष की आयु पर ही रुक गये किन्तु लोकाचार ने तो आगे चलकर बालविवाह को इस हद तक पहुँचा दिया कि दूध पीते बच्चों की गोद में उठाकर शादियों की जाने लगी और कई जगह बच्चों के उत्पन्न होने से पहले ही गर्भ-

<sup>२५</sup> पराशर ७।७-६, अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा तु रोहिणी। दशवर्षा भवेत्कन्या अतः उर्ध्वं रजस्वला ॥ प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति। मासि मासि रजस्तस्य पिबन्ति पितरः निशम् ॥ माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो धाता तथैव च। त्रयस्ते नरकं यान्ति वृष्ट्वा कन्या रजस्वलाम् ॥ यस्ताम् उद्धेत् कन्यां ब्राह्मणो मममोहितः। असम्भाष्यो ह्यप्राक्तेयः स विप्रो वृधलीपतिः ॥

वली स्त्रियों द्वारा गर्भस्थ शिशुओं के केश पूरे कर लिये जाते थे। धर्मसूत्रकारों तथा पिछले स्मृतिकारों में एक अन्तर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। पहला तो यह कि धर्मसूत्रकार विवाह की आयु इतनी नीची नहीं ले गये थे, वे रजोदर्शन होने के बाद भी कुछ प्रतीक्षा करने को तैयार थे। मनु योग्य वर न मिलने पर कन्या के आजीवन अविविहित रहने में कोई दोष नहीं देखता और रजस्वला होने के बाद विवाह न करने पर माता-पिता ऐसे ब्रह्मचर्यवादी नहीं मानते थे। किन्तु बाद के स्मृतिकारों के लिए तो रजस्वला की सीमा एक पवित्र बंधन है। माता-पिता ने जहाँ कन्या को यह सीमा पार करने दी, वे समझकर रूप से दोषी हो गये और इसके साथ विवाह करने वाला समाज से बहिष्कृत, असंभाव्य, अपाकीय और घृणनीपति हो गया।<sup>३५</sup> स्मृतिकारों की इस चिन्ता का क्या कारण था ?

बालविवाह को प्रोत्साहन देने वाले कुछ कारण

१) बौद्ध धर्म का भय—हम पहले (पृ० ३१३-८) जिन कारणों का निर्देश कर चुके हैं वे कारण तो बालविवाह की प्रथा की प्रोत्साहित कर रहे थे; किन्तु इस समय

३५ स्टर्नबेक (ज्यूरिडिकल स्टडीज, खण्ड २, पृ० ३८-४१) ने यह प्रदर्शित किया है कि बालविवाह विषयक उपर्युक्त नियमों का सन्त-शान्तः क्रमिक विकास हुआ है। पहली अवस्था में रजस्वला होने से पूर्व लड़कियों का विवाह करना स्मृतिकारों के मतानुसार एक परामर्शोन्मात्र था। जो पिता इस अवस्था तक अपनी लड़की का विवाह नहीं करता या वह निन्दा का पात्र समझा जाता था। मनु १५ में कहा गया है कि 'कालेऽदाता पिता वाक्यः।' इस पर मेघातिथि ने कन्यादान के काल की व्याख्या करते हुए कहा है कि यह आठ वर्ष की आयु होती है (कः पुत्रः कन्याया दानकालः, अष्टमाद् वर्षाप्रभृति स्मर्यते)। मनु (१५६३) यह भी मानता है कि यदि पिता ऋतुकाल से पहले कन्या का विवाह नहीं करता तो कन्या पर पिता का अधिकार नहीं रहता है (स च स्वाभ्यावतिकाभेद् ऋतूनां प्रतिरोधनात्)। मनु से पहले गौतम (१८।२१-२३) ने भी यह घोषणा की थी कि ऋतुकाल से पहले कन्यादान न करने वाला पिता दोषी होता है (प्रदानं प्रागृतोः, अप्रवच्छन् दोषी)। दूसरी वंश में ऋतुकाल से पहले कन्यादान न करने का महापाप नरक ले जाने वाला माना जाने लगा। पराशर (८।७, ८), यम (२२, २३) स्मृतियों में यह कहा गया है कि बारहवें वर्ष में कन्या को शादी न करने वाले माता-पिता और बड़ा भाई नरक-गामी होते हैं (अयस्ते नरकं याति वृष्ट्वा कन्यां रजस्वलां)। महाभारत में यह घोषणा की गयी है कि कसम्पन्ना कन्या का विवाह न करने वाला पिता ब्रह्महत्या का पापी होता है। कुछ अन्य स्मृतियों ने कन्यादान न करने से उत्पन्न

कुछ अन्य नये कारण भी बालविवाह की प्रथा में सहायक सिद्ध हुए। बौद्ध धर्म ने एक नवीन संकट उत्पन्न हो गया था, बौद्ध धर्म में अविवाहित स्त्रियाँ भी प्रपञ्चया प्राप्त करके भिक्षुणी बन सकती थीं। यदि कन्याओं का विवाह उनके सम्बन्धवार और समानी होने तक टाला जाता तो उनके बौद्धधर्म में दीक्षित होने की संभावना बनी रह सकती थी। इस संभावना को बिलकुल समाप्त कर देने के लिए यह आवश्यक था कि कन्याओं का विवाह शीघ्र कर दिया जाय।

(२) वैवाहिक नियमों की कठोरता—आठवीं-नवीं शताब्दी में जातिमें के साथ-साथ उपजातियों के भी बंधन मुदृढ़ होने लगे थे। इस कारण में भी जालविवाह की प्रवृत्ति बढ़ी। उपजातियों के सम्बन्धों के कारण घरों के चुनाव का खेज बहुत छोटा होने लगा, बोहे से घरों के लिए संघर्ष चलने लगा। इसमें भी माता-पिता जल्दी करते थे, वे स्पष्टतः लाभ में रहते थे। जितनी जल्दी अपनी कन्या के लिए घर मुश्किल करा लिया जाय उतना ही अधिक लाभ था।

(३) सती प्रथा—इस समय तक समाज में सती प्रथा भी चल चुकी थी। एक यूरूपियन यात्री किच ने बंगाल में प्रचलित जालविवाह का एक कारण यह प्रथा भी बताया है, यदि अकस्मात् जालिका का पिता मर जाता है तो माता को सती होना पड़ेगा। यदि कन्या का विवाह शीघ्र कर दिया जाय तो माता-पिता के मर जाने पर भी व्यवसाय में उसकी देखभाल होती रहेगी।

संयुक्त परिवार पद्धति में जालविवाह बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। यदि वधू लगन

होने वाले पाप की अधिक स्पष्ट व्याख्या की है। उनका यह कहना है कि प्रति रजोवर्ष के समय कन्या में गर्भ धारण की तथा सन्तान की संभावना होती है, यदि रजस्वला कन्या का विवाह नहीं होता तो प्रतिभास उसमें संभावित गर्भ या ध्रूण की हत्या होती है, अतः उसे ध्रूणहत्या का पाप लगता है। याज्ञ० (१।६४) में कहा गया है 'अप्रयच्छन् समाप्नोति ध्रूणहत्यामृतावृत्तौ मि० अस्मिन् १७।२१, नारद १२।२६। सोसरी ब्राह्मण में जालविवाह की प्रथा अधिक प्रचलित होने पर रजोवर्ष के पहले विवाह न करने वाली कन्या को जालिष्युत और पिता को पतित तथा कन्या को विवाह के अयोग्य बताया गया (व्यास स्मृति २।७)। बृहस्पति (संस्कारप्रकाश पृ० ३७३) की सम्मति में ऐसी कन्या वृषलो या गृध्रा हो जाती है। विष्णुस्मृति (२४।४१) ऐसी कन्या को वृषलो बताते हुए उसके अपहरण में कोई दोष नहीं मानती (सा कन्या वृषलो ज्ञेया हरस्ता न विवृष्यति)। पराशर की सम्मति में ऐसी वृषलो के साथ शादी करने वाला ब्राह्मण बातचीत करने लायक तथा ब्राह्मणों की संक्ति में बँटने लायक नहीं होता है (असंभाष्यो ह्यपाक्तेयः स विप्रो वृषलोपतिः)।

एवं समाधार हो और अपने स्वतन्त्र विचार रखती हो तो यह संभव है कि कई बार अपनी सास, ससुर और घर के मानवीय वृद्धों से उसकी असहमति हो जाय और पारिवारिक कतह उत्पन्न हो। किन्तु यदि बच्चा बहुत छोटी उम्र में ही व्याही जाय तो उसका सारा बरिख-निर्माण स्वशुश्रूषण द्वारा ही होगा। इस वंश में वह बिलकुल ऐसी तन्म मिष्टी के समान होगी जिसे इच्छानुसार असीष्ट रूप दिया जा सकता है। बचपन से ही वह अपनी रुचि, प्रवृत्ति और स्वभाव को स्वशुश्रूषण की परम्पराओं के अनुकूल ढाकने का प्रयत्न करती थी और यही कारण था कि संयुक्त परिवार से कभी कोई वैमनस्य या कतह उत्पन्न नहीं हो सकता था।

### पूर्व मध्य युग के तरुण विवाह

बालविवाहों का रिवाज होने पर भी पूर्व मध्य युग (५००-१२००) के पहले हिस्से में हमें तरुण विवाह के कुछ उदाहरण मिलते हैं। हर्ष की बहिन राज्यश्री विवाह के समय तरुणी थी। विवाह के बाद उसने अपने पति के साथ सहवास किया। किन्तु कल्याण के राजा विक्रमांक नानुभव की कन्या का गंगा के कदम्बवर्षी राजकुमार से बाल-विवाह हुआ था। सम्राट पृथ्वीराज का भी पहला विवाह छोटी आयु में हुआ था। अल्बरनी (१०३० के लगभग) ने यह लिखा है कि हिन्दुओं में विवाह छोटी उम्र में हो जाते हैं, इसलिए बच्चा का चुनाव माता-पिता ही करते हैं। ११वीं शती के बाद केवल क्षत्रियों में और कुछ विशेष जातियों में तरुण विवाह के उदाहरण मिलते हैं। १५ वीं शती में पराक्षर स्मृति के व्याख्याकार माधव ने लिखा है कि केरल देश में कन्याओं का ऋतुमती होना बाध नहीं है। यह उसी पाण्ड्य देश के माम जगा हुआ है जिसके बारे में ४ वीं श० ई० पूर्व में मेगस्थनीस ने यह बात लिखी है कि वहाँ की कन्याएँ द्वादश साल में बच्चे जना करती हैं। ११००-१३०० (ई० पञ्चात्) के बीच में बाशिणात्थ हर्षट ने आश्वत्थापन मूख-सूत्र की टीका करते हुए लिखा है कि कई देशों में विवाह के बाद तीन दिन के ब्रह्मचर्य की रीति का पालन नहीं किया जाता अपितु अश्लिष्य सहवास शुरू हो जाता है। लक्ष्मिप बहुधा अपनी कन्या की शादी उज्ज्वला होने के बाद ही करते थे। मित्रविभ ने १७ वीं शती में क्षत्रियों की इस प्रकार की छूट देते हुए लिखा है कि बालविवाहों की विधि ब्राह्मणों के लिए ही है। किन्तु मध्यकालीन हिन्दू समाज में बालविवाह ही प्रथा सामान्य रूप से प्रचलित थी, उपर्युक्त उदाहरण इसका अपवाद साज ही है।

१६वीं शताब्दी में अकबर के समय तक यह बुराई इतनी बड़ चुकी थी कि अकबर ने इसे सुधारने का यत्न किया, किन्तु कट्टर मुस्लिमों के विरोध के कारण यह इस प्रयत्न में सफल न हुआ। १६ वीं शती के अंग्रेज व्यापारी किंग ने बंगाल में १० और ६ वर्ष की बालक-बालिकाओं के विवाह देखे। १७ वीं शती का इतालवी यात्री मनुषी कहता है कि प्रायः लड़कियों का विवाह बोलता शुरू करने के पहले ही हो जाता है और १० वर्ष



की आयु से पहले-पहले ही सब कन्याएं व्याह दी जाती हैं। केवल धाती टैरनियर कहना है कि विवाह की आयु ७-८ वर्ष होती थी। एब्ने युवाइस ने १८ वीं सदी के अन्त में दक्षिण भारत का वर्णन करते हुए लिखा है कि १६ वर्ष का ब्राह्मण पाँच, सात या अधिक में अधिक भी वर्ष की कन्या से शादी करता है।

**ग्रामणीत तथा बालविवाह**—मध्य युग में साखी द्वारा बालविवाह के अनिवार्य बना दिये जाने पर भी मुक्क और सुवर्तियों के विवाह की प्रथा सर्वथा लुप्त नहीं हो गई। ग्राम गीतों में हमें जो विवाह का आदर्श मिलता है, वह इसमें सर्वथा भिन्न है। उसमें बाल-विवाह का सम्बंध नहीं होता। इन गीतों में प्रायः वर और कन्या के एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होने तथा एक दूसरे के पसन्द करने के बाद ही विवाह कर्म का वर्णन मिलता है। पहले अध्यायों में इस प्रकार के गीतों के कुछ उदाहरण दिये गये हैं। एक गीत में वर कन्या को पसन्द करता है, उसके साथ विवाह भी दृष्टा प्रकट कर रहा है, किन्तु कन्या के भाई को यह गंधारा नहीं हो सकता कि वह अपनी बहिन को उसके पास ने जाय। वह उसे मौन से बाले की मारने के लिए तलवार लेकर दौड़ता है। इसके बाद भीतर में जाड़ में पड़ी हुई कन्या निकलती है, उसकी माँग मोतियों से भरी होती है, वह कहती है—हे भाई, इस उपस्त्री को मत मारो, इसे मार जाओगे तो मेरे जीवन की नीचा कौन चार लगायेगा।<sup>२६</sup> क्या यह भाव ५, ६ वर्ष की कन्या प्रकट कर सकती है? कई ग्रामणीतों में वर दूढ़ने आते समय कन्याएँ पिताजी से प्रार्थना करती हैं कि हमारे लिए इन प्रकार के वर खोजना। मायका के एक गीत में कन्या पिता से कहती है—“मेरे लिए काला वर मत दूँडना। वह कुटुम्ब को लज्जित करेगा। ऐसा बर दूँडना, जो काशी में वास कर चुका हो अर्थात् सिद्धि हो।”<sup>२७</sup> कन्या समझदार होने पर ही ऐसी बातें कह सकती है। एक अन्य गीत में एक मुक्क कहता है कि मैं तब दक्षिण देश से पड़कर लौटा तब मेरा विवाह हुआ। ये सब गीत सूचित करते हैं कि बालविवाह को कुप्रथा प्रचलित होने के बहुत बाद तक भी हिन्दू समाज में कुछ तथ्य विवाह होते रहे।

**मध्य युग में अन्य देशों में बालविवाह**—बालविवाह भारत की विशेषता हो, वह बात नहीं है। मध्यकाल में यूरोप में भी यह कुप्रथा अपना प्रभाव जमाये हुए थी। रोम में कन्या की शादी १० वर्ष की उम्र में हुआ करती थी।<sup>२८</sup> रोमन कानून द्वारा पुरुष १४ तथा स्त्री १२ वर्ष की उम्र में विवाह कर सकते थे (इंस्टीट्यूट ऑफ़ दी जस्टी-नियन, खण्ड १, धारा १०, १३)। मध्यकाल में चर्च ने विवाह की यही आयु स्वीकार

२६ रामनरेश त्रिपाठी—ग्रामणीत कविता कौमुदी पृ० १३७ ‘भीतर से निकली लाइली मोतिमन माँग भरो। अनि मारो पूत तपसिमा जमन मेरो को खेह है।’

२७ कविता कौमुदी, तु० भा०, पृ० २०६

२८ म्यूजर—कॉमिलो, पृ० २६०

की थी। प्रायः सभी देशों के कानूनों में इसका अनुसरण किया गया, किन्तु प्रायः इस मर्यादा का पालन नहीं होता था। फाइल मेरिजिस एण्ड डाईवोर्स (बालविवाह व तलाक) नामक पुस्तक में यह बताया गया है कि १६वीं शती में इंग्लैण्ड में खूब बाल-विवाह होते थे, ६ तथा १० वर्ष के और कभी दो और तीन वर्ष के बालक-बालिकाओं की भी शादी होती थी। १६२६ ई. तक इंग्लैण्ड में सड़के-तड़कियों की विवाह की उम्र १४ और १२ थी। १६२६ में भारत में शारदा कानून के बनने के साथ ही इंग्लैण्ड में पार्लियामेण्ट ने कानून द्वारा बालक-बालिकाओं के लिए विवाह की कानूनी आयु १६ वर्ष नियत की।<sup>२४</sup>

### मध्ययुग में बालविवाह प्रचलित होने के कारण

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मध्ययुग में हिन्दू समाज में बालविवाह का प्रचलन बहुत अधिक बढ़ गया था। उस समय इसके प्रचलित होने के कारणों में प्रमुख कारण निम्नलिखित थे। पहला कारण शास्त्रीय व्यवस्था और रुढ़िवाद था। विभिन्न स्मृतियों में इस व्यवस्था पर बल दिया गया था कि रजोवर्षा से पूर्व ही कन्या का विवाह हो जाना चाहिए, रजोवर्षा के बाद उनका विवाह करने वाले माता-पिता को बृहस्पति स्मृति में पापी घोषित किया था। ऊपर दिये गये विवरण के अनुसार यह भ्रूणहत्या के महापातक के समान था, इससे माता-पिता जाति से अहिष्कृत तथा कन्या झूठा तथा विवाह के योग्य नहीं रहती थी। इस पाप से बचने के लिए बालविवाह की प्रथा बढ़मूल हुई। दूसरा कारण अशान्त राजनीतिक परिस्थिति थी। मध्य युग में विदेशी एवं विघर्षी जातियों के प्रचल आक्रमण होने से तथा उनका शासन स्थापित होने पर देश की तत्कालीन स्थिति बड़ी अशुभ और अनिश्चित हो गयी थी। विदेशी आक्रमणकारी अपने साथ स्त्रियाँ नहीं लाये थे। उन्हें इस देश की स्त्रियों को लेने में आपत्ति नहीं थी, किन्तु हिन्दू विघर्षी स्त्रियों को अपनी कन्याएँ देने को तैयार नहीं थे। कन्याओं को मुस्लिम हाथों में पड़ने से बचाने का सरल उपाय छोटी आयु में उनका विवाह कर देना था। क्योंकि इस्लाम में विघर्षी विवाहित स्त्री से विवाह करना हराम या निषिद्ध कार्य समझा जाता था, इनसे विवाह करना वैध नहीं था। अतः हिन्दू स्त्रियों को मुसलमानों से सुरक्षित रखने का सर्वोत्तम उपाय बालविवाह था। तीसरा कारण सड़कियों के कौमार्य की रक्षा की चिन्ता थी। कौमार्य हिन्दू विवाह की आधारभूत शर्त थी, अश्विष्ठ कौमार्य वाली लड़की का विवाह समाज में संभव नहीं था। कन्या के बड़ी होने पर उसके पचछट हो जाने पर कौमार्य-भंग की संभावना बनी रहती थी। इसे दूर करने के लिए बालविवाहों की प्रथा

२४ १६२६ जार्ज फिफथ सेक्टर ३६, गुडसेल-ए हिस्टरी आफ मेरिज एण्ड फीमिली ल्यूयार्क १६४५, पृ० १६६-७।

को प्रोत्साहित मिला।<sup>३०</sup> चौथा कारण छपि प्रधान संयुक्त परिवार की प्रथा थी। छपि प्रधान समाजों में खेती के काम के लिए जितने अधिक व्यक्ति मिल सकें, फसल की कृताई, बोआई और फटाई के समय में उतने ही अधिक उपयोगी होते हैं। छोटी आयु में विवाह से अधिक सन्तानें मिलती हैं। संयुक्त परिवार की व्यवस्था में इसका पालन-पोषण परिवार के संयुक्त कोश से होता है, किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं होता है। आजकल अपने परिवार में पुष्प रहने वाला नवयुवक आर्थिक दृष्टि में स्वावलम्बी होने के बाद ही विवाह करना चाहता है, क्योंकि उसे अपनी तली और जल्दी को भरण-पोषण की व्यवस्था करनी है। मध्ययुग में ऐसी स्थिति नहीं थी। पत्नी का भरण-पोषण संयुक्त परिवार से होता था। जल्दी विवाह होने से घर का काम निपटान के लिए एक उपयोगी प्राणी मिल जाता था, वह विवाह जितनी छोटी आयु में हो उतना अच्छा था। छोटी बच्ची को जिस किसी कार्य में जोता जा सकता है, वही बड़ा भी तनुनन नहीं करती, बड़ी आयु की बड़की ऐंठ भी दिया सकती है। पाँचवां कारण दहेज की प्रथा थी। बड़की की आयु बढ़ने के साथ-साथ उसकी हेमियत अधिक होने से दहेज की माता में वृद्धि होती जाती है। छोटे बच्चों के लिए दहेज का प्रश्न अधिक विकट नहीं होता है, बल: दहेज की चिन्ता से बचने का इलाज छोटी आयु में विवाह करना था। छठा कारण बालविवाह से एक बड़ा लाभ यह था कि इससे सजातीय विवाह के नियम का पालन आसानी से हो सकता था। मध्यकालीन शास्त्रकार अपनी ही जाति में विवाह के पक्षपाती थे। इनके पालन में भी बालविवाह उपयोगी था। यदि विवाह बड़ी आयु में हो तब मुश्किल-मुश्कती अपनी इच्छा से विवाह करने ज्यों तो वे अपनी जाति और विरादरी से बाहर विवाह कर सकते हैं। माता-पिता द्वारा बालविवाह के फिसे जाने के कारण उसमें यह संभावना नहीं रहती है। सातवां कारण इस व्यवस्था में वैवाहिक जीवन में सामंजस्य और अनुकूल्य बने रहने का लाभ है। बड़ी आयु में विवाह की व्यवस्था की दशा में शादी होने तक बर-बधू की आदतें आयु अधिक होने के कारण परिपक्व हो जाती हैं, इन्हें बदलना आसान नहीं होता है। यदि दोनों के स्वभाव में विरोध या मतभेद हो तो दाम्पत्य कलह की संभावना बढ़ जाती है, गृहस्थ जीवन तरल बन जाता है। बालविवाह की प्रथा में यह खतरा नहीं है। इसमें बहू बहुत छोटी आयु में हजुरराज्य में आती है, वह मौली मिट्टी के समान होती है, उसे बड़ी आसानी से किसी भी शीशे में डाला जा सकता है। वह शीशे ही अपने को नये परिवार के अनुकूल बना लेती है। इसके साथ उसका पूरा मार्मजस्य हो जाने के कारण परिवार में तब दाम्पत्य जीवन में किसी प्रकार के विरोध अथवा संघर्ष की संभावना नहीं रहती है। इसी बात को दृष्टि में रखते हुए कर्ण ने लिखा है कि बालविवाह की प्रथा के प्रचलन का एक कारण यह था कि इनमें बहू अपने पिता

के प्रभुत्व से पति के प्रभुत्व में चली जाती थी, यह कार्य छोटी आयु में अधिक आसान था, क्योंकि इसमें बहू ने अभी ऐसी समता का विकास नहीं होता था जिसमें वह पति के अधिकार पर कोई सन्देश दे सकती थी।<sup>३१</sup>

### आधुनिक युग में बालविवाह की हानियाँ

उपर्युक्त परिस्थितियों तथा कारणों के प्रभाव के मध्ययुग से हिन्दू समाज में बालविवाह की प्रवृत्ति अत्यधिक प्रचलित हो गयी, लड़कियों का विवाह समाज में न केवल रजोदर्शन से पूर्व ८ से १० वर्ष की आयु में किया जाता आवश्यक एवं अच्छा समझा जाने लगा, अपितु कुछ माता-पिता बच्चों के जन्म से पहले ही उनके विवाह तय करने लगे।<sup>३२</sup> किन्तु १९वीं शताब्दी के मध्य में भारत में नयी राष्ट्रीय चेतना तथा नव जागरण उत्पन्न होने से बालविवाह के दूषित परिणामों को हिन्दू समाज भली-भाँति अनुभव करने लगा। इस की पहली बड़ी हानि यह थी कि अपरिपक्व आयु में विवाह होने का पति-पत्नी के तथा सन्तान के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता था। यद्यपि द्विरागमन या गौने की व्यवस्था से कई बार इस दुष्प्रभाव का समुचित प्रतिकार हो जाता था, किन्तु बालिकाओं के सहवास तथा सन्तानोत्पादन पर बहुत कम कानूनी प्रतिबन्ध थे। १८६० के भारतीय दण्डविधान में लड़की के लिए दाम्पत्य सहवास की न्यूनतम अवस्था (Age of Consent) दस वर्ष थी। इसने कम आयु के सहवास को ही दण्डनीय अपराध बनाया गया था। यह आयु संभवतः स्मृतिकारों के उपर्युक्त बच्चों की तथा बालविवाह की प्रथा को देखते हुए तय की गई थी। १८६० में बंगाल में फूलमणि नामक सुकौमल कन्या का ११ वर्ष की आयु में पति के साथ सहवास के कारण देहान्त हो गया। पति पर पत्नी की हत्या का अभियोग चलाया गया, किन्तु भारतीय दण्डविधान की १० वर्ष की आयु में दाम्पत्य सहवास की उपर्युक्त व्यवस्था के आधार पर पति निर्दोष समझा गया। इस घटना ने इस प्रथा की भीषण हानियों की ओर तथा इसके संशोधन की ओर समाज-सुधारकों का ध्यान आकृष्ट किया। इससे सब लोगों को यह पता लगा कि छोटी आयु में विवाह एवं कामसम्बन्ध करने से बर-बधू अश्लील से बूढ़े हो जाते हैं, उनका स्वास्थ्य खींचट हो जाता है, उनकी सन्तान निर्बल होती है, अल्पायु में प्रसव होने पर स्त्रियों का शरीर निर्बल होने के कारण अनेक बीमारियों का शर बन जाता है, फूलमणि जैसी अश्लील स्त्रियाँ अकाल में ही काल का श्रास बनती हैं, स्त्रियों की तथा बच्चों की भ्रूण संख्या में वृद्धि होती है, बचपन में ही विवाह का उत्तरदायित्व या पढ़ने से पति-पत्नी का विकास अवकट हो जाता है, लड़के-लड़कियों की शिक्षा में बाधा खड़ी हो जाती है, वे शिक्षा पाने के अवसरों से वंचित हो जाती हैं। इन सब हानियों का अनुभव करते हुए १९वीं

३१ कथें—किनशिप आर्गेनिजेशन, इन इंडिया पृ० १६८

३२ कथें—किनशिप आर्गेनिजेशन इन इंडिया, पृ० १३८

शताब्दी के सभी धार्मिक और समाजसुधारकों ने, ब्राह्मसमाज एवं आर्यसमाज ने, स्वामी दयानन्द, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महादेव गोविन्द रानडे आदि सुधारकों ने इस घुग्राई को दूर करने पर बल दिया, इसके विपक्ष प्रवल लोकमत बनाया और कानून द्वारा इसे रोकने का प्रयत्न किया गया।

### बालविवाह की प्रथा दूर करने के कानूनी प्रयत्न

कानून द्वारा बालविवाहों को रोकने का पहला प्रयत्न १८६० के भारतीय दण्ड-विधान द्वारा निर्धारित दस वर्ष की सहवास की अवस्था को ऊँचा उठाना था। एक पारसी सुधारक श्री बहुरामजी मन्साबारी (१८२३-१८९२) ने १८८४ में इस विषय में एक आवेदन-पत्र भारत सरकार को भेजते हुए सरकार ने यह अनुरोध किया कि इस प्रथा के भीषण दुष्परिणामों को देखते हुए इस आयु को ऊँचा उठाना चाहिए। वे इस विषय में प्रकार के लिए संश्लेष गर्ते। इस पर गर्माप्त विभागविमर्श और बाद-विवाद के बाद भारत सरकार ने यह निश्चय किया कि हिन्दू समाज के आंतरिक मामलों में सरकार को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। किन्तु १८६० में फूलभूमि की मृत्यु से बाल-विवाह निषेध आरक्षण पुनः प्रवण हुआ और १८६९ में भारतीय दण्डविधान में संशोधन करते हुए दाम्पत्य सम्बन्ध की न्यूनतम अवस्था (Age of Consent) दस वर्ष से बढ़ा कर बारह वर्ष कर दी गयी।

किन्तु भड़कियों के लिए यह अवस्था भी बहुत कम थी, अतः इसे बढ़ाने का आर्दोलन और प्रयत्न किया जाने लगा। १८२४ में श्री हरिश्चन्द्र गेड़ ने इस उम्र को १४ वर्ष तक करने का प्रस्ताव केन्द्रीय विधान सभा में रखा। इसके पास न होने पर १८९७ में सहवास की आयु के प्रश्न पर विचार के लिए उनके प्रस्ताव के आधार पर सहवास अवस्था समिती (Age of Consent Committee) बनायी गयी, इसने अपनी रिपोर्ट में यह कहा कि कन्या के विवाह की १२ वर्ष की अवस्था हानिप्रद है, यह कम से कम १४ वर्ष होनी चाहिए। श्री हरिश्चन्द्र भारद्वाज ने इस समिती की सिफारिशों को कियान्वित करने के लिए एक बालविवाह निषेधक कानून (Child Marriage Act) १८२६ में पास कराया। यह उनके नाम से भारद्वाज कानून कहलाता है।

**भारद्वाज कानून**—इसके अनुसार विवाह के समय लड़के की आयु १० वर्ष से तथा लड़की की आयु १४ वर्ष से अधिक होनी चाहिए। १८४६ के एक संशोधन के अनुसार लड़की के विवाह की आयु को १४ वर्ष से बढ़ाकर १५ वर्ष कर दिया गया है। इससे कम आयु वालों को बालक समझा जाता है। उनका विवाह बालविवाह है तथा इसे करने वालों के लिए निम्नलिखित दण्डव्यवस्था की गयी है। यदि १० से २१ वर्ष तक की आयु वाला लड़का १४ वर्ष से कम आयु की लड़की के साथ विवाह करता है तो इसे १५ दिन का साधारण कारावास या एक हजार रुपये तक का जुर्माना या दोनों दण्ड दिये जा सकते

हैं। २१ वर्ष से अधिक आयु के लड़के द्वारा १४ साल से कम आयु की लड़की के साथ विवाह करने पर उसे तीन मास तक की कैद की सजा दी जा सकती है। बालविवाह कराने में सहायता करने वालों को भी तीन महीने की जेल का दण्ड दिया जा सकता है, बालविवाह कराने वाले माता-पिता के लिए भी इसी प्रकार के दण्ड की व्यवस्था की गयी है। इस कानून के अनुसार किसी स्त्री को कारावास का दण्ड नहीं दिया जा सकता। ऐसे मामलों की जांच प्रथम श्रेणी का मैजिस्ट्रेट ही कर सकता है। बालविवाह का अपराध सिद्ध हो जाने पर भी इसे असंपन्न या त्याग्य अपराध कानून द्वारा कभी न हुआ घोषित नहीं किया जा सकेगा, यह विवाह तो माना जायगा, किन्तु उसके लिए दण्ड दिया जायगा, विवाह को रद्द नहीं घोषित किया जा सकता है। बालविवाह शासन द्वारा हस्तक्षेप्य अपराध नहीं किन्तु अहस्तक्षेप्य (Non-recognizable) अपराध है। हस्तक्षेप्य अपराध वे हैं जिन पर पुलिस स्वयमेव कार्यवाही करती है, हुला आदि के भीषण अपराध इसी कांटि के हैं। अहस्तक्षेप्य अपराध वे होते हैं, जिन पर पुलिस तभी कार्यवाही करती है, जब इसकी सूचना कोई व्यक्ति पुलिस को देता है। स्वयमेव पुलिस ऐसे अपराधों पर कोई कार्यवाही नहीं करती है। इस कानून के अनुसार बालविवाह की जो भी शिकायत हो, वह एक वर्ष के भीतर सुनी जा सकती है। विवाह के बाद एक साल बीत जाने पर कोई शिकायत नहीं सुनी जा सकती है।

इस कानून के १९२९ में पाग हो जाने के बाद भी हिन्दू समाज से बालविवाहों का पूरी तरह लोप नहीं हुआ है। १९५१ की भारतीय जनगणना की रिपोर्ट के अनुसार भारत में पांच से बीसह वर्ष की आयु के विवाहित पुरुषों की संख्या २० लाख ३३ हजार, विवाहित स्त्रियों की संख्या ६१ लाख १८ हजार, विधुर पुरुषों की संख्या ६६ हजार तथा विधवाओं की संख्या १ लाख ३४ हजार थी। बालविवाह की प्रथा प्रचलित रहने के कुछ बड़े कारण—कृत्रिमता, धर्म शास्त्रीय आदेशों के पालन की भावना तथा शास्त्र कानून की व्यवस्थाओं का शिथिल होना है। फिर भी धर्म-जाने-संन्यास-परिस्थितियों से तथा आगे बढ़ते-जाने वाले कारणों से भारत में विवाह की आयु ऊँची उठ रही है तथा इस कुप्रथा का प्रचलन कम हो रहा है। यह बात अगले पृष्ठ पर दी गई तालिका के आंकड़ों से स्पष्ट हो जायगी।<sup>३३</sup>

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि १९२१-३१ की दशाब्दी को छोड़ कर स्त्रियों की विवाह की औसत आयु में निरन्तर वृद्धि हो रही है, इस दशाब्दी में वृद्धि न होने का कारण यह था कि शास्त्र कानून के पहली अप्रैल १९३० से लागू होने से पहले इससे बचने के लिए सारे देश में बहुत बड़े पैमाने पर बालविवाह किये गये थे।<sup>३४</sup>

३३ एस० एन० अग्रवाल—एन एट मैरिज इन इंडिया, पृ० ७२

३४ सेन्सस आफ इंडिया १९३१, भाग १, खं० १, पृ० २२६-३४

भारत में विवाह की औसत आयु<sup>३४</sup>

जनगणना के वर्ष	पुरुषों की आयु	स्त्रियों की आयु
१८६१-१९०१	२१.०१	१२.७७
१९०१-११	२०.४४	१३.०४
१९११-२१	२०.७४	१३.५२
१९२१-३१	१८.४५	१२.५०
१९३१-४१	२०.३४	१४.६३
१९४१-५१	१९.६३	१५.३८

वर्तमान समय में बालविवाह कम होने के कारण

बीसवीं शताब्दी में अनेक आधुनिक नवीन प्रवृत्तियों के कारण बालविवाह की प्रथा हिन्दू समाज में, विशेषतः शहरों के मध्य वर्ग में कम होने लगी है। इस विषय में श्री कापड़िया द्वारा किये गये एक अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि इससे केवल २५ प्रतिशत लड़कियों का विवाह १७ वर्ष की आयु से पहले हुआ था, ३३ प्रतिशत के विवाह की आयु १७-१८ वर्ष थी, २२ प्रतिशत का विवाह १९-२० वर्ष की आयु में हुआ था, १७ प्रतिशत का २१ तथा २१ से २४ वर्ष की आयु में तथा ४ प्रतिशत का २५ से २७ वर्ष की आयु में। इस प्रकार ७५ प्रतिशत लड़कियों का विवाह १७ वर्ष की आयु के बाद हुआ।<sup>३५</sup> इससे यह स्पष्ट है कि स्त्रियों के विवाह की आयु ऊंची उठ रही है।

इसके चार प्रधान कारण हैं। पहला कारण शिक्षा का है। अब घर-घर के लिये शिक्षा को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। पहले संयुक्त परिवार की प्रथा होने के कारण नवविवाहित दम्पती उस में रहते थे और उनका भरण-पोषण परिवार के संयुक्त धन से होता था, युवकों को अपने परिवार का आर्थिक दायित्व उठाने की चिन्ता नहीं होती थी। किन्तु संयुक्त परिवार प्रथा का विघटन हो जाने से अब युवकों को अपने परिवार का आर्थिक बोझ स्वयमेव अपने कान्धों पर उठाना पड़ता है, अतः वे तब तक विवाह नहीं करना चाहते, जब तक वे आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी न हो जायें। ऐसा होने का प्रधान साधन नौकरियाँ हैं और वे शिक्षित युवकों को ही मिलती हैं, अतः युवक अपनी शिक्षा समाप्त करते से पहले विवाह के बंधन में नहीं पड़ना चाहते हैं। रास के अध्ययन में १८ अविवाहित युवकों में से सोलह ने यह कहा कि आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होने से पहले वे विवाह नहीं करना चाहते।<sup>३६</sup> एक युवक का कहना था कि "२६ वर्ष की आयु में मैं

३४. एस० एन० अप्रवाल—पूर्वोक्त पुस्तक पृ० ७५

३५. कापड़िया—मैरिज एण्ड फैमिली पृ० ६४, १५०-५१

३६. रास—बी हिन्दू फैमिली इन इट्स अर्बन सेटिंग पृ० २४८

पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त कर लूँगा, उस समय मुझे अच्छे वेतन वाली नौकरी मिल जायगी, सभी विवाह करने का विचार करूँगा। ऐसे युवक प्रायः गरीब-नीचरी मिलित पत्नी की माँग करते हैं, अतः जब हिन्दू समाज में विधवाओं की शिक्षा पर बहुत बल दिया जाने लगा है। मित्रियों के लिए न्यूनतम शिक्षा मैट्रिक की है, इसे प्राप्त करने तक वे १५-१६ वर्ष की हो जाती हैं, बी० ए० पास करने तक १६-२० की आयु हो जाती है। इस आयु तक कन्याओं का विवाह कम होने लगा है। समाज के मध्य एवं उच्च वर्ग में अब इस आयु तक प्रायः कन्याओं शिक्षा प्राप्ति के लिए अविविहित रहने लगी है। दूसरा कारण आर्थिक है। युवक आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होने की इच्छा के कारण नौकरी पाने पर ही विवाह करना चाहते हैं, अतः उनका विवाह और भी बड़ी आयु में होने लगा है। ऊपर २६ वर्ष की आयु में विवाह करने वाले युवक का उदाहरण दिया गया है क्योंकि वह समझता था कि इस आयु तक पी-एच० डी० करने के बाद उसे ऊँचे वेतन वाली नौकरी मिल जायगी। तीसरा कारण लड़कियों के लिये उपयुक्त वर चुनने में लगने वाला समय है, जात-पात, मोल, प्रभर, जन्मपत्री आदि के अनेक वैवाहिक प्रतिबन्धों के कारण हिन्दू समाज में वर चुनना आसान कार्य नहीं है, इसमें बहुत समय लगता है, इस कारण भी विवाह की आयु ऊँची उठ रही है। चौथा कारण पहले तथा विवाह में किया जाने वाला भारी व्यय है। इनके लिये आवश्यक धनराशि जुटाने में बहुत समय लग जाता है।

अतः हिन्दू समाज में बालविवाह की प्रथा का उपर्युक्त कारणों से स्वयमेव लोप हो रहा है। इसका स्पष्टीकरण रास के अध्ययन की निम्नलिखित दो तालिकाओं से हो जायगा। पहली तालिका में इस अध्ययन में सम्मिलित होने वाले स्त्री-पुरुषों की दो वर्गों में बाँटा गया काफी समय पहले शादी करने वाले (Old married) तथा नवविवाहित (Young married)। विभिन्न आयु समूहों की दृष्टि से दोनों वर्गों के प्रति-पत्नी के विवाह की आयु इस तालिका में प्रदर्शित है (रास पृ० २४६)।

### विवाह की आयु

विवाह की आयु	पुराने विवाह वाले सम्पत्ति		नव विवाहित सम्पत्ति	
	पति	पत्नी	पति	पत्नी
१०-१३	—	१२	—	२
१४-१५	—	४	—	५
१६-१८	६	७	—	१२
१९-२४	१३	४	१६	१४
२५ वर्ष से तथा इतसे अधिक	६	—	१५	—
	२८	२७	३५	३३



इस तालिका से स्पष्ट है कि १० से १३ वर्ष की आयु में जहाँ पुरानी मादी वाली स्त्रियों की संख्या १२ थी, वहाँ नवविवाहिताओं में यह घट कर केवल २ ही रह गयी है। १६ से १८ तथा १९ से २४ वर्ष की आयु में विवाह करने वाले नव दम्पतियों की संख्या बढ़ रही है। २५ वर्ष तथा इससे अधिक आयु वाले पत्नियों की संख्या पुराने दम्पतियों में ६ थी, किन्तु नवविवाहिताओं में यह १५ हो गयी है (सम.पृ० २४६)।

हमने तात्विका विवाह की आयु के सम्बन्ध में नवीन प्रवृत्ति को सूचित करनी है। इसमें अविवाहित स्त्री-पुरुषों में यह प्रश्न पूछा गया था कि वे निम्न आयु में विवाह करने की इच्छा रखते हैं। उन के उत्तरों का पक्षीकरण निम्नलिखित तात्विका में है।

### विवाह करने की अभीष्ट आयु

	अविवाहित पुरुष		अविवाहित स्त्रियाँ	
	पति	पत्नी	पति	पत्नी
१०-१३	—	—	—	—
१४-१५	—	—	—	—
१६-१८	—	४	—	—
१९-२४	—	१६	६	७
२५ तथा इससे अधिक	२५	४	५	१
सर्वयोग	२५	२२	६	८

इस तालिका से स्पष्ट है कि अब हिन्दू समाज में शिक्षित स्त्रियाँ १६ वर्ष में पहले विवाह करना पसन्द नहीं करती हैं।

### कानून द्वारा स्त्रियों के विवाह की आयु बढ़ाने का प्रस्ताव

तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या इस समय हमारे देश की सम्पन्नता और समृद्धि में भीषण बाधा बनी हुई है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा देश की आय में जो वृद्धि होती है, उसे बढ़ती हुई जनसंख्या समाप्त कर देती है। अतः भारतवासियों की सम्पन्नता बढ़ाने की दृष्टि से आजकल जनसंख्या कम करने के लिए परिवार नियोजन के कार्यक्रम पर बहुत बल दिया जा रहा है और यह प्रयत्न किया जा रहा है कि भारत की वर्तमान जन्म दर को ४१.५ प्रति हजार में घटा कर २५ प्रति हजार कर दिया जाय। अभी तक इस जन्म दर में इस प्रकार की कमी बम्बई आदि गहरों के शिक्षित वर्ग में हो सकी है। इसे देश में व्यापक रूप से तीव्र हो करने की दृष्टि से कुछ वैज्ञानिकों और विचारकों का मुद्दा है कि भारत में लड़कियों के विवाह की न्यूनतम आयु कानून द्वारा

यदि २० वर्ष कर दी जाय तो जन्मदर में तीस प्रतिशत की अभीष्ट कमी शीघ्र ही हो सकती है। किन्तु इस सुझाव का भारत के महिला संगठनों तथा नेताओं की ओर से इस-लिए तीव्र विरोध हो रहा है कि भारत सरकार अभी तक १५ वर्ष की न्यूनतम आयु निर्धारित करने वाले भारत का नून का पालन नहीं करवा सकी है तो वह २० वर्ष वाले कानून का पालन कैसे करा सकेगी। शादी की आयु को और बढ़ाने का कानून यह जानते हुए पारित करना कि उसका पालन नहीं होगा, कानून के उल्लंघन को बढ़ावा देना है, यह किसी भी समाज के लिए हितकर या बांछनीय नहीं है। स्त्रियों की विवाह की आयु को बढ़ाने का सर्वोत्तम साधन उनकी शिक्षा की तथा रोजगार की सुविधा बढ़ाना है। इससे कन्याओं के विवाह की आयु स्वयमेव ऊँची उठ जायेगी।

## विधवाविवाह

विधवा विवाह के निषेध की क्रमिक अवस्थाएँ

बालविवाह की भाँति विधवाविवाह के निषेध की घातक प्रथा भी वर्तमान समय में हिन्दु जाति की क्षीणता एवं विनाश के पक्ष पर नज़र आ रही है। यह प्रथा वैदिक काल में प्रचलित नहीं थी, बाद में इसका प्रचलन हुआ। विधवा विवाह का निषेध तीन ऐतिहासिक अवस्थाओं में से होकर गुजरा है—

(१) प्रारम्भिक काल में २०० ई० पू० तक विधवा विवाह प्रचलित था।

(२) २०० ई० पू० के बाद ने क्षतधर्मि विधवाओं के विवाह को निन्दा की दृष्टि से देखा जाने लगा। मनु ने ऐसे विवाहों की धार निन्दा की। अगले १४०० वर्षों में क्षतधर्मि विधवाओं का विवाह विस्तृत बन्द हो गया, किन्तु अक्षतधर्मि विधवाओं का विवाह हो सकता था।

(३) १३ वीं शती से अक्षतधर्मि विधवा का विवाह भी अधर्म समझा जाने लगा और समाज के उच्च वर्ग में विधवा विवाह के निषेध की प्रथा पूर्ण रूप से प्रचलित हो गयी। हिन्दू समाज की बहुत सी गौरी समझी जाने वाली जातियों ने विधवा विवाह के निषेध को उच्च जातियों से ग्रहण किया, किन्तु फिर भी इन जातियों ने अब तक इसे पूर्ण रूप से नहीं अपनाया। हिन्दू समाज की अनेक निम्न जातियों में विधवाओं के पुनर्विवाह की प्रथा अब तक प्रचलित है। इस अध्याय में विधवा विवाह निषेध के ऐतिहासिक विकास का प्रतिपादन किया जायगा।

वैदिक युग में विधवा विवाह

वैदिक युग में पति के मर जाने पर पत्नी नियोज कर सकती थी या दूसरे पुरुष से विवाह कर लेती थी। अथर्ववेद के पितृमेघ सूक्त (१८।३) में इसका स्पष्ट उल्लेख है। यह सूक्त अन्त्येष्टि संस्कार से संबद्ध है और इसके प्रारम्भिक सर्गों में पति की मृत्यु के दुःख से सन्तप्त एवं विलाप करने वाली पत्नी की सान्त्वना दी गयी है। उसे सान्त्वना देते हुए कहा गया है कि "तब तेरे शोक करने का कोई लाभ नहीं है, तू मृत पति के पास से उठ, अपने सांसारिक कर्तव्यों की ओर ध्यान दे और प्राचीन धर्म का पालन करते

हुए पुनर्विवाह द्वारा सन्तान उत्पन्न कर ।" इतना ही नहीं, अपितु यह भी कहा गया है कि जब उसने पुनर्विवाह कर लिया तो उसका शोक दूर हो गया और फिर उसकी अन्धवा गी के साथ उत्पन्न होने हुए उसके दूसरे पति का गणपति (पुत्र) कहा गया तथा पत्नी को वह आदेश दिया गया कि तू उसकी प्रीतिपूर्वक सेवा कर। एक लेखक ने पति की मृत्यु के बाद अन्धेष्ट विधि में गये जाने वाले इस गर्वा में पुनर्विवाह की वचनों को बेहूदा बताया है ।<sup>१</sup> किन्तु पत्नी के शोक को शान्त करने के लिए सन्तान देने हुए पुनर्विवाह की प्रेरणा करने में हमें कोई बेहूदागी नहीं प्रतीत होती है। इन गर्वा का शब्दार्थ इस प्रकार है—“हे मनुष्य, पति के मरने के बाद पति की चाहती हुई और सन्तान धर्म का पालन करने वाली हुई यह नारी तेरे पास आती है। तू इस लोक में इसे सन्तान और सम्पत्ति दे ।”<sup>२</sup> “हे नारी, तू इस मृत पति के साथ लेटी हुई है, तू यहाँ ने उठ और जीवित रहने

<sup>१</sup> अल्तेकर—यो० पु० ए० ई० द्वितीय संस्करण पृ० १५०, जब स्मृतियों में पत्नी को बाह्यकर्म करके एकदम विवाह करने की आज्ञा दी गयी है (धाम० १।८६) तो पत्नी के लिए इस प्रकार के विधान को बेहूदा क्यों समझा जाये ?

<sup>२</sup> अथर्व १८।३।१, इयं नारी पतिलोकं यजाना निषद्यत उप त्वा मयं प्रेतम् ।

धर्मं पुराणमनुपालयन्ती, तस्यै प्रजा इविषां चेह धेहि ।

सायणाचार्य ने इस मन्त्र का अर्थ यह किया है—“हे मरनेवाले मनुष्य, यह स्त्री पति द्वारा किये गये कर्मों के स्थान—स्वर्गलोक का सेवन करती हुई (पुत्र संभक्ती) मरे हुए अर्थात् पृथ्वीलोक से गये हुए तुझ पति के पास पहुँचती है। पुराणधर्म का अर्थात् अनादि काल के सिद्धाचार से प्राप्त या स्मृतियों और पुराणों में लिखे धर्म का पालन करती हुई और तेरे साथ सती हो जाने वाली इस स्त्री के लिए तू इस लोक में अर्थात् दूसरे जन्मों में (सन्तान और धन को दे। सायण ने इस प्रकार सती प्रथा को वेदानुमोदित बतलाते हुए स्मृति के एक प्रमाण से भी अपने अर्थ को पुष्ट करना चाहा है। किन्तु सायण का यह अर्थ कई कारणों से समीचीन नहीं प्रतीत होता। सायण के समय में सती प्रथा प्रचलित थी। सायण ने इस मन्त्र से उस प्रथा की सिद्धि की है। वास्तव में वैदिक काल में सती प्रथा प्रचलित नहीं थी। इस विषय में वेदों तथा गृह्यसूत्रों के प्रमाण अन्यत्र दिये गये हैं। इसी सूक्त का ही अगला मन्त्र सती प्रथा का खण्डन करता है, उसमें स्त्री को पति की धिता के पास से उठने का आदेश दिया गया है। सायणाचार्य स्वयं दूसरे मन्त्र की उत्पत्तिका में इसे स्वीकार करते हैं ‘यदि वह इस लोक में जीना चाहे तो “उद्योष्व” के दूसरे मन्त्र (ऋ० १०।१८।८) से मृत पति के साथ लेटी हुई पत्नी को उठाये’ (सा यदि इहलोके पुनर्जीवितुमिच्छेत् तदा उद्योष्व इत्यनया द्वितीयर्चा प्रेतान सह संविष्टां तानमिममन्त्र्य उत्थापयेत् ) ।

वाले प्राणियों के इस लोक से वा। विधवा का पाणिग्रहण करने वाले तथा पुनर्विवाह की इच्छा करने वाले पति का श्राव्य हो। जैसे मृतको से (मृत व्यक्तियों के स्थान-अवस्थान से) दूर के जायी जाती हुई तथा व्याही जाती हुई युवती को देखा है। वह पहले साक्षात्-स्पर्श से विरोध हुई थी, जैसे मैं पहली दशा में आकर्षित दूसरी दशा में ले जाया है। हे अश्वमे, तू इस जीवलोक को अच्छी तरह जानती है, मरुतन मोंगों के पथ का अवगणन करती है। यह तेरा गणति है, तू इसकी सेवा कर और मुखमय मोंग को प्राप्त कर।”

अथर्ववेद में एक दूसरे स्थान (६।१।२३-२८) पर कहा गया है कि—“जो स्त्री पहले पति का प्राप्त कर उसके बाद दूसरे पति का प्राप्ति करती है और वे पशोदन अज (एक अफरी तथा चाल बी पांच पानियाँ) को देते हैं, वे पानों काभी अन्न नहीं होते। यह दूसरा पति जो दक्षिणा में अर्घ्य या प्रकाश का तथा पशोदन अज का दात कर-ना है, पुनर्विवाहित स्त्री के साथ एक ही मोंग को प्राप्त होता है।”

अथर्ववेद (१।१७।१८-१९) में यह कहा गया है—“यदि कोई स्त्री पहले दम अन्नाद्वारा पति करे, किन्तु अन्त में यदि वह ब्राह्मण से विवाह करे तो वह उसका वास्तविक पति है, न कि अन्तिम या वैश्य। यह बात सूर्य पंच मानवी (पांच प्रकार के मानव जाति या समूहों) में घोषित करता चलता है।” इसका तात्पर्य यह है कि यदि स्त्री का पहले अन्तिम या वैश्य पति प्राप्त होता है और इनकी मृत्यु के बाद वह किसी ब्राह्मण से विवाह करती है तो वही उसका वास्तविक पति समझा जायगा।

उपर्युक्त मन्त्रों से यह स्पष्ट है कि वैदिक काल में नियोग के साथ-साथ विधवा-विवाह भी प्रचलित था। पति के मरते ही विधवा दूसरा विवाह कर लेनी थी और ऐसा करते हुए वह अनादि काल से चले आने वाले सनातन धर्म का पालन करती थी। बाद में पूर्व काल से चले आने वाले इस विधवा-पुनर्विवाह के धर्म को अधर्म समझा जाने लगा और सनातन धर्म के पालन का अभिमान करने वालों ने विधवा विवाह-निषेध के सर्वथा असनातन धर्म के पालन पर आग्रह करते हजारों हिन्दू स्त्रियों को वैधव्य की दारुण यन्त्रणा सहने को लिए बाध्य किया।

दूसरी बात यह है कि ‘इह’ शब्द संस्कृत में परल (परलोक) के प्रतियोगी के रूप में आता है। सायणाचार्य ने पतिलोक तथा इह दोनों शब्दों के अर्थ क्रमशः स्वर्ग में पति का स्थान तथा दूसरे जन्म की यह दुनिया किये हैं। दोनों अर्थों में स्पष्ट क्लृप्त कल्पना है। फिर वेद में प्रयुक्त पुराण शब्द के अर्थ को वर्तमान काल के पुराणों के अर्थ में प्रयुक्त करना वैदिक शब्दों के साथ अगम्य करना है। अतः हमें यहाँ अर्थ ठीक नहीं जान पड़ता। तब जा० ६।१।१२ में यही मन्त्र आया है और वही ‘धर्म-पुराण’ के स्थान पर विश्व-पुराण का पाठ है। सायणाचार्य ने उसका अर्थ ‘अनादिकालप्रवृत्त कृतं स्त्रीधर्म’ किया है।

## धर्मसूत्रों में विधवाविवाह

धर्मसूत्रों में विधवा-विवाह के स्पष्ट संकेत हैं। तसिष्ठ धर्मसूत्र (१७।१८-२०) पौनर्भव पुत्र को व्याख्या करता हुआ कहता है कि पुनर्भू का पुत्र पौनर्भव होता है और पुनर्भू वह स्त्री है जो अपने अविवाहित (कीमार) पति को छोड़कर दूसरे के साथ विचरण करती है और उसके बाद फिर अपने पहले पति के पास लौट आती है, अथवा जो गर्भग, जातिश्रष्ट, उन्मत्त या मृत पति को छोड़ कर दूसरे पति को प्राप्त करती है।

कई बार ऐसा होता था कि कन्या का वायदान हो जाता था, किन्तु विवाह से पहले ही उसका पति मर जाता था। इस अवस्था में भी धर्मसूत्र उसके पुनर्विवाह की व्यवस्था करते हैं। यदि पालियहूण हो गया हो और कन्या अभी अवतर्पणी हो तो उस अवस्था (पति की मृत्यु हो जाने की दशा) में भी उसका दूसरा विवाह हो सकता था।<sup>३</sup> बौधायन धर्मसूत्र (४।३।१८) ने तसिष्ठ से मिलती-जुलती व्यवस्था की है। कौटिल्य (३।४) ने पति के मर जाने पर सात सहीदि की प्रतीक्षा के बाद पत्नी को पुनर्विवाह का अधिकार दिया है।

बालविवाह की वृद्धि से अवतर्पणी विधवाओं के लिए उपयुक्त व्यवस्थाएँ बनाना आवश्यक हो गया। इन अवस्थाओं के अतिरिक्त कुछ ऐसी दशाओं में, जब पति को मृत के तुल्य समझा जाता था, स्त्री को पुनर्विवाह का अधिकार प्राप्त था। इन दशाओं की अत्यन्त (पृ. २८६-६७) विस्तार से चर्चा की जा चुकी है। तसिष्ठ धर्मसूत्र (१७।७।१८) तथा कौटिल्य (३।४।३३/४१) पति के विदेश जाने के बाद नियतकाल तक समाचार न मिलने पर पत्नी को दूसरे विवाह की आज्ञा देते हैं और हिन्दू स्त्रियों को छोड़ी जाती ई० तक यह अधिकार प्राप्त रहा है।

## रामायण तथा महाभारत में विधवाविवाह

रामायण, महाभारत और पुराणों में विधवा विवाह के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। रामायण में वाली के मरने पर तारा जब कल्याणनक्षत्र शब्दों में अपने पति की मृत्यु पर विज्ञाप करती है और राम से यहाँ तक कहती है कि तुम मुझे मार दो, तुम्हें स्त्रीवध का पाप नहीं सगेगा, किन्तु अन्त में विधवा तारा सुग्रीव की पत्नी बन जाती है। उसका पुत्र यद्यपि अपने पितृपाली बाबा की तापस्य करता है, किन्तु तारा सुग्रीव से सच्चा स्नेह रखती है।

महाभारत में नल-दमयन्ती के उदाहरण से स्पष्ट है कि उस समय विधवा विवाह

<sup>३</sup> तसिष्ठधर्मसूत्र १७।६६

पालियहूणे मृते वाता केवलं मज्जसंस्कृता ।

सा अवतर्पणीः स्यात्पुनःसंस्कारमर्हति ॥

को बुरा नहीं माना जाता था। दमयन्ती ने नल को ब्रूचन के लिए एक बनाबटी स्वयंवर की रचना की थी (महाभा० ३।७०)। उसे मन्वेद था कि नल राजा अत्युर्ग के घर पर है। उसने माता से परामर्श करके अत्युर्ग को अपने द्वितीय स्वयंवर में शीघ्र पहुँचने का निमन्त्रण भेजा। यदि विधवाओं का विवाह श्रद्धा से ममता जाता तो अत्युर्ग अपने में कभी इतनी तीव्रता न करता। नल ने दमयन्ती को बाद में यह उपालम्भ भी दिया है कि तुम अत्युर्ग पति को छोड़कर दूसरे विवाह के लिए रीति रीतिपूर्वक (म० भा० ३।७५।७६)। राक्षसी विधवाओं की मृत्यु पर भीम ने यह प्रार्थना करनी है कि वह उसके पुत्र की विधवाओं में विवाह करे। आजीवन अनाथों को नल का पालन भी प्रविष्टा भीष्म द्वारा विवाह करने में बाधक थी, किन्तु राक्षसी का प्रस्ताव विधवाविवाह के प्रचलन का अवगम सूचित करता है। नानराज मेरायत ने अपनी विधवा पुत्री का अर्जुन के साथ विवाह किया। उन विवाह से अर्जुन का इरादा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (भीष्म पर्व ६१।७-८)।

बौद्ध ग्रन्थों में विधवाओं के पुनर्विवाह के कई स्पष्ट उल्लेख हैं। नल जानक (सं० ३६) में एक ऐसे पति का वर्णन है जो यह सोचकर चकरा जाता है कि उसकी मृत्यु पत्नी उसकी मृत्यु के बाद किसी अन्य पुरुष से जादी कर लेगी और उसका पुत्र को सम्पत्ति में कोई हिस्सा नहीं मिलेगा। उल्लेख जानक (सं० ६७) में यह वर्णन है कि किसी स्त्री का पति, भाई और पुत्र राजा द्वारा बन्दी बना लिये गये। स्त्री ने राजा के आगे बड़ा कष्ट प्रकट किया। राजा ने उस पर दया दिखाते हुए कहा कि यदि मैं इन तीनों में से किसी एक को बन्धनमुक्त करने की आज्ञा दूँ तो तुम इनमें से किसकी मुक्ति चाहोगी। स्त्री ने कहा—“महाराज यदि मैं जोचित रहूँ तो मुझे दूसरा पति और दूसरा पुत्र मिल सकता है किन्तु मेरे माता-पिता मर चुके हैं, अतः मैं भाई को सुझावना पसन्द करूँगी।” स्त्री के इस उत्तर से स्पष्ट है कि उस समय स्त्रियों का पुनर्विवाह प्रचलित था।

### विधवाविवाह के निषेध का आरम्भ

महाभारत से यह ज्ञात होता है कि उस समय न केवल विधवाओं के अपितु स्त्री मात्र के पुनर्विवाह को बुरा समझा जाने लगा था। दीर्घतमा ऋषि की पत्नी प्रवेपी दीर्घतमा की छोड़कर दूसरे के पास जाने की रीति हुई (महाभा० १।१०४)। उस समय ऋषि ने कहा कि “आज से मैं ऐसी सवदा स्थापित करता हूँ कि जन्म भर के लिए स्त्री का एक ही पति हो। पति जीवित हो या न हो, स्त्री को दूसरे पति के पास नहीं जाना चाहिए” (१।१०४।३४-३६)। स्पष्टतः यह विधवा के पुनर्विवाह का स्पष्ट निषेध था। महाभारत के समय में यह आदर्श कितना लोकप्रिय होने लग गया था, यह दमयन्ती की नल द्वारा दिये गये एक उपालम्भ से स्पष्ट है। दमयन्ती ने उस उपालम्भ का यह उत्तर दिया है कि “तुम्हें यहाँ बुलाने के लिए ही मैंने इस मुक्ति से काम लिया है।

तुम्हारे सिवाय कोई मनुष्य भी योजन नहीं जा सकता। जो मैं इसमें पाप करती होंगी तो यह काम मेरे धर्मों का नाश कर दे।" इसका वह आशय हुआ कि दमयन्ती पुनर्विवाह को पाप मानती थी। दुर्षोधन ने कहा है कि श्वेष्ठ अस्त्रियों के मर जाने पर इस पृथ्वी की भोगों की इच्छा मनुष्यों में उसी तरह नहीं है जैसे विधवा स्त्री की भोगों के लिए इच्छा या उत्साह नहीं होता (म० भा० ६।३१।१५)। रामायण में विधवा विवाह के समर्थन में जो उदाहरण आरविष्टे गये हैं वे अतार्थ—कपि एवं राक्षस जातियों के हैं। इनसे यह स्पष्ट है कि आर्य जाति में उस समय विधवा विवाह को निन्दित समझा जाने लगा था।

### विधवा विवाह के निषेध के कारण

(१) संस्कारों की पवित्रता का विचार—वैदिक काल में जो सनातन धर्म समझा जाता था, वह बाद में निन्दित क्यों माना जाने लगा ? इसका पहला कारण तो यह प्रतीत होता है कि ब्राह्मणों के प्रभाव की वृद्धि के साथ-साथ संस्कारों की पवित्रता एवं शुद्धता की आवश्यकता से अधिक महत्त्व मिलने लगा। सौर्यवंश की समाप्ति के साथ भारत में बौद्ध धर्म के निकट अथवा प्रतिस्पर्धा हुई। ब्राह्मण धर्म का नवीन अभिव्यक्ति एवं उत्कर्ष हुआ। रामायण, महाभारत और मनुस्मृति के वर्तमान संस्करण इसी उत्कर्षकाल की रचनाएँ हैं। विवाह एक सन्ध्या (Contract) है या पवित्र धार्मिक अङ्गन (Crament), यह विवाद पहले से चला आता था। किन्तु इस प्रतिक्रिया के बाद विवाह को अविच्छेद्य सम्बन्ध मान लिया गया। मनुस्मृति (६।४५-४६) में कहा गया है कि स्त्री और पुत्र गति के तटोर का अंग होता है, अतः माया गति से किसी भी दशा में विमुक्त नहीं हो सकती। मनु के इस सिद्धान्त का सीधा-साधा अर्थ यह है कि जो एक बार पत्नी हो गयी, वह सदा के लिए पत्नी है। बाद में यह सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तरों के लिए समझा जाने लगा, एक स्त्री का एक व्यक्ति से अधिक व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध निन्दित और असम्भव समझा जाने लगा।

मनु ने इसी दृष्टि से विवाह का विरोध किया और विधवा के पुनर्विवाह का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया। विधवा विवाह में अन्य व्यक्ति का सम्बन्ध आवश्यक था, किन्तु वह उक्त सिद्धान्त के विपरीत था। अतः मनु ने सतयोजि कन्या के पुनर्विवाह को स्वीकृत नहीं किया। पिछले धर्मसूत्रकारी ने पति के विदेश चले जाने पर कुछ वर्षों के उपरान्त पत्नी का विवाह का अधिकार दिया था। मनु इन परिस्थितियों की सम्भावना करता है, वह पत्नी को प्रतीक्षा करने के लिए कहता है किन्तु उस प्रतीक्षा के बाद पत्नी क्या करे इस विषय में वह सर्वथा मौन है। मनु के टीकाकारों में नन्दन ने ही इस मौन का यह अर्थ किया है कि वह पुनर्विवाह कर ले। किन्तु मेघातिथि आदि ने विधवा के पुनर्विवाह का विरोध किया है। मेघातिथि का अर्थ मनुस्मृति की भावना के अनुकूल जान पड़ता है। मनु (५।१५७-६२) के मत में "पति के मर जाने पर पत्नी को अन्य पुरुष का नाम भी न लेना चाहिए, वह आभरण श्रद्धाचारिणी रहे, पति के मरने पर जो स्त्रियाँ जपुका होने पर भी



ब्रह्मचर्य धारण करती है वे स्वर्ग में जाती है। भूत के साथ में जो स्त्री दूसरे पुरुष के पास जाती है वह निन्दित होती है। साध्वी स्त्रियों का कोई दूसरा पति नहीं होना। "यह वान मनु के विवाह संस्कार सम्बन्धी विचारों के सर्वथा प्रतिकूल थी कि विधवा के साथ कोई दूसरा व्यक्ति शादी करे। अतः उसने विधवा के पुनर्विवाह को स्पष्ट शब्दों में यह कहकर निषिद्ध किया कि साध्वी स्त्रियों का कोई दूसरा पति नहीं होना। मनु (१।२२६, ६।४७) यह मानता है कि विवाह की विधि में विधवाओं के पुनर्विवाह का कोई स्थान नहीं है, पाणिग्रहण के मन्त्र तो कन्याओं के लिए ही हैं, और कन्यादात एक ही शब्द होता है। इन सिद्धान्त का कारण हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान एवं विवाह संस्कार के बन्धन को अधिकाधिक महत्त्व देना था, किन्तु मनु ने ज्ञात विधवाओं के सम्बन्ध में प्राचीन धर्मग्रन्थों की व्याख्या का यथा-पूर्व रखा। यह बड़े दुःख की बात है कि मनु ने संस्कार के पवित्र धर्म में ग़लती अर्थात् पत्नी के लिए ही रखा। यदि पति-पत्नी में कोई अविच्छेद सम्बन्ध है तो यह दोनों और से होना चाहिए, यदि पत्नी पति से अलग नहीं हो सकती तो पति भी पत्नी से पृथक् नहीं हो सकता। किन्तु पुरुष के सम्बन्ध में यह संस्कार बाधक नहीं माना गया, उभारे एकपत्नीयत्व होने की आशा नहीं रखी गयी। याज्ञवल्क्य ने स्त्रियों के लिए आभरण वैधव्य की व्यवस्था की (१।७५) किन्तु पुरुष के लिए यह कहा कि पत्नी के मरण हो उसे पुरस्त दूसरा विवाह कर लेना चाहिए (१।८६)।

(२) अक्षतयौनि कन्या की आकांक्षा—विधवा विवाह के निषेध का दूसरा कारण यह था कि उस समय धीरे-धीरे यह विषयम दृढ़ हो रहा था कि विवाह के समय बहु अनुपभुक्त एवं अक्षतयौनि होनी चाहिए। क्षत्रियों में यह अभिमत होना स्वाभाविक है कि वे दूसरे द्वारा उपभुक्त स्त्रियों को ग्रहण न करें। यह आकांक्षा अधिकांश जातियों में पायी जाती है। महाभारत में द्रौपदी (१।१६-१।१४) के विवाह के सम्बन्ध में यह विचित्र बात कही गयी है कि वह वर्ष पर्यन्त एक पांडव के सहवास में रहकर भी अपने वीर पुनः पूर्व-वत् सर्वथा कुमारी रूप में ही दूसरे पांडव को प्राप्त होती थी। कुन्ती मूर्ख द्वारा सहवास के बाद भी अक्षतयौनि रही। यदापि की कन्या माधवी (५।११५।२१) को यह वर प्राप्त था कि वह प्रत्येक प्रभूति के बाद कुमारी हो जायेगी और उसने मानव से कहा था कि तू मुझे चार राजाओं को देकर १०० घोड़े प्राप्त कर। अर्जुन जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा करने हुए कहता है कि यदि मैं यह प्रतिज्ञा न पूरी करूँ तो मैं आग में जल भरूँगा। इस प्रतिज्ञा के समय उसने अनेक शपथें ली हैं, उनमें से एक यह भी है कि यदि मैं यह प्रतिज्ञा न पूर्ण करूँ तो मुझे यह निन्दनीय लोक प्राप्त हो जो भुक्तपूर्वा स्त्री से शादी करने पर होता है। इससे स्पष्ट है कि क्षतयौनि स्त्री से विवाह उस समय बहुत निन्दनीय समझा जाता था। जब उभाव यह सिद्धान्त मानने लगे तो स्वभावतः विधवा से शादी का अधिकार छिन गया। मनु की तरह महाभारतकार भी अक्षतयौनि कन्या की ही पुनर्विवाह का अधिकार देता है।

२०० ई० पूर्व से उपर्युक्त कारणों द्वारा विधवा विवाह को घृणा की दृष्टि से

देखा जाने लगा तथा विधवा स्त्री के लिए यही आदर्श समझा जाने लगा कि वह ब्रह्म-चर्यपूर्वक अपना जीवन बिताये। किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि विधवाओं के विवाह अगले ७००-८०० वर्षों तक अर्थात् गुप्त युग की समाप्ति तक होते रहे।

वाल्मीकि के कामसूत्र से ज्ञात होता है कि जो विधवाएँ ब्रह्मचर्य ब्रत का पालन करना कठिन समझती थीं वे दूसरी शादी कर लेती थीं। पराशर (४३०) ने विधवा विवाह का समर्थन किया है। उसके मतानुसार पति के लापता होने, मरने, संन्यासी नग्नगर्भ होने या गतिष्ठ होने की पांच आपत्तियों में स्त्री दूसरा विवाह कर सकती है। नारद (५।६७) ने इसका अनुमोदन किया है। गुप्त युग में विधवाओं के विवाह का ऐतिहासिक प्रमाण विधवा ध्रुवदेवी का बन्धुगुप्त द्वितीय से विवाह है। गुप्त युग एवं पूर्व मध्ययुग की अधिकांश स्मृतियों में अक्षतयोगि विधवा के अधिकार को स्पष्ट रूप से माना गया है, किन्तु अक्षतयोगि विधवा के पुनर्विवाह की उपाय की गयी है। आगे चलकर मध्ययुग में पराशर की पुनर्विवाह विषयक स्पष्ट व्यवस्था को भी टीकाकारों ने अपने पांडित्य एवं व्याख्याकीशक्त से बदलने का प्रयत्न किया। ऐसा जान पड़ता है कि इसवी शती तक अक्षतयोगि विधवा के विवाह को बहुत बुरा समझा जाने लगा था। मेधा-तिथि ने विधवा विवाह के समर्थक पराशर के उल्लेख श्लोक की यह व्याख्या की है कि यहाँ गति का अर्थ बालक करने वाला पुरुष है, अर्थात् नहीं। विधवा को चाहिए कि वह आजीविका के लिए नौकरानी का काम करे और इस काम के लिए किसी दानक की शरण ग्रहण करे। १० वीं शताब्दी के बाद कलिवर्गों की कल्पना बहुत कम गयी थी और धर्मशास्त्रकार जिस प्राचीन विधि को अपने मन के अनुकूल नहीं पाते थे, उसके बारे में यह कह देते थे कि यह विधि कलिकाल में निषिद्ध है। आदिश्य पुराण तथा ब्रह्मपुराण (अपराक, पृ० ६८) ने विवाहित स्त्री के पुनर्विवाह को कलिवर्ग बताया है। पराशर स्मृति के टीकाकार माधव ने पराशर के उक्त श्लोक की टीका करते हुए यह कहा है कि यह विधि दूसरे युगों के लिए है, पद्मनिधिगुप्त के धर्मों का प्रतिपादन करने का येय पराशरस्मृति की ही दिया जा रहा है। ११ वीं शती में अक्षतयोगि ने यह लिखा है कि हिन्दुओं में विधवा का विवाह नहीं होता, वे या तो सती हो जाती हैं या तपस्वी की तरह अपना जीवन व्यतीत करती हैं। इससे स्पष्ट है कि ११ वीं शती तक अक्षतयोगि विधवाओं का पुनर्विवाह बिल्कुल अन्व हो चुका था।

(३) सम्पत्ति की रक्षा—पूर्व मध्ययुग में विधवाओं के पुनर्विवाह विरोध की व्यवस्था को सर्वमान्य बनाने में जो अन्य कारण भी सहायक हुए, उनमें साम्प्रतिक कारण मुख्य था। अत्यन्त प्राचीन काल में विधवाओं के साम्प्रतिक अधिकारों की चर्चा बहुत कम मिलती है। विधवाओं का पुनर्विवाह निषिद्ध होने पर भी स्मृतिकारों तथा टीकाकारों और निबन्धकारों ने उनके सम्पत्ति के अधिकार को स्वीकार किया। याज्ञ-वल्क्य १।१३५-६ में पत्नी के लिए स्पष्ट रूप से पति की सम्पत्ति में अधिकार का विधान

किया गया है। बृहस्पति (स्मृतिचन्द्रिका पृ० २६०) ने कहा कि पत्नी पति का अधीन है, उसके रहते हुए कौन उसकी सम्पत्ति ले सकता है। यद्यपि नारद, कात्यायन आदि विधवा के इस अधिकार के चोर विरोधी थे, किन्तु विधवा को मने-जने सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त हो रहा था।<sup>५</sup> यदि विधवा पुनर्विवाह कर लेती तो उसका यह अधिकार छिन जाता था। सम्पत्ति की रक्षा के लिए यह आवश्यक था कि वह विधवा ही रहे।

(४) सजातीय विवाह के नियमों की कठोरता—विधवा विवाह के निर्णय का एक अन्य कारण यह था कि पूर्व मध्ययुग में सजातीय विवाह के नियम कठोर होने लगे थे। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि पुत्रों का श्रेय बहुत संकुचित हो गया। एक कन्या के लिए बर सलाह करने में बहुत सीझ-धूप करनी पड़नी थी और बर को दहेज का पर्याप्त प्रलोभन देना पड़ता था। विधवाओं के लिए यह बौद्धूय कौन करे तथा दहेज के प्राप्ति का कौन उठावे। कन्या के माता-पिता में तो उसे प्रयत्न करके एक बार ब्याह दिया और अपने लिए से एक बड़ा बोझ उतारा। अब दुबारा वे उसके लिए क्या प्रयत्न करें? जब कन्या के माता-पिता की यह हासत हो तो कन्या के भ्रशुरात्मय वालों से यह आशा बुरासा मात्र है कि वे विधवा का पुनर्विवाह करेंगे। इस प्रकार विधवा का पुनर्विवाह बहुत अटिल एवं कठिन काम हो गया।

(५) शास्त्रीय बाधाएँ—इसका एक अन्य कारण शास्त्रीय प्रतिषेध भी था। विवाह के समय कन्या का दान किया जाता है। पत्नी बर पिता ने कन्या का बर को दान किया, बर का ही उस पर स्वामित्व है, वही उसका दान कर सकता है। किन्तु उसके मर जाने पर उस कन्या का कौन दान करे? बिना दान के विवाह कैसे हो सकता है? फिर विवाह के समय असमोक्षता आवश्यक है। विधवा के पुनर्विवाह के समय उसका गौत कौनसा माना जाय। वह पिता के गौत की समझी जाये अथवा पति के, प्राचीन शास्त्रों में इसका समाधान नहीं मिलता। गौत का अनिर्णय भी विधवा के विवाह में बाधक रहा होगा।

अतयोनि विधवाओं के विवाह का निषेध—१२०० ई० तक अतयोनि विधवाओं के पुनर्विवाह का अधिकार छिन चुका था, किन्तु अक्षयपोनि विधवाओं का विवाह संस्कार हो सकता था। शास्त्रकारों ने अब वह अधिकार भी छीनना शुरू किया। हम देख चुके हैं कि इसी समय से बहुत छोटी आयु के बालविवाह बहुत बढ़ गये थे। इसके साथ-साथ अब विधवाओं के पुनर्विवाह के अधिकार को छीनना हिन्दू जाति के लिए बहुत ही घातक सिद्ध हुआ। देवण नट्ट ने कहा है कि अक्षयपोनि के विवाह का जो विधान पुराने ग्रन्थों में मिलता है वह दूसरे युगों के लिए है।<sup>६</sup> कश्यप ने (स्मृ० च० सं० का०, पृ० २०) कहा

<sup>५</sup> हरिवत्स वेवालेकार—हिन्दू परिवार मीमांसा पृ० ४७४-४८१

<sup>६</sup> स्मृतिचन्द्रिका संस्कार काण्ड पृ० २२१—एवं च घाति संस्काराब्रूध्वमक्षययोः। पुनश्चाहपरानि तानि युवांतराभिप्रायासीति मन्तव्यम्। भित्ताइए लघु आश्व-

कि यदि कन्या का सम्मान हो गया है और विवाह होने से पहले उसका पति मर जाता है तो ऐसी कन्या कुलाश्रम है और उसके साथ विवाह नहीं करना चाहिए। कश्यप की यह उक्ति ऊपर उद्धृत वसिष्ठधर्मसूत्र व मनु आदि के सर्वथा प्रतिकूल एवं स्त्रियों के लिए श्राव्यन्वावर्ण्य थी। वाग्देवता कन्या के प्रति यह अमानुषिक कुरता थी। हिन्दू समाज ने इस आत्मघाती शास्त्रीय विधवा की अपनाया, किन्तु फिर भी मध्यकाल में अक्षतयौति कन्याओं के विवाह हुए। प्रसिद्ध राजा हमीरसिंह ने सरदार मालदेव की विधवा पुत्री से विवाह किया।

मध्यकाल में विधवाविवाह प्रचलित करने के यत्न

**रघुनन्दन तथा राजवल्लभ के प्रयास**—मध्यकाल में कई समझदार व्यक्तियों ने विधवा-विवाह के लिये की बुराई को दूर करना चाहा, किन्तु वे उसमें सफल नहीं हुए। बंगाल में प्रचलित हिन्दू कानून के प्रसिद्ध व्याख्याकार रघुनन्दन भट्टाचार्य (सन्यस-काल १५२०-७०) ने १६ वीं शती में अपनी विधवा कन्या का विवाह करने के लिए प्रयास से प्रबल प्रयत्न किया, किन्तु वह उसमें सफल नहीं हो सका। १८ वीं शती के मध्य में विक्रमपुर निवासी वैश्वनाथनरत्न राजा राजवल्लभ (१६९८-१७६३) अपनी नवपुत्री विधवा कन्या की वैधव्य गन्तव्य से बहुत ही व्यथित हुए। उन्होंने विधवा विवाह को प्रचलित करने का बहुत उद्योग किया। राजवल्लभ ने पूर्व और पश्चिम के अनेक पंडितों से यह व्यवस्था मंगायी कि विधवाविवाह शास्त्रविरुद्ध नहीं है। मकड़ीप के पंडितों ने उक्त व्यवस्था की स्वीकृति पाने के लिए राजवल्लभ ने वह व्यवस्थापत्र कई पंडितों के हाथों में दिया तथा राजा कृष्णचन्द्र की सभा में भेजा। बंगाल में ऐसा प्रवाद प्रसिद्ध है कि कृष्णचन्द्र ने अपनी सभा के पंडितों को एकान्त में बुलाकर उक्त व्यवस्था के विषय में उनकी सम्मति माँगी। पंडितों ने कहा कि यह व्यवस्था शास्त्रानुकूल है। मनु मुनिकर कृष्णचन्द्र ने डाह के मारे पंडितों को आदेश दिया कि "यह व्यवस्था शास्त्रानुकूल होने पर भी लौकिक व्यवहार के विरुद्ध है, इस कथन से राजवल्लभ को निराश करना होगा। वैश्वनाथ का एक आदमी चिरकाल से अप्रचलित व्यवहार को प्रचलित कर दे, और इस प्रकार यश का सम्पादन करे, यह मुझे सर्वथा असह्य है। किन्तु इस समय राजवल्लभ का बड़ा दयवधा है। इस कारण झुलमबुल्ला मैं उसके विरुद्ध कार्यवाई करना मसन्द नहीं करता। उसके सन्तोष के लिए मैं आप से व्यवस्थापत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए बहुत कुछ अनुरोध करूँगा। परन्तु आप जोश किसी तरह न मानियेगा। आप यही कहियेगा कि महाराज किसी के भी अनुरोध पर इस व्यवस्था पर हस्ताक्षर करके हम पाप के भागी नहीं बनेंगे।"

सायत २१/१४, युगान्तरे स धर्मः स्यात् कलौ निन्द इति स्मृतः ।

अगले दिन राजवत्सलभ के पड़िन जब मया में आये उस समय राजा कुण्जचन्द्र ने नदिया के पड़िनो से कहा कि राजवत्सलभ ने जो व्यवस्था भेजी है, वह अवश्य ही मान्य-सम्मत होगी। यदि वह शास्त्रसम्मत न हो, तो भी जब उन्होंने अनुरोध किया है तो आप लोगों को स्वीकार करना ही पड़ेगा। पड़िनो में पहले मित्राचारी हुई मन्दाह के अन्तर्गत अनेक आपत्तिवा उदासी और हम्तादार करना स्वीकार नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि कुण्जचन्द्र की ईर्ष्या के कारण यमान में पड़िनो की आवश्यकता द्वारा विधवाविवाह प्रचलित नहीं हो सका।<sup>5</sup>

**जयसिंह व परशुराम भाऊ के प्रयत्न—**यह दो आन्तरिक गृह युद्ध की वजह से कि मुगल एवं मराठा युग में कई बार स्थितियों की विधवा विवाह के प्रचलन में बाधा डाली। अजपुर के राजा जयसिंह द्वितीय (१६६०-१७८३) ने अपने राज्य में विधवा विवाह चलाना चाहा। यदि इसकी विधवा माना उनके इस प्रयत्न में बाधक न बनती तो वह प्रयत्न अवश्यमेव सफल हो जाता। राजा जयसिंह की माता ने अपने पुत्र को विधवा विवाह के विरुद्ध ताता सारते हुए कहा कि यदि तु राज्य में विधवा विवाह शुरू करना चाहता है तो सबसे पहले मेरी शादी कर, इसके बाद ही किसी विधवा की शादी हो सकती है। यह किजना क्रूर उपहास था? इसमें भी अधिक भज्ज उदाहरण प्रसिद्ध मराठा सेनापति परशुराम भाऊ गटवर्धन (१७३६-१७६६) की कन्या था है। उसने अपनी कन्या दुर्गाबाई का विवाह बहुत छोटी उमर में (कन्या की निश्चित आयु में बहुत मरभेद है। कुछ लोग उसकी आयु ८ वर्ष बनाने है और दूसरे ६ वर्ष) जाँगी कुल के एक बालक के साथ किया। विवाह की विधि एवं छुटियों के पूरा होने के पहले ही घर का विधुषिका पर्व में देहान्त हो गया। परशुराम भाऊ का अपनी कन्या के विधवा हो जाने से भारी धक्का लगा, उसने पेशवा दरबार के सेनापति पद से त्यागपत्र दे दिया। महागण्डू का राज्य उन दिनों बड़ी सकटपूर्ण परिस्थितियों में में गुजर रहा था। पेशवा ऐसे समय परशुराम भाऊ जैसे कुशल एवं अनुभवी सेनापति को नहीं छोड़ सकता था। उसने भाऊ को विश्वास दिलाया कि वह उसके इस महान् दुःख को दूर करने का पूरा प्रयत्न करेगा। पेशवा के शकाराचार्य से इस विषय में सम्मति मिली। शकाराचार्य का भाऊ में कुछ वैयक्तिक झगडा था। शकाराचार्य ने कहा कि वह यन्त्र से बचकर भाऊ का सुखी करने के लिए कोई सलाह नहीं दे सकता। पेशवा के दरबार ने काजी के पड़िनो में उपस्थित मिली। इन पड़िनो ने कन्या की अस्तित्वोत्ति मन्त्रा तथा यह सोचा कि यदि भाऊ तार्क-जनिक कार्यों से हट गया तो ब्राह्मणों की प्रभुता घट जायेगी, भाऊ को इस तरह उपेक्षित बना कर अपने प्रभाव की खूब वृद्धि की जा सकती है। इन दोनों बातों को दृष्टि में रखते हुए काजी के पड़िनो ने दुर्गाबाई के पुनर्विवाह के पक्ष में व्यवस्था दी। इस व्यवस्था पर शकारा-

<sup>5</sup> बन्धीचरण सेन—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

नार्य भी शान्त हो गया और पुनः के पंडितों ने भी दक्षिणकेनरी पराशुराम से खुल्लम-खुल्ला विरोध करना उचित न समझा। किन्तु विधवा के कुण्ठवन्द की राजसभा के पंडितों के समान पुनः के धर्मध्वजी भी यह अधर्म का कार्य नहीं देख सकते थे। उन्होंने भाऊ की धर्मपत्नी के आगे विधवा विवाह के महापाप का सफ़ीक चित्र खींचा, शास्त्रों और पुराणों की दुहाई दी। परिणाम यह हुआ कि पराशुराम भाऊ जब सब जास्तीम विजय-याधाओं का निराकरण कर अपनी कन्या के पुनर्विवाह के लिए सैवार हुआ, तब उसकी पत्नी अड़ पड़ी। उसने कहा कि अपनी कन्या के वैधव्य के दुःख को मैं देख सकती हूँ, किन्तु इस मये अधर्म को नहीं देख सकती। भाऊ ने हलास और हीरान् होंकर कहा कि मैं तुम्हारे सुख के लिए, कन्या का विवाह कर रहा था, तूम इसमें सुखी नहीं हो तो फिर मैं यह विवाह किसके लिए कराऊँ? धार्मिक श्रद्धा से जड़ हुई माता अपनी विधवा लड़की के पुनर्विवाह का विरोध करे, इससे अधिक स्नेहसम कुरता और क्या हो सकती है।

### विधवा के कर्तव्य

मध्य युग में विधवा विवाह के निषेध के साथ-साथ विधवा के कर्तव्यों एवं दायित्वों में भी वृद्धि हुई। आदि-मुनिवों द्वारा भी न पाला जाने वाला भटिन ब्रह्मचर्य का यत्न विधवाओं के लिए मनु (५।१५७) के समय में ही आदर्श समझा जाने लगा था। कात्यायन और बृहस्पति ने भी इसी आदर्श का समर्थन किया। बृह्म हारीत ने (१।१।२०५-१०) उसे बाल सजाने, पान बनाने, मुगन्धित द्रव्य, फूल और अलंकार आदि का व्यवहार करने और दिन में दो बार खाने का निषेध किया। उसे सफ़ेद वस्त्र पहनने चाहिए, क्रिक्रोध और क्रिमेन्द्रिय रहना चाहिए, मालाकियां नहीं करनी चाहिए, रात को जटाई अथवा जमीन पर सोना चाहिए। अन्य स्मृतियों में भी यही बातें बृह्मरायी गयी है। स्कन्द पुराण (काशी खण्ड ४।७१-१०६, ३ ब्रह्मरूप्य ७।६७-४-१) ने विधवाओं के विषय में दो नयी व्यवस्थाएँ बचायी। पहली तो यह भी कि विधवा सबसे बड़ा अमंगल है, उसके दर्शन से कभी सिद्धि नहीं होती। विधवा माता का आजीविक साँप के विष के तुल्य है, मुँडिमान् उसे पहन न करे। इस व्यवस्था का परिणाम यह हुआ कि विधवा को सब सांगीतिक उत्सवों में से अछूत की तरह पुष्कम्भ कर दिया गया। इसका चरम विकास हमें बिहार तथा अन्य स्वानों की कुछ जातियों में विधामी पड़ता है। इन जातियों में यह प्रथा है कि शादी-ब्याह आदि के शुभ अवसरों पर विधवाओं को ताते में बन्द कर दिया जाता है।

स्कन्द पुराण द्वारा प्रतिपादित दूसरी नयी कठोरता यह भी कि विधवा अपना सिर मुँडवाये। सिर मुँडवाने के लिए बहूत विचित्र गुत्ति दी गयी है। विधवा यदि बालों को चेनी में बाँधेगी तो इससे उसका पति बँध जायेगा, इसलिए उसे सदा सिर

मुँड़वा कर रखना चाहिए।<sup>१०</sup> बम्बई हाईकोर्ट ने लक्ष्मीबाई घनाम रामचन्द्र के मूकदूतों में इस श्लोक के प्रामाण्य में सन्देह प्रकट किया है। इसमें कोई शक नहीं कि यह प्रथा उत्तर मध्ययुग में शुरू हुई। पूर्व मध्ययुग के प्रारम्भ में जाण के वर्णानुसार विधवा सिर नहीं मुँड़वाती थी, किन्तु बालों को विशेष प्रकार से बाँधे रखती थी (हर्बेनरिन, अण्डर्यास ५)। किसी व्यक्ति की मृत्यु पर उनके आत्मीय एक बार और कराते हैं। मायब इसी तरह विधवा भी और कराती होंगी। बाद में विधवा के लिये संग्राम्यी भी तरह अनेक कठोर नियम पालने का विधान किया गया। संग्राम्यी और कराते थे, एसविग विधवाओं का भी और होने लगा। पंडितों ने इस विधि का वैदिक सिद्ध करने का पूरा प्रयत्न किया है। किन्तु इसके लिए स्कन्दपुराण से पहले का कोई सन्तोषजनक प्रमाण नहीं दूँदा जा सगा।<sup>११</sup> १४ वीं शती से विधवाओं के सिर मुँड़वाने की पद्धति प्रचलित हुई है। इसका अधिक प्रचार यक्षिण और बंगाल में है। विधवाएँ जब तक सिर नहीं मुँड़वा लेतीं, तब तक उन्हें देवदलन का अधिकार नहीं मिलता और न ही कोई कट्टर व्यक्ति उनसे छुआ हुआ जल या जल ग्रहण करता है। विधवाओं के लिए यह अत्यन्त अपमानजनक और सदा उनके घावों को हुरा करने वाली पद्धति है। महाराष्ट्र में गत शती की अन्तिम दशाब्दी में श्री बापरकर ने इस प्रथा के विरुद्ध आंदोलन किया। उनके लेखों से मराठा समाज में हलचल मच गयी। जब यह प्रथा धीरे-धीरे मिट रही है, किन्तु कट्टरपन्थी इसे बचाये रखने का पूरा प्रयत्न करते हैं। कुछ वर्ष पहले पंढरपुर के पुजारियों ने पिठोवा की मूर्ति के चरणों में प्रणाम करने से एक विधवा ब्राह्मणों को इसलिए रोका कि उसका बाल मुँड़े हुए नहीं थे। इस पर यह मामला अदालत में गया और अदालत ने विधवा के गला में कैंतला दिया।

### आधुनिक युग में विधवाविवाह

**विधवाओं की संख्या**—वर्तमान युग में हिन्दू समाज में विधवाओं की संख्या बहुत अधिक एवं अतीव दुष्टि से अतीव हानिकार है। १९३१ की जनगणना के अनुसार भारत में ५४,८६,६६० विधवाएँ थी। हिन्दुओं में एक हजार स्त्रियों के पीछे १६९ विधवाएँ हैं। इनमें से एक चौथाई विधवाओं की आयु २० वर्ष से कम है। १९३१ की जनगणना में १ वर्ष से कम आयु की दुधमुँड़ी विधवाओं की संख्या १५१५ थी। १ से २, २ से ३, ३ से ४ वर्ष की नन्हीं विधवाओं की संख्या क्रमशः १७८५, ३४८५ और ६०७६ थी। ५ से १० व १० से १५ वर्ष की १०५४८२ तथा १८३३९ आत्मिकाएँ वैधव्य का कुछ भोग

<sup>१०</sup> स्कन्द पुराण काशी खण्ड ४।७४—

विधवाकरोकथ्यो मत्तु'बन्धाय जापते ।

शिरसो धपनं तस्मात् कार्यं विधवाया सदा ॥

<sup>११</sup> बाणें—हिस्टरी ऑफ धर्मशास्त्र, खण्ड २, भाग १, पृ० ३३२ ।

रही थी। जो आयु खोने-कूट की होती है, जिस आयु में अभी पति-पत्नी सम्बन्ध का ज्ञान नहीं होता, बिन आयु तक अन्य देशों की अधिकांश बायलिकाओं का विवाह नहीं होता, उस आयु में हजारों की संख्या में हमारी कन्याएँ विधवा हो जाती हैं और उन्हें धर्म के नाम पर जीवन भर वैधव्य का जीवन बिताने के लिए बाधित किया जाता है। जब नवीन परिस्थितियों में विवाह की आयु उँली हो रही है, इस कारण बाल विधवाओं की संख्या घटने लगी है।

**ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयत्न—**४ दिगम्बर १८२६ का लार्ड विलियम बैंटिक की आज्ञा में भारत में मती प्रथा रद्द कर दी गयी। इस आज्ञा में तबदेग्यों जलारी आने वाली गर्तियों को भिता की आज्ञा भुल गयी, किन्तु इसके स्थान पर आजीवन निरन्तर मुसलमानों की बाधित वैधव्य की अग्नि प्रज्वलित हो उठी। मती प्रथा में स्त्री थोड़े समय में ही कलफन समाप्त हो जाती थी, किन्तु वैधव्य-वाहि उसे जीवन भर तिल-तिल करके कनाती रहती है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बाल्यकाल में यह देखा था कि उनके गुरु गम्भुषचन्द्र बाधमणि ने बुढ़ापे में एक बालिका के साथ विवाह किया। वे मृत्यु के गर्त में पांच पटकामे बैठे थे, थोड़े दिनों में बालिका को विधवा बनाकर बल बसे। विद्यासागर के बाल हृदय को इस घटना से सहारा धक्का लगा। उनसे पहले घघमि कृष्णसागर के एक राजा ने सङ्घीप के पंडितों से विधवा विवाह की व्यवस्था लेने का प्रयत्न किया, मील कमल बगर्जों ने इसे प्रशंसित किया, तथापि इस आन्दोलन को ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को तरबूतबोधिनी में आंगरेखनी भाषा में लिखे गये पत्रों से ही बल मिला। विधवा विवाह को शास्त्रसम्मत सिद्ध करने के लिए, उन्होंने शास्त्रों का सहारा मन्थन किया। जिस दिन उन्हें विधवा-विवाह विषयक पन्नाचर संहिता का प्रमाण मिला और उसके अर्थ की ठीक संगति लगी, उस दिन रात भर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर उसकी व्याख्या लिखते रहे। उन्हें यह भूत गया कि कितनी रात बीत चुकी है। सवेरे की ठण्डी हवा और धूप निकलने पर जब उनका लेख पूर्ण हुआ, तभी उन्होंने अपनी लेखनी को बिदास दिया। १८५३ में विद्यासागर ने माता-पिता की अनुमति में अपना विधवा विवाह विषयक कान्तिकारी ग्रन्थ प्रकाशित किया। १८५५ में विरोधियों द्वारा उठाये गये आरोपों का परिहार करते हुए उन्होंने उक्त ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण निकाला। बंगाल का हिन्दू समाज इस ग्रन्थ में अत्यन्त विशुद्ध हो उठा। विद्यासागर को नास्तिक, किस्तान आदि उपाधियों से विभूषित किया गया। गालियों की धुँव बौछार की गयी। उनको मारने के भी कुछ असफल प्रयत्न हुए, किन्तु विद्यासागर इन बातों से अरु भी नहीं घबरामे। विधवा विवाह को शास्त्रसम्मत सिद्ध करने के बाद उन्होंने इसे प्रचलित करने का प्रयत्न किया। किन्तु विधवा विवाह के प्रचलन में सबसे बड़ी अड़चन यह थी कि विधवा के पुनर्विवाह के बाद उसके बच्चे तत्कालीन कानून के अनुसार पैतृक सम्पत्ति के अधिकारी नहीं समझे जा सकते थे। अब विद्यासागर ने इस अड़चन को दूर करने का प्रयत्न किया।



**विधवा पुनर्विवाह कानून**—इस कानूनी बाधा को दूर करने के लिए बंगाल के तत्कालीन प्रतिष्ठित एवं प्रमुख सञ्जनों के दस्तावेजों के साथ भारत सरकार के पास एक आवेदन-पत्र भेजा गया। इसमें विधवा विवाह के निषेध को निन्दित, अस्वाभाविक तथा हिन्दू शास्त्रों के सर्वथा प्रतिकूल बताया गया। यह प्रार्थना की गयी थी कि वर्तमान हिन्दू कानून के अनुसार विधवा विवाहों में उत्पन्न बच्चों को वैधक सम्पत्ति में वंचित किया जा सकता है, अतः सरकार को यह चाहिए कि उस देश को दूर करने के लिए एक कानून बना दे, इस कानून द्वारा विधवा-विवाहों पर वैध स्वीकार कर दिया जाय। भारत सरकार के पास इस तरह के अनेक आवेदन-पत्र भेजे गये। कानून बनाने के लिए प्रयत्न आरम्भित हुआ। श्री ईश्वरचन्द्र के विधवा विवाह सम्बन्धी मीत हर जगह मायें जान लीं। जाल्मिपुर के जुलाहों ने बहुमूल्य कपड़ों के किलारों में विधवा विवाह के माने बलन्द खूब सफा किया। विरोधियों ने इस आन्दोलन को असफल बनाने में कोई कोश-कसर बाकी नहीं रखी। उन्होंने सरकार के पास कानून के विरोध में हजारों व्यक्तियों से हस्ताक्षर करवाकर अनेक आवेदन-पत्र भेजे। भारत सरकार के कानून मन्त्र्य मर जे. पी. ग्राष्ट ने अपनी सत्ता में बताया था कि बिल के पास में ५००० व्यक्तियों के हस्ताक्षरों के साथ २५ आवेदन-पत्र आये, किन्तु विपक्ष में ५०-६० हजार व्यक्तियों के हस्ताक्षर वाले ४० आवेदन पत्र थे। सरकार ने काफी के पंडितों से सम्मति मांगी। पंडितों ने अपनी सम्मति विधवा विवाह के पक्ष में दी। अन्त में ईश्वरचन्द्र विदासावर का यह आन्दोलन सफल हुआ और २५ जुलाई १८५६ को विधवा पुनर्विवाह कानून (Widow Remarriage Act) पास हो गया।

इस बिल को उपस्थित करते हुए भारत सरकार के कानून मन्त्र्य ग्राष्ट ने कहा था कि सती प्रथा को कानून द्वारा बन्द किया जा चुका है, उसके बाद विधवा विवाह की अनुमति देने वाला कानून अवश्य बनना चाहिए, यदि उन्हें यह निश्चय हो जाय कि इस कानून के पास होते से एक भी बालिका बाधित ब्रह्मचर्य के अग्रह ग्राष्ट से बच जायगी, तो एक बालिका के लिए भी इस कानून का पास करना चाहिए। यदि यह विश्वास हो जाये कि यह कानून पास होने पर भी सर्वथा निरूपयोगी ही रहेगा तो भी अंग्रेजों के गौरव के लिए यह कानून पास होना उचित है।

**कानून का स्वरूप**—यह आठ धाराओं का एक छोटा-सा कानून है। इसकी भूमिका में कहा गया है कि इस कानून का उद्देश्य विधवा-विवाह को वैध बनाना है। अतः सविध्य में कोई विधवा-विवाह या उससे उत्पन्न सन्तान नाजायज नहीं समझी जायेगी (धारा १)। पुनर्विवाह करने वाली विधवा का अपने पहले पति की सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं होगा। पुनर्विवाह के बाद पहले पति के बच्चों के संरक्षण का अधिकार विधवा से छीना जा सकता है, बसते कि पति उसे वसीयत द्वारा यह अधिकार न दे गया हो। सन्तानरहित विधवा यदि इस कानून के पास होने से पहले जायदाद पाने

की अधिकारिणी नहीं थी तो अब भी वह उस ज्ञानपाद की पाने की हकदार नहीं होती। साधारण विवाह को अत्यन्त बनाने के लिए जो विधियाँ हैं, वही पुनर्विवाह को भी लागू बनायेगी (धारा ६) नाबालिग विधवा अपने पिता या अन्य सम्बन्धियों से पूछ कर ही पुनर्विवाह कर सकती है (धारा ७)।

**कानून की कमियाँ**—उस कानून की दूसरी धारा विशेष महत्व रखती है। इसके अनुसार विधवा पुनर्विवाह करने पर पति की सम्पत्ति में अपना स्वत्व खाँ देती है। इस धारा ने इस कानून के उद्देश्य को बहुत कुछ विकल कर दिया है। विधवा के लिए पति के मर जाने पर उसकी सम्पत्ति ही कुछ अवलम्ब हो सकती है और वह सम्पत्ति उगका पाम नहीं तक रह सकती है जब तक वह पुनर्विवाह नहीं करती। अतः इस धारा का प्रभाव यह हुआ है कि इस कानून ने विधवा-विवाह को बहुत कम प्रोत्साहन दिया है।

**बंगाल में विधवा विवाह आन्दोलन**—विधवा विवाह की कानूनी अड़चन दूर होने के बाद विधवा-विवाहों के लिए प्रयत्न शुरू हुए।<sup>१</sup> उपर्युक्त कानून पास होने के ३ महीने के भीतर ही ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने श्रीरामचन्द्र वर्मा का एक विधवा के साथ ७ दिसम्बर १८२६ को बंगाल में पहला विवाह कराया। इस विवाह को देखने के लिए उनकी भीड़ हुई कि पवित्र का प्रसन्न करमाया। इसके बाद अनेक विधवा-विवाह हुए। विद्यासागर उन विवाहों में बहुत उत्साह से भाग लेते थे। उनके पुत्र ने भी विधवा-विवाह किया। उन्होंने अपने स्वयं से १०० से अधिक विधवा-विवाह कराये और कन्याओं को आभूषणों से अलंकृत करके दान करते-करते वे स्वयं एवं निर्धन हो गये। उनके अन्तिम दिन बड़ी दरिद्रता में गटे, किन्तु विद्यासागर को अपनी दरिद्रता का दर्दना कुछ नहीं था जितना अपने देववासियों की मूर्खता और जड़ता का। कानून द्वारा विधवा-विवाह को वैध हो जाने पर भी लोकाचार एवं प्राचीन कठिनायियों में पड़ने के कारण लोगों ने विधवा विवाह नहीं किये। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को इससे नमो-स्तक वेदना होती थी। वह वेदना उनकी विधवा-विवाह विषयक पुस्तक के अन्तिम भाग में भरी-भोति व्यक्त हुई है।

इसमें उन्होंने यह लिखा था—“विरसंभित कुसंस्कारों के बशीभूत एवं देशाचार के दास भारतीयों की बुद्धि और धर्म प्रभृति ऐसी कसुपित हो गयी है कि अभागी विधवाओं की दुर्दशा पर उनके हृदयों में कारण का संचार होता कठिन है। देश में व्यभिचार और भ्रूणहत्या का प्रबल प्रवाह देख कर भी तुम्हारे हृदयों में उस पर घृणा होना असम्भव है। तुम प्राणघ्यारी कन्याओं को वैधव्य की बाग में जलाने के लिए राजी हो, वे अजेय इन्द्रियों के बशीभूत हो व्यभिचार दोष से दूषित हों तो उसमें तुम्हें लज्जा

१. श्रीरामचन्द्र वर्मा के ‘ईश्वरचन्द्र विद्यासागर’ में इनका विस्तृत वर्णन दिया गया है।

नहीं आयेगी। जिस देश के पुरुषों में दया नहीं है, धर्म नहीं है, न्याय-अन्याय का विचार नहीं है, हिंसाहित की समझ नहीं है, जो लोकाचार की रथा की प्रधानतासे और परम धर्म मानते हैं, हे ईश्वर, अपना स्त्रियों को तेरे देश में पैदा ही मत कर।" हा अबलाओं, तुम किस वाप के कारण भ्रातृवर्ष में जन्म ग्रहण करती हो।" १०६१ में अपने प्रयत्नों में असफल एवं निराश होकर ईश्वरभक्त विद्यानाथ ने अपने भौतिक जीवन को समाप्त किया। इसके ३५ वर्ष बाद बंगाल के मूलने महापुरुष सर गुरुदेवनाथ बनर्जी ने अपनी आत्मकथा में ईश्वरभक्त के प्रयत्नों की असफलता सर्वशरत् करने हुए यह लिखा कि हिन्दू विधवा की स्थिति आज १८२४ में भी यही है जो आज में ५० वर्ष पहले भी।

भारत के अन्य प्रांतों में भी ईश्वरभक्त विद्यानाथ की भाँति अनेक समाजसुधारकों ने विधवा विवाह की प्रथा को प्रभावित करने का भारीभरपूर प्रयास किया। दूसरे महाराष्ट्र के विष्णु परजुराम पंडित (१०२३-३६), मंगल हरिदेवमुख, महादेव मोहन रामाजी, काशी राजजत भी व्हागमजी मन्नाबारी के नाम उल्लेखनीय हैं। उत्तर भारत में सशिव दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने तथा सर गंगाधर की विधवा-विवाह सहायक सभा ने इस विषय में बहुत कार्य किया है। फिर भी अभी तक प्राचीन ऋषियों एवं विद्वानों के कारण उपर्युक्त कानून बन जाने पर भी विधवाओं के पुनर्विवाह समाज में बहुत कम होते हैं, उनकी दशा पहले की भाँति दयनीय है। एक आधुनिक महिला के शब्दों में—“विधवा का समाज में कोई स्थान नहीं है। पुराने जमाने में वह भोगिता रूप से ली जाती हुआ करती थी, अब वह सनातनशासनिक रूप से ली जाती है। आज भी आधुनिक परिवारों में वह विवाहादि के आसौद-असौद वाले पारिवारिक संस्कारों से बहिष्कृत की जाती है; पति के घर में एक छोटा तमझी जानी है, उससे लौकर जैसा व्यवहार किया जाता है। उसे कुछ महानुभूति मिलती है, किन्तु वह अधिक नहीं होती है। उसे प्रामः पति की मृत्यु का कारण समझा जाता है।”<sup>१०</sup> हिन्दू परिवार में उस समय तक विधवा की समस्या बनी रहेगी जब तक विधवा के सम्बन्ध में प्रचलित वर्तमान रुढ़ियों और सन्धविश्वासों का उन्मूलन नहीं हो जाता है।

## सती प्रथा तथा नियोग

### ऐतिहासिक विकास की तीन अवस्थाएँ

आज से १५० वर्ष पहले सती<sup>१</sup> प्रथा हिन्दू समाज की सर्वमान्य व्यवस्था थी। पतिव्रता हिन्दू नारियाँ पति की मृत्यु पर उसकी धिता पर उसके साथ जलने में बड़े गौरव और गर्व का अनुभव करती थीं, इसे उस समय सनातन काल से चली आने वाली व्यवस्था समझा जाता था। किन्तु यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य नहीं है। वैदिक युग में हमें इस प्रथा की सत्ता का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। वस्तुतः हिन्दू समाज में इसका विकास कई कमिक वशाओं में से होकर गुजरा है। पहली वशा वैदिक युग से ३०० ई० पू० तक की है। इस समय भारत में इसकी सत्ता के कोई प्रमाण नहीं उपलब्ध होते हैं। दूसरी वशा ३०० ई० पू० से ७०० ई० तक की है। इस समय इसका विकास शरी-शरी होने लगा, पहले यह प्रथा अश्विनियों में प्रचलित हुई, समाज के अन्य वर्गों ने शक्तिशाली से इसे ग्रहण किया। इस समय कुछ विचारकों ने सती प्रथा का विरोध भी किया। तीसरी वशा ७०० से १५२६ ई० तक थी। इस समय धर्मशास्त्र-कार इसका प्रयत्न समर्थन करने लगे, सती प्रथा का हिन्दू समाज में व्यापक रूप से प्रचार हुआ, कई बार स्त्रियों की जबरबस्ती धिता पर चढ़ने के लिए बाधित किया जाने लगा। कुछ विशेष कारणों से बंगाल में इसका विशेष विकास हुआ। यहाँ विभिन्न युगों में सती प्रथा के विकास पर प्रकाश डाला जायेगा।

<sup>१</sup> सती का मूल शब्दार्थ उत्तम स्त्री है। मध्यकाल में सती का सर्वोत्तम धर्म पति की धिता पर जलना समझा गया, अतः इस प्रकार देहत्याग करने वाली स्त्री को सती कहा जाने लगा। इसकी संस्कृत में सहमरण, सहगमन या ज्वररोहण (मृतपति की धिता पर चढ़ना) कहा जाता है, किन्तु अनुमरण तब होता है जब पति किसी अन्य स्थान पर सरता है और वहाँ जला दिया जाता है और जिधवा उसके किसी धित्त दादुका आदि के साथ अथवा उसकी मरन के साथ पुनर्क रूप से सती होती है (अपराध, पृ० १११)।

वैदिक युग में सती प्रथा का अभाव

विशाल वैदिक वाङ्मय में सती प्रथा का कोई संकेत नहीं है। यह साहित्य युद्ध के आदिमार्ग के समय—६ टी श० ई० पू० तक विकसित हो चुका था। इसके बाद विकसित होने वाले गुरुसूत्रों (६०० ई० पू० से ३०० ई० पू०) में विभिन्न मंत्रकारों तथा विधिविधानों का विस्तृत उल्लेख है। यदि सती प्रथा उस समय प्रचलित होती तो गुरुसूत्रों के मरणोत्तर विधि-विधानों में इसका अवग्रह उल्लेख होता, किन्तु हमें कोई ऐसा वर्णन नहीं मिलता। अर्थात् हमें प्रसिद्ध आश्वलायन गृह्यसूत्र (४।२।१८) की मरणोत्तर प्रेतविधि में यह व्यवस्था मिलती है कि विधवा स्त्री को पति की चिता से उसका पवित्रस्थानीय देवर, शिष्य या ब्रह्म नौकर उठाएँ, यह आज्ञा प्रदत्त की गयी है कि विधवा और उसके संबंधी गृही एवं समूह जीवन व्यतीत करें। अथर्ववेद (१८।२।१) के प्रेतविधि के मंत्रों में विधवा को लिए, इसी प्रकार से धन-सम्पत्ति और सन्तान की प्रार्थना की गयी है।

पिछली शताब्दी में जब राजा रामममोहन राय ने सती प्रथा के उन्मूलन के लिए प्रबल आन्दोलन किया, तो सती प्रथा के समर्थक ऋद्धिवादियों ने मुख्यतः ये ही प्रमाणों के आधार पर इसे वैदिक व्यवस्था सिद्ध करने का प्रयत्न किया। किन्तु ये दोनों प्रमाण विश्वसनीय नहीं प्रतीत होते हैं। पहला प्रमाण ऋग्वेद के दशमस्कन्ध (१०।१८।३) का है। इसके अठारहवें सूक्त के मालवे मंत्र में कहा गया है कि जब का शिवा पर अज्ञान से पहले सधवा नारिषा उस घर की स्वामिनी, इसमें सती प्रथा का कोई वर्णन नहीं है। किन्तु इस मंत्र के अन्त में 'आरोहन्तु जनयो धोनिमये' का पाठ है, सधया में अज्ञान के धर्मशास्त्री दधुनन्दन ने इसमें 'अग्ने' के स्थान पर 'अग्ने' का पाठ माना तथा इस मंत्र के अतिपूर्ण पाठ के आधार पर विधवा स्त्री द्वारा पति की चिता पर आरोहण के लोकाचार की वैदिक विधि सिद्ध करने का प्रयत्न किया।<sup>२</sup> वस्तुतः इस मंत्र में अग्नि शब्द का उल्लेख ठीक नहीं है और यह मंत्र वैदिक युग में सती प्रथा के प्रचलन को सिद्ध नहीं कर सकता है। दूसरा प्रमाण नारामणीय तैत्तिरीय उपनिषद् के ८४ वे अनुशाक में और औष्यशाखा की संहिता से उद्धृत की गयी एक ऐसी प्रार्थना है, जिसमें विधवा अग्नि-देवता से यह प्रार्थना करती है कि वह पति की मृत्यु के बाद उसका अनुगमन करते हुए चिता पर बढ़ने अथवा पत्यनुगमनवत् का पावन करना चाहती है, अग्नि देवता उसे इस व्रत का पावन करने की शक्ति प्रदान करें।<sup>३</sup> किन्तु नारामणीय तैत्तिरीय उपनिषद्

<sup>२</sup> ऋ० १०।१८।३ इमा नारीरविधवाः सपत्नीराजनेन सपिषा सं विशन्तु।

अनध्वषो अनमीषाः सुरस्ता आरोहन्तु जनयो धोनिमये ॥

इसमें अग्ने ही शुरु पाठ है, अग्ने नहीं।

<sup>३</sup> अग्ने व्रतानां व्रतपतिरसि पत्यनुगमनवत् करिष्यामि तच्छक्यं तन्मे राध्वताम्।

वैदिक युग का नहीं, अपितु उसके बहुत बाद का लिखा गया ग्रन्थ है। हमें वाजकल औक्ष साखा नहीं मिलती है। अतः इस वचन के आधार पर वैदिक युग में सती प्रथा की सत्ता सिद्ध करना मुक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता है।

वैदिक युग में इस प्रथा का न पाया जाना वस्तुतः कुछ आश्चर्यजनक है। सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् थाडर ने यह बताया है कि पुरानी आर्य जातियों में सती प्रथा का प्रचलन था।<sup>४</sup> किन्तु भारत के आर्यों में तथा उनके वैदिक साहित्य में इस प्रथा की सत्ता सूचित करने वाले कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होते हैं। संभवतः इसका कारण वैदिक धर्म और संस्कृति का उत्कृष्टतम विकास था। श्री अल्तेकर के शब्दों में वैदिक आर्यों ने इस समय तक ऐसे उदात्त दृष्टिकोण का विकास कर लिया था कि वे सती

- ४ थाडर—प्रीहिस्टोरिक एण्डीबिबटींग ऑफ़ दी आर्यन पीपल्स, (१८६०) पृ० ३६१; बैस्टरमार्क—ऑरिजिन एण्ड डेवलपमेंट ऑफ़ मारल आइडियाज (१६०६) खण्ड १, पृ० ४७२-४७६, पेन्जर—ओशन ऑफ़ स्टोरी, खण्ड ४, पृ० २५५-२५५। इन ग्रंथों में किये हुए उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि इस प्रथा का प्रसार प्राचीन काल में यूरोप तथा एशिया के विभिन्न देशों में था। तीसरी से छठी सताब्दी के बीच में मोरोप में फैलने वाली द्यूटानिक जातियाँ उसका अनुसरण करती थीं। थिम से स्केण्डेनवियन तथा राएल्लन ने स्लाव जातियों में इस प्रथा के उदाहरण किये हैं। हिराडोटस ने ग्रीस की थ्रेसियन जातियों के बारे में लिखा है कि पति की मृत्यु पर उसकी स्त्रियों में स्वर्ण होती थी कि कौनसी स्त्री उसकी प्रियतम पत्नी है ताकि पति की समाधि पर उसे मारा जा सके। हिराडोटस (४७७) ने सीथियन या शक राजाओं के एक रिवाज का उल्लेख करते हुए कहा है कि इनकी मृत्यु पर इनकी समाधि पर परलोक में जीवन के लिए आवश्यक इनकी स्त्रियों, बौकरों तथा घोड़ों को मारा जाता था। मोनियर विलियम्स (इंडियन विजडम, पृ० २२५ की पाठ टिप्पणी) ने कहा है कि भारत के हिन्दुओं में यह प्रथा मध्य एशिया के शकों के सम्पर्क से आयी। प्राचीन बिली लोगों में इस प्रथा की सत्ता भीन्स में अभिन हेतेप द्वितीय की समाधि में प्राप्त अनेक स्त्रियों के अवशेषों से सूचित होती है। यहां १८ वें राजवंश के समय में राता की प्रिय स्त्रियाँ या तो स्वयमेव आत्महत्या करती थीं, या उन्हें गला घोटकर या जह्र देकर मारा जाता था ताकि वे परलोक में पति के पास पहुँचें और उसकी सेवा करें। डीपूट ने लिखा है कि चीन में विधवा के पुनर्विवाह को बुरा समझा जाता था, पति की मृत्यु पर आत्महत्या करने वाली स्त्रियों के स्मारक सम्राट के आदेश से बनाये जाते थे। फ्राफर्ड ने लिखा है कि बालि द्वीप में एक राजा के मरने पर उसकी सब स्त्रियाँ और रत्नों उसके साथ सती होती हैं, कई बार इनकी संख्या सौ से ऊपर पहुँच जाती है।

प्रथा को बर्बर समझने लगे थे। इसके अतिरिक्त आकांक्षा होने के कारण भारत में उनकी अल्पसंख्या थी, अपना राजनीतिक प्रभुत्व सुदृढ़ करने के लिए अपनी जनसंख्या बढ़ाना उनके लिए अति आवश्यक था। इस दृष्टि में विधवाओं को जलाने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा था कि विधवाओं को जीवित रखा जाय, पुनर्विवाह तथा नियोग द्वारा उनमें सन्तानोत्पादन कराकर जनसंख्या में वृद्धि की जाय।<sup>४</sup>

वैदिक साहित्य के बाद विकसित होने वाले बौद्ध साहित्य में हमें मनीप्रथा का एक प्रोत्तेजक नहीं मिलता है। इसके बाद मेगस्थनीज और कौटिल्य ने भी इसका कोई वर्णन नहीं किया है। धर्म सूत्र तथा मनु, याज्ञवल्क्य आदि आरंभिक स्मृतिकार मनीप्रथा का कोई उल्लेख नहीं करते हैं।<sup>५</sup>

### सती प्रथा की पहली घटना

भारत में सती प्रथा का संभवतः पहला ऐतिहासिक उल्लेख ३१६ ई० पू० की एक घटना में मिलता है। यह यूनानी सेनापति एम्बेडोमोनस के विरुद्ध लड़ने वाले भारतीय सेनापति कोटियस (Kotius) के युद्ध में मारे जाने पर उसकी छोटी पत्नी का चितारोहण है। यूनानी विवरणों के अनुसार भारतीय सेनापति की दो पत्नियाँ थीं, अधिक आयु वाली बड़ी पत्नी की सलतान थी, किन्तु कम आयु वाली छोटी पत्नी की कोई सलतान नहीं थी। पति के मरने पर दोनों मर्ती होना चाहती थीं। किन्तु यूनानी सेनापति ने सलतान होने के कारण बड़ी पत्नी को चिता पर चढ़ने की अनुमति नहीं दी। यूनानी लेखकों ने छोटी पत्नी के चितारोहण का बड़ा रोचक यूनानत लिखा है कि किस प्रकार उसका छोटा भाई उसे चिता पर ले गया और वह अग्नि की ज्वालाओं से दग्ध होने पर भी मुस्कराती रही और प्रसन्न बनी रही। अन्य यूनानी लेखकों ने पंजाब को कठ (Kathians) जाति में इस प्रथा के प्रचलन का उल्लेख किया है।<sup>६</sup> इन उल्लेखों से यह सूचित होता है कि सती प्रथा का प्रचलन इन्दी-गिनी जातियों तक ही सीमित था। सिक्खर को पंजाब में पग-पग पर विभिन्न भारतीय राज्यों के साथ संघर्ष करना पड़ा था। इसमें अनेक भारतीय सेनापति और सैनिक मारे गये थे। किन्तु इनके

<sup>४</sup> अलेकर—वी पोर्जीशान ऑफ़ डर्मन इन हिन्दू सिविलिजेशन, पृ० ११८

<sup>५</sup> धर्मसूत्रों में केवल विष्णु (२५।१४) ने इसका उल्लेख करते हुए कहा है कि विधवा अपने पति की मृत्यु पर या तो ब्रह्मचर्य अत का पालन करती थी अथवा उसकी चिता पर चढ़ जाती थी।

<sup>६</sup> स्ट्रैबो १५।१।३० तथा ५२, इस लेखक ने यह भी लिखा है कि भारत में इस प्रथा का विकास इस आशंका से हुआ कि पत्नियाँ अपने पतियों को छोड़ देंगी या उन्हें बिल दे देंगी।

साथ इनकी पत्नियों के सती होने के केवल उपर्युक्त इने-गिने दृष्टान्त यह सूचित करते हैं कि उस समय इस प्रथा का व्यापक रूप से प्रचलन नहीं था।

ऐसा प्रतीत होता है कि चौबीसवीं ई० पू० में कुछ जलिय कुर्बी में सती प्रथा प्रचलित होने लगी थी। रामायण में सती प्रथा का एक ही दृष्टान्त वेदवती की कथा (७।१७।१४) है। यह उत्तरकाण्ड में होने के कारण मूल रामायण का भाग नहीं प्रतीत होता है। रामायण में दशरथ की मृत्यु होने पर उसकी कोई पत्नी उसने साथ सती नहीं हुई। महाभारत में सती प्रथा के इने-गिने उदाहरण मिलते हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध माद्री का पाण्डु की चिता पर आरोहण है (१।१३०)। किन्तु इस संबंध में यह स्मरण रखना चाहिए कि सब ऋषिमुनि माद्री को इस कार्य से रोकने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु माद्री अपनी जान न मानने के तीन कारण बताती है। पहला कारण यह है कि वह पाण्डु की अकाल मृत्यु का हेतु अपने आपकी मानती है और इसके प्रायश्चित्त स्वरूप यह चित्तारोहण करना चाहती है। दूसरा कारण अपनी कामवासना पर नियंत्रण न कर सकना तथा तीसरा कारण सब पुत्रों से समान व्यवहार न कर सकना है (१।१३०।७१)। इससे स्पष्ट है कि उस समय तक सहचरण की धार्मिक महत्त्व नहीं प्राप्त हुआ था। महाभारत में दूसरा उदाहरण कृष्ण की मृत्यु का समाचार आने पर उनकी पत्न पत्नियों कर्मिणी, शैब्या, आम्बवती आदि का चित्तारोहण है। किन्तु सत्यभामा चिता पर न चढ़कर तपस्या करने के लिए पत में बनी जाती है (महाभारत १६।७।१०)। इसी प्रकार में, मौसल पर्व में वसुदेव की चार पत्नियों—देवकी, भद्रा, रोहिणी और मदिरा के सती होने का वर्णन है (१६।७।१० मि० विष्णुपुराण ४।३०।२)।

किन्तु इन बड़े से उदाहरणों के अतिरिक्त महाभारत में पति की मृत्यु पर सती न होने वाली स्त्रियों के उदाहरणों की संख्या बहुत अधिक है। अभिमन्यु, धृष्टकेतु और द्रोणाचार्य की पत्नियाँ सती नहीं हुईं। यादवों में वसुदेव की चार पत्नियों के सती होने का उल्लेख है, किन्तु इनके साथ ही यादवों की हजारों विधवायों का अर्जुन के साथ हस्तिनापुर आने का वर्णन है। महाभारत का युद्ध समाप्त होने पर इसमें वीरसति प्राप्त पत्नियों के लिए स्त्रीपर्व में सैकड़ों विधवाएँ विलाप करती हैं, किन्तु इनमें से एक भी स्त्री सती नहीं जाती है।

३०० ई० पू० से हिन्दू समाज में सती प्रथा के कुछ अधिक उदाहरण मिलने लगते हैं। शाक्यायन, भास, कालिदास और शुभ्रक अपनी रचनाओं में सती प्रथा का संकेत करते हैं। कालिदास के कुमारसम्भव में कामदेव के भस्म हो जाने पर उसकी पत्नी रति उसके साथ सती होना चाहती है, किन्तु देवी वाणी उसे ऐसा करने से रोक देती है। कामसूत्र (६।२।२९) में शाक्यायन यह बताता है कि किस प्रकार गर्विकाय प्रेमियों का दिल जीतने के लिए उन्हें यह झूठ आश्वासन देती है, कि वे उनके साथ सती हो जाएंगी। भास वृत्तदोक्तक और उषभग नामक नाटकों में महाभारत के वर्णन के



सर्वथा विरहीत उत्तरा, दुःखता और पौरुषी के अभिमन्यु, जपद्वय और दुर्वाग्रत की विता पर सती होने का वर्णन करता है। मृच्छकटिक में वाकरस की पत्नी पति के प्राणदण्ड का समाचार मिलने पर चित्तारोहण का संकल्प करती है। बृहत्संहिता (६४। १६) सती होने वाली स्त्रियों के साहस की प्रशंसा करती है। गुप्त युग में सती प्रथा का ऐतिहासिक उदाहरण ५१० ई० में हूणों के विरुद्ध लड़ते हुए दिवंगत शनि जाने मेगापति गोपराज के साथ उसकी पत्नी के सती होने का है (प्लिनि ब० ३ पू० २३)। ६०६ ई० में प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु के समय उसकी पत्नी मसोमती विना पर चक्रावृत्ति सती हुई (हर्षचरित उच्छास ५)।

गुप्त युग से स्मृतिकारों के विचारों में परिवर्तन आने लगा और वे सती प्रथा का समर्थन करने लगे। पुरातन स्मृतिकारों में मनु ने विवाह की अवच्छेद संबंध मानते हुए विधवा के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य दत्त की व्यवस्था की थी (५। १५०)। किन्तु गुप्तयुग से स्मृतिकार विधवा के लिए ब्रह्मचर्य को आदर्श मानते हुए भी द्वितीय विवाह के रूप में उसके सती होने का वर्णन करने लगते हैं। बृहस्पति (शिवार्चनानुकर, पृ० ४६२), पराशर (४। २६। ८) ऐसे ही स्मृतिकार थे। अमिपुराण (२६१। २२) ने विता पर चढ़ने वाली नारी द्वारा स्वर्ग जाने का वर्णन किया।

### सती प्रथा का विरोध

किन्तु इस समय कुछ शास्त्रकारों और विचारकों ने सती प्रथा का प्रचलन विरोध किया, वे इसे आत्महत्या का महापाप और निर्वर्थक कार्य समझते हैं। मनुस्मृति के सुप्रसिद्ध टीकाकार मेघातिथि (५। १५०) यह कहा कि अंगिरास्मृति सती प्रथा का विधान करती है किन्तु यह आत्महत्या का निषेध करने वाले वैदिक वचनों का विरोधी है। इस विषय में मेघातिथि ने श्वेनपाग का उदाहरण दिया है। यह अपने मनु को नष्ट करने की एक माहिक विधि है। जिस प्रकार श्वेन या बाज अपने शिकार पर झपटकर उसका गर्तकाल संहार कर देता है उसी प्रकार शत्रु का विध्वंस करने के लिए श्वेनपाग की विधि होती है। वेद में कहा गया है—‘श्वेनेनाभिचरन् मजेत्’। किन्तु वैदिक विधि होती हुए भी जिस प्रकार श्वेनपाग को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता है, उसे धर्म नहीं, अपितु अधर्म माना जाता है (जैमिनि १। १। २ पर शबर भाष्य), उसी प्रकार अंगिरा द्वारा अनुमोदित सती प्रथा अधर्म है, क्योंकि वह वेद के इस वचन के विरुद्ध है कि ‘जब तक आयु न बीत जाय तब तक किसी की यह लांछ नहीं छोड़ना चाहिए’<sup>८</sup> विराट का यह कहना है कि

<sup>८</sup> किन्तु मिताक्षरा ने याज्ञ० (१। ८६) मेघातिथि के तर्कों का विरोध करते हुए कहा है—‘श्वेनपाग वास्तव में अनुचित है अतः अधर्म है, क्योंकि उसका उद्देश्य वृत्तरे को कष्ट में डालना है, किन्तु अनुगमन ऐसा नहीं है।’ यहाँ इसका फल स्वर्ग प्राप्ति

विधवा जीवित रहते हुए विविध प्रकार के धार्मिक कर्मों से पति का श्रद्धांजलि कर सकती है, किन्तु जब वह बिता पर चढ़ती है तो आत्महत्या के पाप की दाँगी होती है। १२ वीं सताब्दी के एक निबन्धकार देवण कट्ट ने (स्मृति-न्यायिका व्यवहाराकाण्ड, पृ० ५६८) में इसका घोर विरोध करते हुए यह कहा कि सती होना विधवा के उत्पन्नारिणी रहने की अपेक्षा बड़ा अशुभ कार्य है।

इस प्रथा का उग्रतम विरोध बाण ने कादम्बरी (पूर्वाध ५० ३०५) में किया है। उसका यह कहना है कि पति की मृत्यु के बाद सती होना (अनुमरण) बड़ा निष्फल कार्य है, इसे मूर्ख लोग ही करते हैं। यह कार्य मोह से अथवा जल्दबाजी में किया जाता है, इससे मृत व्यक्ति को लाभ नहीं होता, इससे उसे स्वर्गलोक नहीं प्राप्त होता और यदि उसे अपने कर्मों के अनुसार परलोक में जाना है तो अनुमरण से वहाँ वह जाने से नहीं बच सकता है। सती न होने से मरने पर वह कर्मों के अनुसार परलोक में उत्तम स्थान प्राप्त करती है, किन्तु सती होने वाली स्त्री आत्महत्या पाप के कारण नरक में जाती है। यदि वह जीवित रहे तो उत्तम कर्म करके अपने को लाभ पहुँचा सकती है। पति के साथ मर जाने पर वह न तो अपने को और न ही पति को कोई लाभ पहुँचाती है।

बाण द्वारा सती प्रथा की उपर्युक्त कड़ी निन्दा का समर्थन लालिकों ने भी किया। वे मारी को देवी भगवती का अवतार समझते थे। महानिर्वाणतन्त्र (१०।७६) ने स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा की कि मोहवश पति की बिता पर चढ़ने वाली स्त्री नरक-गामिनी होती है (संज्ञाद् भर्तुर्विचितारोहद् भवेन्निरयगामिनी)।

उपर्युक्त विरोधों के बावजूद ७०० ई० के बाद के साक्ष्यकार सती प्रथा का प्रबल समर्थन करते लगे और इसकी मूर्तिमा और गौरव का बखान बढ़ी आलंकारिक भाषा में करने लगे। अगिरा ने मनु के उपर्युक्त वचन (५।१५७) के सर्वथा विपरीत यह कहा कि पति की मृत्यु होने पर साध्वी स्त्रियों के लिए अग्नि में जल मरने (अग्निपतन) के अतिरिक्त कोई दूसरा धर्म नहीं है (अपराधं माह १।८७ पर)। हाशैल के मतानुसार

है जो उचित माना जाता है और श्रुतिसम्मत है। '...इसी प्रकार अनुगमन के संबंध में स्मृति श्रुति के विच्छेद नहीं है, यहाँ उसका अर्थ है—किसी को स्वर्ग के आगम के लिए अपने जीवन का दुःखयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि स्त्री अनुगमन द्वारा स्वर्ग को इच्छा करती है अतः वह श्रुतिवाक्य के विरोध में नहीं जाती है'। यह तर्क इस बात का सुन्दर उदाहरण है कि शास्त्रों के व्याख्याकार एक ही श्रुति-वाक्य से अपने समय की व्यवस्था के अनुकूल अर्थ को अपने बुद्धिकौशल से किस प्रकार निकाला करते थे। अपराध (पृ० १११), मदनपारिजात (पृ० १६६), पराशरमाधवयोग (भाग १ पृ० ५५-५६) ने मिताशरा का तर्क स्वीकार किया है।

नुसार सती होने वाली स्त्री अपने इस कार्य से इतना पुण्य उपार्जन करती है कि वह अपने पति का उसके भीषणतम महापापों से उद्धार कर लेती है। परास्पर स्मृति (४।३२-३३) में कहा गया है कि पति की मृत्यु के बाद सती होने वाली स्त्री ३३ करोड़ वर्ष तक स्वर्ग में निवास करती है। जैसे सारे सपनों की बिल में से असुख के निवास लेता है, वैसे ही सती होने वाली स्त्री मरक से पति का उद्धार करती है और उसके साथ स्वर्गनाक में आनन्दपूर्वक रहती है। (स्कन्दपुराण, दशमस्कण्ड, धर्मोपनिषद् ७।५५)।

### कश्मीर में सती प्रथा के उदाहरण

शास्त्रकारों द्वारा सती प्रथा के प्रचलन सम्बन्ध में इसका प्रचलन बहुत लम्बा। ७००-११०० ई० में इसके अनेक उदाहरण उत्तर भारत में, विशेष रूप से कश्मीर में मिलते हैं। कन्हूज में राजतरंगिणी (८।३६६) में इस पर आश्चर्य प्रकट किया है कि राजा उज्ज्वल की जन्मती जैसे बुद्धिमान विद्वानों ने भी चित्तार्पण किया। कश्मीर में राजा के मरने पर न केवल उसकी स्त्रिया, अपितु माता, बहिन आदि अन्य संबंधी (६।१३८०, ८।४४८, ७।१४८६), मन्त्री, मीरद-वाकर (४।२६६, ७।८८१, ७।८६०, ८।१४४७) भी चित्तार्पण करते थे। कन्हूज ने मुस्लिम की मृत्यु पर प्रेमवश उसकी बिली द्वारा उसकी चिता में कूदने का वर्णन किया है (७।२४८१)। ११०० ई० में कश्मीर में लिखे गये कथासंग्रहकार भी कई कहानियों में सती प्रथा का उल्लेख है। श्री अल्लेकर (पोजीशन आफ़ मुसलम १०१२७) ने यह कल्पना की है कि कश्मीर में सती प्रथा के अधिकांश प्रसार का कारण संभवतः यह था कि इसका सम्पर्क मध्य एशिया से था और हिरोडोटस के मतानुसार एशिया के शकों में सती प्रथा का प्रचलन बहुत अधिक था।

### शिलालेखों की साक्षी

सतीप्रथा के विषय में शिलालेखों की साक्षी बड़ी महत्वपूर्ण है। राजस्थान के शिलालेखों से पता चलता है कि १३०० ई० के बाद से इस प्रथा का प्रचलन बहुत बढ़ गया। १२००-१६०० ई० के बीच में सती होने के बीच उदाहरण मिलते हैं, किन्तु इससे पहले काल में बहुत कम शिलालेख इसका निर्देश करते हैं (अल्लेकर—पृ० ५०, ५०-१३०)। इस विषय में सबसे पहला उल्लेख ८४२ ई० में बालाहाट राजा जगदमहासेन की पत्नी के सती होने का है। ८६० ई० में घटियाला में सम्पलदेवी सती हुई। एक शिलालेख में जेचिराज गोयदेव के प्रयाग के बटभूल में अपनी १०० पत्नियों के साथ मूर्तिपूजे का वर्णन है (एपि० ३०, खं० १२, गुप्ठ २११)। यह संभवतः सती प्रथा का नहीं, अपितु प्रयाग के संगम में डूब कर मूर्तिपूजे का वर्णन है। १३०० ई० के बाद से हमें उत्तर भारत के, विशेषतः राजपूताने के अग्रिम राजपरिवारों में सती प्रथा के बहुत

उदाहरण मिलते हैं। मध्य युग में राजपूताना में राजा के मरने पर उसकी सन्तानहीन सभी विधवाएँ सती होती थीं, कई बार इनकी संख्या बहुत अधिक होती थी। टाड ने लिखा है (एनलस, खण्ड २, पृ० ८३७) कि मारवाड़ में १७२४ में राजा जयसिंह की मृत्यु पर ६४ स्त्रियाँ उसकी चिता पर चढ़ीं, बुन्दी के राजा बुधसिंह की मृत्यु पर ६४ स्त्रियाँ सती हुईं। मद्रास के नायक राजाओं में भी ऐसी स्थिति थी। १६११ तथा १६२० में दो राजाओं की मृत्यु पर ४०० तथा ७०० स्त्रियाँ चिता पर चढ़ीं।

दक्षिण भारत के शिलालेख भी यही सूचित करते हैं। कर्नाटक के शिलालेखों के ग्रन्थ (Epigraphica Carnaticia) में १०००-१४०० ई० तक सती प्रथा के केवल ११ उल्लेख मिलते हैं, किन्तु १४००-१६०० ई० के शिलालेखों में इस प्रकार के ४१ उदाहरण मिलते हैं। सती होने वाली अधिकांश स्त्रियाँ दक्षिण भारत की मोड़ा जादियों के नायक और शासक वर्गों से संबद्ध थी। दो उदाहरण जैनों के भी हैं, किन्तु ब्राह्मण जाति की स्त्रियों के सती होने के बहुत ही कम उदाहरण मिलते हैं।<sup>१</sup> मध्य प्रदेश के शिलालेख यह सूचित करते हैं कि १५००-१८०० ई० के मध्य में यहाँ जुजाहा, गार्द, राज आदि सभी सामाजिक श्रेणियों और वर्गों की स्त्रियाँ सती हुआ करती थीं। मध्य प्रदेश में सतियों के अनेक शिलालेख और स्मारक मिलते हैं।

### मुस्लिम शासकों द्वारा विरोध

मध्य युग में मुहम्मद तुगलक जैसे कुछ मुस्लिम शासकों ने इस प्रथा को बन्द करने का प्रयत्न किया। हुमायूँ ऐसी सभी विधवाओं का सती होना बन्द करना चाहता

<sup>१</sup> इस प्रसंग में यह उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है कि अनेक शासक ब्राह्मण विधवाओं के लिए सती होना वर्जित ठहराते हैं। बृहद्देवता (४।१५) इसे केवल क्षत्रियों के लिए उपयुक्त समझता है। यजुर्वेदपुराण (सृष्टि खण्ड ४६।७२-३) स्पष्ट शब्दों में ब्राह्मणों द्वारा पति की मृत्यु पर सहमरण का विरोध करता है तथा इसे ब्रह्महत्या मानता है (न श्रियेत समं भर्ता ब्राह्मणी ब्रह्मरासनत्)। अपरार्क ने (पात्र० १।८७ पर) पैट्रिन्सि, अंगिरा, व्याघ्रपाद आदि की उक्तियों के आधार पर ब्राह्मणियों के सती होने का विरोध किया है। इसका कारण यह था कि आरम्भ में इस प्रथा का प्रचार राजघरानों तथा क्षत्रिय कुलों तक सीमित था। मध्य युग में इसका प्रसार व्यापक होने पर निम्नवर्गियों ने अपरार्क के निषेध की व्याख्या इस प्रकार की कि ब्राह्मणों की पत्नियाँ अपने को केवल पति की चिता पर ही भस्म कर सकती हैं, यदि पति की मृत्यु कहीं दूरस्थान, या विदेश में हुई हो, वह वहाँ नहीं जला दिया गया हो तो पत्नी को उसकी मृत्यु का समाचार सुन कर अपने को नहीं जलाना चाहिए।

था, जो वस्त्रा पीटा करने की अवस्था पूरी कर चुकी हों। अक्सर ने अपने राज्य के २२ में वर्ष में सती प्रथा बन्द करने के लिए ऐसे सरकारी निरीक्षक नियुक्त किये जिनका काम यह देखना था कि किसी को उसकी इच्छा के विरुद्ध सती न किया जाय। इसके परिणामस्वरूप आगरा के आसपास सती होना बन्द हो गया। अनेक प्रदेशों में मुस्लिम शासकों ने यह नियम बना दिया था कि कोई भी विधवा स्थानीय अधिकारी की अनुमति के बिना सती न हो सके। इनका उद्देश्य इस प्रथा को बन्द करना था, किन्तु इस नियम का इस प्रथा पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि सत्तारी अधिकारी प्रामाण्यी अनुमति दे दिया करते थे।

### सहमरण की विधि

मध्य युग के पिछले निबन्धनों, मृदितत्त्व, निर्णयसिन्धु (भाग ३, पृ० १२३) तथा धर्मसिन्धु (पृ० ४०३-४) से पहली बार सती होने की विधि का विस्तारपूर्वक प्रतिपादन किया गया है। सती होना एक महान् पुण्य का कार्य समझा जाता था। इसे समाज में उच्चतम शौर्य और सम्मान दिया जाता था। जब किसी स्त्री को सती होना होता था तो उसका जलूस बड़ी धूमधाम में और राजसी ठाठ-बाट से निकाला जाता था। पद्मपुराण (पाताल खण्ड १०२।१७) के अनुसार उसे महला-धुलाकार, मंगल यन्त्राकर करके उसके शरीर पर सब सौभाग्यसूचक चिह्न, धामूपण, अंजन, गन्ध, पुष्प, धूप, हल्दी, अक्षत धारण कराये जाते थे, गोखों में बलना लगाया जाता था; वह हथ में दर्पण, कुंकुम, कंभी, पान आदि सौभाग्यसूचक वस्तुएँ लेती थी, इस समय वह अपने शरीर पर अधिक से अधिक धामूपण तथा बहुमूल्य वस्त्र पहनती थी, धूमधाम से नाना राजों के साथ इसभात स्थान पर पहुँचकर चिता पर चढ़ने में पहुँचे वह अपने बहुमूल्य वस्त्र तथा धामूपण अपने संबंधियों को दे देती थी, वे इसे बड़े आदर के साथ ग्रहण करने थे और बहुमूल्य स्मृति के रूप में सुरक्षित रखते थे। इस समय कुछ व्यक्ति उसे अपने स्वर्गस्व संबंधियों तक अपने संदेश पहुँचाने का कार्य भी सौंपते थे। चिता पर चढ़ते हुए वह अपने गति का स्तिर अपनी गोद में रख लेती थी और इसके साथ चिता की ज्वाला में हंसते हुए सती हो जाती थी। यदि एक पुरुष की कई विधवा स्त्रियाँ हों तो उसकी प्रिय पत्नी ही उसके स्तिर को अपनी गोद में रख कर एक ही चिता पर सहमरण की विधि पूरी करती थी, अन्य विधवा स्त्रियाँ अलग चिताओं पर जलायी जाती थी। कई बार गृहस्थ जीवन के ईर्ष्या-द्वेष को भुला कर कई स्त्रियाँ एक ही चिता पर पति के साथ सती हो जाती थीं। यदि पति की मृत्यु किसी दूरवर्ती क्षेत्र में हुई हो तथा उसके शव के साथ चिता पर चढ़ना संभव न हो तो विधवा पति की पगड़ी, जूते या किसी अन्य वस्तु के साथ चिता पर चढ़ती थी।

संवेष्टापूर्वक पति को चिता पर चढ़ने वाली स्त्रियाँ कई बार आग की ज्वालाओं

से घबरा कर बिता से बाहर भागने का प्रयत्न करती थीं, अतः सतियों की बिता को विशेष रूप से इस प्रकार का बनाया जाता था कि इनके भागने की संभावना न रहे। सती की बिता प्रायः एक गहरा गड़ा खोद कर बनायी जाती थी, दक्षिण एवं पश्चिम भारत में यह रिवाज विशेष रूप से प्रचलित था। विदेशी यात्रियों ने इसका कई बार वर्णन किया है। गुजरात और उत्तरी भारत में १२ वर्गफुट की एक झोपड़ी बना कर उसके चारों ओर सती होने वाली स्त्री की बाँध दिया जाता था। बंगाल में जमीन में सजबूती से गाड़े गये या छत्रों के साथ विधवा के पैरों को सजबूती से बाँध दिया जाता था तथा उससे जीत आर पूछा जाता था कि क्या वह वास्तव में स्वयं जाना चाहती है, उसने सहमति देने के बाद बिता में जाग लगायी जाती थी, बिता से बंधे होने के कारण उसे का भागना असंभव हो जाता था, उसके आतंक और बीतकार की कथन ध्वनि को दबाने के लिए इस समय दोल और मृदंग बड़े जोर से बजाये जाते थे। अनेक विदेशी यात्रियों ने भारत के विभिन्न भागों में सती प्रथा के अनेक वर्णन लिखे हैं।

### विदेशी यात्रियों के विवरण

दक्षिण भारत में १४ वीं तथा १५ वीं शती में विजयनगर के साम्राज्य में सती प्रथा का विकास अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। फर्नाओ नुनिस (Fernaõ Nunes) तथा दुआर्ते बरबोसा (Duarte Barbosa) ने इसके बड़े रोचक वृत्तान्त लिखे हैं। बरबोसा के कथनानुसार राजा की मृत्यु पर चार सौ या पाँच सौ स्त्रियाँ तथा इतनी ही संख्या में पुरुष बिता पर चढ़ा कर दते थे। निकोलो कौण्टी नामक भात्री को यह बताया गया था कि विजयनगर के राजा की १२००० स्त्रियाँ होती थीं, इनमें से या तीन हजार इसी शरीर पर चुली जाती थीं कि राजा की मृत्यु होते पर वे स्वेच्छापूर्वक सती होंगी। बरबोसा ने जमीन में एक गड़ा खोदकर बिता बना कर सती होने का उल्लेख किया है। उसके वर्णनानुसार उच्चकुलों की स्त्रियाँ सती होते समय खूब ठाठथाट से बहुमूल्य एवं सुन्दरतम वस्त्र पहनकर सब अलंकार तथा मणि मार्मिक्य धारण करके सज्जज कर सफेद घोड़े पर सवार होकर बाले गाजे और जुलूस के साथ पति की बिता के स्थान पर पहुँचती हैं। यहाँ तीन बार बिता की परिक्रमा करके सती होने वाली स्त्री अपने मुँह तथा संबंधियों को बुलाती है, उन्हें अपने शरीर पर धारण किए हुए रत्न, आभूषण तथा वस्त्र देती चली जाती है, यहाँ तक कि अन्त में उसने शरीर पर केवल सज्जा निवारण करने के लिए इन-जिने वस्त्र ही रह जाते हैं। ये सब कार्य वह इतनी प्रसन्नता से करती है कि मानों उसे मृत्यु की कोई चिन्ता ही नहीं है। इसके बाद वह तेल का थड़ा अपने सिर पर रख लेकर बिता की तीन बार परिक्रमा करती है, तेल की जाग में डालती है और अग्नि की ज्वालाओं में ऐसे कूद जाती है, जैसे वह बर्फ के मुलायम गढ़े पर कूद रही है। तदनन्तर वह ज्वालाओं में जल कर भस्म हो जाती है। मृग-

स्लो (Mandeslo) ने बम्बाल (गुजरात) में तथा पीटर मण्टी ने मूरत में तथा बामस वौरी ने बंगाल में सती प्रथा के अनेक वर्णन लिखे हैं। टैबलियर ने १७ वीं शताब्दी में कारोमण्डल के तट पर इसका वर्णन किया है। विदेशी यात्रियों के वर्णनों से यह स्पष्ट है कि यह प्रथा उस समय देश के लगभग सभी भागों में प्रचलित थी।<sup>१०</sup>

### सती प्रथा में वस्त्रप्रयोग

क्या स्त्रियाँ स्वेच्छापूर्वक सती होती थीं, या उन्हें सती होने के लिए बाधित किया जाता था? इन प्रश्नों का सीधा और सरल उत्तर देना बहुत कठिन है। हमें कोई संदेह नहीं कि सती होने के लिए स्त्रियों को विवश किया जाता था। बङ्गाल ने राजतरंगिणी में कश्मीर की दो ऐसी रानियों के उदाहरण दिये हैं, जिनोंने अपने मन्त्रियों को इसलिए घुस दी थी कि वे जब चिता पर स्वेच्छापूर्वक चढ़ने का डोंग करें तो वे मन्त्री उन्हें चिता पर चढ़ने में रोकें तथा उनकी प्राण रक्षा करें। रानी दिहा ने अपने मंत्री नरसिंह की सहायता से इस प्रकार अपनी जान बचायी थी (६।१६५)। किन्तु जब-सती का बुरा मंत्री नर्म पैसा लेकर भीठीक समय पर समाधान में नहीं पहुँचा और अन्तर्गामी रानी को अनिच्छापूर्वक सती होना पड़ा। मध्यकालीन विदेशी यात्रियों ने वस्त्रप्रयोग द्वारा सती किये जाने के अनेक उदाहरणों का उल्लेख किया है। मनुषी (खं० ३, पृ० ६५) ने लिखा है कि शक्ति स्त्रियों को जबदस्ती सती किया जाता था, उसने ऐसी एक स्त्री की प्राण रक्षा की थी और बाद में इसका विवाह उसके एक युरोपियन मित्र से हो गया था। तिकोली कौन्टी ने यह बताया है कि सती होने के लिए आभिषेक सदान करना जाता था, विधवा को यह धमकी दी जाती थी कि यदि वह सती न हुई तो उसकी स्त्रीधन के अधिकार से वंचित कर दिया जायगा। अतियर (पृ० ३९३-६४) ने १२ वर्ष की एक बालविधवा का साहौर में सती किये जाने का वर्णन किया है। अन्वर का एक राजपूत कर्मचारी अपनी माता के विधवा होने पर उसे जबदस्ती सती करना चाहता था; अन्वर के हस्तक्षेप से उसकी प्राणरक्षा हुई।

कई बार वस्त्रपूर्वक सती की जाने वाली कुछ स्त्रियाँ जलती चिता से भाग बचती होती थीं। ऐसी स्त्रियाँ हिन्दू समाज में अस्मूय्य समझी जाती थीं, उन्हें अपनी जाति और परिवार में ग्रहण नहीं किया जाता था। ये स्त्रियाँ चिता तैराट करने वाले निम्न जाति के व्यक्तियों के घरों में चली जाती थीं। कई बार युरोपियन व्यापारी ऐसी स्त्रियों के साथ विवाह कर लेते थे। स्त्रियों को जबदस्ती सती करना उनके साथ बोर अन्धाय था, किन्तु समाज संभवतः इसे इसलिए सहन करता रहा है कि स्वेच्छापूर्वक सती होने वाली स्त्रियों की समाज में कमी नहीं थी।

<sup>१०</sup> पेन्जर—वी ओसन आफ स्लोरी, खण्ड ४, पृ० २६७-२७१

### स्वेच्छापूर्वक सती होने के उदाहरण

मध्यकाल के विदेशी यात्रियों ने अहाँ एक ओर मध्य युग में जबदेस्ती सती होने के उदाहरण दिये हैं, वहाँ दूसरी ओर ऐसे उदाहरणों का भी वर्णन किया है, जिनमें स्त्रियाँ स्वेच्छापूर्वक बड़ी प्रसन्नता से पति की चिता पर चढ़ती थीं। १७ वीं सदी के एक फ्रेंच यात्री दैनिकियर ने लिखा है कि २२ वर्ष की एक विधवा बटना के सूबेदार के पास सती होने की अनुमति लेने गयी, सूबेदार ने उसके सम्बन्ध संकल्प की परीक्षा करने के लिए उसकी हाथ का भस्माक्ष से जलवाया, उसका हाथ पूरी तरह जल गया किन्तु उसने एक तक नहीं की, अतः उसे सती होने की अनुमति दी गयी (पृ० ४१४-७)। १४ वीं शताब्दी के एक विदेशी यात्री प्रमनवतूता ने यह लिखा है कि चिता की ज्वालामुखी में सहर्ष जलने वाली एक विधवा का साक्ष्य देखकर वह संत रूग्ण था (पृ० १६१)। दैनिकियर ने एक स्त्री के सती होने के दृश्य का वर्णन करते हुए लिखा है कि उस समय उसका मुख-मण्डल धुंधी से ढमक रहा था, उसकी आँखों में किसी प्रकार की चिन्ता का कोई चिह्न नहीं था, उसका साहस विस्मयजनक एवं अद्भुत था, उसने भस्माक्ष हाथ में घी और स्वयंभोज चिता में जाग लगा दी। दैनिकियर को यह सारा दृश्य बलवत्तक तन्म्य होते हुए भी एक सपना प्रतीत हुआ (पृ० ३१२-३)। एक अन्य यात्री पीट्रो डेल्ला वाल्ले (Pietro della valle) सती होने वाली स्त्रियों के अद्भुत माहुर से इतना प्रभावित था कि उसने यह लिखा है कि जब मुझे यह पता लगता है कि कहीं कोई विधवा सती होने वाली है तो मैं इस दृश्य का देखने के लिए तत्पर आता हूँ (खण्ड २, पृ० २६६)।

भारतीय स्त्रियाँ स्वेच्छापूर्वक सती होने के लिए कितनी उत्कण्ठित, विज्ञान और दुःखकण्ठ होती थी, इसका एक बहुत सुन्दर उदाहरण जर्जेल स्लीमैन के प्रस्तुत किया है।<sup>११</sup> १८२६ में लार्ड विलियम बैंटिक द्वारा सती प्रथा निषेध की घोषणा कर देने के बाद, स्लीमैन को मध्य प्रदेश में इसे कियान्वित करने का कार्य सौंपा गया था। मार्च १८२६ में एक परिपत्र द्वारा यह सरकारी आज्ञा सर्वत्र प्रसारित की गयी कि किसी स्त्री को सती होने के लिए किसी भी प्रकार से प्रोत्साहित करने वाला व्यक्ति अपराधी समझा जायगा और उसे इन्क दिया जायगा। स्लीमैन सती प्रथा के निषेध के नियम को बड़ी कड़ाई से लागू करने पर तुल्य हुआ था। इसी समय २६ नवम्बर १८२६ को २५ वर्ष की एक ब्राह्मणी ने विधवा होने पर सती होना चाहा। किन्तु राजदण्ड के भय से किसी भी व्यक्ति ने उस ब्राह्मणी को चिता बनाने के लिए लकड़ी देना स्वीकार नहीं किया। ब्राह्मणी सती होने पर सुखी हुई भी और उसने स्लीमैन से इसके लिए अनुमति माँगी। किन्तु स्लीमैन ने पुनित्त को आदेश दिया कि वह उस पर निरन्तर निगरानी रखे तथा उसे सती न होने दे। ब्राह्मणी अपनी पति की चिता के समीप सरपावट करके बैठ गयी।

<sup>११</sup> लार्ड विलियम स्लीमैन—रैम्बल्ट एण्ड रिजलैबलन्स पृ० १६



उसने चार दिन तक अन्न-जल नहीं ग्रहण किया। इस स्थिति में स्वीमेन कैथर्य बुद्धा ब्राह्मणी के पास गया और उसने उसे बाधता सती होने का संकल्प छोड़ने का कहा, उसे कई प्रकार की धमकियाँ और प्रलोभन भी दिये गये। किन्तु वह अपने निश्चय पर अटल बनी रही। अन्त में स्वीमेन को झुकना पड़ा, उसने ब्राह्मणी को सती होने की अनुमति दी। जिस समय वह अनुमति दी गयी, उस समय ब्राह्मणी को वर्णतानीत अपार हर्ष हुआ और वह पति की बिछा पर सती हो गयी।

मध्य युग में हिन्दू समाज में विधवा होने पर सती होने के धार्मिक महत्त्व का विषयासूचना दृढ़ और बलमूलक कि कोई बार वायदान मात्र वाली कन्याएँ विवाहित न होने थर भी अपने को विधवा मानती थी और सती हो जाती थी। मुन्शी ने एक ऐसे ही उदाहरण का वर्णन किया है। इसमें वायदान किसे हुए एक गुरुण की मृत्यु अपनी वायन्ता पत्नी को साँप से बचाने के प्रयत्न में हो गयी। यद्यपि कन्या का विवाह तत्ती हुआ, या फिर भी उसने सती होने का आपह किया और वह अपने प्रेमी की बिना पर जय मरी (ज० ए० सो० ब० १६३५, पृ० २५८)।

**सती प्रथा के विकसित होने के कारण**

उत्पुक्त विवरण से स्पष्ट है कि वैदिक युग में सर्वथा अप्रचलित होने पर भी मध्य युग में सतीप्रथा का प्रचलन हिन्दू समाज में परमाप्या पर पहुँच गया। यहाँ इस प्रथा को उत्पन्न एवं विकसित करने वाले कारणों की मीमांसा करना समुचित प्रतीत होना है। सती प्रथा केवल हिन्दू समाज में नहीं है, अन्य समाजों में भी पायी जाती है। इसके प्रादुर्भाव के कुछ कारण अन्य समाजों जैसे हैं और कुछ कारण विशेष हैं।

इसके सामान्य कारणों में पहला कारण परलोकविषयक कुछ विश्वास हैं। उनके अनुसार अनेक जातियों में यह माना जाता है कि मृत्यु के बाद परलोक में मनुष्यों को इस लोक की भाँति विभिन्न वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। जब कोई राजा, धीर पुरुष या योद्धा मरता था तो परलोक में उसके जीवन के सुखमय वापन के लिए उसके साथ ऐहिक जीवन की सब वस्तुएँ भेजना आवश्यक समझा जाता था। इनमें उसकी स्त्रियों, नौकर-चाकरों तथा घोड़ों का प्रथम स्थान होता था, अतः इनमें उसकी मृत्यु के बाद उसके साथ जलाना या गाड़ना आवश्यक एवं उचित समझा जाता था। मिय के पिरामिडों में ऐसी व्यवस्था थी। परलोक में पति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्त्री के सती होने की पद्धति भारतीय आर्य जातियों में, गाल, पाच, नार्वेजियन, कैन्ट तथा स्लाव लोगों में पायी जाती थी। इसी विश्वास के कारण यदि नीत में कोई विधवा स्त्री पति के पास स्वर्गलोक में जाने के लिए अपनी हत्या करती थी तो उसके शव का जुनून बड़ी धूमधाम से निकाला जाता था।

दूसरा कारण योद्धा जातियों में अपनी स्त्रियों की पवित्रता बनाये रखने की

भावना थी। पहले यह बताया जा चुका है कि सती प्रथा का प्रचलन भारत में श्रद्धिप्राप्ति में विशेष रूप से पाया जाता था। अन्य देशों में भी यही स्थिति थी। पौढ़ा जातियाँ अपनी स्त्रियों की सुरक्षा के लिए विशेष यत्न करती हैं, ये यह नहीं चाहती कि लड़ाई में उनकी मृत्यु के बाद विजेता उनकी स्त्रियों का उपभोग करें।<sup>११</sup> अतः वे स्त्रियों का सती होना अधिक अच्छा समझते थे। राजपूतों में बौद्ध इसीलिए किया जाता था। मृत्यु के बाद परलोक में भी इन्हें अपनी अन्य प्रिय वस्तुओं के समान पत्नी की आवश्यकता होगी थी। अतः इन दो सामान्य कारणों से विभिन्न देशों की पौढ़ा जातियों में इस प्रथा का आधिपत्य हुआ।

भारत में इसके विशेष रूप से विकसित होने के तीन कारण थे। पहला कारण पातिव्रत्य की भावना थी,<sup>१२</sup> यहाँ पति की सेवा पर इतना अधिक बल दिया गया था कि पत्नी पति के बिना अपना जीवन निरर्थक समझती थी। वह सर्वत्र इहलोक में तथा परलोक में उसकी सेवा करना चाहती थी, अतः उसकी मृत्यु पर वह जल्दी से जल्दी उसके पास पहुँचने के लिए सती हो जाती थी। दूसरा कारण वैश्य का दुखमय जीवन था, अन्यत्र यह बताया गया है कि हिन्दू विधवा का जीवन कितना नारकीय होता है, और उसे किस प्रकार के वास्तविक दुख झेलने पड़ते हैं। ये दुख वाल विधवाओं के लिए असह्य होते थे, उन्हें जीवन भर नारकीय जन्मजातों भाँवने से भिता पर चढ़ना अधिक अच्छा प्रतीत होता था। इससे उनके सब कारण दुखों का अन्त हो जाता था। तीसरा कारण ब्रह्मण के वायभाग की व्यवस्था थी। यहाँ समुक्त परिवारों में विधवाओं का अन्य प्राणियों की विधवाओं की अपेक्षा अधिक साम्प्रतिक अधिकार प्राप्त थे।<sup>१३</sup> अन्य प्राणियों में विधवा का भरण-पोषण के अतिरिक्त सम्पत्ति में कोई अन्य अधिकार प्राप्त नहीं था। किन्तु ब्रह्मण में वायभाग की व्यवस्था के कारण पुत्रहीन विधवा को समुक्त परिवार की सम्पत्ति में यही अधिकार था जो उसमें उसके पति का होता था। इससे उनके अन्य सबधियों तथा उत्तराधिकारियों का घाटा था, अतः उनका यह प्रयत्न होता था कि विधवा सती हो

<sup>११</sup> प्राचीन काल में विजेता विजित लोगों की पत्नियों से बदला चुकाते थे, उन्हें बन्दी बनाकर ले जाते थे और उनसे यातियों जैसा व्यवहार करते थे। मनु (७।६६) ने सैनिकों को युद्ध में अन्य वस्तुओं के साथ स्त्रियों को भी पकड़ने की अनुमति दी है। प्रभाकरवर्धन की पत्नी यशोमती अपने पुत्र हर्ष को बताती है कि विजित राजाओं की पत्नियाँ उसको पंगा बसा करती हैं (हर्षचरित ५)। इस प्रकार की हुई दुर्वसा से बचने के लिए सती होना एक उत्तम उपाय था।

<sup>१२</sup> पातिव्रत्य की भावना के विकास के लिये देखिये हरिवंश वेदान्तकार—हिन्दू परिवार मीमांसा, पृ० १२४-६

<sup>१३</sup> हरिवंश वेदान्तकार—हिन्दू परिवार मीमांसा पृ० ४८०-१

जाय ताकि वे उसकी संपत्ति प्राप्त कर सकें, अतः वे अपने स्वार्थ के लिए उसकी प्रतिभक्ति को खूब उत्तेजित करते थे ताकि यह सती हो जाय। इस कारण की पुष्टि इस बात से भी होती है कि सती प्रथा सबसे अधिक बंगाल में प्रचलित थी। उदाहरणार्थ १८१५ से १८२८ तक पटना, बरेली और बनारस जिल्लों में सतियों की संख्या क्रमशः ७०६, १६३ तथा ११६५ थी, किन्तु कलकत्ता जिल्लों में यह संख्या ५,०६६ थी।<sup>१\*</sup> बंगाल में अन्य प्रान्तों की अपेक्षा सती होने का यह कारण था कि यहाँ स्वामी संबंधी अपने अधिकारों के लिए विधवाओं को धिक्का कर चले के लिए विवश करने में।

### सती प्रथा का निषेध

राजा राममोहन राय ने अपनी भाभी का जबरदस्ती सती किये जाने का दाय्य वृथ्व देखा था। इनसे उनके हृत्तटल पर सती प्रथा के लिए किये जाने वाले श्रृंगारपूर्ण कार्य भली-भाँति अंकित हो गये। उन्होंने इस अमानुषिक एवं खरं प्रथा के उन्मूलन के लिए प्रबल आन्दोलन किया। रुढ़िवादियों ने उनका उध विरोध किया, किन्तु वे ब्रिटिश सरकार से निरन्तर यह आग्रह करते रहे कि सरकारी आज्ञा द्वारा इसका उन्मूलन किया जाना चाहिए। अन्त में उनको अपने प्रयत्न में सफलता मिली। १८२६ में भारत के गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेंटिंक ने इस प्रथा का विरोध करने वाली सरकारी आज्ञा प्रसारित की, सती होने के कार्य में सहायता देना दण्डनीय अपराध बना दिया गया। इससे सती प्रथा की बुराई कम हो गयी, बाधित रूप से विवशतापूर्वक सती होने वाली स्त्रियों की संख्या बहुत कम हो गयी। किन्तु सच्चे परिश्रम से प्रेरित होने वाली स्त्रियों का स्त्री होना पूर्ण रूप से अन्ध नहीं हुआ, अब तक भी कहीं-कहीं स्त्रियों के सती होने के समाचार आते रहते हैं।

### नियोग

#### स्वरूप

पति की मृत्यु पर विधवा होने वाली नारी के लिए प्राचीन हिन्दू समाज में तीन मार्ग बताये गये थे। पहला मनु के मतानुसार संयमपूर्ण, कठोर तपस्या और वाग्वच्य वाक्ता वैधव्य जीवन बिताना था, दूसरा पति की जिज्ञा पर चढ़ता और तीसरा लालों में बताये गये विधवा के अनुसार नियोग द्वारा संतान उत्पन्न करना था। पहले दो का अन्वय का वर्णन हो चुका है, यहाँ नियोग का प्रतिपादन किया जायगा। नियोग का सामान्य अर्थ आदेश देना है, जब किसी संतानहीन अधवा विधवा स्त्री को किसी विशिष्ट पुरुष

<sup>१\*</sup> अलेक्जर—पोजीशन आफ हिन्दू युमन, पृ० १३६-४०

के साथ सम्भोग द्वारा संबंध स्थापित करके पुत्र पैदा करने का आदेश या अनुमति दी जाती है तो इसे निर्योग कहते हैं। गौतम (१८१४-१४) ने इसका संक्षण करते हुए कहा है कि गतिहीनानारी यदि पुत्र की इच्छा रखती है तो इसे देवर से प्राप्त करे (अपतिरपत्यलिप्सुदेवरत्न)। किन्तु ऐसा करने के लिए उसे मृगजनों से आज्ञा लेनी चाहिए, सम्भोग केवल श्रुतकाल में ही करना चाहिए। जब देवर न हो तो वह सपिण्ड, सगोत्र, सप्रबन्ध से पुत्र प्राप्त कर सकती है। कुछ आचार्यों के मतानुसार केवल देवर से ही निर्योग द्वारा पुत्र प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रथा द्वारा जो से अधिक पुत्र तभी प्राप्त करने चाहिए। गौतम ने अन्यत्र (२८३२, ४१३) तथा मनु (६३२, ३३, ५३) ने निर्योग से सन्तान उत्पन्न करने वाली स्त्री को श्रेष्ठ; तथा इसमें निर्योग से होने वाले पुत्र को श्रेष्ठ, विधवा के दिवंगत पति की श्रेष्ठ या श्रेष्ठिका (विधवा स्त्री कपी खेत का स्वामी) तथा पुत्रोत्पत्ति के लिए नियुक्त देवर आदि पुरुष को बीबी (बीज बीने वाला) अथवा निर्योगी (निर्योग का कार्य करने वाला, असिष्ठ १७:६४) कहा है।

### नियोग के उदाहरण

महाभारत में हमें निर्योग के कुछ उदाहरण मिलते हैं। आदि पर्व (अध्याय ६५, तथा १०३) में यह बताया गया है कि सत्यवती ने भीष्म को यह प्रेरणा दी कि वह अपने विधंगत छोटे भाई विचित्रवीर्य के निस्सन्तान भर जाने पर उसकी विधवा रानियों से निर्योग द्वारा पुत्र उत्पन्न करे, किन्तु भीष्म ने इसे स्वीकार नहीं किया। अन्त में सत्यवती ने अपने पुत्र व्यास को इस कार्य के लिए नियुक्त किया और इसके परिणाम स्वसन धृतराष्ट्र तथा पाण्डु पैदा हुए। पाण्डु पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ नहीं था, अतः उसने अपनी रानी कुन्ती को किसी तपस्वी ब्राह्मण से पुत्र प्राप्त करने के लिए कहा। पाण्डु ने इस विषय में अनेक प्राचीन कथाएँ और दृष्टान्त कहे हैं (आदिपर्व अ० १२०-१२३) और अन्त में यह परिणाम निकला है कि निर्योग में अधिक से अधिक तीन पुत्र पैदा करने चाहिए, इससे अधिक नहीं। किन्तु यदि बीभि या पौषों पुत्र की उत्पत्ति हो जाय तो स्त्री स्वीरिणी (विलासी) या बन्धकी (बैरवा) कही जायगी। जब परशुराम ने क्षत्रियों का संहार किया तो सहस्रों अज्ञानियों पुत्रप्राप्ति के लिए ब्राह्मणों के पास जाने लगीं (आदि पर्व अध्याय ६४ तथा १०४)। महाभारत में अन्यत्र भी निर्योगविषयक कुछ उदाहरणों की बातें हैं (आदिपर्व, १०४, १७७, अनुशासन पर्व ४४।५२-५३, शान्तिपर्व ७२।१२)।

### नियोग के नियम

नियोग की व्यवस्था की नैतिक बन्धनों में समाहित बनाये रखने के लिए शास्त्रकारों ने कई कठोर नियमों का प्रतिपादन किया। यहाँ पहले कुछ शास्त्रकारों के बचन

उद्धृत विधे नामों और फिर इनके आधार पर सामान्य नियमों का प्रतिपादन किया जायगा। बौधायन धर्मसूत्र (२।२।१७) के मतानुसार क्षेत्रज्ञ पुत्र वही है जो निश्चित आज्ञा के साथ विधवा से मा तपुंसक अथवा वृन्ध पति की पत्नी से पैदा किया जाय। बलिष्ठ ने नियोग का वर्णन करते हुए लिखा है (१७।५६-६५) कि विधवा का पिता या भूत पति का भाई गुरुओं को तथा सर्वधियों को एकत्र करे और विधवा को भूतपति के लिए पुत्रोत्पत्ति का नियोग या आदेश दे। उन्मादिनी विधवा, अपने पति की मृत्यु के असह्य दुःख से अपने को न संभाल सकने वाली, रोगी या बूढ़ी विधवा को इस कार्य के लिए नियोजित नहीं करना चाहिए। पुत्रावस्था में १६ वर्ष तक ही नियोग होना चाहिए। बीमार पुरुष को नियुक्त नहीं करना चाहिए। नियुक्त व्यक्ति को पति की भाँति राखि के अन्तिम प्रहर के ब्राह्ममुहूर्त में विधवा के पास जाना चाहिए, उसके साथ न तो रति क्रीड़ा करनी चाहिए न अन्वील भक्षण और दुर्व्यवहार करना चाहिए। जन प्राप्ति के साध से नियोग नहीं करना चाहिए (लोभान्नास्ति नियोगः १७।५७)। मनु के मत में (६।५६-६९) पुत्रहीन विधवा अपने देवर से मा पति के सपिण्ड से पुत्र उत्पन्न कर सकती है, नियुक्त पुरुष को अंधेरे में ही विधवा के पास जाना चाहिए, उसके शरीर पर धूत का लेप होना चाहिए, और उसे एक ही पुत्र उत्पन्न करना चाहिए। किन्तु कुछ लोगों के मत में दो पुत्र प्राप्त करने चाहिए।<sup>१६</sup> बौधायन (२।२।९८-७०), सातबल्लभ (१।६८-६९), तथा वारद (स्त्रीपुंस ८०-८३) ने भी इन्हीं नियमों का समर्थन किया है। कौटिल्य ने १।१७ में रोगपीडित निःसन्तान राजा के लिए तथा ३।६ में निःसन्तान मर जाने वाले ब्राह्मण के लिए नियोग की व्यवस्था की है।

विभिन्न साम्प्रदायिक विधि-विधानों के आधार पर श्री पा० वा० काणे (धर्मशास्त्र का

१६ नियोग से उत्पन्न किए जाने वाले पुत्रों की संख्या के संबंध में प्राचीन शास्त्रकारों में कुछ मतभेद हैं। महाभारत के मतानुसार इनकी अधिकतम संख्या तीन थी, जब पाण्डु कुन्ती से तीन पुत्र होने के बाव नियोग से और अधिक पुत्र पैदा करने के लिए कहता है तो कुन्ती इसका घोर विरोध करते हुए कहती है कि चौथे पुत्र को आपत्ति काल में भी पैदा नहीं करना चाहिए (१।१३२।६४)। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि पारंगतित्वास्तिक युग में अतिय कुलों में इस प्रकार पुत्र पैदा करने की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। राजा श्युषितारथ ने नियोग से सात पुत्र प्राप्त किये थे और बलि ने १७। बलि के सहचर पुत्रों में छः पटरानी से हुए थे तथा ११ शूद्रा पत्नी से (महाभारत १।१२७।१११)। किन्तु सामान्य रूप से तीन पुत्र पैदा करने का ही नियम प्रचलित था। कुन्ती की बहिन भूतसेना ने तीन पुत्र पैदा किये थे (महाभारत १।१२६)। परवर्ती शास्त्रकारों ने इसकी संख्या एक या दो पुत्रों तक मर्यादित कर दी।

इतिहास भाग १, पृ० ३३६) ने नियोग के लिए निम्नलिखित नियमों की आवश्यक बताया है—(१) इसके लिए मृत पति पुत्रहीन होना चाहिए, यदि पति जीवित है तो माय्बु की मौति नपुंसकता आदि से प्रसूत होने के कारण पुत्रोत्पादन में असमर्थ होना चाहिए। (२) परिवार के गुरुजनों द्वारा निर्धारित पद्धति से पति के लिए पुत्र पैदा करने का नियोग या आदेश पत्नी को देना चाहिए। (३) नियोग करने वाला पुरुष पति का भाई (देवर), सपिण्ड या पति का ससाल (मौतम के मतानुसार सप्रवर तथा अपनी जाति का) होना चाहिए। (४) नियोग करने वाले स्त्री-पुरुष में कामजासना का पूर्ण अभाव तथा कर्तव्य पालन का भाव रहना चाहिए। (५) नियोग करने वाले पुरुष पर धृत का या तेज का लेप होना चाहिए, उसे न चुम्बन करना चाहिए और न ही स्त्री के साथ किसी प्रकार की काम-क्रीड़ा करनी चाहिए। (४) यह संबंधकेवल एक पुत्र होने तक तथा कुछ आचार्यों के मतानुसार दो पुत्र होने तक रहता है। (७) नियोग करने वाली विधवा को बूढ़ी, बंश, प्रज्वल शक्ति में असमर्थ, बीमार या गर्भवती नहीं, अपितु युवती होना चाहिए। (८) एक पुत्र की उत्पत्ति होने के बाद दोनों को एक-दूसरे से पति-पत्नी का नहीं, अपितु पण्डुर और बहू का सा व्यवहार करना चाहिए (मनु ६।६२)। (९) पति की मृत्यु के एक वर्ष बाद ही नियोग की अनुमति दी जानी चाहिए। (१०) यदि विधवा नियोग न करना चाहती हो तो उसे इस कार्य के लिए बाधित नहीं किया जा सकता। यह व्यवस्था इसलिए की गयी थी कि कामुक देवरा को भारी से अवैध संबंध स्थापित करने का बहाना न मिल सके। नियोग का कार्य इसकी अनुमति मिलने पर ही किया जा सकता था। इसके बिना अपनी भारी से नियोग करने वाले के लिए गरुडपुराण (१।१०५-४२) ने चान्द्रायण व्रत के प्राच-विचर की व्यवस्था की है। स्मृतियों ने स्पष्ट रूप से यह विधान किया है कि गुरुजनों का नियोग या आदेश पाये बिना उपर्युक्त वराओं के अभाव में यदि देवर भारी से सम्मोग करता है तो वह घलात्कार का अपराधी (अगम्यागामी) माना जायगा (मनु ६।१५, ६३, १४६-४, नारद स्त्रीपुं ८५-६)। इस प्रकार के सम्मोग से उत्पन्न पुत्र की आरज (कुलदो-षज) कहा जायगा, वह सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नहीं होगा (नारद स्त्रीपुं ८५-५) और वह उत्पन्न करने वाले का पुत्र कहा जायगा (असिप १७।६३)। नारद के मतानुसार यदि कोई विधवा या पुरुष नियोग के नियमों का उल्लंघन करता है तो उसे राजा द्वारा दण्ड दिया जायगा चाहिए, अन्यथा समाज में व्यवस्था और नैतिक अराजकता उत्पन्न हो जायगी। इन सब नियमों और नियन्त्रणों से यह स्पष्ट है कि उस समय नियोग की अनुमति कठोर प्रतिबन्धों तथा नियन्त्रणों के साथ दी जाती थी ताकि इस व्यवस्था का कामवासना की पूर्ति के लिए दुरुपयोग न हो सके तथा इससे समाज में अमैतिकता की प्रवृत्ति न बढ़े।

क्षेत्रज्ञ पुत्र की श्रेष्ठता

आवकल हमें नियोग की परिपाटी बड़ी विचित्र प्रतीत होती है, किन्तु प्राचीनकाल में

बौधायन (२।२।३-४) और मनु (६।६४-६८) जयन्ती थे। आग्रस्तम्ब का यह कहना था कि नियोग से उत्पन्न होने वाला औपज पुत्र उसके उत्पादक या जनक का होता है, यह विधवा के पति को कोई धार्मिक लाभ पहुँचाने में समर्थ नहीं होता, अतः यह व्यवस्था विनयुक्त निरर्थक है; बौधायन का भी यही मत था। मनु ने नियोग की बड़ी कड़ी निल्या की है (२।६६), उसका यह मत है कि विद्वान् ब्राह्मण इसे पशुओं का काम कह कर इसकी मर्त्यता करते हैं (अयं द्विवैद्वि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगृहीतः)। उसके मतानुसार इसका पालन नहीं करना चाहिए। किन्तु इतना तीव्र विरोध करते हुए भी उसने नियोग विषयक विस्तृत नियम दिये हैं (२।१२-६१)। इससे यह स्पष्ट है कि साम्प्रदायिकों का विरोध होते हुए भी यह प्रथा समाज में प्रचलित थी और इसीलिए मनु जैसे नियोग-विरोधी स्मृतिकारों को इसके निश्चय विधि-विधान बनाने पड़े थे।

किन्तु धर्म-जनैः कई कारणों से नियोग-विरोधी विचारधारा समाज में प्रचल होने लगी। इस समय विवाह तथा दाम्पत्य प्रेम के उच्चतम आदर्शों का विकास हो रहा था। मनु ने वति-पत्नी के लिए आभरण एवं दूधरे के प्रति सच्चा रहने तथा पति की मृत्यु के बाद विधवा के लिए ब्रह्मचर्य के आदर्श का प्रतिपादन किया, अतः नियोग को पशुओं का धर्म बताया गया। इसे पारिवारिक जीवन की पवित्रता और नैतिकता के लिए खतरा समझा गया। नियोग के नियमों में कुछ हद तक कारण देवर-भागी के सम्बन्ध अवाञ्छनीय एवं आपत्तिजनक संबंध हो सकते थे। इससे उत्पन्न होने वाली नैतिक अपराधकता का निवारण करने के लिए नियोग पर प्रतिबन्ध लगाना अवाञ्छनीय समझा गया। देवर की पहली पत्नी के लिए ईर्ष्यावश नियोग की बुरा समझना सर्वदा स्वाभाविक था, इससे अनेक प्रकार के झगड़े पैदा होने की सम्भावना थी। परिवार के अन्य व्यक्ति भी इस प्रकार नियोग से पुत्र पैदा करने पारिवारिक सम्पत्ति में अपने एक गमे हिस्सेदार के आशयन को अच्छा नहीं समझते थे। अतः इन सब कारणों से नियोग की प्रथा धीरे-धीरे लुप्त होने लगी। 'वृत्त वाक्य' में भास ने दुर्वोधन के मुँह से यह कहसकामा है कि वह पाण्डवों को राज्य का उत्तराधिकारी नहीं मानता है, क्योंकि वे नियोग से उत्पन्न हुए थे (५।२१)। गुप्त युग में नारद और पराशर ने इसे स्वीकार किया, किन्तु बृहस्पति ने इसकी निन्दा की<sup>२०</sup> इसे वर्तमान युग में करने का निषेध किया। मध्य युग के निबन्धकारों ने शास्त्र सम्मत होते हुए भी नियोग की व्यवस्था कलियुग के लिए वर्जित एवं विषिद्ध होने की घोषणा की।<sup>२१</sup>

<sup>२०</sup> बृहस्पति, मात० १।६।१८ की टीका में अपरार्क द्वारा उद्धृत  
उत्तरी नियोगो मुनिना विषिद्धः स्वयमेव तु। युगक्रमादशकयोऽयं कर्तुमन्यविधानतः।

<sup>२१</sup> अश्वालम्भं तथातम्भं संन्यस्तं पतपैतृकम्।

देवराज्य मुतोर्थात् काली पंच विवर्जयेत्।

वर्तमान युग में कार्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश के शुरुवाती समुल्लास में नियोग का समर्थन किया।<sup>२२</sup> श्री अल्लेकर के मतानुसार उन्हें निम्नलिखित यह इसलिए किया कि वे इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि हिन्दू समाज विधवाओं के पुनर्विवाह का विरोधी है, विधवा के कष्टों को दूर करने की एकाग्रता पद्धति वेदशास्त्रानुमोदित नियोग ही है। किन्तु स्वामी दयानन्द के अनुयायी कार्यसमाजी इस पुरानी पद्धति का पुनरुज्जीवन नहीं कर सके, उन्होंने नियोग के स्थान पर विधवाओं के पुनर्विवाह को अधिक अच्छा समझा।

२२ दयानन्द सरस्वती—सत्यार्थ प्रकाश सटिप्पण; वेदानन्द कृत टिप्पणी सहित, विरजानन्द वैदिक संस्थान गाजियाबाद, तृतीयावृत्ति, पृ० १०२-३



## बहुभार्यता

प्राचीन हिन्दू शास्त्रकारों ने विवाहों का शास्त्र, वैश्व, आर्ग, प्राजापत्य, आशुर, साधर्व, राक्षस और पञ्चाश नामक आठ प्रकारों में बाँटा था; किन्तु वर्तमान काल के पश्चिमी समाजशास्त्री विवाहों का वर्गीकरण पति-पत्नी की संख्या की दृष्टि से करते हैं। इन दृष्टि से उन्होंने विवाहों के चार भेद किये हैं :<sup>१</sup> एक-विवाह (Monogamy), बहुपत्नीयता या बहुभार्यता (Polygyny) बहुपतित्व या बहुभर्तृता (Polyandry) तथा गण-विवाह (Group Marriage)। एक पुरुष का एक स्त्री के साथ विवाह एक-विवाह (Monogamy) कहलाता है, एक पुरुष का कई स्त्रियों के साथ विवाह बहुविवाह (Polygamy), या बहुभार्यता (Polygyny) है। कई पुरुषों का एक स्त्री के साथ विवाह बहुपतित्व या बहुभर्तृता कहलाता है। कई स्त्रियों के कई पुरुषों के साथ विवाह को गण-विवाह (Group Marriage) कहा जाता है।<sup>२</sup> इन चार प्रकार के विवाहों में से अंतिम प्रकार हिन्दू समाज में बिलकुल नहीं पाया जाता, बहुपतित्व भी बहुत कम पाया जाता है। अतः यहाँ पहले केवल पहले दो प्रकार के विवाहों की ही मीमांसा की जायगी।

### वैदिक युग में एक-विवाह की प्रथा

वेद में स्पष्ट रूप से एक विवाह का आदेश है। ऋग्वेद के विवाह सम्बन्धी मन्त्रांशों के मंत्रों से यह बात पुष्ट होती है और आज भी प्रत्येक हिन्दू पति विवाह में पत्नी का पाणिग्रहण करते हुए यह प्रतिज्ञा करता है कि "मैं तेरे हाथ को सौभाग्य के लिए ग्रहण करता हूँ, जिससे तू पति के साथ बुढ़ापे तक पहुँचने वाली हो" (ऋ० १०।८५।३६)। विवाह के समय बर-अधू को यह आशीर्वाद दिया जाता है कि तुम दोनों यहाँ (गृहस्थ आश्रम में) झूठे रहो, दोनों कभी वियुक्त या पृथक् मत हो, पीलों तथा नातिवों के साथ खेलते हुए अपने घर में आनन्द मनाते हुए अपना सारा जीवन बिताओ (ऋ० १०।८५।४२)। अथर्ववेद में यह प्रार्थना की गयी है—"हे इन्द्र, पति-पत्नी को बकावा-बकरी के

<sup>१</sup> इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, १४ वीं संस्करण, पृ० २४६

<sup>२</sup> बेस्टरमार्क-गार्ट हिस्टरी आफ मैरिज, पृ० २२६

जोड़े की तरह में (एकट्ठा रहने की) प्रेरणा करो (अथर्व० १४।२।६)। इन मन्त्रों में पति-पत्नी द्वारा जीवन पर्यन्त एक-विवाह के उच्चैतम आदर्श को निवाहने का स्पष्ट वर्णन है।

वेद में उपमा के रूप में भी अनेक स्थानों पर एक पति-पत्नी के विवाह का वर्णन किया गया है (ऋ० १।२४।७, ऋ० ४।३।२, १०।७१।४)। वैदिक काल में पति-पत्नी के लिए दम्पती शब्द का व्यवहार होता था। वेद में दम्पती द्वारा एवम्भन होकर अनेक कार्य करने का वर्णन है (ऋ० ५।३।२)। सोम के प्रकरण में कहा गया है कि पति-पत्नी एक मन धारें होकर सोम का अभिषेचन तथा जुड़ि करते हैं (ऋ० ८।३१।५)। उपर्युक्त मन्त्रों से यह स्पष्ट है कि वेद में स्पष्ट रूप से एक-विवाह का आदेश है।

### बहुविवाह के संकेत

किन्तु अनेक स्थानों पर उपमा के रूप में और कई बार हीनोपमा के रूप में बहु-विवाह के कुछ संकेत योंही में अवश्य उपलब्ध होते हैं। ऋ० १।१०५।८ में माघण के अनुसार जित तथा स्वामी दयानन्द के अनुसार स्वाम्याध्यक्ष की एक शिकायत का वर्णन है। माघण के मत से कुर्षु में पड़ा हुआ बिलमह शिकायत करता है कि चारों ओर की घंटे उसे उठी प्रकार पीड़ा रही है, जैसे सीमें पीड़ा देती है (स मा तपत्यभित तपली-त्रिष पर्व)। दूसरे मत में न्यायाधीश बादी-प्रतिवादी की शिकायत से परेशान होकर कहता है कि मे मुझे सीतो की तरह मठा रहे है। ऋ० १।१०४।३ में सीतो के पद-संग्रह कर नदी के प्रवाह में डूब सरने की उपमा दी गयी है। ऋ० (१०।१०२।११) में दो धुराओं का बहान करने वाले बैल के साथ दो पत्नी वाले पति की उपमा का वर्णन है। ऋ० ७।१८।२ में इन्द्र को यह कहा गया है कि तू कान्तियों के साथ उठी तरह निवास करता है जैसे कि राजा स्त्रियों के साथ रहता है। अन्य स्थानों (ऋ० १।६२।११, १।१८६।७, १०।४३।१) पर भी उपमा के रूप में सपत्नियों का वर्णन है। ऋ० १०।१४५ सपत्नीबाधन अर्थात् सीतो से उल्लभ होने वाली राजाओं को दूर करने वाला सूक्त है तथा ऋ० १०।१५६ सी-दसी विषम का सूक्त है। पहले में यह आवेता है कि मेरी सीत को दूर कर और मेरे पति को केवल अर्थात् अन्य पत्नियों से रहित कर। दूसरे सूक्त में यह कहा गया है कि मैं सीतो का परामर्श करने वाली हूँ मैंने इन सीतों को जीता है। अथर्ववेद में इन्हीं मन्त्रों की पुनरावृत्ति है (३।१।८)।

### ब्राह्मणग्रन्थों में बहुभार्यता

ऐसा जान पड़ता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों के समय में आर्य जाति "पञ्चनाशेव दम्पती" के उच्च आदर्श से कुछ गिर गयी थी। राजाओं ने तथा धनियों में बहुपत्नी-विवाह की पद्धति प्रचलित हो गयी। प्रारम्भ में सम्भवतः इस पद्धति के प्रचलन का उद्देश्य पुत्र

की आकांक्षा थी। ऐतरेय ब्राह्मण (३.३.११) से हमें ज्ञात होता है कि दशबामुखमीय राजा हरिश्चन्द्र अपुत्र था, उसकी भी स्त्रियाँ थी और उनसे उसे पुत्र प्राप्त नहीं हुआ। मैत्रायणी संहिता (१.१५०) बताती है कि मनु की दस स्त्रियाँ थी। शतपथ ब्राह्मण (५.१.११.१०) के बड़े स्पष्ट शब्दों में पत्नी को पति का अर्धांग बताकर, एक-विवाह के उत्पन्न अरधरा का प्रतिपादन किया है, किन्तु अश्वमेध के प्रकरण में उसने राजा की चार स्त्रियों—महिषी, वायाता, परिबृता और पालामली का वर्णन किया है। महिषी पहली पत्नी या पदरात्री को कहते थे। वायाता का अर्थ ऐतरेय ब्राह्मण (१.२.११) में प्रिय पत्नी किया गया है। परिबृता परिपक्वा पत्नी होती थी और पालामली दरबारी अफसरों के या भीष जाति के तहाँ से आयी हुई स्त्री होती थी। रामायण (१.१.४.३५) में अश्वमेध यज्ञ के प्रसंग में इनमें से तीन स्त्रियों के नाम आये हैं और इनकी होता, अध्वर्यु, उद्गाता से तुलना की गयी है। रामायणाचार्य ने ऐतरेय ब्राह्मण (१.२.११) की टीका में वायाता के पद की व्याख्या करते हुए "भूभुवः स्वः" की तीन व्याहृतियों से राजा की तीन प्रकार की पत्नियों की तुलना करके बताया है कि राजा की तीन प्रकार की स्त्रियाँ होती हैं, उत्तम जाति वाली स्त्री को महिषी कहते हैं, मध्यम जाति से उत्पन्न की वायाता तथा नीच जातिवाली को परिबृता। अश्वमेध यज्ञ में अश्व का अभ्यंजन पत्नियों द्वारा होता था (शतपथ ब्राह्मण १.३.२.१५७)। तैत्तिरीय संहिता (६.१५.१३) में एक विशिष्ट ढंग से बहुपत्नी-विवाह का विराकरण है। उसमें कहा गया है कि जिस प्रकार एक मूष पर बहु दो रस्सियों (रजनावों) का घेरा बीजता है, उसी प्रकार एक पुरुष की पत्नियों को पाता है और क्योंकि वह एक रस्सी से दो मूर्तों का घेरा नहीं बनाता है इसलिए एक स्त्री की पतिव्रता को प्राप्त नहीं करती। इसी विशिष्ट तर्क का अनुसंधान करते हुए ऐतरेय ब्राह्मण (१.२.११) कहता है कि "इसलिए एक पुरुष की बहुत सी स्त्रियाँ होती हैं, किन्तु एक स्त्री को बहुत से पति नहीं होते।"

गृहसूत्रों में भी बहुभार्यता का प्रचलन सूचित होता है। हिरण्यकेशी तथा सांख्यन गृहसूत्रों में भुव-दर्शन की विधि में जो प्रार्थना है, उसमें अनेक पत्नियों का उल्लेख है। सांख्यन की एक विधि में कहा गया है कि सोम स्त्रियों की दृष्टि से समृद्ध है, वह मूले पत्नियों की दृष्टि से समृद्ध करे। आपस्तम्ब गृहसूत्र ने आपसियों एवं उपद्रवी के विराकरण तथा विधेय इच्छार्थ पूर्ण करने के प्रकरण में एक पत्नी द्वारा दूसरी सौतों को निर्वन्धित करने का उल्लेख किया है और इस प्रकरण में श्रुवेद के सपत्नी-वाधन सूक्त का विनिर्योग किया है। गृहसूत्रों में पारस्कर ने सर्वप्रथम यह व्यवस्था दी कि विभिन्न वर्णों के कम से ब्राह्मण की तीन पत्नियाँ—ब्राह्मणी क्षत्रिया और वैश्या होती हैं, क्षत्रिय की क्षत्रिया और वैश्या दो पत्नियाँ होती हैं और वैश्य की एक। तीनों वर्णों को वैदिक मंत्रों के बिना सूत्रा पत्नी की ग्रहण करने का अधिकार है। आगे चल कर हम देखेंगे कि बाद में अनुलोम विवाह की इस पद्धति

का प्रचलन बहुत बड़ा था और सभी धर्मसूत्रों एवं स्मृतिवर्गों ने इस नियम का समर्थन किया। यद्यपि इस समय बहुविवाह होता था, तथापि एकपत्नीत्व को बहुत अच्छा आदर्श समझा जाता था और उस समय समाज में एकपत्नीव्रत प्रचलित था। उपायार्थ (शाचनी) की विधि में उल्लेख है कि एक पत्नी वाले (उल्लरेताभ्यः एकपत्नीभ्यः) पुरुषों को विशेष प्रशिक्षण के आसनों पर बिठाया जाता था।<sup>१</sup>

बृहदारण्यक उपनिषद् (४।२।१-२) से ज्ञात होता है कि बहुपत्नी विवाह की प्रथा राजाओं के अनिर्दिष्ट दार्शनिक एवं विचारक ब्राह्मणों में भी प्रचलित थी। यहाँ स्पष्ट रूप से वर्णन है कि महर्षि याज्ञवल्क्य की कात्यायनी और मैत्रेयी नामक दो पत्नियाँ थीं।

लौकिकान् में बहुपत्नीविवाह की प्रथा का प्रचलन था। महाभारत में यह कहा गया है कि भगवान् बुद्ध के पिता को माया और महाभाया नामक दो स्त्री बहनें प्याही गयी थीं। तिब्बती अनुभूति भी इसको पुष्ट करती है। तिब्बती अनुभूति में कहा गया है कि यद्यपि शाक्यों में यह कठोर नियम था कि कोई पुरुष एक से अधिक स्त्रियों को सहन न करे, किन्तु शुद्धोदन ने राजकुमार अवस्था में पांडव नामक प्याही जाति को हराया था, अतः इस महान् कार्य के लिए उसके प्रति आदर प्रदर्शित करने के लिए उसे दो स्त्रियाँ रखने की आज्ञा दी गयी।

बन्धू जातक में यह वर्णन है कि जब एक स्त्री ने पीहुर से लौटने में देर की तो उसके पति ने दूसरा विवाह कर लिया। मघ नामक एक मागध गृहस्थ की मग्दा, सुघम्मा, चित्रा, मुजाता नामक चार स्त्रियाँ थीं। गृहस्थ जातक में एक पति ने धोखा देने वाली स्त्री को अलग करके दूसरा विवाह किया।

उत्तकाक (क्षत्रकु) राजा की पाँच पत्नियाँ थीं, बिम्बिसार की पाँच स्त्री (महा-जम्प ८।१।१५)। जातकों में दशरथ की पत्नियों की संख्या २४६ बतायी है। कुछ जातकों (सं० ५१४, ५३८) में कई राजाओं की १६००० स्त्रियों का वर्णन है, किन्तु सबसे अधिक संख्या रखने का श्रेष्ठ कुशावती के राजा सुदर्शन को प्राप्त हुआ है, उसके अन्तःपुर में २४००० रानियाँ थीं (कावेन, जातक प्रथम भाग, पृ० २३१)।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि पुरुष पहली पत्नी के रहते हुए दूसरा विवाह करते थे, बहुधा सौतेले को पहली पत्नी का कठोर व्यवहार सहता पड़ता था। कई बार पहली पत्नी संतान न होने पर पति को दूसरे विवाह की प्रेरणा करती थी, किन्तु सौतेले के गर्भवती या संतानवती होने पर उसके साथ इस आशंका से दुर्व्यवहार करती थी कि पति का प्रेम अब उसकी सौतेले के साथ हो जायगा। धम्मपद (१।४५) की टीका में व्यावस्ती के एक गृहस्थ का वर्णन है जिसने पहली पत्नी से संतान न होने पर उसकी प्रेरणा से सन्तानार्थ

<sup>१</sup> बी. एम. जायन्—सोशल एण्ड रिलीजस लाइफ इन द गृहसूत्राज्।

दूसरा विवाह किया। दूसरी स्त्री के गर्भवती होते पर पहली पत्नी ने वसि के प्रसाद प्रेम के छिन जाने के डर से दवाइयों द्वारा अपनी सौत का गर्भपात कराया। इस प्रकार तीन बार उसने यह कुकर्म किया और तीसरी बार उसकी सौत गर्भपात तथा दवाई के प्रभाव से मर गयी।

बौद्ध ग्रंथों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि बहुपत्नी-विवाह की प्रथा पहले राजाओं में थी और उसके बाद यह बुराई राजाओं से ब्राह्मणों ने ग्रहण की, ब्राह्मण धार्मिक गुल में धारवन्ती में उत्कालीन ब्राह्मणों के अधःपतन की क्रिया पर प्रकाश डालने हुए बूढ़ ने इसका वर्णन किया है।

अम्बष्ठ सुत में भगवान बूढ़ ने उस समय के ब्राह्मणों की प्रानीन ज्ञान के ब्राह्मणों से तुलना की है तथा अम्बष्ठ नामक एक ब्राह्मण के मुख से ब्राह्मणों में उग समय प्रचलित बुराईयों का स्वीकार कराया है। इन बुराईयों में एक बुराई बहु-विवाह भी है।<sup>५</sup> आयवध सुत में एक पृथ्वी के घर में चार भार्याओं का वर्णन है।<sup>६</sup> राष्ट्रपाल जब बौद्ध संन्यासी हुआ तो उसके पिता ने उसे संन्यास से लौटाने के लिए अपने घर में भोजन का निमंत्रण दिया और सोने की बड़ी राशि एकत्र करके राष्ट्रपाल की स्त्रियों की आमंत्रित किया—“माओ, बहुओं, जिन अलंकारों से अलंकृत हो पहले राष्ट्रपाल कुलपुत्र का तुम प्रिय होती थी, उन अलंकारों से अलंकृत होओ।” बाद में ये स्त्रियाँ राष्ट्रपाल से बोलीं—“भार्य-पुत्र, कैसी है वे अस्तरायें हैं, जिनके लिए तुम ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हो” (बुद्धचर्या पृ० ३५५-६)। बौद्ध वाङ्मय के इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि उस समय हिन्दू समाज में बहुपत्नी-विवाह का पर्याप्त प्रचलन था।

### बहुभार्यता तथा धर्मसूत्र

धर्मसूत्रकारों में आपस्तम्ब ने बहुविवाह की प्रवृत्ति की रोकता जाहा। विवाह का वैदिक आदर्श एवं उद्देश्य पुत्र की प्राप्ति तथा धर्म का पालन है, इन दो उद्देश्यों के अतिरिक्त अन्य किसी उद्देश्य से किया जाने वाला विवाह निन्दनीय होना चाहिए। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (२।४।११।१२-१३) ने इन दो उद्देश्यों के अतिरिक्त विवाह को न केवल निन्दनीय, अपितु दंडनीय ठहराया है। उसने स्पष्ट शब्दों में यह विधान किया कि पत्नी यदि धर्म और संतान से सम्पन्न होती पुरुष दूसरी स्त्री को ग्रहण न करे, यदि धर्म और संतान में से कोई एक उद्देश्य पत्नी से सम्पन्न न हो तो दूसरी पत्नी को ग्रहण करे। इस नियम का अतिश्रमण करके दूसरी स्त्री ग्रहण करने वाले

<sup>५</sup> अंगुत्तर निकाय ३।४।५ बुद्धचर्या पृ० ३५०

<sup>६</sup> मज्झिम निकाय २।४।२

<sup>७</sup> राष्ट्रपाल सुत बुद्धचर्या पृ० ३५५-५६

के लिए उसने यह बंध व्यवस्था की है कि यह गर्भहीनता के बाधों वाला हिस्सा ऊपर रखते हुए धारण करे तथा छः मास तक सात घंटों से भिन्ना भयंकर विचारों को (१।१०।२८। १६) । किन्तु आपस्तम्ब की एक पत्नी-विवाह की यह बाध व्यवस्था अन्य धर्मसूत्रों में उपलब्ध नहीं होती। बसिष्ठ धर्मसूत्र (१।२४) ने बहुपत्नी-ग्रहण की ओर व्यवस्था की है, पिछले स्मृतिकारों ने उसका पूरा अनुसरण किया है। इस व्यवस्था के अनुसार वर्ण-न्यूनता की दृष्टि से ब्राह्मण की तीन स्त्रियाँ, क्षत्रिय की दो और वैश्य की तथा शूद्र की एक स्त्री होती है। वर्णानुषंगों का यह आशय है कि ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य से ऊंचा होने के कारण ब्राह्मणों के अतिरिक्त क्षत्रिया और वैश्यों की पत्नी के रूप में ले सकता है, अतः उसकी तीन स्त्रियाँ होती हैं और इसी तरह क्षत्रिय की दो और वैश्य तथा शूद्र की एक।

समस्त शब्दों में कहा जाय तो ब्राह्मण की इस प्रकार बहुविवाह के मामले में सबसे अधिक छूट दे दी गयी। वह तीनों वर्णों की कन्याओं से विवाह कर सकता था। बुद्ध ने भी ब्राह्मणों द्वारा निम्न वर्णों की पत्नियाँ लेने का वर्णन किया है। बसिष्ठ धर्मसूत्र से हमें यह ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों में अपने से नीचे की तीनों वर्णों की स्त्रियों से विवाह का निन्दा उस समय प्रचलित था। बसिष्ठ धर्मसूत्र से हमें यह भी ज्ञात होता है कि आर्य उस समय काले रंग वाली शूद्र स्त्रियों को भी लिया करते थे, किन्तु धार्मिक कार्यों में वह उनकी पत्नी नहीं समझी जाती थी। बसिष्ठ धर्मसूत्र कहता है कि अग्नि का चयन करके अर्घात् अग्निहोत्र की विधि पूरी करते शूद्र के पास न जाय। कृष्ण-वर्ण शूद्रा रमण के लिए ही होती है, धर्म के लिए नहीं। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की स्त्री उस समय धर्म-पत्नी नहीं होती थी, किन्तु उपपत्नी (Concubine) का रखीत मात्र होती थी। बौधायन धर्मसूत्र ने आपस्तम्ब की पुत्र न होने की शर्त को कुछ अधिक स्पष्ट किया है। ऐसा जान पड़ता है कि पुत्र न होने की शर्त का कुछ दुस्प्रयोग होने लगा था। पुरुष एक दो वर्ष तक पुत्र न होने पर ही दूसरा विवाह कर लेते होंगे। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए बौधायन धर्मसूत्र (२।२।६) ने यह व्यवस्था की है कि पुरुष संतान न होने पर दसवें वर्ष और यदि कन्याएँ ही उत्पन्न होती हों तो १२वें वर्ष अपनी पत्नी का त्याग करे। बौधायन की यह व्यवस्था बहुत उत्तम है, किन्तु उसके बाद उसने पुरुषों को अप्रियवादिनी होने पर पत्नी को छोड़ने की ओर व्यवस्था की है, वह हिन्दू नारी के लिए अगली शतियों में बहुत भयंकर सिद्ध हुई। उससे पुरुषों को पड़ोसी स्त्री छोड़कर अन्य स्त्रियों से शादी करने के लिए एक बड़ा सुगम बहाना मिल गया।

बहुभार्यता तथा कौटिल्य

कौटिल्य ने बौधायन की शर्त पुत्र न होने की शर्त की अधिक स्पष्ट व्याख्या की। कौटिल्य (२।२) ने यह व्यवस्था की कि यदि पत्नी पुत्रहीनता अपना

बाँस है तो पुरुष दूसरा विवाह करने से पहले आठ वर्ष प्रतीक्षा करे। यदि अन्धे भरे हुए पैदा होते हैं तो १० वर्ष तक प्रतीक्षा करे और यदि कण्ठवाही हो उत्पन्न होती है तो १२ वर्ष तक प्रतीक्षा करे, इसके बाद यदि वह पुत्र के लिए उत्पुङ्ग है तो दूसरा विवाह करे। यदि वह इस नियम का उल्लंघन करता है तो उसे राजा की २४ पण दण्ड देना पड़ेगा तथा स्त्री की कुछ सम्पत्ति उसे धन के रूप में देनी पड़ेगी। कौटिल्य ने यद्यपि आगे चल कर यह कहा है कि एक पुरुष कई स्त्रियों से शादी कर सकता है बशर्त कि वह उन स्त्रियों को जिन्हें विवाह के समय कुछ नहीं दिया गया था त्याग करने के समय कुछ धन (अग्निवेद्यनिक) दे तथा उनके जीवन-निवर्द्धि का उचित प्रबंध करे, क्योंकि स्त्रियों के साथ विवाह पुत्र उत्पन्न करने के लिए ही किया जाता है (अर्पणसूक्त ३।२)। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि पुत्र का अभाव ही कौटिल्य को दूसरे विवाह के लिए उपयुक्त कारण जान पड़ता था, न कि अग्निवेद्यादिनी होने का निम्सार कारण और वह इस कारण दूसरी स्त्री से विवाह करने वाले पुरुष की दण्डनीय समझता था।

### वधुभार्यता तथा स्मृतियाँ

गारद के अतिरिक्त अन्य स्मृतिकारों ने बहुविवाह की आपत्तम्य तथा कौटिल्य की भाँति बुरा नहीं समझा। मनुस्मृति (४।१६७-१६८) ने तथा याज्ञवल्क्य स्मृति (१।८६) ने पति को पहली पत्नी के मरने पर और दूसरा विवाह करने की आज्ञा दी है। गृह्यसूक्त की धर्मकार्य के लिए पहली पत्नी के मरने पर दूसरी पत्नी का ग्रहण करना उचित ही है, पुत्र न होने की वशा में भी मनु (६।८१) ने दूसरी पत्नी के ग्रहण का विधान किया है, किन्तु उसके साथ उसने बौधायन की अग्निवेद्यादिनी की वत्त की पुहराया है। इसके अतिरिक्त मनुस्मृति में पहली पत्नी को छोड़ने के अन्य बहुत से कारण बताये गये हैं। पति को उचित है कि मदिरा पीने वाली, निषिद्ध आचरण करने वाली, पति से विमुख रहने वाली, असाध्य रोग से पीड़ित, गर्भ आदि नाश करने वाली, बहुत व्यय करके धन नष्ट करने वाली पत्नी के जीवित रहने पर भी दूसरा विवाह कर ले। कौटिल्य की तरह याज्ञवल्क्य (२।१४८) पहली पत्नी के लिए स्त्रीधन की व्यवस्था करता है। इस दृष्टि से मनु की व्यवस्था बहुत कठोर है, क्योंकि उसमें पहली पत्नियों को किसी प्रकार के धन को देने का उल्लेख नहीं किया गया। दूसरी पत्नी के आने पर पहली पत्नी की जो शोचनीय दशा हो जाती है, वह सभी जानते हैं। उस समय उसे केवल कुछ धन से ही मुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने का संतोष प्राप्त हो सकता है। मनु ने यह संतोष उन दुःखग्रस्त स्त्रियों को नहीं दिया। याज्ञवल्क्य इस दृष्टि से अवश्य उदार है कि उसने अधिविधवा (पहली स्त्री) को धूलक देने की व्यवस्था की है (२।१४८)। किन्तु यदि कोई पति पत्नी पर झूठ-मुठ कोई दोष लगाकर दूसरी

स्त्री से शादी करता है तो उसके लिए किसी प्रकार की दंड व्यवस्था नहीं की गयी है।

मुद्रकाल के समुद्र एवं उच्च आदमी को प्रतिफलित करने वाली नारद-स्मृति को ही यह गौरव प्राप्त है कि पतियों द्वारा उपर्युक्त बातों का दुष्प्रयोग करने पर उसने उनके लिए दण्ड की व्यवस्था की है। यदि कोई पति अनुकूल, अपशब्दों का प्रयोग न करने वाली, दक्ष, साध्वी, संतान वाली स्त्री को छोड़ता है तो राजा को उसे बाड़ा वण्ड देकर डीक मार्ग पर लाना चाहिए (श्री पुसयोग ६२)। किन्तु अपने स्मृतिवाचकों ने मनु द्वारा वर्णित दोषों वाली पहली स्त्री के रहते हुए अनुलोम विवाह द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के बहुविवाह के अधिकार को स्वीकार किया है।

याज्ञवल्क्य स्मृति (१।७३, मि० मनु० ६।५०) ने विधान किया है कि पति को उचित है कि मदिरा पीने वाली रोमप्रसू रहने वाली, भूर्त, वन्द्या, बहुत खर्च करके धन का नाश करने वाली, अप्रिय बचन वाली, कन्या पैदा करने वाली और पति से द्वेष करने वाली स्त्री के रहते हुए दूसरा विवाह कर ले। इस से स्पष्ट है कि बहुविवाह का रोग उस समय बहुत प्रचलित हो चुका था और उसको गम्योचित सिद्ध करने के लिए उपर्युक्त नये दोष पत्नी में डूँढ़े गये। ऐसी पत्नियों का पति से दृष्ट होना स्वभाविक था, अतः मनु ने ऐसी पत्नियों के लिए दंड की भी व्यवस्था की है। दूसरा विवाह करते पर यदि पहली पत्नी कुपित होकर घर से बाहर निकले तो उसे रोक कर रखे अथवा उसे पिता के घर पहुँचा दे। मनु (३।१२।१३) यह मानता था कि पुरुष विवाह केवल धर्मकर्म के लिए ही नहीं करते, अपितु उनके विवाह कामवाचना से प्रेरित होकर भी किये जाते हैं और उन विवाहों के लिए वसिष्ठ की तरह मनु ने अनुलोम क्रम से ब्राह्मण को चारों वर्णों की स्त्रियाँ, क्षत्रियों की तीन, वैश्यों की दो तथा शूद्र की एक स्त्री ग्रहण की स्वीकृति दी है (मनु० ३।१७)। अगले श्लोकों से (३।१४-१६) स्पष्ट है कि मनु (३।१७) इस अनुलोम विवाह का घोर विरोधी था और उसने अनुलोम विवाह का वर्णन केवल इसलिए किया कि यह उस समय के समाज में प्रचलित था। मनु ने एक-विवाह के आदर्श को स्पष्ट शब्दों में उद्घोषित किया है। पति-पत्नी विवाह करके ऐसा चल करे कि वे एक दूसरे के अविच्छेद होकर रहते हुए कभी भी परस्पर नियम का भंग न करें। पति-पत्नी आभरण एक दूसरे के प्रति रखें, वही संक्षेप में स्त्री-पुरुष का परम धर्म (मनु० ६।१०१-२) है।

दूसरा विवाह करने के विषय में मनुस्मृति का यह आदर्श था कि रोनिणी स्त्री भी यदि पति के हित में उत्तर और सुसज्जा हो तो उसकी अनुमति लिये बिना पति दूसरा विवाह न करे। ऐसी पत्नी निरादर करने योग्य नहीं है (मनु० ६।५२)। किन्तु मनु ने पत्नियों को यह परामर्श मात्र ही दिया है। पति यदि पत्नी का निरादर करके दूसरा विवाह करता है तो उस पति के लिए मनु ने कौटिल्य या आपस्तम्ब



की भाँति किसी दण्ड की व्यवस्था नहीं की है। मनु (११।५) से यह विदित होता है कि बंगाल के कुलीन ब्राह्मणों की तरह उस समय के ब्राह्मण संतान होने पर भी धन के लोभ से विवाह किया करते थे। मनु ने ऐसे विवाहों की निन्दा की है और उनका प्रचलन घटाने के लिए यह व्यवस्था की है कि इस प्रकार के विवाह से उत्पन्न पुत्र ब्राह्मण का नहीं होगा, अपितु धन देने वाले का होगा। मनु के मन्व इस प्रकार है—“अथ कोऽपि ब्राह्मण पृथ्वी स्त्री रहते पर (कन्यादि आदि के मिमिक्षा के बिना—कुल्लूक) किसी से धन माचन करके अपना दूसरा विवाह करता है, तब उसको इस विवाह से केवल रतिकान्त मिलता है। पिछली स्त्री में उत्पन्न सन्तान धन देने वाले की होती है” (मनु० ११।५)।

आजकल की तरह मनु के समय में भी दोनों वाली कन्या के बदले अच्छी कन्या दिखाकर पिता विवाह के समय दौप वाली कन्या का दान किया करते थे। कौटिल्य (अध्याय ४६) ने इस व्यवस्था में दौप वाली कन्या को छोड़ने की व्यवस्था की है। किन्तु मनु कहता है कि दौप वाली कन्या के साथ दूसरी निर्दोष या उत्तम कन्या को भी ले ले (मनु ८।२०४)। जब कोई व्यक्ति घर की उत्तम कन्या दिखाकर विवाह के समय निरुद्ध कन्या दे ती इस अपराध के दण्ड में उसे एक ही शूलक में दोनों कन्याओं का विवाह उस घर के साथ कर देना पड़ेगा, ऐसा मनु ने कहा है (८।२०४)। याज्ञवल्क्य (१।६६), व्यास (२१।६७) तथा नारद (३१-३३) भी इस प्रकार की व्यवस्था करते हैं। इन सब में धोखा देने वाले को दण्डीय अपराधी बताया गया है, किन्तु इन सबने मनु की इस विचित व्यवस्था का समर्थन नहीं किया कि घर दोनों कन्याओं से शादी कर ले। सच्ची बात तो यह है कि वर्तमान मनुस्मृति के निर्माणकाल (१५० ई० पू०) से पहले ही हिन्दू समाज में बहुविवाह की प्रथा प्रचल हो चुकी थी। महाभाष्य (१८० ई० पू०) में याज्ञिकीय सूत्र २।२।२५ पर यह कहा गया है कि अज्ञात वस्तु के पुछने में बहुवचन का प्रयोग करना चाहिए, जैसे आपके कितने बच्चे हैं, आपकी कितनी स्त्रियाँ हैं।<sup>१</sup> स्पष्ट है कि बहुविवाह प्रचलित रहने के कारण ही यहाँ स्त्रियों याता बहुवचनान्त उदाहरण दिया गया है। व्यास (२।५०) ने मनु की बातों पर ही यति को दूसरे विवाह की अनुज्ञा दी।<sup>२</sup> देवल स्मृति ने स्पष्ट रूप से कहा है कि भूत की एक स्त्री होती है, वैश्य की दो, क्षत्रिय की तीन, ब्राह्मण की चार तथा राजा की पंचेष्ट।<sup>३</sup>

<sup>१</sup> महाभाष्य २।२।२५ केचित्ताववाहुरनिज्ञातेऽयं बहुवचनम् प्रयोक्तव्यमिति ।

तद्यथा कति भवतः पुत्राः कति भवतो माया इति ।

<sup>२</sup> व्यास स्मृति २।५० धूर्ता च धर्मकाममनोमपुत्रा वीर्यरोगिणीम् ।

मुमुष्टीं व्यसनाततां नारोग्यधियेदयेत् ॥

<sup>३</sup> देवल स्मृति, एका शूद्रस्य पंचस्य द्वौ तिस्रः क्षत्रियस्य च ।

वत्सः ब्राह्मणस्य स्युर्भायां राज्ञो पंचेष्टतः ॥

**बहुभार्यता तथा रामायण**—रामायण में यह स्पष्ट है कि पुत्र न होने की दशा में पुरुष अनेक विवाह किया करते थे। दशरथ ने कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा से सन्तानार्थ ही विवाह किया। तीन विवाहों के बाद भी सन्तान न होने पर पुत्रोष्टि यज्ञ से उनकी चार सन्तानें हुईं। यह सहायनीत्व ही दशरथ की अकाल मृत्यु का कारण हुआ। कैकेयी दशरथ की प्रिय नहीं थी। एक और सत्यसन्ध राजा कैकेयी को विधे भये अन्धकार को पुरा करने के लिए बाधित थे और दूसरी ओर राम के राजा बनने के न्यायपूर्ण अधिकार पर वे कैकेयी के कुठाराघात को सहन नहीं कर सकते थे। वे बड़ी बुद्धि में थे और मृत्यु ने ही उनको इस और मानसिक दुःख का अन्त किया। किन्तु कौशल्या को अपनी मौत के कारण होने वाला दुःख बड़े कष्ट से झेलना पड़ा। उसने अत्यधिक हृदयविदारक शब्दों में काव्य बिलाप करते हुए कहा है (रामायण २।२०।३८-४४) —“मति से मैंने किसी प्रकार का कल्याण या सुख नहीं प्राप्त किया, हे राम, पुत्रसुख देखने की आशा से मैंने जीवन धारण किया था। अपने में छोटी आयु की सीतों से अपमानित होते हुए मैं उनके हृदय-विदारक वचन सुनती हूँ। स्त्रियों के लिए इससे बड़कर क्या दुःख हो सकता है? तेरे पास रहते हुए भी मैं इस प्रकार तिरस्कृत थी, हे प्रिय पुत्र, तेरे दूर चले जाने पर तो मेरी मृत्यु हो जायगी। जो कोई (नौकर) मेरी सेवा करता है, मेरा अनुसरण करता है, कैकेयी के पुत्र (भरत) को देखकर वह मुझसे बात नहीं करता। कैकेयी के बराबर या (मान में) उससे बड़ी होंगे पर भी कैकेयी की दासियों ने मुझे बहुत सताया है। हे राम, तुझे पैदा हुए १७ वर्ष बीत गये। ये वर्ष मैंने अपने बापों के तप्य होने की आकांक्षा से बिताये थे।”

**पुरु और ध्रुव के जवाहरण**—बहुविवाह में जब राजा एक पत्नी के पुत्र से अधिक प्रेम करता है और दूसरे की उपेक्षा करता है तो उन पुत्रों की दशा दयनीय हो जाती है। ऐसी सोचनीय दशा में अनुभवशील पुत्र कौशल्या की तरह मौत मीमांसा करते हैं। तदुप के पुत्र राजा ययाति की शर्मिष्ठा और देवयानी नामक दो पत्नियाँ थीं। ययाति शर्मिष्ठा से और उससे बेटे ध्रुव से बहुत प्रेम करता था। देवयानी का पुत्र यदु यह अन्धाप न सह सका, वह अपनी माता से कहता है—“भृगुवर्षी कुल में उत्पन्न होकर तू इस हादिक दुःख एवं दुःसह अज्ञान को सह नहीं है। हम दोनों दुःख से मुक्ति पाने के लिए एक साथ अग्नि में प्रविष्ट होते हैं, राजा वैश्यपुत्री शर्मिष्ठा के साथ सुख से रहे। यदि तुझे यह दुःख सह्य हो तो तू मुझे अग्नि में प्रवेश की आज्ञा दे।” देवयानी ने जब अपने पुत्र के ये वचन सुने तो उसे बहुत हुआ, क्षोभ एवं क्रोध हुआ। उसने अपने पिता को स्मरण करते बुलाया और यह कहा —“हे मुनिश्रेष्ठ, मैं तीक्ष्ण विष खा लूँगी, अग्नि में जलकर या पानी में डूबकर मर जाऊँगी, किन्तु अब मैं जी नहीं सकती। राजपति ययाति मेरी अवज्ञा करता है और मेरा सत्कार नहीं करता। इस पर भार्गव ने ययाति को जाप दिया कि तुमने मेरा अपमान किया है अतः तुम्हारा शरीर जीर्ण-जीर्ण हो जायगा (रामा० ७।१५।८७-२४)।

ध्रुव के ईश्वरभक्त बनने में उसके पिता उत्तामपाद का उसकी माता सुनीति के साथ किया जाने वाला उपेक्षापूर्ण व्यवहार था। अपनी चहेती स्त्री सुरभि के सौतिषा डाह के कारण सुनीति को बड़ा कष्ट भोगना पड़ा। सुरभि के पुत्र उत्तम के साथ सुनीति के पुत्र ध्रुव ने भी जब राधा की गोद में बैठना चाहा तो सुरभि ने उसे अपमानपूर्ण शब्दों में कहा—'हे ब्रह्म, यह उच्छ्वाभिलाषा छोड़ दो, तुम हीन स्थिति रखने वाली सुनीति के गर्भ से उत्पन्न हुए हो, यह स्थान सर्वश्रेष्ठ है। अतः तुम्हारे लिए यह उपयुक्त नहीं है। मेरा पुत्र उत्तम ही इस पर बैठ सकता है।' (विष्णुपुराण अंश १ अध्याय ११)। रामायण में बहुविवाह के उपर्युक्त संकेतों के होते हुए मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र ने जीवन पर्यन्त एक विवाह के उच्च आदर्श को निवाहा तथा अश्वमेध के समय पत्नी की आवश्यकता अनुभव होने पर भी उन्होंने विवाह नहीं किया, अतितु पत्नी का अभाव पूर्ण करने के लिए सीता की स्वर्णभूषी प्रतिमा का निर्माण कराया।

**बहुभार्यता तथा महाभारत**—महाभारत में बहुपत्नी-विवाह के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। भीष्मपितामह विजितवीर्य के लिए, अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका नामक तीन कन्याएँ काशीराज के स्वयंवर में से जीतकर लाये थे। पाण्डु की कुली और माद्री नामक दो पत्नियाँ थीं। धृतराष्ट्र के सेवकों होने पर उसकी पत्नी गांधारी ने आजीवन अपनी आँखों पर पट्टी बाँधकर पालिश्रम का उज्ज्वल आवेश रखा, किन्तु गांधारी की गर्भावस्था के दिनों में एक बेध्या ने धृतराष्ट्र की सेवा की तथा युयुत्सु की उत्पत्ति किया था (महाभारत १।११।४।४९)।<sup>१०</sup> उसके १०२ पुत्रों की भी अनेक रानियों का वर्णन मिलता है। दुर्योधन की दो रानियाँ प्रसिद्ध हैं, इनमें एक युवराज लक्ष्मण की माता है और दूसरी रानी कलितराज की कन्या को दुर्योधन स्वयंवर से अपहरण करके लाया था। इन रानियों के अतिरिक्त दुर्योधन के अन्तर्पुर में स्त्रियों की कोई कमी नहीं थी। सम्भवतः (२।४६) में जब दुर्योधन पाण्डवों की समृद्धि पर ईर्ष्या करता है और दुःखी होता है तो धृतराष्ट्र उसे सान्त्वना देते हुए कहता है कि तू मर्त्य दुःखी होते हो, तुम्हारे लिए बहुमूल्य विलोमे, सुन्दर स्त्रियाँ, नाना प्रकार के साज सजे हुए घर और इच्छानुसार भ्रमण करने के स्थान प्रस्तुत हैं (महा० २।३६।१०)।<sup>११</sup> दुर्योधन के भाइयों के भी इस प्रकार के महल थे और बाद में पाण्डवों ने उन पर अधिकार किया (महा० १२।४४)।

<sup>१०</sup> महाभा० १।११।४।४९ गांधारीः क्लिश्यमानाया उदरेण त्रिवर्धता ॥

धृतराष्ट्रं महाराजं वंशपार्यचरत्किल ।

<sup>११</sup> महाभा० २।३६।१०, शत्रुनानि महाहानि योषितश्च मनोरमाः ।

गुणवन्ति च वेश्मानि विहारश्च यथागुहम् ॥

महाभारत में विदुर की एक पत्नी बतलायी गयी है किन्तु जातक कथाओं में उसके ६ महलों, १००० स्त्रियों तथा ७०० वेश्याओं का उल्लेख है (जातक सं० ६०१ कावेन पृ० २१६)। पहली पत्नी दुःशला के होते हुए शाल्व की राजकुमारी के साथ दूसरा विवाह करने के लिए जाते हुए जमदग्नि को मार्ग में द्रौपदी मिली। उसने द्रौपदी का भी अपहरण करना चाहा। शनिमयी के अतिरिक्त श्री कृष्ण की सत्यभामा, कालिन्दी आदि आठ पत्नियाँ थीं। इनके अतिरिक्त प्राग्योतिषपुर के राजा मरकासुर का वध करने से उसकी १६००० कन्याएँ भी श्रीकृष्ण की पत्नियाँ बनीं। द्रुपद ने पांडवों को द्रौपदी के साथ १०० युवती वासियाँ प्रदान की थीं (महा० २।४६।१८)। इनके महलों में अन्य भी बहुत सी युवती वासियाँ थीं। द्रौपदी इनको अच्छी तरह पहचानती थी और समुद्रा के तट पर पाण्डव द्रौपदी और सुमित्रा को तथा इन सबको साथ लेकर भ्रमण करने जाया करते थे। पांडवों की राजसूय यज्ञ के समय अपने अधीनस्थ राजाओं से इतनी अधिक भवती वासियाँ मिली थीं कि दुर्योधन अपने पिता को पांडवों का वैभव सुनाता हुआ बड़े दुःख से यह कहता है कि युधिष्ठिर के राज्य में ८८ हजार ब्राह्मण हैं और वह प्रत्येक के लिए ३० दासियों का भक्षण-पोषण करता है (महा० २।४६।१८-१।२२४)। द्यूत में हारने पर पांडवों से यह विद्याल दासीयनुदाय छिन गया, किन्तु महाभारत युद्ध के बाद हारे हुए एवं भारे गये राजाओं के परिवारों से यह फिर पूरा हो गया (महाभारत १२।४४)। महाभारत काल के चेदि, मगध और मत्स्य देशों के तथा पांडवों के राज-वंशों में बहुपत्नीकता की प्रथा प्रचलित थी। नेदिराज शिशुपाल ने अपनी पहली पत्नी के होते हुए भी तपस्वी बभ्रु तथा मद्रा वैजाली का अपहरण किया (२।४५।११-१२)। जगध के राजा जरासंध की दो कन्याएँ अस्ति और प्राप्ति कंस से ब्याही गयी थीं (महा० २।१४।३२)। मत्स्यराज विराट की सुदेष्णा कौकेयी और कीचकी नामक दो पत्नियाँ थीं। विराट के पुत्र उत्तर के बिलासो जीवन से स्पष्ट है कि मत्स्यराज का एक विवाह अन्तःपुर था। पादव राजा भी बहुपत्नीक थे। बुष्णि शाकवित् (२।२।६३) को १० बहिनें ब्याही गयी थीं जिनसे १०० लड़कियाँ उत्पन्न हुई (भाग्यपुराण ६६।६३) जंकूर की सुतनु औष्मिनी, रत्ना शैव्या तथा अस्तिनी नामक तीन पत्नियाँ थीं। ब्रह्मपुराण (अ० १२६-१३१) में श्रीकृष्ण जी के पिता यमुदेव की बीस स्त्रियों का पूरा ब्यौरा दिया गया है।

श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न ने शुभांगी वेदभी, प्रभावती और मायावती से विवाह किया था। दूसरे पुत्र सान्व ने भी दो विवाह किये थे। कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध ने स्वम-वती से तथा बाणासुर की कन्या उषा से विवाह किया था। पाँचों पांडवों में से प्रत्येक की द्रौपदी के अतिरिक्त कई स्त्रियाँ थीं। युधिष्ठिर की देविका नामक स्त्री थी (आदि पर्व ६५।७६)। भीम की वलम्बरा और त्रिभुवा नामक दो अन्य पत्नियाँ थीं। अर्जुनकी सुभद्रा, चित्रांगदा और उलूपी नामक तीन स्त्रियाँ थीं।

सहदेव की दूसरी स्त्री मद्रराज की कन्या विजया थी और इसी तरह नकुल की भी दूसरी पत्नी चेदि की राजकुमारी करेणुमती थी। (महा० १।६३।७२-८६)।

महाभारतकार पुरुषों के लिए बहुभार्यता में कोई दोष नहीं समझता, आश्वमेधिक पर्व में चित्रांगदा अपने पति अर्जुन तथा गूज बभ्रुवाहन के मूर्च्छित हो जाने पर विलाप करती हुई जलूनी से कहती है—“हे मुभगे, पुरुषों के लिए बहुभार्यता (अनेक पत्नियाँ रखना) अपराध नहीं है, स्त्रियों के लिए यह अपराध है” (महाभा० १।४।८०। १५)। ब्रह्मवध पर्व में एक ब्राह्मणी अपने पति से आग्रह करती है कि उसका पति बक के पास न जाय, किन्तु बक की पति बगने के लिए वह स्वयं जायगी, क्योंकि पुरुषों द्वारा अनेक स्त्रियाँ प्रवृत्त करने में दोष नहीं है। मनुष्यों का अधिक स्त्रियाँ करने में कोई अधर्म नहीं है, किन्तु पूर्व पति का छोड़ने में स्त्रियों के लिए बहुत बड़ा अधर्म होता है (महा० १।१६।३५)। द्रुपद ने अपनी कन्या का पाँचों पाण्डवों की साधारण पत्नी बनाने का विरोध करते हुए कहा है कि एक पुरुष की अनेक स्त्रियाँ हान्सी हैं, किन्तु एक स्त्री के बहुत पति नहीं होते (महा० १।१६।३७)।

पति का अपनी अनेक पत्नियों के साथ तुल्य व्यवहार करना भित्ता कठिन है, महाभारतकार ने यह तथ्य चन्द्र और उसकी पत्नियों के मनोरंजन रूपक से साधनाया है। शल्यपर्व (३५ अ०) में बताया गया है कि दश प्रजापति की २७ पुत्रियाँ थीं। उसने सत्ताइसों कन्याएँ चन्द्रमा को ब्याह दीं। वे सब बड़े-बड़े देवों वाली और असाधारण रूपवाली थीं, किन्तु उनमें से रोहिणी सबसे अधिक रूपवती थी, इसलिए चन्द्रमा उसी से अधिक प्रेम करता और सब उसी के घर में रहता था। इस कारण बाकी सब स्त्रियाँ चन्द्रमा से दूष्ट हो गयीं और वे अपने पिता दक्ष से कहने लगीं कि चन्द्रमा हमारे पास आकर नहीं रहता, इसलिए हम आपके पास रहकर तपस्या करेंगी। यह सुनकर दक्ष ने चन्द्रमा से कहा कि तुम ऐसा महान् अधर्म मत करो और सबसे समान प्रेम रखो (सर्वं सर्वस्व भार्यायु)। फिर अपनी कन्याओं से कहा, कि “तुम चन्द्रमा के घर चली जाओ। यह हमारी आज्ञा से सबसे समान प्रेम करोगे।” वे चन्द्रमा के घर गयीं, पर चन्द्रमा फिर भी रोहिणी से पहले जैसा विशेष प्रेम करता रहा। कन्याओं ने पुनः अपने पिता के पास आकर चन्द्रमा की शिकायत की। दक्ष प्रजापति ने इस बार पुनः चन्द्रमा का यह चेतावनी दी कि तुम सब स्त्रियों से समान व्यवहार करो नहीं तो मैं तुम्हें शाप दूंगा। (सर्वं सर्वस्व भार्यायु मा त्वा शाप्स्ये विरोधन)। किन्तु चन्द्रमा उनकी चेतावनी का मिराधर करके फिर भी रोहिणी के ही साथ रहने लगा। कन्याएँ क्रुद्ध होकर तीसरी बार पिता के पास गयीं और प्रणाम करके कहने लगीं—“चन्द्रमा ने आपके वचन को नहीं माना, वे हमसे प्रेम नहीं करते, वे सदा रोहिणी के घर में ही रहते हैं, इसलिए

आप हमको या तो ज़रण दीजिये अथवा ऐसा उपाय कीजिये जिससे चन्द्रमा हम सब से प्रेम करे।" उनके वचन को सुनकर भगवान् वज्र प्रजापति ने कुछ होकर राजबन्धु के रोग को चन्द्रमा के पास भेजा। वह रोग चन्द्रमा के हृदय में धुस गया, चन्द्रमा दिन प्रतिदिन क्षीण होने लगा। उसने रोग से छूटने के लिए अनेक यज्ञादि के मन्त्र किये, पर दश का आप नहीं छूटा। चन्द्रमा को क्षीण होने से औषधियाँ बड़ी मात्रा में उत्पन्न न हुई, जो थोड़ी बहुत औषधियाँ उत्पन्न हुई वे रसवीर्य तथा स्वाद के हीन थी, औषधियों के नाश से प्रजा का नाश होने लगा, मनुष्य दुर्बल हो गये। सब देवताओं ने चन्द्रमा से कृप की क्षीणता का कारण पूछा। देवताओं ने कारण जान कर वज्र से प्रार्थना की कि "चन्द्रमा के नाश से प्रजाओं का नाश हो जायेगा, आप अपना आप तोटा लीजिये।" वज्र प्रजापति ने कहा "कि आप बच्यें नहीं हो सकता, यदि चन्द्रमा सब स्त्रियों से समान प्रेम करे, तो आप को कुछ अंश में कृप किया जा सकता है। आधे महीने तक चन्द्रमा क्षीण रहेगा और आधे महीने तक बढ़ा करेगा" (शाल्यपर्व ३५।४५।५० मिलाइये १२। ३४२।५७)।

महाभारत में अनेक स्त्रियों पर सपत्नियों के द्वेष एवं कलह की चर्चा मिलती है। महाभारतकार, सपत्नियों के दोष को अच्छी तरह समझता है, तभी वह यह कहता है कि (१।२३२।२६) सपत्नियों के लिए भीत में अधिक विनाशक या भयंकर कोई दूसरी वस्तु नहीं है। सौते एक दूसरे को किस प्रकार नहीं सह सकती—यह मदनपाल के आशयान से स्पष्ट है। एक क्षत्रिय मदनपाल पत्नी रूप में उत्पन्न हुआ। वह पहले अपनी एक पत्नी जरिता के पास रहता है, उसके बाद अडे होते हैं, वह उन्हें छोड़कर दूसरी पत्नी नरिता के पास चला जाता है। इसी बीच में खांडव वन की अग्नि प्रज्वलित हो उठती है। वह पितृस्नेह से विह्वल होकर जरिता के पास अपने बच्चे देखने के निमित्त जाना चाहता है। नरिता जो ईर्ष्यापूर्ण कलने भारती हुई कहती है—"तू मेरे दुश्मन के पास जाना चाहता है। जरिता पर तुम्हारा वैसा स्नेह था, अब मुझ पर वैसा नहीं है। अब तूम जरिता के पास ही जाओ जिसके लिए व्याकुल हो रहे हो। मैं उसी तरह अकेली फिझी जैसे दुष्ट पुरुष पर आश्रित स्त्री को अकेला फिरना पड़ता है" (महा० १।२३५।११-१३)। कुन्ती के तीन पुत्र पैदा होने पर माद्री को बड़ा दुःख हुआ। माद्री ने पाण्डु से कहा कि "जैसे भी पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा है, आप कुन्ती से कहकर इसका उपाय करवा दें।" कुन्ती ने पाण्डु की प्रार्थना मान ली। किन्तु माद्री के एक साथ दो पुत्र उत्पन्न हुए। अतः जब दूसरी बार माद्री की सन्तान के लिए पाण्डु ने कुन्ती से प्रार्थना की तो कुन्ती ने स्पष्ट कहा कि मेरे एक बार कहने से माद्री से दो पुत्र प्राप्त किये हैं, मैं ठग्यी गयी हूँ। मैं मूर्ख हूँ। मैं पहले नहीं जानती थी कि एक ही बार दो देवों के बुलाने से दो पुत्र पैदा होते हैं। अतः मैं आपसे दर माँगती हूँ कि आप इस विषय में मुझे आशान दीजिये (महा० १।१२५।२६-२७)। सौते का एक सुन्दर उदाहरण द्रौपदी का है। जब वर्जुन उसकी

नयी सौत सुभद्रा को व्याह कर जाता है, उस समय द्रौपदी अर्जुन की भर्त्सना करते हुए उसे कहती है (महा० १।२२३।१७) — "अर्जुन, तुम वहीं जाओ जहाँ सत्त्वत वंश की पुत्री (सुभद्रा) है, (यहाँ क्यों आए हो), रस्ती से बंधी वस्तु की गाँठ पर एक और कठोर गाँठ लगाने से पहला बंधन अवश्य ही ढीला हो जाता है" इसका आशय स्पष्ट था कि अब तुम सुभद्रा के प्रेम के नये जाल में फँसे हो, अतः इससे मेरा साथ पहले प्रेम के जाल का बन्धन ढीला हो गया है। द्रौपदी का लोग तब तक शान्त नहीं हुआ जब तक सुभद्रा ने स्वातिन का सा वेस बनाकर, द्रौपदी को प्रणाम करके यह भी कहा कि मैं आपकी दासी हूँ (महाभारत १।२२३।२३)।

महाभारत में एक अन्य स्थान पर (१।६५।२३-२४), दूसरा विवाह करने पर पहली स्त्री (अध्व्या या अधिविभ्रा) के दुःख की तुलना ऐसे व्यक्तियों के साथ की गयी है जिनका सारा धन नष्ट हो गया है, जिनका बेटा मर गया है, जिनका व्याध्र द्वारा पीछा किया जा रहा है और जो खूनी है, पति बिहीन है, असमा राजा द्वारा पकड़ा हुआ है। इसी प्रकार प्रजापद पर्व (१।३१-३२) में ऐसे व्यक्तियों की गणना है जो जगते हुए बड़े कष्ट से रात बिठाया करते हैं, इनमें सौतिया ब्राह्म से पीड़ित अधिविभ्रा स्त्री की भी गणना है।

**ब्राह्मणों की स्त्रियों का दान**—महाभारत के अनेक स्थलों से यह स्पष्ट होता है कि उस समय एक साथ अनेक सुन्दर स्त्रियों को दान देने की प्रथा प्रचलित थी। प्रायः ये सुन्दरियाँ दासियाँ हुआ करती थीं। राजाओं से ब्राह्मण और ऋषि इन कन्याओं की भेंटों को आवश्यक ग्रहण करते थे। महाभारत में इस प्रकार के उदार दान की बड़ी प्रशंसा की गयी है। शान्तिपर्व में युध के भीषण नाश से संतप्त धृष्टिष्ठिर को यज्ञ के लिए प्रोत्साहित करता हुआ तपुल कहता है कि हे राजन्, यदि हम ब्राह्मणों को सज्जित हाथी, घोड़े, गौ, अलंकृत दासियाँ, श्रेवक, गाँव, भूमि और घरों का दान नहीं करेंगे तो राजाओं में हम कलिक्रम अथवा बहुत बुरे समझे जायेंगे (महा० १२।१२।३०-३१)। महाभारत में ब्राह्मणों को इस प्रकार सुन्दरियों के दान करने के अनेक प्राचीन उदाहरणों का वर्णन है। राजा समर ने हजार अश्वमेध यज्ञ किये और प्रत्येक यज्ञ के पूर्ण होने पर उन्होंने कमल जैसे सुन्दर नेत्रों वाली स्त्रियों को सय्या एवं सोने के स्तम्भों वाले, सोने के बने महलों के साथ ब्राह्मणों को दान दिया (महा० १२।१६।११३)। अनुष्मत्तन पर्व (१०२।११) में गौतम ब्राह्मण की घृतदाय (धुबोधन का पिता नहीं, किन्तु शाही को चुराने वाला छपबेगी इन्द्र) यह कहता है कि मैं आपको एक हजार सौँ और एक सौ दासियाँ तथा पाँच सौँ मुहरों का दान करता हूँ (महा० १३।१०२।११)। इसी पर्व में भगीरथ के ऋषिलोक पहुँचने पर, जब ब्राह्म भगीरथ ने उसके उन कर्मों के बारे में पूछा है जिनसे वह इस लोक में पहुँचा है तो भगीरथ ने वहाँ पर उत्तम गति देने वाले अनेक कार्यों का परिगणन किया है। इनमें एक उत्तम कार्य

सोने के ६० हजार आभूषणों से भूषित, चन्दना की भाँति उज्ज्वल वर्ण धारण करने वाली एक हजार कन्याओं का दान करना है (महा० १३।१०३।१२)। वैभव सामक राजा ने अग्नि को १०००० सुन्दर दासियाँ दी थीं (महा० ३।१८५।३४)। कन्याएँ ब्राह्मणों को दिया जाने वाला स्वाभाविक दान है, इसका बहुत अधिक माहोत्सव बताया गया है। अनुशासन पर्व में उमा महेश्वर से प्रश्न करती है कि पित वस्तुओं के देने वाले स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। इसके उत्तर में महेश्वर, अन्य वस्तुओं के साथ स्त्रियों के दान को भी उन वस्तुओं से बताते हैं जिसके फलस्वरूप दान देने वाला स्वर्ग में बहुत देर तक उत्तम भोगों को भोगता हुआ, तन्दमादि वनों में अम्बरराजों के साथ प्रसन्न हाकर रमण करता है (१३।१४५।४)।

व्यवन ऋषि की कथा भी इस बात को स्पष्ट करती है कि क्षत्रिय किस प्रकार कई बार स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों से अपनी कन्याएँ ब्राह्मणों को दिया करते थे। महर्षि व्यवन को एक जगल में तपस्या करते हुए बहुत दिन बीत गये थे। उनका सारा तरीर बाल्मीक (दीमक की मिट्टी) से ढक गया था, सिर्फ बमकली हुई दोनो आँखें खुली रह गयी थीं। राजा शर्याति की एकलौती बेटा, सुकन्या अपनी सहेलियों के साथ खेलती हुई उधर आ निकली। उसे यह देख कर कुतूहल हुआ। बात सुलभ वपलता में, उसने उस ऋषि की आँखों में काटे चुभो दिये। इस पर महर्षि व्यवन अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने दान के प्रभाव में, शर्याति की सेना का मन्त्रमूर्त रोक दिया। राजा की सेना इस बात से बहुत परेशान और दुःखी हुई। राजा ने इस विलक्षण घटना का कारण जानना चाहा। सुकन्या ने स्वयं राजा को इसका कारण बता दिया। राजा ने व्यवन के पास जाकर द्रमा माँगनी चाही। व्यवन ने बड़ी कठिनाई में एक ही बर्त पर क्षमा करना स्वीकार कर लिया कि शर्याति सुकन्या का विवाह उससे कर दे। राजा ने एकदम अपनी कन्या का दान ऋषि को कर दिया और उस सुन्दरी ने मलिन वस्त्रों में, उस बूढ़े और बदसूरत ऋषि की आज्ञापालक पत्नी के रूप में सेवा शरम्भ कर दी (महाभारत ३।१२२ मि० पृ० १।११६।१०, १।११७।१३, पातपम ३।० ४।१।५, भागवत पुराण ३।११)।

सुकन्या ने अपने पिता के लिए जान्याग किया वह अनुपम है। उसने अपने दुःखी जीवन को भी संतोष से बिताया। किन्तु यह स्पष्ट है कि सभी कन्याएँ सुकन्या का सा जन्म अवशों नहीं प्राप्त कर सकती थीं। क्षत्रियों की कन्याओं को गरीब ब्राह्मणों के घरों में बसा कष्ट उठाना पड़ता होगा। इसलिए सभर ने ब्राह्मणों को स्वर्ण महल और शय्या सहित कन्याओं का दान किया, ताकि ब्राह्मणों को कोई कष्ट न उठाना पड़े। ब्राह्मण की आर्थिक स्थिति बहुत शोचनीय रहा करती थी, यन् ने (११।१३) स्पष्ट रूप से, यश पुरा करने के लिए ब्राह्मण को भूद तक के घर में, चोरी से धन लाने की स्वीकृति दी है। इतना ही नहीं, इस चोरी से ब्राह्मणों का धर्म और यश बड़ता है (वही



११।१४)। ब्राह्मण भूषा होने पर खोरी करे तो राजा को कोई दण्ड उसे नहीं देना चाहिए क्योंकि अग्नि की भूषता से ही ब्राह्मण भूषा मरता है (वही ११।२१)। इस प्रकार दखि ब्राह्मणों के घर में राजकन्याओं का सुखी रहना कठिन था। ऐसी कन्याएँ दण्ड होकर घरों से भागती थीं। मनु (६।८३) में इसका स्पष्ट उल्लेख है और ऐसी कन्याओं को वसपूर्वक बाँध रखने या गीहुर में छोड़ देने का विधान है। ऐसी कन्याओं के निषमन के उद्देश्य से ही, सम्भवतः स्मृतिकारों ने स्त्रियों के पुनर्विवाह के अधिकार को अल्पमित्र संकुचित कर दिया और पातिव्रत्य की महिमा के नये गीत गाये। स्मृतिधारकों की स्त्रीसम्बन्धी व्यवस्थाओं में इस बहुत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य को अज्ञात गड़ी करजा चाहिए।<sup>१२</sup>

१६ ब्राह्मणों को कन्या दान करने के जो प्रमाण उपर दिये गये हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि इस प्रकार का दान ब्राह्मणों को अभिमत एवं अभीष्ट था। आठ प्रकार के विवाहों में ब्राह्म विवाह सर्वोत्तम बताया गया है। यदि उसका अर्थ ब्राह्मणों से प्रचलित विवाह किया जाय तो हमें उसकी उत्कृष्टता अच्छी तरह समझ में आ सकती है। इस विवाह में पिता कन्या को अर्पकृत करके घर को देता है तथा अपने में कुछ नहीं लेता। अन्य विवाहों में घर को कुछ शुल्क देना पड़ता था। स्मृतियों में इस शुल्क को बहुत लिया है (वेदियेअपर ५० १६३-८) और ब्राह्मणों को कन्या दान करने की बड़ी प्रशंसा की गयी है। कई बार राजा स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों से ब्राह्मणों को कन्यादान करते थे। महर्षि विश्वामित्र के शिष्य गालव को ८०० घोड़ों की सुवर्क्षिणा पुरी करने के लिए राजा ययाति ने अपनी कन्या माधवी की दिया, क्योंकि ययाति के शत्रुओं में इस सुन्दरी कन्या को बहुत लोभ जाह्ये। अतः गालव ने, कमशः पुत्र प्राप्ति की इच्छा रखने वाले ह्यंश्व, विवोदास और उशीनर को माधवी इस शर्त पर दी कि वे माधवी से पुत्र प्राप्त करने के बाद, माधवी को उसे लोटा बैठे और पुत्र के बदले में २०० घोड़े देगे। उपर्युक्त राजाओं ने माधवी से कमशः वसुमना प्रसवत और सिवि नाम के पुत्र प्राप्त किये और गालव को बदले में ६०० घोड़े मिले। २०० घोड़े अब भी बचे हुए थे किन्तु अब माधवी को लेने वाला कोई नहीं मिल रहा था। अन्त में गालव ने ६०० घोड़ों के साथ माधवी को गुरु के चरणों में अर्पित किया। विश्वामित्र से माधवी का अन्तर्क नामक पुत्र हुआ (महाभारत ५।१०६।१६)। इस कथा की व्याख्या सुखिमलकन्द सरकार ने 'सम एस्पैक्ट्स आफ् अली सोशल हिस्टरी आफ् इंडिया' (५० २०५) में यह की है कि हेहम राजाओं के आतंक से भयभीत पीरव (ययाति), कौशल (ह्यंश्व), काशी (विवोदास), उशीनर और काण्यकुब्ज के राजा विश्वामित्र माधवी के संबंध से एक सूत्र में बंध गये और उन्होंने हेहमों के विच्छेद सम्मिलित मोर्चा बताया। महा-

**संस्कृत काव्यों में बहुभार्यता**—संस्कृत साहित्य के नाटकों और काव्यों में प्राचीन भारतीय समाज की विवाह संस्था पर जो प्रकाश पड़ता है, वह अधिकतर राजाओं एवं समाज के उच्च वर्ग तक ही सीमित है। इस समाज में देवत के "भायो राज्ञो भवेच्छतः" का श्रुत पानन होता था। कवि-कुल लिटोमणि कालिदास के रघुवंश का श्रीगणेश यद्यपि रघुवंशियों के गृहस्थ धर्म के इस आदर्श से होता है कि के सन्तान के लिए गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे (प्रथमं गृहमेधियाम् रघु० १।३), तथापि उस काव्य की समाप्ति बहुत सी स्त्रियों के साथ, विवाह करके, उनके साथ स्वर्ग में निर्गन्त निमग्न रहने वाले राजा अश्विघोष के वर्णन के साथ होती है।

कालिदास के तीनों नाटकों के नायक अपनी पहली पत्नी या पत्नियों के होते हुए दूसरी स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं। मानविकाग्निमित्र का नायक अग्निमित्र पट-रानी आग्निषी और दूसरी रानी दरावती के होते हुए भी मानविका की ओर आकृष्ट होता है। आग्निषी मानविका को राजा की दृष्टि से दूर रखना चाहती है, किन्तु राजा उनके पित से आकृष्ट होकर उसे चाहने लगता है, अपने मित्र विदूषक गौतम की बहुत याचना से, राजा मानविका का मूल देखता है और उस पर अत्यन्त अनुरक्त हो जाता है। रानी भयंकर स्पर्ष द्वारा रक्षित मणि की तरह, मानविका को कई पहरों में रखती है। किन्तु प्रसन्न मन में अलोक केन्द्रहृद के लिए, भाग्य हुई मानविका का राजा के साथ अचानक मिलन होता है, इसी समय अकस्मात् रानी दरावती के वहाँ आ जाने से रंग में भंग पड़ जाता है। दरावती अत्यन्त क्रुद्ध होकर राजा को मेरुता से पीटने का यत्न करती है और नाराज होकर चली जाती है। दरावती से यह वृत्तान्त सुनकर, रानी आग्निषी मानविका को एक भूमिगृह (गृहवाण) में कैद कर देती है। किन्तु विदूषक मानविका को इस कैद से भी बड़े चमत्कारपूर्ण ढंग से छुड़ाता है और अन्त में दोनों स्त्रियों की सहमति से अग्निमित्र मानविका से विवाह करता है और नाटकों की समाप्ति पर भरतवाचक में राजा रानी को यह कहता है कि "अग्निमित्र द्वारा वासन करते हुए प्रजाओं का अभीष्ट तत्पूर्ण हो जायगा, किन्तु सौतेले के कारण अत्यन्त क्रोध करने वाली माय कष्टी देवी मुझसे प्रसन्न रहें, यही मेरी आकांक्षा है।"<sup>१</sup> विक्रमोद्देशीय में राजा पुष्करवा काशीराज की पुत्री, पहली रानी के होते हुए भी देवांगना उर्वशी से प्रेम करता है और तीसरे अंक में रानी प्रियानुपसाधन व्रत करके, अपने सुख को तिलाञ्जलि देकर राजा

भारत में कल्याणन के अन्य उदाहरणों के लिए देखिये १३।१३७।११, १८; १२।२३।२५, २८-३४ ।

- <sup>१</sup> मानविकाग्निमित्र—सर्व से प्रसादमुमुक्षु । भव देवि नित्यमेतत्तदेव हृदये प्रतिपालनीयम् । आशास्थामीतिविगमप्रभृति प्रजानां, संपत्स्यते न खलु गोप्यति नाग्निमित्रे ।

को उर्वशी से विवाह करने की स्वीकृति देती है। अभिज्ञानशाकुन्तल में दुष्यन्त हंमपदी, वसुमती आदि अनेक पत्नियों के होते हुए भी शाकुन्तला से जब गान्धर्व विवाह करता है तो शाकुन्तला की सभी अनुसूया यह अनिष्ट वंश का उपस्थित करती है कि राजा बहुत सी स्त्रियों के पति होते हैं। दुष्यन्त इस आशंका का निराकरण करता हुआ कहता है—“रागिणों की अधिक संख्या होने पर भी, मेरे कुल की प्रतिष्ठा तो बड़ी हो बन्नी है—सागर स्नान बन्ध वाली पृथ्वी और तुम्हारी वह सखी”।<sup>१४</sup> काव अपने सुप्रसिद्ध आगीर्षद (४/१८) में शाकुन्तला को यह आदेश देता है कि अपनी सौतों के साथ व्यापारी सखियों का सा बर्ताव करना।<sup>१५</sup> पंचम अंक के प्रारम्भ में रानी हंतवनी मधुकर की अन्वेषिण ने राजा दुष्यन्त की उपानयन देती है कि वह अभिनव मधुरांगुष मधुकर की तरफ गहनी आस-मंजरी (वसुमती) का ब्राम्हावन कर उसे कैम भूल गया है।<sup>१६</sup> उस समय के धनी लोग अनेक स्त्रियों से विवाह करते थे। छठे अंक में राजा एक व्यापारी के द्वारे में यह कहता है कि व्यापारी अवश्यमेव अनेक पत्नियों वाला होता क्योंकि वह बहुत धनी था।<sup>१७</sup>

मृच्छकटिक में, आर्य चाण्डाल की गहनी पत्नी होते हुए भी, वसन्तसेना उसे चाहती है। राजा हर्ष के रत्नावली तथा प्रियदर्शिका के दोनों नाटकों में राजा अपनी गहनी रानियों के होते हुए नागरिका (रत्नावली) और प्रियदर्शिका से विवाह करता है। बाण ने हर्ष की माता यशोवती के मुँह से यह कहलाया है कि मैंने सौतों के सिर पर पैर रखा है अर्थात् उनको पराभूत किया है (हर्षचरित पंचम उच्छ्वास)। कादम्बरी में अनेक रानियों के साथ राजा चन्द्रापीड़ के आत्मप्रभोद का सुन्दर चित्रण है।<sup>१८</sup> चन्द्रापीड़ गुरुकुल में शिक्षा समाप्त करके जब घर वापिस लौटा तो उस समय उसकी माता बिलासगती ने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा है—“जैसे पिता की कृपा से तू इस समय विद्याओं से युक्त देखा जा रहा है उसी तरह जल्दी ही मैं तुझे योग्य बहनों के साथ देखूँगी”।<sup>१९</sup> बाण ने शिणु-

<sup>१४</sup> अभि० शा० अंक ३—अनुसूया—बहुवल्गवाः हि राजानः श्रूयन्ते ।

राजा-परिग्रहं बहुवैदपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे ।

समुद्रवसना शोवीं सखी च युवयोरिवम् ॥

<sup>१५</sup> वही अंक ४ श्लोक १८—शुभ्रवस्त्रं गुरुन् कुर्व प्रियसखीर्वृत्तिं सपत्नीजनैः ।

<sup>१६</sup> वही अंक ५, श्लोक १—अभिनवमधुरांगुषो भवतिस्तवापरिचुम्ब्य नूतनमञ्जरीम् ।

कमलवसतिमात्रनिर्वृत्तो, मधुकरं द्विस्मृतोऽप्येनां कथम् । १ ।

<sup>१७</sup> वही छठा अंक—अनुग्रहात् बहुपत्नीकेन तत्र भक्ता भवितव्यम् ॥

<sup>१८</sup> कादम्बरी ८८ संस्करण, पृ० १२६-३० प्रपत्तिनीनां अन्धनजलच्छटाभिरिव कनकभृङ्गको शशिचरं विषीड ।

<sup>१९</sup> कादम्बरी पृ० २०६—यथा पितुः प्रसादात्समस्ताभिरुपेतोविद्याभिरासीकितो-  
ऽप्येवमचिरेणैव कालेनानुष्पानिचधूमिश्येतमालोकयिष्यामि ।

पातञ्जल में अनेक पत्नियों का वर्णन दिया है (२।१६४, ३१६, ७।५६)। श्री हर्ष ने वैशद्य में, इसका अनेक स्थानी पर उल्लेख किया है। दमयन्ती हंस द्वारा नल के पास अपना प्रणय संदेश भिजवाती है। हंस को संदेश बताकर अन्त में उसे कहती है कि मेरा यह संदेश राजा को उस समय न सुनाना, जिस समय वह अन्तपुर को स्त्रियों के साथ संभोग के बाद नितान्त संतुष्ट हो, क्योंकि जो पानी से तुष्ट हो चुका है उसे स्वाद भुगन्धित एवं ठण्डा जल पीने में गड़ा नहीं आता है (३।६३)।

**मौर्य युग में बहुभार्यता**—मौर्य काल में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी। मौर्यस्थनीज लिखता है—<sup>१२</sup> 'मे (भारतीय) बहुत सी स्त्रियों से विवाह करते हैं।<sup>१३</sup> विवाहित स्त्रियों के अतिरिक्त अनेक स्त्रियों को केवल आभोग प्रमोद के लिए रखा जाता था। मौर्यस्थनीज ने कहा है—'कुछ को तो वे दत्तचित्त सहायिणी बनाने के लिए विवाह करके लाते हैं और कुछ को केवल आनन्द के हेतु तथा घर को लड़कों से भर देने के लिए।'<sup>१४</sup> कौटिल्य के अर्थशास्त्र से भी मौर्यस्थनीज के विवरण की पुष्टि होती है। कौटिल्य (३।२) लिखता है पुरुष बहुत सी स्त्रियों को प्राप्त करे, क्योंकि स्त्रियाँ पुत्र उत्पन्न करने के लिए ही हैं। महापद्मनन्द की अनेक स्त्रियाँ थीं और चन्द्रगुप्त मौर्य उसकी पुरा नामक दासी से उत्पन्न हुआ कहा जाता है। अशोक की कई रानियाँ थीं। इनमें काश्मीर की रान का अशोक के एक शिलालेख में वर्णन है। अशोक के कपिलानु पुत्र कुणाल को अपनी विमाता लिप्परदित्ता का कोपभाजन होकर अपनी जाँघें निकलवा देनी पड़ी थी।<sup>१५</sup> गुप्तवंश के प्रतापी सम्राट् चन्द्रगुप्त (विक्रमादित्य) की कुबेरनागा और ध्रुवदेवी या ध्रुवस्थापिनी दो पत्नियाँ थीं।

**मध्ययुग में बहुभार्यता**—११ वीं शताब्दी के आरम्भ में भारतीय समाज का वर्णन करते हुए अल्बेरुनी लिखता है कि 'हिन्दू लोग बार से अधिक स्त्रियों से विवाह नहीं कर सकते, किन्तु यह निश्चयनीय नहीं प्रतीत होता।'<sup>१६</sup> सम्भवतः उसने कुरान बरीक की बार स्त्रियों की पाबन्दी को हिन्दू धर्म के लिए भी सच समझ लिया। मध्य काल के इतिहास में बार से अधिक विवाह करने वाले अनेक राजाओं की खर्चा मिलती है। पृथ्वीराज रासो के अनुसार पृथ्वीराज ने ११ से ३६ वर्ष की आयु के बीच में १४ विवाह किये। संयोगिता के लिए अभिवान पर जाने में उसकी इच्छा, मुघ्दीरनी, इन्द्रावती, हस्तावती, कूरम्भी और हुम्मीरनी रानियों ने किस प्रकार एक वर्ष की देरी करायी, इसका चन्द्र बरदाई ने रासो के ६१ वें समय में बड़ा मनोरंजक वर्णन किया है। यदि पृथ्वीराज रासो को सर्वातिहासिक काव्य भी माना जाय तो भी यह उस समय के राजपूत

१२ मौर्यस्थनीज का भारत वर्षीय विवरण, पृ० सं० ३४

१३ मौर्यस्थनीज का भारतवर्षीय विवरण, पृ० सं० ३४

१४ विद्यावसान, पृ० ४००-४१०।

को उर्वशी से विवाह करने की स्वीकृति देती है। अभिज्ञानशाकुन्तल में दुष्यन्त हंसपदी, वसुमती आदि अनेक पत्नियों के होते हुए भी शकुन्तला से जब शाश्वत विवाह करता है तो शकुन्तला की सखी अनुसूया यह अनिष्ट शंका उपस्थित करती है कि राजा बहुत सी स्त्रियों के पति होते हैं। दुष्यन्त इस आशंका का निराकरण करता हुआ कहता है—'रानियों की अधिक संख्या होने पर भी, मेरे पुत्र की प्रसिद्धा तो वो ही बन्ती है— साधर रूप बन्ध वाली पृथ्वी और तुम्हारी यह सखी'।<sup>१४</sup> कण्व अपने मृगशिर आशीर्वाद (४१९८) में शकुन्तला को यह आदेश देता है कि अपनी सौतों के साथ प्यारी सखियों का सा प्रतीक करता।<sup>१५</sup> पंचम अंक के प्रारम्भ में राजा-हंगमनी मधुकर की अस्मांति में राजा दुष्यन्त को उपासना देने है कि वह अभिनव मधुसोदय मधुकर की तरह पहली आश-मंजरी (वसुमती) का आम्बादन कर उसे कैम भूल गया है।<sup>१६</sup> उस समय के धनी लोग अनेक स्त्रियों से विवाह करते थे। छठे अंक में राजा एता व्यापारी के बारे में यह कहता है कि व्यापारी अयश्वमेव अनेक पत्नियों का माता होता क्योंकि वह बहुत धनी था।<sup>१७</sup>

मृच्छकटिक में, अग्नि बाधरा की पहली पत्नी होते हुए भी, वसन्तसेना उसे चाहती है। राजा हर्ष के रत्नावली तथा प्रियदर्शिका के दोनों नाटकों में राजा अपनी पहली रानियों के होते हुए नागरिका (रत्नावली) और प्रियदर्शिका से विवाह करता है। बाण ने हर्ष की माता यशोमती के मुँह से यह कहालगा है कि मैंने सौतों के शिर पर पेर रखा है अर्थात् उनकी परामूर्त किया है (हर्षचरित पञ्चम उच्छ्वास)। कादम्बरी में अनेक रानियों के साथ राजा चन्द्रापीड के आनन्दप्रमोद का सुन्दर चित्रण है।<sup>१८</sup> चन्द्रापीड मुकुल ने सिद्धा समाप्त करके जब घर बागिस लौटा तो उस समय उसकी माता विद्यामती ने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा है—“जैसे पिता की कुला से तू इस समय विद्याभों से दूत देखा जा रहा है उसी तरह जल्दी ही मैं तुझे योग्य बहनों के साथ देखूँगी।<sup>१९</sup> माध ने शिशु-

<sup>१४</sup> अभि० शा० अंक ३—अनुसूया—बहुवल्गताः हि राजानः श्रूयन्ते ।

राजा-परिग्रह बहुत्वेषि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे ।

समुद्रवसना चोर्षा सखी च युवयोरिधम् ॥

<sup>१५</sup> वही अंक ४ श्लोक १८—गुभूचस्व गुहन् कुप प्रियसखीर्वीस सपत्नीजने ।

<sup>१६</sup> वही अंक ५, श्लोक १—अभिनवमधुसोदयो भवांस्तथापरिवृम्भ्य वृत्तमञ्जरीम् ।

कमलवसतिमात्रनिर्वृत्तो, मधुकर विस्मृतोऽप्येनां कथम् । ११।

<sup>१७</sup> वही छठा अंक—बहुधनत्वात् बहुपत्नीकेन तत्र भवता भवितव्यम् ॥

<sup>१८</sup> कादम्बरी ८म संस्करण, पृ० १२६-३० प्रणमिनीनां चन्दनजलच्छटाभिरिव कनकाभृङ्गको शशिधरं चिञ्चोड ।

<sup>१९</sup> कादम्बरी पृ० २०६—यथा पितुः प्रसादस्तमस्ताभिरुपेतोविद्याभिरालोकितो-  
ऽप्येवमविरणैव कालेनानुकम्पाभिरधूमिरुपेतमालोकयिष्यामि ।

पालवा में अनेक पल्लियों का वर्णन दिया है (२।१६४, ३१६, ७।५६)। श्री हर्ष ने मैसूर में, इसका अनेक स्थानों पर उल्लेख किया है। समयन्ती हंस द्वारा नल के पास अपना प्रणय संदेश भिजवाती है। हंस को संदेश बताकर अन्त में उसे कहती है कि मेरा यह सन्देश राजा को उस समय तक मुताना, जिस समय वह कलपुर की स्त्रियों के साथ संभोग के बाद नितांत संतुष्ट हो, क्योंकि जो पानी से तृप्त हो चुका है उसे स्वाद सुगन्धित एवं उष्ण जल पीने में मजा नहीं जाता है (३।६३)।

**मौर्य युग में बहुभार्यता**—मौर्य काल में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी। मैगस्थनीज लिखता है—“वे (भारतीय) बहुत सी स्त्रियों से विवाह करते हैं।<sup>२०</sup> विवाहित स्त्रियों के अतिरिक्त अनेक स्त्रियों को मेवल जामोद प्रमोद के लिए रखा जाता था। मैगस्थनीज ने कहा है—“कुछ को तो वे प्रसन्नित सहधर्मिणी बनाने के लिए विवाह करके लाते हैं और कुछ को केवल आनन्द के हेतु तथा घर की लड़कों से भर देने के लिए।”<sup>२१</sup> कौटिल्य के अर्थशास्त्र से भी मैगस्थनीज के विवरण की पुष्टि होती है। कौटिल्य (३।२) लिखता है पुरुष बहुत सी स्त्रियों को प्राप्त करे, क्योंकि स्त्रियाँ पुत्र उत्पन्न करने के लिए ही हैं। महारथुसतन्द की अनेक स्त्रियाँ थीं और चन्द्रगुप्त सोम उसकी मुरा नामक दासी से उत्पन्न हुआ कहा जाता है। अशोक की कई राजियाँ थीं। इनमें कारुवाकी के दाग का अशोक के एक शिलालेख में वर्णन है। अशोक के स्वर्णान पुत्र कुणाल को अपनी विमाता तिप्परशिता का कोपमाजन होकर अपनी आँखें निगलवा देनी पड़ी थीं।<sup>२२</sup> गुप्तवंश के प्रतापी सम्राट् चन्द्रगुप्त (चिकमादित्य) की कुवेरनामा और ध्रुवदेवी या ध्रुवस्वामिनी दो पल्लियाँ थीं।

**मध्ययुग में बहुभार्यता**—११ वीं शताब्दी के आरम्भ में भारतीय समाज का वर्णन करते हुए अल्वेस्नी लिखता है कि हिन्दू लोग बार से अधिक स्त्रियों से विवाह नहीं कर सकते, किन्तु यह विषयसनीय नहीं प्रतीत होता।<sup>१</sup> सम्भवतः उसने कुरान शरीफ की बार स्त्रियों की पाबन्दी को हिन्दू धर्म के लिए भी सच समझ लिया। मध्य काल के इतिहास में बार से अधिक विवाह करने वाले अनेक राजाओं की चर्चा मिलती है। पृथ्वीराज रासो के अनुसार पृथ्वीराज ने ११ से ३६ वर्ष की आयु के बीच में १४ विवाह किये। संयोगिता के लिए अभिषेक पर जाने में उसकी इच्छा, मुन्डीरनी, इन्द्रावती, हंतावती, कूरम्भी और हुम्मीरनी राजियों ने किस प्रकार एक वर्ष की देरी करायी, इसका चन्द्र बरदाई ने रासो के ६१ वें समय में बड़ा मनोरंजक वर्णन किया है। मध्य पृथ्वीराज रासो को अर्धवैज्ञानिक काव्य भी माना जाय तो भी यह उस समय के राजपूत

२० मैगस्थनीज का भारत वर्षीय विवरण, पृ० सं० ३४

२१ मैगस्थनीज का भारतवर्षीय विवरण, पृ० सं० ३४

२२ दिव्यावदान, पृ० ४००-४१०।

राजाओं में बहुविवाह के प्रचलन की अवश्य सूचित करता है। १२ वीं शती के एक अभिलेख में चेदिराज गोसेय देश विजयनादित्य के विषय में यह उल्लेख है कि उसने प्रयाग में अपनी १०० स्त्रियों के साथ मुक्ति प्राप्त की।<sup>२३</sup> बहुविवाह प्रथा का मध्य काल के सुगन्मान राजाओं के उदाहरण से भी प्रोत्साहन मिला। सिवाल्लुमुताखरीन में औरंगजेब के एक सूबेदार के श्रम में २०० रातियाँ बतानी गयी हैं।<sup>२४</sup> आइने अकबरी में ज्ञान होता है कि जनालुद्दीन अकबर जैसे उदार प्रगतिवादी एवं धर्म परावण सम्राट् के अन्तर्गुर में २००० स्त्रियाँ थीं।<sup>२५</sup> प्राचीन परम्परा के कारण एवं अपने बड़े सम्राटों के उदाहरण में प्रेरणा पाकर मध्य काल में राजपूत तथा अन्य राजा बहुविवाह करते रहे।

राजपूत राजाओं में राजा संग्रामसिंह आदि ने एक में अधिक विवाह किये। कहा जाता है कि संग्रामसिंह की २८ पत्नियाँ थीं। आधुनिक के राजा जगन्मलसिंह राजपूत जयसिंह आदि की अनेक रातियाँ थीं। जसवन्तसिंह की रातियों में से दो की चिता पर जलने से इसलिए रोका गया कि वे गर्भवती थीं। इन विवाहों के कारण बगड़े और पड़व्यज होते रहते थे, तथापि बहुविवाह की धुराई कम नहीं हुई। मध्य काल के राजपूत राजाओं के लिए बहुविवाह प्रथा कितनी घातक सिद्ध हुई है, इसका सोदाहरण वर्णन प्रसिद्ध ऐतिहासिक श्री ओझाजी ने बहुत सुन्दर शब्दों में किया है—  
“इसी तरह बहुविवाह की रीति भी क्षत्रिय वर्ग की क्षति का एक मुख्य कारण हुई इस इतिहास (राजपूताना के इतिहास) में बहुविवाह से होने वाली हानियों का उल्लेख अनेक स्थानों में मिलेगा। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि अनेक पत्नियों के होने से ही रामचन्द्र की वनवास हुआ और दशरथ के प्राण गये। महाराज अनांक की अधिक रातियाँ होने से शौर्यवंत के प्रतापी माझाग्य की अवस्था की जड़ जमी, क्षत्रीय के प्रजल बाहुबल (बहुरवार) राज्य के विनाश का कारण भी महाराज जयचन्द्र की अनेक पत्नियाँ होना माना जाता है। मारवाड़ के राज चूड़ा के राज्य में अनेक रातियों के कारण ही झगड़ा पौसा। मेवाड़ के प्रतापी राजा सांगा के महाराज्य की क्षति का कारण भी बहुविवाह ही हुआ। कहाँ तक गिनावें, राजपूत जाति का इतिहास ऐसी घटनाओं से भरा पड़ा है, इसी के कारण कई राजाओं के प्राण गए, कई विपराध घातक सीलिया बाहु के शिकार बने और कई राज्य लुप्त-छष्ट हुए। अनेक पत्नियाँ होने पर प्राकृतिक नियम के अनुसार सीलिया बाहु का कुठार चला है, जलता है और बलता रहेगा,

२३ 'प्राप्ते प्रयागवटमुलनिवेशबन्धौ साधैरातेन गृहिणीभिरमुक्त मुक्तिम्' ११२२ ई० का वसकर्मदेव का अभिलेख एपिग्राफिया इण्डिका खण्ड २ पृ० ४ पर प्रकाशित

२४ सिवाल्लु मुताखरीन, खण्ड १, पृ० १६६

२५ आइने अकबरी, खण्ड १, पृ० ४६

जब तक कि राजपूत जाति इस कुरीति का मूलोच्छेदन नहीं कर देगी।<sup>३४</sup>

शिवाजी की आठ पत्नियाँ थीं—गुगुणाबाई, पुतलाबाई, सईबाई, संभरामाई, लक्ष्मीबाई, काशीबाई, तथा गुणवन्ता बाई। रामदास स्वामी के एक हस्तलिखित जीवन चरित्र में यह ज्ञात होता है कि इन आठ के अतिरिक्त मर्नाडूर और मनसंतीप नाम की अन्य दो स्त्रियाँ भी शिवाजी में क्याही मयी थी।<sup>३५</sup> शिवाजी के मरने के बाद अन्तःपुर के हासुगों ने मराठा साम्राज्य की शक्ति को कितना क्षीण किया वह बात किसी से छिपी नहीं है। पंजाब केमराँ महाराज ग्वाजीतसिंहजी की माँजह रानियाँ थी। उनमें से पहली आठ के साथ उनका निम्नपूर्वक विवाह हुआ था, सोय आठ का महाराज ने केवल बादर जानने की रीति पूरी करके हृष्य में ले लिया था। इनके अतिरिक्त बहुत सी स्त्रोतियाँ भी थीं। जब ग्वाजीतसिंह जी की देह धिता पर जलाने के लिए रखी गई तो उनके साथ उनकी चार निम्नतान रानियाँ तथा सात दासियाँ भी लगी हुई। इन विभिन्न रानियों तथा उनके पुत्रों के समर्थक सरदारों के परस्पर ईर्ष्याद्वेष और कलह से शक्तिशाली सिख राज्य का लौघ ही पतन हो गया।

बंगाल के कुलीन विवाह—प्राचीन काल के ब्राह्मणों में बहुविवाह की प्रवृत्ति हम पहले देख चुके हैं। मध्यकाल में भी ब्राह्मणों तथा विशेष रूप से बंगाल के ब्राह्मणों में एक विभिन्न प्रकार की बहुभार्यता प्रचलित हुई। वह स्मरण रखना चाहिए कि वह प्रवृत्ति सारे हिन्दू समाज में प्रचलित थी। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त तुकाराम की दो पत्नियाँ थीं, इससे उनका गृहस्थ जीवन बहुत दुःखमय हो गया था। किन्तु बहुभार्यता का चरम विकास हमें बंगाल के कुलीन ब्राह्मणों में मिलता है। बंगाल में यह अनश्रुति प्रसिद्ध है कि जब वहाँ के ब्राह्मणों ने शास्त्रीय ज्ञान को विस्मृत कर दिया तथा उनका आचार भी प्राचीन मर्यादा के अनकूल न रहा, उस समय बंगाल के राजा बादिशूर ने कन्नौज से पाँच ब्राह्मण मंगाये। यह बात आठवीं शती के प्रारम्भ की है। किन्तु ६वीं शती के अन्त में, बल्लास-लेन के समय में, ब्राह्मणों का उपजाति भेद अधिक संगठित एवं दृढ़ हुआ। कुलीन ब्राह्मणों के भौगोलिक दृष्टि के दो मुख्य भेद किये गये—वीरन्द्रभूम के कुलीन वीरन्द्र कहलाए और बर्दवान तथा दूसरे स्थानों के कुलीन राडीय के नाम से प्रसिद्ध हुए। बहुभार्यता का प्रचलन राडीय कुलीनों में ही विशेष रूप से हुआ। इनके दो मुख्य भेद हैं—(१) कुलीन (२) श्रोत्रिय। बाद में इनमें भोरराज नामक एक नये शासक वर्ग की भी वृद्धि हुई। श्रोत्रिय के कुलीन के जिनमें कुलीन ब्राह्मणोचित नी गुणों (ब्राह्मण के कर्तव्यों का पालन, नम्रता, विद्वत्ता, सदाचरण, तीर्थदर्शन की अभिलाषा, भक्ति, समान वर्ग के साथ विवाह के नियम का संरक्षण, कष्टसहन एवं उदारता) में से आठ गुण हो।

३३ गौरीशंकर हीरानन्द ओझा—राजपूताने का इतिहास खण्ड १, पृ० १०६०-६१

३४ मध्ययुगीन चरित्र कोष, पृ० ७७६



मंगराज का उद्गम अनिश्चित है। प्रथम श्रेणी के कुलीन प्रायः दो विवाह करते हैं, किन्तु मंग कुलीनों में श्रेष्ठ विवाहों की परिणती प्रचलित है। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार इनमें विवाहों की संख्या १५, २०, ४०, ४० और ८० तक है और यह बताया है कि कुलीन ब्राह्मणों के लिए यह बड़ी साधारण सी बात थी। श्री बंकिम चन्द्र ने "देवीचौध रानी" में एक ब्राह्मण पात्र के मुख से कहलवाया है कि मेरे लिए विवाह क्या वस्तु है, जैसे घर में एक गौ बांध ली, वैसे एक अन्य विवाह कर लिया जाता है। ब्राह्मणों के लिए ये गौएँ बड़ी दुष्प्राप्त होती थी, इसके अतिरिक्त उन्हें अपने घर में आधारे, चारा खिलाने और सेवा करने का भी कोई संकट नहीं था, इसलिए बंगाल में कुलीन ब्राह्मण गौरी गौएँ खूब आँधते थे।

श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने कर्दमान, कोकुड़ा, दीरभूम, हुगली, मेदिनीपुर, बोबीस मरगना, कलकता, मधिया, पमोहर, बारीसाल, फरीदपुर, डाका आदि बंगाल के प्रायः सभी जिलों के २७६ गांवों के बहुविवाह करने वाले व्यक्तियों की जो सूची तैयार की थी, उससे उपर्युक्त सरकारी कमेटी की रिपोर्ट के उक्त आंकड़ों की पुष्टि होती है। २७६ गांवों के १०१३ कुलीनों ने ४३२३ कुलीन कन्याओं के साथ विवाह किया था। इस तरह प्रत्येक व्यक्ति के हिस्से में औसतन ४½ स्त्रियाँ पड़ीं। किन्तु इनमें १०, १२, १५, २०, २५, ३०, ३५, ४०, ४० विवाह करने वालों की भी कमी नहीं है। ६०, ६५, ६७ विवाह करने वाले महापुरुष भी हैं। २० और २२ वर्ष की अवस्था के दो व्यक्तियों ने आठ, २५ वर्ष की आयु वाले एक व्यक्ति ने सात, २७ वर्ष की अवस्था वाले ने १२ और ३४ वर्ष की अवस्था वाले एक पुरुष ने ३५ स्त्रियों को सगाव बनाया था। श्री ईश्वरचन्द्र ने हुगली जिले के २६ गांवों की जो सूची तैयार की थी, उससे ज्ञात होता है कि इन गांवों के १६७ कुलीन ब्राह्मणों ने १२८८ स्त्रियों से विवाह किया। इनमें १८ वर्ष का एक ब्राह्मण ११ स्त्रियों के सौभाग्य (या दुर्भाग्य) का कारण बन चुका था, एक दूसरे लगभग २० वर्ष की अवस्था में १६ स्त्रियों के साथ भाग्यग्रहण कर चुके थे। डाका, बारीसाल और फरीदपुर जिलों के १७७ गांवों की सूची से स्पष्ट है कि ६५२ व्यक्ति ३५८८ विवाह कर चुके थे। इस प्रकार इनमें से हर एक के हिस्से में ५½ स्त्रियों की औसत बैठती है। इनमें कोलीन्य मयोदा की सबसे अधिक रखा करके बंगाल के सामाजिक इतिहास में अक्षय कीर्ति प्राप्त करने वाले श्रीमत् ईश्वरचन्द्र मुखोपाध्याय हैं। वे बारीसाल जिले के कलस-काटी ग्राम में रहते थे। उपर्युक्त सूची बनने के समय इनकी अवस्था ५५ वर्ष की थी और इस समय तक से १०७ विवाह कर चुके थे। पता नहीं सूची बनने के बाद जीवन की अन्तिम पक्षी तक अन्य कितनी स्त्रियों को उन्होंने सगाव किया होगा।<sup>२६</sup>

<sup>२६</sup> १८६६ की बहुविवाह विषयक सरकारी कमेटी की रिपोर्ट।

<sup>२७</sup> बख्शीचरण कन्योपाध्याय प्रणीत विद्यासागर का जीवन चरित्र, हिन्दी अनुवाद, पृ० ३०६।

इस प्रथा के मूल में यह हेतु था कि कन्या का विवाह हीन कुल में न हो, किन्तु ब्राह्मणों ने इसे जाजीविका के एक साधन के रूप में अपनाया। ये पारम्पर्य विचारक जो भारतीय प्रथाओं का बहुत ही उथला अध्ययन करते हैं, भले ही इस प्रथा को जाति, की उन्नति का साधन समझे<sup>३\*</sup> किन्तु बंगाल में इसका मुख्य प्रेरक हेतु आर्थिक ही रहा है। ये विवाह वहेज प्राप्त करने के लिए होते थे। प्रति वहेज लेने के बाद अपनी पत्नियों के बारे में कभी कुछ पुछताछ या उनके भरण-पोषण की चिन्ता नहीं करते थे। वैवाहिक कर्तव्यों के पालन का उन्हें रूचि माल भी छान न था। प्रत्येक विवाह पर ब्राह्मण की पर्याप्त वहेज मिलता था और प्रति वर्ष स्वकुशलता जाने पर खूब सत्कार एवं पुष्कल धन राशि उपलब्ध होती थी, उसका सारा जीवन अपने विभिन्न श्वशुरालयों का चक्कर काटते हुए बीतता था, वहाँ से प्राप्त धन के साथ उसका जीवन आराम से कटता था। अमीना का एक जुगु इस उद्देश्य से बहुपत्नीविवाह करता था कि पत्नियों उसके घर पर काम करके उसकी सम्पत्ति बढ़ावेगी। लगभग इसी उद्देश्य से बंगाल के कुलीन ब्राह्मण

- ३\* राबर्ट ब्रिफाल्ट पश्चिमीजगत में समाज शास्त्र के एक प्रमुख विचारक हैं उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "सैक्स इन रिलीजन" में सम्भवतः कुलीन ब्राह्मणों की प्रथा को लक्ष्य करते हुए यह लिखा है भारत वर्ष के अनेक भागों में ब्राह्मण अच्छी तरह पाले हुए घोड़ों (Wellbred Stallions) का काम करते हैं। उनका यह कर्तव्य होता है कि वे जाति को उन्नत करें तथा निम्न जाति की कुमारियों के साथ संभोग करें। ये प्रतिष्ठित पुरुष शहर और बेटाहात का चक्कर काटते हैं तथा लोग उन्हें धन तथा अन्य वस्तुओं की भेंट करते हैं। उनके पाँच घोड़े हैं और भेले पातो में से थोड़े अंश को पीते हैं तथा शेष जल सुरक्षित रखते हैं। उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थों के सहभोग के बाद वह पुष्पाच्छादित वैवाहिक पर्यंक के पास लाया जाता है जहाँ कुमारों उसकी प्रतीक्षा कर रही होती है। बनाईं मा ने कुलीन ब्राह्मणों के इस प्रकार के विवाह का प्रबल समर्थन किया है, वह इसे जाति को उन्नत करने का एक उत्तम उपाय समझता है। उसकी सम्मति में अंग्रेजों के एकविवाह (Monogamy) की पद्धति बड़ी घातक है क्योंकि इसमें योग्य बलिष्ठ, सुन्दर एवं स्वस्थ पुरुष को एक स्त्री के साथ बांध कर उसकी योग्य बलिष्ठ और स्वस्थ संतान पैदा करने की शक्ति पर एक अनुचित प्रतिबंध लगा दिया जाता है और हजारों स्वस्थ स्त्रियों की निकम्मे बच्चों के पतियों के साथ राष्ट्र के लिए निकम्मे सन्तान पैदा करने दी जाती है, यह राष्ट्र एवं समाज के लिए बड़ी हानिप्रद प्रथा है। देखिये ३ अक्टूबर, १९०७ के सन्दन के टाइम्स में बनाईं मा का पत्र। यह पत्र रिजली की पुस्तक पोपल आफ इण्डिया, पृ० ४२७-२८ पर अविकल रूप में उद्धृत है।

बहुविवाह करते थे, किन्तु वे न तो उन्हे घर बाँटे थे और न उनके काम करवाते थे। पत्निमा अपने पितृगृहों में रहती थी और पतिदेव साज में एक बार उनके घरों का चक्कर काट काट कर अपने लिए पर्याप्त धन उपाजित कर लेते थे। उन्होँ तो अपनी बहुत-सी पत्नियों के नाम भी याद नहीं रहते थे, इन्हे स्मरण रखने के लिए वे नोट बुकों या प्रयोग करते थे। बाबू अथवाधर दास ने मल्लभट्टाजी के मध्य में एक सभा में बहुविवाह का चित्र बखिंचते हुए यह कहा था कि "मेरी दो कुलीन ब्राह्मणों को जानता हूँ, एक ने ६० के लगभग स्त्रियों का पाणिप्रक्षाल किया है और दूसरे ने १०० से ऊपर स्त्रियों के धात विवाह किया है। दोनों के पास बहिराँ हैं, उनमें उन्होंने उन गाँवों के नाम लिख रखे हैं, जहाँ उनके विवाह हुए हैं। बहिराँ में श्वशुरों के नाम भी दर्ज हैं। सदिनों के प्रारम्भ में प्रत्येक ब्राह्मण अपने श्वशुरालयों की वैवाहिक (Nuptial) यात्रा अपनी बही को देख कर करता है, प्रत्येक श्वशुर से उसकी आर्थिक स्थिति के अनुसार रुपया इकट्ठा करने योग्यों के प्रारम्भ में वह अपने घर लौट जाता है और साल का शेष भाग अपने गाँव में बिताता है। बहुधा ऐसा होता है कि पिता और पुत्र, पति और पत्नी एक दूसरे से विवद्वल अलग-गर्बी की तरह मिलते हैं और जब उनकी पारस्परिक संबंधों का ज्ञान होता है तो वे बहुत अधिक शरमा जाते हैं। मैंने एक ऐसे कुलीन का नाम सुना है जो अशुद्ध नाम प्राप्त होने के कारण एक दूसरे श्वशुरालय में पहुँच गया। श्वशुरालय में इस जँबाई की खूब आवाजगत हुई। वह कुछ दिन रह कर आदर सत्कार और धन के साथ विदा हो गया। इसके कुछ दिन बाद जब असली लंबाई पहुँचा तो श्वशुर की अपनी मल्टी पता चली, बहुत आश्चर्य और दुःख हुआ।"<sup>३१</sup> ब्रिजली पंताब्दी में सरकार के पास कुलीनों के बहुविवाह के विरुद्ध जो आवेदन-पत्र भेजे गये, उनमें निम्नरूप इस बात पर ज़ब्त दिया गया है कि मैं विवाह धन के लोभ से होते हैं और इस प्रथा को अविलम्ब कानून द्वारा रद्द कर देना चाहिए।

**कुलीन विवाह की हानियाँ**—इस बहुविवाह के कारण कुलीन ब्राह्मणों का जीवन भले ही सुखमय हो जाता हो, किन्तु हजारों स्त्रियों का जीवन बरबाद हो जाता था। बालि-काएँ, यश, लक्ष्मण, जीविकाहीन और दुस्परिचित व्यक्तियों के साथ विवाह के बन्धन में बंध कर जन्म भर अशेष सहती हुई पिता के घर पर रहती थीं। उन्हें केवल पति का नाम सुन लेने का सौभाग्य प्राप्त होता था, क्योंकि पति उनके साथ कोई संबंध नहीं रखते थे और उनकी कोई खबर नहीं लेते थे, किन्तु इस प्रकार लोगों के मुख से सुने हुए सर्वथा अपरिचित स्वामी के मरने पर इन स्त्रियों का कानून और समाज की दृष्टि से भय से वैधव्य-जीवन के सब कष्ट भोगते रहने को साधारण होना पड़ता था।<sup>३२</sup> यह धर्म

<sup>३१</sup> रिजली—नैपल आफ इंडिया, पृ० १६६-६७ पर उद्धृत।

<sup>३२</sup> २२ जुलाई १८२६ को भारत सरकार को भेजे गये बहुविवाहविरोधी आवेदन

की, समाज की और, लोकचार की कितनी बड़ी बिड़भ्रमना थी कि कुल की प्रतिष्ठा के विचार से अशोध बालिकाओं का विवाह किसी अश्रेष्ठ व्यक्ति से कर दिया जाय, वे बालि काएँ आजीवन पवित्र के साथ दाम्पत्य सुख से वंचित रहें, किन्तु उनके मरने पर वैधव्य जीवन की दाहण मानना नहों। यैमे तो पति के जीवनकाल में ही इन स्त्रियों को कुछ सुख नहों था, किन्तु पति के मरने पर वैधव्य का भीषण दुःख अबन्दस्ती गहना पड़ता था। इन स्त्रियों के दुःख का वर्णन श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने इन शब्दों में किया है—

‘‘भक्त बार जब मैं लखनऊ में था, आजिब अली शाह का फौजदारी देखने गया। मैंने चारों ओर की मंजिलें मकानों का तिलसिला देखकर अपने साथियों से पूछा कि इतने सुगठित सुन्दर मकान एक ही तिलसिले में क्यों बने हैं? उत्तर मिला—‘‘इसमें बादशाह की बेगमें रहती थीं। बादशाह की सैकड़ों बेगमों की बात सुनकर उस नदी जवानी में जो विषाद मुझे हुआ था, वह मुझे आज तक नहीं भूला। किन्तु अश्रेष्ठ अवस्था में इस निन्दनीय कर्म (बहुविवाह) का होना देखना पड़ता है।’’ तबारी मामले बूढ़ा होते हैं, उनके मुख शोष के अनुकूल उनका ऐश्वर्य और सम्पत्ति भी होती थी। फिर उनकी बेगमों को चाहें कर सकती थीं, मनमाना खाया-पहन सकती थीं, किन्तु जिनकी गल-भग पर पराया मुख लटकना पड़ता हो, ऐसी स्त्रियों को ब्याह कर जो लोग धर्म-कर्म या सुख भोग की आलसा से किसी दिन भूल कर भी उस स्त्री के घर जाने वाले नहों, उनको क्या अधिकार है कि वे सुकीमल बालिकाओं के सुख सपनों को मिटाकर उन्हें दाहण मानसिक ताप और यन्त्रणा के अग्नि कुण्ड में डालकर जगमगर जलावे।’’<sup>३३</sup>

ऐसी स्त्रियों के लिए पति के घर में कोई स्थान नहीं था और जब पिता के घर में भी उनके लिए स्थान न रहे तो उनके सामने दो ही विकल्प थे—या तो वे भिक्षा वृत्ति करें या बेश्या वृत्ति करें। श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने इनके कई उदाहरण दिये हैं। बहुविवाह संबंधी सरकारी कमेट्री ने अपनी रिपोर्ट में इस प्रथा के कारण समाज में फैलनेवाली म्यारुह बुराइयों का उल्लेख किया है, जिनमें बेसुधवृत्ति, व्यभिचार, गर्भपात, भ्रूणहत्या तथा शिशुहत्या मुख्य हैं। बंगाल में गत शताब्दी के मध्य में इस प्रथा को हटाने के लिए तीव्र आन्दोलन हुआ। सरकार की अनेक आवेदन-पत्र भेजे गये। श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर इस आन्दोलन के मुख्य नेता थे। महाराजा बर्दवान तथा २१००० हिन्दूओं के हुस्ताशरी के साथ सरकार के पास यह प्रार्थना-पत्र भेजा गया कि एक कानून द्वारा बहुविवाह की हानियों को रोका जाय। उस समय बंगाल के लेफ्टीनेन्ट गवर्नर तो इस प्रथा को समर्थित करना आवश्यक समझते थे।<sup>३४</sup> किन्तु गवर्नर जनरल की यह सम्मति

पत्र का एक अंश।

३३ चण्डीचरणसेन—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, पृ० २१०।

३४ कहा जाता है कि बहुविवाहविरोधी सिद्ध मण्डल जब गवर्नर से मिला तो उन्होंने

थी कि हिन्दू अभी इस मुद्दे के लिए तैयार नहीं हैं और उनमें बहुविवाह के निषेध के नियमका प्रचलन सम्भव नहीं है। १८६६ में एक सरकारी कमेटी बहुविवाह के विषय पर विचार करने के लिए बिठायी गयी। उसको यह आदेश दिया गया था कि वह दो मर्यादाओं में रहते हुए उक्त धुराई को दूर करने के उपाय सुझाये। पहली मर्यादा यह थी कि हिन्दुओं को एक से अधिक स्त्रियाँ लेने की जो सामान्य स्वतन्त्रता प्राप्त है, उस स्वतन्त्रता को किसी प्रकार सीमाबद्ध किया जाय तथा दूसरी यह थी कि बहुविवाह की पद्धति को अंग्रेजी कानून के द्वारा स्पष्ट स्वीकृति दी जाय। कमेटी को इन मर्यादाओं के अन्दर रहते हुए बंगाल के मुर्शीदाबाद में प्रचलित विवाह की धुराई को कम करने के उपाय सुझाने थे। इस कमेटी के सात सदस्य थे, इनमें दो अंग्रेज तथा पाँच हिन्दू थे। कमेटी ने बंगाल में बहुविवाह के विकास, विस्तार एवं हाजियों का संक्षिप्त विवरण कराके, बहुमत से अपनी यह सम्मति दी कि एक से अधिक स्त्रियाँ रखने की सामान्य स्वतन्त्रता को सीमित किये बिना व्यवस्थाविवेक सभा द्वारा कोई कानून नहीं बनाया जा सकता है। इस समिति के सदस्य श्री ईश्वर चन्द्र बिद्यासागर ने अपनी मतभेद सूचक सम्मति में यह लिखा था कि इस विषय में आवश्यक कानून आवश्यक बन जाना चाहिए। किन्तु अन्य सदस्यों सर्वोपरी रामनाथ ठाकुर, जयकृष्ण मुकुर्जी, विमम्बर मिश्र ने कहा कि शिवा से तथा विराधी लोकमत के प्रभाव से यह कुप्रथा अपने आप दूर हो जायगी, अतः राज्य का इस विषय में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। उन लोगों को यह आशा पूर्ण हुई और बंगाल में यह प्रथा अब बहुत कम हो गयी है।

बंगाल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में वर्तमान समय में हिन्दुओं के धर्मी वर्ग में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी और हिन्दू पुरुषों को कानूनी दृष्टि से बहुविवाह करने का अधिकार प्राप्त था, किन्तु १९५५ के हिन्दू विवाह कानून द्वारा हिन्दू समाज में पहली पत्नी या पति के जीवित होते हुए दूसरा विवाह करना दण्डनीय अपराध बना दिया गया है और हिन्दू समाज में अब बहुविवाह की प्रथा का अन्त हो गया है।<sup>३४</sup>

कहा—यदि १८५७ का गदर न होता तो फ्रान्स साहब ही बहुविवाह को रोकने का कानून बना जाते।

३४ वर्तमान हिन्दू समाज में कुछ मनोर्जक बहुविवाहों तथा इनके प्रेरक कारणों को विवेचना के लिए देखिये—इरावती कर्वे—हिन्दू सोसायटी एन इन्टरप्रिटेसन बमबैन कालेज, पुना, १९६१, पृ० १६८-७१।

## बहुभर्तृता

बहु विवाह (Polygamy) का एक महत्वपूर्ण रूप यह है कि एक स्त्री के अनेक पति हों।<sup>१</sup> इसे बहुभर्तृता (Polyandry), अनेकपतित्व या बहुपतित्व की प्रथा भी कहते हैं। इसके कुछ धाँड़े से ही उदाहरण प्राचीन एवं अर्धप्राचीन हिन्दू समाज में उपलब्ध होते हैं। मानव समाज में इस प्रथा का प्रचलन बहुभार्यता की अपेक्षा बहुत कम है। सबसे अधिक प्रचलन एक-विवाह (Monogamy) की प्रथा का है और सबसे कम बहुभर्तृता का। हिन्दू समाज में भी यही स्थिति है। भारत में इसके बहुत कम उदाहरण पाये जाते हैं।

### वैदिक युग

इस समय बहुभर्तृता की प्रथा के कुछ संकेत अवश्य मिलते हैं, किन्तु उनके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि उस समय के समाज में इस प्रथा का प्रचलन रहा होगा। ऋ० (१०।८।३।३८) तथा अथर्व० (१४।३।१) में यह कहा गया है—  
“हे अग्नि, प्रजा के साथ तुम (एक) पत्नी को बहुत से पतियों के लिए देने वाले हो।”  
इसी तरह अथर्व० (१४।२।२०) में एक पत्नी में कई पतियों को बीज जनन का आदेश दिया गया है, किन्तु इन स्थलों से हम किसी निश्चित परिणाम पर नहीं पहुँच सकते। वेद में बहुवचन के लिए एकवचन और एकवचन के लिए बहुवचन का बहुत प्रयोग होता है। पाणिनि के व्याकरण में वैदिक वाक्यरचना के इस नियम को स्वीकार किया गया है और इसकी विस्तार से व्याख्या की गयी है। इसके अतिरिक्त इस प्रथा का समर्थन करने वाला और कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं किया जा सका। इसके विपरीत ऐतरेय ब्राह्मण

<sup>१</sup> इस विषय का तथीयतम सर्वोत्तम अध्ययन प्रोस तथा डेन्मार्क के प्रिंस पीटर के ए स्टडी आफ पोलिएण्ड्री (A study of Polyandry, Moulton & Co. Hague 1963) में है। इसमें लेखक ने बंका, तिब्बत, केरल तथा नीलगिरि में बहुभर्तृता की प्रथा रखने वाले जातियों के निवास स्थानों में जाकर वहाँ वैयक्तिक सम्पर्क स्थापित करके इस प्रथा के स्वरूप तथा इसे उत्पन्न करने वाले कारणों को सुन्दर सीमांता की है।

(१२।११) बड़े स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा करता है कि एक पुरुष बहुत सौ स्त्रियों को प्राप्त करता है, अतः एक व्यक्ति की बहुत सी पत्नियों होती है, किन्तु एक पत्नी के बहुत से पति एक साथ नहीं होते।<sup>१</sup> तै० सं० ६।६।४।३ बहुमर्त्यता का एक विविध रूप से विरोध करता है, उसके शब्दों में “वह एक यज्ञस्तम्भ (पूज) को दो रक्षणाओं (रक्षियों) से घेरता है, अतः एक पुरुष दो स्त्रियों का प्राप्त करता है, किन्तु वह एक यज्ञता से दो स्त्रियों को नहीं घेरता है, अतः एक स्त्री दो पतिव्यों को नहीं प्राप्त करती।” बहुभर्तृता का इससे अधिक स्पष्ट निषेध और क्या हो सकता है।

### महाभारत में द्रौपदी का उदाहरण

प्राचीन भारत में बहुमर्त्यता का सबसे अधिक प्रसिद्ध उदाहरण द्रौपदी का है। किन्तु महाभारत के अध्ययन से स्पष्ट है कि उसके रचयिता की यह बात मात्र नहीं थी कि पति पाँचव एक द्रौपदी के पति हो। उस समय सभी लोगों ने इसे अज्ञानान एवं भेद के विशय तथा अधर्म एवं पाप समझा था। महाभारत के प्रमुख पात्रों के चरित्र पर यह एक बड़ा प्रभाव और धक्का समझा गया, अतः इसमें अनेक घुसियाँ से द्रौपदी को पतिव्यों आह्वानों की पत्नी सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है और वह इस कल्पना की पुष्ट करता है कि उस समय बहुमर्त्यता की प्रथा बहुत भुरी समझी जाती थी। इस विषय में महाभारत का कर्ण निम्नलिखित है—

पाँचव जब द्रौपदी को लेकर अपनी कुटिया में पहुँचे तो उस समय उनकी माता कुन्ती कुटिया के भीतर थी (महाभारत १।१६३)। श्रीम और अर्जुन ने कुन्ती से कहा—“माँ, आज एक अच्छी मिठा मिठी है।” कुन्ती ने द्रौपदी को न देखते हुए स्वाभाविक रीति से कहा—“तुम सब मिलकर इसका उपभोग करो।”<sup>२</sup> बाद में जब कुन्ती ने द्रौपदी को देखा तो वह बोली—“हाय, मैं यह क्या कह जाता (१।१६३।२)। इसके बाद वह अधर्म के कारण अपनी दुर्बल तथा सीपती दुर्बल मातृसेवी द्रौपदी का हाथ पकड़कर युधिष्ठिर के पास जाकर बोली—“बेटा तुम्हारे दो भाइयों ने अब राजा दुष्य से उस पुत्री को लेकर मिठा के रूप में मुझे बतलाया, तब मैंने असावधानतावश उस काम के योग्य यह बात कह डाली कि तुम सब मिलकर इसका उपभोग करो। हे कुलवंश श्रेष्ठ,

<sup>१</sup> ऐत० ब्रा० १२।११ तस्मादेको बहुर्बीजाया भिन्दते, तस्मादेकाश्च बहुव्यो जाया भवन्ति नैकस्या बहुवः सत्पतयः।

<sup>२</sup> महामा० १।१६५।२७-२६ एकस्य बहुव्यो विहिता सहिष्यः कुरुन्धन।  
नैकस्या बहुवः पुंसः भूयन्ते पतयः क्वचित् ॥ लोकवेदविद्वत् स्वं नाधर्मं धर्मविस्तुभिः।  
कर्तुमर्हसि कोत्सेव कस्मात्ते बुद्धिरीदृशी ॥ समापवं (६८।३५) में कर्ण ने द्रौपदी को बेवशा (बन्धकी) माना है क्योंकि उसे कई पुरुष पति के रूप में प्राप्त थे।

सब तुम ऐसी बात करो कि मेरा कहा सुना न हो, द्रौपदी को अधर्म न स्पर्श करे और इस से कोई विध्वंस या क्षान्ति न हो।" मुष्तिष्ठिर ने अर्जुन से यह कहा कि "तुमने इसे स्वयंवर में जीता है, तुम इससे विधिपूर्वक विवाह कर लो।" अर्जुन ने ऐसा करने से इनकार किया, क्योंकि मुष्तिष्ठिर और भीम के अविवाहित रहते हुए उनके छोटे भाई अर्जुन का विवाह विधिपूर्वक नहीं हो सकता था। अर्जुन ने यह भी कहा कि "भीमसेन, नकुल, सहदेव, यह कन्या और मैं आपकी आज्ञानुसार कार्य करेंगे, जो कुछ धर्म है और जिसमें द्रुपद का कल्याण हो उस पर विचार करके आप हमें आज्ञा दें, हम आपकी आज्ञा का पूरा पालन करेंगे।" अर्जुन को वाणी सुनने के बाद पांडवों ने द्रौपदी की ओर दृष्टि डाली। द्रौपदी को देखकर पांडवों में उसके प्रति अचानक कामभाव उत्पन्न हुआ, क्योंकि विद्याता ने स्वयं द्रौपदी के रूप की अग्य स्त्रियों की अपेक्षा अधिक सुन्दर बनाया था। मुष्तिष्ठिर भाइयों की मुख-मुद्रा और आकार देखकर उनके चित्त के भाव की समझ गया। उसे व्यास की बात याद आ गयी और डर लगा कि कहीं इस प्रश्न को लेकर भाइयों में आपस में कूट न पड़ जाये। अतः मुष्तिष्ठिर ने कहा—“कल्याणी द्रौपदी हम सबकी पत्नी होगी” (१।१६३।१६)। द्रौपदी को पाँचों पांडवों से व्याहृति का अवसर कारण तो मनु था कि वे पाँचों उसके रूप पर इतने अधिक मूग्ध थे कि उनमें से यदि वह किसी एक की दी जाती तो पाँचवें उसके लिए आपस में उमरी तरह लड़ मर्ने की तैयारी हो जाती जैसे सुन्द और दममुन्द तिलोत्तमा के लिए लड़ मरे थे। मुष्तिष्ठिर ने इससे बचने का यह मार्ग रूँका कि वह पाँचों को स्वी हो, लेकिन इसे न तो कुन्ती ने पसन्द किया और न ही द्रुपद ने उचित समझा। मुष्तिष्ठिर ने धर्म की सूक्ष्म गति के नाम पर इसे जबरजस्ती पुराने कल्पित उदाहरणों से व्यापसंगत मिट्ट करने का प्रयत्न किया।

एक दिन राजा द्रुपद ने मुष्तिष्ठिर से कहा—“आज शुभ दिन है, महाबाहु अर्जुन द्रौपदी का विधिपूर्वक पाणिग्रहण करें।” इस पर मुष्तिष्ठिर ने कहा—“हे राजन् विवाह तो मुझे भी करना होगा” (१।१६५।२१)। द्रुपद ने कहा—“तुम्हीं विधिपूर्वक मेरी कन्या का पाणिग्रहण करो जबका तुम जिसके साथ कृष्णा को व्याहृता चाहते हो उसे बताओ।” मुष्तिष्ठिर ने कहा—“हे राजन्, द्रौपदी हम सबकी पत्नी होगी, क्योंकि मेरी माता ने पहले ऐसी आज्ञा दी है। मेरा और भीमसेन का विवाह नहीं हुआ है। यद्यपि अर्जुन ने तुम्हारी रत्नसदृश कन्या को जीत लिया है तथापि हे राजन्! हम भाइयों में एक नियम है कि रत्न पाकर हम सब उसका इकट्ठा भाग करते हैं। हम इस नियम को तोड़ना नहीं चाहते, अतः धर्मपूर्वक द्रौपदी हम सबकी पत्नी होंगी। वह अग्नि के सम्मुख हम सबका पाणिग्रहण करे” (१।१६५।२३-२६)। द्रुपद ने इस पर आपत्ति करते हुए कहा—“हे कुस्तब्धन, शास्त्र की विधि के अनुसार एक पुरुष को बहुत सी स्त्रियाँ होती हैं, किन्तु एक स्त्री के बहुत से पति वेद-शास्त्रों द्वारा विहित नहीं हैं या कभी नहीं सुने गये। हे कौन्तेय, तुम धर्मवेत्ता होकर भी लोक एवं वेद दोनों के विरुद्ध यह अधर्म



क्यों करना चाहते हो? तुम्हारी बुद्धि ऐसी क्यों है।" सुधिट्टिर ने उत्तर दिया—“धर्म का रहस्य बहुत सूक्ष्म है। हम उसकी गति नहीं जानते। हम प्राचीन बुद्धिमान लोगों का अनुसरण कर रहे हैं, मेरी माँगी कभी झूठ नहीं कहती, मेरा मन अधर्म में नहीं सगा हुआ है। मेरी माता ऐसा कहती है और मेरे मन में भी यही बात है। राजन् यही निश्चित धर्म है। इसका बिना सोचे विचारें आचरण करो। हे राजन् तुम्हें दम में किसी प्रकार की कोई शंका नहीं होगी चाहिए।” किन्तु द्रुपद सुधिट्टिर के इस निर्वाचन धर्म को अधर्म मानता है और इस विषय पर विचार करने के लिए द्रुपद, कुन्ती, सुधिट्टिर और धृष्टद्युम्न की एक परिपक्व बैठकी है। इसी समय बहो मशयि कृष्ण ईशायम आ जाते हैं।

कृष्ण ईशायम के आगे द्रुपद फिर यह निवेदन करते हैं कि “बहुभर्तृता यौगन्ध्या के विरुद्ध होने से अधर्म है, मैं इस काम को करने का साहस नहीं करने मगना।” सुधिट्टिर अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए कुछ पुराने दृष्टान्त उपस्थित करता है। जटिला गौतमी के साथ सात ऋषियों ने विवाह किया था। पूर्वकाल में प्रचेता नाम के दस भाइयों ने बाँधों (वृक्ष से संबन्ध रखने वाली) कन्या से शादी की थी। साथ ही धर्मगुरु मानी जाने वाली माता का वचन भी हमारे लिए प्रमाण है। इसलिये मैं इसी काम को परम धर्म समझता हूँ।”

इसके बाद इस प्रश्न पर व्यास अपना यह फैसला देते हुए कहते हैं कि सुधिट्टिर ने जो कहा है वही धर्ममुक्त है, इसमें कोई शंका नहीं है। जिस प्रकार यह गलावन धर्म हुआ है, वह मैं सबके सामने नहीं कहूँगा। व्यास द्रुपद का हाथ पकड़ कर उन्हें अन्दर ले गये और वहाँ उन्हें द्रौपदी और पांडवों के पूर्व जन्म की एक विचित्र कथा सुनायी और द्रुपद को दिव्यदृष्टि देकर अपने कथन का विश्वास कराया। बाद में यह कहा कि एक तपोवन में किसी ऋषि की एक कन्या ने कम्बुती और मुषकनी होने पर भी पति नहीं प्राप्त किया। पति पाने के लिए उसने कठोर तपस्या की। अन्त में शिवजी ने प्रसन्न होकर उस कन्या से कहा—“वर माँगो।” कन्या उत्तरी यह बात सुनकर धवरा कर जल्दी जल्दी कई बार बोली—“मैं सब गुणों से युक्त पति माँगती हूँ।” शिवजी ने कहा—“तुमने जल्दी-जल्दी में मूँससे पाँच बार याचना की है अतः अगले जन्म में तुम्हारे पाँच पति होंगे।” वह इस जन्म में द्रौपदी हुई और पाँच पांडव इसके पाँच पति हैं। भगवान् संकर के परदास को द्रुपद कैसे टाल सकते थे, अतः उन्होंने पाँचों पांडवों से द्रौपदी की शादी कर दी।

**द्रौपदी की बहुभर्तृता के कारण**

महाभारत के अपर्युक्त वर्णन में द्रौपदी के पाँच पति होने के पाँच हेतु दिये गये हैं—

(१) कुन्ती ने पाँचों पांडवों को द्रौपदी की भिक्षा का सम्मिलित रूप से भोग करने के

लिए आवेश दिया था।<sup>४</sup> (२) छोटे भाई अर्जुन के विवाह से पहले बड़े भाई युधिष्ठिर और भीम का विवाह होना चाहिए था। (३) पाँचों पाण्डवों के दिल में द्रौपदी का रूप घर का चुका था, किसी एक को द्रौपदी के दिये जाने से सातुपुट का भय था। (४) प्राचीनकाल में बार्ही और जटिसा गौतमी ने अनेक पत्नियों से शादी की थी। (५) द्रौपदी को पिछले जन्म में शकर द्वारा यह वर मिला था कि वह अगले जन्म में पाँच पत्नियों की पत्नी होंगी। इनमें से पहले काग्य पर तो विचार करना ही व्यर्थ है। कुन्ती ने बिना देखे शिक्षा के बारे में एक सामान्य बात कह दी थी। बाद में उसे स्वयं इस बात का दुःख हुआ, वह उसे अनुचित भी समझती थी, अतः इस कारण का कोई महत्त्व नहीं है। दूसरा कारण भी ठीक नहीं है। युधिष्ठिर का विवाह होने से पहले उसका छोटा भाई भीम द्विजम्बा से विवाह कर चुका था। यदि भीम युधिष्ठिर से पहले विवाह कर सकता था तो अर्जुन द्वारा विवाह करने में क्या बाध था? यदि इस नियम का पालन हो करना था तो अर्जुन के विवाह को बड़े समय के लिए टाला जा सकता था। उससे पहले युधिष्ठिर और भीम के विवाह कर दिये जाते और बाद में अर्जुन का विवाह हो जाता। जो भी कारण में जो पुराने उदाहरण दिये गये हैं उनके विषय में यही कहा जा सकता है कि महाभारतकार इस कला में बहुत निपुण है। वह जग भी किसी बात का समर्थन करने लगता है तो इस प्रकार के दृष्टान्त देता है। ज्ञात पड़ता है द्रुपद को इन चारों कारणों से सन्तोष नहीं हुआ। तब अन्त में पूर्वजन्म के वरदान वाली घटना की किन्तु कल्पना की गयी। यदि चौथा कारण ठीक था, पुराने जमाने में वास्तव में ऐसे विवाह होते थे तो द्रौपदी का विवाह हो जाना चाहिए था। इसके बाद द्रौपदी के पूर्व जन्म की घटना का चुनाव इस बात को सूचित करता है कि व्यास इस प्रथा के अप्रिय को पहले चार कारणों से द्रुपद के विल पर मत्ती-भाँति अंकित नहीं कर पाये थे। द्रुपद अपनी कन्या द्रौपदी का विवाह पाँचों पाण्डवों के साथ इसलिए नहीं करते कि यह कोई पुराना नियम है, किन्तु इसलिए करते हैं कि शकर उसे पिछले जन्म में यह वर दे चुके हैं और शकर के वरदान को टाला नहीं जा सकता। द्रुपद ने कहा है—“जब मन्वन्त शकर ने ऐसा विधान किया है और इन्हीं के लिए कृष्णा बनायी गयी है, तब यह चाहे धर्म हो वा अधर्म, मुझ को कोई दोष नहीं लग सकता, ये लोग मुझ से कृष्णा के साथ विधिपूर्वक विवाह करें।”

कहा जाता है कि पाण्डव हिमालय प्रदेश में रहने वाली जिस जाति से सम्बन्ध रखते थे, उस जाति में यह प्रथा प्रचलित थी। उस प्रथा के अनुसार द्रौपाद्यों ने यह विवाह किया था। किन्तु वर्तमान महाभारत से इस कल्पना की पुष्टि नहीं की जा सकती। यदि वास्तव में पाण्डवों में यह जातीय प्रथा थी तो कुन्ती को द्रौपदी देख लेने पर यह दुःख क्यों

<sup>४</sup> महाभा० १।२०६।२ कुटो गता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रान्प्रोवाच भुङ्कोति समेत्य सर्वे।

पश्चाच्च कुन्ती प्रसमीप्य कृष्णां कटं भया भाषितमिवुवाच

हुआ कि मैंने यह क्या कह दिया। धर्मराज युधिष्ठिर अपनी माता के वचन की रक्षा पर बहुत बल देता है, किन्तु वह उसे इस आधार पर कभी उचित नहीं ठहराता कि कुल-धर्म होने से माता का वचन मान्य है। वह स्वयं यह कहीं नहीं कहता है कि वह हमारा कुल धर्म है। राजा शंकर कन्याशुल्क को बुरा समझता हुआ भी भीष्म से माद्री के लिए कुलधर्म के नाम पर शुल्क की माँग करता है। बहुभर्तृता की प्रथा बुरी होने पर भी युधिष्ठिर यह कह सकता था कि यह उसका कुलधर्म है; किन्तु उसने ऐसा नहीं कहा। अतः वर्तमान महाभारत के पढ़ने से तो इस बहुविवाह का बड़ी कारण समझा जाता है कि भाइयों में परस्पर संघर्ष को दूर करने की दृष्टि से द्रौपदी सभी की पत्नी बानी गयी और बाद में इसे पुराने आख्यानों तथा कहानियों से स्वाभाविक सिद्ध किया गया।<sup>४</sup>

द्रौपदी पाँच पांडवों की पत्नी हुई। नारद के परामर्श से पांडव समय निश्चित करके वर्ष में ७२-७२ दिन द्रौपदी का उपवास करने लगे।<sup>५</sup> उद्योग पर्व के अध्याय १४० में श्रीकृष्ण कर्ण को पांडवों के पक्ष में जाने के लिए जहाँ उसे अन्य बहुत से प्रलोभन देते हैं वहाँ वह भी कहते हैं कि तू यदि पांडवों का पक्ष सहन करेगा तो पांडव तुझे सबसे बड़ा भाई मानेंगे और वर्ष के छठे हिस्से में द्रौपदी भी मिलेगी।

**बौद्ध साहित्य**—बौद्ध साहित्य में बहुभर्तृता का एक ही स्थान पर उल्लेख है और वह महाभारत की कहानी का ही विकृत रूपान्तर है। कुशावजातक (सं० ५३६) में पतिराज कुशल धर्म का उपदेश देने के लिए एक महासभा का आयोजन करता है। नारद दस हजार भक्तों के साथ उसका उपदेश श्रवण करने आता है। कुशल स्त्रियों के दोषों को बताता हुआ एक गाथा कहता है। एक पुरानी कथा में कहा जाता है कि एक कुमारी आन्हा (शुष्मा) पाँच राजकुमारों से व्याही गयी थी, फिर भी वह सन्तुष्ट नहीं हुई, वह अन्य व्यक्ति को चाहती थी। उसने एक कुम्हड़े बौने के साथ

\* एक आधुनिक समाजशास्त्री प्रिंस पीटर (पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० ५१२) ने द्रौपदी के उदाहरण से दो परिणाम निकाले हैं—(१) वर्तमान समय में इस प्रथा का विष्वक्त में अधिक प्रसार है, भारत में यह प्रथा विष्वक्त के सम्पर्क से आ सकती है। (२) इसका प्रसार मुख्य रूप से स्त्रियों के कुलों तक सीमित था। किन्तु जाशों का दृष्टान्त यह सूचित करता है कि ब्राह्मणों में भी इस प्रथा का प्रचार था।

१. वर्तमान समय में वह व्यवस्था गड़वाल तथा नीलगिरिवासी डोडों में पायी जाती है। पीटर ने (पृ० पु०, पृ० ५२६) लिखा है कि गड़वाल में पत्नी बड़ों-बड़ों से एक ही घर में प्रत्येक पति के साथ कुछ निश्चित समय तक सहवास करती है। डोडों में यह अवधि एक महीने की होती है। ऐम्पन ने बताया है कि केरल के डंडों में बंधू के नवयुवती होने पर माता पतियों द्वारा बहुसमायम की जारी का नियोजन करती है।

वैश्या का काम किया। यह कहना महाभारत की कृष्ण द्रौपदी है और टीका में पांच पत्नियों के नाम अर्जुन (अर्जुन), नकुल, भीमसेन, युधिष्ठिर (युधिष्ठिर) और सहदेव बताये गये हैं। यह कुछ ही बीना कीन था, इस पर महाभारत और कौटिल्यों से कुछ प्रकाश नहीं पड़ता है।

**धर्मशास्त्र**—धर्मशास्त्रों में अश्वभर्तृता का अर्थ वगैरह उल्लेख है। आपस्तम्ब तथा बृहस्पति ने ही धर्मशास्त्र दिया। वर्णन किया है। आपस्तम्ब (२।१।२।३।२-६) निगता का वर्णन करने शुरू करता है कि कोई व्यक्ति भगवान् द्वारा पुत्रप्राप्ति के लिए स्त्री का दूसरे या बाहर के लोगों को न दे, अर्थात् समोक्तों का ही दे, क्योंकि धर्म इस बात का उपादेश करते हैं कि कल्याण पुत्र को अर्थात् गव भाइयों का ही दी जानी है।<sup>१</sup> बृहस्पति (स्मृ० ४०।४०।१।१००।१०) ने विभिन्न देशों के आचार्यों का निर्देश करने शुरू किया है कि दक्षिण में अग्नि वाद्या की लक्ष्मी के साथ शपथविधि में माना के साथ विवाह होता है, वह अन्य देशों में एक कुल में कन्या देन की या अश्वभर्तृता की प्रथा का भी उल्लेख करता है।

**कुमारिल और नीलकण्ठ की व्याख्याएँ**—मध्यकाल के दार्शनिकों एवं टीकाकारों के लिए द्रौपदी का विवाह एक बड़ी विचारणीय समस्या थी। कुमारिल भट्ट ने तत्त्ववातिक से अपने पांडित्य के कौशल से जिन प्रकार यह सिद्ध किया था कि सुभद्रा अर्जुन की ममेरी सहित नहीं थी, उन्हीं प्रकार उसने महाभारत की दम घटता के सम्बन्ध में भी पर्याप्त उद्घापोह से यह सिद्ध किया है कि द्रौपदी पांच पांडवों की पत्नी नहीं थी। इस विषय में उसने तीन प्रकार की व्याख्याएँ की हैं। (१) पहली व्याख्या के अनुसार महाभारत में आसंकारिक रूप में एक ही द्रौपदी का वर्णन है। द्रौपदी कोई वास्तविक स्त्री नहीं थी, वह पांडवों की राज्यलक्ष्मी का प्रतीक मात्र थी, पांच पांडवों के साथ उस का विवाह यह सूचित करता है कि वे पाँचों भाई अपने राज्य का समूक्त रूप से प्रीतिपूर्वक उपभोग कर रहे थे। (२) अथवा दूसरी व्याख्या के अनुसार हम यह भी कल्पना कर सकते हैं कि पाँचों भाइयों का विवाह भारत में पांच विभिन्न स्त्रियों से हुआ, किन्तु उनकी आकृति, व्यक्तित्व और स्वभाव आपस में इतने अधिक मिलते थे कि उन्हें द्रौपदी का सामान्य नाम दे दिया गया। (३) अथवा तीसरी व्याख्या के अनुसार द्रौपदी का विवाह वस्तुतः उस अपनी धनविद्या के कौशल से जौतन वाले अर्जुन के साथ हुआ, किन्तु महाभारत में उसे पाँचों पांडवों की पत्नी इस बात को जड़ाने के लिए कहा गया है कि पांडवों में अत्यधिक प्रीतिपूर्ण और मधुर सम्बन्ध थे।<sup>२</sup> नीलकण्ठ को महाभारत की टीका लिखते समय, द्रौपदी के बहुविवाह की समस्या को मुलजाना आवश्यक जान पड़ा। वह इस पर यह कहता है कि आजकल भी नीच जाति की स्त्रियों के दो या तीन पति दिखाई देते हैं, किन्तु उनके आचार को प्रमाण नहीं माना जा सकता। पांडवों

\* तत्त्ववातिक अध्याय १, पृ० १६१-२ (अंधेजी अनुवाद)

के श्वेता तुल्य होने से "न देशचरित्रं चरेत्" के अनुसार उनके द्वारा की हुई बातों पर आचरण नहीं करना चाहिए।

### नामरों की बहुभर्तृता

मुगल एवं मराठा युग के यूरोपियन पात्रियों ने मलाबार की नायर जाति में प्रचलित बहुभर्तृता की प्रथा का वर्णन किया है।<sup>१८</sup> १६६३ ई० में एक इतालवी यात्री सीजर फ्रेडरिक ने इस प्रदेश का भ्रमण करने के बाद लिखा था—“इन लोगों का नाभि से ऊपर का शरीर नग्न रहता है, आँखें कपड़ों से ढकी होती हैं, पैर नंगे होते हैं, बाल लम्बे और सिर की पीछी वंधी होती है। वे अपने साथ हमेशा डाल और लंगी तलवार लेकर चलते हैं। इन नायरों की स्त्रियाँ साधे की होती हैं। जब कोई नामर किसी स्त्री के घर में जाता है तो वह अपनी डाल और तलवार घर के बाहर छोड़ जाता है ताकि कोई दूसरा व्यक्ति उस घर में आने का साहस न करे।” एक पुर्तगाली यात्री फर्नांडो लोप्स द कस्तन हूदा ने नामरों में इस प्रथा को प्रचलित पाया। उसके कम्ता-नुसार इस देश के निवासों का अनुसरण करते हुए नायर विवाह नहीं कर सकते, अतः किसी व्यक्ति का निश्चित पुत्र या पिता नहीं होता, उनके सब बच्चे ऐसी ही स्त्रियों से उत्पन्न होते हैं, इनमें से प्रत्येक स्त्री के साथ तीन या चार नामर आपस में समझौता करके सहवास करते हैं। इन नामरों में से प्रत्येक इस साझे की स्त्री के साथ एक दीपहर से अगले दीपहर तक एक दिन रहता है और उसके बाद दूसरा पति एक दिन के लिए उसके पास आ जाता है। वे इस प्रकार अपनी स्त्रियों और बच्चों के भरण-पोषण की चिन्ता से मुक्त होकर साग जीवन आनन्दपूर्वक बिताते हैं। कोई भी पुरुष अपनी स्त्री को इच्छानुसार छोड़ सकता है और इसी तरह स्त्री जब चाहे किसी प्रेमी को अपने पास आने से रोक सकती है। इन दोनों पात्रियों के वर्णन की पुष्टि एलेक्जेंडर हैमिल्टन (१७४४), जोनाथन डन्कन (१७६२), फ्रान्सिस ब्रुकानन (१८०७), जेम्स ग्रीटर्स (१८१३) नामक पात्रियों ने की है।

१८वीं शती के अन्त तक नामरों में इस प्रथा का खूब प्रचलन था। १७८८ में टीपू सुल्तान ने एक घोषणा निकाली, इस घोषणा में नामर लोगों से यह कहा गया था कि वे एक स्त्री के साथ इस पुरुषों के सहवास की प्रथा का पालन न करें (पीटर पू० पु०, पृ० १७३)। १९वीं शती में बहुभर्तृता की प्रथा नामरों में बहुत कम हो गयी। (पीटर पू० पु०, पृ० ६२)। १८८१ में श्री बिधाम ने अपनी एक पुस्तक ‘मलाबार ला एण्ड कस्टम्स’ में यह वाक्य लिखे थे “बहुभर्तृता की प्रथा अब विलुप्त वस्तु हो गयी है, यद्यपि नामरों में उत्तराधिकार भ्रातृ परम्परा द्वारा होता है और विधवा पारम्परिक

<sup>१८</sup> रिजली—दो पीपल आफ इण्डिया

सम्पत्ति से होता है और इच्छानुसार विवाह का विच्छेद हो सकता है। तथापि श्री लोगन द्वारा यह टीका ही कहा गया है कि कहीं भी विवाह के बन्धन का इतनी बुद्धतापूर्वक पालन नहीं होता, इतने प्रयत्नपूर्वक उसकी रक्षा नहीं होती जितनी मलाबार में होती है, यद्यपि विवाह किसी सामूहिक विधान के अनुसार नहीं होता है।<sup>१</sup> किन्तु श्री विद्याम ने इन बातों में कुछ अतिशयोक्ति से काम लिया है, क्योंकि १८६५ में मलाबार विवाह सम्मेलन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था—“यदि बहुभर्तृता का आशय ऐसे विवाह से है जिसमें द्वारा एक स्त्री को यह छूट प्राप्त होती है कि वह अपनी जाति या सामाजिक प्रतिष्ठा को खोवे बिना अनेक पुरुषों के साथ सहवास कर सके, तो हम यह कह सकते हैं कि यह प्रथा मलाबार में विवाह द्वारा स्पष्ट रूप से स्वीकार की जाती है और यहाँ ऐसे प्रदेश तथा जातियाँ हैं जहाँ स्त्रियों की यह छूट प्राप्त है।” १८६६ के मलाबार मैरिज एक्ट (मद्रास का १८६६ का कानून सं० ४) तथा १९३३ के “दि मद्रास प्रहमस्कथायम् ऐक्ट” (१९३३ का २२वाँ कानून) द्वारा यह प्रथा अब बिलकुल समाप्त कर दी गयी है।

मत्तमकथायम् या अतिमसन्तान दक्षिण भारत में प्रचलित दाय सम्बन्धी नियमों को कहते हैं<sup>२</sup>, जिसके अनुसार किसी व्यक्ति के मरने पर उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी उसका लड़का न होकर उसकी बहिन का लड़का होता है। अतिमसन्तान कथन भाषा का शब्द है और ‘मत्तमक’ मलयाली भाषा का। किन्तु दोनों का अर्थ बहिन के लड़के से मानी जाने वाली अजगरम्परा है। इस पद्धति में किसी व्यक्ति के मरने पर सम्पत्ति उसके पुत्र को नहीं मिलती, किन्तु उसकी बहिन के लड़के को मिलती है। इस विचित्र प्रथा का कारण यह है कि तावर या अन्य जातियाँ किसी स्त्री से विवाह सम्बन्ध करके उस स्त्री को अपने घर नहीं लाते, वह स्त्री अपने पितृगृह में रहती है। उसके पति उसके साथ सहवास करने के लिए व्यवहारमय में जाते हैं और सहवास के बाद अपने घर लौट आते हैं। एक व्यक्ति से जो सन्तान पैदा होती है वे पिता की न होकर माता की समझी जाती हैं। ताना के घर में उनका पालन-पोषण होता है और वे नाना के परिवार या लगान में रहती हैं, अतः किसी व्यक्ति के मरने पर उसका पुत्र उसकी सम्पत्ति का अधिकारी नहीं होता, क्योंकि वह नाना की सम्पत्ति में से अपना हिस्सा लेता है। पति के कुल में कोई पुरुष सन्तान न रहने से वह अपनी बहिन के लड़कों को अपना उत्तराधिकारी बनाता है।

### वर्तमान भारत में बहुभर्तृता

वर्तमान काल में भारत में बहुभर्तृता की प्रथा हो रूपों में पायी जाती है :—

<sup>१</sup> हरिदत्त वेदालंकार—हिन्दू परिवार भोमांसा पृ० २७०-१

(१) मातृभार्या बहुभृत्यता (Matriarchal Polyandry), इसमें एक स्त्री के कई पति होते हैं, किन्तु उन पतियों में परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं होता। नागरों में प्रचलित बहुभृत्यता इसी प्रकार की थी। इनके उहाँ मातृवंशपरम्परा (मत्तमककायम्) का नियम होने के कारण इसे यह नाम दिया गया है। इसका दूसरा नाम अन्तर्मातृभृत्यता (Non-fraternal Polyandry) भी है। (२) आनुवंशिक बहुभृत्यता (Fraternal Polyandry) इसमें एक स्त्री के अनेक पति आपस में भाई-भाई होते हैं, जैसे डोंगरी के पार्श्व पति परम्परा भाई थे। भारत में वर्तमान हिन्दू समाज में दोनों प्रकार की बहुभृत्यता पायी जाती है, किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि यह प्रथा कुछ एनी-मिनी विशेष जातियों तक ही सीमित है। उत्तर भारत में यह प्रथा देहरादून के जौनगार बाघर के प्रदेश में, जम्मू राज्य के नद्वाख प्रदेश में, मिरमूर तथा टिहरी पड़ोश की कुछ जातियों में, जम्मू की दरद जाति में तथा दक्षिण भारत में मीनमिरि निवासी टोंडा जाति में, केरल की ठंडन (Thandans) कामलन तथा कुछ अन्य शिलपी जातियों में पायी जाती है, पहले यह नागरों में भी प्रचलित थी।<sup>१०</sup>

**दक्षिण में बहुभृत्यता**—दक्षिण भारत में मीनमिरि के टोंडा तथा कांट जंगलों में यह प्रथा प्रचलित है। टोंडा में एक पत्नी के अनेक पति प्रायः भाई होते हैं। बड़ा भाई पत्नी कराता है, किन्तु उसके छोटे भाइयों को बड़े भाई की पत्नी के पास जाने का अधिकार होता है। पत्नी का गर्भ रह जाने की दशा में बड़ा भाई सातवें महीने में धनुष बाण के साथ एक विशिष्ट सम्पन्न करता है और इससे वह बच्चे का कानूनी पिता बन जाता है। जब तक उसका छोटा भाई ऐसी विशिष्ट नहीं कर लेता तक तक सब बच्चों का पिता बड़े भाई को ही माना जाता है।

केरल में निम्नलिखित जातियों में बहुभृत्यता की प्रथा पायी जाती है—नागर, ठंडन, उत्तरी कोचीन के भिया, कामलन अथवा शिल्पकारों की विभिन्न जातियाँ, जैसे तथन (मुनार), कामवान (मुहार), असरी (बड़ई), मुसरी (ठंडेरे), कोल्लुकुण्ड (मानिष करनेवाले), विलकुण्ड (धनुष बनानेवाले), तोंगकोल्लम (चमार), वगिसन (ज्योतिषी), मन्नन (धोबी, भाई)<sup>११</sup>। नागरों में अब बहुभृत्यता लगभग लुप्त हो गयी है (पीटर पृ० ६९)। १७८८ में टीपू सुल्तान ने मलाबार पर चढ़ाई करते हुए यह घोषणा की थी कि वह मैसूर पर नागरों द्वारा किये जाने वाले हमलों के खतरे को दूर करेगा। इसके साथ ही उसकी चढ़ाई का एक उद्देश्य नागरों की इस अशुभ प्रथा का भी

<sup>१०</sup> ग्रिन्थ पीटर—पृ० ५०, पृ० ५०७, डॉ गजेटियर आफ इण्डिया १९६५ खं० १, पृ० ५४१, केरल की विभिन्न जातियों में इसके प्रसार के जनार्थ देखिए ग्रिन्थ पीटर—पृ० ५०, पृ० १५६-२३६।

<sup>११</sup> पीटर—पृ० ५०, पृ० १७३।

उन्मुखन करना था जिसके अनुसार एक स्त्री दस पुत्रों के साथ रहती है (पीटर, पृ० १७३)। अब मकीन परिस्थितियों में मायों में इस प्रथा का जोप हो चुका है तथा अन्य जातियों में यह क्षीण हो रही है।<sup>१२</sup>

**उत्तर भारत में बहुमनता**—उत्तर भारत में बहुमनता की प्रथा अधिकतर हिमाचल के ज़ेणों में है। सिक्किम और पूर्वी तिब्बत के भाटों और तिब्बतियों में बड़ा भाई जब किसी स्त्री में शादी करता है तो वह सब भाइयों की स्त्री समझी जाती है। यह तरी समझना चाहिए कि वह सभी छोटे भाइयों के साथ सहवास करेगी। उसे इन विषय में पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त है और वह उसकी इच्छा पर अवलम्बित है कि वह किस भाई के साथ सहवास करे। यदि सबसे बड़ा भाई जितने उस स्त्री को व्याहृत या, मन जाता है तो स्त्री अपनी इच्छा के अनुसार छोटे भाइयों में से किसी एक को अपना पति चुनती है। यदि वह मूल भाई के बाद जोय भाइयों में सबसे बड़े को अपना पति चुनती है तो वह सब भाइयों की स्त्री होती है, किन्तु यदि वह किसी छोटे भाई की चुनती है तो वह उसकी और उससे छोटे भाइयों की स्त्री होती है। यदि वह सबसे छोटे भाई को अपना पति चुनती है तो वह केवल उसी की पत्नी समझी जावेगी। यदि बड़ा भाई शादी नहीं करता है, किन्तु उससे छोटा भाई शादी करता है तो उस पत्नी पर बड़े भाई का कोई अधिकार नहीं होता, छोटे भाइयों का ही उस पर अधिकार होता है। बड़े भाई ऐसी हालत में परिवार से पुनर् हो जाते हैं और उनका अपन छोटे भाइयों की स्त्रियों पर कोई हक नहीं रहता।

संयुक्त प्रान्त में देहपूजन जिले के जौनसार बाजार में इस प्रथा का खूब प्रचलन है, यहाँ बहुत से भाइयों की एक पत्नी होती है। जब घर में बड़ा भाई होता है तो पत्नी उसी के साथ रहती है, उसकी अनुपस्थिति में वह उसके छोटे भाई के साथ रहती है। दूसरे भाई दिन के समय खेतों में पत्नी के साथ रहते हैं। कोई भाई अपनी पुत्र पत्नी भी रख सकता है और सामान्य पत्नी का भी उपयोग कर सकता है, यहाँ कि दूसरे भाई इस पर एतराज न उठावें। कई बार एक परिवार में सारे की कई स्त्रियाँ होती हैं। एक बार आठ भाइयों के एक परिवार में इस प्रकार की तीन स्त्रियाँ थीं।<sup>१३</sup> पंजाब के पहाड़ी हिस्सों में भी कांगड़ा जिले के स्पेती, लाहील परगनों, चम्बा, कुल्लू तथा मण्डी के ऊँचे प्रदेशों में तथा कामेतों में यह प्रथा प्रचलित है। प्रायः सभी भाई ही एक पत्नी को व्याहृत हैं। किन्तु १९०१ की पंजाब की जनगणना रिपोर्ट में स्पेती का एक ऐसा

<sup>१२</sup> केरल में इस प्रथा के विस्तृत वर्णन के लिए देखिए पीटर पृ० १७३-२३६, मोल-विरि के टोडों के लिए देखिए पृ० २४०-२००।

<sup>१३</sup> जौनसार बाजार की इस प्रथा का विस्तृत विवेचन श्री धीरेन्द्रनाथ मजूमदार की हिमाचल पोलीएथ्री (बम्बई १९६२) में है।



उदाहरण दिया गया है (पृ० १२१) जिसमें दो विभिन्न व्यक्तियों ने पहले एक स्त्री के साथ शादी की, फिर उन्होंने अपनी सम्पत्ति साझे में कर ली और दोनों एक दूसरे को भाई सम्मानने लगे, किन्तु धर्मशास्त्रों के उदाहरण बहुत कम पाये जाते हैं।

**बहुभर्तृता की प्रथा के प्रचलित होने के कारण**

उत्तर भारत में यह प्रथा देहरादून के औनसार बाबर प्रदेश में तथा दक्षिण में केरल प्रदेश में अधिक प्रचलित है। अतः यहाँ इस प्रथा के प्रचलित होने के कारणों का संक्षिप्त उल्लेख करना समीचीन प्रतीत होता है।<sup>१४</sup> इसकी प्रधान कारण निम्नलिखित है—

**आर्थिक कारण**—औनसार बाबर के पर्वतीय प्रदेश में कृषियोग्य भूमि बहुत कम है, पहाड़ों पर खेतों का निर्माण बड़े कठोर परिश्रम से किया जाता है और वर्षा ऋतु में इन्हें बहुत क्षति पहुँचती है, अतः यहाँ खेती के लिए अनेक व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। इसका समाधान इस प्रदेश में संयुक्त परिवार तथा बहुभर्तृता प्रथा से किया गया है। इसमें परिवार के सब व्यक्ति मिलजुलकर काम करते हैं और अपने सीमित साधनों का अधिकतम उपयोग करते हुए अपने जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक उत्पादन करते हैं। बहुभर्तृता का एक बड़ा लाभ यह है कि इसमें भाइयों द्वारा अलग-अलग विवाह करके पारिवारिक सम्पत्ति का बँटवारा करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन नहीं मिलता, यह सम्पत्ति सब भाइयों के एक ही घर में इकट्ठे रहने के कारण विभक्त नहीं होती है, अपितु बचसब बनी रहती है। यहाँ पहले ही जमीन बहुत बाँधी होती है, यदि भाइयों की पुष्प साधियाँ होने लगे तो इनकी बीड़ी भी जमीन चलने अधिक छोटे टुकड़ों में बँट जायेगी कि यह आर्थिक दृष्टि से सर्वथा अनुपयोगी हो जायेगी। अतः जब भी मुकुन्ददीयाल ने टिहरी बख्वाल में एक व्यक्ति से पूछा कि यह इस प्रथा का अनुसरण क्यों करता है, तो उन्हें यह उत्तर मिला कि यह उनके लिये हितकर है, इससे उनकी जमीन सुरक्षित बनी रहती है और बँटती नहीं है।<sup>१५</sup> औनसार बाबर में इस कारण की पुष्टि इस बात से भी होती है कि यह प्रथा भूमि रखने वाले वर्गों खस (राजपूत) तथा बाण्डों में अधिक प्रचलित है। ऐवम्पन के मतानुसार मत केरल की ठंडन जाति में भी पारिवारिक सम्पत्ति को विघटन और विभाजन से बचाने के लिए यह प्रथा प्रचलित हुई है।

<sup>१४</sup> औनसार बाबर में इस प्रथा को जन्म देने वाले कारणों के लिए देखिए ऊपर लिखी पुस्तक, पृ० ७५-६। विभिन्न जातियों में इस प्रथा के कारणों की भीमासा बेंटरमार्क की हिस्टरी आफ़ इन्डियन मैरिज के खण्ड ३, अध्याय ३० में है, इनका संक्षिप्त परिचय प्रिन्स पीटर की पुस्तक (पृ० १०७-११० तक) में है। प्रिन्स पीटर ने इन कारणों की आलोचनात्मक भीमासा (पृ० ५५३-५७१) की है।

<sup>१५</sup> पीटर—पृ० १०, पृ० ५६०।

धूमि पर कार्य करने वाले व्यक्तियों को अधिक संख्या में पाने की खाता तथा पारिवारिक सम्पत्ति को बंटवारे से बचाये रखने के दो कारणों के अतिरिक्त वैस्टरमार्क के मतानुसार तीसरा आर्थिक कारण जनसंख्या का नियन्त्रण है। यदि सब भाई पृथक्-पृथक् से बिनाहू करके अपने घर बसायें तो जनसंख्या जिस गति से बढ़ेगी उसकी अपेक्षा इस प्रथा के परिवार में एक स्त्री रहने की स्थिति में जनसंख्या धीमी गति से बढ़ती है। इससे जनसंख्या पर नियन्त्रण बना रहता है। यह पहाड़ों जैसे कम उपजवाले प्रदेशों के लिए बहुत उपयोगी है। इसी कारण लद्दाख और तिब्बत जैसे सूखे प्रदेशों में यह व्यवस्था पायी जाती है।

वैस्टरमार्क के मतानुसार निम्नलिखित आर्थिक कारण बहुभर्तृता के प्रचलन में सहायक होते हैं—बहुत कम उपज वाले प्रदेशों में जनसंख्या को नियन्त्रित बनाये रखने की इच्छा, एक ही परिवार में सम्पत्ति को सुरक्षित एवं अविकसित बनाये रखने की इच्छा, खेती आदि के कार्यों को करने के लिए आत्माज की भावना को पुष्ट करने की आवश्यकता, सम्पत्ति को सामाजिक प्रभाव रखने वाले कुछ धनी व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित बनाये रखने की इच्छा, निर्धनता के कारण कन्याशुल्क देने में असमर्थ भाइयों का परम्परा मिल कर अपने सीमित साधनों को संपृद्धीत करने शुल्क चुटाने की संभावना तथा पशुपालन जातियों में सभी प्राप्य साधनों को एकत्र करके अपना काम बनाने की आवश्यकता। इनमें से अधिकांश कारण ज़ीनसार चावर में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त श्री मजूमदार ने इस व्यवस्था का एक अन्य बड़ा लाभ आर्थिक आवश्यकताओं के साथ इसका लाभजन्म और अनुकूलता बतायी है।<sup>१५</sup> इसमें पत्नियों की संख्या आर्थिक साधनों तथा वैयक्तिक आवश्यकताओं के अनुसार बढ़ायी जा सकती है। दो या अधिक भाई अपना-अपना जीवन एक या दो स्त्रियों से आरम्भ कर सकते हैं, किन्तु बाद में आवश्यकता पड़ने पर इसकी संख्या बढ़ा सकते हैं। छोटों में काम के लिए पर्याप्त संख्या में मजदूर पाने के लिए पिता और पुत्र अपनी संख्या से अधिक स्त्रियों ले सकते हैं। श्री मजूमदार ने इस विषय में नारायणचन्द्र तामक व्यक्ति का उदाहरण दिया है, इतमें पिता-पुत्र दोनों ने दो-दो विवाह किये थे। प्रायः परिवार में पुरुष सदस्यों की अपेक्षा पत्नियों की संख्या कम होती है, इस संख्या का कम होना भी लाभदायक है, क्योंकि पहाड़ों में एक-दो पति प्रायः कार्यवश बाहर चले जाते हैं, किन्तु सब स्त्रियाँ घर पर ही रहती हैं।

**वैयक्तिक कारण**—कई बार वैयक्तिक कारणों से भी इस प्रथा को सुविधाजनक समझा जाता है। कई स्मार्तों में यह प्रथा परिवार में सुख और शान्ति बनाने रखने वाली मानी जाती है। कई भाइयों की पृथक्-पृथक् पत्नियाँ प्रायः कलह-वृद्धि का कारण

होती है। ली-मुई का कहना है कि यदि भाइयों की एक स्त्री होगी तो उनमें लड़। नहीं होगी (पीटर—पृ० पु०, पृ० ५६६)। सदाब में प्रिन्स पीटर को बताया गया कि बहुभर्तृता के कारण स्त्रियों के सगड़े बन्द हो जाते हैं, जहां परिवार में एक स्त्री होती है, वहां सदैव शान्ति बनी रहती है। पीटर को केरल में एक व्यक्ति ने अपनी जाति में प्रचलित यह कहावत बतायी थी कि दो स्त्रियों में समझौता संभव है, किन्तु बार स्त्रियों में यह संभव नहीं है (पृ० ५६९)। इसमें उसका यह अभिप्राय था कि दो पुरुष बिना लड़े रह सकते हैं, किन्तु दो स्त्रियाँ बिना लड़े नहीं रह सकती हैं। बहुभर्तृता वाले परिवारों में एक स्त्री होने के कारण शान्ति बनी रहती है, किन्तु घर में कई भाषियाँ होने पर कह का प्रोत्साहन मिलता है।

वैस्टरमार्क ने दो अन्य वैयक्तिक कारण भी इस प्रथा के प्रेरक बताये हैं। पहला कारण पुत्र प्राप्ति करने की इच्छा है। कई बार पुरुष यह अनुभव करता है कि वह सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ है, अतः वह भाई या अन्य पुरुष से सन्तान प्राप्त करने के लिए इस प्रथा को अपनाता है। दूसरा कारण स्त्री द्वारा अधिक अच्छे यौन सम्बन्ध पाने की आकांक्षा है। यदि कोई स्त्री एक पुरुष से यौन आनन्द की पूर्णरूप से प्राप्ति नहीं कर सकती तो उसमें यह आकांक्षा होना स्वाभाविक है कि वह किसी अन्य पौख-सम्पन्न पुरुष से अधिक आनन्द प्राप्त करे। उसकी यह इच्छा बहुभर्तृता में अच्छी तरह पूरी हो सकती है, अतः वैस्टरमार्क ने कुछ अवस्थाओं में इसे भी अग्रणी प्रथा का एक प्रधान कारण माना है। उसका यह मत है कि स्त्रियाँ जबला होने पर भी एक से अधिक पति इसलिए रखता चाहती हैं कि इससे उन्हें अधिक आनन्द मिलता है, अधिक सुरक्षा प्राप्त होती है तथा अपने समाज में अन्य व्यक्तियों की दृष्टि में अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा उपलब्ध होती है। किन्तु उपर्युक्त खूबियों के होने हुए अग्रणी प्रथा के मानव समाज में अधिक प्रचलित न होने का मुख्य कारण यह है कि सब मनुष्यों में यह स्वाभाविक इच्छा है कि अपनी पत्नियों पर उनका अनन्य एवं एकमात्र अधिकार रहे।

कई बार इस प्रथा के सम्बन्ध में यह युक्ति भी दी जाती है कि यह परिवार में नैतिकता की संस्था बनाये रखने के लिए आवश्यक है, क्योंकि बड़े भाई की स्त्री अपने लवण देवरी के प्रति आकृष्ट होकर उनके साथ सम्बन्ध रखने की इच्छा रख सकती है। यह सर्वथा स्वाभाविक है, अतः इसकी ध्यान में रखते हुए यदि एक सामाजिक प्रथा द्वारा इस व्यवस्था को मान्यता प्रदान की जाय तो समाज में नैतिकता सुरक्षित बनी रहेगी।

पीटर ने लिखा है कि उसे बहुभर्तृ प्रथा का अनुसरण करने वालों ने यह बताया कि यह प्रथा नैतिक दृष्टि से शीघ्र उच्च कीटि की है, क्योंकि इससे परिवार बगड़ने से बचा रहता है, यह उन्हें एकता का फल पड़ाती है और यह शिक्षा देती है कि वे अपनी बहु-

मूल्य वस्तुओं का उपयोग भी सम्मिलित का में करें ।<sup>१०</sup>

**ऐतिहासिक कारण**—अधिकांश जातियाँ ऐतिहासिक आधार पर प्राचीनकाल की परम्परागत परिणती होने के कारण इस प्रथा का समर्थन करती हैं। महाभारत में व्यास ने पांच पाण्डवों के साथ ईश्वरी के विवाह को इस आधार पर उचित एवं धर्मनिरूपित सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि यह प्रथा अनाधिकार से कभी आ नहीं है। जीनसार बाबर के लोगों का कहना है कि वे पाण्डवों के संग्रह हैं तथा उनका अनुसरण करते हुए वे बहुपति प्रथा का पालन करते हैं। प्रिंस पीटर का मीनगिरि के टोबा ने (पृ० ५४४) यह बताया था कि वे बहुमर्त्य प्रथा का पालन इसलिए करते हैं कि वे भारतीय हैं और महाभारत में वर्णित पांच पाण्डवों द्वारा द्रौपदी के साथ विवाह की परम्परा का अनुसरण करते हैं। केरल में बहुपति प्रथा का पालन करने वाली, विभिन्न हस्तशिली कम्मलन तथा डेवत आदि जातियाँ अपनी बहुपतिप्रथा का समर्थन ऐतिहासिक आधार पर

<sup>१०</sup> पीटर—पृ० पु०, पृ० ५६२—इस प्रथा से अपरिचित व्यक्तियों को इसका एक बड़ा दोष यह प्रतीत होता है कि इसमें भाइयों के झगड़े अधिक होने चाहिए। जब सुन्दर-उपसुन्दर एक तिलोत्तमा के लिए लड़कें थे तो इस प्रथा में भाई एक स्त्री के लिए ईर्ष्या ईर्ष से प्रेरित होकर क्यों नहीं लड़ सकते? ऐसा न होने का कारण ऐसी जातियों में कठोर आर्थिक परिस्थितियों में आत्मसंरक्षण की भावना से ईर्ष्या-ईर्ष के स्थान पर सहयोग, प्रेम और सामुदायिक हित की भावना को सर्वोच्च स्थान देना है (पीटर पृ० ५६८)। श्री मजूमदार ने जीनसार बाबर के सम्बन्ध में लिखा है (पृ० ७६) कि यह प्रथा इसमें तीन ईर्ष्या के कारण उत्पन्न होने वाले संघर्ष के स्थान पर पारिवारिक एकता और सहयोग की भावना को बढ़ाने वाला सिद्ध हुई है। सब व्यक्ति परिवार के मुखिया (समाणा) और उसकी पत्नी (समाणी) के नेतृत्व एवं अनुशासन में प्रेमपूर्वक रहते हैं, भाइयों में बड़ा प्रेम और सहयोग होता है। बड़े भाई प्रायः छोटे भाइयों के लिए एक या अधिक लक्षण पतनियाँ लाने का प्रयत्न करते हैं और इनके उपयोग में अपने अधिकार का प्रयोग नहीं करते हैं। दूसरी ओर कई बार पहली और बड़ी पत्नी अपने पतियों को स्वयंसेवक यह प्रेरणा करती है कि वे घरेलू कार्यों में उसकी सहायता करने के लिए दूसरी पत्नी लायें, अथवा कई बार बहुत स्त्री एक पति के साथ अधिक रहने के लिए भी दूसरी पत्नी लाने का सुझाव देती है। इससे यह स्पष्ट है कि जीनसार में जहाँ एक ओर एक पत्नी के कई पति होते हैं वहाँ दूसरी ओर इनकी एक से अधिक पतनियाँ होती हैं, इस प्रकार जीनसार बाबर में बहुभार्यता (Polygamy) तथा बहुमर्त्यता (Polyandry) का विचित्र सम्मिश्रण होता है, अतः श्री मजूमदार ने इसे बहुपत्नीपतिप्रथा (Polygynandry) का नया नाम दिया है।

कहती हुई कहती हैं कि यह एक प्राचीन सिंहासी पद्धति है और वे संकाद्वीप से भारत आते हुए इसे अपने साथ लेते आये थे (पीटर, पृ० १५६)। श्रीलंका में काण्डी के प्राचीन राजाओं के इतिहास का प्रतिपादन करने वाले एक ग्रन्थ "राजाबालिये" में लिखा है कि एक राज-कुमारी ने ऐसे दो भाइयों से विवाह किया जो राजा थे। इसकी पुष्टि जब ऐतिहासिक केलेण्डिन ने की है और यह बताया है कि सम्राट विजयबाहु तथा उसके भाई राजसिंह भी एक ही पत्नी थी। काण्डी प्रदेश में बहुपतिप्रथा का वर्णन करते हुए थोडनियरों ने यह बताया है कि यहाँ इस प्रथा का समर्थन इस आधार पर किया जाता है कि यह इस देश में अत्यन्त प्राचीन काल से चली आने वाली परंपरा है (पीटर, पृ० १५३)।

पिछली शताब्दी में विवासवादी दृष्टिकोण से विवाह के विभिन्न रूपों का प्रतिपादन करने वाले लेखक इसे विवाहप्रथा के ऐतिहासिक विकास में एक महत्वपूर्ण दशा समझते थे। बर्नार्ड ग्रानिन्ग ने इसे बहुस्त्रीविवाह (Polygamy) तथा एक-विवाह (Monogamy) के बाद तथा कामचार (Promiscuity) से पहले स्थान दिया। मैकजोनान के मतानुसार पहले मानवसमाज में विवाह प्रथा नहीं थी, बहुपतिप्रथा विवाह का सबसे पहला रूप था। मेन, लुतूर्न तथा हर्बर्ट स्पेन्सर ने इन विचारों का खण्डन करते हुए कहा है कि बहुमर्त्यता समाज में किसी भी समय में कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होती है, पहले इन परिस्थितियों का वर्णन किया जा चुका है।

इन परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होने पर जब यह प्रथा किसी जाति में एक संस्था (Institution) का रूप धारण करती है तो ऐतिहासिक परम्परा इसे सुदृढ़ एवं दृढ़ बनाती है (पीटर, पृ० १६८)। सुदूर इतिहास में इस प्रथा का प्राप्ता जाना समाज में इसे एक ऐसी सर्वमान्य कृति बना देता है, जिसका पालन समाज के सब व्यक्तियों के लिए आवश्यक एवं अनिवार्य माना जाता है। जब ऐसे किसी समाज का सम्बन्ध इसे न मानने वाली विदेशी संस्कृति से होता है तो बहुमर्त्य प्रथा मानने वाले व्यक्तियों के समाज में एक प्रकार की ऐसी राष्ट्रीयता की भावना का अभ्युदय होता है, जिससे प्रेरित होकर वे बहुमर्त्य प्रथा का पालन न करने वाली जातियों को दुश्मना में अपनी प्रथा का अधिक उन्नत से समर्थन करने लगते हैं। इस कारण यह प्रथा उपर्युक्त परिस्थितियों न रहने पर प्रतिकूल दशाओं में भी बनी रहती है। इस प्रकार ऐतिहासिक कारण और प्राचीन परम्परा इस प्रथा को समाज में स्थायी बनाने में सहायक सिद्ध होती है।<sup>१६</sup> (पीटर-पृ० १७०, पृ० १६८-७१)।

<sup>१६</sup> उपर्युक्त आर्थिक, वैयक्तिक तथा ऐतिहासिक कारणों के अतिरिक्त इस प्रथा के उत्पादन और विकास में सहायक दो अन्य प्रकार के जनसंख्या सम्बन्धी (Demographic) तथा समाजशास्त्रीय कारणों (sociological reasons) को पहले बहुत महत्त्व दिया जाता था, किन्तु अब नवीन गवेषणा से ऐसा नहीं समझा जाता।

प्रिन्स पीटर ने बहुभर्तृ प्रथा के ऐतिहासिक विकास के संबंध में नवीनतम मानवशास्त्रीय सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि इसका आरम्भ कठोर आर्थिक परिस्थितियों से होता है। बहुत कम उपजवाले प्रदेशों में उदरपूर्ति के लिए आवश्यक सामग्री जुटाने में कठोर परिश्रम करना पड़ता है, वहाँ रहने वाली कुछ जातियों में इस प्रथा का आविर्भाव होता है। यहाँ आर्थिक उत्पादन के लिए सब व्यक्तियों को एक दूसरे पर बहुत निर्भर रहना पड़ता है, एक दूसरे के साथ सहयोग करना पड़ता है, अपने वैयक्तिक स्वार्थ की अपेक्षा समाज के हित एवं कल्याण की प्रशान्त स्थान देना पड़ता है। इससे उनमें मुदृक एकता और पारस्परिक प्रेम की भावना का इतना अधिक विकास होता है कि इससे पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष की भावनाएँ दब जाती हैं। ऊपर बताये गये आर्थिक कारणों से निश्चय होकर कई आई एक ही परती ग्रहण करने की प्रथा अपनाते

जनसंख्या संबंधी कारण का यह अभिप्राय था कि बहुभर्तृता के उत्पन्न होने का एक कारण आसिकावध आदि की दूषित प्रथाओं से तथा अन्य कारणों से पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या कम होता है, पुरुष अधिक एवं स्त्रियाँ कम होने से समाज में स्वयमेव यह स्वाभाविक नियम बन जाता है कि अनेक पुरुष एक स्त्री से विवाह करें। किन्तु प्रिन्स पीटर के आधुनिक अनुसन्धान से (पृ० ५६५) यह धारणा आंशिकपूर्ण सिद्ध हुई है। धौलका के रतनपुर क्षेत्र में, केरल के पल्लवन्न तालुके में, नीलगिरि के ढोबों में तथा कश्मीर की सहाय तहसील में बहुभर्तृ प्रथा का अनुसरण करने वाली जातियों में पुरुषों का अनुपात स्त्रियों के अनुपात से बहुत थोड़ी मात्रा में अधिक है और वह इस प्रथा का कारण नहीं हो सकता। केरल की ठंडन और कम्मलज जातियों में जिन क्षेत्रों में बहुभर्तृ प्रथा का सबसे अधिक प्रसार है, वहाँ स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक है। टीडा जाति में पीटर के अन्वेषणानुसार, स्त्री पुरुषों का अनुपात चार और पाँच का है (पृ० ५३६)। जौनसार बावर के लोहारी और बंला के गाँवों के बहुभर्तृता प्रथा वाले क्षेत्रों की जो जनसंख्या श्री मजूमदार (हिमालयन गोलिण्ड्री पृ० ५०-५१) ने दी है उससे यह स्पष्ट है कि वहाँ स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की संख्या अधिक है, ताछा-मण्डल में दोनों की संख्या में बहुत कम अन्तर है। अतः यह कारण ठीक नहीं प्रतीत होता है। प्रिन्स पीटर ने इस विषय में यह भी कहा है कि कई स्थानों में स्त्रियों की संख्या पुरुषों की अपेक्षा कम होती है, वहाँ उपर्युक्त युक्ति के अनुसार बहुभर्तृप्रथा होनी चाहिए, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। उदाहरणार्थ, केरल में मोरसा मुसलमानों में पाँच पुरुषों के पीछे केवल दो स्त्रियाँ हैं, फिर भी वहाँ यह प्रथा नहीं पायी जाती है। अतः स्त्रियों की कमी बहुभर्तृता के प्रचलन का समुचित कारण नहीं प्रतीत होती है।

है। इससे अनेक प्रकार के वैयक्तिक लाभ होते हैं। अतः आर्थिक एवं वैयक्तिक दृष्टि से उपयोगी होने के कारण यह प्रथा समाज में प्रचलित हो जाती है। समाज इसे मान्यता प्रदान करता है क्योंकि उसे आर्थिक उत्पादन के लिए विभिन्न व्यक्तियों में वंशिक सहयोग आवश्यक प्रतीत होता है। यह प्रथा जनै-जनैः रुढ़ि का रूप धारण करती है और ऐतिहासिक परम्परा इसे समाज में सुदृढ़ बनाती है तथा एक महत्वपूर्ण संस्था का रूप प्रदान करती है। किन्तु जब समाज में उपर्युक्त परिस्थितियाँ नहीं रहनी अथवा इसकी निरोधी परिस्थितियाँ और भावनाएँ प्रचल होती हैं तो यह प्रथा भीत हो निवृत्त होती है। औत्सर्ग बाबर और केरल में इसीलिए इस समय इस प्रथा का स्तंभ हो रहा है।

समाजशास्त्रीय कारण का अभिप्राय विभिन्न कारणों से पति के घर से बाहर रहने पर, उसके अभाव की पुति के लिए इस प्रथा का प्रचलित होना है (पीटर पृ० ५५७)। उदाहरणार्थ लंका में काण्डो प्रवेश की बहुपति प्रथा के बारे में गुणरत्ने का यह मत है कि पहले वहाँ के सरदारों और सामन्तों की राजबद्वार में बहुत समय तक रहना पड़ता था, घर में उनकी अनुपस्थिति में घरेलू कार्य चलाने के लिए इस प्रथा का प्रचलन आरम्भ हुआ, इसके लिए पति के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति का पत्नी के साथ रहना आवश्यक था, पति के छोटे भाई के लिए यह कार्य करता सर्वथा स्वाभाविक था। टी० बी० पन्थोर्के ने पति की अनुपस्थिति का कारण 'रात के समय पशुओं से घेतों की रखवाली करना' बताया है। तिब्बत के पशुपालक समाज में नये चरगाहों की खोज के लिए बाहर जाने पर पतिव्रता की अनुपस्थिति में घर का कार्य उनके छोटे भाइयों द्वारा चलाया जाता है। बैरडरमार्क ने सैनिक समाजों में पतिव्रता के प्रवृत्ति पर चले जाने के कारण इस प्रथा के प्रचलित होने का उल्लेख किया है और केरल की नायर जाति में बहुपति प्रथा का कारण इसे बताया है। किन्तु इस कारण को सही मानने में सबसे बड़ी आपत्ति प्रिंस पीटर ने (पृ० ५५७, ५५५) यह की है कि सैनिक सेवा के कारण पति की अनुपस्थिति सभी सैनिक समाजों में होती है, यदि इसे बहुपति प्रथा का कारण माना जाय तो यह उन सभी समाजों में होनी चाहिये, किन्तु यह केवल नायर समाज जैसे इन गिने मानव समूहों में ही पायी जाती है। इससे यह सूचित होता है कि इसका वास्तविक कारण पति की अनुपस्थिति नहीं, अपितु पहले बतायी गयी कुछ अन्य परिस्थितियाँ हैं।

## हिन्दू विवाहविषयक नवीन प्रवृत्तियाँ

पिछले अध्यायों में हिन्दू विवाह के अतीत का वर्णन और वर्तमान का शिखरन किया गया है; इस अध्याय में हिन्दू विवाह के भविष्य को सूचित करने वाली कुछ ऐसी नवीन प्रवृत्तियों और परिवर्तनों की मीमांसा की जायगी जो इस संस्था के भावी स्वरूप पर सहुरा प्रभाव डालने वाली हैं। पिछले २५-३० वर्षों में भारत में परिवार और विवाह के संबंध में अनेक समाजशास्त्रीय अनुसन्धान हुए हैं।<sup>१</sup> यहाँ इन सबके आधार पर नवीन प्रवृत्तियों का प्रतिपादन किया जायगा।

पश्चिमी जगत् में समाजशास्त्रियों, वैज्ञानिकों तथा उपन्यास-लेखकों ने विवाह तथा परिवार के भविष्य के संबंध में अनेक मनोरंजक कल्पनाएँ की हैं। इनके अनुसार एक ऐसा मावी युग बाने वाला है, जब समाज में विवाह एवं परिवार की प्रथा पूर्ण रूप से लुप्त हो जायगी। पुरुष और स्त्री इच्छानुसार कामोपभोग करेंगे, पार्श्व-विरोध के साधनों में नवीन प्रगति और आविष्कार हो जाने के कारण, कामोपभोग में सन्तानोत्पादन की आवश्यकता न रहने से इसे निषेधक एवं निषीध रीति से किया जा सकेगा। बच्चों का पालन-पोषण करने के लिए माता-पिता और परिवार की आवश्यकता नहीं रहेगी। शिशुओं के पालन-पोषण का कार्य राज्य द्वारा संचालित शिशुशालाओं (Nurseries) में अनुभववी दाइयों द्वारा होगा। सुप्रसिद्ध लेखक आल्डस हक्सली (Aldous Huxley) ने अपने एक उपन्यास 'नवीन साहसिक जगत्' (Brave New world) में यहाँ तक कल्पना की है कि भविष्य में विज्ञान इतनी उन्नति कर लेगा कि बच्चों को वैज्ञानिक

१. इस प्रकार के कुछ प्रमुख अध्ययन और अन्वेषण निम्नलिखित हैं—

१. श्रीमती सी० ए० हाटे—सीशियोइकनामिक कंडीशन आफ बी एजूकेटेड युमैन इन बाम्बे सिटी, १९३०।
२. श्री के० टी० सक्सेन्ट-ब्रॉजिंग व्यूज आन मैरिज एण्ड फैमिली १९३४।
३. श्रीमती जी० बी० बेसाई—युमैन इन मार्जिन गुजराती लाहक १९४४।
४. श्रीमती सी० ए० हाटे—बी सोशल पोलीशन आफ हिन्दू युमैन १९४६।
५. रास—बी हिन्दू फैमिली इन इट्स अबॉन सैडिंग १९६१।



प्रयोगशालाओं में परीक्षण नलिकाओं (Test Tubes) में भीरु (Sperm) और रज (Ovum) को मिलाकर उत्पन्न किया जा सकेगा, स्त्रियों की प्रभृति का कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। उस समय यदि किसी स्त्री का भ्रूण से कोई बच्चा उत्पन्न होगा तो यह एक बड़ी आश्चर्यजनक घटना होगी। विवाह और परिवार की व्यवस्था सर्वथा अनावश्यक और निरर्थक सिद्ध हो जायगी।<sup>२</sup>

निमन्देह से कहनाएँ, बड़ी योग्य है। इसका आधार नवीन आविष्कारों से तथा वैज्ञानिक उन्नति में होने वाले उद्योगीकरण (Industrialisation) और नगरीकरण (Urbanisation) द्वारा उत्पन्न होने वाली नवीन परिस्थितियाँ हैं। इनका विश्लेषण हिन्दू परिवार भीमांश (पृ० ४८८) में विस्तार से किया जा चुका है। अतः यहाँ केवल विवाह विषयक नवीन प्रवृत्तियों का संक्षिप्त उल्लेख किया जायगा। यह कुछ समाजशास्त्रियों द्वारा हिन्दू समाज में किये गये अन्वेषणों के आधार पर किया जायगा। हिन्दू विवाह की प्रमुख नवीन प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं।

### (१) विवाह का स्वरूप—इसके वैयक्तिक पक्ष की प्रधानता

पहले अध्याय में यह बताया जा चुका है कि विवाह के स्वरूप के संबंध में कई पक्ष और दृष्टिकोण हैं। इन्हें मुख्य रूप से निम्नलिखित पक्षों में बाँटा जा सकता है।

(क) धार्मिक पक्ष—इसके अनुसार विवाह एक पवित्र धार्मिक संस्कार है, मनुष्य को अपने धार्मिक कर्तव्य पूरा करने के लिए विवाह करना चाहिए। पहले यह धर्षण हो चुका है कि भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने विवाह का एक प्रयोजन विभिन्न प्रकार के धार्मिक कर्तव्यों का पालन करना बताया है (पृ० २-११)। इस प्रकार धार्मिक संस्कार (Religious sacrament) होने के कारण विवाह एक अविच्छेद्य संबंध होता है। अतः यह एक ऐसा अनुबन्ध (Contract) नहीं है, जिसे दोनों पक्ष कुछ विशेष परिस्थितियों में तोड़ सकें। यह विवाह का अनुबन्धायक (Contractual) स्वरूप कहलाता है। हिन्दू विवाह अब तक धार्मिक बन्धन या अविच्छेद्य संस्कार (Indissoluble Sacrament) रहा है, अनुबन्धायक (Contractual) संबंध नहीं है।

(ख) सामाजिक पक्ष—इसका यह अभिप्राय है कि विवाह का उद्देश्य समाज का कल्याण, समझान की प्राप्ति, समाज के साधन को बनाये रखना तथा इसका संरक्षण करना है।

(ग) नैतिक पक्ष—इसका यह अर्थ है कि समाज में नैतिकता की सुरक्षित रखने के लिए यह आवश्यक है कि सबको विवाह द्वारा वैधरीति से कामवासना की पूर्ति

<sup>२</sup> इस विषय के विश्लेषण के लिए देखिए हरिवस्त वेदालंकार—हिन्दू परिवार भीमांश, अठारहवाँ अध्याय, पृ० ४८८-४९७।

के साधन प्रस्तुत किये जाय ताकि समाज में नैतिक अराजकता और अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न न हो सके।

(घ) **बीया पक्ष वैयक्तिक (Personal)** है। इसके अनुसार विवाह का प्रधान उद्देश्य पति-पत्नी का एक दूसरे के लिए साथी और मित्र होना, एक दूसरे के वैयक्तिक सुख-दुःख में सहायक होना, एक दूसरे की पूर्णता को बढ़ाना सम्झा जाता है। पहले अध्याय (पृ० ३-४) में बताया जा चुका है कि जलपय ब्राह्मण और बृहदारण्यक के मतानुसार विवाह मनुष्य के वैयक्तिक जीवन की अपूर्णता को दूर करने के लिए तथा उसे सुखी बनाने के लिए होता था, मध्य युग में यह बर-वधू के माता पिता द्वारा दो परिवारों के बीच में तय किया जाने वाला (Arranged Marriage) संबंध मात्र था, बातविवाह तथा परदे की प्रथा के कारण इसमें पति-पत्नी के वैयक्तिक संबंध का विकास बहुत कम होता था।<sup>१</sup>

किन्तु विवाह के प्रधान एवं गंभीर परिस्थितियों से हिन्दू युवक और युवतियों के विवाह-विषयक दृष्टिकोण में बड़ा परिवर्तन आ रहा है। पहले विवाह के विषय में धार्मिक दृष्टिकोण को महत्त्व दिया जाता था। इसे एक पवित्र धार्मिक संस्कार और अविच्छेद्य बन्धन माना जाता था, इसमें वैयक्तिक तरफ को बहुत कम स्थान दिया जाता था।<sup>२</sup> किन्तु अब धार्मिक के स्थान पर वैयक्तिक पक्ष को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। यह बात श्री के० टी० मर्चेंट द्वारा किये गये एक अनुसन्धान से सूचित होती है। इसमें बम्बई, गुजरात और पुना के युवक-युवतियों से विवाह के संबंध में प्रश्न किया गया था। अधिकांश युवकों तथा युवतियों ने इस विषय में विवाह के वैयक्तिक स्वरूप को प्रमुख स्थान दिया और इसके बाद अधिकतम संख्या में इसके धार्मिक स्वरूप का समर्पण किया।<sup>३</sup> इस विषय में दिये गये उत्तरों से इस समस्या पर सुन्दर प्रकार पड़ता है। एक युवक ने लिखा था—“विवाह का मूलतत्त्व किसी संस्कार में निहित नहीं है, यह पुरोहित द्वारा बोले जाने वाले मन्त्रों में भी नहीं है। यह दो आत्माओं का मिलन है। यह बुद्धि और हृदय का संयोग है।”<sup>४</sup> विवाह से दो आत्माओं का तीव्रतापूर्वक एवं स्वस्थ विकास होता है।<sup>५</sup> एक दूसरे युवक के शब्दों में विवाह प्रकृति के उच्चतम प्रयोजनों को पूरा करने के लिए दो व्यक्तियों का सम्मिलन है (पृ० ५२)। एक युवक ने विवाह के धार्मिक स्वरूप का विरोध करते हुए लिखा था—“आध्यात्मिकता से विवाह के संबंधित होने के विचार का बोधलापन बहुत सिद्ध हो चुका है। आध्यात्मिक संबंध के लिए सहवास की आवश्यकता नहीं होती। इसके विपरीत पति-पत्नी का निरन्तर

<sup>१</sup> राजेन्द्र प्रसाद—आत्म कथा

<sup>२</sup> के० टी० मर्चेंट—वॉलिंग व्यूज आन मैरिज एण्ड फैमिली (हिन्दू पृष्ठ) मद्रास १९३५, पृ० ४०-४६।

<sup>३</sup> वही, पृ० ४८

सहवास इसको एक आध्यात्मिक संबंध बनने में सहायक होना है। विवाह प्रधान रूप से भौतिक संबंध है। इसे एक धार्मिक संस्कार स्वीकार न करते हुए सब प्रकार की परम्पराओं से और धार्मिक ग्रन्थ-विश्वासों के बंधनों से इसे मुक्त करना चाहिए। मनुका मृत्यु के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार से विच्छिन्न न हो सकने वाले हिन्दू विवाह ने हिन्दू स्त्रियों के उत्पीड़न एवं दासता को उत्पन्न किया है" (पृ० ५३)। कुछ अन्य उत्तरों में कहा गया था कि पत्नी पति की सहायक, परामर्शदाता तथा जीवन-संमिली होती है, उनका पारस्परिक संबंध भूतल पर घनिष्ठ मित्रों जैसा होना चाहिए। विवाह के अनु-बन्धानक (Contractual) रूप का समर्थन करते हुए एक उत्तर में कहा गया था— "विवाह एक ऐसा अनुबन्ध है जिसकी समाप्ति दीनों पर पारस्परिक सहमति से कर सकते हैं (पृ० ५६)।" इन उत्तरों से यह स्पष्ट है कि हिन्दू युवक-युवतियों की विवाह-विषयक धारणा में एक बड़ा भौतिक परिवर्तन आ रहा है, उनमें इसे धार्मिक संस्कार या अविच्छेद्य बन्धन के स्थान पर वैयक्तिक संबंध और एक प्रकार का अनुबन्ध (Contract) समझने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

## (२) विवाह का अनावश्यक समझा जाना

पहले अध्याय (पृ० १७-२२) में यह बताया जा चुका है कि कई कारणों से हिन्दू समाज में चिरकाल से प्रत्येक नर-नारी के लिए विवाह एक अनिवार्य धार्मिक कर्तव्य माना जाता रहा है; किन्तु अब ज्ञात-अज्ञात नवीन परिस्थितियों से इस धारणा में परिवर्तन हो रहा है और कुछ युवक-युवतियाँ विवाह को अनावश्यक समझने लगे हैं। मर्चेन्ट द्वारा किये गये अनुसन्धान में ८६.२ प्रतिशत युवक-युवतियों ने विवाह को अनिवार्य तथा आवश्यक माना था और १३.२ ने अनावश्यक।<sup>६</sup> युवकों ने इसे आवश्यक मानने के लिए जो कारण दिये हैं उनमें प्रसन्नता वैयक्तिक कारणों की है, विवाह व्यक्ति के विकास एवं पूर्णता के लिए जीवनसाथी और बच्चे पाने के लिए, जीवन की आनन्दमय बनाये के लिए तथा उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए आवश्यक माना जाता है (पृ० ६८)। इस प्रसंग में यह तथ्य स्मरणीय है कि युवकों में केवल १३.२ ने विवाह को अनावश्यक माना है, किन्तु युवतियों में पचास प्रतिशत इसे अनावश्यक मानती हैं।

विवाह को अनावश्यक समझने के लिए युवक-युवतियों द्वारा प्रस्तुत किये गये कारण प्रधान रूप से निम्नलिखित हैं—

(क) स्वतन्त्रता पर आघात—विवाह मनुष्य की वैयक्तिक स्वतन्त्रता पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगाता है, आधुनिक युवक-युवतियों द्वारा अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता बनाये रखने के लिए विवाह न करना उत्तम समझा जाता है। इस विषय में युवतियों

द्वारा दिये गये उत्तर बड़े मनोरंजक हैं। एक युवती के शब्दों में हमारी वर्तमान विवाह पद्धति स्त्रियों के स्वाभाविक अधिकारों पर कुछ प्रतिकूल लगती है, उनके व्यक्तित्व के विकास की अवरोध करती है। अविवाहित रहते हुए, व्यक्ति पक्षी की तरह स्वतन्त्र रह सकता है, नवयुवती अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता सुरक्षित रखते हुए, देश की अधिक सेवा कर सकती है (पृ० = ३-४)।

(ख) **ब्रह्मचर्य का महत्व**—अनेक युवक विवाह की ओर आकर्षण के आदर्श को अधिक ऊँचा और अच्छा समझते हैं, उनमें अमानुसार कामांधोग एक अच्छा और पवित्र कार्य नहीं है, अतः मनुष्य का विवाह के बन्धन में नहीं पड़ना चाहिए।

(ग) **आर्थिक स्वावलम्बन**—कई युवतियों ने इस बात पर ध्यान दिया कि पहले स्त्री के पास स्वतन्त्रता से आजीविका कमाने की साधन नहीं थे, अतः विवाह उसके लिए अनिवार्य था, किन्तु अब शिक्षा पाने के बाद वह अपने पैरों पर खड़ी हो सकती है, अतः उसे विवाह करने की आवश्यकता नहीं है (पृ० ७१)। एक गुजराती युवती ने बहुत तक विचार प्रकट किया है कि स्त्री के लिए, अविवाहित रहना विवाहित होने की अपेक्षा अधिक अपेक्षक है, क्योंकि विवाह उसे परानन्द बनाने वाला तथा उसके कार्य में बाधा डालने वाला है। विवाह की अनावश्यक मानने वाली आधी स्त्रियों ने इसका कारण आर्थिक परिस्थितियों को माना है।<sup>१</sup> उनका यह मत है कि स्त्रियाँ अब अपनी आजीविका कमाते हुए स्वतन्त्रतापूर्वक जीवन-यापन कर सकती हैं, अतः उन्हें विवाह करने की आवश्यकता नहीं है। स्त्रियों का विवाह आर्थिक समस्या को सुलझाने के लिए किया जाता था, अब वे स्वयं इसे सुलझाने में समर्थ हो गयी हैं तो उनके लिए विवाह की कोई उपयोगिता नहीं रह गयी है। कुछ युवकों ने भी इस बात पर ध्यान दिया है कि आर्थिक दृष्टि से दूसरों पर आश्रित एवं परावलम्बी युवों को विवाह नहीं करना चाहिए।

(घ) **जनसंख्या की वृद्धि को रोकना**—कुछ युवक विवाह को इसलिए अनावश्यक मानते हैं कि इस समय देश की समृद्धि को बढ़ाने तथा दरिद्रता दूर करने के लिए जनसंख्या की वृद्धि पर प्रबल अंकुश लगाया जाना चाहिए। विवाहों की अनिवार्यता देश की जनसंख्या बढ़ने में सहायक सिद्ध हो रही है, अतः इस पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिए, अविवाहित स्त्री-पुरुषों की संख्या बढ़ने से जनसंख्या में कमी होगी, अतः वर्तमान युग में विवाह को आवश्यक नहीं समझना चाहिए। एक युवक के शब्दों में "विवाह का प्रधान प्रयोजन वैधरूप से सन्तानोत्पादन करना है। प्रत्येक व्यक्ति यह स्वीकार करता है कि भारत में जनसंख्या की वृद्धि बड़ी तेजी से हो रही है। इसे रोकने

के लिए विवाह के बाद सर्व निरोधादि साधनों की सहायता देने की अपेक्षा विवाह न करना अधिक अच्छा है।<sup>१</sup>

उपर्युक्त अनुसन्धान में युवक-युवतियों के प्रबल बहुमत ने विवाह को आवश्यक माना है। इसका समर्थन वैयक्तिक, सामाजिक, नैतिक और शारीरिक कारणों के आधार पर किया, और इसे आवश्यक न मानने वाले युवकों में केवल १३.२ प्रतिशत ही थे। फिर भी विवाह को आवश्यक न मानने वाली अल्प संख्या इस बात को सूचित करती है कि हिन्दू समाज में विवाह का अनिवार्य एवं आवश्यक कर्तव्य समझने की सार्वभौम भावना में शर्तें शर्तें क्षीयता आने लगी है। इसका प्रधान कारण स्त्रियों की शिक्षा तथा आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होना है। विवाह के अतिरिक्त पहले स्त्रियों के जीवन में कोई अन्य बड़ा कार्य नहीं था, अतः विवाह, मातृत्व और बच्चे उनके लिए अनिवार्य थे, इनके बिना उनका जीवन सूना था। किन्तु आज नारी शिक्षा प्राप्त करके अपने को विभिन्न कार्यों में लगा सकती है, आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी हो सकती है, अतः उसके लिए कुण्ठित जैसी प्राचीन भारत की स्त्रियों की भाँति विवाह अनिवार्य कर्तव्य नहीं रहा है, किन्तु फिर भी सामान्य रूप से हिन्दू नारी के लिए अब भी विवाह आवश्यक माना जाता है।

रास ने भी अपने अध्ययन में उपर्युक्त निष्कर्ष को पुष्ट करते हुए यह लिखा है कि इस समय युवक-युवतियों में विवाह की अनिच्छा पायी जाती है।<sup>२</sup> उसके अध्ययन में पाँच अविवाहित युवकों ने कहा था कि वे विवाह नहीं करना चाहते। इनके विवाह न करने के कारण विभिन्न प्रकार के थे, जैसे देश की सेवा में अपने जीवन को लगा देने की इच्छा, धार्मिक जीवन बिताने की इच्छा, विवाह में कोई दिलचस्पी न होना, परिवार के पालन-पोषण के गम्भीर आर्थिक उत्तरदायित्व को ठठाने से बचने की इच्छा तथा यह विश्वास कि विवाह दुर्भाग्य और दुःखों का स्रोत माना जाता है। रास ने एक ऐसी युवती का भी उल्लेख किया, जो अपने कार्य में इतनी अधिक तल्लीन थी कि उसने विवाह करने की बात ही नहीं सोची थी।

स्त्रियाँ ज्यों-ज्यों आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सन्तुष्ट होती जाती हैं, ज्यों-ज्यों वे अपना मनपसन्द या सन्तोषजनक घर न मिलने की दशा में विवाह को नापसन्द करने लगती हैं। इस विषय में एक युवती के ये विचार उल्लेखनीय हैं—“मेरी माता बी० ए० की उपाधि प्राप्त करने के बाद मेरा विवाह करना चाहती थी। मुझे बी० ए० पास किये हुए तीन वर्ष बीत चुके हैं, मेरे विवाह के लिए कई प्रस्ताव आ चुके हैं किन्तु मैंने उस समय तक विवाह न करने का निश्चय किया है, जब तक मुझे

<sup>१</sup> मर्चेंट—पूर्वोक्त पुस्तक पृ० ७६-८०

<sup>२</sup> रास—वी हिन्दू कमिटी इन इंड्स अर्बन संटिंग पृ० २७६

अपने लिए, सर्वथा उपयुक्त वर नहीं मिल जाता है। मैं ऐसे व्यक्ति को पति नहीं बनाता चाहती हूँ, जिसमें मेरे आदर्श पति की सब विशेषताएँ न हों। मैं यह भी अनुभव करती हूँ कि मेरा वर्तमान जीवन पूर्ण एवं रोचक है। मेरे पास जीवन व्यतीत करने के लिए अपनी पुस्तकें और संगीत है।" (पृ० २७६)। इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि शिक्षित स्त्रियों में उपयुक्त वर न मिलने तथा अधिकांशित रहने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। स्त्रियाँ एम०ए०, एम०एल०बी०, पी०एच०डी० या डॉक्टर बनने के बाद अपने वैसी शिक्षा रखने वाला तथा आर्थिक दृष्टि से समर्थ पति ढूँढती हैं, ऐसे आदर्श पति की तलाश में कई बार ऐसी स्थितियों को अविवहित रहने को विवश होना पड़ता है। वैदिकयुग में पिता के घर में इस प्रकार बूढ़ी होने वाली कन्याओं को अमात्रू कहा जाता था (श्रु० २।१।७।७), अब पुनः हमारे समाज में यह प्रवृत्ति उत्पन्न हो रही है।

### (३) वरणस्वातन्त्र्य

हिन्दू समाज में वारंविवाह की पद्धति व्यापक रूप से प्रचलित होने पर सभी विवाह माता-पिता द्वारा आयोजित (Arranged) किये जाते थे। इसमें वर-वधू को किसी भी प्रकार से अपना जीवनसाथी चुनने की कोई स्वतन्त्रता नहीं थी। यह विवाह वस्तुतः दो व्यक्तियों में न होकर, दो परिवारों में होता था। इसमें वर-वधू को एक-दूसरे को विवाह से पहले देखने, अपने जीवनसाथी के चुनाव के विषय में कोई सम्मति प्रकट करने<sup>११</sup> या किसी प्रकार के अनुरंजन (Courtship) की कोई छूट नहीं थी। इसमें पहले विवाह होता था और इसके बाद प्रेम विकसित होता था। यह पश्चिम की प्रेम उत्पन्न होने के बाद विवाह करने की (Love Marriage) पद्धति से सर्वथा भिन्न था। भाँ बाप अपने बच्चों की प्रावी छोट्टी आयु में तय करते थे और इसमें वर-वधू को अपना जीवनसाथी स्वयं चुनने का या इस विषय में कुछ भी कहने का अधिकार नहीं होता था।

किन्तु शिक्षा के प्रचार एवं प्रभाव से अब स्त्री पुष्प अपना जीवनसंगी चुनने में स्वतन्त्रता चाहने लगे हैं। हाटे (पृ० ३६) की गवेषणा में ७४ प्रतिशत कन्याओं ने यह बताया था कि वे अपना जीवनसंगी स्वयं चुनना चाहती हैं। हाटे ने इस विषय में यह सत्य भी लिखा है कि समग्ररूप से विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि शिक्षित स्त्रियों ने ऐसे विवाहों के विरोध करने का निश्चय कर लिया है, जो उनके माता-पिता द्वारा विधिमत किये जाते हैं और जिनमें उनके कोई सम्मति नहीं ली जाती है। शिक्षित नर-नारियों को यह इच्छा स्वाभाविक है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न में उनकी इच्छा का ध्यान रखा जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, कन्याएँ धन के प्रतीकन से किये जाने वाले वैवैध विवाह के

दुष्परिणाम से बचने के लिए भी वरणस्वातन्त्र्य की मांग करती है।<sup>११</sup> सर्वेष्ट की गवेषणा के ७६.२ प्रतिशत युवक-युवतियों ने अपना जीवनसंगी स्वयंमेव चुनने की इच्छा प्रकट की (पृ० ८५), शेष व्यक्तियों ने यह कहा कि वर-वधू का निश्चय इनके माता-पिता द्वारा होना चाहिए, किन्तु विवाह से पूर्व इस मामले में वर-वधू की स्वीकृति अवश्य ली जानी चाहिए।

रास की गवेषणा में स्त्रियों तथा पुरुषों को तीन वर्गों में बांटा गया था—अविवाहित, सद्योविवाहित (Young married) जिनका विवाह हुए थोड़ा समय बीता था तथा विरविवाहित (older married) अर्थात् जिनका विवाह हुए काफी समय बीत चुका था। अपना जीवन साथी चुनने के विषय में इनसे तीन बिकल्पों वाला प्रश्न पूछा गया था, क्या वे इस विषय में पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते हैं, कुछ स्वतन्त्रता चाहते हैं या कोई स्वतन्त्रता नहीं चाहते हैं। इस प्रश्न के उत्तरों को निम्नलिखित तालिका में प्रदर्शित किया गया है।<sup>१२</sup>

### विवाह में वरण स्वातन्त्र्य की मांग

	पूर्ण स्वतन्त्रता	कुछ स्वतन्त्रता	स्वतन्त्रता का अभाव	सर्वयोग
<b>स्त्रियाँ</b>				
अविवाहित	७	७	५	१९
सद्योविवाहित	३	१३	५	२१
विरविवाहित	२	१०	१०	२२
स्त्रियों की कुल संख्या	१२	३०	२०	६२
<b>पुरुष</b>				
अविवाहित	१८	२१	३	४२
सद्योविवाहित	२	८	१०	२०
विर विवाहित	—	७	४	११
पुरुषों की कुल संख्या	२०	३६	१७	७३
सर्वयोग	३२	६६	३७	१३५

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि विरविवाहित पुरुषों की अपेक्षा एकाकी या अविवाहित युवक-युवतियों में स्वयंवर करने की प्रबल अभिलाषा है। ४२३ पुरुषों में

<sup>११</sup> हरिवंश बेदालंकार—हिन्दू परिवार मीमांसा पृ० १०५

<sup>१२</sup> रास—पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० २५२

१८ एकाकी पुरुषों ने विवाह के संबंध में पूर्ण स्वतन्त्रता की और २१ में कुछ स्वतन्त्रता की मांग की, केवल तीन ही पुरुष ऐसे थे जो इसमें कोई स्वतन्त्रता नहीं चाहते थे और इसका निर्णय माता-पिता पर छोड़ने के इच्छुक थे। किन्तु सद्योविवाहित पुरुषों में केवल ३ को पूर्ण स्वतन्त्रता मिली थी, १३ को आंशिक स्वतन्त्रता तथा पाँच को कोई स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त हुई थी। विद्विवाहित पुरुषों में किसी को भी अपनी पत्नी का चुनाव करने में स्वतन्त्रता नहीं मिली थी। अविवाहित स्त्रियों में १४ पूर्ण अथवा आंशिक वर्ण स्वातन्त्र्य चाहती थीं, किन्तु पाँच अथ भी पति के चुनाव के लिए पूर्ण रूप से माता-पिता पर अवलम्बित रहना चाहती थीं। सद्योविवाहिताओं में केवल तीन को पूरी, १३ को आंशिक तथा पाँच को कोई स्वतन्त्रता नहीं मिली थी। विद्विवाहिताओं में केवल दो को ही पूर्ण स्वतन्त्रता मिली थी, दस को आंशिक एवं दस को कोई भी स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त हुई थी।

ये आंकड़े इस बात को सूचित करते हैं कि (१) यद्यपि अविवाहित युवक युवतियाँ अपना जीवनसाथी चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते हैं, तथापि अभी तक यह उन्हें उतनी अधिक मात्रा में नहीं मिल रही है, जितनी मात्रा में इसे वे पाने के लिए इच्छुक हैं। (२) अब भी युवक-युवतियों में काफी बड़ी संख्या यह चाहती है कि उनको विवाह का निर्णय माता-पिता ही करें। ऐसा प्रतीत होता है कि अब तक माता-पिता घर-बधू के बारे में पूरा नियन्त्रण करते थे, किन्तु अब युवक-युवतियों स्वयमेव यह चुनाव करना चाहती हैं और अपने चुनाव पर माता-पिता की स्वीकृति की मूहर लगवाना चाहते हैं।

वर्ण स्वातन्त्र्य की प्रवृत्ति जने-जाने-प्रत्येक पीढ़ी में किस प्रकार बढ़ रही है, यह रास के द्वारा प्रस्तुत किये गये एक महिला के निम्नलिखित विवरण में स्पष्ट हो जाएगा—“जब हमारा विवाह हुआ तो मेरी आयु दस वर्ष की तथा मेरे पति की आयु १६ वर्ष की थी। मेरे माता-पिता ने विवाह से पहले मेरे पति को तथा उनके माता-पिता ने मुझे देखा था, किन्तु दोनों ने एक दूसरे को विवाह संस्कार से पहले नहीं देखा था। पिछले कुछ वर्षों में एक नयी प्रथा का विकास हुआ है, इसे ‘लड़की देखना’ कहते हैं। जिस समय मेरी लड़की की सादी हुई, उस समय यह नयी प्रथा थी। मेरी लड़की ने तदा उसके भावी पति ने एक दूसरे को देखा, किन्तु उन्हें विवाह से पहले एक दूसरे से बात करने की अनुमति नहीं दी गयी। किन्तु जब मेरी बीती की शादी हुई तो लड़के तथा लड़की ने एक दूसरे से बातचीत की और उन्हें इस बात की भी स्वतन्त्रता दी गयी कि वे विवाह से पहले एक साथ भ्रमण के लिए जा सकें, यद्यपि इसकी व्यवस्था मां-बाप की ओर से की गयी थी।”<sup>१३</sup> कई बार पुत्रों के आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी हो जाने पर भी उनकी यह इच्छा बनी रहती है कि माता-पिता ही उनकी जीवनसंगिनी का चुनाव करें। यह



बात इक्षिण भारत से आकर सम्बर्द्ध में बस जाने वाले एक नवयुवक के विवरण से स्पष्ट हो जायगी। उसका यह कहना है कि "मछपि मैं पी-एच. डी. प्राप्त करने के बाद तत्काल विवाह करना चाहता हूँ, किन्तु मैंने इस बात पर विचार नहीं किया कि मैं किस प्रकार की लड़की से शादी करूँगा। मैं इस बात के लिए अपने पिता पर भरोसा रखता हूँ कि वे मेरे लिए लड़की ढूँढ़ देंगे और मुझे इसके लिए कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। मेरे माता-पिता ने मुझे इस बात की अनुमति दी है कि इस मामले में अन्तिम चुनाव करने का कार्य वे मुझे सौंपेंगे। जायद इसका यह कारण है कि वे यह बात अच्छी तरह से जानते हैं कि मैं उनकी इच्छा का विरोध नहीं करूँगा" (रास पृ० २१२)।

इस विषय में युवक माता-पिता की इच्छा का विरोध करना कई कारणों से ठीक नहीं समझते हैं।<sup>१४</sup> पहला कारण उनका यह विचार है कि उनके अनुभवी माता-पिता उनके हित के लिए दूर दृष्टि से सब बातों पर विचार करके उपयुक्त कन्या का चुनाव करते हैं, युवक माता-पिता की अपेक्षा अदूरदर्शी, अल्प एवं अपरिपक्व बुद्धि रखने वाले हैं, वे अनुभव-शून्यता के कारण तथा कामान्ध होकर अपने चुनाव में ऐसी भयंकर भूलें कर सकते हैं, जिनके लिए उन्हें जीवनपर्यन्त पश्चात्ताप करना पड़ सकता है। इन कारण पर प्रकाश डालते हुए मर्चेंट (पृ० ६३) की रविवणा में एक युवक ने कहा था— "माता-पिता हमारा कल्याण चाहते हैं, उनके परामर्श और सम्मतिमां वर्तमान युवकों में विद्यमान उच्छृंखल कामवासना पर नियन्त्रण का कार्य करती हैं। जब प्रेमिका की आशों का आकर्षण समाप्त हो जाता है तो इंग्लैण्ड की भाँति यहाँ के युवक भी मदान्ध होकर कन्या का स्वयं चुनाव करने के दुष्परिणामों को भोगते हैं। अतः ऐसी परिस्थितियों के निवारण के लिए माता-पिता का हस्तक्षेप बड़ा लाभदायक होता है।"

माता-पिता पर जीवनसंगी के चुनाव के लिए निर्भर रहने का दूसरा कारण यह है कि भारत में अभी तक अविवाहित युवक-युवतियों द्वारा एक दूसरे के साथ सम्पर्क में आने, मिलने और परिचय प्राप्त करने के केन्द्र नहीं हैं। अतः एक युवक ने माता-पिता द्वारा बंधु का निर्णय करने की पद्धति का समर्थन करते हुए लिखा था— "वर्तमान समय में हमारे समाज में पत्नी को पसन्द करने की एक मात्र यही पद्धति है। प्रणय-विवाह (Love Marriages) की पद्धति हमारे समाज में असंभव है, क्योंकि स्त्रियों को एक दूसरे से मिलने की तथा अपना जीवन साथी चुनने की कोई स्वतन्त्रता या अवसर नहीं है।"<sup>१५</sup> किन्तु अब महाविद्यालयों, कॉलेजों और स्नातकोत्तर कक्षाओं में तथा शोध-कार्य में सज्जन छात्र-छात्राओं के सिधे तथा बड़े शहरों के व्यापारिक संस्थानों में काम करने वाले युवक-युवतियों के लिए पारस्परिक सम्पर्क एवं परिचय पाने के अवसर बढ़

<sup>१४</sup> मर्चेंट—पूर्वोक्त पुस्तक पृ० ६३-४

<sup>१५</sup> मर्चेंट—पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० ६४

रहे हैं। रास (पृ० २५६) से इनके माध्यम से होने वाले कुछ रोचक विवाहों के चूष्टान्त दिये हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि आधुनिक युवक-युवती अपना जीवन संगी चुनने की स्वतन्त्रता प्राप्त करने की प्रयत्न अभिताषा रखने लगे हैं, किन्तु अधिकांश विवाह अब भी माता-पिता द्वारा तय किये जाते हैं, प्रायः माता-पिता लड़के के द्वारा पसन्द की गयी लड़की के लिए स्वीकृति दे देते हैं, और जब वे स्वयं लड़के के लिए लड़की ढूँढते हैं तो प्रायः लड़के से इसके लिए सहमति ले लेते हैं।<sup>१६</sup>

#### (४) विवाह की आयु का ऊँचा उठना

आज से ४०-५० वर्ष पहले हिन्दू समाज में सातविवाह की प्रथा का प्रचलन था पहले (पृ० ३३२-५) इसके विधान पर प्रकाश डालते हुए यह बताया जा चुका है कि वर्तमान समय में शिक्षा के प्रसार, आर्थिक परिस्थितियों एवं बहु ढूँढने की परेशानियों के कारण वर-वधू के विवाह की आयु ऊँची उठ रही है। सर्वेष्ट द्वारा किये गये अनुसंधान से युवकों के मतानुसार विवाह की आयु लड़कों के लिए २२.९ वर्ष तथा लड़कियों के लिए १६.६ वर्ष और युवतियों के मतानुसार लड़कों के लिए २५ वर्ष तथा लड़कियों के लिए १८.७ वर्ष होनी चाहिए।<sup>१७</sup> हाटे द्वारा किये गये अनुसंधान में सामान्य स्त्रियों के विवाह की औसत आयु २४ वर्ष तथा शिक्षित स्त्रियों के विवाह की उम्र २६ वर्ष थी।<sup>१८</sup> इसका यह तात्पर्य है कि गृहों के मध्यम एवं शिक्षित वर्ग में बहुत देर में विवाह करण (Late Marriage) की प्रवृत्ति आरम्भ हो गयी है। इस प्रवृत्ति से दाम्पत्य जीवन में अनेक नयी समस्याएँ उत्पन्न होने की संभावना है। यही अवस्था में शादी करने वाले स्त्री-पुरुषों के विचार और आदर्श, परिपक्व होती हैं, उनमें सुखमय दाम्पत्य जीवन के लिए आवश्यक समझौते और अनुकूल्य की भावना कम होती है। विवाह से पूर्व स्वतन्त्रता से कमाई करने वाले पति-पत्नी जब विवाह के बाद अपने वैयक्तिक सुख और मनोरंजन की प्राप्ति में बाधा देखते हैं तो उनमें कलह का सूत्रपात हो जाता है, वैवाहिक जीवन की स्थिरता कम होने लगती है, विवाहविच्छेद बढ़ने लगते हैं।

न केवल विवाह की उम्र का ऊँचा उठना, अपितु विवाह के समय पति-पत्नी

<sup>१६</sup> रास ने कुछ ऐसे भी उदाहरणों का उल्लेख किया है जिनमें युवक-युवतियों को अपनी इच्छा के विरुद्ध माता-पिता के आग्रह से विवाह करने के लिए विधवा होना पड़ा है (पृ० २५७)

<sup>१७</sup> सर्वेष्ट—पूर्वोक्त पुस्तक पृ० २३३

<sup>१८</sup> हाटे—पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० ४९

की उम्र में अन्तर कम होता भी इनके दाम्पत्य जीवन पर गहरा प्रभाव डालता है। हिन्दु परम्परा के अनुसार पतिव्रता स्त्री का यह धर्म है कि वह पति की आज्ञा का पालन करे, उसे देवता समझे तथा उसकी पूजा करे। यह तभी संभव है जब पति-पत्नी की उम्र में काफी अन्तर हो, पति पत्नी से कई साल बड़ा हो। अब तक दोनों की आयु में पर्याप्त अन्तर होता था। श्रीनिवास ने मैसूर की १६०१ की जनगणना रिपोर्ट के आधार पर यह बताया है कि पति-पत्नी की उम्र का अन्तर वहाँ छः महीने से २० वर्ष तक का था। सब वर्गों के लिए औसत अन्तर १० वर्ष का था।<sup>१४</sup> इस के अध्ययन में व्यवसाहित स्त्री-पुरुषों में इस बात के लिए उल्लेखता प्रकट की कि पति-पत्नी की उम्र में अन्तर कम होना चाहिए।<sup>१५</sup> किन्तु इस अध्ययन के गण विवाहित स्त्री-पुरुषों में यह अन्तर २.६ वर्ष तथा चिरविवाहितों में ७.६ वर्ष था। इसमें यह स्पष्ट है कि यद्यपि युवक-युवतियाँ अपनी वैवाहिक आयु का अन्तर कम करने के लिए उल्लुख हैं, किन्तु अभी तक यह अन्तर वास्तव में कम नहीं हो रहा है। वस्तुतः गणविवाहितों में चिरविवाहितों की अपेक्षा यह अन्तर पहले से कम होने के स्वान पर कुछ अधिक बढ़ गया है। इस अध्ययन से यह भी पता लगा है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में यह भावना अधिक है कि पति-पत्नी की उम्र में अन्तर कम होना चाहिए और दोनों की उम्र लगभग समान होनी चाहिए। समानतावादी दृष्टिकोण की प्रधानता के कारण यह सर्वथा स्वाभाविक है, क्योंकि स्त्रियों में यह भावना अधिक है। पति-पत्नी की उम्र में अन्तर कम होने का एक परिणाम यह होगा कि पत्नी पति से उम्र में अधिक न होने के कारण परम्परागत आदर और प्रतिष्ठा के भाव कम रखेगी, पति के साथ समान आयु के कारण मित्रता भी भावना अधिक होगी। अभी तक घर बूढ़े की कठिनाई के कारण पति-पत्नी की उम्र में यह अन्तर पहले की अपेक्षा बहुत कम नहीं हुआ है, निकट भविष्य में इससे कम होने की संभावना अधिक नहीं है। हिन्दू समाज में पुरुष के लिए अपने से बड़ी अवस्था की स्त्री से विवाह करना तब समझा जाता है। सामान्य रूप से पत्नी से यह आज्ञा रखी जाती है कि वह पति का शरण स्पर्श करे, किन्तु यदि वह पति से अधिक उम्र की है तो वह उसके पैर कैदो छू सकती है।

### (५) प्रणय विवाह और रोमांचक प्रेम (Love Marriage and Romantic Love)

प्राचीन भारत में दुष्कृत और शकुन्तला प्रणय विवाह का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। वात्स्यायन के कामसूत्र से प्रतीत होता है कि उस समय पान्थर्ष विवाह बहुत लोक-

<sup>१४</sup> श्री निवास—मैसूर एन्ड फैमिली पृ० ६३।

<sup>१५</sup> रास—वही पृ० ३५०

प्रिय थे, किन्तु बालविवाहों का अधिक प्रचलन होने से हिन्दू समाज में प्रणय-विवाह की प्रथा सर्वथा लुप्त हो गयी। आजकल उपन्यासों तथा सिनेमा के चित्रों से प्रणय-विवाहों की प्रवृत्ति को प्रबल प्रोत्साहन मिल रहा है। सिनेमा हॉल के पर्दों पर दिखाये जाने वाले लुभाचने दृश्यों से मुग्ध होकर आधुनिक युवक-युवतियाँ प्रणय विवाह के मधुर सपने दिने लगते हैं और इस प्रकार के विवाहों को आदर्श समझने लगते हैं। मनोद की गवेषणा में एक युवक ने यह घोषणा की थी कि “विवाह में जीवनसंगी प्रणय-विवाहों द्वारा चुने जाने चाहिए, अन्यथा विवाह सौख्यव्यवस्था के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, विवाह का वास्तविक आधार प्रणय और रोमांचक प्रेम ही होना चाहिए”।

किन्तु रास के अध्ययन से यह प्रतीत होता है<sup>२१</sup> कि अभी तक हिन्दू समाज में माता-पिता द्वारा आयोजित विवाहों (Arranged marriages) की व्यवस्था अद्यतन है और रोमांचक प्रेम को विवाह के आधार के रूप में बहुत कम स्वीकार किया जाता है, प्रणय विवाहों की संख्या और प्रभाव नगण्य है। रास के अध्ययन में तीन बार विवाहित महिलाओं ने ही प्रणय विवाह किये थे, किन्तु ये विवाहित जीवन के इस पहलू के संबंध में कुछ आलोचना करने के लिये तैयार नहीं थीं, इससे यह सूचित होता है कि ये उपर्युक्त युवक की भांति प्रणय-विवाह करने में कोई अच्छा या बड़ा काम करने का गर्व अपना गौरव अनुभव नहीं करती थीं और इसे विवाह का आधार स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थीं।

इस अध्ययन के कुछ उदाहरणों से यह प्रकट होता है कि माता-पिता की तब कोई प्रसन्नता नहीं होती, जब उनकी संज्ञान प्रणय-विवाह करती है। वे अपनी संज्ञान के प्रणय-विवाह का ओर विरोध करते हैं और इस कारण ऐसा विवाह करने वालों को बड़ी परेशानी और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उदाहरणार्थ एक युवक को अपने से हीन जाति की कन्या के साथ प्रणय विवाह करने पर जो परेशानी उठानी पड़ी, उसका चित्रण निम्नलिखित संदर्भ में है—“अपने प्रणय-विवाह से मुझे बड़ी मुसीबत में फँसना पड़ा, क्योंकि कन्या के प्रति उत्कट प्रेम में तथा माता-पिता के प्रति प्रगाढ़ प्रेम में मैं कोई समन्वय या समझौता नहीं कर सका था। मेरे माता-पिता हमारे संबंध को पसन्द नहीं करते थे, मैं उन्हें अपसन्न नहीं कर सकता था, दूसरी ओर मैं उस लड़की को भी नहीं छोड़ सकता था, जिसने मेरे लिए इतना अधिक कार्य किया था। मेरी प्रगति का तथा मेरे उज्ज्वल भविष्य का खेय उसी को है। इस समय मेरा सबसे बड़ा सिरदर्द यह समस्या बनी हुई है।”<sup>२२</sup>

रास द्वारा वर्णित कुछ परिवारों में माता-पिता ने अपने लड़के-लड़कियों के प्रणय-विवाहों को मंजूर करने का पूरा प्रयास किया, वे इन्हें कोरा पालनपन समझते थे। माता-पिता के विरोध के कारण कई बार लड़कियाँ अपने प्रणय-विवाह का विचार छोड़

२१ रास—पुष्पक पुस्तक, पृ० २१६

२२ रास—पुष्पक पुस्तक, पृ० २६६

देती है। किन्तु कई युवतियाँ जब अपने निश्चय पर अटल रहते हुए ऐसे विवाह कर लेती हैं तो उन्हें माता-पिता द्वारा अपने परिवार से अहिंसक और निर्वासित कर दिये जाने से जो परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं, उसका वर्णन इस उदाहरण में किया गया है—

“मेरी माता हमारे विवाह के लिए सहमत नहीं थी, क्योंकि मेरे पति की शिक्षा कम थी, सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं थी। माँ का यह भी विचार था कि मेरे पति की आयु अधिक थी। लड़के के पिता को इस विवाह पर यह आपत्ति थी कि हम एक जाति के नहीं थे। मैंने अपने माता-पिता को अपने पति के वास्तविक गुणों का परिचय देने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु उनके मन पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। हमने माता-पिता को अपने विवाह का निमन्त्रण भेजा, किन्तु हमारे विवाह में कोई भी सम्मिलित नहीं हुआ। इसके बाद उन्होंने हमसे संबंध विच्छिन्न कर लिये। मैं अपने माता-पिता को केवल सार्वजनिक स्थानों और सभाओं में ही मिलती हूँ, किन्तु वे मुझ से कोई बात नहीं करते हैं। हम भी अब उनसे कोई घनिष्ठ संबंध रखने के लिए उत्सुक नहीं हैं।”<sup>२३</sup> इससे यह स्पष्ट है कि प्रणय-विवाह कई बार स्थायी रूप से माता-पिता और सन्तान के संबंध को विच्छिन्न कर देता है। यह कतरा बहुत कम युवक-युवतियों उठाना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त प्रणय-विवाहों की एक अन्य समस्या भी है। भारतीय एवं विदेशी सिनेमा-चित्र प्रणय-विवाहों के बारे में युवक-युवतियों में बहुत बड़ी आशा उत्पन्न कर देते हैं, किन्तु यह आशा प्रायः पूरी नहीं होती, इस कारण वैदा होने वाला गर्भीर वैराग्य भी इन विवाहों के प्रसार में बाधक है। अतः अभी तक हिन्दू समाज में प्रणय-विवाहों का प्रचलन बहुत कम हुआ है और भविष्य में भी इस प्रथा के प्रसार की अधिक संभावना प्रतीत नहीं होती है।

### (६) अन्तर्जातीय विवाह

वर्तमान युग में आधुनिक परिस्थितियाँ अन्तर्जातीय विवाहों के संबंध में किस प्रकार सहायक सिद्ध हो रही हैं, इसका विवेचन पहले (पृ० १४१) किया जा चुका है। रास के अध्ययन से यह बात होती है कि इस विषय में पुरुषों के विचार स्त्रियों की अपेक्षा अधिक उदार हैं।<sup>२४</sup> वे न केवल अन्तर्जातीय (Intercaste) अपितु विभिन्न नस्लों वाले अन्तः-प्रजातीय (Interracial), विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय वालों का अनुसरण करने वाले तथा अन्तर्धर्म (Interreligious) विवाहों के समर्थक हैं। अभी तक अन्तः-प्रजातीय तथा अन्तर्धर्म विवाह हिन्दू समाज में बहुत कम होते हैं, पहले प्रकार का सुप्रसिद्ध उदाहरण १९६८ में श्रीमती इन्दिरा गांधी के पुत्र राजीव गांधी का एक इटालियन कन्या सोनिया के साथ विवाह है। इन विवाहों के बहुत कम होने के कारण यहाँ केवल अन्तर्जातीय विवाहों

<sup>२३</sup> रास—यूरोपिक पुस्तक पृ० १६६

<sup>२४</sup> वही, पृ० २७०

पर ही विचार किया जायगा।

अन्तर्जातीय विवाहों में सबसे बड़ी समस्या अपने परिवार और जाति के साथ सामंजस्य और सम्बन्ध स्थापित करने की है। प्रायः माता-पिता तथा जाति-बिरादरी के अन्य संबंधी ऐसे विवाह करने वालों का सामाजिक बहिष्कार कर देते हैं और नव दम्पती अपने माता-पिता और जाति से जीवनमापन में प्राप्ति हो सकने वाले बहुमूल्य सहयोग से वंचित हो जाते हैं। किन्तु यदि वे आर्थिक दृष्टि से समर्थ एवं स्वावलम्बी होते हैं और माता-पिता से कोई सहायता नहीं मांगते हैं तो कुछ समय बाद स्वाभाविक प्रेम और ममता की भावना प्रबल हो जाती है और उनका मान-आप तथा बिरादरी से समझौता हो जाता है। अतः अन्तर्जातीय विवाहों के समर्थक इनकी सफलता के लिए पति-पत्नी का आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होना आवश्यक समझते हैं, क्योंकि उन्हें काफी समय तक अपने माता-पिता से सहायता की आशा नहीं रखनी चाहिए।<sup>२४</sup> पुरुषों ने दो कारणों के आधार पर अन्तर्जातीय विवाहों का समर्थन किया था। पहला कारण तो यह था कि इससे हिन्दू समाज को क्षीण एवं दूषित बनाने वाली एक कुप्रथा का अन्त होना, उत्तम समाज का निर्माण होना, इससे अस्पृश्यता के कलंक का उन्मूलन तथा जातिभेद का निवारण होना। दूसरा कारण यह था कि प्रणय-विवाहों में जातिप्रथा बाधक नहीं होती चाहिए।<sup>२५</sup>

किन्तु स्त्रियाँ इन विवाहों की इतनी उग्र समर्थक नहीं थीं। इनमें २५ प्रतिशत ने अन्तः प्रजातीय तथा अन्तर्धर्म विवाहों का तथा ४३ प्रतिशत ने अन्तर्जातीय विवाहों का समर्थन किया, जबकि पुरुषों में ७३ प्रतिशत अन्तर्जातीय विवाहों के समर्थक थे। स्त्रियों द्वारा ऐसे विवाहों के विरोध का प्रधान कारण यह था कि ऐसे विवाह करने वाले पति-पत्नी अपनी जाति के रीति-रिवाजों और परम्पराओं के साथ सामंजस्य नहीं स्थापित कर सकते। एक मुसली के मतानुसार ऐसे विवाह सफल नहीं हो सकते, क्योंकि हममें धार्मिक एवं जाति विषयक नियम इतने अधिक सुदृढ़ रूप से प्रतिष्ठित हो चुके हैं कि हम विभिन्न आदर्शों और रीतिरिवाजों में पले हुए व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध नहीं कर सकते हैं, यदि विवाह असफल हुआ तो माता-पिता अपनी लड़की को अपने परिवार में वापस नहीं ले सकेंगे।<sup>२६</sup> इस प्रकार ऐसी लड़की अपने माता-पिता से प्राप्ति होने वाले स्वाभाविक संरक्षण से वंचित हो जायगी और ऐसे विवाहों से उत्पन्न बच्चों को अकारण ही इसके दुष्परिणाम भोगने पड़ेंगे। इसके विपरीत अन्तर्जातीय विवाहों का समर्थन स्त्रियों ने इस युक्ति के आधार पर किया कि विवाह एक वैयक्तिक मामला है, प्रत्येक युवक-युवती को अपना जीवनसाथी चुनने की पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। एक महिला ने इस विषय

२४ रास—पूर्वोक्त पुस्तक पृ० २७१

२५ रास—पृ० ५०, पृ० २७०

२६ रास—पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० २७१

में बड़ा उदार दृष्टिकोण अपनाते हुए कहा—“मैं अपने दो लड़कों को तथा लड़कियों को अपना जीवनसाथी चुनने में खुशी छूट दूंगी, अन्तर्जातीय और प्रणय विवाह सभी सफल हो सकते हैं जब माता-पिता के विचार उदार हों।”<sup>२८</sup>

किन्तु विचारों की इस उदारता का क्रियात्मक रूप देना बहुत कठिन है। इस प्रकार के विचार रखने वाले व्यक्ति स्वयंसेवक अपनी सन्तान का अन्तर्जातीय विवाह करने हुए इसलिए संकोच करते हैं कि यह प्रथा अपने आप में बुरी न होने पर भी प्रचलित लोक-मत के विरुद्ध है और इससे अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। अतः अन्तर्जातीय विवाहों की इच्छा और प्रवृत्ति होते हुए भी अभी तक हिन्दू समाज में अन्तर्जातीय विवाहों का प्रचलन अधिकांश नहीं हुआ है। इस विषय में रखने यह परिणाम निकाला है कि आधुनिक विचारों वाले अनेक व्यक्ति यह मानते हैं कि अन्तर्जातीय विवाहों की अनुमति दी जानी चाहिए, किन्तु वे यह भी समझते हैं कि इससे जातीय प्रथा में विश्वास रखने वाले हिन्दू समाज में मौलिक परिवर्तन होने से अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, अतः वे अन्तर्जातीय विवाहों के लिए उसी हद तक जाने को तैयार हैं जिस हद तक जातिप्रथा की व्यवस्था में विश्वास न हो, अतः वे उपजातियों का बन्धन तोड़ने में हाथी समझते हैं। किन्तु अन्तर्जातीय विवाह अभी तक केवल ऐसी अवस्थाओं में ही किये जाते हैं, जब युवक-युवती के पारस्परिक प्रेम का आकर्षण इतना प्रबल और प्रगाढ़ हो कि वे पारिवारिक परम्पराओं और रीति-रिवाजों के विरुद्ध विद्रोह करने को तैयार हों अथवा उन्हें अन्तर्जातीय विवाह का नियम तोड़ते हुए इससे उत्पन्न होने वाली परेशानियों की अपेक्षा सम्पत्ति एवं सामाजिक प्रतिष्ठा के ऐसे ठोस लाभ प्राप्त हों जिनके कारण ऐसे विवाह से पैदा हुई समस्याओं और कठिनाइयों का समुचित समाधान हो सके।<sup>२९</sup>

### (७) विवाह संस्कार में परिवर्तन

हिन्दू समाज में विवाह संभवतः जीवन का सबसे महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता है। वैदिक युग से इस संस्कार के लिए गृह्य सूत्रों द्वारा विस्तृत विधि-विधानों की व्यवस्था की गयी है और इसे अत्यधिक धूमधाम से मनाया जाता है। मैकडानल ने लिखा है कि वैवाहिक कर्मकाण्ड निम्नलिखित पुरोहितों द्वारा पूर्ण रूप से सौचविचार कर इस उद्देश्य से बनाया गया है कि इससे हिन्दू जनता का मन आध्यात्मिक दृष्टि से उनके अधीन बना रहे।<sup>३०</sup> ये वैवाहिक विधियाँ तत्कालीन भीरस कृतिप्रधान जीवन में आनन्द प्रदान करने का एक प्रधान साधन थी, वरतों बहुत बड़ी संख्या में से जारी आती थीं, बादी की विधियाँ

२८ रास—पृ० ५०, पृ० २७३

२९ रास—पृ० ५०, पृ० २७३

३० मैकडानल—ए हिन्दू आध्यात्मिक संस्कृत लिटरेचर, पृ० २६३

काफ़ी लम्बे समय तक चलती थी। किन्तु अब उद्योगीकरण (Industrialization), नगरीकरण (Urbanization) तथा पश्चिमीकरण (Westernization) की नवीन परिस्थितियों के प्रभाव से इसमें निम्नलिखित परिवर्तन हो रहे हैं।

(क) विवाह संस्कार के समय में कमी—संभार की १९५१ की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार सोम-बाराह वर्ष पहले एक दिन में सम्पन्न होने वाले विवाह अप-वाद रूप में थे, ११ अधिकांश विवाह कई दिनों तक चलने वाले होते थे, विवाह संस्कार की विधि बहुत लम्बी होती थी। किन्तु शहरों में नौकरी करने वाले तथा ज़ू-क्याप पढ़ने वाले और रात-रात में खपाने वाले आधुनिक नर-नारी वैवाहिक विधियों के संक्षिप्त रूप को अधिक पसन्द करते हैं, वे रात भर में समाप्त होने वाली विधियों को एक दो घण्टों में समाप्त करना चाहते हैं। राजाँप पुरोहितमदास टण्डन जैसे सुधारक विवाह संस्कार का महत्त्व बर-बधू तथा अन्य जनों की समझाने के लिए संस्कृत मंत्रों के स्थान पर हिन्दी के प्रयोग का समर्थन करते हैं।

(ख) पारिवारिक सम्मिलन के केन्द्र के रूप में विवाहों का महत्त्व कम होता—पहले विवाह के अवसरों पर दूर-दूर से सब संबंधी एकत्र होते थे और कई सप्ताह तक इकट्ठे रहा करते थे, गाँवों में शादी-व्याहों के अवसरों पर सब संबंधियों की उपस्थिति आवश्यक समझी जाती थी। किन्तु अब नगरों में स्थान की कमी, राशन की व्यवस्था, खाद्य सामग्री की कमी और महंगाई से इस परिस्थिति में अन्तर आने लगा है। पहले माँ-बाप को बच्चों की पढ़ाई की तथा स्कूल में उपस्थिति की अधिक चिन्ता नहीं होती थी। अब बच्चों का स्कूल से अधिक दिन के लिए अनुपस्थित रहना उचित नहीं समझा जाता, अतः बच्चों के साथ कई दिन के लिए विवाहों में सम्मिलित होना अब संभव नहीं रहा है। नौकरी करने वाले व्यक्तियों को लम्बी छुट्टियाँ लेने में परेशानी होती है, अतः विवाह में विभिन्न परिवारों द्वारा अपने परिवार के सभी प्राणियों के साथ कादी-व्याहों में भाग लेने की पुरानी परिपाटी कम हो रही है। विभिन्न परिवार अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए एक-दो व्यक्तियों को भेज देते हैं, जाने जाने में होने वाले भारी व्यय और छुट्टी आदि की अनुविधा के कारण मनीबार्डर द्वारा रुपये भेजने की भी परिपाटी कम पड़ी है। अब विवाह का पूर्व परिवार के विभिन्न व्यक्तियों के एकत्र होने की दृष्टि से अपना महत्त्व खोने लगा है।

(ग) विवाहों के व्यय में कमी—हिन्दू विवाहों में कन्या के माता-पिता समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए दहेज देने तथा बर-पस को सन्तुष्ट करने के लिए अपनी हैसियत से बहुत अधिक खर्च करते हैं। श्रीनिवास के शब्दों में "विवाहों में किया जाने वाला व्यय बहुत अधिक होता है, इस व्यय को कम करने में प्रधान बाधाएँ हैं—



अहंकार और प्रदर्शन की भावना, कड़िवादिता और ब्राह्मणों में वरपक्ष की धनलोचनता। अपने दैनिक व्यय में पाई पाई की बचत करने वाले कंजूस विवाह के समय अत्याधुन्य खर्च करते हैं।<sup>१</sup> सहायरी समितियों से श्रम लेने का कारण प्राप्त लड़के या लड़की का विवाह होता है।<sup>२</sup> अत्यधिक व्यय कम करने की दृष्टि से अब एक दिन में विवाह करने का रिवाज चल पड़ा है।<sup>३</sup> भारतीय समाजसुधारक शाही व्याहों पर व्यय कम करने पर बहुत बल देते रहे हैं, किन्तु उपर्युक्त कारणों से इस व्यय में कमी होने की कम संभावना है।

### (८) विवाह विच्छेद की प्रवृत्ति

पहले यह बताया जा चुका है कि वर्तमान समय में १९५५ के हिन्दू विवाह कानून द्वारा किस प्रकार तलाक या विवाह विच्छेद की व्यवस्था की गयी है (पृ० २६६)। यहाँ केवल इस विषय में आधुनिक युवक-युवतियों के ऐसे विचारों का उल्लेख किया जायगा, जिनसे इसके भावी स्वरूप पर प्रकाश पड़ सके। इस कानून से पहले हिन्दू समाज के उच्च वर्ग में विवाह एक अविच्छेद्य बन्धन था, किन्तु यह व्यवस्था केवल स्त्रियों के लिए थी क्योंकि पुरुषों के पुनर्विवाह पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। अतः हिन्दू समाज में तलाक की मांग स्त्रियों की ओर से अधिक प्रबलता से की जाती थी। यह मांग जिन कारणों के आधार पर की जाती थी, उन पर रास के अध्ययन से सुन्दर प्रकाश पड़ता है<sup>४</sup>। इस विषय में उत्तर देने वाली पैसठ स्त्रियों में से स्याह बिना किसी प्रतिबन्ध के तलाक का अधिकार देने के पक्ष में थी, सत्सदस का यह विचार था कि यह कुछ विशेष कारणों के आधार पर दिया जाना चाहिए, सोलह इसका अधिकार जसाधारण परिस्थितियों में ही देना चाहती थी और स्याह स्त्रियों का यह मत था कि वह अधिकार किसी भी दशा में नहीं दिया जाना चाहिए। विवाह विच्छेद के अधिकार को बिना किसी प्रतिबन्ध के उन्मुक्त रूप से देने का समर्थन स्त्रियों ने प्रधान रूप से समानता की दृष्टि के आधार पर किया, उनका यह कहना था कि जब एक पक्ष (पति) दूसरे पक्ष (पत्नी) को छोड़ सकता है तो दूसरे पक्ष को भी पहले पक्ष को छोड़ने का अधिकार होना चाहिए। स्त्रियाँ पहले ही निर्बल हैं, उन्हें पुरुषों की भाँति इसका अधिकार न देकर उनको भीषण कष्ट भोगने के लिए विवश किया जाता है, यह उनके साथ घोर अन्याय है, इसका प्रतिकार तलाक के निर्वन्ध अधिकार द्वारा होना चाहिए। इस विषय में यह आश्चर्य करना निर्भूज है कि तलाक का कानून बना देने से लोग तलाक पाने के लिए न्यायालयों में दौड़ने लगेंगे। इसका लाभ केवल अल्पसंख्यक कष्टपीडित स्त्रियाँ उठावेंगी। यह ऐसी स्त्रियों के लिए बरदान सिद्ध होगा,

३२ श्री निवास—मैरिज एण्ड फॅमिली, पृ० ६०-६१

३३ रास—यूथोक्त पुस्तक, पृ० २७४

क्योंकि अब तक उन्हें कानून द्वारा अपने पति से पृथक् होने का कोई अधिकार नहीं है। ऐसी स्थिति जीते हुए, सार्वभौम जीवन का दुःख भोग रही हैं, उनके लिए तलाक की व्यवस्था जीवित मृत्यु की अपेक्षा अधिक अच्छी है। पतियों द्वारा अतीव दुष्ट कारणों के आधार पर छोड़ी गयी पत्नियों को दूसरे अपने धीरे कष्ट के निवारण में बड़ी सहायता मिलेगी।<sup>३४</sup> इसके समर्थन में एक तर्क यह भी दिया जाता है कि माता-पिता द्वारा आशु-जित विवाहों में अनेक विवाह दुःखमय हो सकते हैं, इनका समाधान करने की दृष्टि से यह मैफटी वाल्व (safety valve) का काम करता है।

तलाक की व्यवस्था का विरोध करने वाली स्त्रियों के उनके निम्नलिखित थे— (१) यह व्यवस्था विवाह की पवित्रता को कम करने वाली है। (२) यह आवश्यक नहीं प्रतीत होती है, क्योंकि अब लड़कियों का विवाह काफी बड़ी आयु में होने लगा है और इससे पहले वे अपनी सहमति दे सकती हैं। (३) इस व्यवस्था से अनैतिकता को प्रोत्साहन मिलेगा, वैवाहिक जीवन में अस्थिरता बढ़ेगी, एक सच्ची हिन्दू स्त्री के लिए दूसरे पति के साथ रहने की अपेक्षा भर जाना अधिक अच्छा है।

इस विषय में पुरुषों का दृष्टिकोण स्त्रियों के दृष्टिकोण से कुछ भिन्न था। पुरुषों में तलाक का समर्थन करने वालों की संख्या कम थी। ६६ पुरुषों में केवल चार ने सर्वथा प्रतिवन्ध रहित तलाक की व्यवस्था की मांग की, दस इसकी व्यवस्था कुछ कारणों के आधार पर करना चाहते थे तथा एकतालीस असाधारण परिस्थितियों की दशा में, म्यारज के मत में यह व्यवस्था किसी भी दशा में नहीं होनी चाहिए थी। पुरुषों द्वारा तलाक के लिए बनाये गये कारण स्त्रियों द्वारा प्रतिपादित कारणों से कुछ भिन्न थे। स्त्रियों ने इसके लिए कोढ़, यौनरोग, राज्यकन्या और असाध्य बीमारियों के कारणों को प्राथमिकता दी थी, पुरुषों ने उन्हें गौण स्थान दिया। उनकी दृष्टि में इनका दूसरा स्थान था, पहला स्थान उन्होंने पत्नी के साथ प्रतिकूलता (Incompatibility) अर्थात् उसके साथ स्वभावान्वित न मिलने को दिया। तीसरा कारण वागव्रत तथा बीया कारण सम्भोगोत्पादन में अक्षमता थी। प्रतिकूलता की व्याख्या करते हुए कुछ पुरुषों ने यह कहा था कि स्वभाव में तथा व्यक्तित्व में अन्तर होने पर तलाक की व्यवस्था होनी चाहिए, जब व्यक्तित्व एवं शक्तियों में विभिन्नता होने के कारण वैवाहिक जीवन दुःखमय हो जाय तो इसका एक मात्र समाधान विवाह-विच्छेद है। तलाक की व्यवस्था के विरोध में पुरुषों ने निम्नलिखित युक्तियाँ दीं<sup>३५</sup>—(१) तलाक और धार्मिक संस्कार द्वारा सम्पन्न होने वाला विवाह (Sacramental marriage) दो सर्वथा परस्पर विरोधी वस्तुएँ हैं, इनका एकत्र रहना संभव नहीं है। (२) तलाक अमरीका में एक

<sup>३४</sup> रास—पूर्वोक्त पुस्तक पृ० २७४

<sup>३५</sup> रास—पूर्वोक्त पुस्तक पृ० २७५

समाधा बना हुआ है, ऐसा यहाँ नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा हुआ तो इसका पारिवारिक जीवन पर गहरा नसिष्ट प्रभाव पड़ेगा। (२) यह हिन्दू स्त्री के सर्वांग और पवित्रता के विचार को बिल्कुल नष्ट नष्ट कर देगा।

वर्तमान समय के विदित हिन्दू युवक—युवतियों के उपर्युक्त विचार यह सूचित करते हैं कि अभी तक कानून द्वारा व्यवस्था हो जाने पर भी सामान्य रूप से तलाक के विरुद्ध काफी प्रबल भावना है। इसका उपयोग असाधारण एवं विषम परिस्थितियों में ही उपयुक्त समझा जाता है।

(६) पत्नी के आदर्श और स्थिति में परिवर्तन—अनुचरी में सहचरी बनना

पुराने हिन्दू परिवार में विवाह के बाद पत्नी का प्रधान कर्तव्य पति की सेवा और उसकी आज्ञा का पालन करना था, वह पति को देवता मानती थी और उसकी पूजा करती थी, उसका आचरण सीता और सावित्री था।<sup>२९</sup> पत्नी को स्वर्णित परिवार में बहुत हीत थी, किन्तु इसे वह स्वेच्छापूर्वक बड़ी प्रसन्नता से ग्रहण किये हुए थी, इसमें उसे परम सन्तोष और सुख का अनुभव होता था। एक विदेशी महिला बैकमान (Bachmann) ने इसका विवेचन करते हुए लिखा है<sup>३०</sup>—“हमें (पारश्चात्त लोगों को पत्नी का यह विचार) अपमानजनक प्रतीत होता है कि मैं आपके चरणों की दासी हूँ, किन्तु पत्नियों हिन्दू धर्म ने पत्नी के इस आदर्श पर बहुत बल दिया है कि उसे पूरी भक्ति और भिन्नार्थ भावना से अपने पति को स्वामी और देवता समझते हुए उसकी पूजा करनी चाहिए।” उसे (हिन्दू पत्नी को पति के) चरणों की दासी बनने में कोई अपमान प्रतीत नहीं होता है। यह प्रबल धार्मिक उत्साह से अपने धर्म का पालन करती है इस धर्म का अल्प ज्ञान उसे याज्ञिक कर्मकाण्ड, ध्यान—समाधि आदि से नहीं होता है अतः इसका पालन वह एक दास की भाँति अपने पति के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण से, उसकी आज्ञा के पालन से और उसकी सेवा से करती है। अतः हिन्दू तब बधू परम जानन्व से अपने हाथों में चुड़िया पहनती है, यद्यपि ये उसकी दासता का प्रतीक हैं। बैकमान ने महात्मा गांधी की पत्नी कस्तूरबा के उदाहरण से यह स्पष्ट किया है कि हिन्दू स्त्रियाँ वस्तुतः स्वेच्छा-पूर्वक पति को देवता समझते हुए उसकी सेवा करती थीं, उसके लब्धों में वा को जाननेवाला प्रत्येक व्यक्ति यह विश्वास करने के लिए बाधित होगा कि पति की चिन्ता पर सती होने

<sup>२९</sup> रास—पुर्वोक्त पुस्तक पृ० १०५, १५८, हरिदत्त वेदान्तकार—हिन्दू परिवार मोमांसा, पृ० १०८-१४३।

<sup>३०</sup> बैकमान हैडविग—आन दी सील आफ दी इंडियन वुमन एज रिफ्लेक्टेड इन दी फीक लोड आफ कौकण २ खण्ड, १९४२, पृ० ५७, १४८, १५०

माता स्त्रियों का आत्मसमर्पण कुछ अवस्थाओं में पूर्णरूप से स्वेच्छापूर्वक होता था।<sup>३२</sup>

पत्नी की स्थिति को प्रभावित करने वाला एक अन्य तरब पति-पत्नी को आयु में अत्यधिक अन्तर का होना था। पहले पत्नी पति से न केवल बहुत छोटी होती थी, अर्थात् उसकी शिक्षा भी कम होती थी और घर की सहाय्यकारी में बन्द रहने के कारण उसका अनुभव भी बहुत कम होता था। अतः आयु, शिक्षा तथा अनुभव में पत्नी से बड़ा-बड़ा होने के कारण पति उससे समानता का व्यवहार नहीं कर सकता था। परिवार में उसकी स्थिति स्वाभाविक रूप में पत्नी से ऊँची रहती थी।

किन्तु उर्ध्वगोचरण, नगरीकरण और पश्चिमीकरण की नवीन परिस्थितियाँ पति को देवता बनाने वाले उपर्युक्त दोनों तत्त्वों पर गहरा प्रभाव डालने लगी हैं। आधुनिक शिक्षा प्राप्त करने वाली तथा पश्चिम की समानाधिकार की भावना से अनुप्राणित युवतियाँ पति को देवता मानने के शास्त्रीय आदेशों को आंखमूँद कर पालन करने के लिए तैयार नहीं हैं। वे पति की सेवा और घरणों की दासी बनने के स्थान पर पति की सखा और मित्र (Companion and friend) बनना चाहती हैं। रास के अध्ययन में चार स्त्रियों ने अपने मावी पति की एक विशेषता उस का मित्र होता बताया।<sup>३३</sup> इसी प्रकार तेरह पुरुषों ने पत्नी के साथी और मित्र होने तथा सात अन्य पुरुषों ने इसके मित्र होने पर बल दिया। खान अविवाहित पुरुषों ने कहा कि वे अपनी पत्नियों पर शासन नहीं करना चाहते हैं, इसी प्रकार चार अविवाहित स्त्रियों ने यह इच्छा व्यक्त की कि वे अपने पतियों पर हावी नहीं होना चाहती। पुराने आदर्शों के परिवर्तन के संबंध में एक ने यह लिखा था—“पहले लड़कियों को बचपन से सीता की कहानियाँ सुनायी जाती थीं। उन्हें यह कहा जाता था कि उसमें आदर्श पत्नी के सभी गुण थे। उनके माता पिता, दादा, दादी उनको यह शिक्षा दिया करते थे कि उन्हें अपने पतियों का पशवर्ती रहना चाहिए” किन्तु अब लड़कियाँ यह कहती हैं कि सीता बेवकूफ (Gullible) की क्योंकि उसने पातिव्रत्य धर्म का पालन किया था। लड़कियाँ यह सोचने लगी हैं कि विवाह में केवल उन्हें ही अपने को दूसरे पक्ष के अनुकूल नहीं बनाना है। इससे पहले वही दूसरे पक्ष के साथ पूरा आनुकूल्य स्थापित करती थी।<sup>३४</sup> इस प्रकार पातिव्रत्य के पुराने आदर्शों में आधुनिक युवक-युवतियों का विश्वास विभ्रल हो रहा है और वह परिवार में पति की प्रभुता के एक प्रधान स्तम्भ की मीन खोजता कर रहा है।

इसे प्रभावित करने वाला दूसरा तत्त्व विवाह की आयु का ऊँचा उठना है।

३२. संक्षेपान—यूरोप पुस्तक, पृ० ११६

३३. रास—बी हिन्दू कैमिली, पृ० २४८

३४. रास—बी हिन्दू कैमिली, पृ० २४६

अब विवाह के समय पत्नी की अवस्था, तिथा और अनुभव पहले की अपेक्षा अधिक होता है, अतः उसकी स्थिति परिवार में स्वतः सहचरपूर्ण हो जाती है। वह पति की सेवाका न रह कर उसकी सार्थी और सखी बनने लगती है, दोनों के संबंध स्वामी-सेवक के नहीं होते; अपितु इनके समानता के स्तर पर आधारित होने की प्रवृत्ति प्रबल होने लगती है।

किन्तु रास के मतानुसार अभी तक हिन्दू समाज में पति-पत्नी के संबंध के परम्परागत उभयपक्ष दृष्टिकोण के स्थान पर समानता के नवीन आदर्श की सुप्रतिष्ठित होने में काफी समय लगेगा।<sup>४१</sup> रास ने यह परिणाम श्रीमती जी० श्री० देसाई द्वारा गुजराती स्त्रियों के संबंध में की गयी एक श्वेषणा के आधार पर निष्कर्षित है। इसके अनुसार यद्यपि कुछ हिन्दू स्त्रियाँ अपने ऊपर पतियों के पूर्ण प्रभुत्व का प्रबल विरोध करती हैं, तथापि अधिकांश स्त्रियाँ परिवार में अपनी हीन स्थिति के पुराने विचार को स्वीकार करती हैं। रास के अध्ययन से भी यही प्रकट होता है कि स्त्रियाँ परिवार में अपनी हीन स्थिति को सर्वथा स्वाभाविक समझती हैं।

किन्तु रास के अध्ययन में कुछ उदाहरण ऐसे भी थे, जो इसमें गलत-भले होने वाले परिवर्तन को सूचित करते हैं।<sup>४२</sup> इनसे यह प्रकट होता है कि कुछ स्त्रियाँ परिवार में पहले की अपेक्षा अधिक मात्रा में शासन का प्रयोग करने लगी हैं, उनकी स्थिति ऊँची उठने लगी है। एक भूखती ने इसे एक सुन्दर दृष्टान्त से स्पष्ट करते हुए तिथा का कि पहले सड़कों पर जब पति-पत्नी निकलते थे तो पति लम्बे डग भरते हुए आगे-आगे चलते थे और पतिपत्नी अपने बच्चों और पैरों की लिए हुए उनके पीछे-पीछे चलती थीं, किन्तु अब पति बच्चे और पैरों लेकर चलता है और पत्नी उसके साम चलती है।<sup>४३</sup> इस प्रकार पत्नी अनुचरी से सहचरी बन रही है।

#### (१०) दाम्पत्य अधिकारों में विषमता की समाप्ति

पुराने शास्त्रीय हिन्दू विवाहों का एक बहुत बड़ा दोष नर-नारी के दाम्पत्य अधिकारों में पार विषमता थी। इसमें पुरुष को यह अधिकार प्राप्त था कि वह एक पत्नी के जीवित रहते हुए दूसरा विवाह (अधिर्वेदन) कर सकता था। किन्तु पत्नी को पुनर्विवाह का कोई अधिकार नहीं था। शास्त्रकारों ने पुरुष को पुनर्विवाह तथा अधिवेदन का अधिकार पुत्र प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा तथा धर्म पालन की चिन्ता के कारण दिया था। आपस्तम्ब ( २।१।१।१२ ) ने कहा था कि धर्म तथा सन्तान का

४१ रास—दो हिन्दू फैमिली, पृ० १०७

४२ रास—दो हिन्दू फैमिली, पृ० १०८

४३ रास—वही, पृ० १०८

प्रयोजन पूर्ण होने पर पुरुष दूसरा विवाह न करे। किन्तु इस नियम का पालन हिन्दू समाज में बहुत कम हुआ, पुत्र प्राप्ति के कारण से दिये गये दूसरे विवाह के अधिकार का बड़ा दुरुपयोग हुआ। इससे पुरुषों को बहुविवाह (Polygamy) की पूरी छूट मिल गयी, किन्तु स्त्रियों के लिए पालिषत्य और सतीत्य के धर्म का पालन आवश्यक समझा गया। दूसरी विषयता स्त्रियों के लिए सुगमम विवाहों में परिणाम पाने का कोई साधन न होना था। पुरुषों को दूसरा विवाह करने का तथा भार्या त्याग बन अधिकार था। किन्तु नारी के लिए विवाह अविच्छेद्य बन्धन था, एक पुरुष में विवाह होने पर भारी उसे कभी नहीं छोड़ सकती थी। वही स्त्री आदर्श मती थी, जो पति के दोषों की परवाह न करती हुई जीवन समेत उसकी श्राद्धना करे, उस समय नर-नारी के लिए सतीत्य का दोहरा नैतिक आदर्श था।<sup>४४</sup> स्त्रियों से आदर्श पालिषत्य की अपेक्षा रखी जाती थी, किन्तु पुरुषों के लिए एकपत्नीव्रत होना आवश्यक नहीं था। इसका यह परिणाम होता था कि पुरुष अनुकूल पत्नी न होने पर दूसरा विवाह कर सकता था। यह व्यवस्था पत्नी के लिए भीषण दुःख देने वाली थी। सौत के आ जाने से न केवल पत्नी का जीवन नारकीय बन जाता था, किन्तु हिन्दू विवाह उसके लिए अविच्छेद्य होने के कारण यह इस नारकीय कन्धगा से मुक्त भी नहीं हो सकती थी। सामान्य रूप से दुःखमय विवाहों से परिणाम पाने के लिए हिन्दू स्त्रियों को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं था। १९५५ के हिन्दू विवाह कानून द्वारा नर-नारी दोनों के लिए एकविवाह (Monogamy) का नियम समान रूप से आवश्यक बना कर तथा पहले (पू० २९३-३०३) बतायी गयी विशेष दशाओं में तलाक का अधिकार देकर उपर्युक्त दोनों विषयताओं को समाप्ति कर दी गयी है।

### उपसंहार—हिन्दू विवाह का भविष्य

उपर्युक्त विवरण से हमें यह ज्ञात होता है कि जर्मन जर्मन हिन्दू समाज के उच्च एवं शिक्षित वर्ग में विवाह विषयक धारणाओं, प्रथाओं और संस्थाओं में अनेक मौलिक परिवर्तन हो रहे हैं, ये हिन्दू विवाह के भावी स्वरूप पर गहरा प्रभाव डालेंगे, अभी तक ये परिवर्तन महुरों के चिन्तित वर्ग तक सीमित हैं, किन्तु नगरीकरण (Urbanisation) की प्रवृत्ति बढ़ने से खमीर की भांति इनका प्रभाव ग्रामीण जीवन पर भी पड़ेगा। इनसे भविष्य में विवाह को केवल अविच्छेद्य धार्मिक बन्धन नहीं समझा जायगा, विवाह को नर-नारी के लिए अनिवार्य एवं आवश्यक समझने की भावना में चिन्तितता आ जायगी, अविवाहित रहने की तदा बड़ी आयु में विवाह करने की प्रवृत्ति बढ़ेगी। मुक्त-मुक्ती अपना जीवनसाथी चुनने की स्वतन्त्रता की अधिकाधिक माँग करेंगे, प्रत्य-

<sup>४४</sup> हरिवंश वेदालंकार—हिन्दू परिवार मीमांसा, पृ० १३२

विवाहों की प्रवृत्ति बढ़ेगी। विवाह संस्कारों की अटिथता कम होगी, किन्तु इन पर होने वाले भारी व्यय में कमी होने की सम्भावना कम प्रतीत होती है। परिवार में पति-पत्नी समान स्थिति का उपभोग करेंगे, दाम्पत्य अधिकारों में विषमता समाप्त हो जायेगी, पत्नी पति की सहचरी और अधीनिनी बनेगी। विवाह द्वारा परिवार निर्माण एक आवश्यक कार्य नहीं, किन्तु ऐच्छिक कार्य होगा और इसका प्रधान आधार दाम्पत्यप्रेम होगा। संभवतः इस स्थिति में पति-पत्नी में अनुराग का पूर्ण विकास होगा। वर्तमान समय में पत्नी आर्थिक पराधनम्बन के कारण पति से प्रीति न होने पर भी उसके साथ दाम्पत्य जीवन बिताने के लिए विवश है। भविष्य में यदि हिन्दू स्त्री आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी हो सकी तो वह असाधारण पञ्चालों में दुःखमय विवाहों में मुक्ति पा सकेगी, तत्कारों की संख्या में कुछ वृद्धि होगी, किन्तु ये विवाह के मूल प्रयोजन में सहायक होंगे, दुःखमय विवाहों का अन्त करके ऐसे सुखमय विवाहों और परिवारों का निर्माण करेंगे जिनका एक मात्र आधार स्नेह होगा, जो दाम्पत्य प्रेम की प्रमादता में वृद्धि करेगा और भवभूति द्वारा उत्तर रामचरित में प्रतिपादित वैवाहिक एवं दाम्पत्य प्रेम के उस रूप को भूत रूप प्रदान करेगा "जो सुख दुःख में एक जैसा अपरिवर्तित (अटूट) रहता है, निर्धनता, समृद्धि आदि जीवन की ऊँचनीच में भी निरन्तर बना रहने वाला है, जो हृदय का विश्रामस्थल है, जिसका आनन्द दुःसाप से भी कम नहीं होता, जो बहुत दिनों तक साक्ष रहने तथा हृदयों के आचरण हृद आने से परिपाक को प्राप्त हुए प्रकट प्रेम पर अवलम्बित है।" ४४

## प्रथम परिशिष्ट

धर्मशास्त्र सम्बन्धी प्रधान ग्रन्थों तथा लेखकों का काल

- अग्नि पुराण—८००-६०० ई० (हृत्प्रसाद शास्त्री)  
 अर्थशास्त्र—कौटिल्यकृत, चौथी श० ई० पू०  
 अनन्तदेव—संस्कार कौस्तुभ (१६५०-८०) का प्रणेता  
 अपराहं—याज्ञवल्क्य स्मृति का टीकाकार—११२५ ई०  
 असह्याय—नारद स्मृति का पहला भाष्यकार ७००-७५० ई०  
 आपस्तम्ब धर्मसूत्र—६००-३०० ई० पू०  
 कनकाकर भट्ट—विवाद ताण्ड्य (१६१०-४०) का लेखक  
 कात्यायन स्मृति—४००-६०० ई०  
 कुल्लूक भट्ट—मनुस्मृति का एक टीकाकार १२५० ई० लग०  
 कृत्यकल्पतरु—लक्ष्मीधर मिश्र (११००-११५०) द्वारा लिखित पहला  
 निबन्ध ग्रन्थ  
 कौटिलीय अर्थशास्त्र—चौथी शती ई० पू०  
 गृहसूत्र—श्रौतसूत्र देखिये ।  
 गोविन्दराज—मनुस्मृति का एक टीकाकार १०५०-११०० ई०  
 गौतम धर्मसूत्र—६००-४०० ई० पू०  
 लक्ष्मणेश्वर—विवाद रत्नाकर (१२६०-१३७०) ई० का लेखक  
 जैमिनि—पूर्व मीमांसा दर्शन का प्रणेता, ५००-२०० ई० पू० लग०  
 दत्तकमीमांसा—नन्द पण्डित कृत, १५६५-१६३० ई०  
 दायभाष्य—जैमिन्तवाहन कृत, ३१००-११५० ई०  
 दायतत्त्व—रघुनन्दन कृत १५२०-१५७५ ई०  
 दीपकालिका—शूलपानि देखिये ।  
 देवण भट्ट—स्मृति चन्द्रिका का लेखक १२००-१२२५ ई०  
 धर्मसूत्र—गौतम, बौधायन, आपस्तम्ब और वसिष्ठ के धर्मसूत्रों तथा याज्ञवल्करादि  
 कुछ गृह्य सूत्रों का काल ६००-३०० ई० पू० है ।  
 नन्द पण्डित—दे० दत्तक मीमांसा  
 नारद स्मृति—१००-४०० ई०  
 निरुक्त—याज्ञवल्क्यकृत, ८००-५०० ई० पू०



निर्धनसिन्धु—कमलाकर भट्ट कृत १६१०-१६४० ई०

नीलकण्ठ—व्यवहारमयूख वेचिमे

पराशरभाष्यवीथ—पराशर स्मृति पर भाष्यवाचार्म की टीका १३००-१३८० ई०

पराशर स्मृति—१ ली से ५ मी श० ई०

पाणिनि—अष्टाध्यायी का प्रणेता ६००-३०० ई० पू०

पुराण—वायु, विष्णु, मार्कण्डेय, मत्स्य और कूर्मपुराण ३००-६०० ई० के बीच में लिखे गये हैं। इनके कुछ अंश अश्विन प्राचीन हैं।

अतापरव्रदेव—सरस्वतीविधान का निर्माता १५००-१५२५ ई०

बालकीर्ति—विश्वरूपकृत याज्ञवल्क्य स्मृति की सबसे पुरानी टीका, ८००-८५० ई०

बालभट्टी—बालभट्ट पायगुण्डे कृत याज्ञवल्क्य स्मृति की भिताक्षरा टीका की व्याख्या १७५०-१८२० ई०

बृहस्पति स्मृति—३००-५०० ई०

बृहत्संहिता—२० बराहमिहिर

बौधायन धर्मसूत्र—४००-२०० ई० पू०

भोज (धारेखर)—१०००-१०५५ ई०

मदनपारिजात—विश्वेश्वर भट्ट कृत, १३६०-६० (जाली और कागज), ११७५ ई० (पटना हाईकोर्ट)।

मनुस्मृति—२००-१०० ई० पू०

महाभाष्य—यतजलिश्रुत, १५० ई० पू०

भिताक्षरा—विशानेश्वरकृत याज्ञवल्क्य स्मृति की टीका १०७०-११०० ई०

मित्रामिथ—वीरमित्रोदय वेचिए।

मेघालियि—मनुस्मृति का पहला टीकाकार ६०० ई०

याज्ञवल्क्य स्मृति—१००-२०० ई०

यास्क—निरुक्त का लेखक ८००-५०० ई० पू०

रघुनन्दन—शायतएव का लेखक १५२०-१५७५ ई०

रत्नमीधर मिश्र—कृत्यकल्पतरु का लेखक ११००-११५० ई०

वरदराज—व्यवहार निर्णय का लेखक १२००-१३०० ई०

बराहमिहिर—बृहत्संहिता का लेखक ५०५-५८७ ई०

वसिष्ठ धर्मसूत्र—३००-१०० ई० पू०

वायस्पति मिथ—२० विवाद चिन्तामणि

विशानेश्वर—याज्ञवल्क्य स्मृति पर भिताक्षरा नामक टीका का लेखक १०७०-११०० ई०

विवादचिन्तामणि—साधस्पति मिश्र कृत, १५००-१५५० ई०

विवादताण्ड्य—कमवाकर भट्ट कृत १६१०-४० ई०

विश्वरूप—पाशवल्ग्य स्मृति की वालकीड़ा टीका का लेखक ८००-८५० ई०

विश्वेश्वर भट्ट—मदनपारिजात देखिए

विष्णुस्मृति—इसका पुराना अंश ३००-१०० ई० पू० का है और तबौन अंश तीसरी से सातवीं श० ई० का है।

वीरमिश्राय्य—मिश्रमिश्र कृत, १६१५-४५। यह ग्रन्थ संस्कारप्रकाश, व्यवहार-प्रकाश आदि अनेक प्रकाशों में अटा है।

वैजयन्ती—गन्धर्वनिष्ठ कृत विष्णुधर्मसूत्र की टीका, १५६५-१६३० ई०

वैद्यनाथ दीक्षित—स्मृतिमुक्ताफल का प्रणेता, १६०० ई०

वैदिक साहित्य—४०००-१००० ई० पू० संहिताओं, ब्राह्मणग्रन्थों तथा प्राचीन उपनिषदों का यह आनुशासनिक काल है। इनके कुछ अंश ४००० ई० पू० से प्राचीन तथा १००० ई० पू० से अर्वाचीन हो सकते हैं।

व्यवहारनिर्णय—वरदराज कृत, १२००-१३०० ई०

व्यवहारसमूह—नीलकण्ठ भट्ट कृत, १६१५-४५ ई०, इसमें अन्ध ग्रन्थ नीति समुद्रादि हैं।

व्यासस्मृति—दूसरी से पांचवीं शती ई० लग०

शङ्खलिखित—३०० ई० पू० से १०० ई०

शबर—जैमिनि के पूर्वमीमांसा दर्शन का भाष्यकार २००-५०० ई०

शूलपाणि—पाशवल्ग्य स्मृति पर दीपकलिका नामक टीका का लेखक, १३७५-१४६० ई०

श्रीतसूत्र—आपस्तम्ब, आश्वलायन और वौश्यायन श्रौतसूत्रों का तथा आपस्तम्ब और आश्वलायनादि कुछ गृह्यसूत्रों का काल ८००-४०० ई० पू० है।

सरस्वतीविलास—प्रतापशब्देन कृत, १५००-१५२५ ई०

स्मृतिचन्द्रिका—देवणभट्ट कृत, १२००-१२२५ ई०

स्मृतिमुक्ताफल—वैद्यनाथ देखिए

हरदत्त—गौतम तथा आपस्तम्ब धर्मसूत्रों का टीकाकार १५५०-१३०० ई०

हरिनाथ—स्मृतिसार का लेखक १३००-१३५० ई०

हारीत—धर्मसूत्रप्रणेता ४००-७०० ई०

हिरण्यकेशीधर्मसूत्र—६००-३०० ई० पू०

हेमाद्रि—चतुर्गैचिन्तामणि का लेखक, रचना काल १२६०-७० ई०

धर्मग्रन्थों का उपर्युक्त कालक्रम मुख्यरूप से भारतारण श्री पाण्डुरंग वामन काणे की प्रसिद्ध पुस्तक 'हिस्टरी ऑफ धर्मशास्त्र' के प्रथम खण्ड के आधार पर दिया गया है।



## सहायक ग्रन्थ सूची

### १ आकर ग्रन्थ

- १ उसादकलापीडिया आफ साइन्स साटान्स, १५ खण्ड, १३वां मुद्रण १९४६
- २ उसादकलापीडिया आफ रिजॉजन एण्ड ईथिक्स, १२ खण्ड, १९६६
- ३ उसादकलापीडिया ब्रिटानिका, १९६५ का संस्करण
- ४ उसादकलापीडिया ब्रिटानिका की ईंग्लिश, १९६५ ई० से
- ५ मैकडानल व कोम वैदिक इंडेक्स, २ खण्ड, लन्दन १९१२ ई०

### २. मूल ग्रन्थ

#### (क) वैदिक साहित्य

यहाँ ग्रन्थों के साथ उन प्रकाशन संस्थाओं का भी निर्देश दिया गया है जहाँ से छपे हुए ग्रन्थों का इस पुस्तक में प्रयोग किया गया है। प्रकाशन संस्थाओं के संक्षिप्त संकेत इस प्रकार हैं—आन० पू० आनन्दोद्यम, पुना, वि० सा० निर्णय सागर, बम्बई, स्वा० म० स्वाध्याय मण्डल, पार्वी, वि० इ० विद्वत्साधिका इंडिया, व० बो० सा० सी० प्री० गवर्नमेन्ट ओरिएण्टल लाइब्रेरी सीरीज, मैसूर, या० ओ० सी० गायकवाड ओरिएण्टल सीरीज, चौ० स० सी० चौखम्भा संस्कृत सीरीज, जी० वि० ज्ञानानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, व० स० सी० बम्बई संस्कृत सीरीज, पा० टी० प्री० पॉर्तो टैन्स्ट सोसायटी, लन्दन, म० सा० महाबोधि सोसायटी, सारनाथ, बेक० प्रे० बेक-टैम्बर प्रेस, बम्बई, त्रि० स० सो० त्रिवेद्रम संस्कृत सीरीज, सपा० संपादक, अ० सं० संस्करण, वि० विक्रमी सप्तम्, ई० ईसवी सन्।

आग्नेय स्वा० म० द्वितीय संस्क०

यजुर्वेद स्वा० म०

सामवेद स्वा० म०

अथर्ववेद स्वा० म०

काठक संहिता स्वा० म०

तैत्तिरीय संहिता आन० पू०

कपिष्ठल संहिता डा. रघुवीर डाय लाहौर से प्रकाशित

मैत्रायनी संहिता स्वा० म०

- ऐतरेय ब्राह्मण : आन० पू०, १८६६ वि०  
 शतपथ ब्राह्मण : अष्टमृत शन्वमाना, बनारस  
 शांखायन ब्राह्मण : आन० पू०  
 नैत्तिरीय ब्राह्मण : आन० पू०  
 ताण्ड्य (पंचविश) ब्राह्मण : ऐतिहासिक सोमाइटी, बंगाल  
 जैमिनीय ब्राह्मण : स० ऑलेण्ड, एमस्टर्डैम्, १६१६  
 जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण  
 गोपय ब्राह्मण : जी० वि०  
 ऐतरेय, तैत्तिरीय और शांखा० आरण्यक : आन० पू०  
 बृहदारण्यक, छान्दोग्य, कठ, उपनिषद् : नि० मा०  
 निरुक्त : आन० पू०  
 एकादशोपनिषत्संग्रह : संपा० स्वामी सधनानन्द, लाहौर  
 निरुक्त : श्री बन्धमणि तथा श्री राजवर्मा द्वारा संपादित संस्क०  
 बृहदेवता : वि० ई०

### (ख) गृह्य तथा धर्मसूत्र

- आश्वलायन गृह्यसूत्र, गारायण टीका सहित : नि० सा० १८६३ ई०  
 इसी संस्करण में कुमारिल की आश्वलायन गृह्यकारिका तथा आश्व० गृह्यपरिणिष्ट  
 भी छपा है।  
 आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, मुद्रर्षिताचार्य टीका सहित : सं० ओ० ला० सी० मै०  
 आपस्तम्ब धर्मसूत्र, हरदत्त फुल टीका सहित : हालास्यनाथ सास्त्री द्वारा संपा०,  
 कुम्भपोषणम्।  
 बौधायनधर्मसूत्र, गोविन्द स्वामी के विवरण सहित : सं० ओ० ला० सी० मै०  
 बौधायन गृह्यसूत्र तथा गृह्य परिभाषा सूत्र : संपा० कामशास्त्री, सं० ओ० ला० सी० मै०  
 गोभिल गृह्यसूत्र : संपा० बन्धकान्त तर्कालंकार, बि० ई०  
 पारस्कर गृह्यसूत्र : कर्क, जयराम, हरिहर, गवाधर, विरचिताय प्रणीत आण्यपंचक सहित,  
 गुजराती प्रेस १९१७।  
 हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र : मालदत्त टीका सहित, संपा० किरते  
 कतिष्ठ धर्मसूत्र : सं० सं० सी०, संपा० कुहरर  
 मानव गृह्यसूत्र : अष्टावक्र टीका सहित, वा० ओ० सी०  
 विष्णु धर्मसूत्र : संपा० डा० जामी  
 लीलासिंहगृह्यसूत्र : देवनाथ की टीका सहित, काममीर संस्कृत सीटीज  
 गौतम धर्मसूत्र : हरदत्त टीका सहित, आन० पू०

(ग) बौद्ध ग्रन्थसम

अंगुत्तर निकाय : पा० टै० सो०

अम्वपद, टीका सहित : पा० टै० सो०

अदीपावा : पा० टै० सो० तथा अरत्तसिंह कृत अनुवाद

विमल पिटक : हिन्दी अनुवाद, म० बी० सो०

मज्झिम निकाय : हिन्दी अनुवाद, म० बी० सो०

दीप्पनिकाय : हिन्दी अनुवाद, म० बी० सो०

संयुक्त निकाय : पा० टै० सो०

जातक : काव्येय द्वारा संपा०, अंग्रेजी अनुवाद ६ खण्ड, म० प० से भद्रत आनन्द कौस्तुभ-  
यन का, हिन्दी अनुवाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित बुद्धचर्या : राहुल  
साहूतयायन, म० बी० सो० ।

(घ) रामायण तथा महाभारत

सांस्कृतिक रामायण : तिलकाश्व व्याख्या समेत, नि० सा० । रामायण के प्रतीक  
स्थानसंकोच के कारण काव्यों के नाम से नहीं किन्तु उनकी क्रमसंख्या के अनुसार दिये  
गये हैं । काव्यों की क्रमसंख्या इस प्रकार है—

१. वालकाण्ड, २. अयोध्याकाण्ड, ३. अरण्यकाण्ड, ४. किष्किन्ध्याकाण्ड,  
५. सुन्दरकाण्ड, ६. युद्धकाण्ड, ७. उत्तरकाण्ड ।

महाभारत : म० सा०, महाभा०, पूरी पुस्तक में क्वा० म० द्वारा प्रकाशित संस्क०  
के प्रतीक दिये गये हैं, जहाँ कुंभकर्णम् या भांडारकर रिलवे इन्स्टीट्यूट पूना का संशो-  
धित संस्क० व्यवहार में लाया गया है, जहाँ कु० और भांडार० के संकेत दिये गये हैं ।  
महाभारत के संकेत श्रीपर्व के नाम से नहीं, किन्तु उनकी क्रमसंख्या के अनुसार दिये  
गये हैं । यह क्रमसंख्या इस प्रकार है—

१. आदिपर्व, २. सभापर्व, ३. वनपर्व, ४. विराटपर्व, ५. उद्योगपर्व, ६.  
भीष्मपर्व, ७. द्रोणपर्व, ८. कर्णपर्व, ९. मलयपर्व, १०. सांघिकपर्व, ११. स्त्रीपर्व,  
१२. शान्तिपर्व, १३. अनुवातपर्व, १४. अश्वमेधपर्व, १५. आश्वमेधपर्व,  
१६. मोक्षपर्व, १७. महाप्रास्थानिकपर्व, १८. स्वर्गरोहणपर्व ।

अग्निपुराण : आत० पू०

कूर्मपुराण : वि० ई०

भागवत पुराण : नि० सा०

मत्स्यपुराण : आत० पू०

नारदीय पुराण : वै० प्रे०

अविध्यपुराण : बेंक० प्रे०

मार्कण्डेयपुराण : बि० इ०

पद्मपुराण : आन० पू०

विष्णुपुराण : गोपाल नारायण कंपनी, दम्बई

वामपुराण : आन० पू०

स्कन्दपुराण : बेंक० प्रे०

अष्टापुराण : बेंक० प्रे०

### (इ) स्मृतियाँ

मनुस्मृति : कुल्लूकबट्ट की टीका सहित, नि० सा०

मनुटीकासंग्रह : संपा० डा० जाली, नि० इ०

मनुस्मृति : मेघातिथि, मोक्षिन्दराज, सर्वज्ञनारायण, राघवानन्द, तन्दन व एक अन्य  
टीका सहित, संपादक विष्णुनाथ भंडारिक

याज्ञवल्क्यस्मृति : विज्ञानेश्वर कृत मिताक्षरा टीका, नि० का०

याज्ञवल्क्यस्मृति : अपरार्क टीका, आन० पू०

याज्ञवल्क्यस्मृति : निम्बक कृत वात्सकीका व्याख्या, वि० सं० सी०

नारदीय संहिता : वं० सं० सी०, नारद स्मृति : संपा० डा० जाली, प्रि० इ०, इसमें  
असहाय की टीका भी है।

पराशर स्मृति : वं० सं० सी० में माघनाचायें कृत व्याख्या सहित तथा जीवा०  
का संस्करण। श्रेष्ठ स्मृतियों के लिए आन० पू० का २७ स्मृतियों का तथा जीवातन्द  
का २६ स्मृतियों का संग्रह व्यापार में लाया गया है। जहाँ दोनों में अन्तर है वहाँ श्रेष्ठक  
संस्क० का निर्देश कर दिया गया है। इनमें निम्न स्मृतियाँ हैं—जमिनी, अति, आपस्तम्ब,  
उपनिषत्, गोभिल, दक्ष, देवात, प्रजापति, बृहस्पति, बभ्रु, लघुविष्णु, लघु  
शंख, लघु शातातप, लघु हारीत, लघु आश्वलायन, बसिष्ठ, बृद्ध हारीत, वैदव्यास,  
शंखनिखिल, शंख, शातातप, बौधायन, बृद्ध गोतम, लघु व्यास, लघु अति, कश्यपाग्र-  
स्मृतिसारोद्धार—वाण्डुर्य वामन काये द्वारा संगृहीत, बृहस्पति स्मृति—भा० आ०  
सी०। हारीत, शंख, पैठीनसि, शौमिक आदि अनेक स्मृतिकारों के ग्रन्थ उपलब्ध नहीं  
हैं, किन्तु मध्यकालीन निबन्धग्रन्थों में उनके वचन उद्धृत हैं। इस प्रकार के वचनों का  
संकलन इस प्रकार है—हारीत, वायभाग द्वारा उद्धृत, अथवा हारीत (दा० पू०)।

### (ख) स्मृतियों की टीकाएँ तथा निबन्ध ग्रन्थ

दशकचन्द्रिका—आन० पू० तथा यज्ञेश्वर भट्टाचार्य कलकत्ता के संस्करण

दशकमीमांसा—नन्द पण्डित कृत आन० पू० तथा यज्ञेश्वर भट्टाचार्य कलकत्ता के संस्करण

- शायभाग—जीमूतबाहून कृत, वि० ई० तथा जीवानन्द के संस्करण  
 शायतस्व—रघुनन्दन कृत, जीवानन्द का संस्करण  
 शीतकानिका—शुक्लपाणि कृत, पाञ्च० स्मृति की टीका  
 शर्मैर्बोश—व्यवहार काण्ड, बं० १-३, प्राज्ञ पाठशास्त्रा सङ्ग्रह, वही  
 धर्मसिन्धु—काशीनाथकृत, वि० सा०  
 पराशरनाथवीर्य—माधवाचार्य कृत पराशरस्मृति की टीका, बं० सं० सी०  
 मदनपारिजात—विश्वेश्वर भट्ट कृत, वि० ई०  
 मिताक्षरा—विद्यानेश्वर कृत पाञ्चकल्प्य स्मृति की टीका, वि० सा०  
 मेघातिथि का मनुस्मृति पर भाष्य, मांडविक के संस्करण से  
 विवादचिन्तामणि—बाबस्पति मिश्र कृत, श्रेष्ठेश्वर प्रेस  
 विश्वरूप—पाञ्चकल्प्य स्मृति पर बान्धवी टीका का लेखक, वि० सं० सी०  
 वीरमिलोत्पल—पाञ्च० स्मृति की मिलमिश्रकृत टीका, चौ० सं० सी०  
 व्यवहारप्रकाश—मिश्रमिश्र कृत, चौ० सं० सी०  
 व्यवहारमयूख—नीलकण्ठ कृत, पाण्डुरंग ज्ञानन बाणे का संस्करण  
 श्रीमूल—गणपति ज्ञान्नी कृत कौटिलीय अर्थशास्त्र की टीका, वि० सं० सी०  
 संस्कारप्रकाश—मिश्रमिश्र कृत, चौ० सं० सी०  
 सरस्वतीविलास—श्री प्रतापशब्ददेव, स्वा० मंडल पूना द्वारा प्रकाशित  
 सामण भाष्य—ऋग्वेद का, वैदिक संशोधन मंडल पूना  
 सुबोधिनी—विश्वेश्वर भट्ट कृत पाञ्च० की मिताक्षरा टीका की टीका, चारपुरे द्वारा  
 सम्पादित ।  
 स्मृतिचन्द्रिका—देवणाभट्ट कृत, चारपुरे का संस्करण

### (छ) संस्कृत के अन्य ग्रन्थ और काव्य

- कौटिलीय अर्थशास्त्र : संपा० गणपति शास्त्री, वि० सं० सी०  
 बृहत्संहिता : बराहमिहिर कृत, वि० ई०, उत्पल की टीका सहित, सुधाकर द्विवेदी  
 द्वारा सं० संस्क०  
 नाया सप्तशती : हाल कृत, वि० सा०  
 पूर्वमीमांसा : शबर-भाष्य सहित, आन० पू०, गंगानाथ झा कृत अंग्रेजी अनुवाद, गा०  
 वो० सी०  
 हर्षचरित : वि० सा०  
 कादम्बरि : ८=५ संस्क०, वि० सा०  
 काममूल : वात्स्यायन कृत, चौ० सं० सी०  
 मालतीमाधव : संपा० रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर, बं० सं० सी०



मृच्छकटिक : नि० सा०

रघुवंश : नि० सा०

अभिज्ञानशाकुन्तल : नि० सा०

कथासरित्सागर : प्रोमदेव भट्ट, नि० सा०

कुमारसंभव : नि० सा०

राजतरंगिणी : संपा० स्टाइन

विष्णुसौवर्णीय : संपा० काले

उत्तररामचरित : श्रीवा० संस्क०

वासवदत्ता : कृष्णमाधुरियर कृत टीका सहित, श्रीवाणीप्रियास प्रेस श्रीरंगम

रत्नासली : संपा० लोमलेकर

धनकुमारचरित : श्रीवा० संस्क०

नैषधसंभवित : नि० सा०

किरातावृत्तीय : नि० सा०

## विवाह विषयक ग्रन्थ

### (क) हिन्दू विवाह विषयक ग्रन्थ

#### (अ) सामान्य एवं कानूनी ग्रन्थ

- अस्तेकार, आनन्द सदाशिव — श्री मंत्रीजन आफ बुमैन इन हिन्दू सिविलिलिजेशन, मोतीनाल, दिल्ली, द्वितीय मसूरा १९५५
- काण्डिया, के० एम० — हिन्दू कानून, १९४७
- काण्डिया, के० एम० — मैरिज एण्ड फैमिली इन इण्डिया, आफसफोर्ड यूनि-  
वर्सिटी प्रेस, १९५५
- द्वारकानाथ मिश्र — पंजीजन आफ बुमैन इन हिन्दू लॉ
- गिजली, मर हर्बर्ट — श्री गोपल आफ इण्डिया, लन्दन, १९१३
- सरदार, सुविमानचन्द्र — सम गवर्नर्स आफ अलिग्ट स्टेशन हिन्दू आफ  
इण्डिया, १९२०
- दामस, वी० — बुमैन एण्ड मैरिज इन इण्डिया
- दामसन, एडवर्ड — सगी (१९२०)
- उपाध्याय, भगवतधरण — बुमैन इन अर्थेड (१९४१)
- वैद्य, चिन्तामणि विनायक — हिन्दू आफ वी मिडीयल इण्डिया
- एल० स्टर्नबेक — यूपीडिकल स्टडीज इन एण्ड इण्डियन लॉ,  
मोतीनाल, दिल्ली, खण्ड १, १९६५, खण्ड २,  
१९६७
- करवीकर — हिन्दू एक्सापेमी १९२६
- जाली — हिन्दू लॉ एण्ड कस्टम, टैगोर कानून व्याख्यानमाला,  
कलकत्ता विश्वविद्यालय
- गुप्तास बलबो — श्री हिन्दू लॉ आफ मैरिज एण्ड स्वीडन,  
टैगोर व्याख्यानमाला, कलकत्ता विश्वविद्यालय  
१९१३।
- जायसवाल, काशीप्रसाद — मनु एण्ड याज्ञवल्क्य, टैगोर व्याख्यानमाला  
कलकत्ता १९३०

- जीम, ए० बी० — मैरिज, हिन्दू, प्रेसिडन्स इगलाइजलोपीडिया आफ रिनीजन एण्ड रीविजस, खंड ८, एडिनबरा, १९५५
- मैन, जे० डी० — ए डीटाइल आफ हिन्दू लॉ एण्ड यूसेज, दशन संस्करण, सप्ता० जे०जे० आगेवर, मद्रास, १९३८
- मेयर, जे० जे० — सेवशुअल लाइफ इन एंग्लो इण्डिया, २ खण्ड, लन्दन १९३०
- स्टील, ए० — डी लॉ एण्ड कस्टम आफ हिन्दू, कास्ट्स, लन्दन, १९६८
- बैकमान हेडविग — दान दी कौन्सल लाइफ, लोन आफ दी इण्डियन यूनिन, ऐज रिप्लेकिट इन दी कौन्सलर आफ दी कौन्सल, २ खण्ड, १९४५
- यूरिये, डी० एस० — कास्ट एण्ड मलास इन इण्डिया, बम्बई, १९५०
- बास्त्री, शकुन्तलाराव — यूनिन इन दी सीकेड लाज, बम्बई, १९५३
- बास्त्री, शकुन्तलाराव — यूनिन इन दी बैदिक एज, १९५२
- श्रीनिवास, एम० एन० — मैरिज एण्ड फैमिली इन मैसूर, बम्बई, १९४२
- स्टीवेन्सन, श्रीमती — डी राइट्स आफ दी दुवाहसबाने, लन्दन, १९२०
- सिन्क्लेयर
- टैगोर, रवीन्द्रनाथ — डी इण्डियन आइडियल आफ मैरिज नामक लेख हर्मान केसरिंग द्वारा सम्पादित 'दी बुक आफ मैरिज' में, न्यूयार्क, १९२०
- एस० एन० अग्रवाल — डी एज ऐंट मैरिज, इलाहाबाद
- बाबे, इरावती — किनएप आर्येनिजेसन इन इण्डिया, पूना, १९५३
- सर हरिसिंह गोड़ — डी हिन्दू कोड, ४ वें संस्करण, नामपुर, १९३०
- सरकार, मोतापन्नद्रभास्त्री — हिन्दू ला, कलकत्ता १९४०
- मुल्ता, सर दीनसाह फर- — प्रिन्सिपल्स आफ हिन्दू लॉ, १२वीं संस्करण श्री सुन्दरलाल टी० देसाई द्वारा संशोधित एम० एम० त्रिपाठी, बम्बई, १९६०
- गणेश, पाण्डुरंग कामन — हिस्टरी आफ धर्मशास्त्र, खंड १, पूना, १९३०, खण्ड २, भाग १-२, पूना १९४१
- गणेश, पाण्डुरंग कामन — धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, हिन्दी समिति, लखनऊ
- चटर्जी, एच० — ए क्टिकल स्टडी आफ स्वयम्बर फार्म आफ मैरिज, कलकत्ता रिज्यू, खण्ड १४३, जून १९५७

बटर्फी, एच०	—ए स्टडी आफ दी प्राजायफार्म आफ मैरिज, इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, खण्ड ३२, मार्च १९५५
दा, बी० सी०	—युमैन इन बुद्धिस्ट लिटरैचर, १९२७
बी० एस० ब्रुजवर्मी	—स्पेशल मैरिज ऐक्ट १९५४, पृष्ठा १९५५
सक्सेना, वमशीप्रसाद	—दी हिन्दू मैरिज गैंगट १९५५, पृष्ठसंख्या १९५६
एस० एन० बग्गा	—स्टेचूटरी चेंजेस इन हिन्दू ला, जम्माहावाद १९६२
यू० सी० सरकार	—ईपक्स इन हिन्दू लीगल हिस्टरी, हांगियागपुर १९५८

(अ) हिन्दू विवाह की आधुनिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने वाले ग्रन्थ

के० टी० मन्नेण्ड	—पैजिंग अपुज आफ मैरिज एण्ड फैमिली (हिन्दू मुष) सी. जी. पाल, मद्रास, १९३५
हाटे, श्रीमती चन्द्रकला	—हिन्दू युमैन एण्ड हर वयुचर, बम्बई
एलीन रास	—दी हिन्दू फैमिली इन इट्स अर्बन सेटिंग, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, १९६१
देसाई, श्रीमती जे० बी०	—युमैन इन माडर्न गुजराती नाइका, १९४५, बम्बई विश्वविद्यालय से अप्रकाशित शोध प्रबन्ध
देसाई, श्रीमती एन० ए०	—दी इम्पैक्ट आफ दी ब्रिटिश कल आन दी पोलीसन आफ इण्डियन युमैन, बम्बई विश्वविद्यालय का अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, १९५१
देसाई, मिस एस० के०	—दी सोशियोलॉजिकल पोलीसन आफ युमैन इन इण्डिया सिन्स १८५८-१९२६, १९३० बम्बई विश्वविद्यालय का अप्रकाशित शोध प्रबन्ध

रिपोर्ट आफ दी एज आफ

कान्सेण्ट कमिटी १९२८-६

मार्गरेट कोरमैक

—दी हिन्दू युमैन, एलिमा, बम्बई १९६१

नीरू देसाई

—युमैन इन माडर्न इण्डिया

नेहरू, श्यामकुमारी

—आवर काज

रमाबाई सरस्वती

—दी हार्ड कास्ट हिन्दू युमैन (१९०१)

चिन्तामणि, सी० बाई०

—इण्डियन सोशल रिफार्म (१९०१)

कापडिया, के० एम०

—यूज एण्ड एटीट्यूड्स आफ प्रीनिसिपली सेजुयुस इन दी हिन्दू कम्युनिटी आन मैरिज एण्ड फैमिली रिलेशनशिप्स, सोशियोलॉजिकल बुलेटिन ख. ३, सं० १, मार्च १९५४

कापडिया, के० एम०	—वेजिंग पैटर्न्स आफ हिन्दू मैरिज एण्ड फीमिली, सोशियोलॉजिकल बुलेटिन खण्ड ४, सं० २ सितम्बर, १९५५
कापडिया, के० एम०	—वेजिंग पैटर्न्स आफ हिन्दू मैरिज, सोसि० बुलेटिन खं० ३, सं० २, सितम्बर १९५४
पाल चेरियथ	—ए रिसर्च इन मैरिटल एक्जस्टमैण्ड चिमिन ए सलेक्टेड ग्रुप आफ हिन्दूज, ब्राह्मणज आफ फीमिली मैनेज्ड-जस्टमैण्ड विद रेफरेन्स टु हिन्दू सोसाइटी इन बाम्बे प्रेजिडेन्सी,—ये बीनों सर योराबजी टाटा जेजुएट स्कूल आफ सोशल वर्क बम्बई के शोध प्रबन्ध है।
ऐवप्पन, ए०	—कौटुम्बिक पोलिएण्ट्री इन मलाबार, मेन इन इण्डिया, खं० ३, १९३५, नामर पोलिएण्ट्री मेन, खं० ३२, १९३२
विश्वनाथ, डा० पी० सी०	—पोलिएण्ट्री एमोंग दी हिल ट्राइब्स आफ जौनसार बाबर, न्यू जॉर्जि खं० १, सं० १, जनवरी १९५३
अम्बर, एल० के०	—नामर पोलिएण्ट्री, मेन खं० ३२, १९३२
मजूमदार, बी० एम०	—हिमालयन पोलिएण्ट्री, एशिया, बम्बई १९६२
रामनारायण सम्सेना	—मैरिज एण्ड डाइवोर्स इन जौनसार बाबर, न्यू जॉर्जि, अक्टूबर १९५३
रामनारायण सम्सेना	—सोशल इकानमी आफ ए पोलिएण्ट्स पीपल, भागरा विश्वविद्यालय, १९५८
इरावती कर्वे	—हिन्दू सोसाइटी, ऐन इण्टरप्रेटेशन, पूना, १९९१
तारा अली बेग	—बुमैन आफ इण्डिया, पब्लिकेशन डिबीजन १९५८

## (ख) विवाह विषयक सामान्य ग्रंथ

एवरी, (सर जान लम्बक साई)	—मैरिज, टोटमिन्स एण्ड रिस्लीजन, लन्दन १९११
ब्लाय	—दी सेक्सुअल लाइफ आफ बाबर टाइम इन रिस्लीजन टू माइने सिविलिजेशन, लन्दन, १९०४
एलिस, हेनलाक	—मेन एण्ड बुमैन, ५म संस्करण, लन्दन, १९१८
एलिस, हेनलाक	—स्टडीज इन साइकोलॉजी आफ सेक्स, ६ खण्ड
मैकलोगान, जे० एफ०	—दी लेवीटेड एण्ड पोलिएण्ट्री, कोर्टनाइटसी रिव्यू खण्ड २१, लन्दन १८७७

मैलिनीवस्की	—सेक्स एण्ड रिजेशन इन सेवेज सोसायटी, लन्दन, १९२७
मैलिनीवस्की	—दी फेमिली एमीग दी आम्प्रेलियन एन्टीरि- जिनीज, लन्दन १९१३
मैलिनीवस्की	—दी फादर इन प्रिमिटिव सोसाइटीज, न्यूयार्क १९१७
मैलिनीवस्की	—दी सेक्सुअल नाइफ आफ दी मैवेज इन गार्भ वेस्टर्न सोलिसीजिया, लन्दन १९२६
रिक्स	—क्रिश्चियन एण्ड सोशल आर्गेनिजेशन, लन्दन १९१४
रिक्स	—मैरिजिस (आरॉम्भिक तथा आदिम जातियों की) इसा० गिल्जीन एण्ड इंग्लिस, खण्ड ८
स्पेन्सर	—क्रिश्चियन सोशियलीज्मी ८ खण्ड, लन्दन १८७३-८१
स्पेन्सर	—दी प्रिन्सिपलज आफ सोशियलीज्मी, ३ खण्ड, लन्दन १८८२-८६
वेस्टरमार्क ई०	—दी हिस्टरी आफ ह्यूमन मैरिज, ३ खण्ड, लन्दन १९२४
	—दी शार्ट हिस्टरी आफ मैरिज, लन्दन
	—दी फ्यूचर आफ मैरिज इन सैन्टर्न सिविलिजेशन, लन्दन १९३६
	—दी ओरिजिन एण्ड डेवलपमेण्ट आफ मारल आइडियाज, २ खण्ड, लन्दन १९१२-१७
	—मैरिज सेरीमनीज इन मोरक्को, लन्दन १९१४
लतूनी	—दी इवोल्यूशन आफ मैरिज एण्ड दी फेमिली, फ्रेंच ग्रन्थ का अंग्रेजी अनुवाद, लन्दन १८९१
मूलर, सायर	—इवोल्यूशन आफ मैरिज १९३०
गुडसेल	—ए हिस्टरी आफ मैरिज एण्ड फेमिली, द्वितीय स० न्यूयार्क १९३४
हावर्ड, जार्ज हर्लियट	—ए हिस्टरी आफ दी मेट्रोपोलिटन इस्टीम्यूशन, ३ खण्ड, सिकागो १९०४
एच० आर० एच० प्रिंस पीटर आफ वीस एण्ड डेन्मार्क	—ए स्टडी आफ पोलिएण्ट्री, मोल्टन एण्ड कम्पनी, हेग १९६३

बिफाल्ट	—बी मर्से, ३ खण्ड, १९२७
हाथहाउस, छीमर,	
विन्सबर्ग	—बी मैटीरियल क्लर्क एण्ड बी सोशल इन्स्टीट्यूशन आफ बी सिम्पल पीपल
लिप्टन	—बी स्टडी आफ मैन
मैकसीमान	—स्टडीज इन एंथ्रोप हिस्टरी, लन्दन १८६६
गोमराय	—मैरिज, गाल्ट एण्ड प्रेजेन्ट, १९३०
विलियम जे० थोर्पिंग	—स्ट्रेज कस्टम्ज आफ कोर्टशिप एण्ड मैरिज, पार्स बुक्स, न्यूयार्क

### (ग) विवाह सम्बन्धी हिन्दी पुस्तकें

- शिविमोहन सेन—भारतवर्ष में जातिभेद, कलकत्ता, १९४०  
 ठाकुर केशवकुमार—नवीन दाम्पत्य जीवन में स्त्रियों के अधिकार, चांद कार्यालय  
 इलाहाबाद, १९३३  
 डा० भगवानदास—पुरुषार्थ, सत्ता साहित्य मंडल, दिल्ली १९४०  
 उपाध्याय संग्रहालय—विधवा विवाह नीमासा, चांद कार्यालय इलाहाबाद, ३४  
 संस्करण इलाहाबाद १९३०  
 शारदा, चांदकरण—शारदा ऐक्ट संवत् १९९५  
 सन्तराम बी० ए०—अन्तर्जातीय विवाह  
 धर्मदेव विद्यान्तालंकार—भारतीय समाजशास्त्र

### (घ) प्रान्तीय भाषाएं

#### (क) गुजराती

- पटेल नरसिंह भाई ईश्वरभाई—लग्नप्रपंच, प्रस्वान कार्यालय अहमदाबाद, संवत् १९९३  
 (विवाह के सम्बन्ध में, लेखक की दृष्टि में स्त्रियों के साथ पुरुषों ने बड़े अन्याय किये हैं,  
 इस पुस्तक में उनका ओजस्वी वर्णन है।)  
 पटेल नर० ई०—लग्नप्रपंच, उपर्युक्त पुस्तक का संक्षिप्त संस्करण

(ख) मराठी

केलकर व खरे—हिन्दू धर्मशास्त्र, पुना १९३२

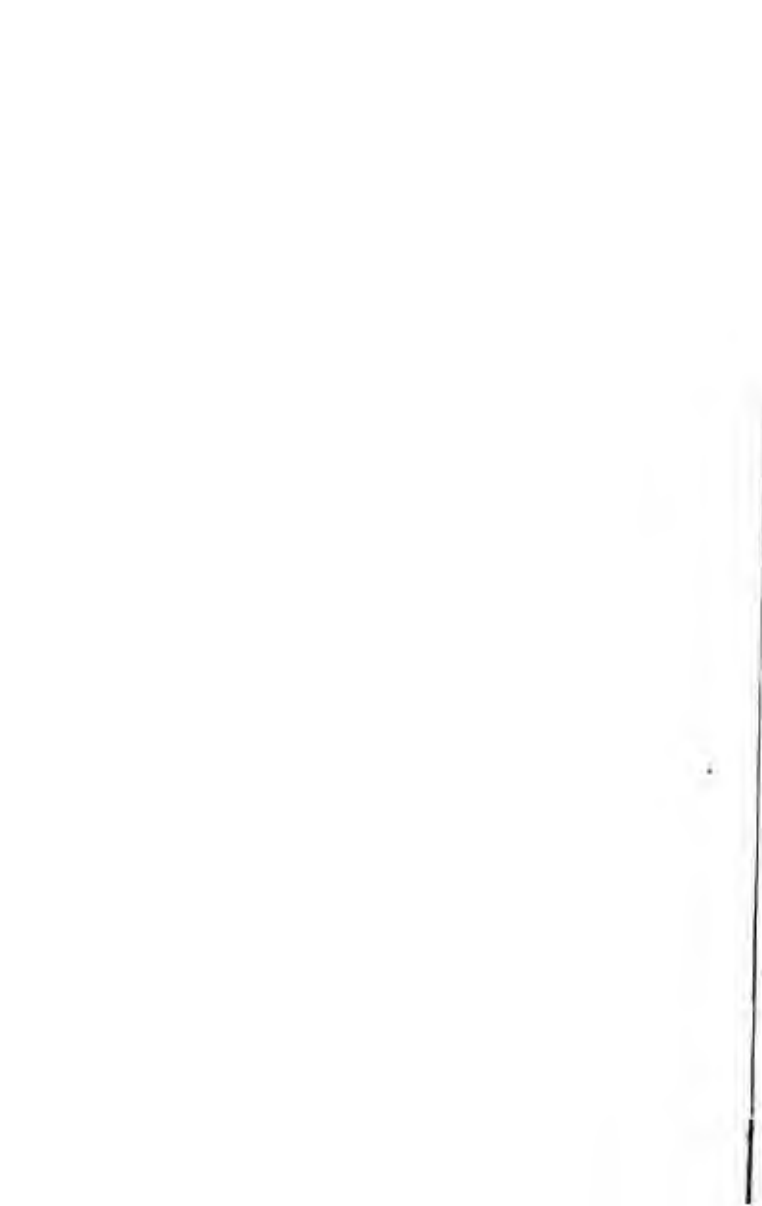
जोशी गो० म०—हिन्दू विवाह संभाषा—कट्टर दृष्टिकोण से यह पुस्तक बहुत उत्तम है।

भावे जयमण केशव—वैवाहिक जीवन २ भाग

निमकर द० मा०—हिन्दू लग्न-संभा

चित्राव, सिद्धेश्वर काशी—विवाह संस्कार





## अनुक्रमणिका

- अंगिरा स्मृति, पृ० ३६, ३५८, ३५९, ३६१ ।  
 अंगुलर गिकाय, पृ० २४९, २७६, ३८०, ३८१ ।  
 अकाल, पृ० २९६, ३२५, ३६२, ३६४, ३६६ ।  
 अगस्त्य, पृ० ३०, ११३ ।  
 अग्निरा (मिर्जापुर की जाति), पृ० ७३, १०० ।  
 अग्निपरिणयन (केरे), पृ० २४२ ।  
 अग्निपुराण, पृ० ११७, १८७, ३५८ ।  
 अग्निमित्र, पृ० ३२७, ३६३ ।  
 अग्निस्वापन और होम, पृ० २०० ।  
 अग्रवाल, एस. एन., पृ० ३३१, ३३२ ।  
 अग्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास (मल्ल-केतु), पृ० १३४ ।  
 अग्नेदिधिपु, पृ० १५५ ।  
 अज, पृ० १८३ ।  
 अजातशत्रु, पृ० ८३ ।  
 अजीमर्त, पृ० १९१ ।  
 अजीमर्तसिंह (मारवाड़ का राजा) पृ०, ३६१ ।  
 अरुठ कथा, पृ० २०३ ।  
 अलि, पृ० ३० ।  
 अलिमहिता, पृ० १५० ।  
 अथर्ववेद, पृ० २६, ३४, ३५, ३८, ४२, ४३, ६१, १५६, १७९, १९९, २००, २१५, २३६, २३७, २४९, २८६, २८७, ३०६, ३०८, ३३६, ३३७, ३३८, ३७६, ३७७, ४०३ ।  
 अथानल द्वारा तलाक स्वीकृत किए जाने के कारण, पृ० ३०० ।  
 अदुष्यन्ती, पृ० ११३, ११४ ।  
 अधिविष्ठा, पृ० ३८२ ।  
 अधिवेदन, पृ० २९२, ४४१ ।  
 अधिवेदमिका, पृ० ३८२ ।  
 अनन्ताकाम्य अम्बर, पृ० १३१ ।  
 अन्नदेव, पृ० ६० ।  
 अनन्त ऋषि, पृ० ६८ ।  
 अनिरुद्ध, पृ० ८३, ९५, ३८७ ।  
 अनुयय (कौटिल्य), पृ० २६१ ।  
 अनुष्ठातृशिवानु, पृ० ६९, १०५ ।  
 अनुमरुत, पृ० ३५३ ।  
 अनुरजन, पृ० १६८, २०५, ३१७, ४२७ ।  
 अनुलोम विवाह, पृ० १०९, १२३, १३८, ३७८; प्राचीन उवाहरण, पृ० ११२; तिलालेखों में उल्लेख, पृ० १२८ ।  
 अनुशासनपर्व (महाभारत), पृ० ११३, ३२०, ३६०, ३६१ ।  
 अनुसूया, पृ० ३१६, ३६४ ।  
 अन्तःप्रजातीय विवाह, पृ० ४३४ ।  
 अन्तराष्ट्रिय, पृ० ३५ ।  
 अन्तर्जातीय ईश विवाह, पृ० २२५ ।  
 अन्तर्जातीय विवाह, पृ० ४३४—प्राचीन

- दृष्टिकोण, पृ० १४१; वर्तमान न्यायालय, पृ० १३७; वैदिक युग में, पृ० १०६।
- अन्तर्जातीय विवाह (सन्तराम कृत), पृ० १३६।
- अन्तर्जातीय विवाह के प्रति नवीन दृष्टिकोण, पृ० १४१।
- अन्तर्धर्म विवाह, पृ० ४३४।
- अन्तर्विवाह, पृ० ७, १०८, १४३; इसका महत्त्व, पृ० १०८; इसके विकास की अवस्थाएँ, पृ० १०६।
- आतविवाही निषेध, पृ० ७।
- आर्य जातियों में शाश्वत विवाह के व्यवहार, पृ० १०४।
- अश्वपूजा, पृ० २६३।
- अन्वारोहण, पृ० ३४३।
- अपने आति या बर्ग में विवाह के कारण, पृ० १२१।
- अपराध, पृ० ६६, ८२, ८४, ८७, ६२, ३४३, ३४६, ३६१।
- अपाता, पृ० ३०८।
- अभयनन्द दास, पृ० ३६६।
- अमिताभ माधवाचार्य, पृ० ४०।
- अभिमन्यु, पृ० ३२०, ३४८।
- अभिलोमनस्य सूत, पृ० १६६।
- अभिमान शाकुन्तल, पृ० १०, १४६, २००, २०३, २०७, २४२, २७७, ३६४।
- अभ्यागत होम, पृ० २४०, २४१।
- अध्यातुवहर्भर्ता देखिये मातृसत्ता बहु-भर्ता।
- अध्यातुमती कन्या से विवाह का निषेध, पृ० १४६।
- अमरकोश, पृ० २६।
- अमान, पृ० १८, ४२७।
- अमोचवर्ग, पृ० १७४।
- अम्बष्ठ पृ० १२१।
- अम्बष्ठ सूत, पृ० १२१, १२२, ३८०।
- अम्बा, पृ० १७३।
- अम्बासिका, पृ० १७३।
- अम्बिका, पृ० १७३।
- अयोधन, पृ० ८४।
- अरस्तु, पृ० २१७।
- अरुन्धती, पृ० ११३।
- अर्क विवाह, पृ० २४६।
- अर्चनातस पृ० १११, २२४।
- अर्जुन, पृ० २४, ८२, ६४, ६६, १४६, १७२, १७३, १७६, १८३, १८४, १८३, २१६, ३४०, ३४२, ३४८, ३८८, ४०४, ४०५, ४०७।
- अर्थशास्त्र (कौटिल्य), पृ० २८२, २६०, ३८२, ३६४।
- अर्भाग, पृ० ३०७।
- अर्भ, पृ० ३०७।
- अरिय सन्तान, पृ० ४११।
- अलीकर, पृ० १६७, २७७, ३३७, ३४४, ३४६, ३६०, ३६८, १७३, ३७५, १।
- अल्बेल्नी, पृ० ३२४, ३४३, ३६४।
- अवन्तिसुन्दरी, पृ० १२८।
- अविच्छेद हिन्दू विवाहों की अविच्छेद ईसाई विवाहों से भ्रामक तुलना, पृ० २६२।
- अशोक, पृ० ३६४, ३६६।
- अशोक का दीहव, पृ० ३६३।
- अमारोहण, पृ० २४२।
- अस्तव्य विवाह, पृ० २४४।
- अश्वमेध यज्ञ, पृ० २७४, ३७८।

अष्टावक्र, पृ० १४८ ।

असंगोष्ठता, पृ० २८ ।

असंगोष्ठ विवाह के नियम के प्रादुर्भाव पर  
पश्चिमो विद्वानों की कल्पनाएँ, पृ० ५८-  
६०—एवबरी, पृ० ५६, मैकलीन, पृ०  
५८, स्पेन्सर पृ० ५६ ।

असंगोष्ठता, पृ० २८ ।

असंगोष्ठ विवाहों के विधि,  
पृ० २६१ ।

असंगोष्ठ विवाह के प्रचलित होने के कारण,  
पृ० १२६ ।

असंगोष्ठ विवाहों के ऐतिहासिक उदाहरण,  
पृ० १२० ।

असंगोष्ठ (टीकाकार नाम्द स्मृति), पृ०  
३७३ ।

असंगोष्ठ कष्ट, पृ० ३०८ ।

असंगोष्ठ दुष्चरित्रता, पृ० ३०४ ।

असंगोष्ठ जातक, पृ० ३२०, ३२१ ।

असीरिया, पृ० १६७ ।

अस्तित्व अपराध, पृ० ३११ ।

अस्तित्व कल्या की आकांक्षा, पृ० ३४२ ।

अस्तित्व विधवा का विवाह, पृ० ३३६ ।

अस्तित्व स्त्री, पृ० २६४ ।

अस्तित्व, पृ० ११३, १२५ ।

आदमे अकबरी, पृ० ३६६ ।

आदमकर, पृ० ३४८ ।

आदमी, पृ० ३११ ।

आठ प्रकार के विवाहों का क्रमिक विकास,  
पृ० १३८ ।

आत्मकथा (राजेंद्रप्रसाद), पृ० ४२३ ।

आदित्य पुराण, पृ० १२६, ३४३ ।

आदिशूर, पृ० ३६७ ।

आधुनिक युग में असंगोष्ठ विवाह, पृ० ६६ ।

आधुनिक युग में बालविवाह की हानियाँ,  
पृ० ३२६ ।

आधुनिक युग में विधवा विवाह, पृ० ३४८ ।

आनन्द विवाह, पृ० २३२ ।

आपस्तम्ब धर्म सूत, पृ० ६, २३, २४, २८,

२६, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५२, ५३, ५६,

५७, ६३, ६७, ८५, ११६, १३०, १४५,

१४७, १५०, १५१, १५४, १५५, १६४,

१६५, १६६, २१४, २२५, २३६, २३८,

२४०, २४६, २५०, २५१, २७५, २८३,

३०८, ३७३, ३७४, ३७८, ३८०, ३८१,

३८४, ४०६, ४४१ ।

आपस्तम्ब संवपाठ, पृ० ११२ ।

आपस्तम्ब श्रौतसूत, पृ० ३३, ४६, ११२,  
१४६ ।

आमोनास, पृ० २५६ ।

आर्किओलासिकल सर्वे आर्किस्टर्न इंडिया,  
पृ० १२७ ।

आर्वाअतारोण, पृ० २५४ ।

आर्य-द्रविड़ संघर्ष का परिणाम—बाल-  
विवाह, पृ० ३१८ ।

आर्यन वाय, पृ० २२२ ।

आर्य समाज, पृ० १४०, ३२६, ३५२,  
३७५ ।

आर्य विवाह, पृ० १६४, १६५, १६८, २१३,  
२१५ ।

आर्येय, पृ० ४१ ।

आर्यस हस्तली, पृ० ४२१ ।

आर्यसामयन गृह्यपरिनिष्ठ पृ० २४० ।

आर्यसामयन गृह्यसूत्र, पृ० ४६, ४७, ४८,

४९, ५३, ११६, ११७, १४३, १६४,

१६६, १७२, १७४, १७५, २३६, २३७,

२३८, २३९, २४१, २४२, २४३, २४४,

- २४५, २४६, २४७, २४८, २४९, २५०, २५१, २५२, २५३, २५४ ।  
 आत्मन्यायन श्रौतसूत्र, पृ० ३३, ४६, ४८, ४९, ५३, ५६ ।  
 आसुर विवाह, पृ० १६४, १६५, १६८, १८७-१८८, २१५; इसका स्वल्प, पृ० १८७; इसकी निन्दा, पृ० १६३; इसके कारण, पृ० १६६ ।  
 ईगर्लैण्ड, पृ० १४८ ।  
 ईगर्लैण्ड का मैट्रिमोनियल एक्ट (१६३६), पृ० २८७ ।  
 ईगर्लैण्ड का विवाह कानून (१६५०), पृ० ३०२ ।  
 ईगर्लैण्ड में बाल विवाह, पृ० ३२७ ।  
 ईशियन विजय (मोनिगर विलियम्स), पृ० ३५५ ।  
 ईसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड ईथिक्स, पृ० १, ३४, १०६, ११०, १११, १३२, ३२१ ।  
 ईसाइक्लोपीडिया थ्रिटानिका, पृ० ६, १११, १३१, १३५, ३१३, ३७८ ।  
 इटली, पृ० ३१२, ३१३ ।  
 इतरा, पृ० १११ ।  
 इन्दिरा गांधी, पृ० ४३४ ।  
 इन्दिरा रमण, पृ० ११३ ।  
 इन्दुमती, पृ० १८३, २१६ ।  
 इन्द्र, पृ० २०७, ३६० ।  
 इन्द्रराज (अमोघ वर्षा) पृ० १७४ ।  
 इन्द्र वस्तुता, पृ० ३६५ ।  
 इन्वेटसग, पृ० १०६, १३१ ।  
 इम्पीरियल न्यूटेयिअर ऑफ इंडिया, पृ० १११ ।  
 इरगस्तू, पृ० १६ ।  
 इरावती, पृ० ३६३ ।  
 इरावती कब्रे, देखिए कब्रे, इरावती ।  
 इसीदासी, पृ० २८८ ।  
 ईश्वरचण्ड विद्यासागर, पृ० १५१, ३३०, ३४६, ३५०, ३५१, ३५२, ३६८, ४०१, ४०२ ।  
 उक्ताक (इक्ष्वाकु) पृ० ३७६ ।  
 उल्लस, पृ० ३६० ।  
 उत्तम जातक, पृ० २८८, ३४० ।  
 उदयन, पृ० २०४, २०६ ।  
 उडाहरच (रघुनाथन), पृ० २, ५१, १५६ ।  
 उद्योग पर्व (महाभारत), पृ० ११३, ४०८ ।  
 उद्योगीकरण, पृ० ४३६ ।  
 उत्तक, पृ० ३२० ।  
 उत्तम मान्तर की कथा, पृ० ११ ।  
 उत्तर भारत में बहुभर्तृता, पृ० ४१३ ।  
 उत्तर रामचरित (भबभूति), पृ० ३२१, ४४४ ।  
 उत्तरा, पृ० ३२० ।  
 उत्तानपाय, पृ० ३८६ ।  
 उपरिविवाह, पृ० १०६, १३०, १३५, १३६ ।  
 उपरिविवाही वर्ग, पृ० १३६ ।  
 उपाधिकावी गोत्र, पृ० ७४ ।  
 उमा, पृ० ३६१ ।  
 उरभंग (भास), पृ० ३५८ ।  
 उर्वशी, पृ० २०६, २६६, ३६३, ३६४ ।  
 उलूपी, पृ० २५, ३८८ ।  
 उषावास्मृति, पृ० १२५ ।  
 उज्जिन, पृ० १११ ।  
 उमीनर, पृ० १६, २४, ३६२ ।  
 उपरिष्ठ वाक्याण, पृ० ३११ ।

उषा, पृ० ३८७ ।

उत्तिष्ठाक (रुग्नी जाति), पृ० १७६ ।

ऋग्वेद, पृ० १२, १५, १८, २४, २६,

३४, ३५, ३७, ४१, ४३, ९१, ८०, ८१,

६२, १११, ११२, १५६, १७६, १८१,

१८६, १८८, १८९, २१५, २१७, २३६,

२३६, २४०, २४१, २४३, २४५, २४६,

२४८, २४९, २५०, २७३, २७४, २८६,

३०६, ३०७, ३३७, ३५४, ३७२, ३७६,

३७७, ४०३ ।

ऋग्वेद रिखल सूक्त, पृ० ८२ ।

ऋषीक, पृ० ११४, १२३, १६२, १६३ ।

ऋतुकांत के समय तक कन्या का विवाह,

पृ० ३१० ।

ऋतुपर्ण, पृ० ३४० ।

ऋतुमती कन्या, पृ० ३१२ ।

ऋष्यशृंग, पृ० ११३, ११४ ।

एक-विवाह, पृ० २२५, २२६, ३७६,

३६६, ४४३ ।

एरले, पृ० २६६ ।

एहवर्क अष्टम, पृ० १२६ ।

एण्टिल, पृ० १२० ।

एण्टीगोनस, पृ० ३५६ ।

एयलस्टोन वेलेस, पृ० १११, १३०,

१३२ ।

एयेस, पृ० २१७ ।

एम्बोजन, पृ० ७०, ७३, ७४, १३१ ।

एथिप्राफिका इत्रिका, पृ० ५१, १२७,

१२८, १७४, ३६०, ३६६ ।

एरण का प्रस्तर स्तम्भ लेख, पृ० १६७ ।

एरियम, पृ० ३२१ ।

एलेकजेंडर हैमिल्टन, पृ० ४१० ।

एवबरी, पृ० ५६ ।

एस्टवी ऑफ पोनिण्डी (पीटर), पृ०

४०३ ।

ऐतरेय ब्राह्मण, पृ० १४, १५, ५१, १११,

११२, २७५, ३७८, ४०३ ।

ऐम्पल, पृ० ४०८, ४१४ ।

ऐन्गलियान, पृ० २५४ ।

ओल्डनबर्ग, पृ० ६२ ।

ओक्षा, गौरीगंकर हौराचन्द्र, पृ० ३६६,

३६७ ।

ओशन ऑफ स्टोरी (पेंजर), पृ० ३५५,

३६४ ।

ओख्यराखा, पृ० ३५४, ३५५ ।

ओमेजी, पृ० १३० ।

औरंग उतांग (बनमानुष), पृ० १७१ ।

ककुत्स्य बर्मा, पृ० १२७ ।

कन, पृ० १५६ ।

कचारी जाति (आसाम), पृ० १०० ।

कठ जाति में सती प्रथा, पृ० ३५६ ।

कणाद, पृ० ११३ ।

कण्ठी बदन विवाह, पृ० २३३ ।

कण्व, पृ० २००, २०१, ३६४ ।

कण्ठपीपायन, पृ० २८६ ।

कपालरिस्सागर, पृ० १२८, ३१५, ३६० ।

कयम्ब, पृ० ३२५ ।

कन्दर्पकेतु, पृ० २१० ।

कन्या, पृ० ३२२ ।

कन्याओं के लीलह वीथ, पृ० १५३ ।

कन्या की गुप्त परीक्षा का सुगम उपाय,

पृ० १५४ ।

कन्यावध, पृ० ५६, १७७, २२० ।

कन्याशुल्क, पृ० १८८, १८९, १९२;

इसकी सूचित कले वाली शिलालेख,

पृ० १६७ ।

- कन्या शुल्क तथा आसुर विवाह की निन्दा, पृ० ३६२ ।
- कपिञ्जल, पृ० ११४ ।
- कमलाकर भट्ट, पृ० ३४, ६७, १२६ ।
- कम्मवान् जाति, पृ० ७३ ।
- करन्दीनार, पृ० ३४, ४५, ४६, ७५ ।
- करहाड़ आहाण, पृ० ६४, १०२ ।
- करावविवाह, पृ० २३१ ।
- कर्ण, पृ० १७३, १८४, ३२०, ४०८ ।
- कर्पूरमन्जरी, पृ० १२८ ।
- कर्ष, इरावती, पृ० २४, २६, ५८, १०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १३३, १३६, ३२६ ।
- कलिमानम् विवाह, पृ० १०६ ।
- कल्हण, पृ० १२६, ३६०, ३६४; देखिये राजतरंगिणी ।
- कवच ऐलूप, पृ० १११, ११२ ।
- कविता कौमुदी (रामनरेश त्रिपाठी), पृ० १४८, ३२६ ।
- कप्रप, पृ० ३०, २४६, २६४, ३२२, ३४४ ।
- कश्मीर, पृ० ३६० ।
- कश्मीर में सतीप्रथा के उदाहरण, पृ० ३६० ।
- कस्तूर बा, पृ० ४४० ।
- कभीवान्, पृ० १११, ३०७ ।
- कांगडा (बहुमर्त्या), पृ० ४१३ ।
- काठक गृह्यसूत्र, पृ० ५३, २३६, २३८ ।
- काणे, वामन भाण्डुरंग, पृ० ३४, ५१, ५४, १११, १३०, १३२, ३४८, ३७० ।
- काण्डी प्रदेश (बहुपतिप्रथा—श्री लंका), पृ० ४१८, ४२० ।
- कात्यायन, पृ० ३३, ४७, ४८, ४९, ५१, ८२, १२४, १२५, १४७, १४६ ।
- कात्यायन और सूत्र, पृ० ५१ ।
- कात्यायन स्मृति, पृ० ११६ ।
- कात्यायनी, पृ० ३७६ ।
- कायम्बरी, पृ० २०८ ।
- कायम्बरी (घाण), पृ० १८१, २०८, ३५६, ३६८ ।
- कानून द्वारा स्त्रियों के विवाह की आमु बढाने का प्रयास, पृ० ३३४ ।
- काण्डिया, पृ० ३२८, ३३२ ।
- कामचार, पृ० ६०, ३१७; इच्छा की दशा, पृ० २२ ।
- कामन्दकी, पृ० २०६ ।
- कामसूत्र (वात्स्यायन), पृ० २५, ३४८, ३५८, ४३२; देखिये वात्स्यायन कामसूत्र कामात्मा सूत्र (अथर्व), पृ० १६६ ।
- काम्या (कर्म की पुत्री), पृ० ११४ ।
- कारुवाकी, पृ० ३६५ ।
- कार्षस इतिहासनाम इतिहास, पृ० १२७ ।
- काल भक्त, पृ० १७६ ।
- कालिदास, पृ० १०, १७, १२७, १४६, १८३, २००, २०२, २०३, २०७, २०८, २४६, २४२, २४३, २४४, ३२१, ३५८, ३६३ ।
- कालिदास द्वारा गणित विवाह विधि, पृ० २५२ ।
- कालिदास, पृ० ८२ ।
- कावी, पृ० २७० ।
- कवेज (जातक) पृ० ३७६, ३८७ ।
- काव्यों में स्वयंवर का वर्णन, पृ० १८३ ।
- काशीनाथ (धर्मसिन्धु) पृ० ६८ ।
- काशी प्रसाद सक्सेना, पृ० ३०० ।

- कितलिय आगिनिलेखन हत ईडिया  
 देखिये कने, दरावती ।  
 कीच, ए. बी. पृ० ८१ ।  
 कुनि भोज, पृ० १८२ ।  
 कुनी, पृ० ८२, १८८, १६२, २५१,  
 ३२०, ३६२, ३६६, ३७०, ३८६, ४०४,  
 ४०५, ४०६, ४०७ ।  
 कुडमार्ड (समार्ड), पृ० २५६ ।  
 कुलकी जाति (महागण्डू) पृ० १०२ ।  
 कुमाल, पृ० ३६५, ४०८ ।  
 कुमाल जातक, पृ० १८२, ४०८ ।  
 कुषिमर्ग, पृ० १८, ४२६ ।  
 कुण्डकामम, पृ० ८३ ।  
 कुवेगवाग, पृ० ३६५ ।  
 कुमारसम्भव (कामिवाम), पृ० १०,  
 २१६, २६६, २४३, २४४, ३५८ ।  
 कुमारित भट्ट, पृ० ६२, २२५, ४०६ ।  
 कुमारी, पृ० ३०६ ।  
 कुम्भ विवाह, पृ० २५५ ।  
 कुरवा जाति, पृ० ७२ ।  
 कुरान जरीफ, पृ० ३६५ ।  
 कुरुपांचाल, पृ० १३१ ।  
 कुलीन विवाह (बगाल), पृ० २१८,  
 २१६, ३६७, ४०२; इसकी हानियां,  
 पृ० ४०० ।  
 कुलू, (बहुभर्तृता), पृ० ४१३ ।  
 कुल्लुक भट्ट, पृ० ६४, ११७, १६७, १७०,  
 २६० ।  
 कुलनाम, पृ० १८६ ।  
 कुटस्थ व्यक्ति, पृ० ६१ ।  
 कुल्ल, पृ० १० ।  
 कुलवी, पृ० ११४ ।  
 कुलिम युद्ध, पृ० १७७ ।  
 कुलिम तविपद्धता, पृ० २७१ ।  
 कुलिम विवाह, पृ० २५७ ।  
 कृष्ण, पृ० ८२, ८३, १७२, २१६, ३४५,  
 ३५७, ३८७, ४०८ ।  
 कृष्ण द्विपायन, पृ० ११३, ४०६ ।  
 कृष्णवर्णा शूद्रा, पृ० ३८१ ।  
 कृष्णवर्णा स्त्रिया, पृ० ११५ ।  
 कटिपत्त, पृ० ३५३ ।  
 केशकर, एम. जी, पृ० १११ ।  
 केशल (बहुभर्तृता), पृ० ४०८, ४१२,  
 ४१७, ४१६, ४२० ।  
 केशमोचन विधि, पृ० २४२ ।  
 केशवचन्द्र सेन, पृ० २७० ।  
 कैकेयी, पृ० १६३, ३८५ ।  
 कैम्बज हिस्ट्री ऑफ इडिया, पृ० २५ ।  
 कैलिगोनिया, पृ० १२०, १७५ ।  
 कांकण, पृ० १३१ ।  
 कोडिनियस, पृ० ४१८ ।  
 कोतवालिया जाति, पृ० १०० ।  
 कोटिलीम अर्चणास्त्र, पृ० १७, १८, ३१२;  
 देखिये अर्चनास्त्र ।  
 कोटिल्य, पृ० १६४, १०६, २८२, ३६०,  
 २६१, २६२, २६५, ३१२, ३६६, ३६६,  
 ३७०, ३८२, ३८४, ३६५ ।  
 कोटिल्य का पुनर्विवाह सम्बन्धी विचार,  
 पृ० ८६ ।  
 कोणत्या, पृ० ३१८, ३८५ ।  
 कोणिकसूत्र, पृ० ३५, २३८ ।  
 कोपीतकि बाह्यण, पृ० ३६, १३१ ।  
 काकई, पृ० ३५५ ।  
 कूड, पृ० ७०, ७३, ७४, ७५, १३४ ।  
 खाण्डा विवाह, पृ० २३२ ।  
 खासी जाति (आत्मान), पृ० २६७ ।



सूरदास, पृ० १२८।  
 खरिया, पृ० ११०।  
 गंगाराम की विधवा विवाह सहायक सभा  
 पृ० ३५२।  
 मङ्गल (बहुभर्तृता), पृ० ४०८।  
 मणपति, पृ० २५५।  
 मणविवाह, पृ० ३७६।  
 मदाधर, पृ० २५४।  
 मन्धारी, पृ० ३०६।  
 मन्थ काति (मैथिल), पृ० २६७।  
 मन्थ पुराण, पृ० ११३, ३६१  
 मांगेय देव, पृ० ३६०, ३६६  
 मागर्ज, पृ० ३२७।  
 माधि, पृ० १२३, १६२।  
 मान्धर्व विवाह, पृ० १६४, १६५, १६८,  
 १६८-२१३, ३२०, ४३२; इसका  
 अर्थ, पृ० २११।  
 मान्धारी, पृ० २८०, ३८६।  
 मान्धो, महाराम, पृ० ४४०।  
 मारो जाति (आम्राम), पृ० १००।  
 मार्गी, पृ० ३१४।  
 मार्ग्य, पृ० २५६।  
 मातव, पृ० १६, २४, ३६२।  
 मिरीन्द्र नाथ, पृ० २१६।  
 मृण्दीपम् विवाह, पृ० २२८।  
 मुस्तास बजनी, पृ० १४८।  
 मुतनी का नियम, पृ० ३२१।  
 मुहम्मद, पृ० १२८।  
 मुहज पूज, पृ० २४, २५।  
 मुहम्मद खान, पृ० २६२।  
 मुहम्मद, पृ० ३०६, ३१५।  
 मुहम्मदों में विवाह संस्कार की विधियाँ  
 पृ० २३६।

मुट, पृ० ७६, १०५, १०६, ११०, ३१८।  
 मुहम्मद, पृ० ३७।  
 मुह जाति (संभलपुर), पृ० २६७।  
 मुहज, पृ० २२, २३।  
 मुह—इसका अर्थ पृ० २६, २४, इसके  
 नियम की आवश्यकता, पृ० ७५। इसके  
 अन्तर्गत सूचक न होने के प्रमाण,  
 पृ० ५६; ऐतिहासिक विकास की दृष्टि,  
 पृ० ३७; धर्मोपकरण, पृ० ७२; सामान्य  
 स्वल्प, पृ० २६।  
 मुह और अन्ध के अर्थों में अन्तर, पृ०  
 ३०।  
 मुह प्रथा की उद्गम सम्बन्धी भारतीय  
 कल्पना, पृ० ५४। इसकी दो बड़ी  
 असमंतिता, पृ० ५५।  
 मुहम्मद निम्नव्यक्तत्वम्, पृ० ३०,  
 ५०।  
 मुहम्मद, पृ० ३५।  
 मुहम्मद बाह्य, पृ० १५, २७५।  
 मुहम्मद हरिवंशमुख, पृ० ३५२।  
 मुहम्मद का दास, पृ० २१४।  
 मुहम्मद मुहम्मद, पृ० ५३, १५१, १५५,  
 १५५, २४१, २४५, २४५, २४६,  
 २४०, २७५, ३०८, ३०८, ३१५।  
 मुहम्मद सरकार, पृ० १००।  
 मुहम्मद जाति (महाराष्ट्र तथा तैलम्  
 म्बाले), पृ० २०, ७२।  
 मुहम्मदराज, पृ० ११३, ११७।  
 मुहम्मद, पृ० ३६०।  
 मुहम्मद धर्मसूत्र, पृ० १२, २६, ३०, ५३,  
 ५६, ५७, ६३, ८४, ८५, ८७, ८८,  
 ८९, ११७, ११६, १२१, १२२, १२५,  
 १२०, १५५, १६५, १८५, १८६,

- २७५, २६४, ३१०, ३२०, ३२३, ३६६ ।  
 गौरी, पृ० ३२२ ।  
 गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, देखिये, ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द्र ।  
 ग्रन्थमार्ग, पृ० १२८, २४६ ।  
 ग्रामगौछ (ग्रामनरेश विगाटी) पृ० २१८ ।  
 छायागीर्तों में ज्ञानविमल पृ० ३२६ ।  
 दिन, पृ० ३५५ ।  
 भटोकच, पृ० ३५८ ।  
 घनश्याम सिंह गुप्त, पृ० १४० ।  
 भोपा कक्षीयती, पृ० ३०८ ।  
 अञ्जुजाति (केल्लोर), पृ० ७२ ।  
 लक्ष्मी जाति, पृ० १७५ ।  
 जल्ले भाई-बहिनी का विवाह, पृ० ८२ ।  
 जन्ममहात्मन पृ० ३६० ।  
 जन्मी जन्मसेन, पृ० ३४६, ३६६, ४०१ ।  
 शत्रुर्धर्गचिन्तामणि (हेमाद्रिकृत), पृ० ६७ ।  
 चतुर्विंशतिमत्, पृ० ६३ ।  
 चन्द्रबरदाई, पृ० १७४, १८३, ३६५ ।  
 चन्द्रगुप्त, पृ० १८३, २६३, ३४३, ३६५ ।  
 चन्द्रसेखा, पृ० १८३ ।  
 चन्द्र, पृ० ३८८, ३८६ ।  
 चन्द्रापीठ, पृ० २०८, २१०, ३६४ ।  
 जम्बा (जह्ममर्तुता), पृ० ४१३ ।  
 बादर अवाली विवाह, पृ० २३३ ।  
 बारदस, पृ० ३५८, ६६४ ।  
 बिस्तरय, पृ० ११४ ।  
 बिस्वमाहन, पृ० १६३ ।  
 भित्ता, पृ० ८३ ।  
 बिर्जगदा, पृ० २५, १६३, ३८८ ।  
 चित्तसलराज (सम्पा० मै० गव० ओरि० ला०), पृ० ३४, ४२ ।  
 चिन्तामणि चिन्तामक वैद्य, देखिये वैद्य, चिन्तामणि ।  
 चीन में सती प्रथा, पृ० ३५५ ।  
 चीमंज, पृ० २६० ।  
 ज्योत, पृ० ११०, ३६१ ।  
 क्षत्तीमगक (तलाफ), पृ० २६६ ।  
 क्षान्द्याम् उपनिषद्, पृ० २६, ३६, ६०, ३११ ।  
 छांटा नागपुर (श्वानुज विमाह) पृ० ६६ ।  
 छाह-चिट्ठी तलाफ, पृ० २६७ ।  
 जटिला गौनमी, पृ० ४०६, ४०७ ।  
 जदमी जाति (हीरांगामाद), पृ० २६६ ।  
 जनक, पृ० २८३ ।  
 जगदमि, पृ० ३०, ११४ ।  
 जमोरिन, पृ० २२६ ।  
 जम्भू (तलाफ), पृ० २६७ ।  
 जयचन्द्र, पृ० १७४, ३६६ ।  
 जयचन्द्र देव, पृ० ५१ ।  
 जयदत्त, पृ० १७४, ३८७ ।  
 जयराम (टीका. पार. गृहसूत्र), पृ० २४५ ।  
 जयसिंह द्वितीय, पृ० ३४६ ।  
 जयकाश, पृ० १७, ६२, २६७, २६८ ।  
 जयसंघ, पृ० ३८७ ।  
 जयिता, पृ० ६२ ।  
 जमनी, पृ० १२०, ३१२ ।  
 जगन्नाथ सिंह, पृ० ३६६ ।  
 जस्टीनियन का नियम, पृ० २१८ ।  
 जावक (कायेल) पृ० ३७६ ।  
 जाति चिह्नवाद (टोटेनिग्म), पृ० ६३ ।  
 जातिभेदके उत्पादक हेतु, पृ० १०६-११० ।

- जाति भास्कर, पृ० १३१।  
जाति विवेक, पृ० १३०।  
ज्ञान धामस, पृ० २६६।  
ज्ञान सम्बन्ध, पृ० १७७।  
आकाशोपनिषद्, पृ० ११।  
आयसवात, पृ० १६८।  
आमा, पृ० २७५।  
आली, पृ० २३, २५, १७६, ३७३।  
जिलिन, पृ० २।  
जेतोफिट्टेड, पृ० १२१।  
जैनसमापण, पृ० ८३।  
जैन साहित्य में आत्मिक विवाह, पृ० ८३।  
जैमिनि, पृ० ६, १३, १४, १६१, ३५६।  
जैमिनीय बृहस्पृज, पृ० ३०७।  
जोक्तसन, पृ० १८६।  
जोगेन्द्र नाथ भट्टाचार्य, पृ० ७८।  
जोनसार नावर (बहुभर्तृ प्रथा), पृ० ४१२, ४१३, ४१४, ४१७, ४२०।  
ज्योतिस्तत्त्व, पृ० १५३।  
ज्वालाप्रसाद मिश्र, पृ० १३१।  
डाइम्ब, पृ० ३६६।  
डाब, पृ० १२६, १३४, २८३।  
टिपरा, पृ० १२८।  
टिहरी गढ़वाल (बहुभर्तृता), पृ० ४१२, ४१४।  
टीकाकार और सपिण्धता का नियम, पृ० ८८।  
टीकाकारों के गौतम सम्बन्धी विचार, पृ० ६५-६६।  
टीर्नमिस्टर, पृ० ३२५, ३६४, ३६५।  
टोटम का संछिनवाकी गीत, पृ० ७०-७१।  
टोटमवाद (जातिविह्वलवाद), पृ० ३३।  
टोटेमिज्म एण्ड एन्सोरोमी (फैजर), पृ० ७०।  
टोडा जाति (तोलमिरि वासी), पृ० २०, ५७, ४०८, ४१२, ४१७, ४१६।  
ट्रेन्ट की परिपक्व, पृ० २६३, २६६।  
उशन (केरल-बहुभर्तृ प्रथा), पृ० ४०८, ४१२, ४१४, ४१७।  
उत्तुरवास भार्गव, पृ० १३६।  
उद्योगितियस, पृ० १७६।  
उद्भिन्, पृ० ४१८।  
दुर्गोदस, पृ० १६, ३६।  
द्विद्वानमी, पृ० १७४।  
द्वेयोडा जाति, पृ० २०।  
दी घूट, पृ० ३५५।  
द्वैतवार्तिक (कुमारिल भट्ट), पृ० ८३, ६१, ६२, ४०६।  
दत्तात्रेय का विवाह विच्छेद, पृ० २८६-३०५, इसका आवेदन पत्र देने की अवधि, पृ० ३०३; इसकी व्यवस्था का विरोध, पृ० ४३६; देखिये विवाह विच्छेद।  
दारा, पृ० ३३६।  
दारापीड, पृ० २१०।  
दालिकेट्ट, सम्बन्धम् विवाह, पृ० २२७।  
दाहिटी, पृ० १२०।  
दम्बत (बहुभर्तृता), पृ० ४०८, ४१४, ४२०।  
दिव्यरक्षिता, पृ० ३६५।  
दीर्घविरोध, पृ० ३१३।  
दुकाराम, पृ० ३६३।  
दुष्यन्त, पृ० ८४।  
दीर्घरीय उपनिषद्, पृ० ६०, ३०६।  
दीर्घरीय ब्राह्मण, पृ० ६, १५, ३६, १४०, १४५, २३६, २४२, २६७, २७४,

- संतिरीय संहिता, पृ० १२, १४, १५, ३६, ४३, ४५, ४६, २१२, ३७८, ४०४।  
 स्पृष्टन जाति, पृ० १७४, १७६, १८६।  
 त्रित, पृ० ३७७।  
 शिराज अत या विवाहीतर संयम, पृ० २४७।  
 जैलोकसर्ग, पृ० ५१।  
 वेदीगामा, पृ० २७५, २७७, २८८, ३२०।  
 वसंतन, पृ० ७०, ७२, ७३, ७५, १३१।  
 वस, एन० के०, पृ० १११।  
 वसमन्ती, पृ० १८२, १८४, ३४०, ३७७, ३६५।  
 वयानन्द सरस्वती, पृ० ३३०, ३७५, ३५२, ३७७।  
 वरद जाति (बहुभर्तृ प्रथा), पृ० ४१२।  
 वर्ण प्रष्टि, पृ० ४०।  
 वरपर, पृ० १६३, ३१६, ३७६, ३८५।  
 वहेज निषेध कानून (१६६०), पृ० २२४।  
 वहेज प्रथा, पृ० २१५-२२४, ३२८; इसके उपयोगी कार्य, पृ० २२२; ग्राम सौत में, पृ० २१८; कुण्डरिणाम, पृ० २२०-२२२; प्रचलित होने के कारण, पृ० २१६; बन्द करने के उपाय, पृ० २२३।  
 वर प्रजापति, पृ० ३८८, ३८६।  
 वलस्मृति, पृ० २७८।  
 वक्षिण अमेरिका, पृ० १७५।  
 वक्षिण तथा उत्तर भारत की परिवार श्रद्धा के भेद, पृ० १०३।  
 वक्षिण भारत के विवाह, पृ० २२७।  
 वक्षिण भारत में बहुभर्तृता, पृ० ४१२।  
 वक्षिण भारत में सती प्रथा, पृ० ३६१।  
 वामोदर धर्मानन्द कौसम्बी, पृ० ३४, ६२, ६३।  
 दाम्पत्य अधिकार, २६७; इसकी पुनः प्राप्ति, पृ० २८२; इसमें विधमता की समाप्ति, पृ० ४६१।  
 दाम्पत्य कर्तव्य, पृ० २७३-८५।  
 दाम्पत्य सम्बन्ध की न्यूनतम अवस्था, पृ० ३२६, ३३०।  
 दाय भाग, १६६; इसकी अवस्था, पृ० ३६७।  
 दारपरिग्रह, पृ० ७।  
 दिति, पृ० ८४।  
 दिधिषू, पृ० १५५।  
 विनोदास, पृ० २४, ३६२।  
 दिव्यावदान, पृ० ३६५।  
 दिष्ट ताभास, पृ० १२३।  
 दीधनामिनी, पृ० ८३।  
 दीनिकाय, पृ० १३१।  
 दीगिका, पृ० १५६।  
 दीर्घतमा, पृ० २२, १११, ११६, २७८, २८८, ३४०।  
 दीवाना विवाह, पृ० ७८, २३५, २६६, २७०; इसका स्वरूप, पृ० २७१।  
 दीवाना विवाह के कानून का इतिहास, पृ० २७०।  
 दी हिन्दू कैमिनी इन इट्स अर्बन सैटिंग (रास), पृ० ३६३, देखिये रास, एलीन।  
 दुआत वरवीसा, पृ० ३६३।  
 दुर्माधन, पृ० १२२, १७३, ३४१, २८६।  
 दुर्गता, पृ० ३८७।  
 दुष्यन्त, पृ० २००, २०१, २०२, २०६, २६६, २७७, ३६४, ४३२।  
 दूतघटीकच (भास), पृ० ३५८।  
 दूतवापय (भास), पृ० ३७४।

- देवणा भट्ट, पृ० ६७, ८८, ८२, ८३, ८४, ३४४, ३५६ ।  
 देवदास माधो, पृ० १४० ।  
 देवमानी, पृ० ११४, ११६, २६६, ३२०, ३६५ ।  
 देवर, पृ० ३७२ ।  
 देवराज, पृ० ३६, २४८ ।  
 देवल स्मृति, पृ० ३८४, ३६३ ।  
 देवसेना, पृ० १२७ ।  
 देविका, पृ० ३८७ ।  
 देवी चौधराजी (बंकिमचन्द्र), पृ० ३६८ ।  
 देवी भागवत, पृ० १८ ।  
 देवेन्द्र बाबु, मद्रास, पृ० २७० ।  
 देशस्व साधुगण (कर्मा.), पृ० ६४ ।  
 देशी ईसाई विवाह भंग कानून, पृ० २६७ ।  
 देशाई, जी० बी०, पृ० ४२१, ४४१ ।  
 देश विवाह, पृ० १६४, २१३, २२४ ।  
 इतिह जालिमों में बाल विवाह, पृ० २१७ ।  
 हुपद, पृ० १८४, २१६, ३८८, ४०५, ४०६ ।  
 शोणपर्ब (महाभारत), पृ० १७३, २६१ ।  
 शोण सुत, पृ० १२२ ।  
 शोणाचार्य, पृ० ३५८ ।  
 शीपरी, पृ० २३, १४६, १३०, १७२, १७३, १७४, १८३, १८४, १८५, २४१, ३१६, ३४२, ३८७, ३६०, ४०४, ४०५, ४०६, ४०८, ४१७ ।  
 शीपरी की बहुभर्तृता के कारण, पृ० ४०६ ।  
 शिरागमन, पृ० ३२६ ।  
 श्रद्ध सामाजिक संमेलन, पृ० ६६ ।  
 धनंजय सेठ, पृ० २५२ ।  
 धम्मपद, पृ० ८३, १८२, २०३, २७६, ३२१, ३७६ ।  
 धम्मपद की टीका, पृ० २१६ ।  
 धर्मनाता, पृ० २६० ।  
 धर्म परिवर्तन, पृ० ३००—विवाह की अविवेक्यता, पृ० २६४ ।  
 धर्मशास्त्रों में गाम्भर्ष्य विवाह, पृ० २१० ।  
 धर्मशास्त्रों में बहुभर्तृता, पृ० ४०६ ।  
 धर्म सिन्धु (काशीनाथ) पृ० ६८, ६४, ६६, ६७, २५४, २५५, ३६२ ।  
 धर्मसूत्रों में—गुप्तविवाह, पृ० २८७; बाल विवाह, पृ० ३१०, विधवा विवाह, पृ० ३३६; सगोत्र विवाह, पृ० ४२; अपिण्डता का नियम, पृ० ८४ ।  
 धारिणी, पृ० ३६३ ।  
 धार्मिक विवाह, पृ० २६६ ।  
 धीरेन्द्र नाथ मजूमदार, पृ० ४१३ ।  
 धृतराष्ट्र, पृ० ११३, ३६६, ३८६, ३६० ।  
 धृष्टद्युम्न, पृ० १८४, ४०६ ।  
 धौम्य, पृ० १७४ ।  
 ध्रुव, पृ० ३८५, ३८६ ।  
 ध्रुवसेन मिश्र, पृ० २४४, ३७८ ।  
 ध्रुवदेवी, पृ०, ३४३, ३६५ ।  
 ध्रुवमंद, पृ० १२८ ।  
 ध्रुवसेन तृतीय, पृ० १८३ ।  
 ध्रुवस्वामिनी, पृ० २६३; देखिये ध्रुवदेवी ।  
 नई जालिमों के कानूनों के कारण, पृ० १३२ ।  
 नकुल, पृ० ३८८ ।  
 नगरीकरण, पृ० ४३६ ।  
 नमिका, पृ० ३०६, ३११ ।  
 नन्दजातक, पृ० ३४० ।  
 नन्द (मनुस्मृति का टीका०) पृ० ११८, ३४१ ।  
 नन्द पंडित (टीका० विष्णुस्मृति), पृ० १८६ ।

- सम्बन्धी विवाह, पृ० २३१।  
 सप्त, पृ० १८२, ३४०, ३६५।  
 सप्त दमयन्ती उपाख्यान, पृ० १८२, ३३६।  
 सागरज ऐरावत, पृ० ३४०।  
 साकेत का सप्त, पृ० १५३।  
 सातवें विवाह, पृ० २३३।  
 साध, पृ० १२०।  
 सानसेन, पृ० ५८।  
 सागर (केमल), पृ० ४१०, ४२०—  
 बहुभर्तृता, पृ० ४१०।  
 सारद स्मृति, पृ० ६४, ६६, ८८, ६३,  
 ११६, १४७, १४६, १५१, १५४,  
 १५७, १६०, २१२, २४८, २७८,  
 २८३, २८४, २६३, २६४, ३०१,  
 ३७०, ३७१, ३७३, ३८२, ३८३,  
 ३८४।  
 सारावण (टीका० आश्वलायन), पृ० ११८,  
 २४७।  
 सागमणीय तैत्तिरीयोपनिषद्, पृ० ३५४।  
 सिकोलो कीष्टी, पृ० ३६३।  
 सिमि, पृ० ११४।  
 सिन्धो, पृ० २३, ८४, ३३६, ३६८-३७५;  
 इसका विरोध तथा लुप्त होना, पृ०-  
 ३७३, निमग्न, पृ० ३६६-७१; प्रबलित  
 होने के कारण, पृ० ३७२; स्वरूप, ३६८।  
 सिन्धो, पृ० ३६६।  
 सिद्ध, पृ० १, ८१, ११५, १५६, ३७२।  
 निर्णयसिन्धु (कमलाकर भट्ट) पृ०  
 ३३, ३७, ६८, २५५, २५६।  
 निर्धारित विवाह, पृ० १२६।  
 निषिद्ध पीडियाँ, पृ० १०७।  
 नीचो, पृ० ११०।  
 नीची जातियों में तलाक प्रथा, पृ० २६६।  
 नीलकण्ठ (महाभारत का टीका०), पृ०  
 ४०६।  
 नेवार जाति (नेपाल), पृ० २६७।  
 नेस्फिल्ल, पृ० १०६, १२०, ३१६।  
 नेपाल में तलाक प्रथा, पृ० २६७।  
 नेपोलिमन, पृ० २१८।  
 नेपथीय चरित, पृ० ११५, ३६५।  
 नीडोवेसीस जाति, पृ० १८६।  
 पंचगौड़, पृ० १३३।  
 पञ्चविंशब्राह्मण, पृ० १११।  
 पञ्चवीन अज, पृ० २८६।  
 पञ्चाय में बहुभर्तृता, पृ० ४१३।  
 पट्टिपिट्ट का मिलापेय, पृ० १६७।  
 पतञ्जलि, पृ० ५४।  
 पति का मुख्य कर्त्तव्य: पत्नी का पालन,  
 पृ० २७८।  
 पति द्वारा पत्नी को दण्ड देने का अधिकार  
 पृ० २८२।  
 पतिव्रता के कर्त्तव्य, पृ० २८०।  
 पतिव्रता ब्रह्म पत्नीव्रत, पृ० २८१।  
 पत्नी की व्युत्पत्ति, पृ० २७४।  
 पत्नी द्वारा तलाक प्राप्त करने के कारण,  
 पृ० ३०३।  
 पत्नी प्राप्ति के नियम, पृ० ७।  
 पशुमेधा, पृ० १८१।  
 पद्ममूर्ति, पृ० २२८।  
 पद्मपुराण, पृ० १०, १६५, ३६१, ३६२।  
 पद्मशोक, टी० श्री०, पृ० ४२०।  
 परमुराभ, पृ० ३६६।  
 परमुराभ भाऊ पटवर्धन, पृ० ३४६।  
 परस्पर समीक्षण, पृ० २४०।  
 परस्पर द्वेष के आधार पर तलाक (मोक्ष)  
 का अधिकार (कीटिल्य), पृ० ३६०।

- परास्तर महीषि, पृ० २५, ११३ ।  
 परास्तर स्मृति, पृ० ६५, ८२, ८८, ८३,  
 ११६, १५७, २६३, ३६६, ३०१,  
 ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३४३,  
 ३५८, ३६०, ३७४ ।  
 परास्तर नाथमीय, पृ० ८८, ११७, १२८,  
 ३५६; देखिये माघय ।  
 परिनिवृत्ति, पृ० १५० ।  
 परिवृत्ता, पृ० ३७८ ।  
 परिवेष्टा, पृ० १५० ।  
 परिवेदन, पृ० १४६; इसके कारण, पृ०  
 १५१ ।  
 परीक्षित, पृ० ३२० ।  
 मनु-गणेशा ब्राह्मण आछिनात्मक गोष्ठों के  
 नाम, पृ० ६२ ।  
 पश्चिमीकरण, पृ० ४३६ ।  
 पाट (महाराष्ट्र), पृ० २६८; इसके कारण,  
 पृ० २६८ ।  
 पाटलिपुत्र, पृ० ३२१ ।  
 पाणिग्रहण, पृ० २४१ ।  
 पाणिनि, पृ० ६, ३५, ३६, ८६, २७४ ।  
 पाण्ड्यदेश (मदुरा, तिमिवली जिले),  
 पृ० ३२१ ।  
 पाण्ड्य, पृ० ११३, १८२, १८२, ३५७,  
 ३६६, ३७०, ३८६ ।  
 पातिश्रव्य का आवास तथा माहात्म्य,  
 पृ० २८० ।  
 पात्न्य, पृ० ११८, ११६ ।  
 पारसकर गृह्यसूत्र, पृ० ५३, ११६, १२६,  
 २३६, २३७, २३६, २४०, २४३,  
 २४४, २४५, २४८, २५१, २५४, ३०८,  
 ३७८ ।  
 पातागली, पृ० ३७८ ।  
 पितृमुलक सपिण्डता, पृ० ६६ ।  
 पितृमेघ सूक्त, पृ० ३३६ ।  
 पिप्पली माण्यक, पृ० २४६, २५०, ३२० ।  
 पीटर, पृ० ४०३, ४०८, ४१०, ४१२,  
 ४१३, ४१४, ४१६, ४१७, ४१८,  
 ४१९, ४२० ।  
 पीटर मण्डो, पृ० ३६६ ।  
 पीढ़ी बेला बाले, पृ० ३६५ ।  
 पुण्डरीक, पृ० २०८ ।  
 पुनर्भू, पृ० २६३, २६४ ।  
 मुगविवाह, पृ० २६२, २६३; इसका  
 अधिकार, पृ० ३०१, ३६४ ।  
 पुरु, पृ० ३८५ ।  
 पुरुरवा, पृ० २०६, २६६, ३६३ ।  
 पुरुषोत्तमवास, टंडन, पृ० ४३० ।  
 पुरुषोत्तम पंडित, पृ० २६, ३१, ३३, ६७ ।  
 पुलोमा, पृ० ६५ ।  
 पुष्यमित्त, पृ० २२५, २६१ ।  
 पूर्वमध्ययुग केलरण विवाह, पृ० ३२५ ।  
 पृथुश्रवा, पृ० १७ ।  
 पृथ्वीराज चौहान, पृ० १७४, १८३,  
 ३२५, ३६५ ।  
 पृथ्वीराज रासो, पृ० १७४, ३६५ ।  
 पेन्जर, पृ० ३५५, ३६४ ।  
 पेसवा, पृ० ३४६ ।  
 पैटीमसि, पृ० ६१, ६२, १०७, ३६१ ।  
 पेंतुषसेमी, पृ० ६५ ।  
 पैसाच विवाह, पृ० १६४, १६५, १६६,  
 १७६ ।  
 पोमराय, पृ० २० ।  
 पीनमेय पति, पृ० २६४ ।  
 पीथीमास इष्टि, पृ० ४० ।  
 प्रवेता, पृ० ४०६ ।

- प्रणय विवाह, पृ० १६८, १६८, २०४, पृ० २६१।  
 ४३०, ४३२।  
 प्रतर्दन, पृ० ३६२।  
 प्रतापसिंह, पृ० २६५।  
 प्रतिभातुम्भ विवाह, पृ० ६६।  
 प्रतिमाविवाह, पृ० २५५।  
 प्रतिसोम विवाह, पृ० १३८।  
 प्रतिज्ञादीयधरायण (भाष), पृ० २०४।  
 प्रद्युम्न, पृ० ८३, ६५, ३८७।  
 प्रद्वेगी, पृ० २७८, २८८, ३४०।  
 प्रभाकरवर्धन, पृ० १४६, ३५८, ३६०।  
 प्रभावती गुप्ता, पृ० १२७।  
 प्रमदरा, पृ० २५१।  
 प्रमाण, पृ० ३६६।  
 प्रवर, पृ० ३०, ४०, ४६—ऐतिहासिक  
 विकास की अवस्थाएँ, पृ० ३७; युगों की  
 स्वतंत्रता, पृ० ८५ वर्गीकरण, पृ० ३१।  
 प्रवर-दर्पण (कमलाकर भट्ट), पृ० ३४।  
 प्रवर पद्धति के वैदिक निर्देश, पृ० ४३।  
 प्रवर मंत्रदी, पृ० ३०, ३३, ४१, ४३, ४६,  
 ५०, ५२, ५६, ६२, ६७, ६८, १।  
 प्रणोपनिषद्, पृ० ३६।  
 प्राचीन भारत में सामयिक सा सशर्त  
 विवाह, पृ० २६७।  
 प्राजापत्य विवाह, पृ० २१३, २२५।  
 प्रादेशिक गोल, पृ० ७३।  
 प्रियदर्शिका, पृ० ३६५।  
 प्रियवत, पृ० ११४।  
 प्रिह्तिस्तारिक एण्टीक्विटीज ऑफ दी  
 आर्यन पीपल, पृ० २५५, देखिये आडर।  
 प्रेतविधि, पृ० ८६।  
 प्रेसकाट, पृ० २०।  
 प्रोमितपतिका के नियम (कोटिल्य),  
 प्रोमित पत्नी, पृ० १८७।  
 कर्माओ लोप्ता व कारतन हेदा, पृ० ४१०।  
 फूलमणि, पृ० ३२६।  
 फारे, पृ० २६२।  
 फोस, पृ० १२०।  
 फोवर, पृ० ७०, ७१, १०५।  
 पलोड (कार्पस इन्स्ट्रुक्शनम इडिकेटरम),  
 पृ० १६७।  
 बंकिम चन्द्र, पृ० ३६८।  
 बंगाल के कुलीन विवाह, पृ० ३६७।  
 बलाभुर, पृ० ३२०।  
 बजिरा, पृ० ८३।  
 बड़ौदा प्रदेश (तलाक), पृ० २६७।  
 बनर्जी, मुकदास, पृ० १४६।  
 बम्बू जातक, पृ० ३७६।  
 बभ्रुवाहन, पृ० ३८८।  
 बर्गोनी का नियम, पृ० १२०।  
 बर्नाडि मा, पृ० ३६६।  
 बनिवट, पृ० ३६४, ३६५।  
 बलराम, पृ० २१६।  
 बलि, पृ० ३७०।  
 बलिगा जाति (आग्नेय प्रदेश), पृ० ७२।  
 बलालसेन, पृ० ३६७।  
 बहरामजी मल्लावारी, पृ० ३३०, ३५२।  
 बहिर्विवाह, पृ० ५८, ५६: —गोल और  
 प्रवर, पृ० २८-७६; सपिण्डता पृ०  
 ८०-१०७।  
 बहिर्विवाही नियम, पृ० ७, २८; —वर्ग,  
 पृ० २८।  
 बहुपतित्व, पृ० ३७६।  
 बहुपत्नीपति प्रथा, पृ० ४१७।



बहुभर्तृता, पृ० २२६, ३७६, ४०३-४२०;  
इस प्रथा के अवलित होने के कारण,  
पृ० ४१४; आधिक कारण, पृ० ४१७;  
ऐतिहासिक कारण, पृ० ४१७; जनसंख्या  
सम्बन्धी कारण, पृ० ४१८, ४१९;  
समाजशास्त्रीय कारण, पृ० ४१८, ४२०;  
दक्षिण में, पृ० ४१२; धर्म शास्त्रों में,  
पृ० ४०६;

बहुभार्यता, पृ० २२६, ३७६-४०२;  
४१७; कौटिल्य के अवैवास्त्र में, पृ०  
३८१; धर्मसूत्रों में, पृ० ३८०; महा-  
भारत में पृ० ३८६; शौर्यपुराण में,  
पृ० ३६५; रामायण में, पृ० ३८६;  
स्मृतियों में, पृ० ३८२।

बहुविवाह, पृ० ३७६, ४४३; इसके संकेत,  
पृ० ३७७।

बाइबल (जिनोसिथ), पृ० १५५, १८८।  
बाणभट्ट, पृ० १२७, १४१, २०८, २१०,  
२१६, २४६, २४३, ३२२, ३५६,  
३६४।

बाबरामण, पृ० १३।

बार्तमट्टो टीका, पृ० ५६, ६१, २२६।

बार्तविवाह, पृ० १३६, २१६, २१८,  
२७४, ३०६, ३३५, ४२७; इसके

उद्गम का कारण, मुसलमानों के हमले,  
पृ० ३१७; अन्य कारण, पृ० ३२३;  
मुख्य कारण : स्त्रीशिक्षा का अभाव,  
पृ० ३१३; बीछ साहित्य में, पृ० ३२०;  
महाभारत में, पृ० ३१६; भीष्म युग में,  
पृ० ३२१; रामायण में, पृ० ३१८।  
बालविवाह निषेधक कानून (१९२६),  
पृ० ३३०।

बालि द्वीप (सली प्रथा), पृ० ३५५।

बाली, पृ० ३३६।

बिम्बसार, पृ० ३७६।

बिन्दुण, पृ० १०३।

बोजी, पृ० ३६६।

बी० राम० आष्टे, पृ० ३७६।

बृहक प्रथम, पृ० १२८।

बुद्ध, पृ० ३७६।

बुद्धचर्या, पृ० ३८०, ३८१।

बुद्धरतित, पृ० २४८।

बुधमिह (धृती), पृ० ३६१।

बुहल्ल, पृ० ११८।

बृहत्पराशर, पृ० १४७।

बृहत्संहिता, पृ० १५६, ३५८।

बृहदारण्यक उपनिषद्, पृ० ३, ३६, ५४,  
३७६।

बृहदेकता, पृ० ५५, १११, २२५, ३६१।

बृहदयम स्मृति, पृ० ६६, ११६, ३२२।

बृहदारण्यक स्मृति, पृ० १२६।

बृहस्पति स्मृति, पृ० १६, २६, ६५, १२५,  
१२६, ३२६, ३४४, ३५८, ३७४,  
४०६।

बैटिक, विसिमम, पृ० ३४६।

बैकमान हेडविंग, पृ० १५७, १५८, ४८०।

बोरनैत, पृ० २१।

बीछ काल में बहुपत्नीविवाह, पृ० ३७६।

बीछ प्रथा में वहेज की प्रथा, पृ० २१६;

विधवाविवाह, पृ० ३४०।

बीछ साहित्य में सांधवे विवाह, पृ० २०३-  
२०४; बहुभर्तृता, पृ० ४०८; भ्रातृव्य  
विवाह, पृ० ८३; श्वशुरवह संघर्ष,  
पृ० २७५; स्वयंवर विवाह, पृ० १८२।  
बीषावन धर्म सूत्र पृ० १२, २४, २६, ३०,  
३१, ३२, ३३, ४१, ४६, ४७, ४८,



मत्स्यपुराण, पृ० ३६, ५४, ११३, ११४,  
१३१, २५६ ।

मदनपाल, पृ० ३८६ ।

मदिना जाति, पृ० ७२ ।

मद्रवेश, पृ० २५० ।

मद्रास महामत्तकधायम् एषट, पृ० २३०,  
४११ ।

मधुपर्क विधि, पृ० २३७ ।

मधुपिण, पृ० ८४ ।

मध्य अमरीका, पृ० १२० ।

मध्यकाल में विधवाविवाह प्रचलित होने  
के कारण, पृ० ३४५ ।

मध्यकालिक वैवाहिक विधियाँ, पृ० २५३ ।

मध्ययुग में—अन्य देशों में बालविवाह,  
पृ० ३२६; बहुभार्यता, पृ० ३६५;  
बालविवाह के प्रचलित होने के कारण  
पृ० ३२७; सविम्बता के विविध प्रकार  
पृ० ६५-६८ ।

मनु द्वारा नियोग की कड़ी निन्दा, पृ०  
३७४ ।

मनुस्मृति, पृ० ६, ११, १२, १६, २७, २८,  
३६, ५५, ५६, ५७, ६३, ६४, ६५,  
८६, ८७, ८८, ८९, ११२, ११६, ११७,  
११८, १२३, १२४, १२५, १२६,  
१३०, १४४, १४५, १४६, १४७,  
१४८, १५०, १५१, १५२, १५४, १५६,  
१५७, १६४, १६६, १६७, १७०,  
१७५, १८६, १८७, २११, २१३,  
२५८, २६१, २६२, २७५, २७८,  
२७९, २८०, २८२-४, २८६, २८९-२,  
२९५, ३१०, ३१२, ३१५, ३२३,  
३४१-३, ३४७, ३५८, ३६६, ३६७,  
३६८-७१, ३७४, ३८२-४, ३८२ ।

मनुषी, पृ० ३२५, ३६४ ।

मन्यपाल, पृ० ६२ ११३, १२५ ।

मयूरभार्य, पृ० १२७ ।

मरणोत्तर अर्णव, पृ० ५७ ।

'मरती-जीती' का शीर्ष, पृ० २६७ ।

मरीचि, पृ० ३२२ ।

महामत्तकधायम् एषट देखिये मद्रास का मह-  
मत्तकधायम् एषट ।

मच्छेष्ट, के० टी०, पृ० ४२१, ४२३-६,  
४२८, ४३०-३१ ।

मलाबार (बहुभार्यता), पृ० ४१० ।

मलाबार का एषट कस्टम,

पृ० ४१० ।

मलाबार विवाह कमीशन, पृ० ४११ ।

मलाबार विवाह कानून, पृ० २३०,  
४११ ।

महात्मा गांधी, पृ० ४४० ।

महादेव गोविन्द रानाडे, पृ० ३३०, ३५२

महानिर्वाणतन्त्र, पृ० १६५, २८३, ३५६ ।

महापद्मनन्द, पृ० ३६५ ।

महाभारत, पृ० ५, १२-५, १८-६,  
२२, २४, २५, २६, ३३, ५१, ५४,  
६२, ८२, ८३, ११२-४, ११६,  
१२२-३, १२५, १२७, १४८, १५२,  
१५६, १६४, १६६, १६८, १७३-५,  
१८२, १८४-१८७, १८२-४, २००,  
२०३, २०६-१०, २१४-६, २५०-१,  
२६७-८, २७५, २७७-८, २८३-४,  
३१६-२०, ३२३, ३३६-४०, ३४२,  
३६६-७०, ३७३, ३८६-७, ३८८-  
८२, ४०४, ४०७; मागधर्व विवाह;  
हुष्यन्त-शकुन्तला, पृ० २००-२०२,  
वैवाहिक विधियाँ पृ० २५१ ।

- महाभारत में—आमुर विवाहों के उदाहरण, पृ० १६२, तलाक, पृ० २८८, दहेज, पृ० २१५, आत्मत्य कर्तव्य, पृ० २७७, नियोग के उदाहरण, पृ० ३६६, वतुभार्यता, पृ० ४०४, आतुष्य विवाह, पृ० ८२, विधवा विवाह, पृ० ३३६, सती प्रथा, पृ० ३८४।
- महाभारत, पृ० ३८४।
- महाभाषा, पृ० ३७६।
- महावश, पृ० ८३।
- महाश्वेता, पृ० २०८, ३२२।
- महिषास, पृ० १११।
- महिषी, ३७८।
- मदन धारिजात, पृ० ३५६।
- महेश्वर, पृ० ३६१।
- माग और मुक्ति का नियम, पृ० १६०।
- माटेयु र्चन्सफोर्ड सुधार, पृ० १३६।
- माघ, पृ० ३६४।
- माण्डव्य, पृ० ११३, २८६।
- मातुलकन्या परिणय, पृ० ६२, इसके द्वेष, पृ० ६२।
- मातृगुप्त, पृ० १२८।
- मातृवत्ता, पृ० २४७, ३०६।
- मातृमूलक सपिण्डता, पृ० ६६।
- मातृसत्ताक बहुभर्तृता, पृ० ४१२।
- मात्री, पृ० १६२, ३५७, ३८६।
- माधव (पराशर स्मृति टीका), पृ० ६६, ६७, ६८, २०८, ३२५, ३४३, देखिये पराशर माधवीय।
- माधवी, पृ० २४, ३४२।
- माध्व, पृ० १३५।
- मानव गुह्य सूत्र, पृ० ४६, ५०, ५३, ११६, १५४, १६५, २३८, २३६, २५०।
- मामा, पृ० ३७६।
- मारीशस, पृ० १२०।
- मार्कण्डेय ऋषि, पृ० १८७।
- मार्कण्डेय पुराण, पृ० ११, १७, १२३, २७५।
- मार्गरेट कौरमैन, पृ० ३५२।
- मार्सनेटिक विवाह, पृ० १२६।
- मार्टिन, पृ० २६६।
- मार्शल, पृ० २०।
- मालती, पृ० २०८, २०६, ३२३।
- मालती माधव, पृ० २०८, २०६, २४६, २५०, ३२१।
- मालविषा, पृ० १२७, ३२१, ३६३।
- मासविकागमिमत, पृ० १२७, ३६३।
- मितावरा (विज्ञानेश्वर), पृ० ५१, ६६-६७, ६९, १५५, १७१, २८१, २८३, ३५६, देखिये विज्ञानेश्वर।
- मितमिश्र, पृ० १, ६८, ६४, ६५, ३२५, —मातुलकन्या परिणय विरोध पृ० ६४।
- मिश्रीलोगों में सती प्रथा, पृ० ३५५।
- मीमांसादर्शन, पृ० १६१,—सर्वर भाष्य, पृ० १६१।
- मुकुन्दी लाल, पृ० ४१४।
- मुडा जाति, पृ० ७२, ११०।
- मुस्तकी, पृ० ३६६।
- मुस्लिम सासकी द्वारा सती प्रथा का विरोध, पृ० ३६१।
- मुहम्मद तुगलक, पृ० ३६१।
- मुहूर्त चिन्तामणि, पृ० १५६।
- मूर्धामिश्रक, पृ० २४४।
- मूल पुरुष, पृ० ६१।
- मूल पुरुषवाची गौत्र, पृ० ७२, ७३।
- मूसा, पृ० १२१, १७५।

- मृच्छकटिक, पृ० ३५८, ३६४।  
 मेगस्थनीज, पृ० २१४, ३२१, ३५६, ३६५।  
 मेगस्थनीज का भारतवर्षीय विवरण, पृ० ३६५।  
 मेघातिथि, पृ० २, ५१, ६३-६५, ६६, ८७, ८६, ६२, ११७, १२८, १२९, १५१, २११, २६२, ३२३, ३४१, ३८३, ३८८, ३९६; गौतम शास्त्र की व्याख्या, पृ० ३६; विवाह मे मान्यता परितार का विचार, पृ० ६५।  
 मेन, सर हेनरी, पृ० २०, ७६, १२०, १७१, २१७, २७१, ४१८।  
 मेयर, पृ० २४, २७।  
 मेलन, पृ० १५७, १५८।  
 मेलापक देखिये मेलन।  
 मैकडानल, पृ० ८१, ४३६।  
 मैकलीनाम, पृ० ५८, १७७, ४१८।  
 मैक्स मूलर, पृ० ३८, ४२; गौतम सम्बन्धी कल्पना, पृ० ३८-६।  
 मैण्डेस्ते, पृ० ३६४।  
 मैत्रायनी संहिता, पृ० ४३, ११२, १६१, ३७८।  
 मैलेयी, पृ० ३७६।  
 मैरिज ऑफ़ लुभेटिक्स एक्ट, पृ० १४८।  
 मैरिज एण्ड फॅमिली (कापडिया) पृ० ३३२।  
 मैसूर, पृ० ४३२, ४३७।  
 मीचनघन, पृ० ३६०।  
 मोमियर बिलियमज, पृ० ३५५।  
 मोरक्की, पृ० १२१।  
 मोर्रेगुस में व्यवहार्यता, पृ० ३६५;—वात-विवाह, पृ० ३२१।  
 मौसी की लठकी से विवाह के निषेध के कारण, पृ० ६६।  
 म्यूरहेड, पृ० ४।  
 म्यूलर, पृ० १७८।  
 मजुर्वेद, पृ० १४, ३६, ४३, १७६।  
 मजुर्वेद, पृ० ८३।  
 ममस्मृति, पृ० ६७, १४५, १८७, १६३, २८०, ३१६।  
 मयाति, पृ० २६, ११४, ३८५-६, ३६२।  
 मणौमती, पृ० १४६, ३५८, ३६७, ३६८।  
 मणौमती, पृ० १२७।  
 मजुर्वेदों में विवाह की आवश्यकता आमु, पृ० ३१३।  
 मश पृ० ६७।  
 माकुष, पृ० १५५, १८८।  
 माती, पृ० ३१।  
 मात्क, पृ० ६१, १५६, १६१।  
 मातवलय महर्षि, पृ० ३७६।  
 मातवलय स्मृति, पृ० ६-११, २८, ६४, ६६, ७६, ८७, ८६, ६३, ११८, ११९, १२४, १२६, १३०, १४५-७, १४६, १५२, १५४, १५६, १६४, १७०, १६५, २१२, २२६, २५८, २७८, २८१, २८४, २६५, ३१२। ३४२, ३४३, ३७०, ३८२-४।  
 मूषिष्ठि, पृ० ५१, ११५, १२५-६, १४६, १६३, ३२०, ३८७, ३६०, ४०४-७। मुगुस्त, पृ० ३८६।  
 मुवापत्य, पृ० ३५।  
 मुत्तकोशहर, पृ० १२०।  
 मोदक देखिये मेलन।  
 मीन अनुकूलता, पृ० १४७।  
 मधुनन्दन, पृ० २५, १२६, १४६, २५८।

- रघुनन्दन भट्टाचार्य, पृ० ३४५ ।  
 रघुवंश (कालिदास), पृ० १८३, २१६,  
 २५२-४, ३६३ ।  
 रत्नशिला-कन्या, पृ० ३१२, २२२ ।  
 रत्नोदयन से पूर्व कन्या का विवाह, पृ०  
 ३२२, ३२३; इसका कारण, पृ० ३१२ ।  
 रत्नपाल मुक्त, पृ० ३०० ।  
 रत्नजीतसिंह, पृ० ३६७ ।  
 रत्नावली, पृ० ३६४ ।  
 रत्नधीति धर्म, पृ० १११ ।  
 रत्नारोहण, पृ० २४६ ।  
 रत्नाबाई सरस्वती, पृ० २७८ ।  
 रविकीर्ति, पृ० १२३ ।  
 रसेल, बर्ट्रेण्ड, पृ० २६१ ।  
 रसेल, पृ० ७०, ७२, ७५, १३१ ।  
 राइट, पृ० २८३ ।  
 राघवानन्द, पृ० ११३, ११७ ।  
 राजमोपालाचार्य, पृ० १४० ।  
 राजतरंगिणी (कल्हण), पृ० १२६, ३६०,  
 ३६४ ।  
 राजमार्तण्ड, पृ० १५६ ।  
 राजलक्ष्मी, पृ० १८३ ।  
 राजवल्लभ, पृ० ३४५ ।  
 राजशेखर, पृ० १२८ ।  
 राजसिंह, पृ० ४१८ ।  
 राजावतिये, पृ० ४१८ ।  
 राजाव गांधी, पृ० ४३४ ।  
 राजेन्द्रप्रसाद—आत्मकथा, पृ० ४२३ ।  
 राजवशी, पृ० १२७, २१६, २४६, २५३,  
 ३२२, ३२५ ।  
 राय पृ० ३७ ।  
 रायट्रि प्रिफास्ट, पृ० ३६६ ।  
 रामगुप्त, पृ० २६३ ।  
 रामचन्द्र, पृ० १८३, १८५, २५०-२१,  
 ३१८ ।  
 राम तथा सीता की विवाह के समय की  
 आयु, पृ० ३१८ ।  
 रामचरण शिपाही, पृ० १४८, २१८,  
 २१६, ३२६ ।  
 राममोहन राम, पृ० ३८४ ।  
 रामा, पृ० ११६ ।  
 रामा जाति (म्यालपाड़ा) पृ० १०० ।  
 रामायण देखिये वाल्मीकि रामायण ।  
 रामायण की वैवाहिक विधियाँ, पृ० २५१ ।  
 रामायण में विधवा विवाह, पृ० ३३६ ।  
 सती प्रथा का वृत्तान्त, विधवा, पृ० ३६७ ।  
 रामल मैजिस्ट्रेट (इंगलैण्ड, १७७२),  
 पृ० १२६ ।  
 राल्स्टन, पृ० ३५५ ।  
 रायण, पृ० ३१८ ।  
 राट्टपाल, पृ० ३८० ।  
 राट्टभुल होम, पृ० २४०, २४१ ।  
 राय, एलीन, पृ० २१, ७४, १४१, १४३,  
 १६०, १६२-३, २२०-२, ३२७, ३३२-  
 ४, ४२१, ४२६, ४२८-४, ४३१-४३६,  
 ४३८-४२ ।  
 रायस विवाह, पृ० १६४, १६५, १६६ ।  
 इसकी कानूनी विशेषता, पृ० १७५, प्रच-  
 लन के कारण, पृ० १७६, प्राचीन उदा-  
 हरण, पृ० १७२ ।  
 रिजली, पृ० ६६-७३, ७५, १०६, १३०-१  
 १६८, २१६, २२६, ३१६, ३६६, ४०० ।  
 रिवर्स, पृ० ५७, ६६ ।  
 रीफ, पृ० १२१ ।  
 रविमणी, पृ० ८३ २११, ३८७ ।  
 रदसेन, द्वितीय, पृ० १२७ ।

रेड इंडियन, पृ० ११०, १२०।

रेडो आति, पृ० ७२।

रेणु, पृ० ११४।

रेवेल, पृ० १५५, १८८।

रोचना, पृ० ८३।

रोज, पृ० ७०, १३०।

रोमन कानून, पृ० ३२६।

रोमांचक प्रेम, पृ० ४३२।

रोम हर्षण, पृ० ११४।

रोहिणी, पृ० ३२२, ३८८।

लन यन्त्र, पृ० १७८।

लघुआनवलायनस्मृति, पृ० २४४, २६१,

३४५।

लहाव (बहुभर्तृता), पृ० ४१२-४५,

४१६।

लपिता, पृ० ३८६।

ललितविस्तर, पृ० १३, २५।

लांछनात्मक गौत्र, पृ० ७२।

लाट्यायन श्रौतसूत्र, पृ० ४०, ११२।

लाजाहीम, पृ० २४२।

लावान, पृ० १५५, १८८।

लावा, पृ० २५७।

लाहोल (बहुभर्तृता) पृ० ४१३।

ली-मु-ई, पृ० ४१६।

लीह, पृ० ५५, १८८।

लुईसीनो इंडियन, पृ० १७५।

लेन, पृ० ५।

लैकान्टर, पृ० ३११।

लैको, पृ० २५।

लोकनाथ, पृ० १२८।

लोगन, पृ० ४११।

लोपामुद्रा, पृ० ११३।

लोनाथि गृह्यसूत्र, पृ० ३३, ४६, ५०।

लच्छनख जातक पृ० १३।

लज्जामुनिकोपनिषद्, पृ० ११३।

लठकूण मीप, पृ० १७६।

लट्ठागट्ठा, पृ० १८८, २३६, २५६, २६०।

लघु—इसको अयोप्यताएँ, पृ० १५५; गुण

पृ० १५२; चुनाक पृ० १५१; विदाई

पृ०, २४६; श्वमुद्रानय प्रवेश, पृ०

२४६।

लर—इसको अयोप्यताएँ, पृ० १६८,

कुल; पृ० १६५; मुन्त्र गरीक्षा, पृ०

१६७; बुद्धि और गुण, पृ० १६३;

अयोप्यताएँ, पृ० १५४; आरौरिक लक्षण,

पृ० १६७; सातगुण, पृ० १४५, स्वान्य,

पृ० १४७।

लरण स्वातन्त्र्य, पृ० ४२७, ४२६।

लर प्रेषण, पृ० २४८।

लर लघु—अमीष्ट गुण, पृ० १६२; चुनाक

के नियम, पृ० १४७; चुनाक तथा योग्य-

ताएँ, पृ० १४४-१६३; प्रायश्चित्त

परीक्षा, पृ० १६७।

लरसम्पत्, पृ० १४६।

लगाह गृह्य सूत्र, पृ० १५६।

लणिके अवान्तर भेद, पृ० १३०।

लर्तमानकाल—लाघव विवाह, पृ० २१२;

गोत्र पद्धति की विशेषताएँ, पृ० ७५-६;

गोत्रों के विभिन्न रूप, पृ० ७०; तनाक,

पृ० २६७; दहेज प्रथा के बढ़ने के कारण,

पृ० २१६; बालविवाह कम होने के

कारण, पृ० ३३२-३; आतन्त्र्य विवाह,

पृ० ६८।

लर्तमान जातियों के भेद, पृ० १३२।

लर्तमान न्यायालय और सगोत्र विवाह,

पृ० ७८।

- वर्तमान भारत में बहुभर्तृता, पृ० ४११ । ३७८, ३८७ ।  
 वसन्तसेना, पृ० ३६४ । वावाता, पृ० ३७८ ।  
 वसुदेव, पृ० ८२, ३५७, ३८७ । वासववता, पृ० २०३, २०४, २०८,  
 वसुमती, पृ० ३६४ । २१० ।  
 वसिष्ठ ऋषि, पृ० ११३, १२५ । वायुकि, पृ० २६८ ।  
 वसिष्ठ धर्मसूत्र, पृ० १२, १५, ५६, ६२, विक्रमांक चालुक्य, पृ० ३२५ ।  
 ६३, ६५, ८५, ९१, ११०, ११५, ११६, विक्रमांक देव, पृ० १८३ ।  
 ११६, १२५, १३०, १५०, १६५, १६८, विक्रमांक देव चरित, पृ० १८३ ।  
 ६, १७५, १८६, १९४, २१२, २५८, विक्रमोर्वशीय, पृ० ३६३ ।  
 २७५, २८४-५, २८७-८, २९२, २९४, विशाम, पृ० ४१०, ४११ ।  
 ३३६, ३४५, ३७०, ३७१, ३८१ । विषिक्रवीर्य, पृ० १७२, ३६६ ।  
 वस्त्रदान विधि, पृ० २३६ । विजयवाह, पृ० ४१८ ।  
 वस्तु, पृ० २१५, २१७, २२३ । विजामाता, पृ० १६१ ।  
 वाग्दान, पृ० २५०, २५८; इसका समस्तौता, विदुल भाई पटेल, पृ० १३९, १३६ ।  
 पृ० २५६; वाकान्त्यम देखिये वाग्दान । मिटरनिहल, पृ० ३७३ ।  
 वाक्स्वस्व कीमत, पृ० २६४ । मिदुर, पृ० ११३, ३८७ ।  
 वाक्सनेय, शहिता, पृ० ११२ । विधवाओं की संख्या, पृ० ३४८ ।  
 वाजिदअली शाह, पृ० ४०१ । विधवा के कर्तव्य, पृ० ३४७ ।  
 वायस, पृ० १२७ । विधवा पुनर्विवाह कानून (१८५६),  
 वात्स्यायन, पृ० १७६, २०४-८, २४०-५०, १५७, ३५०; इसका स्वरूप, पृ०  
 २४८, २६१, २६६, ३४३, ३५८, ४३२ । ३५०; कमिया, पृ० ३५१ ।  
 वात्स्यायन कामसूत्र, पृ० १६, १५२, विधवा विवाह, पृ० ३३६-३४२; इसके  
 १५४, १७१, २०४, २०७, २११; लिए ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयास,  
 देखिये कामसूत्र । पृ० ३४६, इसके लिये का पदल,  
 वात्स्यायन तथा गान्धर्व विवाह, पृ० २०४-७ । आरम्भ, पृ० ३४० तथा तीन कमिक  
 २०४-७ । अवस्थाएं पृ० ३३६; इसमें नास्तीय  
 वान विवेक, पृ० २४८ । बाघार्थ, पृ० ३४४ ।  
 वान वल्ज, पृ० ६२ । विधान परिषद, पृ० ३७, ६८-९ ।  
 वान पाणि विवाह, पृ० १२६ । विनिमय देखिये बट्टा सट्टा ।  
 वासु पुराण, पृ० ३३, ११०, ३८७ । विपिनचन्द्रपाल, पृ० २२२ ।  
 वासी, पृ० ४०६ । विमद (अमै), पृ० ३०७ ।  
 वास्मौकि रामायण, पृ० ४, ६-१०, १५०, विराट, पृ० ३८७ ।  
 २५०-१, २७४, ३१६, ३३६, ३५७,



विष्णु देवी, पृ० १२८।

विलासवती, पृ० ३६४।

विलसत, पृ० १३०-१, १३३, २६५।

विवाद रत्नाकर (काल्याप्त) पृ० १२४।

विवाह—अर्थ और लक्षण, पृ० १; की  
अनिवार्यता, १७-२२, ४२४; अनि-  
वार्यता के उदाहरण, पृ० १७, १७; गान्धनी  
पक्ष, पृ० ६; जीवनशास्त्रीय पक्ष, पृ० ३;  
धार्मिक पक्ष, पृ० ४, ४२२; सामाजिक,  
पृ० १६७; नैतिक पक्ष, पृ० ४२२; मुहूर्त,  
पृ० २३०; अंगिकरण, पृ० १६८;  
धार्मिक पक्ष, पृ० ३, ४२३; सामाजिक  
पक्ष, पृ० ५; ४२२; स्वयं पृ० ४२२-  
४२४।

विवाह का पवित्र धार्मिक बन्धन, पृ० ३४१।

विवाह की आयु का ऊंचा उठना, पृ० ३३२,  
४३१।

विवाह की आवश्यक विधियाँ, पृ० २६०;  
प्रारम्भिक गुजारें, पृ० २५५।

विवाह के आठ भेद, पृ० १६३ इनकी  
श्रेष्ठता का तारतम्य, पृ० १६६।

विवाह के प्रयोजन, पृ० ६-१७।

विवाह के प्राचीन तथा तथीन रूप, पृ०  
१६४-२२४।

विवाह के विभिन्न रूप : एक विवाह, पृ० ७,  
बहुमवृत्ता, पृ० ७, २०६, ३७६, ४०३,  
४२०; बहुभार्यता, पृ० ७, २२६, ३७६,  
४०२, ४१७।

विवाह विषयक नियम, पृ० ६।

विवाह विषयक मनु का आदर्श, पृ० २७६।

विवाह विच्छेद, पृ० २८६-३०५; इसकी  
प्रवृत्ति, पृ० ४३०; देखिये तत्ताक।

विवाह विच्छेदकानून (१८६७), पृ० ३०१।

विवाह विच्छेद की कानूनी व्यवस्था की  
मांग, पृ० २६८।

विवाह संस्कार, पृ० २१५-२८२; इसका  
उद्देश्य, पृ० २३५; इसमें परिवर्तन,  
पृ० ४३६-४५८।

विवाहवा, पृ० २७६।

विवाहवा चरित, पृ० २१६, २१६,  
२५२।

विश्वरूप (याज्ञग्यमुनि का टीकाकार),  
पृ० ६५, ८८, ८९, १२६, १६७,  
३२४, ३६४।

विश्वामित्र, पृ० ३०, ३१६, ३६२।

विष्णुधर्मसूत्र, पृ० ११६, १२३, १६०,  
१५०, १६४, १८५, ३५६।

विष्णु परशुराम बंशित, पृ० ३५२।

विष्णु पुराण, पृ० ३५७, ३८६।

विष्णु स्मृति, पृ० १२, २८, ३५, ८८,  
८३, १२४-१२६, १८६, २७५, २८३,  
३२४।

विज्ञानेश्वर, पृ० ६, १३, ३६, ६६, ८८-  
८९, ८८, १५०, २०१; देखिये मिता-  
क्षरा। विज्ञानेश्वर द्वारा सविष्टता की  
व्याख्या, पृ० ८६।

वीतराग रुचि, पृ० १७।

वीर मल्ल, पृ० १६।

वीर मित्रोदय, पृ० ६८, १४७, १४९,  
१८१, २४४-६, ३०६, ३२२।

वीरराघव, पृ० १८।

वीरशुल्क, पृ० १८३।

वीरशुल्क स्वयंवर, पृ० १८५।

वृत्तियाक (क्षत्रीजाति), पृ० १७६।

बुद्धा (अर्द्धा), पृ० ३०७।

वेदवती, पृ० ३५७।

- वेदानन्द, गीर्ष, पृ० ३७५।  
 वेगविनि, पृ० १८२।  
 वेङ्कटसम प्रसेनूत, पृ० ३३, ४६।  
 वैदिक इंडेक्स, पृ० २४, २५, ३७, ८१।  
 वैदिक युग—अनुप्रतिष्ठा विवाह, पृ० १०६; आसुर विवाह, पृ० १८६; एक विवाह, पृ० ३७६; माण्डवे विवाह, पृ० १६८; मोक्ष, पृ० ३७-३८; साम्प्रदायिक विवाह, पृ० २७४; बहुभर्तृता, पृ० ४०३; बालविवाह की प्रवृत्ति का अभाव, पृ० ३०६; विधवा विवाह, पृ० ३३६; विवाह संस्कार की विधियाँ, पृ० २३६; सतीप्रथा का अभाव, पृ० ३५४; मणिपुत्रता का विचार, पृ० ८०; स्त्री का पुनर्विवाह, पृ० २८६।  
 वैदिक साहित्य में आनुषंगिक विवाह का संकेत, पृ० ८१।  
 वैद्य, चिन्तामणि पितापक, पृ० ५५-६, १२८, १६७, १६५-६, २४८।  
 वैष्णव, पृ० ३६१।  
 वैवाहिक आशीर्वाद तथा उपवेश, पृ० २५१।  
 वैवाहिक नियम, पृ० २८; इनकी कठोरता, पृ० ३२४।  
 वैष्णवों के मोक्ष और प्रवर, पृ० ५२।  
 वेस्ट (बम्बई हाईकोर्ट के जज), पृ० १६७।  
 वेस्टर मार्क, पृ० २-३, ५, २१-३, ५८-६, १०५, १२०-१, १२९, १५६, १७६-८, १८०, १६१, २१८, २४३, ३१३, ३५५, ३७२, ३७६, ४१४-६।  
 व्यभिचार, पृ० ३००।  
 व्याघ्रपाद, पृ० ३६१।  
 व्यास ऋषि, पृ० ११५।  
 व्यास स्मृति, पृ० १५, १२५, १७२, २५६, २५८, २७३, २७५, २८०, २८५, ३२४, ३६६, ३८५, ४०६, ४१७।  
 व्युपितागव, पृ० ३७०।  
 यन्त्रालय, पृ० १६७, ३४६, ४०७।  
 याज्ञ स्मृति, पृ० १४-५, ८८, ११६, २८१-२।  
 यक्षुन्तला, पृ० २००-२०३, २०६-१०, २५२, २६६, २७७, ३२१, ४३२।  
 यकों में सती प्रथा, पृ० ३६०।  
 यक्ति, पृ० ११३-४।  
 यक्षजित्, पृ० ३८७।  
 यतपस ब्राह्मण, पृ० ४, १३-४, ४०, ४२, ४६, ५४, ६३, ८१, ८६, ६१, ६३, ११०, ११२, १३१, २७४-५, ३७८, ३६१।  
 यद्वकल्पद्रुम, पृ० १, ३४, ५६।  
 यमिष्ठा, पृ० ३८५।  
 यम्यति, पृ० ३६१।  
 यान्य, पृ० १६२।  
 याज्ञायक गृह्य सूत्र, पृ० ११२, १५२, २३८, २४६, २५१, ३०८, ३७८।  
 याज्ञायक ब्राह्मण, पृ० ११२, २४६।  
 याज्ञिकी ब्राह्मण, पृ० ७७-८।  
 याज्ञिक्य, पृ० २७, ६२, ६३।  
 याज्ञिक्य, पृ० ११४।  
 यान्तिगृहीत विवाह, पृ० २३२।  
 यान्ति धर्म (महाभारत), पृ० १७३-४, ३६०।  
 यादव कानून, पृ० ३२७, ३३०, ३३५।  
 याज्ञिक्य, पृ० १७२-३, ३८७।  
 यिलाहाद, पृ० १८३।  
 यिवाजी, पृ० ३६७।  
 यिवि, पृ० ३६२।  
 यिदुपाल, पृ० १७४, ३८७।

- निशुपालवध (माध), पृ० ३६४-५ ।  
 गुफदेव, पृ० ११३ ।  
 मुक्ताचार्य, पृ० ११४, ११६ ।  
 मुद्रितल्ल, पृ० ३६२ ।  
 मुद्रोदन, पृ० ३७६ ।  
 मुनःशेष, पृ० ३६, १६१ ।  
 मूत्रक, पृ० ३५८ ।  
 मुठा स्त्रियों के गाव विवाह का निषेध,  
 पृ० ११५ ।  
 मुद्रों में तलाक की प्रथा का रिवाज, पृ० २६७ ।  
 मूलह आन आरुख (पहली धर्म संहिता)  
 पृ० ५ ।  
 मेरिंग, पृ० १३१ ।  
 मोनक, पृ० ८२, ११४, ११७ ।  
 मौलिक विवाह, पृ० १६५, १६८, १६५ ।  
 व्यामा, पृ० ३०६ ।  
 म्वावाश्व, पृ० १११, २२५ ।  
 म्वेतयाग, पृ० ३५६ ।  
 भादव, पृ० ३५५ ।  
 श्रीनिवास, पृ० १०६, १३५, २२०, २२३,  
 ४३२ ।  
 श्रीलंका (बहुभर्तृ प्रथा), पृ० ४१६ ।  
 श्रीवैष्णव, पृ० १३५ ।  
 श्रीहर्ष, पृ० ३६५ ।  
 श्रुमयानु, पृ० १८ ।  
 श्वेत केतु, पृ० २२ ।  
 संस्कार कौस्तुभ, पृ० ५१, ६८, ६४, २२६,  
 २३६, २५५-६ ।  
 संस्कार प्रकाश, पृ० ३३, ५२, ६१, ६८,  
 ६४-५, ३२४ ।  
 संस्कार रत्नमाला, पृ० ३३, ४१, २५०,  
 २५४-५ ।  
 संस्कारों की पवित्रता का विचार, पृ० ३४१ ।  
 संस्कृत काव्या में गन्धर्व विवाह, पृ०  
 २०७;—बहुभार्यता, पृ० ३६३ ।  
 संशानसिंह, पृ० १२८, ३६६ ।  
 संयुक्त निकाय, पृ० २५० ।  
 संयुक्त परिवार की प्रथा, पृ० ३२८ ।  
 सयोंगिता, पृ० १८३ ।  
 सं० रा० अमेरिका, पृ० ११० ।  
 श्वेत स्मृति, पृ० ६२-३, ३०६, ३२२ ।  
 सफालिविद्योस, पृ० १७६ ।  
 समर, पृ० ३६०-१ ।  
 समार्द, पृ० २५६ ।  
 समोलविवाह, पृ० ६२ ।  
 सवातीय विवाह, पृ० १५४, २१३, २१८;  
 इसके दुष्परिणाम, पृ० १३६; इसके नियम  
 का शासन, पृ० ३२८; निर्धारों की कठो-  
 रता, पृ० ३४४ ।  
 सत परिश्रित विवाह, पृ० २३४ ।  
 सती का अर्थ, पृ० ३५३ ।  
 सती प्रथा, पृ० २६६, ३२४, ३५३-  
 ३६८—ऐतिहासिक विकास की तीन  
 अवस्थाएँ, पृ० ३५३; निषेध, पृ० ३६८;  
 पहली घटना, पृ० ३५६; बल प्रयोग,  
 पृ० ३६४; विकसित होने के कारण, पृ०  
 ३६६; विदेशी यात्रियों के विवरण, पृ०  
 ३६६; विरोध, पृ० ३५८; शकों से, पृ०  
 ३६०, शिलालेखों की साक्षियाँ, पृ० ३६० ।  
 सत्यकाम, पृ० २६ ।  
 सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ० १३४ ।  
 सत्यमामा, पृ० ३५७, ३८७ ।  
 सत्यवती, पृ० १६२, ३४०, ३६६ ।  
 सत्यवान, पृ० १८५-६ ।  
 सत्यव्रत सामाश्रमी—ऐतरेयाश्रमम्,  
 पृ० १११ ।

- सत्यार्थ प्रकाश, पृ० ३७५ ।  
 सत्यपाथ, पृ० ३३, ६८; द्विष्टिये हिस्स-  
 केमी ।  
 सत्त्वगुण, पृ० १३६ ।  
 सखिपता, पृ० ८०-१०७, २०१; इसका  
 सामान्य अर्थ, पृ० ८० ।  
 सत्त्वपदी, पृ० २४४ ।  
 सभागर्भ (महाभाग), पृ० ३८६ ।  
 समुद्रगुप्त, पृ० २२५ ।  
 समीप्य जाति (कर्म), पृ० १७६ ।  
 सम्बन्तदेवी, पृ० ३६० ।  
 सम्बन्धम् विवाह (मत्ताधार) पृ० २,  
 २२७-८, २६५, २६६; इसके प्रचलित  
 होते कारण, पृ० २२६ ।  
 सर्वस्वधनम्, विवाह, पृ० २३४ ।  
 सर्वानुष्ठाना (सामान्य) पृ० ८२ ।  
 सर्वार्थ विवाह का मूल कारण, पृ० १२० ।  
 सहदेव, पृ० ३८८ ।  
 सहमरण, पृ० ३५३; इसकी विधि, पृ०  
 ३६२ ।  
 सांगाराणा, पृ० ३६६ ।  
 सामिधेनी श्रृचाए, पृ० ४०, ४४ ।  
 सामुहिक विवाह, पृ० ११७ ।  
 सामुदायिक विवाह, पृ० २७१ ।  
 साम्ब, पृ० ३८७ ।  
 सामान्यार्थ, पृ० ८२, ३०६, ३३७, ३७७  
 ३७८ ।  
 सांगवत ब्राह्मण पृ० १०२ ।  
 सावित्री, पृ० १८५-१-२८० ।  
 सिकन्दर, पृ० ३१३, ३५७ ।  
 सिद्धेश्वर शास्त्री विवाह, पृ० १३४ ।  
 सिम्पसन, पृ० १२६ ।  
 सिमाकल मुतावरिन, पृ० ३६६ ।  
 सिरमूर (बहुभर्तृता) पृ० ४१२ ।  
 सीजर शेरिक, पृ० ४१० ।  
 सीता, पृ० १८३, १८५, २७४, ३१८,  
 ३१६, ४४०, ४४१ ।  
 सीतादेवी, पृ० २६५ ।  
 सीताराम कोहली, पृ० ३६७ ।  
 सीमियन या शफ राजाओं में सतीप्रथा,  
 पृ० ३५५ ।  
 सीमान्त प्रज, पृ० २५५ ।  
 सुकन्या, पृ० १११, ३०१ ।  
 सुकदात, पृ० २५ ।  
 सुधीश, पृ० ३३६ ।  
 सुदर्शन, पृ० ३७६ ।  
 सुदर्शना, पृ० १२२ ।  
 सुनक सूक्त, पृ० १२२ ।  
 मुनीति, पृ० ३८३ ।  
 सुप्रजनन शास्त्र, पृ० ७७ ।  
 सुप्रभा, पृ० १४८ ।  
 सुबन्ध, पृ० २०८, २१० ।  
 सुभद्रा, पृ० ८२, ६६, १७२-३, १६७,  
 २१६, ३२०, ३८८, ३६० ।  
 सुमानु, पृ० ६३ ।  
 सुर्वा, पृ० ३८६ ।  
 सुरेन्द्रनाथ बगर्जी, पृ० ३५२ ।  
 मुलसा पृ० ८४ ।  
 सुवास-पात्री, पृ० ८३ ।  
 सुविमलचन्द्र सरकार, पृ० ३६२ ।  
 सुधुत संहिता, पृ० ३११ ।  
 सुस्मन, पृ० ३६० ।  
 सूर्यदर्शन विधि, पृ० २४५ ।  
 सूर्या सूक्त, पृ० ८०, २४८, ३०७ ।  
 सेंट पीटर्सबर्ग कोश, पृ० ३७ ।  
 सेनात, पृ० १०६, १११ ।

- सौमनाथ, पृ० १२७ ।  
 सौमपुरा ब्राह्मणों में तलाक़ प्रथा, पृ० २६८ ।  
 स्कन्दपुराण, पृ० १८३ ।  
 स्कन्द पुराण, पृ० ३३, ५५, १३३, २८०, ३६७, ३६० ।  
 स्कन्दनेत्रविषय जातियों में सती प्रथा, पृ० ३५५ ।  
 स्टर्नबैक, पृ० १४५, १६४, १६८, १७६, १७७, १८१, २११, २१५, ३०६, ३२३ ।  
 स्टील, पृ० १३१, १४६, २३२ ।  
 स्टुबो, पृ० २१४, ३५६ ।  
 स्त्रियों को पुनर्विवाह का अधिकार, पृ० ३६२ ।  
 स्त्री की पराधीनता, पृ० २७६ ।  
 स्त्री के कर्तव्य, पृ० २७६ ।  
 स्त्री के लिए निषिद्ध कार्य, पृ० २८१ ।  
 स्त्रीनिष्ठता का अभाव, पृ० २७६ ।  
 स्थानीय जातियाँ या पारिवारिक कौल, पृ० ७५ ।  
 स्थानीय वह्निविवाह, पृ० ६१ ।  
 स्पाटाँ, पृ० २१७ ।  
 स्पीती (बहुभर्तृ प्रथा) पृ० ४१३ ।  
 स्पेन्सर, हर्बर्ट, पृ० ५६, ४१८ ।  
 स्पेसिफिक रिस्की एक्ट, पृ० २५६ ।  
 स्मरसूक्त (अथर्व), पृ० १६६ ।  
 स्मृति कौस्तुभ पृ० ३१६ ।  
 स्मृति चन्द्रिका (देवणभट्ट), पृ० २३, ५१, ६६, ६२-३, १२६, २६१, २६४, ३४४, ३५६; देखिये देवणभट्ट ।  
 स्मृति मुद्राफल (बैरनाथ) पृ० ६३ ।  
 स्मृतियाँ—असंगोक्तता का नियम, पृ० ६३; धात्रविवाह को प्रोत्साहन, पृ० ३२२; क्षपिण्यता, पृ० ८६ ।  
 स्मृत्यर्थसार, पृ० ३०, ३३, ५०, ६७, १५१ ।  
 स्नाय जातियों में सती प्रथा, पृ० ३५५ ।  
 स्नोमैन, पृ० ३६४-६ ।  
 स्वयंवर विवाह, पृ० १६४, १७२, १८०, ३२०; इसके तीन भेद, पृ० १८१ ।  
 स्वेच्छापूर्वक सती होने के उदाहरण, पृ० ३६५ ।  
 स्वैच्छिणी गिता, पृ० २६४ ।  
 तंमपदी, पृ० ३६४ ।  
 तंकरन मन्त्रमय, पृ० ५ ।  
 तट्टन, पृ० १११ ।  
 तमीरविवाह, पृ० ३४५ ।  
 तृप्त (आप० धर्मसूत्र का टीका०) पृ० २३, ८५, ११७, १२०, २२६, २८७, ३२५ ।  
 तृप्तविवाह शास्त्र, पृ० ३३० ।  
 तृप्तवत् वेदावधार, पृ० ३, १५, १६, २३, २५, १४६, १६४, २२१, २६२, २७३, ४, २७८, ३१४, ३४६, ३६७, ३७२, ४११ ।  
 तृप्तवत् पुराण, पृ० ८३, ११४ ।  
 तृप्तवत्, पृ० १२७, १६१, ३७८ ।  
 तृप्तवत् गीत, पृ० १०७ ।  
 तृप्तवत्, पृ० २४, ३६२ ।  
 तृप्त, पृ० ३६४ ।  
 तृप्तवत्, पृ० १६, १२७, १४६, २१६, २४६, २४७, ३४८, ३६७ ।  
 तृप्तवत् अपराध, पृ० ३३१ ।  
 तृप्त, पृ० ४२१, ४२७, ४३१ ।  
 तृप्तवत्, पृ० ११० ।  
 तृप्त का कालनिर्धारण, पृ० ३१४ ।  
 तृप्त धर्मसूत्र, पृ० ११७, १४६, ३१४, ३१५, ३४७, ३५६ ।

- हर्नली, पृ० ३११।  
 हिलनर, पृ० १२०, ३१२।  
 हिडम्बर्ग, पृ० २५।  
 हिंदो विप्रलकोप, पृ० १३३, १५६।  
 हिन्दू कोड, पृ० १०७।  
 हिन्दू परिवार मोर्सा, देखिये हरिदत्त वेदाङ्गनाद।  
 हिन्दू फैमिली इन इट्स अर्बन सेटिंग, देखिये राय एवीन।  
 हिन्दू विवाह अव्यवस्था निवारण कानून (१९४६), पृ० २८, ७६।  
 हिन्दू विवाह का आदिम रूप, पृ० २२।  
 हिन्दू विवाह कानून (१९५५), पृ० २८, ७६, १०६, २६६, २६५, २६८, २६८, ४८३।  
 हिन्दू विवाह कानून और सविनयता, पृ० १०६।  
 हिन्दू विवाह कानून की सलाह सम्बन्धी व्यवस्था, पृ० २६६।  
 हिन्दू विवाह का भविष्य, पृ० ४४३।  
 हिन्दू विवाह का स्वरूप, प्रयोजन और उद्गम, पृ० १-२७।  
 हिन्दू विवाह विधायक अर्बन प्रवृत्तियों, पृ० ४२१-४४४-अन्तर्जातीय विवाह, पृ० ४३४; दाम्पत्य अधिकारों की विपरीतता और समाप्ति, पृ० ४४१, पत्नी के आश्रय और स्थिति में परिवर्तन, पृ० ४४०; प्रणय विवाह और रोमांचक प्रेम—पृ० ४३२, ब्रतन स्वातंत्र्य, पृ० ४२७; विवाह की अनिवार्यता, पृ० ४२४; विवाह का स्वरूप, पृ० ४२२; विवाह की वय का ऊँचा उठना, पृ० ४३१; विवाह संस्कार में परिवर्तन, पृ० ४३६।  
 हिन्दू विवाह वैधता कानून (१९४६), पृ० २८, १३७, १४०।  
 हिन्दू विवाह सम्बन्धी मुख्य नियम (सालिका) पृ० ८।  
 हिन्दू विवाहों के आधुनिक रूप, पृ० २२६।  
 हिन्दू समाज में समीक विवाह नियम के उलावक हेतु, पृ० ६०-६२।  
 हिन्दू स्त्रियों की स्थिति का पतन, पृ० २७३; इसके कारण, पृ० २७३-४।  
 हिन्दू के लिंगानुसूचक, पृ० ५३, ११२, २६३, ३०८-९, ३७८।  
 हिदयकोशी औरसूचक, पृ० ३३१।  
 हिदयकोशी (मुलाती देवता) पृ० ३२१।  
 हिरोकोटस, पृ० २५५, ३६०।  
 हिस्टरी ऑफ पैगल, पृ० २८३।  
 हुमायूँ, पृ० ३५१।  
 हुदयसूचक विधि, पृ० ३४५।  
 हेपात्रि, पृ० ६७, ६३, १२६; देखिये अनुवर्ग चिन्तामणि।  
 हेमिस्टन, पृ० २२६।  
 हेडल राजा, पृ० ३६२।  
 ह्येनसग, पृ० १२७।  
 अंतर्जातीय विवाहों के विवाह का निर्णय पृ० ३४६।  
 अखियाँ के गोस, पृ० ५१।  
 बार का अर्थ, पृ० २४७।  
 ब्रिटीशमूलक सेन, पृ० ७१, १११, ११३, ११५, १७६।  
 अंत, पृ० ३६६।  
 अंत, पृ० ८६, ३७०।  
 अंतर्जातीय को अंतर्जातीय, पृ० ३७१।  
 अंतर्जातीय, पृ० ३६६।

CATALOGUED.





u

CATALOGUE

Central Archaeological Library.

NEW DELHI. 49766

Call No 392.50954/Jan

Author—

Title— हिंदू विधि का मंदिर  
S. 1. 1. 1. 1.

*"A book that is shut is but a block"*

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY  
GOVT. OF INDIA  
Department of Archaeology  
NEW DELHI

Please help us to keep this book  
clean and growing.